

पद्मपुराण

आचार्य रविषेण

[तृतीय भाग]

ज्ञानाव्याजगतिनिखिलैर्गर्भजनितं॥ विमुक्तान्यासंगारविरुचकरंथातमुक्तं॥६७३॥ ५। त्पार्थे रविषणा चोर्थ
मद्वादमं यत् ॥१९२॥ ततः शक्रस्य संमताः॥ स्वाप्तिदुःखसमाकुलाः॥ पुरस्कृतिसहस्राराः॥ प्राभारावणमं
ताः॥ प्रणम्य चक्षित्तदत्ते॥ आसनेषु यद्योचितं॥ २॥ दृष्टोथगौरवेनेचै॥ सहस्रारोदज्ञाननां॥ जितस्तातत्रयात्रा
सामर्थादर्थितं चया॥ परबानीवसादं हि॥ मभीदंतेनराधिपाः॥ ४॥ इत्युक्ते लोकपालानी॥ बरनेन्यः समुत्थितः॥ ५॥
लोकपालानथोवाव॥ विहस्योद्दामितातकः॥ समयोस्तिविमुचामि॥ येननाथं द्विकसा॥ ६॥ अथप्रचरतिमेसधे
सर्वमंतवृदिः पुरः॥ ७॥ पुरीयसाप्रतेरुत्या॥ चवदिः प्रतिवासं॥ परागमुचियाषाणा॥ एणकंठकवकिताः॥
॥ मही सिचत्रुकर्कट॥ मस्यलोकप्रकीर्त्यते॥ ९॥ येचवलेशु कुर्वंतु॥ पुष्यैर्मधमनोहरैः॥ संक्रोताः प्रकरं देव
युक्ता॥ यदितिर्दंतिसादराः॥ विमुचामिततः शक्रं॥ कुतोनेमुक्तिरस्यथा॥ ११॥ इत्युक्त्वावीक्षमाणोसो॥ ले
उयेपाणिनकरं॥ १२॥ ततोविनयनम्रः सन्॥ सहस्रारमवोचत॥ मुजाहृदयहारिण्या॥ क्षरन्निवगिरामृतं
म॥ अधिकंवाततः कुर्यी॥ कथमाज्ञाविलंघनं॥ १४॥ गुरवः परमार्थेन॥ यदिनस्युर्नवाहृत्राः॥ प्रधस्तो
गानस्मिद्यत्युज्यो॥ ददातिममत्रासनं॥ नवदिधनियोगानो॥ नपदपुण्यवर्जिताः॥ १६॥ तदद्वारन्यसंचित्य
रतेममचप्रजो॥ १७॥ अथैत्रकैममत्राता॥ तुरीयः सांप्रतेवली॥ ऐणप्राप्यैकरिधामि तुरीयेः सांप्रतेवली॥ एन
लोकपालास्तथेवास्प॥ तच्चराज्ययथापुरा॥ ततोधिकंवागृह्णतु॥ विवेकेनकिमावयोः॥ २०॥ अज्ञानम
शाहिसेषेच॥ रक्षालेकारकारणं॥ २१॥ प्रास्थतामिद्ववाहंदा॥ दथवारथनूपुरे यत्रवेत्तकानूमि चूत्य
समाप्तीकृतमानसः॥ अवाचतसहस्रार॥ स्ततोपिमधुरं वचः॥ २३॥ नूनंनइससुत्यतिः॥ सज्जनानांनवाहृत्रां
१६॥ प्रासुम्पन्नस्योर्थेषु॥ विनयोयंतवोत्तमः॥ अलेकारममस्तेसि चवनेसाध्वतागतः॥ १७॥ नवतोदृशी
तो॥ न्यायोकारणीकृतो॥ २६॥ द्वाभावतासमर्थेन॥ कुंदनिर्मलकीर्तिना॥ दोषाणांसंनवासंका॥ बयाथोका
तेवयि॥ ककुप्रकरिकराकरो॥ कुरुतः किंनतेचुनौ॥ २६॥ किंउमातेव नोत्राव्यात्तं नमवसुंधरा॥ सहिद्व

सम्पादन-अनुवाद

डॉ० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

पद्मपुराण

जैन परम्परा में मर्यादापुरुषोत्तम राम की मान्यता त्रेषठ शलाकापुरुषों में है। उनका एक नाम पद्म भी था। जैन-पुराणों एवं चरितकाव्यों में यही नाम अधिक प्रचलित रहा है। जैन काव्यकारों ने राम का चरित्र पउमचरियं, पउमचरिउ, पद्मपुराण, पद्मचरित आदि अनेक नामों से प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में प्रस्तुत किया है।

आचार्य रविषेण (सातवीं शती) का प्रस्तुत ग्रन्थ पद्मपुराण संस्कृत के सर्वोत्कृष्ट चरितप्रधान महाकाव्यों में परिगणित है। पुराण होकर भी काव्यकला, मनोविश्लेषण, चरित्रचित्रण आदि में यह काव्य इतना अद्भुत है कि इसकी तुलना किसी अन्य पुराणकाव्य से नहीं की जा सकती है। काव्य-लालित्य इसमें इतना है कि कवि की अन्तर्वाणी के रूप में मानस-हिमकन्दरा से निःसृत यह काव्यधारा मानो साक्षात् मन्दाकिनी ही बन गयी है। विषयवस्तु की दृष्टि से कवि ने मुख्य कथानक के साथ-साथ प्रसंगवश विद्याधरलोक, अंजना-पवनंजय, हनुमान्, सुकोशल आदि का जो चित्रण किया है, उससे ग्रन्थ की रोचकता इतनी बढ़ गयी कि इसे एक बार पढ़ना आरम्भ कर बीच में छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती।

पुराणपारगामी डॉ. (पं.) पन्नालाल जैन साहित्याचार्य द्वारा प्रस्तावना, परिशिष्ट आदि के साथ सम्पादित और हिन्दी में अनूदित होकर यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ से तीन भागों में प्रकाशित है। विद्वानों, शोधार्थियों और स्वाध्याय-प्रेमियों की अपेक्षा और आवश्यकता को देखते हुए प्रस्तुत है ग्रन्थ का यह एक और नया संस्करण।

श्रीमद्रविषेणाचार्यप्रणीतम्

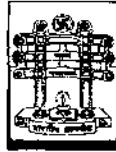
पद्मपुराणम्

[पद्मचरितम्]

तृतीयो भागः

सम्पादन-अनुवाद

डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य



भारतीय ज्ञानपीठ

दसवाँ संस्करण : 2004 □ मूल्य : २३० रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण 9; वीर नि. सं. 2470; विक्रम सं. 2000; 18 फरवरी 1944)

पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की स्मृति में
साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं

उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमा जैन द्वारा सम्पोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, प्राचीन
भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि
विविध-विषयक जैन साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनके मूल और
यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की
ग्रन्थसूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के
अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी
इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

प्रधान सम्पादक (प्रथम संस्करण)

डॉ. हीरालाल जैन, डॉ. ए.एन. उपाध्ये

प्र

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

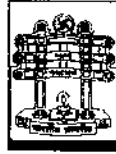
मुद्रक : वी. कं. ऑफसेट, दिल्ली-110 032

© भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

RAVIᅒENĀCHĀRYA'S
PADMAPURĀNA
[PADMACHARITA]

Vol. III

Edited and Translated by
Dr. Pannalal Jain, Sahityacharya



BHARATIYA JNANPITH

Tenth Edition : 2004 □ Price : Rs. ~~200~~
230

BHARATIYA JNANPITH

(Founded on Phalguna Krishna 9; Vira N. Sam. 2470; Vikrama Sam. 2000; 18th Feb. 1944)

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

FOUNDED BY

Sahu Shanti Prasad Jain

In memory of his illustrious mother Smt. Moortidevi
and
promoted by his benevolent wife
Smt. Rama Jain

In this Granthamala critically edited Jain agamic, philosophical,
puranic, literary, historical and other original texts in Prakrit,
Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc.
are being published in the original form with their
translations in modern languages.

Catalogues of Jain bhandaras,
inscriptions, studies on art and architecture by
competent scholars and popular
Jain literature are also being published.



General Editors (First Edition)

Dr. Hiralal Jain, Dr. A.N. Upadhye

Published by

Bharatiya Jnanpith

18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003

Printed at : B. K. Offset, Delhi-110 032

© All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

विषयानुक्रमणिका

छयासठवाँ पर्व

१७

जब विशाल्या के प्रभाव से लक्ष्मण की शक्ति निकल जाने का समाचार रावण को मिलता है तो वह ईर्ष्यालु हो मन्दहास्य करने लग जाता है। मृगाङ्क आदि मन्त्रियों रावण को समझाते हैं कि सीता को वापस कर राम के साथ सन्धि कर लेना ही उचित है। रावण मन्त्रियों के समक्ष तो कह देता है कि जैसा आप लोग कहते हैं वैसा ही करूँगा; परन्तु जब दूत भेजा जाता है तब उसे संकेत द्वारा कुछ दूसरी ही बात समझा देता है। दूत, राम के दरबार में पहुँचकर रावण की प्रशंसा करता हुआ उसके भाई और पुत्रों को छोड़ देने की प्रेरणा देता है। राम उत्तर देते हैं कि मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं। मैं सीता को लेकर वन में विचरूँगा, रावण पृथ्वी का उपभोग करे। दूत पुनः रावण के पक्ष का समर्थन करता है। यह देख, भामण्डल का क्रोध उबल पड़ता है। वह इनको मारने के लिए तैयार होता है पर लक्ष्मण उसे शान्त कर देते हैं। दूत वापस आकर रावण को सब समाचार सुनाता है।

१८

सड़सठवाँ पर्व

दूत की बात सुनकर रावण पहले तो किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो जाता है पर बाद में बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने का निश्चय कर पुलकित हो उठता है। वह उसी समय किंकरों को शान्ति-जिनालय को सुसज्जित करने का आदेश देता है। साथ ही यह आदेश भी देता है कि नगर के समस्त जिनालयों में जिनदेव की पूजा की जाए। प्रसंगवश सर्वत्र स्थित जिनालयों का वर्णन।

६-११

अड़सठवाँ पर्व

फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक नन्दीश्वर पर्व आ जाता है। उसके माहात्म्य का वर्णन। दोनों सेनाओं के लोग पर्व के समय युद्ध नहीं करने का निश्चय करते हैं। रावण भी शान्ति जिनालय में भक्ति-भाव से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता है।

१२-१३

उनहत्तरवाँ पर्व

रावण, शान्ति जिनालय में जिनेन्द्रदेव के सम्मुख विद्या सिद्ध करने के लिए आसनारूढ़ होता है। रावण की आज्ञा के अनुसार, मन्दोदरी यमदण्ड मन्त्री को आदेश देती है कि जब तक पतिदेव विद्या-साधन में निमग्न हैं तब तक सब लोग शान्ति से रहें और उनकी हितसाधना के लिए नाना प्रकार के नियम ग्रहण करें।

१४-१५

सत्तरवाँ पर्व

रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है—यह समाचार जब राम की सेना में सुनाई पड़ा तब सब चिन्ता में निमग्न हो जाते हैं। यह विद्या चौबीस दिन में सिद्ध होती है। 'यदि विद्या सिद्ध हो गयी तो रावण अजेय हो जाएगा' यह विचार कर लोग विद्या सिद्ध करने में उपद्रव करने का निश्चय करते हैं।

जब लोग रामचन्द्र जी से इस विषय में सलाह लेते तो वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि जो नियम लेकर जिनमन्दिर में बैठा है उस पर यह कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है। 'राम तो महापुरुष हैं, वे अधर्म में प्रवृत्ति नहीं करेंगे' ऐसा निश्चय कर विद्याधर राजा स्वयं तो नहीं जाते हैं परन्तु वे अपने कुमारों को उपद्रव हेतु लंका की ओर रवाना कर देते हैं। कुमार लंका में घोर उपद्रव करते हैं जिससे लंकावासी भयभीत हो जिनालय में आसीन रावण की शरण में पहुँचते हैं परन्तु रावण ध्याननिमग्न है। लोग भयभीत थे इसलिए जिनालय के शासनदेव विक्रिया द्वारा कुमारों को रोक लेते हैं। उधर रामचन्द्र जी के शिविर में जो जिनालय थे उनके शासनदेव रावण के शान्ति जिनालय सम्बन्धी शासनदेवों के साथ युद्धकर उन्हें रोकने का प्रयत्न करते हैं। तदनन्तर पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक यक्षेन्द्र रावण के ऊपर आगत उपद्रव का निवारण कर कुमारों को खदेड़ देते हैं और रामचन्द्र जी को उनके कुकृत्य का उलाहना देते हैं। सुग्रीव यथार्थ बात बतलाता है और अर्घ्यावतारण कर उन्हें शान्त करता है। तदनन्तर लक्ष्मण के कहने से दोनों यक्ष यह स्वीकार कर लेते हैं कि वे नगरवासियों को अणुमात्र भी कष्ट न देकर रावण को ध्यान से विचलित करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

१६-२३

इकहत्तरवाँ पर्व

यक्षेन्द्र को शान्त देख अंगद लंका देखने के लिए उद्यत होता है। स्कन्द तथा नील आदि कुमार भी उसके साथ लग जाते हैं। इन समस्त कुमारों का लंका में प्रवेश होता है। अंगद की सुन्दरता देख लंका की स्त्रियों में हलचल मच जाती है। रावण के भवन में कुमारों का प्रवेश होता है। भवन का अद्भुत वैभव उन्हें आश्चर्यचकित कर देता है। वे सब शान्ति-जिनालय में जिनेन्द्र-वन्दना करते हैं। शान्तिनाथ भगवान् के सम्मुख अर्धपर्यकासन से बैठकर रावण विद्या सिद्ध कर रहा है। अंगद के द्वारा नाना प्रकार के उपद्रव किये जाने पर भी रावण अपने ध्यान से विचलित नहीं होता है और उसी समय उसे बहुरूषिणी विद्या सिद्ध हो जाती है। रावण को विद्या सिद्ध देख अंगद आदि आकाश-मार्ग से उड़कर रामचन्द्र जी की सेना में जा मिलते हैं।

२४-३०

बहत्तरवाँ पर्व

रावण की अठारह हज़ार स्त्रियाँ अंगद के द्वारा पीड़ित होने पर रावण की शरण में जा अपना दुःख प्रकट करती हैं। रावण उन्हें सान्त्वना देता है। दूसरे दिन रावण बड़े उल्लास के साथ प्रमदवन में प्रवेश करता है। सीता के पास बैठी विद्याधरियाँ उसे रावण की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करती हैं। सीता रावण की बलवत्ता देख अपने दुर्भाग्य की निन्दा करती है। रावण सीता को भय और स्नेह के साथ अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है पर सीता रावण से यह कहकर कि हे दशानन ! युद्ध में बाण चलाने के पूर्व राम से मेरा यह सन्देश कह देना कि आपके बिना भामण्डल की बहिन घुट-घुटकर मर गयी है...मूर्च्छित हो जाती है। रावण सीता और राम के निकाचित स्नेह-बन्धन को देख अपने कुकृत्य पर पश्चात्ताप करता है परन्तु युद्ध की उत्तेजना के कारण उसका वह पश्चात्ताप विलीन हो जाता है और वह युद्ध का दृढ़ निश्चय कर लेता है।

३१-३८

तेहत्तरवाँ पर्व

सूर्योदय होता है। रावण का मन्त्रिमण्डल उसकी हठ पर किंकर्तव्यविमूढ़ है। पट्टरानी मन्दोदरी भी

पति के इस दुराग्रह से दुःखी है। रावण अपनी शस्त्रशाला में जाता है। वहाँ नाना प्रकार के अपशकुन होते हैं। मन्दोदरी मन्त्रियों को प्रेरणा देती है कि आप लोग रावण को समझाते क्यों नहीं ? मन्त्री, रावण की उग्रता का वर्णन कर जब अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं तब मन्दोदरी स्वयं पति की भिक्षा माँगती हुई रावण को सत्वध का दर्शन कराती है। रावण कुछ समझता है, अपने आपको धिक्कारता भी है पर उसका वह विवेक स्थिर नहीं रह पाता है। रावण मन्दोदरी की कातरता को दूर करने का प्रयत्न करता है। रात्रि के समय स्त्री-पुरुष 'कल न जाने क्या होगा ?' इस आशंका से उद्वेलित हो परस्पर मिलते हैं। प्रातः आकाश में लाली फूटते ही युद्ध की तैयारी होने लगती है।

३६-५२

चौहत्तरवाँ पर्व

सूर्योदय होते ही रावण युद्ध के लिए बाहर निकलता है और बहुरूपिणी विद्या के द्वारा निर्मित हज़ार हाथियों से जुते ऐन्द्र नामक रथ पर सवार हो सेना के साथ आगे बढ़ता है। रामचन्द्र जी अपने समीपस्थ लोगों से रावण का परिचय प्राप्त कर कुछ विस्मित होते हैं। वानरों और राक्षसों का घनघोर युद्ध शुरू हो जाता है। राम ने मन्दोदरी के पिता 'मय' को बाणों से विह्वल कर दिया है—यह देख ज्योंही रावण आगे बढ़ता है त्योंही लक्ष्मण आगे बढ़कर उसे युद्ध के लिए ललकारता है। कुछ देर तक वीर-संवाद होने के बाद रावण और लक्ष्मण का भीषण युद्ध होता है।

५३-६१

पचहत्तरवाँ पर्व

रावण और लक्ष्मण का विकट युद्ध दश दिन तक चलता है पर किसी की हार-जीत नहीं होती। चन्द्रवर्धन विद्याधर की आठ पुत्रियाँ आकाश में स्थित हो लक्ष्मण के प्रति अपना अनुराग प्रकट करती हैं। उन कन्याओं के मनोहर वचन श्रवण कर ज्योंही लक्ष्मण ऊपर की ओर देखता है त्योंही वे कन्याएँ प्रमुदित होकर कहती हैं कि आप अपने कार्य में सिद्धार्थ हों। 'सिद्धार्थ' शब्द सुनते ही लक्ष्मण को सिद्धार्थ शस्त्र का स्मरण हो आता है। वह शीघ्र ही सिद्धार्थ शस्त्र का प्रयोग कर रावण को भयभीत कर देता है। अब रावण बहुरूपिणी विद्या का आलम्बन लेकर युद्ध करने लगता है। लक्ष्मण एक रावण को नष्ट करता है तो उसके बदले अनेक रावण सामने आ जाते हैं। इस प्रकार लक्ष्मण और रावण का युद्ध चलता रहता है। अन्त में रावण चक्ररत्न का चिन्तन करता है और मध्याह्न के सूर्य के समान देदीप्यमान चक्ररत्न उसके हाथ में आ जाता है। क्रोध से भरा रावण लक्ष्मण पर चक्ररत्न चलाता है पर वह तीन प्रदक्षिणाएँ देकर उसके के हाथ में आ जाता है।

६२-६६

छिहत्तरवाँ पर्व

लक्ष्मण को चक्ररत्न की प्राप्ति देख विद्याधर राजाओं में हर्ष छा जाता है। वे लक्ष्मण को आठवाँ नारायण और राम को आठवाँ बलभद्र स्वीकृत करते हैं। रावण को अपनी दीन दशा पर मन-ही-मन पश्चात्ताप उत्पन्न होता है पर अहंकार के वश हो सन्धि करने के लिए उद्यत नहीं होता। लक्ष्मण मधुर शब्दों में रावण से कहता है कि तू सीता को वापस कर दे और अपने पद पर आरूढ़ हो लक्ष्मी का उपभोग कर। पर रावण मानवश ऐंठता रहा। अन्त में लक्ष्मण चक्ररत्न चलाकर रावण को मार डालता है और भय से भागते हुए लोगों को अभयदान की घोषणा करता है।

६७-७०

सतहत्तरवाँ पर्व

रावण की मृत्यु से विभीषण शोकार्त हो मूर्छित हो जाता है, आत्मघात की इच्छा करता है और करुण विलाप करता है। रावण की अठारह हजार स्त्रियाँ रणभूमि में आकर रावण के शव से लिपटकर विलाप करती हैं। समस्त आकाश और पृथिवी शोक से व्याप्त हो जाती है। राम लक्ष्मण, भामण्डल तथा हनूमान् आदि सब को सान्त्वना देते हैं। प्रसंगवश प्रीतिकर की संक्षिप्त कथा कही जाती है।

७१-७६

अठहत्तरवाँ पर्व

राम कहते हैं, 'विद्वानों का वैर तो मरणपर्यन्त ही रहता है अतः अब रावण के साथ वैर किस बात का ! चलो, उसका दाह-संस्कार करें।' राम की बात का सब समर्थन करते हैं और रावण के संस्कार के लिए सब उसके पास पहुँचते हैं। मन्दोदरी आदि रानियाँ करुण विलाप करती हैं। सब उन्हें सान्त्वना देकर रावण का गोशीर्ष आदि चन्दनों से दाह-संस्कार कर पद्म सरोवर जाते हैं। वहाँ भामण्डल आदि के संरक्षण में भानुकर्ण, इन्द्रजित् तथा मेघवाहन लाये जाते हैं। ये सभी अन्तरंग से मुनि बन जाते हैं। राम और लक्ष्मण की ये प्रशंसा करते हैं। राम-लक्ष्मण भी इन्हें पहले के ही समान भोग भोगने की प्रेरणा करते हैं पर ये भोगाकांक्षा से उदासीन हो जाते हैं। लंका में सर्वत्र शोक और निर्वेद छ जाता है। जहाँ देखो वहाँ अश्रुधारा ही प्रवाहित दिखती है। दिन के अन्तिम प्रहर में अनन्तवीर्य नामक मुनिराज लंका में आते हैं। वे वहाँ कुसुमोद्यान में ठहर जाते हैं। छप्पन हजार आकाशगामी उत्तम मुनिराज उनके साथ रहते हैं। रात्रि के पिछले पहर में अनन्तवीर्य मुनिराज को केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। देवों द्वारा उनका केवलज्ञान महोत्सव किया जाता है। भगवान् मुनिसुव्रत जिनेन्द्र का गद्यकाव्य द्वारा पंचकल्याणक वर्णनरूप संस्तवन होता है। केवली की दिव्यध्वनि खिरती है। इन्द्रजित्, मेघवाहन, कुम्भकर्ण और मन्दोदरी अपने भवान्तर पूछते हैं। अन्त में इन्द्रजित्, मेघवाहन, भानुकर्ण तथा मधु आदि निर्ग्रन्थदीक्षा धारण कर लेते हैं। मन्दोदरी तथा चन्द्रनखा आदि भी आर्यिका के व्रत ग्रहण कर लेती हैं।

७७-८७

उन्यासीवाँ पर्व

राम और लक्ष्मण महावैभव के साथ लंका में प्रवेश करते हैं। राम के मनोमुग्धकारी रूप को देखकर स्त्रियाँ परस्पर उनकी प्रशंसा करती हैं। सीता के सौभाग्य को सराहती हैं। राजमार्ग से चलकर राम उस वाटिका में पहुँचते हैं जहाँ विरहव्याधिपीडिता दुर्बलशरीरा सीता स्थित हैं। सीता राम के स्वागत के लिए खड़ी हो जाती हैं। राम बाहुपाश से सीता का आलिंगन करते हैं। लक्ष्मण विनीतभाव से सीता के चरणयुगल का स्पर्श कर सामने खड़े हो जाते हैं। सीता के नेत्रों से वात्सल्य के अश्रु निकल आते हैं। आकाश में खड़े देव विद्याधर, राम और सीता के समागम पर हर्ष प्रकट करते हुए पुष्पांजलि तथा गन्धोदक की वर्षा करते हैं। 'जय सीते ! जय राम !' की ध्वनि से आकाश गूँज उठता है।

८८-९२

अस्सीवाँ पर्व

सीता को साथ ले श्री राम हाथी पर सवार हो रावण के महल में जाते हैं। वहाँ श्री शान्तिनाथ जिनालय में वे शान्तिनाथ भगवान् की भक्तिभाव से स्तुति करते हैं। विभीषण तथा रावण परिवार को सान्त्वना देते हैं। विभीषण अपने भवन में जाता है और अपनी विदग्धा रानी को भेजकर श्रीराम को निमन्त्रित करता है। श्रीराम सपरिवार उसके भवन में आते हैं। विभीषण अर्घावतारण कर उनका स्वागत

करता है तथा समस्त विद्याधरों और सेना के साथ उन्हें भोजन कराता है। विभीषण राम और लक्ष्मण का अभिषेक करना चाहता है, तब वे कहते हैं—‘पिता के द्वारा जिसे राज्य प्राप्त हुआ था ऐसा भरत अभी अयोध्या में विद्यमान है उसी का राज्याभिषेक होना चाहिए।’ राम-लक्ष्मण वनवास के समय विवाहित स्त्रियों को बुला लेते हैं और आनन्द से लंका में निवास करने लगते हैं। लंका में रहते हुए उन्हें छह वर्ष बीत गये हैं। मुनिराज इन्द्रजित् और मेघवाहन का मोक्ष पधारना। मय मुनिराज के माहात्म्य का वर्णन।

६३-१०८

इक्यासीवाँ पर्व

अयोध्या में पुत्र-विरहातुरा कौशल्या निरन्तर दुःखी रहती है। पुत्र के सुकुमार शरीर को वनवास के समय अनेक कष्ट उठाने पड़ रहे होंगे—यह विचारकर वह विलाप करने लगती है। उसी समय आकाश से उतरकर नारद उसके पास जाते हैं तथा विलाप का कारण पूछते हैं। कौशल्या सब कारण बताती है और नारद शोकनिमग्न हो राम-लक्ष्मण तथा सीता का कुशल समाचार लाने के लिए चल पड़ते हैं। नारद लंका में पहुँचकर उनके समीप कौशल्या और सुमित्रा के दुःख का वर्णन करते हैं। माताओं के दुःख का श्रवण कर राम-लक्ष्मण अयोध्या की ओर चलने के लिए उद्यत होते हैं पर विभीषण चरणों में मस्तक झुकाकर सोलह दिन तक और ठहरने की प्रार्थना करता है। राम जिस किसी तरह विभीषण की प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं। इस बीच विभीषण विद्याधर कारीगरों को भेजकर अयोध्यापुरी का नव-निर्माण कराता है। भरपूर रत्नों की वर्षा करता है और विद्याधर दूत भेजकर राम-लक्ष्मण की कुशल वार्ता भरत के पास भेजता है।

१०९-११७

व्यासीवाँ पर्व

सोलह दिन बाद राम पुष्पक विमान में आरूढ़ हो सूर्योदय के समय अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। राम मार्ग में आगत विशिष्ट-विशिष्ट स्थानों का सीता के लिए परिचय देते जाते हैं। अयोध्या के समीप आने पर भरत आदि बड़े हर्ष के साथ उनका स्वागत करते हैं। अयोध्यावासी नर-नारियों के उल्लास का पार नहीं रहता। राम-लक्ष्मण के साथ सुग्रीव, हनुमान्, विभीषण, भामण्डल तथा विराधित आदि भी आये हैं। लोग एक-दूसरे को उनका परिचय दे रहे हैं। कौशल्या आदि चारों माताएँ राम-लक्ष्मण का आलिंगन करती हैं। पुत्रों का माताओं को प्रणाम करना।

११८-१२२

तेरासीवाँ पर्व

राम-लक्ष्मण की विभूति का वर्णन। भरत यद्यपि डेढ़ सौ स्त्रियों के स्वामी हैं, भोगोपभोग से परिपूर्ण सुन्दर महलों में उनका निवास है तथापि संसार से सदा विरक्त रहते हैं। वे राम-वनवास के पूर्व ही दीक्षा लेना चाहते थे पर ले न सके। अब उनका वैराग्य प्रकृष्ट सीमा को प्राप्त हो गया है। संसार में फँसानेवाली प्रत्येक वस्तु से उन्हें निर्वेद उत्पन्न हो गया है। राम-लक्ष्मण ने बहुत रोका। केकया बहुत रोयी चीखी परन्तु उन पर किसी का प्रभाव नहीं होता। राम-लक्ष्मण और भरत की स्त्रियों ने राग-रंग में फँसा कर रोकना चाहा पर सफल नहीं हो सकीं। इसी बीच में त्रिलोकमण्डन हाथी बिगड़कर नगर में उपद्रव करता है। प्रयत्न करने पर भी वह शान्त नहीं होता। अन्त में भरत के दर्शन कर वह शान्त हो जाता है।

१२३-१३२

चौरासीवाँ पर्व

त्रिलोकमण्डन हाथी को राम-लक्ष्मण वश कर लेते हैं। सीता और विशल्या के साथ उस गजराज पर सवार हो भरत राजमहल में प्रवेश करते हैं। उसके क्षुभित होने से नगर में जो क्षोभ फैल गया था वह दूर हो जाता है। चार दिन बाद महावत आकर राम-लक्ष्मण के सामने त्रिलोकमण्डन हाथी की दुःखमय अवस्था का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि हाथी चार दिन से कुछ नहीं खा-पी रहा है और दुःख-भरी साँसें छोड़ता रहता है।

१३३-१३५

पचासीवाँ पर्व

अयोध्या में देशभूषण केवली का अगमन होता है। सर्वत्र आनन्द छा जाता है। सब लोग वन्दना के लिए जाते हैं। केवली के द्वारा धर्मोपदेश होता है। लक्ष्मण प्रकरण पाकर त्रिलोकमण्डन हाथी के क्षुभित होने, शान्त होने तथा आहार-पानी छोड़ने का कारण पूछता है। इसके उत्तर में केवली भगवान् विस्तार से हाथी और भरत के भवान्तरों का वर्णन करते हैं।

१३६-१४६

छ्यासीवाँ पर्व

महामुनि देशभूषण के मुख से अपने भवान्तर सुन भरत का वैराग्य उमड़ पड़ता और वे उन्हीं के पास दीक्षा ले लेते हैं। भरत के अनुराग से प्रेरित हो एक हजार से भी कुछ अधिक राजा दिगम्बर दीक्षा धारण कर लेते हैं। भरत के निष्क्रान्त हो जाने पर उसकी माता केकया बहुत दुःखी होती है। यद्यपि राम-लक्ष्मण उसे बहुत सान्त्वना देते हैं तथापि वह संसार से इतनी विरक्त हो जाती है कि तीन सौ स्त्रियों के साथ आर्यिका की दीक्षा लेकर ही शान्ति का अनुभव करती है।

१५०-१५२

सतासीवाँ पर्व

त्रिलोकमण्डन हाथी समाधि धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव होता है और भरत मुनि अष्टकर्मों का क्षय कर निर्याण प्राप्त करते हैं।

१५३-१५४

अठासीवाँ पर्व

सब लोग भरत की स्तुति करते हैं। सभी राजा राम और लक्ष्मण का राज्याभिषेक करते हैं। राज्याभिषेक के अनन्तर राम-लक्ष्मण अन्य राजाओं को देशों का विभाग करते हैं।

१५५-१५८

नवासीवाँ पर्व

राम और लक्ष्मण शत्रुघ्न से कहते हैं कि तुझे जो देश इष्ट हो उसे ले ले। शत्रुघ्न मथुरा लेने की इच्छा प्रकट करता है। इस पर राम-लक्ष्मण वहाँ के राजा मधुसुन्दर की बलवत्ता का वर्णन कर अन्य कुछ लेने की प्रेरणा करते हैं। परन्तु शत्रुघ्न नहीं मानता। राम-लक्ष्मण बड़ी सेना के साथ शत्रुघ्न को मथुरा की ओर रवाना करते हैं। वहाँ जाने पर मधु के साथ शत्रुघ्न का भीषण युद्ध होता है। अन्त में हाथी पर बैठा-बैठा मधु घायल अवस्था में ही विरक्त हो केश उखाड़कर दीक्षा ले लेता है। शत्रुघ्न यह दृश्य देख उसके चरणों में गिरकर क्षमा माँगता है। अनन्तर शत्रुघ्न राजा बनता है।

१५९-१६७

नब्बेवाँ पर्व

शूलरत्न से मधुसुन्दर के वध का समाचार सुन चमरेन्द्र कुपित होकर मथुरा नगरी में महामारी बीमारी फैलाता है। कुलदेवता की प्रेरणा पाकर शत्रुघ्न अयोध्या को चला जाता है।

१६८-१७०

एकानबेवाँ पर्व

शत्रुघ्न का मथुरा के प्रति अत्यधिक अनुराग क्यों था ? श्रेणिक को इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गौतम स्वामी शत्रुघ्न के पूर्व भवों का वर्णन करते हैं।

१७१-१७५

बानबेवाँ पर्व

सुरमन्यु आदि सप्तर्षियों के विहार से मथुरापुरी के सारे उपसर्ग दूर हो जाते हैं। सप्तर्षि मुनि कदाचित् आहार के लिए अयोध्यापुरी आते हैं। उन्हें देख अर्हदत्त सेठ विचारता है कि अयोध्या के आस-पास जितने मुनि हैं उन सबकी वन्दना मैंने की है। ये मुनि वर्षाऋतु में गमन करते हुए यहाँ आये हैं अतः आहार देने के योग्य नहीं है यह विचार कर उसने उन्हें आहार नहीं दिया। तदनन्तर द्युति भट्टारक नामक मुनि के मुख से उन्हें चारणऋद्धि के धारक जान अर्हदत्त सेठ अपने थोथे विवेक पर बहुत दुःखी होता है। कार्तिकी पूर्णिमा को निकट जान अर्हदत्त सेठ मथुरा नगरी जाता है और उक्त मुनियों की पूजा कर अपने आपको धन्य मानता है। उन्हीं मुनियों का सीता के घर आहार होता है।

१७६-१८२

तेरानबेवाँ पर्व

राम के लिए श्रीदामा और लक्ष्मण के लिए मनोरमा कन्या की प्राप्ति का वर्णन।

१८३-१८७

चौरानबेवाँ पर्व

राम और लक्ष्मण अनेक विद्याधर राजाओं को वश करते हैं। लक्ष्मण की अनेक स्त्रियों तथा पुत्रों का वर्णन।

१८८-१९०

पंचानबेवाँ पर्व

सीता ने स्वप्न में देखा कि दो अष्टापद मेरे मुख में प्रविष्ट हुए हैं और मैं पुष्पक विमान से नीचे गिर गयी हूँ। राम स्वप्नों का फल सुनाकर सीता को सन्तुष्ट करते हैं। द्वितीय स्वप्न को कुछ अनिष्ट जान उसकी शान्ति के लिए मन्दिरों में जिनेन्द्र भगवान् का पूजन करते हैं। सीता को जिन-मन्दिरों की वन्दना का दोहला उत्पन्न हुआ है। राम उसकी पूर्ति करते हैं। मन्दिरों को सजाया जाता है तथा राम सीता के साथ मन्दिरों के दर्शन करते हैं। वसन्तोत्सव मनाया जाता है।

१९१-१९५

छयानबेवाँ पर्व

श्रीराम महेन्द्रोदय नामक उद्यान में स्थित हैं। प्रजा के चुने हुए लोग रामचन्द्र जी से कुछ प्रार्थना करने के लिए जाते हैं पर उनसे कुछ कह सकने के लिए वे सामर्थ्य नहीं जुटा पाते हैं। दाहिनी आँख का अधोभाग फड़कने से सीता भी मन-ही-मन दुःखी है। सखियों के कहने से वह जिस किसी तरह शान्त हो मन्दिर में शान्तिकर्म करती है। भगवान् का अभिषेक करती है। मनोवाञ्छित दान देती है।

अन्त में साहस जुटा कर प्रजा के प्रमुख लोग राम से सीता विषयक लोकनिन्दा का वर्णन करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि 'आप चूँकि रावण के द्वारा अपहृत सीता को घर लाये हैं इसलिए प्रजा में स्वच्छन्दता फैलने लगी है।' सुनकर राम का हृदय अत्यन्त खिन्न हो उठता है।

१६६-२०१

सन्तानबेवाँ पर्व

रामचन्द्र जी लक्ष्मण को बुलाकर सीता के अपवाद का समाचार सुनाते हैं। लक्ष्मण सुनते ही आगबबूला हो जाते हैं और दुष्टों को नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। वे सीता के शील की प्रशंसा कर राम के चित्त को प्रसन्न करना चाहते हैं। परन्तु राम लोकापवाद के भय से सीता का परित्याग करने का ही निश्चय करते हैं। सेनापति कृतान्तवक्त्र को बुलाकर उसके साथ सीता को जिनमन्दिरों के दर्शन कराने के बहाने अटवी में भेज देते हैं। अटवी में जाकर कृतान्तवक्त्र अपनी पराधीन वृत्ति पर बहुत पश्चात्ताप करता है। गंगानदी के उस पार जाकर सेनापति कृतान्तवक्त्र सीता को राम का आदेश सुनाता है। सीता वज्र से ताड़ित हुई के समान मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ती है। सचेत होने पर आत्मनिरीक्षण करती हुई राम को सन्देश देती है कि जिस तरह लोकापवाद के भय से आपने मुझे छोड़ा इस तरह जिनधर्म को नहीं छोड़ देना। सेनापति वापस आ जाता है। सीता विलाप करती है कि उसी समय पुण्डरीकपुर का राजा वज्रजंघ सेना सहित वहाँ से निकलता है और सीता का विलाप सुन उसकी सेना वहीं रुक जाती है।

२०२-२१६

अठानबेवाँ पर्व

सेना को रुकी देख वज्रजंघ उसका कारण पूछता है। जब तक कुछ सैनिक सीता के पास जाते हैं तब तक वज्रजंघ स्वयं पहुँच जाता है। सैनिकों को देख सीता भय से काँपने लगती है। उन्हें चोर समझ आभूषण देने लगती है पर वे सान्त्वना देकर राजा वज्रजंघ का परिचय देते हैं। सीता उन्हें अपना सब वृतान्त सुनाती है और वज्रजंघ उसे धर्मबहिन स्वीकृत कर सान्त्वना देता है।

२१७-२२४

निन्यानबेवाँ पर्व

सुसज्जित पालकी में बैठकर सीता पुण्डरीकपुर पहुँचती है। भयंकर अटवी को पार करने में उसे तीन दिन लग जाते हैं। वज्रजंघ बड़ी विनय और श्रद्धा के साथ सीता को अपने यहाँ रखता है। ...कृतान्तवक्त्र सेनापति सीता को वन में छोड़ जब अयोध्या पहुँचता है तो राम उससे सीता का सन्देश पूछते हैं। सेनापति सीता का सन्देश सुनाता है कि—जिस तरह आपने लोकापवाद के भय से मुझे छोड़ा है उस तरह जिनेन्द्र देव की भक्ति नहीं छोड़ देना...। वन की भीषणता और सीता की गर्भदशा का विचार कर राम बहुत दुःखी होते हैं। लक्ष्मण आकर उन्हें समझाते हैं।

२२५-२३३

सौवाँ पर्व

वज्रजंघ के राजमहल में सीता की गर्भावस्था का वर्णन। नौ माह पूर्ण होने के बाद सीता के गर्भ से अनंगलवण और मदनाकुश की उत्पत्ति होती है। इन पुण्यशाली पुत्रों की पुण्य महिमा से राजा वज्रजंघ का वैभय निरन्तर वृद्धिगत होने लगता है। सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक दोनों पुत्रों को विद्याएँ ग्रहण कराता है।

२३४-२४०

एक सौ एकवाँ पर्व

विवाह के योग्य अवस्था होने पर राजा वज्रजंघ अपनी रानी लक्ष्मी से उत्पन्न शशिचूला आदि बत्तीस पुत्रियाँ अनंगलवण को देने का निश्चय करता है और मदनाकुश के लिए योग्य पुत्री की तलाश में लग जाता है। वह बहुत कुछ विचार करने के बाद पृथिवीपुर के राजा की अमृतवती रानी के गर्भ से उत्पन्न कनकमाला नाम की पुत्री प्राप्त करने के लिए अपना दूत भेजता है। परन्तु राजा पृथु प्रस्ताव को अस्वीकृत कर इनको अपमानित करता है। इस घटना से वज्रजंघ रुष्ट होकर उसका देश उजाड़ना शुरू कर देता है। जब तक वह अपनी सहायता के लिए पौदन देश के राजा को बुलाता तब तक वज्रजंघ अपने पुत्रों को बुला लेता है। दोनों ओर से घनघोर युद्ध होता है। वज्रजंघ विजयी होता है और राजा पृथु अपनी पुत्री कनकमाला मदनाकुश के लिए दे देता है। विवाह के बाद दोनों वीर कुमार दिग्विजय कर अनेक राजाओं को आधीन करते हैं।

२४१-२४८

एक सौ दोवाँ पर्व

साक्षात्कार होने पर नारद अनंगलवण-मदनाकुश से कहते हैं कि तुम दोनों की विभूति राम और लक्ष्मण के समान हो। यह सुन कुमार राम और लक्ष्मण का परिचय पूछते हैं। उत्तरस्वरूप नारद उनका परिचय देते हैं। राम और लक्ष्मण का परिचय देते हुए नारद सीता के परित्याग का भी उल्लेख करते हैं। एक गर्भिणी स्त्री को असहाय निर्जन अटवी में छोड़वाना...राम की यह बात कुमारों को अनुकूल नहीं जँचती और वे राम से युद्ध करने का निश्चय कर बैठते हैं। इसी प्रकरण में सीता अपनी सब कथा पुत्रों को सुनाती है और कहती है कि तुम लोग अपने पिता तथा चाचा से नम्रता के साथ मिलो। परन्तु वीर कुमारों को यह दीनता रुचिकर नहीं लगती। वे सेना सहित जाकर अयोध्या को घेर लेते हैं तथा राम-लक्ष्मण के साथ उनका घोर युद्ध होने लगता है।

२४९-२६२

एक सौ तीनवाँ पर्व

राम और लक्ष्मण अमोघ शस्त्रों का प्रयोग करके भी जब दोनों कुमारों को नहीं जीत पाते हैं तब नारद की सम्मति से सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक राम-लक्ष्मण के समक्ष उनका रहस्य प्रकट करते हुए कहते हैं—अहो देव ! ये सीता के उदर से उत्पन्न आपके युगल पुत्र हैं। सुनते ही राम-लक्ष्मण शस्त्र फेंक देते हैं। पिता-पुत्र का बड़े सौहार्द से समागम होता है। राम-लक्ष्मण की प्रसन्नता का पार नहीं रहता।

२६३-२६६

एक सौ चारवाँ पर्व

हनूमान्, सुग्रीव तथा विभीषण की प्रार्थना पर राम सीता को इस शर्त पर बुलाना स्वीकार कर लेते हैं कि वह देश-देश के समस्त लोगों के समक्ष अपनी निर्दोषता शपथ द्वारा सिद्ध करे। निश्चयानुसार देश-विदेश के लोग बुलाये जाते हैं। हनूमान् आदि सीता को भी पुण्डरीकपुर से ले आते हैं। जब सीता राज-दरबार में राम के समक्ष पहुँचती तब राम तीक्ष्ण शब्दों द्वारा उसका तिरस्कार करते हैं। सीता सब प्रकार से अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए शपथ ग्रहण करती है। राम उसे अग्निप्रवेश की आज्ञा देते हैं। सर्वत्र हाहाकार छा जाता है पर राम अपने वचनों पर अडिग रहते हैं। अग्निकुण्ड तैयार होता है। महेन्द्रोदय उद्यान में सर्वभूषण मुनिराज के ध्यान और उपसर्ग का वर्णन...। विद्युद्वक्त्रा राक्षसी उनपर उपसर्ग करती है इसका वर्णन...उपसर्ग के अनन्तर मुनिराज को केवलज्ञान हो जाता है और उसके उत्सव के लिए वहाँ देवों का आगमन होता है।

२७०-२७८

एक सौ पाँचवाँ पर्व

तृण और काष्ठ से भरी वापिका देख राम व्याकुल होते हैं परन्तु लक्ष्मण कहते हैं कि आप व्यग्र न हों, सीता जी का माहात्म्य देखें। सीता पंच परमंष्टी का स्मरण कर अग्निवापिका में कूद पड़ती है। कूदते ही समस्त अग्नि जलरूप हो जाती है। वापिका का जल बाहर फैलकर उपस्थित जनता को प्लावित करने लगता है जिससे लोग घबरा जाते हैं। अन्त में राम के पादस्पर्श से बढ़ता हुआ जल शान्त हो जाता है। कमल-दल पर सीता आरूढ़ है। लवणांकुश उसके समीप पहुँच जाते हैं। रामचन्द्र जी अपने अपराध की क्षमा माँगकर घर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। परन्तु सीता संसार से विरक्त हो चुकी होती है इसलिए वह घर न जाकर पृथिवीमती आर्यिका के पास दीक्षा ले लेती है।...राम सर्वभूषण केवली के पास जाते हैं। केवली की दिव्य ध्वनि द्वारा धर्म का निरूपण। चतुर्गति के दुःखों का वर्णन श्रवण कर राम पूछते हैं कि भगवन् ! क्या मैं भव्य हूँ ? इसके उत्तर में केवली कहते हैं कि तुम भव्य हो और इसी भव से मोक्ष प्राप्त करोगे।

२७६-२६८

एक सौ छठवाँ पर्व

विभीषण के पूछने पर केवली द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता के भवान्तरों का वर्णन।

२६६-३१७

एक सौ सातवाँ पर्व

संसार-भ्रमण से विरक्त हो कृतान्तवक्त्र सेनापति राम से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगता है। राम उससे कहते हैं कि तुमने सेनापति-दशा में कभी किसी की वक्र दृष्टि सहन नहीं की अब मुनि होकर नीचजनों के द्वारा किया हुआ तिरस्कार कैसे सहोगे ? इसके उत्तर में सेनापति कहता है कि जब मैं आपके स्नेहरूपी रसायन को छोड़ने के लिए समर्थ हूँ तब अन्य कार्य असह्य कैसे हो सकते हैं ? राम उसकी प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि यदि तुम निर्वाण प्राप्त कर सको या देव होओ तो मोह में पड़े हुए मुझ को सम्बोधित करना न भूलना। सेनापति राम का आदेश पाकर दीक्षा ले लेता है। सर्वभूषण केवली का जब विहार हो जाता है तब राम सीता के पास जाकर उसकी कठिन तपश्चर्या पर आश्चर्य प्रकट करते हैं।

३१८-३२३

एक सौ आठवाँ पर्व

श्रेणिक के प्रश्न करने पर इन्द्रभूति गणधर सीता के दोनों पुत्रों लवण और अंकुश का चरित कहते हैं।

३२४-३२७

एक सौ नौवाँ पर्व

सीता बासठ वर्ष तप कर अन्त में तैंतीस दिन की सल्लेखना धारण कर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र होती है। अच्युत स्वर्ग के तत्कालीन इन्द्र राजा मधु का वर्णन।

३२८-३४१

एक सौ दसवाँ पर्व

कांचन नामक नगर के राजा कांचनरथ की दो पुत्रियाँ—मन्दाकिनी और चन्द्रभाग्या जब स्वयंवर में क्रम से अनंगलवण और मदनांकुश को वर लेती हैं तब लक्ष्मण के पुत्र उत्तेजित हो जाते हैं परन्तु

लक्ष्मण की आठ पट्टरानियों के आठ प्रमुख पुत्र उन्हें समझाकर शान्त करते हैं और स्वयं संसार से विरक्त हो दीक्षा धारण कर लेते हैं।

३४२-३४६

एक सौ ग्यारहवाँ पर्व

वज्रपात से भामण्डल की मृत्यु का वर्णन।

३५०-३५१

एक सौ बारहवाँ पर्व

ग्रीष्म, वर्षा और शीत ऋतु के अनुकूल राम-लक्ष्मण के भोगों का वर्णन। वसन्त ऋतु के आगमन से संसार में आनन्द छा गया है। हनूमान् अपनी स्त्री के साथ मेरु पर्वत की वन्दना के लिए जाते हैं। अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन कर जब वह भरतक्षेत्र को वापस लौट रहा थे तब आकाश में विलीन होती हुई उल्का को देखकर वह संसार से विरक्त हो जाते हैं।

३५२-३५६

एक सौ तेरहवाँ पर्व

हनूमान् की विरक्ति का समाचार सुनते ही उनके मन्त्रियों तथा स्त्रियों में भारी शोक छा जाता है। सबने भरसक प्रयत्न किया कि ये दीक्षा न लें परन्तु हनूमान् अपने ध्येय से विचलित नहीं होते और वे धर्मरत्न नामक मुनिराज के पास दीक्षा धारण कर लेते हैं तथा अन्त में निर्वाणगिरि नामक पर्वत से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

३६०-३६३

एक सौ चौदहवाँ पर्व

लक्ष्मण के आठ कुमारों और हनूमान् की दीक्षा का समाचार सुन श्रीराम यह कहते हुए हँसते हैं कि अरे ! इन लोगों ने क्या भोग भोग ? सौधर्मन्द्र अपनी सभा में स्थित देवों को धर्म का उपदेश देता हुआ कहता है कि सब बन्धनों में स्नेह का बन्धन सुदृढ़ बन्धन है, इसका टूटना सरल नहीं।

३६४-३६८

एक सौ पन्द्रहवाँ पर्व

राम और लक्ष्मण के स्नेह-बन्धन की परख करने के लिए स्वर्ग से दो देव अयोध्या आये हैं और विक्रिया से झूठा रुदन दिखाकर लक्ष्मण से कहते हैं कि 'राम की मृत्यु हो गयी'। यह सुनते ही लक्ष्मण का शरीर निष्प्राण हो गया। अन्तःपुर में कुहराम छा गया। राम दौड़े आये परन्तु लक्ष्मण के निर्गत प्राण वापस नहीं आये। देव अपनी करनी पर पश्चात्ताप करते हुए वापस चले जाते हैं। इस घटना से लवण ओर अंकुश विरक्त हो दीक्षित हो जाते हैं।

३६६-३७३

एक सौ सोलहवाँ पर्व

लक्ष्मण के निष्प्राण शरीर को राम गोदी में लिये फिरते हैं। पागल की भाँति करुण विलाप करते हैं।

३७४-३७७

एक सौ सत्रहवाँ पर्व

लक्ष्मण के मरण का समाचार सुन सुग्रीव तथा विभीषण आदि अयोध्या आते हैं और संसार की स्थिति का वर्णन करते हुए राम को समझाते हैं।

३७८-३८१

एक सौ अठारहवाँ पर्व

सुग्रीव आदि, लक्ष्मण का दाह संस्कार करने की प्रेरणा देते हैं परन्तु राम उनसे कुपित हो लक्ष्मण को लेकर अन्यत्र चले जाते हैं। राम, लक्ष्मण के शव को नहलाते हैं, भोजन कराने का प्रयत्न करते हैं और चन्दनादि के लेप से अलंकृत करते हैं। इसी दशा में दक्षिण के कुछ विरोधी राजा अयोध्या पर आक्रमण की सलाह कर बड़ी भारी सेना ले आ पहुँचते हैं परन्तु राम के पूर्व भव के स्नेही सेनापति कृतान्तवक्त्र और जटायु के जीव जो स्वर्ग में देव हुए थे आकर इस उपद्रव को नष्ट कर देते हैं। शत्रुकृत उपद्रव को दूर कर दोनों नाना उपायों से राम को सम्बोधित हैं जिससे राम छह माह के बाद लक्ष्मण के शव का दाह-संस्कार कर देते हैं।

३८२-३९१

एक सौ उन्नीसवाँ पर्व

राम संसार से विरक्त हो शत्रुघ्न को राज्य देना चाहते हैं परन्तु वह लेने से इनकार कर देता है। तब पुत्र अनंगलवण को राज्य भार सौंपकर निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर लेते हैं। उसी समय विभीषण आदि भी अपने अपने पुत्रों को राज्य दे दीक्षा धारण करते हैं।

३९२-३९६

एक सौ बीसवाँ पर्व

महामुनि रामचन्द्र जी चर्या के लिए नगरी में आते हैं किन्तु नगरी में अद्भुत प्रकार का क्षोभ हो जाने से वे विना आहार किये ही वन को लौट जाते हैं।

३९७-४००

एक सौ इक्कीसवाँ पर्व

मुनिराज राम पाँच दिन का उपवास लेकर यह नियम ले लेते हैं कि यदि वन में आहार मिलेगा तो ग्रहण करेंगे अन्यथा नहीं। राजा प्रतिनन्दी और रानी प्रभवा वन में ही उन्हें आहार देकर अपना गृहस्थ जीवन सफल करते हैं।

४०१-४०३

एक सौ बाईसवाँ पर्व

राम तपश्चर्या में लीन हैं। सीता का जीव अच्युत स्वर्ग का प्रतीन्द्र जब अवधिज्ञान से यह जानता है कि ये इसी भव से मोक्ष जानेवाले हैं तब प्रीतिवश उन्हें विचलित करने का प्रयत्न करता है। परन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। महामुनि राम क्षपकश्रेणी प्राप्त कर केवली हो जाते हैं।

४०४-४०९

एक सौ तेईसवाँ पर्व

सीता का जीव प्रतीन्द्र नरक में जाकर लक्ष्मण के जीव को सम्बोधता है। धर्मोपदेश देता है। उसके दुःख से दुःखी होता है तथा उसे नरक से निकालने का प्रयत्न करता है परन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ जाता है।...नरक से निकलकर यह केवली राम की शरण में जाता है और उनसे दशरथ का जीव कहाँ उत्पन्न हुआ है ? भामण्डल का क्या हाल है ? लक्ष्मण तथा रावण आदि का आगे क्या हाल होगा ? यह सब पूछता है। केवली राम अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा उसका समाधान करते हैं। केवली राम निर्वाण प्राप्त करते हैं।...अन्त में ग्रन्थकर्ता रविषेणाचार्य अपनी प्रशस्ति लिखते हैं।

४१०-४२५

श्रीमद्‌रविषेणाचार्यप्रणीतं

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षट्षष्टितमं पर्व

अथ लक्ष्मीधरं स्वन्तं विशल्याचरितोचितम् । चारेभ्यो रावणः श्रुत्वा जज्ञे विस्मयमस्सरी ॥१॥
जगाद् च स्मितं कृत्वा को दोष इति मन्दगीः । ततोऽगादि मृगाङ्गाद्यैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः ॥२॥
यथार्थं भाष्यसे देव ! सुपथ्यं कुप्य तुप्य वा । परमार्थो हि निर्भोकरूपदेशोऽनुजीविभिः ॥३॥
सैहगारुडविद्ये तु रामलक्ष्मणयोस्त्वया । दष्टे यत्नाद्विना लब्धे पुण्यकर्मानुभावतः ॥४॥
बन्धनं कुम्भकर्णस्य दष्टमात्मजयोस्तथा । शक्तेरनर्थकत्वं च दिव्यायाः परमौजसः ॥५॥
सम्भाव्य सम्भवं शत्रुस्त्वया जीयेत यद्यपि । तथापि भ्रानुपुत्राणां विनाशस्तव निश्चितः ॥६॥
इति ज्ञात्वा प्रसादं नः कुरु नाथाभियाचितः । अस्मदीयं हितं वाक्यं भग्नं पूर्वं न जातुचित् ॥७॥
त्यज सोतां भजाःमीयां धर्मबुद्धिं पुरातनीम् । कुशली जायतां लोकः सकलः पालितस्त्वया ॥८॥
राघवेण समं सन्धिं कुरु सुन्दरभाषितम् । एवं कृते न दोषोऽस्ति दृश्यते तु महागुणः ॥९॥
भवता परिपाल्यन्ते मर्यादाः सर्वविष्टपे । धर्माणां प्रभवस्त्वं हि रत्नानामिव सागरः ॥१०॥

अथानन्तर रावण, गुप्तचरोंके द्वारा विशल्याके चरितके अनुरूप लक्ष्मणका स्वस्थ होना आदि समाचार सुन आश्चर्य और ईर्ष्या दोनोंसे सहित हुआ तथा मन्द हास्य कर धीमी आवाज से बोला कि क्या हानि है ? तदनन्तर मन्त्र करनेमें निपुण मृगाङ्क आदि मन्त्रियोंने उससे कहा ॥१-२॥ कि हे देव ! यथार्थ एवं हितकारी बात आपसे कहता हूँ आप कुपित हो चाहें संतुष्ट । यथार्थमें सेवकोंको निर्भोक्त हो कर हितकारी उपदेश देना चाहिए ॥३॥ हे देव ! आप देख चुके हैं कि राम-लक्ष्मणको पुण्य कर्मके प्रभावसे यज्ञके विना ही सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याएँ प्राप्त हो चुकी हैं ॥४॥ आपने यह भी देखा है कि उनके यहाँ भाई कुम्भकर्ण तथा दो पुत्र बन्धनमें पड़े हैं तथा परम तेजकी धारक दिव्य शक्ति व्यर्थ हो गई है ॥५॥ संभव है कि यद्यपि आप शत्रुको जीत लें तथापि यह निश्चित समझिए कि आपके भाई तथा पुत्रोंका विनाश अवश्य हो जायगा ॥६॥ हे नाथ ! हम सब याचना करते हैं कि आप यह जान कर हम पर प्रसाद करो—हम सब पर प्रसन्न हूजिए । आपने हमारे हितकारी वचनको पहले कभी भग्न नहीं किया ॥७॥ सोताको छोड़ो और अपनी पहले जैसी धर्मबुद्धिकी धारण करो । तुम्हारे द्वारा पालित समस्त लोग कुशल-मंगलसे युक्त हों ॥८॥ रामके साथ सन्धि तथा मधुर वार्तालाप करो क्योंकि ऐसा करनेमें कोई हानि नहीं दिखाई देती अपितु बहुत लाभ ही दिखाई देता है ॥९॥ समस्त संसारकी मर्यादाएँ आपके ही द्वारा सुरक्षित हैं—आप ही सब मर्यादाओंका पालन

इत्युक्त्वा प्रणता वृद्धाः शिरःस्थकरकुडूमलाः । उत्थोप्य सम्भ्रमाच्चैतांस्तथेत्यूचे दशाननः ॥११॥
 मन्त्रविद्भिस्ततस्तुष्टैः सन्दिदष्टोऽयन्तशोभनः । द्रुतं गमीकृतो दूतः सामन्तो नयकाविदः ॥१२॥
 तं निमेषेक्षिताकृतपरिबोधविचक्षणम् । रावणः संज्ञया स्वस्मै रुचितं द्रागजिग्रहत ॥१३॥
 दूतस्य मन्त्रिसन्दिष्टं नितान्तमपि सुन्दरम् । महौषधं विषेणैव रावणार्थेन दूषितम् ॥१४॥
 अथ शुक्रसमो बुद्धया महौजस्कः प्रतापवान् । कृतवाक्यो नृपैर्भूयः श्रुतिपेशलभाषणः ॥१५॥
 प्रणम्य स्वामिनं तुष्टः सामन्तो गन्तुमुद्यतः । बुद्धयवष्टम्भतः पश्यन् लोकं गोष्पदसम्मितम् ॥१६॥
 गच्छतोऽस्य बलं भीमं नानाशस्त्रसमुज्ज्वलम् । बुद्धेयव निर्मितं तस्य बभूव भयवर्जितम् ॥१७॥
 तस्य तूर्यरवं श्रुत्वा क्षुब्धा वानरसैनिकाः । खमीचाञ्चकिरे भीता रावणागमशङ्किनः ॥१८॥
 तस्मिन्नासन्नतां प्राप्ते पुरुषान्तरवेदिते । विप्रबधतां पुनर्भजे बलं प्लवगलक्षणम् ॥१९॥
 दूतः प्राप्नो विदेहाजप्रतीहारनिवेदितः । आसौः कतिपर्यैः साकं बाह्यावासितसैनिकः ॥२०॥
 दृष्ट्वा पदमं प्रणम्यासौ कृतदूतोचितक्रियः । जगौ क्षणमिव स्थित्वा वचनं क्रमसङ्गतम् ॥२१॥
 पद्म ! मद्बचनैः स्वामी भवन्तमिति भाषते । ओत्रावधानदानेन प्रयत्नः क्रियतां क्षणम् ॥२२॥
 यथा किल न युद्धेन किञ्चिदत्र प्रयोजनम् । बहवो हि ह्यं प्राप्ता नरा युद्धाभिमानिनः ॥२३॥

करते हैं । यथार्थमें जिस प्रकार समुद्र रत्नोंकी उत्पत्तिका कारण है उसी प्रकार आप धर्मोंकी उत्पत्तिके कारण हैं ॥१०॥ इतना कह बुद्ध मन्त्रीजनोंने शिरपर अञ्जलि बाँधकर रावणको नमस्कार किया और रावणने शीघ्रतासे उन्हें उठाकर कहा कि आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही करूँगा ॥११॥

तदनन्तर मन्त्रके जाननेवाले मन्त्रियोंने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त शोभायमान एवं नीति-निपुण सामन्तको सन्देश देकर शीघ्र ही दूतके रूपमें भेजनेका निश्चय किया ॥१२॥ वह दूत दृष्टिके संकेतसे अभिप्रायके समझनेमें निपुण था इसलिए रावणने उसे संकेत द्वारा अपना रुचिकर सन्देश शीघ्र ही ग्रहण करा दिया—अपना सब भाव समझा दिया ॥१३॥ मन्त्रियोंने दूतके लिए जो सन्देश दिया था वह यद्यपि बहुत सुन्दर था तथापि रावणके अभिप्रायने उसे इस प्रकार दूषित कर दिया जिस प्रकार कि विष किसी महौषधिको दूषित कर देता है ॥१४॥ तदनन्तर जो बुद्धिके द्वारा शुक्राचार्यके समान था, महा ओजस्वी था, प्रतापी था, राजा लोग जिसकी बात मानते थे और जो कर्णप्रिय भाषण करनेमें निपुण था, ऐसा सामन्त सन्तुष्ट हो स्वामीको प्रणाम कर जानेके लिए उद्यत हुआ ! वह सामन्त अपनी बुद्धिके बलसे समस्त लोकको गोष्पदके समान तुच्छ देखता था ॥१५-१६॥ जब वह जाने लगा तब नाना शस्त्रोंसे देदीप्यमान एक भयङ्कर सेना जो उसकी बुद्धिसे ही मानो निर्मित थी, निर्मय हो उसके साथ हो गई ॥१७॥

तदनन्तर दूतकी तुरहीका शब्द सुनकर वानर पक्षके सैनिक लुभित हो गये और रावणके आनेकी शङ्का करते हुए भयभीत हो आकाशकी ओर देखने लगे ॥१८॥ तदनन्तर वह दूत जब निकट आ गया और यह रावण नहीं किन्तु दूसरा पुरुष है, इसप्रकार समझमें आ गया तब वानरोंकी सेना पुनः निश्चिन्तताको प्राप्त हुई ॥१९॥ तदनन्तर भामण्डलरूपी द्वारपालने जिसकी खबर दी थी तथा डेरेके बाहर जिसने अपने सैनिक ठहरा दिये थे, ऐसा वह दूत कुछ आप्तजनोंके साथ भीतर पहुँचा ॥२०॥ वहाँ उसने रामके दर्शनकर उन्हें प्रणाम किया । दूतके योग्य सब कार्य किये । तदनन्तर क्षणभर ठहर कर क्रमपूर्ण निम्नाङ्कित वचन कहे ॥२१॥ उसने कहा कि हे पद्म ! मेरे वचनों द्वारा स्वामी रावण, आपसे इस प्रकार कहते हैं सो आप कर्णोंको एकाग्रकर क्षणभर श्रवण करनेका प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ वे कहते हैं कि मुझे इस विषयमें युद्धसे कुछ भी प्रयोजन

प्रायैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षयः । असिद्धिश्च महान् दोषः सापवादाश्च सिद्धयः ॥२४॥
 दुर्वृत्तो नरकः शङ्को धवलाङ्गोऽसुरस्तथा । निधनं शम्बराद्याश्च सङ्ग्रामश्रद्धया गताः ॥२५॥
 प्रीतिरेव मया सार्द्धं भवते नितरां हिता । ननु सिंहो गुहां प्राप्य महाद्रेर्जायते सुखी ॥२६॥
 महेन्द्रदमनो येन समरेऽमरभोषणः । सुन्दरीजनसामान्यं वन्दीगृहसुपाहतः ॥२७॥
 पाताले भूतले व्योमिन् गतिर्यस्येच्छया कृता । सुरासुरैरपि क्रुद्धैः प्रतिहन्तुं न शक्यते ॥२८॥
 नानानेकमहायुद्धवीरलक्ष्मीस्त्रयंमही । सोऽहं दशाननो जातु भवता किं तु न श्रुतः ॥२९॥
 सागरान्तां महींमेतां विद्याधरसमन्विताम् । लङ्कां भागद्वयोपेतां राजन्नेव ददामि ते ॥३०॥
 अथ मे सोदरं प्रेष्ये^१ तनयौ च सुमानसः । अनुमन्यस्व^२ सीतां च ततः क्षेमं भविष्यति ॥३१॥
 न चेदे^३ करोषि त्वं ततस्ते कुशलं कुतः । एतैश्च समरे बद्धानानेष्यामि बलादहम् ॥३२॥
 पद्मनाभस्ततोऽवोचन्न मे राज्येन कारणम् । न चान्यप्रसदाजेन भोगेन महताऽपि हि ॥३३॥
 एष प्रेष्यामि ते पुत्रौ भ्रातरं च दशानन । सम्प्राप्य परमां पूजां सीतां प्रेष्यासि मे यदि ॥३४॥
 एतथा सहितोऽरण्ये मृगतामान्यगोचरे । यथासुखं भ्रमिष्यामि महीं त्वं भुङ्क्व पुष्कलाम् ॥३५॥
 गत्स्वैवं ब्रूहि दूत त्वं तं लङ्कापरमेस्वरम् । एतदेव हि पथं ते कर्तव्यं नान्यथाविधम् ॥३६॥
 सन्नैः प्रपूजितं श्रुत्वा पद्मनाभस्य तद्वचः । सौष्टवेन सनायुक्तं सामन्तो वचनं जगौ ॥३७॥
 न वेत्सि नृपते^४ कार्यं बहुकल्याणकारणम् । नतुल्लङ्घ्याम्बुधिं भीममागतोऽसि भयोऽिभक्तः ॥३८॥

नहीं है क्योंकि युद्धका अभिमान करनेवाले बहुतसे मनुष्य क्षयको प्राप्त हो चुके हैं ॥२३॥ कार्यकी उत्तम सिद्धि प्रीतिसे ही होती है, युद्धसे तो केवल नरसंहार ही होता है, युद्धमें यदि सफलता नहीं मिली तो यह सबसे बड़ा दोष है और यदि सफलता मिलती भी है तो अनेक अपवादोंसे सहित मिलती है ॥२४॥ पहले युद्धकी श्रद्धासे दुर्वृत्त, नरक, शङ्क, धवलाङ्ग तथा शम्बर आदि राजा विनाशको प्राप्त हो चुके हैं ॥२५॥ हमारे साथ प्रीति करना ही आपके लिए अत्यन्त हितकारी है, यथार्थमें सिंह महापर्वतकी गुफा पाकर ही सुखी होता है ॥२६॥ युद्धमें देवोंको भय उत्पन्न करने वाले राजा इन्द्रको जिसने सामान्य स्त्रियोंके योग्य वन्दीगृहमें भेजा था ॥२७॥ पाताल, पृथिवीतल तथा आकाशमें स्वेच्छासे की हुई जिसकी गतिको, कुपित हुए सुर और असुर भी खण्डित करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥२८॥ नाना प्रकारके अनेक महायुद्धोंमें वीर लक्ष्मीको स्वयं ग्रहण करने वाला मैं रावण क्या कभी आपके सुननेमें नहीं आया ॥२९॥ हे राजन् ! मैं विद्याधरोंसे सहित यह समुद्र पर्यन्तकी समस्त पृथिवी और लङ्काके दो भाग कर एक भाग तुम्हारे लिए देता हूँ ॥३०॥ तुम आज अच्छे हृदयसे मेरे भाई तथा पुत्रोंको भेजकर सीता देना स्वीकृत करो, उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥३१॥ यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो तुम्हारी कुशलता कैसे हो सकती है ? क्योंकि सीता तो हमारे पास है ही और युद्धमें बाँधे हुए भाई तथा पुत्रोंको हम बलपूर्वक छीन लावेंगे ॥३२॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि मुझे राज्यसे प्रयोजन नहीं है और न अन्य स्त्रियों तथा बड़े-बड़े भोगों से मतलब है ॥३३॥ यदि तुम परम सत्कारके साथ सीताको भेजते हो तो हे दशानन ! मैं तुम्हारे भाई और दोनों पुत्रोंको अभी भेज देता हूँ ॥३४॥ मैं इस सीताके साथ मृगादि जन्तुओंके स्थानभूत वनमें सुखपूर्वक भ्रमण करूँगा और तुम समग्र पृथिवीका उपभोग करो ॥३५॥ हे दूत ! तू जाकर लङ्काके धनीसे इस प्रकार कह दे कि यही कार्य तेरे लिए हितकारी है, अन्य कार्य नहीं । ३६॥ सन्नैके द्वारा पूजित तथा सुन्दरतासे युक्त रामके वे वचन सुन सामन्त दूत इस प्रकार बोला कि ॥३७॥ हे राजन् ! यतश्च तुम भयङ्कर समुद्रको लौंघ कर निर्भय हो यहाँ

न शोभना नितान्तं ते प्रत्याशा जानकीं प्रति । लङ्केन्द्रे सङ्गते कोपं त्यजाऽऽशामपि जीविते ॥३१॥
 नरेण सर्वथा स्वस्य कर्त्तव्यं बुद्धिशालिना । रक्षणं सततं यत्नाद्द्वारैरपि धनैरपि ॥३०॥
 प्रेषितं तार्क्ष्यनाथेन यदि वाहनयुग्मकम् । यदि वा क्षिप्रतो बद्धा मम पुत्रसहोदराः ॥३१॥
 तथाऽपि नाम कोऽमुष्मिन् गर्वस्तव समुद्यतः । नैतावता कृतिश्वं ते मयि जीवति जायते ॥३२॥
 विग्रहे कुर्वतो यत्नं न ते सीता न जीवितम् । मा भूरुभयतो भ्रष्टः यज सीतानुबन्धिताम् ॥३३॥
 लब्धवर्णाः समस्तेषु शास्त्रेषु परमेश्वराः । सुरेन्द्रप्रतिमाः नीताः खेचरा निधनं मया ॥३४॥
 परयाष्टापदकूटानिनिमान् कैकससञ्जयान् । उपेयुषां क्षयं राज्ञां मदीयभुजवीर्यतः ॥३५॥
 इति प्रभाषिते दूते क्रोधतो जनकात्मजः । जगाद् विस्फुरद्बक्रज्योतिर्ज्वलितपुष्करः ॥३६॥
 आः पाप दूत गोसायो ! वाक्यसंस्कारकूटक । दुर्बुद्धे भापसे व्यर्थं किमित्येवमशङ्कितः ॥३७॥
 सीतां प्रति कथा केयं पद्माधिष्ठेपमेव वा । को नाम रावणो रक्षः पशुः कुत्सितचेष्टितः ॥३८॥
 इत्युक्त्वा सायकं यावज्जग्राह जनकात्मजः । केकयीसूनुना तावन्निरुद्धो नयच्छ्रुषा ॥३९॥
 रक्षोरपलदलच्छाये नेत्रे जनकजन्मनः । कोपेन दूषिते जाते सन्ध्याकारानुहारिणी ॥४०॥
 स्वैरं स मन्त्रिभिर्नीतः शमं साधूपदेशतः । मन्त्रेणेव महासर्पः स्फुरद्विषकणद्युतिः ॥४१॥
 नरेन्द्र ! त्यज संरम्भं समुद्रतमगोचरे । अनेन भारितेनापि कोऽर्थः प्रेषणकारिणा ॥४२॥

आये हो इससे जान पड़ता है कि तुम कहकल्याणकारी कार्यको नहीं जानते हो ॥३२॥ सीताके प्रति तुम्हारी आशा झिलकल ही अच्छी नहीं है । अथवा सीताकी बात दूर रही, रावणके कुपित होनेपर अपने जीवनकी भी आशा छोड़ो ॥३३॥ बुद्धिमान् मनुष्यको अपने आपको रक्षा सदा स्त्रियों और धनके द्वारा भी सब प्रकारसे करना चाहिए ॥३४॥ यदि गरुडेन्द्रने तुम्हें दो वाहन भेज दिये हैं अथवा छल पूर्वक तुमने मेरे पुत्रों और भाईको बाँध लिया है तो इतनेसे तुम्हारा यह कौन-सा बड़ा-चढ़ा अहंकार है ? क्योंकि मेरे जीवित रहते हुए इतने मात्रसे तुम्हारी कृत-कृत्यता नहीं हो जाती ॥३५-३६॥ युद्धमें यत्न करने पर न सीता तुम्हारे हाथ लगेगी और न तुम्हारा जीवन ही शेष रह जायगा । इसलिए दोनों ओरसे भ्रष्ट न होओ सीता सम्बन्धी दृष्ट छोड़ो ॥३७॥ समस्त शास्त्रोंमें निपुण इन्द्र जैसे बड़े-बड़े विद्याधर राजाओंको मैंने मृत्यु प्राप्त करा दी है ॥३८॥ मेरी भुजाओंके बलसे क्षयको प्राप्त हुए राजाओंके जो ये कैलासके शिखरके समान हड्डियोंके ढेर लगे हुए हैं इन्हें देखो ॥३९॥

इस प्रकार दूतके कहने पर, सुखकी देदीप्यमान ज्योतिसे आकाशको प्रज्वलित करता हुआ भामण्डल क्रोधसे बोला कि अरे पापी ! दूत ! शृगाल ! बातें बनानेमें निपुण ! दुर्बुद्ध ! इस तरह व्यर्थ ही निःशंक हो, क्यों बके जा रहा है ॥४०-४१॥ सीताकी तो चर्चा ही क्या है ? रामकी निन्दा करनेके विषयमें नीच चेष्टाका धारी पशुके समान नीच राजस रावण है ही कौन ? ॥४२॥ इतना कहकर ज्योंही भामण्डलने तलवार उठाई त्योंही नीति रूपी नेत्रके धारक लक्ष्मणने उसे रोक लिया ॥४३॥ भामण्डलके जो नेत्र लाल कमलदलके समान थे वे क्रोधसे दूषित हो सन्ध्याका आकार धारण करते हुए दूषित हो गये—सन्ध्याके समान लाल-लाल दिखने लगे ॥४४॥ तदनन्तर जिस प्रकार विषकणोंकी कान्तिको प्रकट करनेवाला महासर्प मन्त्रके द्वारा शान्त किया जाता है उसी प्रकार वह भामण्डल मन्त्रियोंके द्वारा उत्तम उपदेशसे धीरे-धीरे शान्तिको प्राप्त कराया गया ॥४५॥ मन्त्रियोंने कहा कि हे राजन् ! अयोग्य विषयमें प्रकट हुए क्रोधको छोड़ो । इस दूतको यदि मार भी डाला तो इससे कौनसा प्रयोजन

प्रावृषेण्यघनाकारगजमर्दनपण्डितः । नाखौ संकोभमायाति सिंहः प्रचलकेसरः ॥५३॥
 प्रतिशब्देषु कः कोपः ज्ञायापुरुषकेऽपि वा । तिर्यक्षु वा शुकाद्येषु यन्त्रबिम्बेषु वा सताम् ॥५४॥
 लक्ष्मणेनैवमुक्तोऽसौ शान्तोऽभूज्जनकारमजः । अभ्यधाञ्च पुनर्दूतः पद्मं साध्वसवर्जितः ॥५५॥
 सचिवापसदैर्भूयः सम्प्रमूढैस्त्वमीदृशैः । संयोज्यसे दुरुद्योगैः संशये दुर्विदग्धकैः ॥५६॥
 प्रतार्यमाणमात्मानं प्रबुद्धयस्व त्वमेतकैः । निरूपय हितं स्वस्य स्वयं बुद्ध्या प्रवीणया ॥५७॥
 त्वज सीतासमासङ्गं भवेन्द्रः सर्वविष्टपे । भ्रम पुष्पकमारुढो यथेष्टं विभवान्वितः ॥५८॥
 मिथ्याग्रहं विमुञ्चस्व मा भ्रूषीः क्षुद्रभाषितम् । करणाय मनो दस्त्व भृशमेधि महासुखम् ॥५९॥
 क्षुद्रस्योत्तरमेतस्य को ददातीति जानके^१ । तूष्णीं स्थितेऽथ दूतोऽस्वावन्चैर्निर्मलितः परम् ॥६०॥
 स विद्धो वाक्शरैस्तीक्ष्णैरसत्कारमलं श्रितः । जगाम स्वामिनः पार्श्वे मनस्वत्यन्तपोदितः ॥६१॥
 स उवाच तवाऽऽदेशाज्ञाथ रामो मयोदितः । क्रमेण नयविन्यासकारिणा त्वत्प्रभावतः ॥६२॥
 नानाजनपदार्काणांमाकूपारनिवारिताम् । बहुरत्नाकरां क्षोर्णीं विद्याभृत्यसमन्विताम् ॥६३॥
 ददामि ते महानागांस्तुरगांश्च रथांस्तथा । कामगं पुष्पकं यानमप्रष्टुष्यं सुरैरपि ॥६४॥

सिद्ध होनेवाला है ? ॥५२॥ वर्षाऋतुके मेघके समान विशाल हाथियोंके नष्ट करनेमें निपुण चञ्चल केसरीवाला सिंह चूहे पर क्षोभको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ प्रतिध्वनियों पर, लकड़ी आदिके बने पुरुषाकार पुतलों पर, सुआ आदि तिर्यञ्चों पर और यन्त्रसे चलनेवाली मनुष्याकार पुतलियों पर सत्पुरुषोंका क्या क्रोध करना है ? अर्थात् इस दूतके शब्द निजके शब्द नहीं हैं ये तो रावणके शब्दोंकी मानो प्रतिध्वनि ही हैं । यह दीन पुरुष नहीं है, पुरुष तो रावण है और यह उसका आकार मात्र पुतला है, जिस प्रकार सुआ आदि पत्तियोंकी जैसा पढ़ा दो वैसा पढ़ने लगता है । इसी प्रकार इस दूतको रावणने जैसा पढ़ा दिया वैसा पढ़ रहा है और कठ-पुतली जिस प्रकार स्वयं चेष्टा नहीं करती उसी प्रकार यह भी स्वयं चेष्टा नहीं करता—मालिककी इच्छानुसार चेष्टा कर रहा है अतः इसके ऊपर क्या क्रोध करना है ? ॥५४॥ इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर भामण्डल शान्त हो गया । तदनन्तर निर्भय हो उस दूतने रामसे पुनः कहा कि ॥५५॥ तुम इस प्रकार मूर्ख नीच मन्त्रियोंके द्वारा अविवेकपूर्ण दुष्प्रवृत्तियोंसे संशयमें डाले जा रहे हो अर्थात् खेद है कि तुम इन मन्त्रियोंकी प्रेरणासे व्यर्थ ही अविचारित रम्य प्रवृत्ति कर अपने आपको संशयमें डाल रहे हो ॥५६॥ तुम इनके द्वारा छूले जानेवाले अपने आपको समझो और स्वयं अपनी निपुण बुद्धिसे अपने हितका विचार करो ॥५७॥ सीताका समागम छोड़ो, समस्त लोकके स्वामी होओ, और वैभवके साथ पुष्पक विमानमें आरूढ़ हो इच्छानुसार भ्रमण करो ॥५८॥ मिथ्या हठको छोड़ो, क्षुद्र मनुष्योंका कथन मत सुनो, करने योग्य कार्यमें मन लगाओ और इस तरह महा सुखी होओ ॥५९॥ तदनन्तर इस क्षुद्रका उत्तर कौन देता है ? यह सोचकर भामण्डल तो चुप बैठ रहा परन्तु अन्य लोगोंने उस दूतका अत्यधिक तिरस्कार किया—उसे खूब धौंस दिखायी ॥६०॥

अथानन्तर वचन रूपी तीक्ष्ण वाणोंसे विंथा और परम असत्कारको प्राप्त हुआ वह दूत मनमें अत्यन्त पीड़ित होता हुआ स्वामीके समीप गया ॥६१॥ वहाँ जाकर उसने कहा कि हे नाथ ! आपका आदेश पा आपके प्रभावसे नय-विन्याससे युक्त पद्धतिसे मैंने रामसे कहा कि मैं नाना देशोंसे युक्त, अनेक रत्नोंकी खानोंसे सहित तथा विद्याधरोंसे समन्वित समुद्रान्त पृथिवी, बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, रथ, देव भी जिसका तिरस्कार नहीं कर सकते ऐसा पुष्पक विमान, अपने-

१. नासौ म०, नखौ ज० । २. प्रतीर्यमाण-म० । ३. जनकस्यापत्यं पुमान् जानकः तस्मिन् भामण्डले इत्यर्थः । ४. क्षीणां म० । ५. विद्याभृत्यतान्विताम् म० ।

सहस्रत्रितयं स्यात्कन्यानां परिवर्णवत् । सिंहासनं रविच्छायं कृत्रं च शशिसन्निभम् ॥६५॥
 भज निष्कण्टकं राज्यं सीता यदि तवाऽऽज्ञया । मां वृणोति किमन्येन भाषितेनेह भूरिणा ॥६६॥
 वयं वेत्रासनेनैव सन्नुष्टाः स्वल्पवृत्तयः । भविष्यामो मनुक्तं चेत् करोषि सुविचक्षण ॥६७॥
 एवमादीनि वाक्यानि प्रोक्तोऽपि स मया मुहुः । सीताम्राहं न तन्निष्ठो मुञ्चते रघुनन्दनः ॥६८॥
 साधोरिवातिशान्तस्य चर्या सा तस्य भाषिता । अशक्यमोचनाः दानात् त्रैलोक्यस्यापि सुन्दरी ॥६९॥
 प्रवीत्येवं च रामस्वां यथा तव दशानन । न युक्तमीदृशं वक्तुं सर्वलोकविगर्हितम् ॥७०॥
 तवैवं भाषमाणस्य नृणामधमजन्मनः । रसनं न कथं यातं शतधा पापचेतसः ॥७१॥
 अपि देवेन्द्रभोगैर्मै न कृत्यं सीतया विना । भुंष्व त्वं पृथिवीं सर्वांमाश्रयिष्याम्यहं वनम् ॥७२॥
 पराङ्गनां समुद्दिश्य यदि त्वं मनुमुद्यतः । अहं पुनः कथं स्वस्याः प्रियाया न कृते तथा ॥७३॥
 सर्वलोकगताः कन्यास्त्वमेव भज सुन्दर । फलपर्णादिभोजी तु सीतयाऽमा भ्राम्याम्यहम् ॥७४॥
 शास्त्रामृगध्वजार्थीशस्वां प्रहस्याभणीदिदम् । यथा किल ग्रहेणाऽसौ भवत्स्वामी वशीकृतः ॥७५॥
 वायुना वाऽतिचण्डेन विप्रलापादिहेतुना । येनेदं विपरीतत्वं वराकः समुपागतः ॥७६॥
 नूनं न सन्ति लङ्कायां कुशला मन्त्रवादिनः । पक्ततैलादिवायेन क्रियते तन्निश्चितम् ॥७७॥
 आवेशं सायकैः कृत्वा चित्रं सङ्ग्राममण्डले । लक्ष्मीधरनरेन्द्रोऽस्य रुजः सर्वा हरिष्यति ॥७८॥
 ततो मया तदाक्रोशवह्निज्वलितचेतसा । शुना द्विप इवाक्रुष्टो वानरध्वजचन्द्रमाः ॥७९॥

अपने परिकरोंसे सहित तीन हजार सुन्दर कन्याएँ, सूर्यके समान कान्तिवाला सिंहासन और चन्द्रतुल्य कृत्र देता हूँ । अथवा इस विषयमें अन्य अधिक कहनेसे क्या ? यदि तुम्हारी आज्ञासे मुझे सीता स्वीकृत कर लेती है तो इस समस्त निष्कण्टक राज्यका सेवन करो ॥६२-६६॥ हे विद्वान् ! यदि हमारा कहा करते हो तो हम थोड़ी-सी आजीविका लेकर एक बेंतके आसनसे ही संतुष्ट हो जावेंगे ॥६७॥ इत्यादि वचन मैंने यद्यपि उससे बार-बार कहे तथापि वह सीताकी हठ नहीं छोड़ता है उसी एकमें उसकी निष्ठा लग रही है ॥६८॥ जिस प्रकार अत्यन्त शान्त साधुकी अपनी चर्या प्रिय होती है उसी प्रकार वह सीता भी रामको अत्यन्त प्रिय है । हे स्वामिन् ! आपका राज्य तो दूर रहा, तीन लोक भी देकर उस सुन्दरीको उससे कोई नहीं छुड़ा सकता ॥६९॥ और रामने आपसे इस प्रकार कहा है कि हे दशानन ! तुम्हें ऐसा सर्वजन निन्दित कार्य करना योग्य नहीं है ॥७०॥ इस प्रकार कहते हुए तुम्हें पापी नीच मनुष्यकी जिह्वाके सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गये ॥७१॥ मुझे सीताके बिना इन्द्रके भोगोंकी भी आवश्यकता नहीं है । तू समस्त पृथिवीका उपभोग कर और मैं वनमें निवास करूँगा ॥७२॥ यदि तू पर-स्त्रीके उद्देश्यसे मरनेके लिए उद्यत हुआ है तो मैं अपनी निजकी स्त्रीके लिए क्यों नहीं प्रयत्न करूँ ? ॥७३॥ हे सुन्दर ! समस्त लोकमें जितनी कन्याएँ हैं उन सबका उपभोग तुम्हीं करो, मैं तो फल तथा पत्तों आदिका खानेवाला हूँ, केवल सीताके साथ ही धूमता रहता हूँ ॥७४॥ दूत रावणसे कहता जाता है कि हे नाथ ! वानरोंके अधिपति सुग्रीवने तुम्हारी हँसी उड़ा कर यह कहा था कि जान पड़ता है तुम्हारा वह स्वामी किसी पिशाचके वशीभूत हो गया है ॥७५॥ अथवा बकवादका कारण जो अत्यन्त तीव्र वायु है उससे तुम्हारा स्वामी प्रस्त है । यही कारण है कि वह बेचारा इस प्रकार विपरीतताको प्राप्त हो रहा है ॥७६॥ जान पड़ता है कि लंकामें कुशल वैद्य अथवा मन्त्रवादी नहीं हैं अन्यथा पक्व तैलादि वायुहर पदार्थोंके द्वारा उसकी चिकित्सा अवश्य की जाती ॥७७॥ अथवा लक्ष्मणरूपी विषवैद्य संग्रामरूपी मण्डलमें शीघ्र ही वाणों द्वारा आवेश कर इसके सब रोगोंको हरेगा ॥७८॥ तदनन्तर उसके कुवचन रूपी अग्निसे जिसका चित्त प्रज्वलित हो रहा

सुग्रीव ! पद्मगर्वेण नूनं खं मर्तुमिच्छसि । अधिपतिपति यत् क्रुद्धं विद्याधरमहेरवरम् ॥८०॥
 ऊर्ध्वे विराधितश्च त्वां यथा ते शक्तिरस्ति चेत् । आगच्छतु ममैकस्य युद्धं यच्छ किमास्थते ॥८१॥
 उक्तो दाशर्थाभूयो मया राम ! रणाजिरे । रावणस्य न किं दृष्टस्त्वया परमविक्रमः ॥८२॥
 यतः क्षमान्वितं वीरं राजस्वद्योतभास्करम् । सामप्रयोगमिच्छन्तं भवत्पुण्यानुभावतः ॥८३॥
 वदान्यं त्रिजगत्स्यातप्रतापं प्रणतप्रियम् । नेतुमिच्छसि संक्षोभं कैलासक्षोभकारिणम् ॥८४॥
 चण्डसैन्योर्मिमालाच्छं शम्भयादोगणाकुलम् । तर्तुमिच्छसि किं दोर्भ्यां दशप्रोवमहार्णवम् ॥८५॥
 यद्युद्विपमहाव्यालां पदातिद्रुमसङ्घटाम् । शिवस्यसि कथं दुर्गां दशप्रोवमहाटवीम् ॥८६॥

वंशस्थवृत्तम्

न पद्मवातेन सुमेरुद्वयते न सागरः शुष्यति सूर्यरश्मिभिः ।
 गवेन्द्रशृङ्गैर्धरणी न कम्पते न साध्यते त्वत्सदृशैर्दशाननः ॥८७॥

उपजातिः

इति प्रचण्डं मयि भाषमाणे भामण्डलः क्रोधकषायनेत्रः ।
 यावत् समाकर्षदसि प्रदीप्तं तावत् सुमित्रातनयेन रुद्धः ॥८८॥
 प्रसीद वैदेह ! विमुञ्च कोषं न जम्बुके कोपमुपैति सिंहः ।
 गजेन्द्रकुम्भस्थलदारणेन क्रीडां स मुक्तानिकरैः करोति ॥८९॥
 नरेश्वरा ऊजितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजां प्रहरन्ति जातु ।
 न ब्राह्मणं न श्रमणं न शून्यं क्षियं न बालं न पशुं न दूतम् ॥९०॥

था, ऐसे मैंने उस सुग्रीवको इस प्रकार धौंसा जिस प्रकार कि श्वान हाथीको धौंसता है ॥७६॥
 मैंने कहा कि अरे सुग्रीव ! जान पड़ता है कि तू रामके गर्वसे मरना चाहता है, जो कुपित हुए
 विद्याधरोंके अधिपतिकी निन्दा कर रहा है ॥८०॥ हे नाथ ! विराधितने भी आपसे कहा है
 कि यदि तेरी शक्ति है तो आ, मुझ एकके लिए ही युद्ध प्रदान कर । बैठा क्यों है ? ॥८१॥ मैंने
 रामसे पुनः कहा कि हे राम ! क्या तुमने रणाङ्गणमें रावणका परम पराक्रम नहीं देखा है ?
 ॥८२॥ जिससे कि तुम उसे क्षोभको प्राप्त कराना चाहते हो । जो राजा रूपी जुगनुओंको
 बवानेके लिए सूर्यके समान है, वीर है और तीनों जगत्में जिसका प्रताप प्रख्यात है, ऐसा
 रावण, इस समय आपके पुण्य प्रभावसे क्षमा युक्त है । साम—शान्तिका प्रयोग करनेका
 इच्छुक है, उदार-त्यागी है; एवं नम्र मनुष्योंसे प्रेम करनेवाला है ॥८३-८४॥ जो बलवान्
 सेना रूपी तरङ्गोंकी मालासे युक्त है तथा शम्भु रूपी जल-जन्तुओंके समूहसे सहित है ऐसे
 रावण रूपी समुद्रको तुम क्या दो भुजाओंसे तैरना चाहते हो ? ॥८५॥ घोड़े और हाथी ही
 जिसमें हिंसक जानवर हैं तथा जो पैदल सैनिक रूपी वृत्तोंसे संकीर्ण हैं ऐसी दुर्गम रावण रूपी
 अटवीमें तुम क्यों घुसना चाहते हो ? ॥८६॥ मैंने कहा कि हे पद्म ! वायु के द्वारा सुमेरु नहीं
 उठाया जाता, सूर्यकी किरणोंसे समुद्र नहीं सूखता, बैलकी सींगोंसे पृथिवी नहीं काँपती और
 और तुम्हारे जैसे लोगोंसे दशानन नहीं जीता जाता ॥८७॥ इस प्रकार क्रोधपूर्वक मेरे कहनेपर
 क्रोधसे लाल-लाल नेत्र दिखाता हुआ भामण्डल जबतक चमकती तलवार खींचता है तबतक
 लक्ष्मणने उसे मना कर दिया ॥८८॥ लक्ष्मणने भामण्डलसे कहा कि हे विदेहासुत ! क्रोध छोड़ो,
 सिंह सियार पर क्रोध नहीं करता, वह तो हाथीका गण्डस्थल चोरकर मोतियोंके समूहसे क्रोड़ा
 करता है ॥८९॥ जो राजा अतिशय बलिष्ठ शूरवीरोंकी चेष्टाको धारण करनेवाले हैं वे कभी
 न भयभीत पर, न ब्राह्मण पर, न मुनि पर, न निहत्थे पर, न स्त्रीपर, न बालकपर, न पशुपर

इत्यादिभिर्वाङ्मनिवहैः सुयुक्तैर्यदा स लक्ष्मीधरपण्डितेन ।
नीतः प्रबोधं शनकैरमुञ्चत् क्रोधं तथा दुःसहदीप्तिचक्रः ॥६१॥
निर्भस्मितः क्रूरकुमारचक्रैः वाक्यैरलं वज्रनिघाततुल्यैः ।
अपूर्वहेतुमलधूकृतात्मा स्वं मन्यमानः तृणतोऽप्यसारम् ॥६२॥
नभः समुत्पत्य भयादितोऽहं त्वत्पादमूलं पुनरागतोऽयम् ।
लक्ष्मीधरोऽसौ यदि नाऽभविष्यद्वैदेहतो देव ! ततोऽमरिष्यम् ॥६३॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

इति गदितमिदं यथाऽनुभूतं रिपुचरितं तव देव ! निर्विशङ्कम् ।
कुरु यदुचितमत्र साम्प्रतं वचनकरा हि भवन्ति मद्दिघास्तु ॥६४॥
बहु विदितमलं सुशास्त्रजालं नयविषयेषु सुमन्त्रिणोऽभियुक्ताः ।
अखिलमिदमुपैति मोहभावं पुरुषरवौ घनमोहमेघरुद्धे ॥६५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणदूतागमागमाभिधानं नाम षट्षष्टितमं पर्व ॥६६॥

और न दूतपर प्रहार करते हैं ॥६०॥ इस प्रकार युक्तियुक्त वचनोंसे जब लक्ष्मण रूपी पण्डितने उसे समझाया तब कहीं दुःसह दीप्तिचक्रको धारण करनेवाले भामण्डलने धीरे-धीरे क्रोध छोड़ा ॥६१॥ तदनन्तर दुष्टता भरे अन्य कुमारोंने वज्र प्रहारके समान कर वचनोंसे जिसका अत्यधिक तिरस्कार किया तथा अपूर्व कारणोंसे जिसकी आत्मा अत्यन्त लघु हो रही थी, ऐसा मैं अपने आपको तृणसे अधिक निःसार मानता हुआ भयसे दुःखी हो आकाशमें उड़कर आपके पादमूलमें पुनः आया हूँ । हे देव ! यदि लक्ष्मण नहीं होता तो मैं आज अवश्य ही भामण्डलसे मारा जाता ॥६२-६३॥ हे देव ! इस प्रकार मैंने शत्रुके चरित्रका जैसा कुछ अनुभव किया है वह निःशङ्क होकर आपसे निवेदन किया है । अब इस विषयमें जो कुछ उचित हो सो करो क्योंकि हमारे जैसे पुरुष तो केवल आज्ञा पालन करनेवाले होते हैं ॥६४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्हें अनेक शास्त्रोंके समूह अच्छी तरह विदित हैं, जो नीतिके विषयमें सदा उद्यत रहते हैं तथा जिनके समीप अच्छे-अच्छे मन्त्री विद्यमान रहते हैं ऐसे मनुष्य भी पुरुष रूपी सूर्यके मोह रूपी सघन मेघसे आच्छादित हो जाने पर मोह भावको प्राप्त हो जाते हैं ॥६५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके दूतका रामके पास जाने और वहाँसे आनेका वर्णन करने वाला छयासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६६॥

सप्तषष्ठितमं पर्व

स्वदूतवचनं श्रुत्वा राक्षसानामधीश्वरः । ज्ञणं सन्मन्त्रणं कृत्वा सन्त्रज्ञैः सह मन्त्रिभिः ॥१॥
 कृत्वा पाणितले गण्डं कुण्डलालोकभासुरम् । अधोमुखः स्थितः किञ्चिदिति चिन्तामुपागतः ॥२॥
 नागेन्द्रवृन्दसङ्घटे युद्धे शत्रुं जयामि चेत् । तथा सति कुमारानां प्रमादः परिदश्यते ॥३॥
 सुप्तं शत्रुबले दत्त्वा समास्कन्दमवेदितः । आनयामि कुमारान् किं किं करोमि कथं शिवम् ॥४॥
 इति चिन्तयतस्तस्य मागधेश्वरशोमुषी । इयं समुद्गता जातो यथा सुखितमानसः ॥५॥
 साधयामि महाविद्यां बहुरूपांमिति श्रुताम् । प्रतिव्यूहितुमुद्युक्तैरशक्त्यां त्रिदशैरपि ॥६॥
 इति ध्यात्वा समाहूय किङ्करानशिषद् द्रुतम् । कुरुध्वं शान्तिगेहस्य शोभां सत्तोरणादिभिः ॥७॥
 पूजां च सर्वचैत्येषु सर्वसंस्कारयोगेषु । सर्वश्रायं भरो न्यस्तो मन्दोदर्यां सुचेतसि ॥८॥
 विंशस्य देवदेवस्य वन्दितस्य सुरासुरैः । मुनिसुव्रतनाथस्य तस्मिन् काले महोदये ॥९॥
 सर्वत्र भरतक्षेत्रे सुविस्तार्ये महायते । अर्हन्तैर्यैरियं पुण्यैर्वसुधाऽऽसीदलङ्कृता ॥१०॥
 राट्वाधिपतिभिर्भूषैः श्रेष्ठिभिर्ग्रामभोगिभिः । उत्थापितास्तदा जैनाः प्रासादाः पृथुतेजसः ॥११॥
 अधिष्ठिता भृशं भक्तियुक्तैः शासनदैवतैः । सद्धर्मपक्षसंरक्षाप्रवणैः शुभकारिभिः ॥१२॥
 सदा जनपदैः स्फीतैः कृताभिषवपूजनाः । रेजुः स्वर्गविमानाभा भव्यलोकनिषेविताः ॥१३॥
 पर्वते पर्वते चारौ ग्रामे ग्रामे वने वने । पत्तने पत्तने राजन् हर्म्ये हर्म्ये पुरे पुरे ॥१४॥

अथानन्तर राक्षसांका अधीश्वर रावण अपने दूतके वचन सुनकर ज्ञणभर मन्त्रके जानकार मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करता रहा । तदनन्तर कुण्डलोंके आलोकसे देदीप्यमान गण्डस्थलको हथेली पर रख अधोमुख बैठ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि ॥१-२॥ यदि हस्तिमूहके संघट्टसे युक्त युद्धमें शत्रुओंको जीतता हूँ तो ऐसा करनेसे कुमारोंकी हानि दिखाई देती है ॥३॥ इसलिए जब शत्रुसमूह सो जावे तब अज्ञात रूपसे धावा देकर कुमारोंको वापिस ले आऊँ ? अथवा क्या करूँ ? क्या करनेसे कल्याण होगा ? ॥४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मागधेश्वर ! इस प्रकार विचार करते हुए उसे यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि उसका हृदय प्रसन्न हो गया ॥५॥ उसने विचार किया कि मैं बहुरूपिणी नामसे प्रसिद्ध वह विद्या सिद्ध करता हूँ कि जिसमें सदा तत्पर रहनेवाले देव भी विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते ॥६॥ ऐसा विचार कर उसने शीघ्र ही किंकरोंको बुला आदेश दिया कि शान्तिजिनालयकी उत्तम तोरण आदिसे सजावट करो ॥७॥ तथा सब प्रकारके उपकरणोंसे युक्त सर्वमन्दिरोंमें जिनभगवान्की पूजा करो । किङ्करोंको ऐसा आदेश दे उसने पूजाकी व्यवस्थाका सब भार उत्तमचित्तकी धारक मन्दोदरीके ऊपर रक्खा ॥८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि वह सुर और असुरों द्वारा वन्दित ब्रह्मसे मुनिसुव्रत भगवान्का महाभ्युदयकारी समय था । उस समय लम्बे-चौड़े समस्त भरत क्षेत्रमें यह पृथ्वी अर्हन्तभगवान्की पवित्र प्रतिमाओंसे अलंकृत थी ॥९-१०॥ देशके अधिपति राजाओं तथा गाँवोंका उपभोग करनेवाले सेठोंके द्वारा जगह-जगह देदीप्यमान जिन-मन्दिर खड़े किये गये थे ॥११॥ वे मन्दिर, समीचीन धर्मके पक्षकी रक्षा करनेमें निपुण, कल्याणकारी, भक्तियुक्त शासन-देवोंसे अधिष्ठित थे ॥१२॥ देशवासी लोग सदा वैभवके साथ जिनमें अभिषेक तथा पूजन करते थे और भव्य जीव सदा जिनकी आराधना करते थे, ऐसे वे जिनालय स्वर्गके विमानोंके समान सुशोभित होते थे ॥१३॥ हे राजन् ! उस समय पर्वत पर्वतपर, अतिशय सुन्दर गाँव

१. वृद्ध म० । २. स्वचेतसि म० ।

२-३

सङ्गमे सङ्गमे रम्ये चत्वरै चत्वरै पृथौ । बभूवुश्चैत्यसङ्घाता महाशोभासमन्विताः ॥१५॥
 शरच्चन्द्रसितच्छायाः सङ्गीतध्वनिहारिणः । नानातूर्यस्वनोद्गतध्रुवधसिन्धुसमस्वनाः ॥१६॥
 त्रिसन्ध्यं वन्दनोद्युक्तैः साधुसङ्घैः समाकुलाः । गम्भीराः विविधाश्चर्याश्चित्रपुष्पोपशोभिताः ॥१७॥
 विभूत्या परया युक्ता नानावर्णमणिस्त्रिवः । सुविस्तीर्णाः समुत्तुङ्गा महाध्वजविराजिताः ॥१८॥
 जिनेन्द्रप्रतिमास्तेषु हेमरूपादिमूर्तयः । पञ्चवर्णा भृशं रेजुः परिवारसमन्विताः ॥१९॥
 पुरे च खेचराणां च स्थाने स्थानेऽतिचारुभिः । जिनप्रासादसङ्कटैर्विजयाद्द्वैगिरिवरैः ॥२०॥
 नानारत्नमयैः कान्तैरुद्यानादिविभूषितैः । व्याप्तं जगदिदं रेजे जिनेन्द्रभवनैः शुभैः ॥२१॥
 महेन्द्रनगराकारा लङ्काऽप्येवं मनोहरा । अन्तर्बहिश्च जैनेन्द्रभवनैः पापहारिभिः ॥२२॥
 यथाष्टादशसङ्ख्यानां सहस्राणां सुशोपिताम् । पद्मिनीनां सहस्रांशुः स चिक्रीड दशाननः ॥२३॥
 प्राबुद्धमेघदलच्छायो नागनासा महाभुजः । पूर्णन्दुवदनः कान्तो बन्धूकच्छदनाधरः ॥२४॥
 विशालनयनो नारीमनःकर्षणविभ्रमः । लक्ष्मीधरसमाकारो दिव्यरूपसमन्वितः ॥२५॥

शार्दूलचिक्रीडितवृत्तम्

तस्मिन्नाश्रितसर्वलोकनयने प्रासादमालावृते
 नानारत्नमये दशाननगृहे चैत्यालयोद्भासिते ।
 हेमस्तम्भसहस्रशोभि विपुलं मध्ये स्थितं भासुरं
 तुङ्ग शान्तिगृहं स यत्र भगवान् शान्तिजिनः स्थापितः ॥२६॥

गाँवमें, वन वनमें पत्तन पत्तनमें, महल महलमें, नगर नगरमें, संगम संगममें, तथा मनोहर और सुन्दर चौराहे चौराहे पर महाशोभासे युक्त जिनमन्दिर बने हुए थे ॥१४-१५॥ वे मन्दिर शरद्वृत्तके चन्द्रमाके समान कान्तिसे युक्त थे, संगीतकी ध्वनिसे मनोहर थे, तथा नाना वादित्रोंके शब्दसे उनमें जोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान शब्द हो रहे थे ॥१६॥ वे मन्दिर तीनों संध्याओंमें वन्दनाके लिए उद्यत साधुओंके समूहसे व्याप्त रहते थे, गम्भीर थे, नाना आचार्योंसे सहित थे और विविध प्रकारके पुष्पोंके उपहारसे सुशोभित थे ॥१७॥ परम-विभूतिसे युक्त थे, नाना रङ्गके मणियोंकी कान्तिसे जगमगा रहे थे, अत्यन्त विस्तृत थे, ऊँचे थे और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे सहित थे ॥१८॥ उन मन्दिरोंमें सुवर्ण, चाँदी आदिकी बनी छत्रत्रय चमरादि परिवारसे सहित पाँच वर्णकी जिनप्रतिमाएँ अत्यन्त सुशोभित थीं ॥१९॥ विद्याधरोंके नगरमें स्थान-स्थानपर बने हुए अत्यन्त सुन्दर जिनमन्दिरोंके शिखरोंसे विजयार्थ पर्वत उत्कृष्ट हो रहा था ॥२०॥ इस प्रकार यह समस्त संसार बाग-बगीचोंसे सुशोभित, नानारत्नमयी, शुभ और सुन्दर जिनमन्दिरोंसे व्याप्त हुआ अत्यधिक सुशोभित था ॥२१॥ इन्द्रके नगरके समान वह लङ्का भी भीतर और बाहर बने हुए पापापहारी जिनमन्दिरोंसे अत्यन्त मनोहर थी ॥२२॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि वर्षाऋतुके मेघसमूहके समान जिसकी कान्ति थी, हाथीकी सूँडके समान जिसकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ थीं, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, दुपहरियाके फूलके समान जिसके लाल-लाल ओंठ थे, जो स्वयं सुन्दर था, जिसके बड़े-बड़े नेत्र थे, जिसकी चेष्टाएँ स्त्रियोंके मनको आकृष्ट करनेवाली थीं, लक्ष्मीधर-लक्ष्मणके समान जिसका आकार था और जो दिव्यरूपसे सहित था, ऐसा दशानन, कमलिनियोंके साथ सूर्यके समान अपनी अठारह हजार स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करता था ॥२३-२४॥ जिसपर सब लोगोंके नेत्र लग रहे थे, जो अन्य महलोंकी पंक्तिसे घिरा था, नानारत्नोंसे निर्मित था और चैत्यालयोंसे सुशोभित था, ऐसे दशाननके घरमें सुवर्णमयी हजारों खम्भोंसे सुशोभित, विस्तृत, मध्यमें स्थित, देदीप्यमान और

वन्द्यानां त्रिदशेन्द्रमौलिशिखरप्रत्युत्तरःनस्फुरत्-
स्फीतांशुप्रकरात्प्रसारिचरणप्रोत्सर्पिनख्यत्विषाम्
ज्ञात्वा सर्वमशाश्वतं परिदृढामाघाय धर्मं मर्ति
धन्याः सद्युति कारयन्ति परमं लोके जिनानां गृहम् ॥२७॥

उपजातिवृत्तम्

वित्तस्य जातस्य फलं विशालं वदन्ति सुज्ञाः सुकृतोपलम्भम् ।
धर्मश्च जैनः परमोऽखिलेऽस्मिन्नगत्यभीष्टस्य रविप्रकाशे ॥२८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शान्तिगृहकीर्तनं नाम सप्तषष्टितमं पर्व ॥६७॥

अतिशय ऊँचा वह शान्तिजिनालय था कि जिसमें शान्तिजिनेन्द्र विराजमान थे ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उत्तम भाग्यशाली मनुष्य, धर्ममें दृढ़ बुद्धि लगाकर तथा संसारके सब पदार्थोंको अस्थिर जानकर जगत्में उन जिनेन्द्र भगवानके कान्तिसम्पन्न, उत्तम मन्दिर बनवाते हैं जो सबके द्वारा वन्दनीय हैं तथा इन्द्रके मुकुटोंके शिखरमें लगे रत्नोंकी देदीप्यमान किरणोंके समूहसे जिनके चरणनखोंकी कान्ति अत्यधिक वृद्धिगत होती रहती है ॥२७॥ बुद्धिमान् मनुष्य कहते हैं कि प्राप्त हुए विशाल धनका फल पुण्यकी प्राप्ति करना है और इस समस्त संसारमें एक जैनधर्म ही उत्कृष्ट पदार्थ है, यही इष्ट पदार्थको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाला है ॥२८॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शान्ति जिनालयका वर्णन करने वाला सड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६७॥

अष्टषष्टितमं पर्व

अथ फाल्गुनिके मासे गृहीत्वा धवलाष्टमीम् । पौर्णमासीं तिथिं यावत्सन्तो नन्दीश्वरो महः ॥१॥
 नन्दीश्वरमहो तस्मिन् प्राप्ते परमसम्मदः^१ । बलद्वयेऽपि लोकोऽभूत्त्रियमग्रहणोद्यतः ॥२॥
 एवं च मानसे चक्रुः सर्वे सैनिकपुङ्गवाः । सुपुण्यानि दिनान्यष्टावेतानि भुवनत्रये ॥३॥
 नैतेषु विग्रहं कुर्मो न चान्यदपि हिंसनम् । यजामहे यथाशक्ति स्वश्रेयसि परायणाः ॥४॥
 भवन्ति दिवसेष्वेषु भोगादिपरिवर्जिताः । सुरा अपि जिनेन्द्राणां सेन्द्राः पूजनतत्पराः ॥५॥
 क्षीरोदवारि सम्पूर्णैः कुम्भैरम्भोजशोभिभिः ।^२ शतकुम्भैरलं भक्ताः स्नपयन्ति जिनाम् सुराः ॥६॥
 अन्यैरपि जिनेन्द्राणां प्रतिमाः प्रतिभोजिताः । भावितैरभिषेकव्याः पलाशादिपुटैरपि ॥७॥
 गत्वा नन्दीश्वरं भक्त्या पूजयन्ति जिनेश्वरान् । देवेश्वरा न ते पूज्याः क्षुद्रकैः किमिहस्थितैः ॥८॥
 अर्चयन्ति सुराः पशू रत्नजाम्बूनदात्मकैः । जिनास्ते भुवि निवृत्तैः पूज्याश्चित्तदलैरपि ॥९॥
 इति ध्यानमुपायानां लङ्काहर्षिणे मनोरमे । जनाश्रयानि सोत्साहाः पताकाद्यैरभूषयद् ॥१०॥
 सभाः प्रपाश्व मञ्जाश्च पट्टशाला मनोहराः । नाट्यशाला विशालाश्च वाप्यश्च रचिताः शुभाः ॥११॥
 सरांसि पद्मरम्याणि भान्ति सोपानकैवरीः । सैटोद्भासितवस्त्रादिचैत्यकूटानि भूरिशः ॥१२॥
 कनकादिरजश्रिमण्डलादिविराजितैः । रेजुश्रैत्यानि सद्द्वारैर्वस्त्ररम्भादिभूषितैः ॥१३॥
 घृतक्षीरादिभिः पूर्णाः कलशाः कमलाननाः । मुक्तादामादिसत्कण्ठा रत्नरश्मिविराजिताः ॥१४॥

अथानन्तर फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीसे लेकर पौर्णमासी पर्यन्त नन्दीश्वर-
 अष्टाह्निक महोत्सव आया ॥१॥ उस नन्दीश्वर महोत्सव के आने पर दोनों पक्षकी सेनाओंके
 लोग परम हर्षसे युक्त होते हुए नियम ग्रहण करनेमें तत्पर हुए ॥२॥ सब सैनिक मनमें ऐसा
 विचार करने लगे कि ये आठ दिन तीनों लोकोंमें अत्यन्त पवित्र हैं ॥३॥ इन दिनोंमें हम न
 युद्ध करेंगे और न कोई दूसरी प्रकारकी हिंसा करेंगे, किन्तु आत्म-कल्याणमें तत्पर रहते हुए यथा-
 शक्ति भगवान् जिनेन्द्र की पूजा करेंगे ॥४॥ इन दिनोंमें देव भी भोगादिसे रहित हो जाते हैं तथा
 इन्द्रोंके साथ जिनेन्द्र देवकी पूजा करनेमें तत्पर रहते हैं ॥५॥ भक्त देव, क्षीर समुद्रके जलसे
 भरे तथा कमलोंसे सुशोभित स्वर्णमयी कलशोंसे श्रीजिनेन्द्रका अभिषेक करते हैं ॥६॥ अन्य
 लोगोंको भी चाहिए कि वे भक्तिभावसे युक्त हो कलश न हों तो पत्तों आदिके बने दोनोंसे भी
 जिनेन्द्र देवकी अनुपम प्रतिमाओंका अभिषेक करें ॥७॥ इन्द्र नन्दीश्वर द्वीप जाकर भक्ति पूर्वक
 जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं, तो क्या यहाँ रहनेवाले क्षुद्र मनुष्योंके द्वारा जिनेन्द्र पूजनीय नहीं
 हैं ? ॥८॥ देव रत्न तथा स्वर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं तो पृथ्वी पर स्थित
 निर्धन मनुष्योंको अन्य कुछ न हो तो मनरूपी कलिका द्वारा भी उनकी पूजा करना चाहिए ॥९॥
 इस प्रकार ध्यानको प्राप्त हुए मनुष्योंने बड़े उत्साहके साथ मनोहर लङ्का द्वीपमें जो मन्दिर थे
 उन्हें पताका आदि से अलंकृत किया ॥१०॥ एकसे एक बढ़कर सभाएँ, प्याऊ, मञ्ज, पट्टशालाएँ,
 मनोहर नाट्य शालाएँ तथा बड़ी-बड़ी वापिकाएँ बनाई गई ॥११॥ जो उत्तमोत्तम सीदियोंसे
 सहित थे तथा जिनके तटों पर वस्त्रादिसे निर्मित जिनमन्दिर शोभा पा रहे थे, ऐसे कमलोंसे
 मनोहर अनेक सरोवर सुशोभित हो रहे थे ॥१२॥ जिनालय, स्वर्णादिकी परागसे निर्मित
 नाना प्रकारके मण्डलादिसे अलंकृत एवं वस्त्र तथा कदली आदिसे सुशोभित उत्तम द्वारोंसे
 शोभा पा रहे थे ॥१३॥ जो घी, दूध आदिसे भरे हुए थे, जिनके मुख पर कमल ढके हुए थे,

१. सम्पदः म० । २. सौवर्णैः । ३. सैटोद्भासित म० ।

जिनबिम्बाभिषेकार्थमाहूता भक्तिभासुराः । दृश्यन्ते भोगिगोहेषु शतशोऽथ सहस्रशः ॥१५॥
 नन्दनप्रभवैः फुल्लैः कर्णिकारातिमुक्तकैः । कदम्बैः सहकारैश्च चम्पकैः पारिजातकैः ॥१६॥
 मन्दारैः सौरभाबद्धमधुव्रतकदम्बकैः । स्रजो विरचिता देजुरचैत्येषु^१ परमोज्ज्वलाः ॥१७॥
^२जातरूपमयैः पद्मै रजतादिमयैस्तथा । मणिरत्नशरीरैश्च पूजा विरचिता परा ॥१८॥
 पट्टभिः पट्टहैस्तूर्यैर्मृदङ्गैः काहलादिभिः । शङ्खैश्चाशु महानादैश्चैत्येषु समजायत ॥१९॥
 प्रशान्तवैरसम्बद्धैर्महानन्दसमागतैः । जिनानां महिमा चक्रे लङ्कानुरनिवासिभिः ॥२०॥
 ते विभूतिं परां च कुर्विषेश भक्तितत्पराः । नन्दीश्वरे यथा देवा जिनबिम्बार्चनोद्यताः ॥२१॥

आर्याच्छन्दः

अयमपि राक्षसवृषभः पृथुप्रतापः सुशान्तिगृहमभिगम्य ।
 पूजां करोति भक्त्या बलिखिच पूर्वं मनोहरां शुचिभूत्वा ॥२२॥
 समुचितविभवयुतानां जिनेन्द्रचन्द्रान् सुभक्तिभारधराणाम् ।
 पूजयतां पुरुषाणां कः शक्तः पुण्यसञ्चयान् प्रचोदयितुम् ॥२३॥
 भुक्त्वा देवविभूतिं लब्ध्वा चक्राङ्कभोगसंयोगम् ।
 रवितोऽपि तपस्ताम्रं कृत्वा जैनं व्रजन्ति मुक्तिं परमाम् ॥२४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे फाल्गुनाष्टाह्निकामहिमविधानं नामाष्टषष्टि तमं पर्व ॥६८॥

जिनके कण्ठमें मोतियोंकी मालाएँ लटक रही थीं, जो रत्नोंकी किरणोंसे सुशोभित थे, जो नाना प्रकारके बेलखूटोंसे देदीप्यमान थे तथा जो जिन-प्रतिमाओंके अभिषेकके लिए इकट्ठे किये गये थे ऐसे सैकड़ों हजारों कलश गृहस्थोंके घरोंमें दिखायी देते थे ॥१४-१५॥ मन्दिरोंमें सुगन्धिके कारण जिन पर भ्रमरोंके समूह मँडरा रहे थे, ऐसे नन्दन-वनमें उत्पन्न हुए कर्णिकार, अतिमुक्तक, कदम्ब, सहकार, चम्पक, पारिजातक, तथा मन्दार आदिके फूलोंसे निर्मित अत्यन्त उज्ज्वल मालाएँ सुशोभित हो रही थीं ॥१६-१७॥ स्वर्ण चाँदी तथा मणिरत्न आदिसे निर्मित कमलोंके द्वारा श्री जिनेन्द्र देवकी उत्कृष्ट पूजा की गई थी ॥१८॥ उत्तमोत्तम नगाड़े, तुरही, मृदङ्ग, शङ्ख तथा काहल आदि वाद्योंसे मन्दिरोंमें शीघ्र ही विशाल शब्द होने लगा ॥१९॥ जिनका पारस्परिक वैरभाव शान्त हो गया था और जो महान् भानन्दसे मिल रहे थे, ऐसे लङ्कानिवासियोंने जिनेन्द्र देवकी परम महिमा प्रकट की ॥२०॥ जिस प्रकार नन्दीश्वर द्वीपमें जिन-बिम्बकी अर्चा करनेमें उद्यत देव बड़ी विभूति प्रकट करते हैं उसी प्रकार भक्तिमें तत्पर विद्याधर राजाओंने बड़ी विभूति प्रकट की थी ॥२१॥ विशाल प्रतापके धारक रावणने भी श्री शान्ति-जिनालयमें जाकर पवित्र हो पहले जिस प्रकार बलि राजाने की थी, उस प्रकार भक्तीसे श्री जिनेन्द्र देवकी मनोहर अर्चा की ॥२२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो योग्य वैभवसे युक्त हैं तथा उत्तम भक्तिके भारको धारण करने वाले हैं ऐसे श्री जिनेन्द्र देवकी पूजा करने वाले पुरुषोंके पुण्य-समूहका निरूपण करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ ऐसे जीव देवोंकी सम्पदाका उपभोग कर तथा चक्रवर्तीके भोगोंका सुयोग पा कर और अन्तमें सूर्यसे भी अधिक जिनेन्द्र प्रणीत तपश्चरण कर श्रेष्ठ मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥२४॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें फाल्गुनमासकी अष्टाह्निका-
 ओंकी महिमाका निरूपण करने वाला अड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६८॥

एकोनसप्ततितमं पर्व

अथ शान्तिजिनेन्द्रस्य भवमं शान्तिकारणम् । कैलासकूटसङ्काशं शरदभ्रचयोपमम् ॥१॥
 स्वयम्प्रभासुरं दिव्यं प्रासादालीसमावृतम् । जम्बूद्वीपस्य मध्यस्थं महामेरुमिवोत्थितम् ॥२॥
 विद्यासाधनसंयुक्तमानसः स्थिरनिश्चयः । प्रविश्य रावणः पूजामकरोत् परमाद्भुताम् ॥३॥
 अभिषेकैः सवादित्रैर्मात्स्यैरतिमनोहरैः । धूपैर्वस्त्युपहारैश्च सङ्गैरनुलेपनैः ॥४॥
 चक्रे शान्तिजिनेन्द्रस्य शान्तचेता दशाननः । पूजां परमया द्युत्या शुनाशीर इवोद्यतः ॥५॥
 चूडामणिहसद्भ्रुकेशमौलिर्महावृत्तिः । शुक्लांशुकधरः पीनकेयूराचितसद्भुजः ॥६॥
 कृताञ्जलिपुटः क्षोणीं पीडयन् जानुसङ्गमात् । प्रणामं शान्तिनाथस्य चकार त्रिविधेन सः ॥७॥
 शान्तैरभिसुखः स्थित्वा निर्मले धरणीतले । पर्यङ्कार्धनियुक्ताङ्गः पुष्परामिणि कुट्टिमे ॥८॥
 विभ्रस्फटिकनिर्माणमहमालां करोदरे । बलाकापङ्क्तिंसंयुक्तनीलाम्भोदचयोपमः ॥९॥
 एकाग्रध्यानसम्पन्नो नासाग्रस्थितलोचनः । विद्यायाः साधनं धीरः प्रारभे राक्षसाधिपः ॥१०॥
 इत्ताज्ञा पूर्वमेवाथ नाथेन प्रियवृत्तिनी । अमात्यं यमदण्डाख्यमादिदेश मयात्मजा ॥११॥
 दाप्यतां घोषणा स्थाने यथा लोकः समन्ततः । नियमेषु नियुक्तात्मा जायतां सुदयापरः ॥१२॥
 जिनचन्द्राः प्रपूज्यन्तां शेषव्यापारवर्जितैः । दीयतां धनमधिभ्यो यथेष्टं हृतमत्सरैः ॥१३॥
 यावत्समाप्यते योगो नायं भुवनभोगिनः । तावत् श्रद्धापरो भूत्वा जनस्तिष्ठतु संयमी ॥१४॥

अथानन्तर जो शान्तिका कारण था, कैलासके शिखरके समान जान पड़ता था, शरद-
 ऋतुके मेघमण्डलकी उपमा धारण करता था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य अर्थात् मनोहर था,
 महलोंकी पंक्तिसे घिरा था और जम्बूद्वीपके मध्यमें स्थित महामेरुके समान खड़ा था—ऐसा
 श्रीशान्तिजिनेन्द्रके मन्दिरमें, विद्या साधनकी इच्छासे युक्त रावणने दृढ़ निश्चयके साथ प्रवेश कर
 श्रीजिनेन्द्रदेवकी परम अद्भुत पूजा की ॥१-३॥ जो उत्कृष्ट कान्तिसे खड़े हुए इन्द्रके समान जान
 पड़ता था ऐसे शान्तचित्त दशाननने वादित्र सहित अभिषेकों, अत्यन्त मनोहर मालाओं, धूपों,
 नैवेद्यके उपहारों और उत्तमवर्णके विलेपनोंसे श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्रकी पूजा की ॥४-५॥ जिसके
 बँचे हुए केश चूडामणिसे सुशोभित थे तथा उनपर मुकुट लगा हुआ था, जो महाकान्तिमान था,
 शुक्ल वस्त्रको धारण कर रहा था, जिसकी मोटी-मोटी उत्तम भुजाएँ वाजूवन्दोंसे अलंकृत थीं,
 जो हाथ जोड़े हुए था, और घुटनोंके समागमसे जो पृथ्वीकी पीड़ा पहुँचा रहा था ऐसे दशाननने
 मन, वचन, कायसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्को प्रणाम किया ॥६-८॥

तदनन्तर जो निर्मल पृथ्वीतलमें पुष्परामणिसे निर्मित फर्सपर श्रीशान्तिनाथ भगवान्के
 सामने बैठा था, जो हाथोंके मध्यमें स्फटिकमणिसे निर्मित अहमालाको धारण कर रहा था,
 और इसीलिए बलाकाओंकी पंक्तिसे युक्त नीलमेघोंके समूहके समान जान पड़ता था, जो एकाग्र
 ध्यानसे युक्त था, जिसने अपने नेत्र नासाके अग्रभाग पर लगा रखे थे, तथा जो अत्यन्त धीर
 था ऐसे रावणने विद्याका सिद्ध करना प्रारम्भ किया ॥९-१०॥ अथानन्तर जिसे स्वामीने पहले
 ही आज्ञा दे रखी थी ऐसी प्रियकारिणी मन्दोदरीने यमदण्डनामक मन्त्रीको आदेश दिया कि
 जगह-जगह ऐसी घोषणा दिलाई जावे कि जिससे लोग सब ओर नियम—आखड़ियोंमें तत्पर
 और उत्तम दयासे युक्त हों ॥११-१२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर जिनचन्द्रकी पूजा की जावे
 और मत्सरभावको दूर कर याचकोंके लिए इच्छानुसार धन दिया जावे ॥१३॥ जबतक जगत्के

निकारो यद्युदारोऽपि कुतश्चिन्नीचतो भवेत् । निश्चितं सोऽपि सोढव्यो महाबलयुतैरपि ॥१५॥
 क्रोधाद्विकुरुते किञ्चिद्विसेष्वेषु यो जनः । पिताऽपि किं पुनः शेषः स मे वध्यो भविष्यति ॥१६॥
 युक्तो बोधिसमाधिभ्रंशं संसारं सोऽन्तवर्जितम् । प्रतिपद्येत यो न स्यात् समादिष्टस्य कारकः ॥१७॥

वंशस्थवृत्तम्

ततो यथाऽऽज्ञापयसीति सम्भ्रमी मुदा तदाज्ञां शिरसा प्रतीक्ष्य सः ।
 चकार सर्वं गदितं जनैश्च तथा कृतं संशयसङ्गवर्जितैः ॥१८॥
 जिनेन्द्रपूजाकरणप्रसक्ता प्रजा बभूवापरकार्यमुक्ता ।
 रविप्रभाणां परमालयानामन्तर्गता निर्मलतुङ्गभावा ॥१९॥

इत्यार्षे रविप्रेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते लोकनियमकरणाभिधानं नामैकोनसप्ततितमं पर्व ॥६६॥

स्वामी—दशाननका यह योग समाप्त नहीं होता है तबतक सब लोग श्रद्धामें तस्पर एवं संयमी होकर रहें ॥१४॥ यदि किसी नीच मनुष्यकी ओरसे अत्यधिक तिरस्कार भी होवे तो भी महाबलवान् पुरुषोंको उसे निश्चित रूपसे सह लेना चाहिये ॥१५॥ इन दिनोंमें जो भी पुरुष क्रोधसे विकार दिखावेगा वह पिता भी हो, फिर शेषकी तो बात ही क्या है ? मेरा वध्य होगा ॥१६॥ जो मनुष्य इस आदेशका पालन नहीं करेगा वह बोधि और समाधिसे युक्त होने पर भी अनन्त संसारको ही प्राप्त होगा—उससे छूटकर मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकेगा ॥१७॥

तदनन्तर 'जैसी आपकी आज्ञा हो' इस प्रकार शीघ्रतासे कहकर तथा हर्ष पूर्वक मन्दोदरीकी आज्ञा शिरोधार्यकर यमदण्ड मन्त्रीने घोषणा कराई और सब लोगोंने संशयसे रहित हो घोषणाके अनुसार ही सब कार्य किये ॥१८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि सूर्यके समान कान्तिवाले उत्तमोत्तम महलोंके भीतर विद्यमान तथा निर्मल और उन्नत भावोंको धारण करने वाली लङ्काकी समस्त प्रजा, अन्य सब कार्य छोड़ जिनेन्द्र देवकी पूजा करनेमें ही लीन हो गई ॥१९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविप्रेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लोगोंके नियम करनेका वर्णन करने वाला उनहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६६॥

सप्ततितमं पर्व

स वृत्तान्तरचरास्येभ्यस्तत्र परबले श्रुतः । ऊचुश्च खेत्राधीशा जयप्राप्तिपरायणाः ॥१॥
 किल शान्तिजिनेन्द्रस्य प्रविश्य शरणं सुधीः । विद्यां साधयितुं लग्नः स लङ्कापरमेश्वरः ॥२॥
 चतुर्विंशतिभिः सिद्धिं वासरीः प्रतिपद्यते । बहुरूपेति सा विद्या सुराणामपि भङ्गनी ॥३॥
 यावद्भगवती तस्य सा सिद्धिं न प्रपद्यते । तावत् कोपयत चिप्रं तं गत्वा नियमस्थितम् ॥४॥
 तस्यां सिद्धिमुपेतायां देवेन्द्रैरपि शक्यते । न स साधयितुं कैव क्षुद्रेष्वस्मासु सङ्ख्या ॥५॥
 ततो विभीषणेनोक्तं कर्त्तव्यं चेदिदं ध्रुवम् । द्रुतं प्रारभ्यतां कस्मान्नवज्जिरवलम्ब्यते ॥६॥
 सम्प्रधार्यं समस्तैस्तैः पशानाभाय वेदितम् । गदितं च यथा लङ्काप्रस्तावे गृह्यतामिति ॥७॥
 बाध्यतां रावणः कृत्यं क्रियतां च यथेप्सितम् । ह्युक्तः स जगौ धीरो महापुरुषचेष्टितः ॥८॥
 भीतादिष्वपि नो तावत् कर्तुं युक्तं विहिंसनम् । किं पुनर्नियमावस्थे जने जिनगृहस्थिते ॥९॥
 नैषा कुलसमुत्थानां क्षत्रियाणां प्रशस्यते । प्रवृत्तिर्गर्वतुङ्गानां खिन्नानां शस्त्रकर्मणि ॥१०॥
 महानुभावधीर्देवो विधर्मं न प्रवर्त्तते । इति प्रधार्यं ते चक्रुः कुमारान् गामिनो रहः ॥११॥
 श्वो गन्तास्म इति प्राप्ता अपि बुद्धिं नभश्चराः । अहमात्रदिनं कालं सम्प्रधारणया स्थिताः ॥१२॥
 पूर्णमास्यां ततः पूर्णशशाङ्कसदृशाननाः । पचायतेक्षणा नानालक्षणध्वजशोभिनिः ॥१३॥

अथानन्तर 'रावण बहुरूपिणी विद्या साध रहा है।' यह समाचार गुप्तचरोंके मुखसे रामकी सेनामें सुनाई पड़ा। सो विजय प्राप्त करनेमें तत्पर विद्याधर राजा कहने लगे कि ऐसा सुननेमें आया है कि लङ्काका स्वामी रावण श्री शान्ति-जिनेन्द्रके मन्दिरमें प्रवेश कर विद्या सिद्ध करनेमें लगा हुआ है ॥१-२॥ वह बहुरूपिणी विद्या चौबीस दिनमें सिद्धिको प्राप्त होती है तथा देवोंका भी मद भङ्गन करनेवाली है ॥३॥ इसलिए वह भगवती विद्या जब तक उसे सिद्ध नहीं होती है तब तक शीघ्र ही जाकर नियममें बैठे रावणको क्रोध उत्पन्न करो ॥४॥ बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो जाने पर वह इन्द्रोंके द्वारा भी नहीं जीता जा सकेगा फिर हमारे जैसे बुद्ध पुरुषोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥५॥ तब विभीषणने कहा कि यदि निश्चित ही यह कार्य करना है तो शीघ्र ही प्रारम्भ किया जाय । आप लोग विलम्ब किसलिए कर रहे हैं ॥६॥ तदनन्तर इस प्रकार सलाह कर सब विद्याधरोंने श्रीरामसे कहा कि 'इस अवसर पर लङ्का ग्रहण की जाय' ॥७॥ रावणको मारा जाय और इच्छानुसार कार्य किया जाय । इस प्रकार कहे जाने पर महा-पुरुषोंकी चेष्टासे युक्त धीर वीर रामने कहा कि जो मनुष्य अत्यन्त भयभीत हैं उन आदिके ऊपर भी जब हिंसापूर्ण कार्य करना योग्य नहीं है तब जो नियम लेकर जिन-मन्दिरमें बैठा है उस पर यह कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है ? ॥८-९॥ जो उबकुलमें उत्पन्न हैं, अहङ्कारसे उन्नत हैं तथा शस्त्र चलानेके कार्यमें जिन्होंने श्रम किया है ऐसे क्षत्रियोंकी यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय नहीं है ॥१०॥

तदनन्तर 'हमारे स्वामी राम महापुरुष हैं, ये अधर्ममें प्रवृत्ति नहीं करेंगे' ऐसा निश्चय कर उन्होंने एकान्तमें अपने-अपने कुमार लङ्काकी ओर रवाना किये ॥११॥ 'तत्पश्चात् कल चलेंगे' इस प्रकार निश्चय कर लेने पर भी विद्याधर आठ दिन तक सलाह ही करते रहे ॥१२॥ अथानन्तर पूर्णिमाका दिन आया तब पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखके धारक, कमलके समान दीर्घ नेत्रोंसे

सिंहव्याघ्रवराहेभशरभादियुतान् स्थान् । विमानानि तथाऽऽरूढा गृहीतपरमायुवाः ॥१४॥
 कुमाराः प्रस्थिता लङ्कां शङ्कामुत्सृज्य साद्राः । रावणकोभणाकृता भवनामरभासुराः ॥१५॥
 मकरध्वजसाटोपचन्द्राभरतिवर्धनाः । वातायनो गुरुभरः सूर्यज्योतिर्महारथः^१ ॥१६॥
 प्रीतिङ्करो ददरथः समुन्नतबलस्तथा । नन्दनः सर्वदो दुष्टः सिंहः सर्वप्रियो नलः ॥१७॥
 नीलः सागरनिस्त्रानः ससुतः पूर्णचन्द्रमाः । स्कन्दश्चन्द्रमरीचिश्च जाम्बवः सङ्कटस्तथा ॥१८॥
 समाधिबहुलः^२ सिंहकटिरिन्द्राशनिबलः । तुरङ्गशतमेतेषां प्रत्येकं योजितं रथे ॥१९॥
 शेषाः सिंहवराहेभ्याप्रयानैर्मनोजवैः । पदातिपटलांतस्थाः प्रस्थिताः परमौजसः ॥२०॥
 नानाचिह्नानपत्रास्ते नानातोरणलाञ्छनाः । चित्राभिर्वैजयन्तीभिर्लक्षिता गगनाङ्गणे ॥२१॥
 सैन्याणवसमुद्गतमहागम्भीरनिःस्वनाः । आस्थूणाः दिशो मानमुद्गहन्तः समुन्नताः ॥२२॥
 प्राप्ता लङ्कापुरीवाह्योद्देशमेवमचिन्तयन् । आश्चर्यं किमिदं लङ्का निश्चिन्तयेमवस्थिता ॥२३॥
 स्वस्थो जनपदोऽमुष्यां सुचेताः परिलक्ष्यते । अवृत्तपूर्वसङ्ग्रामा इव चास्यां भटाः स्थिताः ॥२४॥
 अहो लङ्केरवरस्येदं धैर्यमत्यन्तमुन्नतम् । गम्भीरवं तथा सत्त्वं श्रीप्रतापसमुद्गतम् ॥२५॥
 बन्दिग्रहणमानीतः कुम्भकर्णो महाबलः । इन्द्रजिन्मेघनादश्च दुर्धरैरपि दुर्धराः ॥२६॥
 अद्याद्या बहवः शूरा नीता निधनमाहवे । न तथापि विभोः शङ्का काचिदन्योपजायते ॥२७॥
 इति सञ्चिन्त्य कृत्वा च समालापं परस्परम् । विस्मयं परमं प्राप्ताः कुमाराः शङ्किता इव ॥२८॥

युक्त एवं नाना लक्षणोंकी ध्वजाओंसे सुशोभित विद्याधर कुमार सिंह, व्याघ्र, वाराह, हाथी और शरभ आदिसे युक्त रथों तथा विमानों पर आरूढ़ हो निराङ्क होते हुए आदरके साथ लङ्काकी ओर चले । उस समय उत्तमोत्तम शस्त्रोंको धारण करने वाले तथा रावणको कुपित करनेकी भावनासे युक्त वे बानर कुमार भयनवासी देवोंके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥१३-१५॥ उन कुमारांसे कुछके नाम इस प्रकार हैं । मकरध्वज, साटोप, चन्द्राभ, वातायन, गुरुभर, सूर्य-ज्योति, महारथ, प्रीतिङ्कर, ददरथ, समुन्नतबल, नन्दन, सर्वद, दुष्ट, सिंह, सर्वप्रिय, नल, नील, समुद्रघोष, पुत्र सहित पूर्णचन्द्र, स्कन्द, चन्द्रशिम, जाम्बव, सङ्कट, समाधिबहुल, सिंहजघन, इन्द्रवज्र और बल । इनमेंसे प्रत्येकके रथ में सौ-सौ घोड़े जुते हुए थे ॥१६-१९॥ पदातियोंके मध्यमें स्थित, परम तेजस्वी शेषकुमार मनके समान वेगशाली सिंह वराह हाथी और व्याघ्र रूपी वाहनोंके द्वारा लङ्काकी ओर चले ॥२०॥ जितके ऊपर नाना चिह्नोंको धारण करने वाले छत्र फिर रहे थे, जो नाना तोरणोंसे चिह्नित थे, आकाशाङ्गणमें जो रङ्ग-विरङ्गी ध्वजाओंसे संहित थे, जिनकी सेनारूपी सागरसे अत्यन्त गम्भीर शब्द उठ रहा था, जो मानको धारण कर रहे थे, तथा अतिशय उन्नत थे ऐसे वे सब कुमार दिशाओंको आच्छादित करते हुए लङ्कापुरीके बाह्य मैदानमें पहुँचकर इस प्रकार विचार करने लगे कि यह क्या आश्चर्य है ? जो यह लङ्का निश्चिन्त स्थित है ॥२१-२३॥ इस लङ्काके निवासी स्वस्थ तथा शान्तचित्त दिखाई पड़ते हैं और यहाँके योद्धा भी ऐसे स्थित हैं मानो इनके यहाँ पहले युद्ध हुआ ही नहीं हो ॥२४॥ अहो लङ्कापतिका यह विशाल धैर्य, यह उन्नत गाम्भीर्य, और यह लक्ष्मी तथा प्रतापसे उन्नत सत्त्व-बल धन्य हैं ॥२५॥ यद्यपि महाबलवान् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् तथा मेघनाद बन्दी-गृहमें पड़े हुए हैं, तथा प्रचण्ड बलशाली भी जिन्हें पकड़ नहीं सकते थे ऐसे अक्ष आदि अनेक शूर वीर युद्धमें मारे गये हैं तथापि इस धनी को कोई शङ्का उत्पन्न नहीं हो रही है ॥२६-२७॥ इस प्रकार विचार कर तथा परस्पर वार्तालाप कर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए कुमार कृष्ण शङ्कितसे हो गये ॥२८॥

१. ज्योतिर्महारथः ज० । सूर्यो ज्योतिर्महारथः म० । २. सिंहः कटि म० ।

अथ वैभीषणिवीक्यं ख्यातो नाम्ना सुभूषणः । जगाद धैर्यसम्पन्नं निर्भ्रान्तं मारुतायनम् ॥२६॥
 भयासङ्गं समुत्सृज्य क्षिप्रं लङ्कां प्रविश्य ताम् । लोलयामि त्विमान् सर्वान् परिस्थज्य कुलाङ्गनाः ॥३०॥
 वचनं तस्य सम्पूज्य ते विद्याधरदारकाः । महाशौर्यसमुद्भवा दुर्दान्ताः कलहप्रियाः ॥३१॥
 आशीविषसमाश्रयन्ता उद्धताश्रपलाश्रलाः । भोगदुर्ललिता नानासङ्ग्रामोद्भूतकीर्त्तयः ॥३२॥
 प्रसमाना इवाशेषां नगरीं तां समास्तृणन् । महासैन्यसमायुक्ताः शम्बरश्मिविराजिताः ॥३३॥
 सिंहेभादिरबोन्मिश्रमेरीदुन्दुभिनिस्वनम् ॥ श्रुत्वातिभीषणं लङ्का परमं कम्पमागता ॥३४॥
 सहसा चकितप्रस्ता विलोलनयनाः स्त्रियः । स्वनद्गालदलङ्काराः प्रियाणामङ्गमाश्रिताः ॥३५॥
 विद्याभृन्मिथुमान्युच्चैर्विह्वलानि नभोऽङ्गणे । बभ्रमुश्मकवक्रान्त्या चलद्वासांसि सस्वनम् ॥३६॥
 भवने राक्षसेन्द्रस्य महासनांशुभासुरे । स्वनन्मङ्गलगम्भीरवीरसूर्यमृदङ्गके ॥३७॥
 भङ्गुच्छिन्नसुसङ्गीतनृत्यनिष्णातयोषिति । जिनपूजासमुद्युक्तकन्याजनसमाकुले ॥३८॥
 विलासैः परमस्त्रीणामप्युन्मादितमन्मथे । क्रूरतूर्यस्वनं श्रुत्वा क्षुब्धेऽन्तःपुरसागरे ॥३९॥
 उद्ययौ निःस्वनो रम्यो भूषणस्वनसङ्गतः । समन्तादाकुलो मन्द्रो वल्लकीनामिवायतः ॥४०॥
 विह्वलाऽचिन्तयत् काचित् कष्टं किमिदमागतम् । मर्तव्यमद्य किं क्रूरे कृते कर्मणि शत्रुभिः ॥४१॥
 अन्या दध्वी भवेत्पापैः किं नु बन्दिग्रहो मम । किंवा विवसनीभूता क्षिप्ये लवणसागरे ॥४२॥
 एवमाकुलतां प्राप्ते समस्ते नगरीजने । विह्वलेषु प्रवृत्तेषु निःस्वनेषु समन्ततः ॥४३॥

तदनन्तर सुभूषण नामसे प्रसिद्ध विभीषणके पुत्रने, धैर्यशाली, भ्रान्तिरहित वातायनसे इस प्रकार कहा कि ॥२६॥ भय छोड़ शीघ्र ही लङ्कामें प्रवेश कर कुलाङ्गनाओंको छोड़ इस समस्त लोगोंको अभी हिलाता हूँ ॥३०॥ उसके वचन सुन विद्याधरोंके कुमार समस्त नगरीकी प्रसन्ने हुए के समान सर्वत्र द्वा गये । वे कुमार महाशूरवीरतासे अत्यन्त उद्वण्ड थे, कठिनतासे वशमें करने योग्य थे, कलह-प्रिय थे, आशीविष-सर्पके समान थे, अत्यन्त क्रोधी थे, गर्वीले थे, बिजलीके समान चञ्चल थे, भोगोंसे लालित हुए थे, अनेक संग्रामोंमें कीर्तिको उपार्जित करनेवाले थे, बहुत भारी सेनासे युक्त थे तथा शम्बरोंकी किरणोंसे सुशोभित थे ॥३१-३३॥ सिंह तथा हाथी आदिके शब्दोंसे मिश्रित मेरी एवं दुन्दुभी आदिके अत्यन्त भयङ्कर शब्दको सुन लङ्का परम कम्पनको प्राप्त हुई—सारी लङ्का काँप उठी ॥३४॥ जो आश्चर्यचकित हो भयभीत हो गई थीं, जिनके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे और जिनके आभूषण गिर-गिरकर शब्द कर रहे थे ऐसी स्त्रियाँ सहसा पतियोंकी गोदमें जा छिपी ॥३५॥ जो अत्यन्त विह्वल थे तथा जिनके वस्त्र वायुसे इधर-उधर उड़ रहे थे ऐसे विद्याधरोंके युगल आकाशमें बहुत ऊँचाई पर शब्द करते हुए चक्राकार भ्रमण करने लगे ॥३६॥ रावणका जो भवन महारत्नोंकी किरणोंसे देदीप्यमान था, जिसमें मङ्गलमय तुरही तथा मृदङ्गोंका गम्भीर शब्द हो रहा था, जिसमें रहनेवाली स्त्रियाँ अत्रिरल उत्तम संगीत तथा नृत्यमें निपुण थीं, जो जिनपूजामें तत्पर कन्याजनोंसे व्याप्त थी और जिसमें उत्तम स्त्रियोंके विलासोंसे भी काम उन्मादको प्राप्त नहीं हो रहा था ऐसे रावणके भवनमें जो अन्तःपुररूपी सागर विद्यमान था वह तुरहीके कठोर शब्दको सुन क्षोभको प्राप्त हो गया ॥३७-३९॥ सब ओरसे आकुलतासे भरा भूषणोंके शब्दसे मिश्रित ऐसा मनोहर एवं गम्भीर शब्द उठा जो मानो वीणाका ही विशाल शब्द था ॥४०॥ कोई स्त्री विह्वल होती हुई विचार करने लगी कि हाय हाय यह क्या कष्ट आ पड़ा । शत्रुओंके द्वारा किये हुए इस क्रूरतापूर्ण कार्यमें क्या आज मरना पड़ेगा ? ॥४१॥ कोई स्त्री सोचने लगी कि न जाने मुझे पापी लोग बन्दीगृहमें डालते हैं या वस्त्ररहित कर लवणसमुद्रमें फेंकते हैं ॥४२॥ इस प्रकार जब नगरीके समस्त लोग आकुलताको

क्रुद्धो मयमहादैरयः पिनद्धकवचो द्रुतम् । सन्नद्धैः सचिवैः सार्द्धं समुन्नतपराक्रमः ॥४४॥
 युद्धार्थमुद्यतो दीप्तः प्राप लङ्केशमन्दिरम् । श्रीमान् हरिणकेशीव सुजाशीरनिकेतनम् ॥४५॥
 उचे मन्दोदरी तं च कृत्वा निर्भर्त्सनं परम् । कर्त्तव्यं तात नैतत्ते दोषार्णवनिमज्जनम् ॥४६॥
 समयो घोष्यमाणोऽसौ जैनः किं न त्वया श्रुतः । प्रसादं कुरु वाङ्मा चेदस्ति स्वश्रेयसं प्रति ॥४७॥
 दुहितुः स्वहितं वाञ्छं श्रुत्वा दैत्यपतिर्मयः । प्रशान्तः सज्जहारस्त्रं रश्मिचक्रं यथा रविः ॥४८॥
 दुर्भेदकवचच्छन्नो मणिकुण्डलमण्डितः । हारराजितवहस्को विवेश स्वं जिनालयम् ॥४९॥
 उद्वेलसागराकाराः कुमारास्तावदागताः । प्राकारं वेगवातेन कुर्वन्तः शिखरोज्झितम् ॥५०॥
 भग्नवज्रकपाटं च कृत्वा गोपुरमागतम् । प्रविष्टा नगरीं धीरा महोपद्रवलालसाः ॥५१॥
 इमे प्राप्ता द्रुतं नश्यं क्व यानि प्रविशालयम् । हा मातः किमिदं प्राप्तं तात तात निरीक्ष्यताम् ॥५२॥
 त्रायस्थ भद्र हा भ्रातः किं किं ही ही कथं कथम् । आर्यपुत्र निवर्त्तस्व तिष्ठ हा हा महद्भयम् ॥५३॥
 एवं प्रवृत्तनिस्वानैराकुलैर्नगरीजनैः । सन्त्रस्तैर्दशवक्त्रस्य भवनं परिपूर्यता ॥५४॥
 काचिद्विगलितां काञ्चीमाक्रम्यात्यन्तमाकुला । स्त्रेनैव चरणेनान्ते जानुखण्डं गता भुवि ॥५५॥
 हस्तालम्बितविलसन्तवसनान्यतिविह्वला । गृहीतपृथुका तन्वी चकम्पे गन्तुमुद्यता ॥५६॥
 सम्भ्रममुद्रितस्थूलमुक्तानिकरवर्षिणी । मेघरेखेव काचिसु प्रस्थिता वेगधारिणी ॥५७॥

प्राप्त थे तथा सब ओरसे घबड़ाहटके शब्द सुनाई पड़ रहे थे तब क्रोधसे भरा एवं उन्नत पराक्रमका धारी, मन्दोदरीका पिता मयनामक महादैत्य कवच पहिनकर, कवच धारण करनेवाले मन्त्रियोंके साथ युद्धके लिए उद्यत हो देदीप्यमान हुआ रावणके भवनमें उस प्रकार पहुँचा जिस प्रकार कि श्रीसम्पन्न हरिणकेशी इन्द्रके भवन आता है, ॥४२-४५॥ तब मन्दोदरीने पिताको बड़ी डाँट दिखाकर कहा कि हे तात ! इस तरह आपको दोषरूपी सागरमें निमज्जन नहीं करना चाहिए ॥४६॥ जिसकी घोषणा की गई थी ऐसा जैनाचार क्या तुमने सुना नहीं था । इसलिए यदि अपनी भलाई चाहते हो तो प्रसाद करो-शान्त होओ ॥४७॥ पुत्रीके स्वहितकारी वचन सुनकर दैत्यपति मयने शान्त हो अपना शस्त्र उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि सूर्य अपनी किरणोंके समूहको संकोच लेता है ॥४८॥ तदनन्तर जो दुर्भेद्य कवचसे आच्छादित था, मणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत था और जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था ऐसे मयने अपने जिनालयमें प्रवेश किया ॥४९॥

इतनेमें ही उद्वेलसागरके समान आकारको धारण करनेवाले कुमार, वेग सम्बन्धी वायुसे प्राकारको शिखर रहित करते हुए आ पहुँचे ॥५०॥ महान् उपद्रव करनेमें जिनकी लालसा थी ऐसे वे धीर वीर कुमार, लम्बे-चौड़े गोपुरके वज्रमय किवाड़ तोड़कर नगरीके भीतर घुस गये ॥५१॥ उनके पहुँचते ही नगरीमें इस प्रकारका हल्ला मच गया कि 'ये आ गए', 'जल्दी भागो' 'कहाँ जाऊँ ?' 'घरमें घुस जाओ' 'हाय मातः यह क्या आ पड़ा है ?' 'हे तात ! तात ! देखो तो सही' 'अरे भले आदमी बचाओ' हे भाई ! 'क्या क्या' 'ही ही' क्यों क्यों' हे आर्य पुत्र ! लौटो, ठहरो, हाय हाय बड़ा भय है' इस प्रकार भयसे व्याकुल हो चिल्लाते हुए नगरवासियोंसे रावणका भवन भर गया ॥५२-५४॥ कोई एक स्त्री इतनी अधिक घबड़ा गई थी कि वह अपनी गिरी हुई मेखलाको अपने ही पैरसे लाँघती हुई आगे बढ़ गई और अन्तमें पृथ्वीपर ऐसी गिरी कि उसके घुटने टूट गये ॥५५॥ खिसकते हुए वस्त्रको जिसने हाथसे पकड़ रक्खा था, जो अत्यन्त घबड़ाई हुई थी, जिसने बच्चेको उठा रक्खा था और जो कहीं जानेके लिए तैयार थी ऐसी कोई दुबली-पतली स्त्री भयसे काँप रही थी ॥५६॥ हड़बड़ाहटके कारण हारके टूट

सन्त्रस्तहरिणीनेत्रा स्रस्तकेशकलापिका । वक्षः प्राप्य प्रियस्यान्या बभूवोऽकम्बितोज्ज्वला ॥५८॥
 एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा लोकं भयपरायणम् । शासनान्तर्गता देवाः शान्तिप्रासादासंश्रिताः ॥५९॥
 स्वपक्षपालनोद्युक्ता कश्यासक्तमानसाः । प्रातिहाय्यं द्रुतं कर्तुं प्रवृत्ता भावतत्पराः ॥६०॥
 उत्पत्य भैरवाकाराः शान्तिचैत्यालयादसी । गुहीतविविधा कक्षा दंप्रालीसङ्कटाननाः ॥६१॥
 मध्याह्नार्कदुरीक्षाः सुब्धाः क्रोधोद्भवाः । दधाधरा महाकाया नानावर्णमहारवाः ॥६२॥
 देहदर्शनमात्रेण विकारविषमैर्युताः । वानराङ्गमलं भङ्गं निन्दुरत्यन्तविह्वलम् ॥६३॥
 क्षणं सिंहाः क्षणं वह्निः क्षणं मेघाः क्षणं द्विपाः । क्षणं सर्पाः क्षणं वायुस्ते भवन्ति क्षणं नगाः ॥६४॥
 अभिभूतानिमान् ज्ञात्वा देवैः शान्तिगृहाश्रयैः । जिनालयकृतावासास्तेषामपि हिते रताः ॥६५॥
 देवाः समागता योद्धुं विकृताकारवर्तिनः । निजस्थानेषु तेषां हि ते वसन्त्यनुपालकाः ॥६६॥
 प्रवृत्ते तुमुले क्रूरे गीर्वाणानां परस्परम् । आसीद्भावस्वभावेऽपि सन्देहो विकृतिं प्रति ॥६७॥
 सीदतः स्वान् सुरान् दृष्ट्वा बलिनश्च परामरान् । कपिकेश्च संदृष्टान्पुनर्लङ्कामुखं स्थितान् ॥६८॥
 महान्तं क्रोधमापन्नः प्रभावपरमः सुधीः । यक्षेशः पूर्णभद्राख्यो मणिभद्रमिदं जगौ ॥६९॥
 एतान्पश्य कृपामुक्तान् शाखाकेशरिकेतान् । जानन्तोऽपि समस्तानि शाखाणि विकृतिं गता ॥७०॥
 स्थित्याचारविनिर्मुक्तान् त्यक्त्वाहारं दशाननम् । योगसंयोजिताःमानं देहेऽपि रहितस्पृहम् ॥७१॥

जानेसे जो मोतियोंके समूहकी वर्षा कर रही थी ऐसी कोई एक स्त्री मेघकी रेखाके समान बड़े वेगसे कहीं भागी जा रही थी ॥५७॥ भयभीत हरिणीके समान जिसके नेत्र थे, तथा जिसके बालोंका समूह बिखर गया था ऐसी कोई एक स्त्री पतिके वक्षःस्थलसे जब लिपट गई तभी उसकी कंपकपी छूटी ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमें लोगोंको भयभीत देख शान्ति जिनालयके आश्रयमें रहने वाले शासन देव, अपने पक्षकी रक्षा करनेमें उद्यत तथा दयालु चित्त हो भाव पूर्ण मनसे शीघ्र ही द्वार-पालपत्ता करनेके लिए प्रवृत्त हुए अर्थात् उन्होंने किसीको अन्दर नहीं आने दिया ॥५९॥ जिनके आकार अत्यन्त भयङ्कर थे, जिन्होंने नाना प्रकारके वेष धारण कर रखे थे, जिनके मुख दौड़ोंकी पङ्क्तिसे व्याप्त थे, जिनके नेत्र मध्याह्नके सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य थे, जो लुभित थे, क्रोधसे विष उगल रहे थे, ओंठ चाप रहे थे, डील-डौलके बड़े थे, नाना वर्णके महाशब्द कर रहे थे—और जो शरीरके देखने मात्रसे विषम विकारोंमें युक्त थे ऐसे वे शासन देव शान्ति जिनालयसे निकलकर वानरोंकी सेना पर ऐसे झपटे कि उसे अत्यन्त विह्वल कर क्षण भरमें खदेड़ दिया ॥६०-६३॥ वे शासन देव क्षण भरमें सिंह, क्षण भरमें अग्नि, क्षण भर में मेघ, क्षण भरमें हाथी, क्षण भरमें सर्प, क्षण भरमें वायु और क्षण भरमें पर्वत बन जाते थे ॥६४॥ शान्ति जिनालयके आश्रयमें रहने वाले देवोंके द्वारा इन वानरकुमारोंको पराभूत देख; वानरोंके हितमें तत्पर रहने वाले जो देव शिविरके जिनालयोंमें रहते थे वे भी विक्रियासे आकार बदल कर युद्ध करनेके लिए आ पहुँचे सो ठीक ही है क्योंकि जो अपने स्थानों में निवास करते हैं देव लोग उनके रक्षक होते हैं ॥६५-६६॥ तदनन्तर देवोंका परस्पर भयङ्कर युद्ध प्रवृत्त होने पर उनकी विकृति देख परमार्थ स्वभावमें भी सन्देह होने लगा था ॥६७॥

अथानन्तर अपने देवोंको पराजित होते, दूसरे देवोंको बलवान् होते और अहङ्कारी वानरोंको लङ्कके सन्मुख प्रस्थान करते देख महाक्रोधको प्राप्त हुआ परमप्रभावी बुद्धिमान पूर्णभद्र नामका यक्षेन्द्र मणिभद्र नामक यक्षसे इस प्रकार बोला ॥६८-६९॥ कि इन दया हीन वानरोंको तो देखो जो सब शास्त्रोंको जानते हुए भी विकारको प्राप्त हुए हैं ॥७०॥ ये लोक मर्यादा

प्रशान्तहृदयं हन्तुमुद्यतान्पापचेष्टितान् । रन्ध्रप्रहारिणः क्षुद्रान् त्वक्तवीरविचेष्टितान् ॥७२॥
मणिभद्रस्ततोऽत्रोचत्पूर्णभद्रसमोऽपरः । सम्यक्त्वभावितं वीरं जिनेन्द्रचरणाश्रितम् ॥७३॥
चारुलक्षणसम्पूर्णं शान्तात्मानं महाद्युतिम् । रावणं न सुरेन्द्रोऽपि नेतुं शक्तः पराभवम् ॥७४॥
ततस्तथाऽस्त्विति प्रोक्ते पूर्णभद्रेण तेजसा । गुह्यकाधिपयुग्मं तज्जातं विघ्नस्य नाशकम् ॥७५॥
यक्षेश्वरौ परिक्रुद्धौ दृष्ट्वा योद्धुं समुद्यतौ । लज्जान्वितारच भीताश्च गताः स्वं स्वं परामराः ॥७६॥
यक्षेश्वरौ महावायुप्रेरितोपलवर्षिणौ । युगान्तमेघसङ्काशौ जातौ घोरोरुगर्जितौ ॥७७॥
तयोर्जङ्घासमीरेण सा नभश्चरवाहिनी । प्रेरितोदारवेगेन शुष्कपर्णचयोपमा ॥७८॥
तेषां पलायमानानां भूवानुपदिकाविमौ । उपालम्भकृताकृतावेकस्थौ पद्ममागतौ ॥७९॥
अभिनन्द्य च तं सम्यक् पूर्णभद्रः सुधीर्जगौ । राज्ञो दशरथस्य त्वं श्रीमतस्तस्य नन्दनः ॥८०॥
अश्लाघ्येषु निवृत्तात्मा श्लाघ्यकृत्येषु चोद्यतः । तीर्णः शास्त्रसमुद्रस्य पारं शुद्धगुणोद्यतः ॥८१॥
हृदयस्य सतो भद्र किमेतत्सदृशं विभोः । तव सेनाश्रितैः पौरजनो ध्वंसमुपाहृतः ॥८२॥
यो यस्य हरते द्रव्यं प्रयत्नेन समाजितम् । स तस्य हरते प्राणान् बाह्यमेतद्धि जीवितम् ॥८३॥
अनर्घवज्रवैडूर्यत्रिदुमादिभिराचिता । लङ्कापुरी परिध्वस्ता त्वदीयैराकुलाङ्गना ॥८४॥
प्रौढेर्दावरसंकाशस्ततो गरुडकेतनः । जगाद् तेजसा युक्तं वचनं विधिकोविदः ॥८५॥
एतस्य रघुचन्द्रस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । महागुणधरी परनी शीलालङ्कारधारिणी ॥८६॥
दुरात्मना जलं प्राप्य हता सा येन रक्षसा । अनुकम्पा त्वया तस्य रावणस्य कथं कृता ॥८७॥

और आचारसे रहित हैं। देखो, रावण तो आहार छोड़ ध्यानमें आत्माको लगा शरीरमें भी निस्पृह हो रहा है तथा अत्यन्त शान्तचित्त है फिर भी ये उसे मारनेके लिए उद्यत हैं, पाप पूर्ण चेष्टा युक्त हैं, छिद्र देख प्रहार करने वाले हैं, छुद्र हैं और वीरोंकी चेष्टासे रहित हैं ॥७१-७२॥ तदनन्तर जो दूसरे पूर्णभद्रके समान था ऐसा मणिभद्र बोला कि जो सम्यक्त्वकी भावनासे सहित है, वीर है, जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंका सेवक है, उत्तम लक्षणोंसे पूर्ण है, शान्त चित्त है और महा दीप्तिका धारक है ऐसे रावणको पराभव प्राप्त करानेके लिए इन्द्र भी समर्थ नहीं है फिर इनकी तो बात ही क्या है ? ॥७३-७४॥ तदनन्तर तेजस्वी पूर्णभद्रके 'तथास्तु' इस प्रकार कहने पर दोनों यक्षेन्द्र विघ्नका नाश करने वाले हुए ॥८५॥ तत्पश्चात् क्रोधसे भरे दोनों यक्षेन्द्रोंको युद्धके लिए उद्यत देख दूसरे देव लज्जासे युक्त तथा भयभीत होते हुए अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥७६॥ दोनों यक्षेन्द्र तीव्र आँधीसे प्रेरित पाषाणोंकी वर्षा करने लगे तथा अत्यन्त भयंकर विशाल गर्जना करते हुए प्रलय कालके मेघके समान हो गये ॥७७॥ उन यक्षेन्द्रोंकी अत्यन्त वेग-शाली जंघाओंकी वायुसे प्रेरित हुई विद्याधरोंकी सेना सूखे पत्तोंके ढेरके समान हो गई अर्थात् भयसे इधर-उधर भागने लगी ॥७८॥ उन भागते हुए वानरोंका पीछा करते हुए दोनों यक्षेन्द्र उलाहना देनेके अभिप्रायसे भी रामके पास आये ॥७९॥ उनमेंसे बुद्धिमान् पूर्णभद्र रामकी अच्छी तरह प्रशंसाकर बोला कि तुम श्रीमान् राजा दशरथके पुत्र हो ॥८०॥ अप्रशस्त कार्योसे तुम सदा दूर रहते और शुभ कार्योमें सदा उद्यत रहते हो। शास्त्रों रूपी समुद्रके पारको प्राप्त हो तथा शुद्ध गुणोंसे उन्नत हो ॥८१॥ हे भद्र ! इस तरह सामर्थ्यवान् होने पर भी क्या यह कार्य उचित है कि आपकी सेनाके लोगोंने नगरवासी जनोंको नष्ट-भ्रष्ट किया है ॥८२॥ जो जिसके प्रयत्न पूर्वक कमाये हुए धनका हरण करता है वह उसके प्राणोंको हरता है क्योंकि धन बाह्य प्राण कहा गया ॥८३॥ आपके लोगोंने अमूल्य हीरा वैडूर्य मणि तथा मूंगा आदिसे व्याप्त लंका पुरीको विध्वस्त कर दिया है तथा उसकी स्त्रियोंको व्याकुल किया है ॥८४॥

तदनन्तर सब प्रकारकी विधियोंके जाननेमें निपुण, प्रौढ़ नीलकमलके समान कान्तिको धारण करने वाले लक्ष्मणने ओज पूर्ण वचन कहे ॥८५॥ उन्होंने कहा कि जिस दुष्ट राजसने इन

किं तेऽपकृतमस्माभिः किं वा तेन प्रियं कृतम् । कथ्यतां गुह्यकार्यांश्च किञ्चिदप्यणुमात्रकम् ॥८८॥
 कुटिलां शुकुटीं हृत्वा भीमां सन्ध्यारुणेऽलिके^१ । क्रुद्धोऽसि येन यक्षेन्द्र विना कार्यं समागतः ॥८९॥
 अर्धं काञ्चनपात्रेण तस्य दत्त्वातिसाध्वसः । कपिध्वजाधिपोऽनोत्त कोपो यक्षेन्द्र ! मुच्यताम् ॥९०॥
 परय त्वं समभावेन मद्दलस्य निजां स्थितिम् । लङ्काबलार्णवस्यापि साक्षाद्दार्तित्वमीयुषः ॥९१॥
 तथाप्येव प्रयत्नोऽस्य वर्तते रक्षसां विभोः । केनायं पूर्वकः साध्यः किं पुनर्बहुरूपया ॥९२॥
 संक्रुद्धस्य श्रुधे तस्य स्खलन्त्यभिमुखा नृपाः । जैनोक्तिलब्धवर्णस्य प्रवादे वादिनो यथा ॥९३॥
 तस्मात्त्वमापितात्मानं क्षोभयिष्यामि रावणम् । यत्साधयति नो विद्यां यथा सिद्धिं कुदर्शनः ॥९४॥
 तत्सुहृद्विभवा भूत्वा येन नाथेन रक्षसाम् । समं युद्धं करिष्यामी विपसं जायतेऽन्यथा ॥९५॥
 पूर्णभद्रस्ततोऽनोचदस्त्वेवं किं^२ तु पीडनम् । कृत्यं नाप्त्रपि^३ लङ्कायां साधो जीर्णतृणेष्वपि ॥९६॥
 क्षेमेण रावणाङ्गस्य वेदनाघविधानतः । क्षोभं कुरुत मन्ये नु दुःखं क्षुभ्यति रावणः ॥९७॥
 एवमुक्त्वा प्रसन्नाक्षौ तौ भव्यजनवत्सलौ । भक्तौ श्रमणसङ्घस्य वैयावृत्यसमुद्यतौ ॥९८॥
 शशाङ्कवदनौ राजन् यज्ञाणां परमेश्वरी । अभिनन्दितपद्माद्यावन्तर्द्धिं^४ सानुगौ गतौ ॥९९॥

रामचन्द्रकी प्राणों की अधिक, महागुणोंकी धारक एवं शीलव्रत रूपी अलंकारको धारण करने वाली प्रियाको छलसे हरा है उस रावणके ऊपर तुम दया क्यों कर रहे हो ? ॥८६-८७॥ हम लोगोंने तुम्हारा क्या अपकार किया है और उसने क्या उपाकार किया है सो हे यत्तराज ! कुछ थोड़ा भी जो कहो ॥८८॥ जिससे संध्याके समान लाल लाल ललाट पर कुटिल तथा भयंकर शुकुटि कर कुपित हुए हो तथा विना कार्य ही यहाँ पधारे हो ॥८९॥ तदनन्तर अत्यन्त भयभीत सुभीवने सुवर्णमय पात्रसे उसे अर्घ देकर कहा कि हे यत्तराज ! क्रोध छोड़िए ॥९०॥ आप समभावसे हमारी सेना तथा साक्षात् ईतिपनाको प्राप्त हुए लंकाके सैन्य सागरकी भी स्थिति देखिए । देखिए दोनोंमें क्या अन्तर है ॥९१॥

इतना सब होने पर भी राक्षसोंके अधिपति रावणका यह प्रयत्न जारी है ! यह रावण पहले भी किसके द्वारा साध्य था ? और फिर बहुरूपिणी विद्याके सिद्ध होने पर तो कहना ही क्या है ? ॥९२॥ जिस प्रकार जिनागमके निपुण विद्वान्के सामने प्रवादी लोग लड़खड़ा जाते हैं उसी प्रकार युद्धमें कुपित हुए रावणके सामने अन्य राजा लड़खड़ा जाते हैं ॥९३॥ इसलिए इस समय मैं क्षमाभावसे बैठे हुए रावणको क्षोभयुक्त करूंगा क्योंकि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि मनुष्य सिद्धिको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार क्षोभयुक्त साधारण पुरुष भी विद्याको सिद्ध नहीं कर पाता ॥९४॥ रावणको क्षोभित करनेका हमारा उद्देश्य यह है कि हम तुल्य विभवके धारक हो उसके साथ युद्ध करेंगे अन्यथा हमारा और उसका युद्ध विषम युद्ध होगा ॥९५॥

तदनन्तर पूर्णभद्रने कहा कि ऐसा हो सकता है किन्तु हे सत्पुरुष ! लङ्कामें जीर्णतृणको भी अणुमात्र भी पीड़ा नहीं करना चाहिए ॥९६॥ वेदना आदिक न पहुँचा कर रावणके शरीरकी कुशलता रखते हुए उसे क्षोभ उत्पन्न करो । परन्तु मैं समझता हूँ कि रावण बड़ी कठिनाईसे क्षोभको प्राप्त होगा ॥९७॥ इस प्रकार कह कर जिनके नेत्र प्रसन्न थे, जो भव्य जनोपर स्नेह करने वाले थे, भक्त थे, मुनि संघकी वैयावृत्य करनेमें सदा तत्पर रहते थे, और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखके धारक थे ऐसे यत्तोंके दोनों अधिपति रामकी प्रशंसा करते हुए

आर्याच्छन्दः

सम्प्राप्योपालम्भं लक्ष्मणवचनात् सुलज्जितौ तौ हि ।
सञ्जातौ समचित्तौ निर्व्यापारौ स्थितौ येन ॥१००॥
तावद्भवति जनानामधिका प्रीतिः समाश्रयासन्ना ।
यावन्निर्दोषत्वं रविमिच्छति कः सहोत्पातम् ॥१०१॥

इत्यार्षे रविवेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सम्पन्नदृष्टिदैवप्रातिहार्यकीर्तनं नाम सप्ततितमं पर्व ॥७०॥



सेवकोंके साथ अन्तहित हो गये ॥६८-६९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, जो यक्षेन्द्र उलाहना देने आये थे वे लक्ष्मणके कहनेसे अत्यन्त लज्जित होते हुए समचित्त होकर चुपचाप बैठ रहे ॥१००॥ जब तक निर्दोषता है तभी तक निकटवर्ती पुरुषोंमें अधिक प्रीति रहती है सो ठीक ही है क्यों कि उत्पात सहित सूर्यकी कौन इच्छा करता है ? अर्थात् कोई नहीं । भावार्थ—जिस प्रकार लोग उत्पात रहित सूर्यको चाहते हैं उसी प्रकार दोष रहित निकटवर्ती मनुष्यको चाहते हैं ॥१०१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविवेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सम्पन्नदृष्टि देवोंके प्रातिहार्य-
पनेका वर्णन करने वाला सत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७०॥

एकसप्ततितमं पर्व

शान्तं यज्ञाधिपं ज्ञात्वा सुतारात्मजसुन्दरः । दशाननपुरीं द्रष्टुमुद्यतः परमोजितः ॥१॥
उदाराम्बुदचून्दाभं मुक्तामाल्यविभूषितम् । धवलैश्चामरैर्दीप्तं महाघण्टानिनादितम् ॥२॥
किष्किन्धकाण्डनामानमारूढो वरवारणम् । रराज मेघपृष्ठस्थ^२पौर्णमासीशशाङ्कवत् ॥३॥
तथा स्कन्देन्दनीलाद्या महर्द्धिपरिराजिताः । तुरङ्गादिसमारूढाः कुमारा गन्तुमुद्यताः ॥४॥
पदातयो महासंख्याश्चन्दनाचितविप्रहाः । ताम्बूलरागिणो नानामुण्डमालामनोहराः ॥५॥
कटकोद्गासिबाह्वन्ताः स्कन्धन्यस्तासिखेटकाः । चलावतंसकाश्चित्रपरमांशुकधारिणः ॥६॥
हेमसूत्रपरिचिसमौलयश्चाहविभ्रमाः । अग्रतः प्रसृता गर्वकृतालापाः सुतेजसः ॥७॥
वेणुर्वाणासृदङ्गादिवादित्रसदृशं वरम् । पुरो जनः प्रवीणोऽस्य चक्रे शृङ्गारनर्तनम् ॥८॥
मन्दस्त्र्यस्वनश्चित्रो मनोहरणपण्डितः । शङ्खनिःस्वनसंयुक्तः काहलावत् समुपयौ ॥९॥
विविशुश्रु कुमारेणाः सविलासविभूषणाः । लङ्कां देवपुरीतुष्यामसुरा इव चञ्चलाः ॥१०॥
महिम्ना पुरुणा युक्तं दशास्यनगरीं ततः । प्रविष्टमङ्गदं वाच्य जगावित्यङ्गनाजनः ॥११॥
यस्यैषा ललिता कर्णं विमला दन्तनिर्मिता । विराजते महाकान्तिकोमला तलपत्रिका ॥१२॥
महागामिब सर्वेषां समवायो महाप्रभः । द्वितीयश्रवणे चायं चपलो मणिकुण्डलः ॥१३॥

अथानन्तर यज्ञराजको शान्त सुन अतिशय बलवान् अङ्गद, लंका देखनेके लिए उद्यत हुआ । महामेघ मण्डलके समान जिसकी आभा थी, जो मोतियोंकी मालाओंसे अलंकृत था, सफेद चामरोंसे देदीप्यमान था और महाघण्टाके शब्दसे शब्दायमान था, ऐसे किष्किन्धकाण्ड नामक हाथी पर सवार हुआ अङ्गद मेघपृष्ठ पर स्थित पौर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुरोभित हो रहा था ॥१-३॥ इसके सिवाय जो बड़ी सम्पदासे सुरोभित थे ऐसे स्कन्द तथा नील आदि कुमार भी घोड़े आदि पर आरूढ़ हो जानेके लिए उद्यत हुए ॥४॥ जिनके शरीर चन्दनसे अर्चित थे, जिनके ओंठ ताम्बूलके रङ्गसे लाल थे, जो नाना प्रकारके मस्तकोंके समूहसे मनोहर थे, जिनकी भुजाओंके अन्त प्रदेश अर्थात् मणिवन्ध कटकोंसे देदीप्यमान थे, जिन्होंने अपने कन्धों पर तलवारें रख छोड़ी थीं, जिनके कर्णाभरण चञ्चल थे, जो चित्र-विचित्र उत्तम वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके मुकुट सुवर्ण-सूत्रोंसे वेष्टित थे, जो सुन्दर चेष्टाओंके धारक थे, जो दर्प पूर्ण वार्तालाप करते जाते थे, तथा जो उत्तम तेजके धारक थे ऐसे पदाति उन कुमारोंके आगे-आगे जा रहे थे ॥५-८॥ चतुर मनुष्य इनके आगे वाँसुरी वीणा सृदङ्ग आदि वाजोंके अनुरूप शृङ्गार पूर्ण उत्तम नृत्य करते जाते थे ॥९॥ जो मनके हरण करनेमें निपुण था तथा शङ्खके शब्दोंसे संयुक्त था, ऐसा तुरहियोंका नाना प्रकारका गम्भीर शब्द काहला—रण तूर्यके शब्दके समान जोर-शोरसे उठ रहा था ॥१०॥

तदनन्तर विलास और विभूषणोंसे युक्त उन चपल कुमारोंने स्वर्ग सदृश लंकामें असुर कुमारोंके समान प्रवेश किया ॥१०॥ तत्परचात् महा महिमासे युक्त अङ्गदको लंका नगरीमें प्रविष्ट देख वहाँकी स्त्रियों परस्पर इस प्रकार कहने लगीं ॥११॥ हे सखि ! देख, जिसके एक कानमें दन्त निर्मित महाकान्तिके कोमल निर्मल तालपत्रिका सुरोभित हो रही है और दूसरे कानमें समस्त मर्होंके समूहके समान महाप्रभासे युक्त यह चञ्चल मणिमय कुण्डल शोभा पा रहा है तथा जो

१. मुक्तामाल ल० । २. पृष्ठस्थः पौर्णमासी-म०, ज० । ३. मन्दस्त्र्य-म० । ४. काहलादिः व० । ५. युक्तां म० । ६. तले पत्रिका म० । ७. द्वितीयः श्रवणे म० ।

अपूर्वकोमुनीसर्गप्रवाणः सोऽयमुद्गतः । अङ्गदेन्दुर्दशास्यस्य नगर्यां पश्य निर्भयः ॥१४॥
 किमनेनेरमारब्धं कथमेतद्ब्रवीष्यति । क्रीडेयं लडिताऽमुष्य निरघा किन्तु सेस्यति ॥१५॥
 रावणालयब्राह्मचरामणिकुट्टिमसङ्गताः । ग्राहवस्सरसोऽभिज्ञास्त्रासमोयुः पदातयः ॥१६॥
 रूपनिश्चलतां दृष्ट्वा निर्जातमणिकुट्टिमाः । पुनः प्रसरणं चक्रुर्भटाः विस्मयपूरिताः ॥१७॥
 पर्वतेन्द्रगुहाकारे महारत्नविनिर्मिते । गर्भारे भवनद्वारे मणितोरणभासुरे ॥१८॥
 अज्जनादिप्रतीकाशानिन्द्रनीलमयान् गजान् । सिन्धुगण्डस्थलान् स्थूलदन्तानत्यन्तभासुरान् ॥१९॥
 सिंहबालांश्च तन्मूर्द्धन्यस्ताड्यान्कुर्वालधान् । दंष्ट्राकरालवदनान् भीषणाक्षान् सुकेसरान् ॥२०॥
 दृष्ट्वा पादचरास्त्रस्ताः सत्यव्यालाभिश्चिताः । पलायितुं समारब्धाः प्राप्ता विह्वलतां पराम् ॥२१॥
 ततोऽङ्गदकुमारेण तदभिज्ञेन कृच्छतः । प्रबोधिता प्रतीपं ते पदानि निदधुश्चिरान् ॥२२॥
 प्रविष्टाश्च चलन्नेत्रा भटाः शङ्कासमन्विताः । रावणस्य गृहं सैहं पदं मृगगणा इव ॥२३॥
 दारान्युल्लङ्घ्य भूरोणि परतो गन्तुमक्षमाः । गहने गृहविन्यासे जात्यन्धा इव बध्नसुः ॥२४॥
 इन्द्रनीलास्मिका^१ भिन्तीः पश्यन्तो द्वारमोहिनः । आकाशाशङ्कयोपेतुं स्फटिकच्छन्नसग्रसु ॥२५॥
 शिलाताडितमूर्धानः पतित्वा रभसाःपुनः । परमाकुलतां प्राप्ता वेदनाकृणितेक्षणाः ॥२६॥
 कथञ्चिज्जातसञ्चाराः कष्टान्तरसुपश्रिताः । व्रजन्तो रभसा सक्ता नभःस्फटिकभित्तिषु ॥२७॥
 क्षुण्णाङ्घ्रिजानवस्तावललाटस्फोटदुःखिताः । निववत्तिववोऽप्येते न ययुर्निर्गमं पुनः ॥२८॥

अपूर्व चाँदनीकी सृष्टि करनेमें निपुण है ऐसा यह अङ्गद रूपी चन्द्रमा रावणकी नगरीमें निर्भय हो उदित हुआ है ॥१२-१४॥ देख, इसने यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? यह कैसे होगा ? क्या इसको यह सुन्दर क्रीड़ा निर्दोष सिद्ध होगी ? ॥१५॥

तदनन्तर जब अङ्गदके पदाति रावणके भवनकी मणिमय बाह्यभूमिमें पहुँचे तो उसे मगर-मच्छसे युक्त सरोवर समझकर भयको प्राप्त हुए ॥१६॥ पश्चात् उस भूमिके रूपकी निश्चलता देख जब उन्हें निश्चय हो गया कि यह तो मणिमय फर्स है तब कहीं वे आश्चर्यसे चकित होते हुए आगे बढ़े ॥१७॥ सुमेरुकी गुहाके आकार, बड़े-बड़े रत्नोंसे निर्मित तथा मणिमय तोरणोंसे देदीप्यमान-जब भवनके विशाल द्वार पर पहुँचे तो वहाँ, जो अंजनगिरिके समान थे, जिनके गण्डस्थल अत्यन्त चिकने थे, जिनके बड़े-बड़े दाँत थे, तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान थे ऐसे इन्द्रनीलमणि निर्मित हाथियोंको और उनके मस्तकपर जिन्होंने पैर जमा रक्खे थे, जिनकी पूँछ ऊपरको उठी हुई थी, जिनके मुख दाँदोंसे अत्यन्त भयंकर थे, जिनके नेत्रोंसे भय टपक रहा था तथा जिनकी मनोहर जटाएँ थीं ऐसे सिंहके बच्चोंको देख सचमुचके हाथी तथा सिंह समझ पैदल सैनिक भयभीत हो गये और परम विह्वलताको प्राप्त होते हुए भागने लगे ॥१८-२१॥ तदनन्तर उनके यथार्थ रूपके जानने वाले अङ्गदने जब उन्हें समझाया तब कहीं बड़ी कठिनाईसे बहुत देर बाद उन्होंने उल्टे पैर रक्खे अर्थान् धापिस लौटे ॥२२॥ जिनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे ऐसे योद्धाओंने रावणके भवनमें डरते-डरते इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार कि मृगोंके कुण्ड सिंहके स्थानमें प्रवेश करते हैं ॥२३॥ बहुतसे द्वारोंको उल्लंघनकर जब वे आगे जातेके लिए असमर्थ हो गये तब सबन भवनोंकी रचनामें जन्मान्धके समान इधर-उधर भटकने लगे ॥२४॥ वे इन्द्रनीलमणि निर्मित दीवालोंको देखकर उन्हें द्वार समझने लगते थे और स्फटिक मणियोंसे खचित भवनोंको आकाश समझ उनके पास जाते थे जिसके फल स्वरूप दोनों ही स्थानोंमें शिलाओंसे मस्तक टकरा जानेके कारण वे वेगसे गिर जाते थे, अत्यधिक आकुलताको प्राप्त होते थे और वेदनाके कारण उनके नेत्र बन्द हो जाते थे ॥२५-२६॥ किसी तरह उठकर आगे बढ़ते थे तो दूसरी कक्षमें पहुँच कर फिर आकाशस्फटिककी दीवालोंमें वेगसे टकरा जाते थे ॥२७॥ जिनके

१. जलिता म० । २. निरर्था म० । ३. प्रतीयन्ते म० । ४. नीलालिका म० । ५. शंकया पेतुं म० ।

इन्द्रनीलमयीं भूमिं स्पृश्या काञ्चित्समानथा । बुद्ध्या प्रतारिताः सन्तः पेतुर्भूतलवेषमसु ॥२६॥
 तत उद्गतभूच्छेदशङ्कया शरणान्तरे । भूमिष्वधेन्द्रनीलीषु ज्ञात्वा ज्ञात्वा पदं ददुः ॥३०॥
 नारो स्फटिकलोपानानामप्रगमनोद्यताम् । व्योम्नीति विविदुः पादन्यासान् तु पुनरन्यथा ॥३१॥
 तां विपृच्छिष्वबो यान्तः शङ्किताः पुनरन्तरा । भित्तिष्वापतितास्तस्थुः स्फटिकीषु सुविह्वलाः ॥३२॥
 पश्यन्ति शिखरं शान्तिभवनस्य समुच्चतम् । गन्तुं पुनर्न ते शक्ता भित्तिभिः स्फटिकारमभिः ॥३३॥
 विलासिनि वदाध्वानमिति कश्चिद्वरान्वितः । करे स्तम्भसमासक्तामगृहीच्छालभञ्जिकाम् ॥३४॥
 दृष्टं कश्चिप्रतीहारं हेमवेत्रलताकरम् । जगाद शान्तिगोहस्य पन्थानं देशयाऽऽश्रिति ॥३५॥
 कथं न किञ्चिदुत्सिक्तो ब्रवीत्येष विसम्भ्रमः । इति प्लन् पाणिना वेगाद्वापाङ्गुलिपूर्णनम् ॥३६॥
 कृत्रिमोऽयमिति ज्ञात्वा हस्तस्पर्शनपूर्वकम् । किञ्चित् कक्षान्तरं जग्मुर्द्वारं विज्ञाय कृच्छतः ॥३७॥
 द्वारमेतन्न कुर्व्यं तु महानीलमयं भवेत् । इति ते संशयं प्राप्ताः करं पूर्वमसारयन् ॥३८॥
 स्वयमप्यागतं मार्गं पुनर्निर्गन्तुमश्मताः । शान्त्यालयगतौ बुद्धिं कुटिलभ्रान्तयो दधुः ॥३९॥
 ततः कञ्चिन्नरं दृष्ट्वा वाचा विज्ञाय सत्यकम् । कश्चिज्जग्राह केशेषु जगाद च सुनिन्दुरम् ॥४०॥
 गच्छ गच्छामतो मार्गं शान्तिहर्म्यस्य दर्शय । इति तस्मिन् पुरो याति ते बभूवुर्निराकुलाः ॥४१॥

पैर और घुटने दूट रहे थे तथा जो ललाटकी तीव्र चौटसे तिलमिळा रहे थे, ऐसे वे पदाति यद्यपि लौटना चाहते थे पर उन्हें निकलनेका मार्ग ही नहीं मिलता था ॥२८॥ जिस किसी तरह इन्द्रनीलमणिमय भूमिका स्मरणकर वे लौटे तो उसीके समान दूसरा भूमि देख उससे झकाये गये और पृथिवीके नीचे जो घर बने हुए थे उनमें जा गिरे ॥२९॥ तदनन्तर कहीं पृथिवी तो नहीं फट पड़ी है, इस शङ्कासे दूसरे घरमें गये और वहाँ इन्द्रनीलमणिमय जो भूमियाँ थीं उनमें जान-जानकर धीरे-धीरे उग देने लगे ॥३०॥ कोई एक स्त्री स्फटिककी सीदियोंसे ऊपर जानेके लिए छत थी उसे देखकर पहले तो उन्होंने समझा कि यह स्त्री अधर आकाशमें स्थित है परन्तु बादमें पैरोंके रखने उठानेकी क्रियासे निश्चय कर सके कि यह नीचे ही है ॥३१॥ उस स्त्रीसे पूछनेकी इच्छासे भीतरकी दीवालोंमें टकराकर रह गये तथा विह्वल होने लगे ॥३२॥ वे शान्तिजिनालयके ऊँचे शिखर देख तो रहे थे परन्तु स्फटिककी दीवालोंके कारण वहाँ तक जानेमें समर्थ नहीं थे ॥३३॥ हे विलासिनि ! मुझे मार्ग बताओ इस प्रकार पूछनेके लिए शीघ्रतासे भरे किसी सुभटने स्वप्नेमें लगी हुई पुतलीका हाथ पकड़ लिया ॥३४॥ आगे चलकर हाथमें स्वर्णमयी वेत्रलताको धारण करने वाला एक कृत्रिम द्वारपाल दिखा उससे किसी सुभटने पूछा कि शीघ्र ही शान्तिजिनालयका मार्ग कही ॥३५॥ परन्तु वह कृत्रिम द्वारपाल क्या उत्तर देता ? जब कुछ उत्तर नहीं मिला तो भरे यह अहंकारी तो कुछ कहता ही नहीं है यह कहकर किसी सुभटने उसे वेगसे एक थप्पड़ मार दी पर इससे उसीकी अंगुलियाँ चूर-चूर हो गईं ॥३६॥ तदनन्तर हाथसे स्पर्शकर उन्होंने जाना कि यह सचमुचका द्वारपाल नहीं किन्तु कृत्रिम द्वारपाल है—पत्थरका पुतला है । इसके पश्चात् बड़ी कठिनाईसे द्वार मालूमकर वे दूसरी कक्षमें गये ॥३७॥ ऐसा तो नहीं है कि कहीं यह द्वार न हो किन्तु महानीलमणियोंसे निर्मित दीवाल हो' इस प्रकारके संशयको प्राप्त हो उन्होंने पहले हाथ पसारकर देख लिया ॥३८॥ उन सबकी भ्रान्ति इतनी कुटिल हो गई कि वे स्वयं जिस मार्गसे आये थे उसी मार्गसे निकलनेमें असमर्थ हो गये अतः निरुपाय हो उन्होंने शान्तिजिनालयमें पहुँचनेका ही विचार स्थिर किया ॥३९॥ तदनन्तर किसी मनुष्यको देख और उसकी बोलीसे उसे सचमुचका मनुष्य जान किसी सुभटने उसके केश पकड़कर कठोर शब्दोंमें कहा कि चल आगे चल शान्तिजिनालयका मार्ग दिखा । इसप्रकार कहनेपर जब वह आगे चलने लगा तब कहीं वे निराकुल हुए ॥४०-४१॥

प्रासाश्च शान्तिनाथस्य भवनं मदमुद्बहत् । कुसुमाञ्जलिभिः साकं विमुञ्चन्तो जयस्वनम् ॥४२॥
 धृतानि स्फटिकस्तम्भै रभ्यदेशेषु केषुचित् । पुराणि ददृशुर्न्योमिनि स्थितानीव सुविस्मयाः ॥४३॥
 इदं चित्रमिदं चित्रमिदमन्यन्महाद्भुतम् । इति ते दर्शयामाकृः सम्यवस्तु परस्परम् ॥४४॥
 पूर्वमेव परित्यक्तवाहनोऽङ्गदसुन्दरः । श्लाघिताद्भुतजैनेन्द्रवास्तुयातपरिच्छदः ॥४५॥
 ललाटोपरिविन्ध्यस्तकरराजीवकुङ्कुमलः । कृतप्रदक्षिणः स्तोत्रमुखरं मुखमुद्बहन् ॥४६॥
 अन्तरङ्गैर्वृतो बाह्यकक्षस्थापितसैन्यकः । बिलासिनीमनःसोभदक्षो विकसितेक्षणः ॥४७॥
 सुसचित्रापितं पश्यन् चरितं जैनपुङ्गवम् । भावेन च नमस्कुर्वन्नाद्यमण्डपभित्तिषु ॥४८॥
 धीरो भगवतः शान्तेर्विवेश परमालयम् । वन्दनां च विधानेन चकार पुरुषममदः ॥४९॥
 तत्रेन्द्रनीलसङ्घातमयूखनिकरप्रभम् । सम्मुखं शान्तिनाथस्य स्वभानुमिव भास्वतः ॥५०॥
 अपश्यच्च दशास्यं स सामिपर्यङ्कसंस्थितम् । ध्यायन् विद्यां समाधानीं प्रवृत्त्यां भरतो यथा ॥५१॥
 जगाद् चाधुना वार्ता का ते रावण कथ्यताम् । तत्ते करोमि यत् कर्त्तुं क्रुद्धोऽपि न यमः क्षमः ॥५२॥
 कोऽयं प्रवर्तितो दम्भो जिनेन्द्राणां पुरस्धया । धिक् ध्वां दुरितकर्माणं वृथा प्रारब्धसत्क्रियम् ॥५३॥
 एवमुक्त्वोत्तरीयान्तददलेन तमताडयत् । कृत्वा कहकहाशब्दं विभ्रमी गर्वनिर्भरम् ॥५४॥
 अग्रतोऽवस्थितान्यस्य पुष्पाभ्यादाय तीव्रगी । अताडयद्दधो वक्त्रे निभृतं प्रमदाजनम् ॥५५॥

तदनन्तर कुसुमाञ्जलियोंके साथ-साथ जय-जय ध्वनिको छोड़ते हुए वे सब हर्ष उत्पन्न करने वाले भी शान्ति-जिनालयमें पहुँचे ॥४२॥ वहाँ उन्होंने कितने ही सुन्दर प्रदेशोंमें स्फटिक मणिके खम्भों द्वारा धारण किये हुए नगर आश्चर्य चकित हो इस प्रकार देखे मानो आकाशमें ही स्थित हों ॥४३॥ यह आश्चर्य देखो, यह आश्चर्य देखो और यह सबसे बड़ा आश्चर्य देखो इस प्रकार वे सब परस्पर एक दूसरेको जिनालयको उत्तम वस्तुएँ दिखला रहे थे ॥४४॥ अथानन्तर जिसने वाहनका पहलसे ही त्याग कर दिया था, जो मन्दिरके आश्चर्यकारी उपकरणोंकी प्रशंसा कर रहा था, जिसने हस्त रूपी कमलकी बोडियाँ ललाटपर धारण कर रक्खी थीं, जिसने प्रदक्षिणाएँ दी थीं, जो स्तोत्र पाठ से मुखर मुखको धारण कर रहा था, जिसने समस्त सैनिकोंको बाह्य कक्षमें ही खड़ा कर दिया था जो प्रमुख-प्रमुख निकटके लोगोंसे घिरा था, जो बिलासिनी जनोंका मन चञ्चल करनेमें समर्थ था; जिसके नेत्र-कमल खिल रहे थे जो आज्ञा मण्डपकी दीवारों पर मूक चित्रों द्वारा प्रस्तुत जिनेन्द्र भगवान्के चरितको देखता हुआ उन्हें भाव नमस्कार कर रहा था, अत्यन्त धीर था और विशाल आनन्दसे युक्त था, ऐसे अंगदकुमारने शान्तिनाथ भगवान्के उत्तम जिनालयमें प्रवेश किया तथा विधिपूर्वक वन्दना की ॥४५-४६॥ तदनन्तर वहाँ उसने श्री शान्तिनाथ भगवान्के सम्मुख अर्धपर्यङ्कासन बैठे हुए रावणको देखा । वह रावण, इन्द्रनीलमणियोंके किरण-समूहके समान कान्ति वाला था और भगवान्के सामने ऐसा बैठा था मानो सूर्यके सामने राहु ही बैठा हो । वह एकाम्र चित्त हो विद्याका उस प्रकार ध्यान कर रहा था जिस प्रकार कि भरत दीक्षा लेनेका विचार करता रहता था ॥५०-५१॥

उसने रावणसे कहा कि रे रावण ! इस समय तेरा क्या हाल है ? सो कह । अब मैं तेरी वह दशा करता हूँ जिसे क्रुद्ध हुआ यम भी करनेके लिए समर्थ नहीं है ॥५२॥ तूने जिनेन्द्र-देवके सामने यह क्या कपट फैला रक्खा है ? तुझ पापीको धिक्कार है । तूने व्यर्थ ही सत्क्रिया का प्रारम्भ किया है ॥५३॥ ऐसा कह कर उसने उसीके उत्तरीय वस्त्रके एक खण्डसे उसे पीटना शुरू किया तथा मुँह बना कर गर्वके साथ कहकहा शब्द किया अर्थात् जोरका अट्टहास किया ॥५४॥ वह रावणके सामने रखे हुए पुष्पोंकी उठा कठोर शब्द करता हुआ नीचे स्थित स्त्री जनों

आकृष्य दारपाणिभ्यां निन्दुरं कुञ्चितेक्षणः । तापनीयानि पद्मानि चकार जिनपूजनम् ॥५६॥
 पुनरागम्य दुःखाभिर्वाग्भिः सञ्चोदयन्मुहुः । अक्षमालां करादस्य गृहीत्वा चपलोऽञ्जिनत् ॥५७॥
 विकीर्णां तां पुरस्तस्य पुनरादाय सर्वतः । शनैरघटयद् भूयः करे चास्य समर्पयत् ॥५८॥
 करे चाकृष्य चिच्छेद पुनश्चाघटयच्चलः । चकार गलके भूयो निदधे मस्तके पुनः ॥५९॥
 ततोऽन्तःपुरराजावखण्डमभ्यमुपागतः । चक्रे प्रीष्माभितप्तस्य कीडां वन्यस्य दन्तिनः ॥६०॥
 प्रभ्रष्टदुष्टदुर्दान्तस्यूरीपृष्ठकचञ्चलः । प्रवृत्तः शङ्कया मुक्तः सोऽन्तःपुरविलोचने ॥६१॥
 कृतग्रन्थिकमाथाय कण्ठे कस्याश्चिदंशुकम् । गुर्वीरोपयति द्रव्यं किञ्चिस्मितपरायणः ॥६२॥
 उत्तरीयेण कण्ठेऽन्यां संयम्यालम्बयन्पुरः । स्तम्भेऽमुञ्च्य पुनः शीघ्रं कृतबुःखविचेष्टिताम् ॥६३॥
 दीनारैः पञ्चभिः काञ्चित् काञ्चीगुणसमन्विताम् । हस्ते निजमनुष्यस्य व्यकीर्णात्क्रीडनोद्यतः ॥६४॥
 नूपुरी कर्णयोश्चक्रे केशपाशे च मेखलाम् । कस्याश्चिन्मूढ्धिन् रत्नं च चकार चरणस्थितम् ॥६५॥
 अभ्योन्यं मूर्द्धजैरन्या बबन्ध कृतवेपनाः । चकार मस्तकेऽन्यस्याखलेकं कृञ्जन्मथूरकम् ॥६६॥
 एवं महावृषणैव गोकुलं परमाकुलम् । कृतमन्तःपुरं तेन सन्निधौ रत्नसां विभोः ॥६७॥
 अत्रागोदावणं क्रुद्धस्त्वया रे राक्षसाधम । मायया सन्वहानेन राजपुत्री तदा हता ॥६८॥
 अधुना पश्यतस्तेऽहं सर्वमेव प्रियाजनम् । हरामि यदि शक्नोषि प्रतीकारं ततः कुरु ॥६९॥

के मुख पर कठोर प्रहार करने लगा ॥५५॥ उसने नेत्रोंको कुछ संकुचित कर दुष्टतापूर्वक स्त्रीके दोनों हाथोंसे स्वर्णमय कमल छीन लिये तथा उनसे जिनेन्द्र भगवान्की पूजा की ॥५६॥ फिर आकर दुःखदायी वचनोंसे उसे बार-बार खिन्नाकर उस चपल अंगदने रावणके हाथसे अक्षमाला लेकर तोड़ डाली ॥५७॥ जिससे वह माला उसके सामने बिखर गई । थोड़ी देर बाद सब जगह से बिखरी हुई उसी मालाको उठा धीरे-धीरे पिरोया और फिर उसके हाथमें दे दी ॥५८॥ तदनन्तर उस चपल अंगदने रावणका हाथ खींच वह माला पुनः तोड़ डाली और फिर पिरो कर उसके गले में डाली । फिर निकाल कर मस्तक पर रखी ॥५९॥ तत्पश्चात् वह अन्तःपुर रूपी कमल वनके बीचमें जाकर गरमीके कारण संतप्त जंगली हाथीकी क्रीड़ा करने लगा अर्थात् जिस प्रकार गरमीसे संतप्त हाथी कमलवनमें जाकर उपद्रव करता है उसी प्रकार अंगद भी अन्तःपुरमें जाकर उपद्रव करने लगा ॥६०॥ बन्धनसे लुटे दुष्ट दुर्दान्त घोड़ेके समान चञ्चल अङ्गद निःशङ्क हो अन्तःपुरके विलोडन करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥६१॥ उसने किसी स्त्रीका वस्त्र छीन उसकी रस्ती बना उसीके कण्ठमें बांधी और उस पर बहुत वजनदार पदार्थ रखबाये । यह सब करता हुआ वह कुछ-कुछ हँसता जाता था ॥६२॥ किसी स्त्रीके कण्ठमें उत्तरीय बस्त्र बाँधकर उसे खम्भेसे लटका दिया फिर जब वह दुःखसे छटपटाने लगी तब उसे शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६३॥ क्रीड़ा करनेमें उद्यत अङ्गदने मेखला सूत्रसे सहित किसी स्त्रीको अपने ही आदमीके हाथमें पाँच दीनारमें बेच दिया ॥६४॥ उसने किसी स्त्रीके नूपुर कानोंमें, और मेखला केशपाशमें पहिना दी तथा मस्तकका मणि चरणोंमें बाँध दिया ॥६५॥ उसने भयसे कौपती हुई कितनी ही अन्य स्त्रियोंको परस्पर एक दूसरेके शिरके बालोंसे बाँध दिया तथा किसी अन्य स्त्रीके मस्तक पर शब्द करता हुआ चतुर मथूर बैठा दिया ॥६६॥ इस प्रकार जिस तरह कोई सांड गायोंके समूहको अत्यन्त व्याकुल कर देता है । उसी तरह उसने रावणके समीप ही उसके अन्तःपुरको अत्यन्त व्याकुल कर दिया था ॥६७॥ उसने क्रुद्ध होकर रावणसे कहा कि अरे नीच राक्षस ! तूने उस समय पराक्रमसे रहित होनेके कारण मायासे राजपुत्रीका अपहरण किया था परन्तु इस समय मैं तेरे देखते देखते तेरी सब स्त्रियोंको अपहरण करता हूँ । यदि तेरी शक्ति हो तो

१. दुर्दान्तः म० । २. विकीर्णात् म०, ज० । ३. कृतवेपना म० । ४. क्रुद्धित्स्त्वया म० ।

एवमुक्त्वा समुत्पत्य पुरोऽस्य मृगराजवत् । महिषीं सर्वतोऽभीष्टां प्राप्तपवणवेषधुम् ॥७०॥
 विलोलनयनां वेण्यां गुहीत्वाऽत्यन्तकातराम् । आचकर्प यथा राजलक्ष्मीं भरतपार्थिवः ॥७१॥
 जगौ च शूर सेयं ते दयिता जीवितादपि । मन्दोदरी महादेवी हियते गुणमेदिनी ॥७२॥
 इयं विद्याधरेन्द्रस्य सभामण्डपवर्तिनः । चामरग्राहिणी चार्वा सुग्रीवस्य भविष्यति ॥७३॥
 ततोऽसौ कम्पविस्त्रंसिस्तनकुम्भतटांशुकम् । समाहितं मुहुस्तन्वी कुर्वती चलपाणिना ॥७४॥
 ब्राध्यमानाधरा नेत्रवारिणानन्तरं स्नुता । चलद्भूषणनिःस्वानमुखरीकृतविग्रहा ॥७५॥
 सजन्ती पादयोर्भूयः प्रविशन्ती भुजान्तरम् । दैन्यं परममापन्ना भर्तारमिदमभ्यधात् ॥७६॥
 प्रायस्व नाथ किन्वेतामवस्थां मे न पश्यसि । किमन्य एव जातोऽसि नासि सः स्यादशानन ॥
 अहो ते वीतरागत्वं निर्ग्रन्थानां समाश्रितम् । ईदृशे सङ्गते दुःखे किमनेन भविष्यति ॥७८॥
 धिगस्तु तव वीर्येण किमपि ध्यानमायुषः । यदस्य पापचेष्टस्य छिनत्सि न शिरोऽसिना ॥७९॥
 चन्द्रादित्यसमानेभ्यः पुरुषेभ्यः पराभवम् । नासि सोढाऽधुना कस्मात्सहसे क्षुद्रतोऽमुतः ॥८०॥
 लङ्केश्वरस्तु सङ्गादध्यानसङ्गतमानसः । न किञ्चिदशृणोन्नापि पश्यतिस्म सुनिश्चयः ॥८१॥
 अर्धपर्यङ्कसंविष्टो दूरस्थापितमत्सरः । मन्दोरुगुहायातरनकृतमहाद्युतिः ॥८२॥
 सर्वेन्द्रियक्रियामुक्तो विद्याराधनतत्परः । निष्कम्पविग्रहो धीरः स ह्यासीत्पुस्तकायवत् ॥८३॥
 विद्यां विचिन्तयन्नेप मैथिलीमिव रात्रवः । जगाम मन्दरस्याद्रेः स्थिरत्वेन समानताम् ॥८४॥

प्रतीकार कर ॥६८-६९॥ इस प्रकार कह वह सिंहके समान रावणके सामने उल्ला और जो उसे सबसे अधिक प्रिय थी, जो भयसे काँप रही थी, जिसके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे और जो अत्यन्त कातर थी ऐसी पट्टरानी मन्दोदरीकी चोटी पकड़कर उस तरह खींच लाया जिस तरह कि राजा भरत राजलक्ष्मीको खींच लाये थे ॥७०-७१॥ तदनन्तर उसने रावणसे कहा कि हे शूर ! जो तुम्हे प्राणोंसे अधिक प्यारी है तथा जो गुणोंकी भूमि है, ऐसी यह वही मन्दोदरी महारानी हगी जा रही है ॥७२॥ यह सभामण्डपमें वर्तमान विद्याधरोंके राजा सुग्रीवकी उत्तम चमर ढोलनेवाली होगी ॥७३॥ तदनन्तर जो कँपकँपीके कारण खिसकते हुए स्तनतटके वस्त्रको अपने चञ्चल हाथसे बार-बार ठीक कर रही थी, निरन्तर भरते हुए अश्रुजलसे जिसका अधरोष्ठ बाधित हो रहा था और हिलते हुए आभूषणोंके शब्दसे जिसका समस्त शरीर शब्दायमान हो रहा था ऐसी कृशाङ्गी मन्दोदरी परमदीनताको प्राप्त हो कभी भर्तारके चरणोंमें पड़ती और कभी भुजाओंके मध्य प्रवेश करती हुई भर्तारसे इस प्रकार बोली कि ॥७४-७६॥ हे नाथ ! मेरी रक्षा करो, क्या मेरी इस दशाको नहीं देख रहे हो ? क्या तुम और ही हो गए हो ? क्या अब तुम वह दशानन नहीं रहे ? ॥७७॥ अहो ! तुमने तो निर्ग्रन्थ मुनियों जैसी वीतरागता धारण कर ली पर इस प्रकारके दुःख उपस्थित होने पर इस वीतरागतासे क्या होगा ? ॥७८॥ कुछ भी ध्यान करनेवाले तुम्हारे इस पराक्रमको धिक्कार ही जो खड्गसे इस पापीका शिर नहीं काटते ही ॥७९॥ जिसे तुमने पहले कभी चन्द्र और सूर्यके समान तेजस्वी मनुष्योंसे प्राप्त होनेवाला पराभव नहीं सहा सो इस समय इस लुद्रसे क्यों सह रहे हो ? ॥८०॥ यह सब हो रहा था परन्तु रावण निश्चयके साथ प्रगाढ़ ध्यानमें अपना चित्त लगाये हुआ था यह मानो कुछ सुन ही नहीं रहा था । वह अर्धपर्यङ्कासनसे बैठा था, मत्सरभावको उसने दूर कर दिया था, मन्दरगिरिकी विशाल गुफाओंसे प्राप्त हुई रत्नराशिके समान उसकी महाकान्ति थी, वह समस्त इन्द्रियों की क्रियासे रहित था, विद्याकी आराधनामें तत्पर था, निष्कम्प शरीरका धारक था, अत्यन्त धीर था और ऐसा जान पड़ता था मानो मिट्टीका पुतला ही हो ॥८१-८३॥ जिस प्रकार राम सीताका ध्यान

ततोऽथ गदतः स्पष्टं द्योत्यन्ती दिशी दश । जयेति जनितालापा सस्य विद्या पुरः स्थिता ॥८५॥
जगौ च देव सिद्धाऽहं तवाज्ञाकरणोद्यता । नियोगो दीयतां नाथ साध्यः सकलविष्टये ॥८६॥
एकं चक्रधरं मुक्त्वा प्रतिकूलमवस्थितम् । वशीकरोमि ते लोकं भवदिच्छानुवर्तिनी ॥८७॥
करे च चक्ररत्नं च तवैवोत्तम वर्तते । पद्मलक्ष्मीधराधैर्मे ग्रहणं किमिवापरैः ॥८८॥
मद्विधानां निसर्गोऽयं यज्ञ चक्रिणि शक्नुमः । किञ्चित्पराभवं कर्तुं मन्यत्र तु किमुच्यते ॥८९॥
ब्रूयद्य सर्वदैव्यानां करोमि किमु मारणम् । भवत्यप्रियचित्तानां किं वा स्वर्गोक्तसामपि ॥९०॥
क्षुद्रविद्यात्तगर्वेषु नभस्वपथगामिषु । आदरो नैव मे कश्चिद्द्वराकेषु तृणेष्विव ॥९१॥

उपजातिवृत्तम्

प्रणम्य विद्या समुपासितोऽसौ समाप्तयोगः परमद्युतिस्थः ।
दशाननो यावदुदारचेष्टः प्रदक्षिणं शान्तिगृहं करोति ॥९२॥
तावत्परित्यज्य मनोभिरामां मन्दोदरीं खेदपरीतदेहाम् ।
उत्पत्य खं पद्मसमागमेन गतोऽङ्गदोऽसौ रविवत्सुतेजाः ॥९३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मायने बहुरूपविद्यासन्निधानामिधानं
नामैकसप्ततितमं पर्व ॥७१॥

करते थे उसी प्रकार वह विद्याका ध्यान कर रहा था । इस तरह वह अपनी स्थिरतासे मन्दर-
गिरिकी समानताकी प्राप्त हो रहा था ॥८४॥

अथानन्तर जिस समय मन्दोदरी रावणसे उस प्रकार कह रही थी उसी समय दशो
दिशाओंको प्रकाशित करती एवं जय-जय शब्दका उच्चारण करती बहुरूपिणी विद्या उसके सामने
खड़ी हो गई ॥८५॥ उसने कहा भी कि हे देव ! मैं सिद्ध हो गई हूँ, आपकी आज्ञा पालन करनेमें
उद्यत हूँ, हे नाथ ! आज्ञा दी जाय, समस्त संसारमें मुझे सब साध्य है ॥८६॥ प्रतिकूल खड़े
हुए एक चक्रधरको छोड़ मैं आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करती हुई समस्त लोकको आपके आधीन
कर सकती हूँ ॥८७॥ हे उत्तम पुरुष ! चक्ररत्न तो तुम्हारे ही हाथमें है । राम लक्ष्मण आदि
अन्य पुरुष मेरा क्या ग्रहण करेंगे अर्थात् उनमें मेरे ग्रहण करनेकी शक्ति ही क्या है ? ॥८८॥
हमारी जैसी विद्याओंका यही स्वभाव है कि हम चक्रवर्तीका कुछ भी पराभव करनेके लिए
समर्थ नहीं हैं और इसके अतिरिक्त दूसरेका तो कहना ही क्या है ? ॥८९॥ कहो आज, आपसे
अप्रसन्न रहनेवाले समस्त दैत्योंका संहार करूँ या समस्त देवोंका ? ॥९०॥ क्षुद्र विद्याओंसे
गर्वाले, तृणके समान तुच्छ दयनीय विद्याधरोंमें मेरा कुछ भी आदर नहीं है अर्थात् उन्हें कुछ
भी नहीं समझती हूँ ॥९१॥ इस तरह प्रणाम कर विद्या जिसकी उपासना कर रही थी, जिसका
ध्यान पूर्ण हो चुका था, जो परमदीप्तिके मध्य स्थित था तथा जो उदार चेष्टाका धारक था ऐसा
दशानन जब तक शान्ति-जिनालयकी प्रदक्षिणा करता है तब तक सूर्यके समान तेजस्वी
अङ्गद, खेदलिप्त शरीरकी धारक सुन्दरी मन्दोदरीको छोड़ आकाशमें उड़कर रामसे जा
मिला ॥९२-९३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणे नामक पद्मायनमें
रावणके बहुरूपिणी विद्याकी सिद्धिका वर्णन करनेवाला इकहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७१॥

द्वासप्ततितमं पर्व

ततः स्त्रीणां सहस्राणि समस्तान्यस्य पादयोः । रुदन्यः प्रणिपत्योचुः युगपच्चारुनिःस्वनम् ॥१॥
 सर्वविद्याधरार्थांशे वर्तमाने त्वयि प्रभो । बालकेनाङ्गदेनैस्य त्रयमद्य खलीकृताः ॥२॥
 त्वयि ध्यानसुपासीने परमे तेजसास्पदे । विद्याधरकलशोत्तो विकारं सोऽपि संश्रितः ॥३॥
 पर्येतकामवस्थां नो विहिता हतचेतसा । सौम्रीविणा विशङ्केम शिशुना भवतः पुरः ॥४॥
 श्रुत्वा तद्बचनं तासां समाश्वासनतत्परः । त्रिकूटाधिपतिः क्रुद्धो जगाद् विमलेक्षणः ॥५॥
 मृत्युपाशेन बद्धोऽसौ ध्रुवं यदिति चेष्टते । देव्यो विमुच्यतां दुःखं भवत प्रकृतिस्थिताः ॥६॥
 कान्ताः ! कर्तास्मि सुग्रीवं निर्ग्रीवं श्वो रणाजिरे । तमोमण्डलकं तं च प्रभामण्डलनामकम् ॥७॥
 तयोस्तु कीदृशः कोपो भूमिगोचरकोटयोः । दुष्टविद्याधरान् सर्वान् निहन्तास्मि न संशयः ॥८॥
 भूक्षेपमात्रकस्यापि दयिता मम शत्रवः । गम्याः किमु महारूपविद्यया स्युस्तथा न ते ॥९॥
 एवं ताः सान्त्वय दयिता बुद्ध्या निहतशत्रवः । तस्थौ देहस्थितौ राजा निष्क्रम्य जिनसन्धनः ॥१०॥
 नानावार्धकृतानन्दश्चित्रनाम्नसमायुतः । जज्ञे स्नानविधिस्तस्य पुष्पायुधसमाकृतेः ॥११॥
 राजतैः कलशैः कैश्चित् सम्पूर्णशशिसन्धिभैः । श्यामाभिः स्नाप्यते कान्तिज्योत्स्नासम्प्लावितात्मभिः ॥१२॥

अथानन्तर रावणकी अठारह हजार स्त्रियों एक साथ रुदन करती उसके चरणोंमें पड़कर निम्नप्रकार मधुर शब्द कहने लगीं ॥१॥ उन्होंने कहा हे नाथ ! समस्त विद्याधरोंके अधिपति जो आप सो आपके विद्यमान रहते हुए भी बालक अङ्गदने आकर आज हम सबको अपमानित किया है ॥२॥ तेजके उत्तम स्थानस्वरूप आपके ध्यानारूढ रहने पर वह नीच विद्याधररूपी जुगन् विकारभावको प्राप्त हुआ ॥३॥ आपके सामने सुग्रीवके दुष्ट बालकने निशङ्क हो हम लोगोंकी जो दशा की है उसे आप देखो ॥४॥ उन स्त्रियोंके वचन सुनकर जो उन्हें सान्त्वना देनेमें तत्पर था तथा जिसकी दृष्टि निर्मल थी ऐसा रावण कुपित होता हुआ बोला कि हे देवियो ! दुःख छोड़ो और प्रकृतिस्थ होओ—शान्ति धारण करो । वह जो ऐसी चेष्टा करता है सो निश्चित जानो कि वह मृत्युके पाशमें बद्ध हो चुका है ॥५-६॥ हे बलभाओ ! मैं कल ही रणाङ्गणमें सुग्रीवको निर्ग्रीव—ग्रीवारहित और प्रभामण्डलको तमोमण्डलरूप कर दूँगा ॥७॥ कीटके समान तुच्छ उन भूमिगोचरियों राम लक्ष्मणके ऊपर क्या क्रोध करना है ? किन्तु उनके पक्षपर एकत्रित हुए जो समस्त विद्याधर हैं उन्हें अवश्य मारूँगा ॥८॥ हे प्रिय स्त्रियो ! शत्रु तो मेरी भीहके इशारे मात्रसे साध्य हैं फिर अब तो बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई अतः उससे वशीभूत क्यों न होंगे ? ॥९॥ इस प्रकार उन स्त्रियोंको सान्त्वना देकर रावणने मनमें सोचा कि अब तो मैंने शत्रुओंको मार लिया । तदनन्तर जिनमन्दिरसे निकलकर वह स्नान आदि शरीर सम्बन्धी कार्य करनेमें लीन हुआ ॥१०॥

अथानन्तर जिसमें नानाप्रकारके वादित्रोंसे आनन्द मनाया जा रहा था तथा जो नाना-प्रकारके अद्भुत नृत्योंसे सहित था ऐसा, कामदेवके समान सुन्दर रावणका स्नान-समारोह सम्पन्न हुआ ॥११॥ जो कान्तिरूपी चाँदीमें निमग्न होनेके कारण श्यामा अर्थात् रात्रिके समान जान पड़ती थी ऐसी कितनी ही श्यामा अर्थात् नवयौवनवती स्त्रियोंने पूर्णचन्द्रके समान चाँदीके

१. यदि विचेष्टते । २. भवत्यः म० । ३. देहं स्थितौ म० । ४. बाह्य म० । ५. 'क्षणदा रजनी नक्तं दोषा श्यामा क्षपाकरः' इति धनञ्जयः । ६. स्नाप्यते म०, ज० ।

पद्मकान्तिभिरन्याभिः सन्ध्याभिरिव सादरम् । बालभास्वरसङ्काशैः कलशैर्हाटकान्मभिः ॥१३॥
 गरुममणिनिर्माणैः कुम्भैरन्याभिरुत्तमैः । स्त्रीभिः साक्षादिव श्रीभिः पद्मपत्रपुटैरिव ॥१४॥
 कैश्विद्भालातपच्छायैः कदलीगर्भपाण्डुभिः । अन्यैर्गन्धसमाकृतमधुव्रतकदम्बकैः ॥१५॥
 उद्दत्तनैः सुलीलाभिः स्त्रीभिरुद्दत्तितोऽभजत् । स्नानं नानामणिरुकात्प्रभाभाजि वरासने ॥१६॥
 सुस्नातोऽलंकृतः कान्तः प्रयतो भावपूरितः । पुनः शान्तिजितेन्द्रस्य विवेश भवनं नृपः ॥१७॥
 कृत्वा तत्र परां पूजामर्हतां स्तुतितत्परः । चिरं त्रिभिः प्रणामं च भेजे भोजनमण्डपम् ॥१८॥
 चतुर्विधोत्तमाहारविधिं निर्माथ पाथिवः । विद्यापरीक्षणं कर्तुमारं कौडनभूमिकाम् ॥१९॥
 अनेकरूपनिर्माणं जनितं तेन विद्यया । विविधं चाद्भुतं कर्म विद्याधरजनातिगम् ॥२०॥
 तत् कराहतभूकम्पसमाशूर्णितविग्रहम् । जातं परबलं भीतं जगौ निवनशङ्कितम् ॥२१॥
 ततस्तं सचिवाः प्रोचुः कृतविद्यापरीक्षणम् । अधुना नाथ मुखात्वां नास्ति राघवसूदनः ॥२२॥
 भवतो नापरः कश्चित् पद्मस्य क्रोधसङ्गिनः । ह्येवासस्य पुरः स्थातुं समर्थः समराजिरे ॥२३॥
 विद्ययाथ महर्द्धिस्थो विकृत्य परमं बलम् । सम्प्रति प्रमदोद्यानं प्रतस्थे प्रतिचक्रभृत् ॥२४॥
 सचिवैरावृत्तो धीरैः सुरैराखण्डलो यथा । अप्रच्युष्यः समागच्छन् स रेजे भास्करोपमः ॥२५॥

कलशांसे उसे स्नान कराया ॥१२॥ कमलके समान कान्तिवाली होनेसे जो प्रातःसंध्याके समान जान पड़ती थी ऐसी कितनी ही स्त्रियोंने बालसूर्यके समान देदीप्यमान स्वर्णमय कलशांसे आदरपूर्वक उसे नहलाया था ॥१३॥ कुछ अन्य स्त्रियोंने नीलमणिसे निर्मित उत्तम कलशांसे उसे स्नान कराया था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कमलके पत्रपुटोंसे लक्ष्मीनामक देवियोंने ही स्नान कराया हो ॥१४॥ कितनी ही स्त्रियोंने प्रातःकालीन घामके समान लालवर्णके कलशांसे, कितनी ही स्त्रियोंने कदली वृक्षके भीतरी भागके समान सफेद रङ्गके कलशांसे तथा कितनी ही स्त्रियोंने सुगन्धिके द्वारा भ्रमरसमूहको आकर्षित करनेवाले अन्य कलशांसे उसे नहलाया था ॥१५॥ स्नानके पूर्व उत्तम लीलावती स्त्रियोंने उससे नानाप्रकारके सुगन्धित उबटनोंसे उबटन लगाया था और उसके बाद उसने नाना प्रकारके मणियोंकी फैलती हुई कान्तिसे युक्त उत्तम आसन पर बैठकर स्नान किया था ॥१६॥ स्नान करनेके बाद उसने अलंकार धारण किये और तदनन्तर उत्तम भावोंसे युक्त हो श्रीशान्ति-जिनालयमें पुनः प्रवेश किया ॥१७॥ वहाँ उसने स्तुतिमें तत्पर रहकर चिरकाल तक अर्हन्तभगवान्की उत्तम पूजा की, मन, वचन, कायसे प्रणाम किया और उसके बाद भोजन गृहमें प्रवेश किया ॥१८॥ वहाँ चार प्रकारका उत्तम आहार कर वह विद्याकी परीक्षा करनेके लिए क्रीडाभूमिमें गया ॥१९॥ वहाँ उसने विद्याके प्रभावसे अनेक रूप बनाये तथा नानाप्रकारके ऐसे आश्चर्यजनक कार्य किये जो अन्य विद्याधरोंको दुर्लभ थे ॥२०॥ उसने पृथ्वीपर इतने जोरसे हाथ पटक्या कि पृथ्वी काँप उठी और उसपर स्थित शत्रुओंके शरीर घूमने लगे तथा शत्रुसेना भयभीत हो मरणकी शंकासे चिल्लाने लगी ॥२१॥ तदनन्तर विद्याकी परीक्षा कर चुकनेवाले रावणसे मन्त्रियोंने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपको छोड़ और कोई दूसरा रामको मारनेवाला नहीं है ॥२२॥ रणाङ्गणमें क्रुपित हो बाण छोड़नेवाले रामके सामने खड़ा होनेके लिए आपके सिवाय और कोई दूसरा समर्थ नहीं है ॥२३॥

अथानन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंसे सम्पन्न रावण, विद्याके प्रभावसे एक बड़ी सेना बना, चक्रवर्त्तको धारण करता हुआ उस प्रमदनामक उद्यानकी ओर चला जहाँ सीताका निवास था ॥२४॥ उस समय धीर वीर मन्त्रियोंसे विरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो देवोंसे घिरा हुआ इन्द्र ही हो। अथवा जो बिना किसी रोक-टोकके चला आ रहा था ऐसा रावण सूर्यके

तमालोक्य समायान्तं विद्याधर्यो बभाषिरे । पश्य पश्य शुभे सीते रावणस्य महाद्युतिम् ॥२६॥
 पुष्पकाम्रादयं श्रीमान् भवतीर्थं महाबलः । नानाधातुविविचित्राङ्गान् महीभृद्गह्वरादिव ॥२७॥
 गजेन्द्र इव सर्षीबः सूर्याशुपरितापितः । स्मरानलपरीताङ्गः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥२८॥
 पुष्पशोभापरिच्छन्नमुपगीतं षडङ्घ्रिभिः । विशति प्रमदोद्यानं दृष्टिरत्र निधीयताम् ॥२९॥
 त्रिकूटाधिपतानस्मिन् रूपं निरुपमं श्रिते । सफला आयतां ते दृग् रूपं चास्येदमुत्तमम् ॥३०॥
 ततो विमलया दृष्ट्या तथा बाह्यान्तरात्मनः । चापान्यकारितं वीषय बलमेवमचिन्तयत ॥३१॥
 अदृष्टपारमुद्बृक्षं बलमीदृक्ष महाप्रभम् । रामो लक्ष्मीधरो वाऽपि दुःखं जयति संयुगे ॥३२॥
 अथन्या किं नु पद्माभं किं वा लक्ष्मणसुन्दरम् । इतं श्रोष्यामि सख्माम्ने किं वा पापा सहोदरम् ॥३३॥
 एवं चिन्तामुपायातां परमाकुलितात्मिकाम् । कम्पमानां परित्रस्तां सीतामागत्य रावणः ॥३४॥
 जगाद देवि ! पापेन त्वं मया छञ्चना हता । क्षात्रगोत्रप्रसूतानां किमिदं साप्रतं सताम् ॥३५॥
 अवश्यमभाविनो नूनं कर्मणो गतिरीदृशी । स्नेहस्य परमस्येयं मोहस्य बलिमोऽथ वा ॥३६॥
 साधूनां सन्निधौ पूर्वं व्रतं भगवतो मया । वन्द्यस्यानन्तवीर्यस्य पादमूले समाञ्जितम् ॥३७॥
 या वृणोति न मां नारी रमयाभि न तामहम् । यद्युर्वशी स्वयं रम्भा यदि वाऽन्या मनोरमा ॥३८॥
 इति पालयता सत्यं प्रसादापेक्षिणा मया । प्रसभं रमिता नासि जगदुत्तमसुन्दरि ॥३९॥
 अधुनाऽऽलम्बन्ने छिन्ने मद्भुजप्रेरितैः शरैः । वैदेहि ! पुष्पकारुढा विहर स्वैच्छया जगत् ॥४०॥

समान सुशोभित हो रहा था ॥२५॥ उसे आता देख विद्याधरियोने कहा कि हे शुभे ! सीते ! देख, रावणकी महाकान्ति देख ॥२६॥ जो नाना धातुओंसे चित्र-विविचित्र हो रहा है ऐसे पुष्पक विमानसे उतरकर यह श्रीमान् महाबलवान् ऐसा चला आ रहा है मानो पर्वतकी गुफासे निकलकर सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त हुआ उन्मत्त गजराज ही आ रहा हो । इसका समस्त शरीर कामभिसे व्याप्त है तथा यह पूर्णचन्द्रके समान मुखको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ यह फूलोंकी शोभासे व्याप्त तथा भ्रमरोंके संगीतसे मुखरित प्रमद उद्यानमें प्रवेश कर रहा है । जरा, इसपर दृष्टि तो डालो ॥२९॥ अनुपम रूपको धारण करनेवाले इस रावणकी देखकर तेरी दृष्टि सफल हो जावेगी । यथार्थमें इसका रूप ही उत्तम है ॥३०॥ तदनन्तर सीताने निर्मल दृष्टिसे बाहर और भीतर धनुषके द्वारा अन्धकार उत्पन्न करनेवाले रावणका बल देख इस प्रकार विचार किया कि इसके इस प्रचण्ड बलका पार नहीं है । राम और लक्ष्मण भी इसे युद्धमें बड़ी कठिनाईसे जीत सकेंगे ॥३१-३२॥ मैं बड़ी अभागिनी हूँ, बड़ी पापिनी हूँ जो युद्धमें राम लक्ष्मण अथवा भाई भामण्डलके मरनेका समाचार सुनूँगी ॥३३॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त होनेसे जिसकी आत्मा अत्यन्त विह्वल हो रही थी, तथा जो भयसे काँप रही थी ऐसी सीताके पास आकर रावण बोला कि हे देवि ! मुझ पापीने तुम्हें छलसे हरा था सो क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए सत्पुरुषोंके लिए क्या यह उचित है ? ॥३४-३५॥ जान पड़ता है कि किसी अवश्य भावी कर्मकी यह दशा है अथवा परम स्नेह और सातिशय बलवान् मोहका यह परिणाम है ॥३६॥ मैंने पहले अनेक मुनियोंके सन्निधानमें वन्दनीय श्रीभगवान् अनन्तवीर्य केवलीके पादमूलमें यह व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे नहीं बरेगी मैं उसके साथ रमण नहीं करूँगा भले ही वह उर्वशी, रम्भा अथवा और कोई मनोहारिणी स्त्री हो ॥३७-३८॥ हे जगत्की सर्वोत्तम सुन्दरि ! इस सत्यव्रतका पालन करता हुआ मैं तुम्हारे प्रसादकी प्रतीक्षा करता रहा हूँ और बलपूर्वक मैंने तुम्हारा रमण नहीं किया है ॥३९॥ हे वैदेहि ! अब मेरी भुजाओंसे प्रेरित बाणोंसे तुम्हारा आलम्बन जो राम था सो छिन्न होनेवाला है इसलिए पुष्पक विमानमें आरूढ़

शिखराण्यगराजस्य चैत्यकूटानि सागरम् । महानदींश्च पश्यन्ती जनयात्मसुखासिकाम् ॥४१॥
 कृत्वा करपुटं सीता ततः करुणमभ्यधात् । वाष्पसम्भारसंरुद्धकण्ठा कृच्छ्रेण सादरम् ॥४२॥
 दशानन ! यदि प्रीतिर्विद्यते तव मां प्रति । प्रसादो वा ततः कर्तुं ममेदं वाक्यमर्हसि ॥४३॥
 कुद्धेनापि स्वया संख्ये प्राप्सोऽभिमुखतामसी । अनिवेदितसन्देशो न हन्तव्यः प्रियो मम ॥४४॥
 पद्य भामण्डलस्वस्त्रा तव सन्दिष्टमोदशम् । यथा श्रुत्वाऽन्यथा स्वाहं विधियोगेन संयुगे ॥४५॥
 महता शोकभारेण समाक्रान्ता सती प्रभो । वात्याहृतप्रदीपस्य शिखेव क्षणमात्रतः ॥४६॥
 राजर्षेस्तनया शोच्या जनकस्य महात्मनः । प्राणानेषा न मुञ्चामि त्वत्समागमनोत्सुका ॥४७॥
 इत्युक्त्वा मूर्च्छिता भूमौ पपात सुकुलेक्षणा । हेमकल्पलता यद्रज्जना मत्तेन दन्तिना ॥४८॥
 तदवस्थामिमाम् दृष्ट्वा रावणो मृदुमानसः । बभूव परमं दुःखी चिन्ता चैतामुपागतः ॥४९॥
 अहो निकाचितस्नेहः कर्मबन्धोदयादयम् । अवसानविनिर्मुक्तः कोऽपि संसारगह्वरे ॥५०॥
 धिक् धिक् किमिदमरुलाध्यं कृतं सुविकृतं मया । यदन्योन्यरतं भीरुमिथुनं सद्भियोजितम् ॥५१॥
 पापातुरो विना कार्यं पृथग्जनसमो महत् । अयशोमलमाप्तोऽस्मि सद्भिरत्यन्तनिन्दितम् ॥५२॥
 शुद्धामभोजसमं गोत्रं विपुलं मलिनीकृतम् । दुरात्मना मया कथं कथमेतदनुष्ठितम् ॥५३॥
 धिङ्गनारी पुरुवेन्द्राणां सहसा मारणत्मिकाम् । किम्पाकफलदेशीयां क्लेशोत्पत्तिरमुन्धराम् ॥५४॥
 भोगिमूर्द्धमणिच्छायासदृशी मोहकारिणी । सामान्येनाङ्गना तावत् परस्त्री तु विशेषतः ॥५५॥

हो अपनी इच्छानुसार जगत्में विहार करो ॥४०॥ सुमेरुके शिखर, अकृत्रिम चैत्यालय, समुद्र और महानदियोंको देखती हुई अपने आपको सुखी करो ॥४१॥

तदनन्तर अश्रुओंके भारसे जिसका कण्ठ रुँध गया था ऐसी सीता बड़े कष्टसे आदर-पूर्वक हाथ जोड़ करुण स्वरमें रावणसे बोली ॥४२॥ कि हे दशानन ! यदि मेरी प्रति तुम्हारी प्रीति है अथवा मुझ पर तुम्हारी प्रसन्नता है तो मेरा यह वचन पूर्ण करनेके योग्य हो ॥४३॥ युद्धमें राम तुम्हारे सामने आवें तो कुपित होने पर भी तुम मेरा सन्देश कहे बिना उन्हें नहीं मारना ॥४४॥ उनसे कहना कि हे राम ! भामण्डलकी बहिनने तुम्हारे लिए ऐसा सन्देश दिया है कि कर्मयोगसे तुम्हारे विषयकी युद्धमें अन्यथा बात सुन महात्मा राजर्षि जनककी पुत्री सीता, अत्यधिक शोकके भारसे आक्रान्त होती हुई आँधीसे ताड़ित दीपककी शिखाके समान क्षणभर में शोचनीय दशाको प्राप्त हुई है । हे प्रभो ! मैंने जो अभीतक प्राण नहीं छोड़े हैं सो आपके समागमकी उत्कण्ठासे ही नहीं छोड़े हैं ॥४५-४७॥ इतना कह वह मूर्च्छित हो नेत्र बन्द करती हुई उस तरह पृथिवी पर गिर पड़ी जिस तरह कि मदोन्मत्त हाथीके द्वारा खण्डित सुवर्णमयी कल्पलता गिर पड़ती है ॥४८॥

तदनन्तर सीताकी वैसी दशा देख कोमल चित्तका धारी रावण परम दुखी हुआ तथा इस प्रकार विचार करने लगा कि अहो ! कर्मबन्धके कारण इनका यह स्नेह निकाचित स्नेह है—कभी छूटनेवाला नहीं है । जान पड़ता है कि इसका संसार रूपी गर्तमें रहते कभी अवसान नहीं होगा ॥४९-५०॥ मुझे बार-बार धिक्कार है मैंने यह क्या निन्दनीय कार्य किया जो परस्पर प्रेयसे युक्त इस मिथुनका विछोह कराया ॥५१॥ मैं अत्यन्त पापी हूँ बिना प्रयोजन ही मैंने साधारण मनुष्यके समान सत् पुरुषोंसे अत्यन्त निन्दनीय अपयश रूपी मल प्राप्त किया है ॥५२॥ मुझ दुष्टने कमलके समान शुद्ध विशाल कुलको मलिन किया है । हाय हाय मैंने यह अकार्य कैसे किया ? ॥५३॥ जो बड़े-बड़े पुरुषोंको सहसा मार डालती है, जो किम्पाक फलके समान है तथा दुःखोंकी उत्पत्तिकी भूमि है ऐसी स्त्रीको धिक्कार है ॥५४॥ सामान्य रूपसे स्त्री मात्र,

१. सीता । २. निकाचितस्नेहः म० । ३. दहम् म० ।

नदीव कुटिला भीमा धर्मार्थपरिनाशिनी । वर्जनीया सतां यनात्सर्वाशुभमहाखनिः ॥५६॥
 अमृतेनेव या दृष्टा मामसिद्धन्मनोहरा । अमरीभ्योऽपि दयिता सर्वाभ्यः पूर्वमुत्तमा ॥५७॥
 अथैव सा परासक्तहृदया जनकात्मजा । विषकुम्भीसमात्यन्तं सज्जातोद्भेजनी मम ॥५८॥
 अनिच्छन्त्यपि मे पूर्वमशून्यं वाकरोन्मनः । सैवेयमधुना जीर्णतृणानादरमागता ॥५९॥
 अधुनाऽन्याहितस्वान्ता यद्यपीच्छेदियं तु माम् । तथापि काऽनया प्रीतिः सज्जावपरिमुक्तया ॥६०॥
 आसीद्यदानुकूलो मे विद्वान् भ्राता विभीषणः । उपदेष्टा तदा नैवं शर्मं दग्धं मनो गतम् ॥६१॥
 प्रमादाद्विकृतिं प्राप्तं मनः समुपदेशतः । प्रायः पुण्यवतां पुंसां वशीभावेऽवतिष्ठते ॥६२॥
 श्वैः संप्रामकृतौ साहं सच्चिवैर्मन्त्रणं कृतम् । अधुना कीदृशी मैत्री वीरलोकविगर्हिता ॥६३॥
 योद्धव्यं करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते । अहो सङ्कटमापन्नः प्राकृतोऽहमिदं महत् ॥६४॥
 यद्यर्पयामि पन्नाय जानकीं कृपयाऽधुना । लोको दुर्महच्चित्तोऽयं ततो मां वेत्त्यशक्तकम् ॥६५॥
 यत् किञ्चित्करणोन्मुक्तः सुखं जीवति निर्घृणः । जीवत्यस्मद्विधो दुःखं करुणामृदुमानसः ॥६६॥
 हरिताप्यसमुत्तङ्गौ तौ कृत्वाऽऽजौ निरक्षकौ । जीवग्राहं गृहीतौ च पन्नलक्षणसंज्ञकौ ॥६७॥
 पश्चाद्विभवसंयुक्तो पन्ननाभाय मैथिलीम् । अर्पयामि न मे पापं तथा सत्युपजायते ॥६८॥
 महौहोकापवादाश्च भयान्यायसमुद्भवः । न जायते करोम्येवं ततो निश्चिन्तमानसः ॥६९॥

नागराजके फणपर स्थित मणिकी कान्तिके समान मोह उत्पन्न करनेवाली है और परस्त्री विशेष रूपसे मोह उत्पन्न करनेवाली है ॥५५॥ यह नदीके समान कुटिल है, भयंकर है, धर्म अर्थको नष्ट करनेवाली है, और समस्त अशुभोंकी खानि है। यह सत्पुरुषोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक छोड़नेके योग्य है ॥५६॥ जो सीता पहले इतनी मनोहर थी कि दिखनेपर मानो अमृतसे ही मुझे सींचती थी और समस्त देवियोंसे भी अधिक प्रिय जान पड़ती थी आज वही परासक्तहृदया होनेसे विषभूत कलशोंके समान मुझे अत्यन्त उद्वेग उत्पन्न कर रही है ॥५७-५८॥ नहीं चाहने पर भी जो पहले मेरे मनको अशून्य करती थी अर्थात् जो मुझे नहीं चाहती थी फिर भी मैं मनमें निरन्तर जिसका ध्यान किया करता था वही आज जीर्ण तृणके समान अनादरको प्राप्त हुई है ॥५९॥ अन्य पुरुषमें जिसका चित्त लग रहा है ऐसी यह सीता यदि मुझे चाहती भी है तो सद्भावसे रहित इससे मुझे क्या प्रीति हो सकती है ? ॥६०॥ जिस समय मेरा विद्वान् भाई विभीषण, मेरे अनुकूल था तथा उसने हितका उपदेश दिया था उस समय यह दुष्ट मन इस प्रकार शान्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥६१॥ अपितु उसके उपदेशसे प्रमादके वशीभूत हो उल्टा विकार भावको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि प्रायःकर पुण्यात्मा पुरुषों का ही मन वशमें रहता है ॥६२॥ यह विचार करनेके अनन्तर रावणने पुनः विचार किया कि कल संप्राम करनेके विषयमें मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा की थी फिर इस समय वीर लोगोंके द्वारा निन्दित मित्रता की चर्चा कैसी ? ॥६३॥ युद्ध करना और करुणा प्रकट करना ये दो काम विरुद्ध हैं। अहो ! मैं एक साधारण पुरुषकी तरह इस महान् संकटको प्राप्त हुआ हूँ ॥६४॥ यदि मैं इस समय दया वश रामके लिए सीताको सौंपता हूँ तो लोग मुझे असमर्थ समझेंगे क्योंकि सबके चित्तको समझना कठिन है ॥६५॥ जो चाहे जो करनेमें स्वतन्त्र है ऐसा निर्दय मनुष्य सुखसे जीवन बिताता और जिसका मन दयासे कोमल है ऐसा मेरे समान पुरुष दुःखसे जीवन काटता है ॥६६॥ यदि मैं सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओंसे युक्त राम-लक्ष्मणको युद्धमें निरक्ष कर जीवित पकड़ लूँ और पश्चात् वैभवके साथ रामके लिए सीताको वापिस सौंपूँ तो ऐसा करनेसे मुझे सन्ताप नहीं होगा ॥६७-६८॥ साथ ही भय और अन्यायसे उत्पन्न हुआ बहुत भारी लोकापवाद

१. दग्धं नीचं मनः शर्मं नैव गतम् । २. स्वसंप्रामवृत्तौ म० । ३. निश्चितमानसः म० ।

मनसा सम्प्रधायैवं महाविभवसङ्गतः । यथावन्तःपुराभोजखण्डं रावणवारणः ॥७०॥
 ततः परिभवं स्मृत्वा महान्तं शत्रुसम्भवम् । क्रोधारुणेक्षणो भामः संवृत्तोऽन्तकसन्निभः ॥७१॥
 बभ्राण दशवक्त्रस्तद्वचनं स्फुरिताधरः । क्वाणां मध्ये ज्वरो येन समुद्रोदः सुदुःसहः ॥७२॥
 गृहीत्वा समरे पापं तं दुर्भीवं सहाङ्गदम् । भागद्वयं करोम्येव खड्गेन द्युतिहासिना ॥७३॥
 तमोमण्डलकं तं च गृहीत्वा दृढसंयतम् । लोहमुद्गारनिघ्नतैस्त्याजयिष्यामि जीवितम् ॥७४॥
 करालतीक्ष्णधारेण क्रकचेन मरुसुतम् । यन्त्रितं काष्ठयुग्मेन पाटयिष्यामि दुर्णयम् ॥७५॥
 मुक्त्वा राघवमुद्बुत्तानखिलानाहवे परान् । अस्त्रैश्चूर्णयिष्यामि दुराचारान् हतात्मनः ॥७६॥
 इति निश्चयमापन्ने वर्तमाने दशानने । वाचो नैमित्तवक्त्रेषु चरन्ति मगधेश्वर ॥७७॥
 उल्पाताः शतशो भीमाः सम्प्रत्येते समुद्गताः । आयुधप्रतिमो रूक्षः परिवेषः खरत्विपः ॥७८॥
 समस्तां रजनीं चन्द्रो नष्टः कापि भयादिव । निपेतुर्धौरनिर्घाता भूकम्पः सुमहानभूत् ॥७९॥
 वेपमाना दिशि प्राच्यामुलकाशोणितसन्निभा । पपात विरसं रेदुरुत्तरेण तथा शिवाः ॥८०॥
 हेबन्ति कम्पितग्रीवास्तुरङ्गाः प्रखरस्वनाः । हस्तिनो रूक्षनिःस्वाना धन्ति हस्तेन मेदिनीम् ॥८१॥
 देवतप्रतिमा जाता लोचनोदकदुर्दिनाः । निपतन्ति महावृक्षा विना दृष्टेन हेतुना ॥८२॥
 आदित्याभिमुखीभूताः काकाः खरतरस्वनाः । सङ्घातवजिनो जाताः स्रस्तपत्ना महाकुलाः ॥८३॥
 सरंसि सदसा शोषं प्राप्तानि विपुलान्यपि । निपेतुर्गिरिशृङ्गाणि नभो वर्पति शोणितम् ॥८४॥

भी नहीं होग अतः मैं निश्चिन्त चित्त होकर ऐसा ही करता हूँ ॥६६॥ मनसे इस प्रकार निश्चय कर महा वैभवसे युक्त रावण रूपी हाथी अन्तःपुर रूपी कमल वनमें चला गया ॥७०॥

तदनन्तर शत्रु की ओरसे उत्पन्न महान् परिभवका स्मरण कर रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वह स्वयं यमराजके समान भयंकर हो गया ॥७१॥ जिसका ओठ काँप रहा था ऐसा रावण वह वचन बोला कि जिससे स्त्रियोंके बीचमें अत्यन्त दुःसह उबर उत्पन्न हो आया ॥७२॥ उसने कहा कि मैं युद्धमें अङ्गद सहित उस पापी दुर्भीवको पकड़ कर किरणोंसे हँसनेवाला तलवारसे उसके दो टुकड़े अभी हाल करता हूँ ॥७३॥ उस भामण्डलको पकड़ कर तथा अच्छी तरह बाँध कर लोहके मुद्गारोंकी मारसे उसके प्राण घुटाऊँगा ॥७४॥ और अन्यायी हनुमानको दो लकड़ियोंके सिकंजेमें कस कर अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली करोंतसे चीरूँगा ॥७५॥ एक रामको छोड़ कर मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले जितने अन्य दुराचारी दुष्ट शत्रु हैं उन सबको युद्धमें शस्त्र-समूहसे चूर-चूर कर डालूँगा ॥७६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! जब रावण उक्त प्रकारका निश्चय कर रहा था तब निमित्तज्ञानियोंके मुखोंमें निम्न प्रकारके वचन विचरण कर रहे थे अर्थात् वे परस्पर इस प्रकार की चर्चा कर रहे थे कि ॥७७॥ देखो, ये सैकड़ों प्रकारके उल्पात हो रहे हैं । सूर्यके चारों ओर शस्त्रके समान अत्यन्त रूक्ष परिवेष—परिमण्डल रहता है ॥७८॥ पूरी की पूरी रात्रि भर चन्द्रमा भयसे ही मानों कहीं छिपा रहता है, भयंकर वज्रपात होते हैं, अत्यधिक भूकम्प होता है ॥७९॥ पूर्व दिशामें काँपती हुई रुधिरके समान लाल उल्का गिरी थी और उत्तर दिशामें शृगाल नीरस शब्द कर रहे थे ॥८०॥ बड़े शीघाको काँपाते तथा प्रखर शब्द करते हुए हींसते हैं और हाथी कठोर शब्द करते हुए सूँड़से पृथिवीको ताड़ित करते हैं अर्थात् पृथिवी पर सूँड़ पटकते हैं ॥८१॥ देवताओंकी प्रतिमाएँ अश्रुजलकी वर्षाके लिए दुर्दिन स्वरूप बन गई हैं । बड़े बड़े वृक्ष बिना किसी दृष्ट कारणके गिर रहे हैं ॥८२॥ सूर्यके सन्मुख हुए काँपे अत्यन्त तीक्ष्ण शब्द कर रहे हैं, अपने भुण्डको छोड़ अलग-अलग जाकर बैठे हैं, उनके पङ्क ढीले पड़ गये हैं तथा वे अत्यन्त व्याकुल दिखाई देते हैं ॥८३॥ बड़े से बड़े तालाब भी अचानक

स्वल्पैरेव दिनेः प्रायः प्रभोराचरते मृतिम् । विकाराः खलु भावानां जायन्ते नान्यथेदृशाः^१ ॥८५॥
 क्षीणैश्चार्मायपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम् । जनता कर्मतन्त्रेयं गुणभूतं हि पौरुषम् ॥८६॥
 लभ्यते खलु लब्धव्यं नातः शक्यं पलायितुम् । न काचिच्छ्रता दैवे प्राणिनां स्वकृताशानाम् ॥८७॥
 सर्वेषु नयशास्त्रेषु कुशलो लोकतन्त्रविन् । जैनव्याकरणाभिज्ञो महागुणविभूषितः ॥८८॥
 एवंविधो भवन् सोऽयं दशवक्त्रः स्वकर्मभिः । वाहितः प्रस्थितः कष्टमुन्मार्गेण विमूढधीः ॥८९॥
 मरणात्परमं दुःखं न लोके विद्यते परम् । न चिन्तयत्ययं परय तदप्यत्यन्तगर्वितः ॥९०॥
 नक्षत्रबलनिमुक्तो ग्रहैः सुकुटिलैः स्थितैः । पीड्यमानो रणक्षीणीमाकांक्षत्येव दुर्मनाः ॥९१॥
 प्रतापभङ्गभीतोऽयं वीरैकरसभावितः । कृतस्त्रेदोऽपि शास्त्रेषु युक्तायुक्तं न वीक्षते ॥९२॥
 अतः परं महाराजं दशग्रीवस्य मानिनः । मनसि स्थितमर्थं ते वदामि शृणु तत्स्वतः ॥९३॥
 जिह्वा सर्वजनं सर्वान् मुक्त्वा पुत्रसहोदरान् । प्रविशामि पुनर्लङ्कामिदं पश्चात्करोमि च ॥९४॥
 उद्वासयामि सर्वस्मिन्नेतस्मिन्वसुधातले । क्षुद्रान् भृगोचरान् श्लाघ्यान् स्थापयामि नभश्चरान् ॥९५॥

उपजातिवृत्तम्

येनाऽत्र वंशे सुरवर्मणां त्रिलोकनाथाभिनुता जिनेन्द्राः ।

चक्रायुधा रामजनार्दनाश्च जन्म ग्रहीष्यन्ति तथाऽऽस्मदाद्याः ॥९६॥

सूख गये हैं । पहाड़ोंकी चोटियाँ नीचे गिरती हैं, आकाश रुधिर की वर्षा करता है ॥८४॥ प्रायः ये सब उत्पात थोड़े ही दिनोंमें स्वामीके मरणकी सूचना दे रहे हैं क्योंकि पदार्थोंमें इस प्रकारके अन्यथा विकार होते नहीं हैं ॥८५॥ अपने पुण्यके क्षीण हो जाने पर इन्द्र भी तो च्युत हो जाता है । यथार्थमें जन-समूह कर्मोंके आधीन है और पुरुषार्थ गुणीभूत है—अप्रधान है ॥८६॥ जो वस्तु प्राप्त होनेवाली है वह प्राप्त होती ही है उससे दूर नहीं भागा जा सकता । दैवके रहते प्राणियोंकी कोई शूरवीरता नहीं चलती उन्हें अपने कियेका फल भोगना ही पड़ता है ॥८७॥ देखो, जो समस्त नीति शास्त्रमें कुशल है, लोकतन्त्रको जानने वाला है, जैन व्याख्यानका जानकार है और महागुणोंसे विभूषित है ऐसा रावण इस प्रकारका होता हुआ भी स्वकृत कर्मोंके द्वारा कैसा चक्रमें डाला गया कि हाय, बेचारा विमूढ़ बुद्धि हो उन्मार्गमें चला गया ॥८८-८९॥ संसारमें मरणसे बढ़कर कोई दुःख नहीं है पर देखो, अत्यन्त गर्वसे भरा रावण उस मरणकी भी चिन्ता नहीं कर रहा है ॥९०॥ यह यद्यपि नक्षत्र बलसे रहित है तथा कुटिल-पाप ग्रहोंसे पीड़ित है तथापि मूर्ख हुआ रणभूमिमें जाना चाहता है ॥९१॥ यह प्रतापके भङ्गसे भयभीत है, एक वीर रसकी ही भावनासे युक्त है तथा शास्त्रोंका अभ्यास यद्यपि इसने किया है तथापि युक्त-अयुक्तको नहीं देखता है ॥९२॥ अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे महाराज ! अब मैं मानी रावणके मनमें जो बात थी उसे कहता हूँ तू यथार्थमें सुन ॥९३॥ रावणके मनमें था कि सब लोगोंको जीतकर तथा पुत्र और भाईको छुड़ा कर मैं पुनः लंकामें प्रवेश करूँ ? और यह सब पीछे करना रहूँ ॥९४॥ इस पृथिवीतलमें जितने लुद्रभूमि गोचरी हैं मैं उन सबको यहाँसे हटाऊँगा और प्रशंसनीय जो विद्याधर हैं, उन्हें ही यहाँ बसाऊँगा ॥९५॥ जिससे कि तीनों लोकोंके नाथके द्वारा स्तुत तीर्थङ्कर जिनेन्द्र, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण तथा

निकाचितं कर्म नरेण येन यत्तस्य भुंक्ते सफलं नियोगात् ।
कस्यान्यथा शास्त्ररवौ सुदीप्ते तमो भवेन्मानुषकौशिकस्य ॥६७॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणो युद्धनिश्चयकीर्त्तनाभिधानं नाम द्वासप्ततितमं पर्व ॥७२॥

हमारे जैसे पुरुष इसी वंशमें जन्म ग्रहण करेंगे ॥६६॥ जिस मनुष्यने निकाचित कर्म बाँधा है वह उसका फल नियमसे भोगता है । अन्यथा शास्त्र रूपी सूर्यके देदीप्यमान रहते हुए किस मनुष्य रूपी उलूकके अन्धकार रह सकता है ॥६७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके युद्ध सम्बन्धी निश्चयका कथन करने वाला बहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७२॥

त्रिसप्ततितमं पर्व

ततो दशाननोऽन्यत्र दिने परमभासुरः । आस्थानमण्डपे तस्थानुदिते दिवसाधिपे ॥१॥
 कुबेरवरुणेशानयमसोमसमैर्नृपैः । रराज सेवितस्तत्र त्रिदशानामिवाधिपः ॥२॥
 १द्वृतः कुलोद्गतैर्वीरैः स्थितः केसरिविष्टरे । स बभार परां कान्तिं निशाकर इव प्रहैः ॥३॥
 अत्यन्तसुरभिर्दिव्यनखखगजुलेपनः । २हारातिहारिवक्षस्कः सुभगः सौम्यदर्शनः ॥४॥
 सदोऽत्रलोकमानोऽगादिति चिन्तां महामनाः । मेघनाहनवीरोऽत्र स्वप्रदेशे न दृश्यते ॥५॥
 महेन्द्रविभ्रमो नेतः शक्रजिह्वनप्रियः । इतो भानुप्रभो भानुकर्णोऽसौ न निरीक्ष्यते ॥६॥
 नेद्रं सदःसरः शोभां धारयत्यधुना पराम् । निर्महापुरुषाम्भोजं शेषपुंस्कुमुदाञ्चितम् ॥७॥
 उम्फुल्लपुष्पडरीकाक्षः स मनोमोऽपि तादृशः । चिन्तादुःखविकारेण कृतो दुःसहदर्शनः ॥८॥
 कुटिलभृकुट्टीबन्धनध्वान्तालिकाङ्गणम् । सरोपाशीविषच्छायं कृतान्तमिव भीषणम् ॥९॥
 ३गाढदृष्टाधरं स्वांशुचक्रमग्नं समीक्ष्य तम् । सचिवेशा भृशं भीताः किङ्कर्त्तव्यत्वगह्वराः ॥१०॥
 ममायं कुपितोऽमुष्य तस्येत्याकुलमानसाः । स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे धरणीगतमस्तकाः ॥११॥
 मयोप्रशुकलोकात्सारणाद्याः सलज्जिताः । परस्परं विविचन्तः क्षितिं च विनताननाः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन दिनकरका उदय होनेपर परम देदीप्यमान रावण सभामण्डपमें विराजमान हुआ ॥१॥ कुबेर, वरुण, ईशान, यम और सोमके समान अनेक राजा उसकी सेवा कर रहे थे जिससे वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इन्द्र ही हो ॥२॥ कुलमें उत्पन्न हुए वीर मनुष्योंसे विरा तथा सिंहासनपर विराजमान रावण प्रहोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान परम कान्तिको धारण कर रहा था ॥३॥ वह अत्यन्त सुगन्धिसे युक्त था, उसके वस्त्र, मालाएँ तथा अनुलेपन सभी दिव्य थे, हारसे उसका वक्षःस्थल अत्यन्त सुशोभित हो रहा था, वह सुन्दर था और सौम्य दृष्टिसे युक्त था ॥४॥ वह उदारचेता सभाकी ओर देखता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि यहाँ वीर मेघवाहन अपने स्थानपर नहीं दिख रहा है ॥५॥ इधर महेन्द्रके समान शोभाको धारण करनेवाला नयनाभिरामी इन्द्रजित् नहीं है और उधर सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) भी नहीं दिख रहा है ॥६॥ यद्यपि यह सभा रूपी सरोवर शेष पुरुष रूपी कुमुदांसे सुशोभित है तथापि उक्त महापुरुष रूपी कमलोंसे रहित होनेके कारण इस समय उत्कृष्ट शोभाको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥७॥ यद्यपि उस रावणके नेत्र कमलके समान फूल रहे थे और वह स्वयं अनुपम मनोहर था तथापि चिन्ताजन्य दुःखके विकारसे उसकी ओर देखना कठिन जान पड़ता था ॥८॥

तदनन्तर टेढ़ी भौंहोंके बन्धनसे जिसके ललाट रूपी आँगनमें सघन अन्धकार फैल रहा था, जो कुपित नागके समान कान्तिको धारण करनेवाला था, जो यमराजके समान भयङ्कर था, जो बड़े जोरसे अपना ओठ डश रहा था, जो अपनी किरणोंके समूहमें निमग्न था ऐसे उस रावणको देख, बड़े-बड़े मन्त्री अत्यन्त भयभीत हो 'क्या करना चाहिये, इस विचारमें गम्भीर थे ॥९-१०॥ 'यह मुझपर कुपित है या उसपर' इस प्रकार जिनके मन व्याकुल हो रहे थे तथा जो हाथ जोड़े हुए पृथिवीकी ओर देखते बैठे थे ॥११॥ ऐसे मय, उग्र, शुक, लोकात् और सारण आदि मन्त्री परस्पर एक दूसरेसे लज्जित होते हुए नीचेको मुख कर बैठे थे तथा ऐसे जान

१. तृतीयचतुर्थयोः श्लोकयोः ज पुस्तके क्रमभेदो वर्तते । २. मुक्ताखगमनोहरोरस्कः । ३. गाढदृष्टाधरं म० ।

प्रचलत्कुण्डला राजन् ते भटाः पार्ववतिनः । मुहुर्देव प्रसीदेति त्वरावन्तो बभाषिरे ॥१३॥
 कैलासकूटकल्पासु रत्नभासुरभित्तिषु । स्थिताः प्रासादमालासु त्रस्तास्तं ददशुः स्त्रियः ॥१४॥
 मणिजालगवाक्षान्तन्यस्तसम्भ्रान्तलोचना । मन्दोदरी ददर्शनं समालोडितमानसा ॥१५॥
 लोहिताक्षः प्रतापाढ्यः समुत्थाय दशाननः । अमोघरत्नशस्त्राढ्यमायुधालयमुज्ज्वलम् ॥१६॥
 वज्रालयभिवेशानः सुराणां गन्तुमुद्यतः । विशतश्च समेतस्य दुर्निमित्तानि जज्ञिरे ॥१७॥
 पृष्ठतः क्षुतसग्रे च क्षिप्रो मार्गो महाहिता । हाहा विड्मत्वां क यासति वचांसि तमिवावदन् ॥१८॥
 वातुलप्रेरितं छत्रं भग्नं वैदुर्यदण्डकम् । निपपातोत्तरीयं च बलिभुग्दक्षिणोऽरटत् ॥१९॥
 अन्येऽपि शकुनाः क्रूरास्तं युद्धाय न्यवर्त्तयन् । वचसा कर्मणा ते हि न कायेनानुमोदकाः ॥२०॥
 नानाशकुनविज्ञानप्रवीणधिषणा ततः । दृष्ट्वा पापान्महोत्पातानत्यन्ताकुलमानसाः ॥२१॥
 मन्दोदरी समाहूय शुकादीन् सारमन्त्रिणः । जगाद नोच्यते कस्मान्नवद्भिः स्वहितं नृपः ॥२२॥
 किमेतच्चेर्द्धतेऽद्यापि विज्ञातस्वपरक्रियैः । अशक्ताः कुम्भकर्णाद्याः कियद्वन्धनमागताः ॥२३॥
 लोकपालौजसो वीराः कृतानेकमहाद्भुताः । शत्रुरोधभिमे प्रासाः किं नु कुर्वन्ति वः शम्भ ॥२४॥

पड़ते थे मानो पृथिवीमें ही प्रवेश करना चाहते हैं ॥१२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनके कुण्डल हिल रहे थे ऐसे वे समीपवर्ती सुभट 'हे देव प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ' इस तरह शीघ्रतासे बार-बार कह रहे थे ॥१३॥ कैलासके शिखरके समान ऊँचे तथा रत्नोंसे देदीप्यमान दीवालोंसे युक्त महलोंमें रहनेवाली स्त्रियाँ भयभीत हो उसे देख रही थीं ॥१४॥ मणिमय भरोखों के अन्तमें जिसने अपने घबड़ाये हुए नेत्र लगा रखे थे, तथा जिसका मन अत्यन्त विह्वल था ऐसी मन्दोदरीने भी उसे देखा ॥१५॥

अथानन्तर लाल लाल नेत्रोंको धारण करनेवाला प्रतापी रावण उठकर अमोघ शस्त्ररूपी रत्नोंसे युक्त उज्वल शस्त्रागारमें जानेके लिए उस प्रकार उद्यत हुआ जिस प्रकार कि वज्रालयमें जानेके लिए इन्द्र उद्यत होता है । जब वह शस्त्रागारमें प्रवेश करने लगा तब निम्नाङ्कित अप-शकुन हुए ॥१६-१७॥ पीछेकी ओर झींक हुई*, आगे महानागने मार्ग काट दिया, ऐसा लगने लगा जैसे लोग उससे यह शब्द कह रहे हैं कि हा, ही, तुम्हें धिक्कार है कहाँ जा रहा है ॥१८॥ नील मणिमय दण्डसे युक्त उसका छत्र वायुसे प्रेरित हो टूट गया, उसका उत्तरीय वस्त्र नीचे गिर गया और दाहिनी ओर कौआ काँव काँव करने लगा ॥१९॥ इनके सिवाय और भी क्रूर अपशकुनोंने उसे युद्धके लिए मना किया । यथार्थमें वे सब अपशकुन उसे युद्धके लिए न वचनसे अनुमति देते थे न क्रियासे और न कामसे ही ॥२०॥ तदनन्तर नाना शकुनोंके ज्ञानमें जिनकी बुद्धि निपुण थी ऐसे लोग उन पाप पूर्ण महा उत्पातोंको देख अत्यन्त व्यग्रचित्त हो गए ॥२१॥

तदनन्तर मन्दोदरीने शुक आदि श्रेष्ठ मन्त्रियोंको बुलाकर कहा कि आप लोग राजासे हितकारी बात क्यों नहीं कहते हैं ॥२२॥ निज और परकी क्रियाओंको जानने वाले होकर भी आप अभी तक यह क्या चेष्टा कर रहे हैं ? कुम्भकर्णादिक अशक्त हो कितने दिनसे बन्धनमें पड़े हैं ? ॥२३॥ लोकपालोंके समान जिनका तेज है तथा जिन्होंने अनेक आश्चर्यके काम किये हैं ऐसे ये वीर, शत्रुके यहाँ बन्धनको प्राप्त होकर क्या आप लोगोंको शक्ति उत्पन्न कर रहे हैं ? ॥२४॥

१. लस्तास्तं म० । २. समेतस्य म० । ३. विड्मा म० । ४. चेष्टते म०, ज० ।

* शकुन शास्त्रमें झींकका फल इस प्रकार बताया है कि पूर्व दिशामें हो तो मृत्यु, अग्निकोणमें हो तो शोक, दक्षिणमें हानि, नैऋत्यमें शुभ, पश्चिममें मिष्ट आहार, वायुकोणमें सम्पदा, उत्तरमें कलह, ईशानमें धनागम, आकाशमें सर्वसंहार और पातालमें सर्वसम्पदाकी प्राप्ति हो । रावणको मृत्युकी झींक हुई ।

प्रणिपत्य ततो देवीमित्याहुर्मुख्यमन्त्रिणः । कृतान्तशासनो मानी स्वप्रधानो दशाननः ॥२५॥
 वचनं कुरुते यस्य नरस्य परमं हितम् । न स स्वामिनि ! लोकेऽस्मिन् समस्तेऽप्युपलभ्यते ॥२६॥
 या काचिद्भविता बुद्धिर्नृणां कर्मानुवर्तिनाम् । अशक्या साऽन्यथाकर्तुं सेन्द्रैः सुरगणैरपि ॥२७॥
 अर्थसाराणि शास्त्राणि नय नौशनसं परम् । जानन्नपि त्रिकूटेन्द्रः परय मोहेन बाध्यते ॥२८॥
 उक्तः स बहुशोऽस्माभिः प्रकारेण न केन सः । तथापि तस्य नो चित्तमभिप्रेताञ्जितते ॥२९॥
 महापूरकृतोऽपीडः पयोवाहसमागमे । दुष्करो हि नदो धर्तुं जीवो वा कर्मचोदितः ॥३०॥
 ईशे तथापि को दोषः स्वयं वक्तुं स्वमहसि । कदाचित्ते मतिं कुर्यादुपेक्षणमसाभ्रतम् ॥३१॥
 द्रुयुदाहृतमाधाय निश्चिन्तस्त्रान्तधारिणी । परिवेषवती लक्ष्मीरिव सम्भ्रमवर्तिनी ॥३२॥
 स्वच्छायतविचित्रेण पयःसादृश्यधारिणा । अंशुकेनावृता देवी गन्तुं रावणमुद्यता ॥३३॥
 मन्मथस्यान्तिकं गन्तुं तां प्रवृत्तां रतिं यथा । परिवर्गः समालोक्य तत्परत्वमुपागतः ॥३४॥
 छत्रचामरधारीभिरङ्गनाभिः समन्ततः । आपूर्यत शचीवेन्द्रं व्रजन्तां प्रवरानना ॥३५॥
 श्वसन्ती प्रखलन्ती च किञ्चिच्छिथिलमेखला । प्रियकार्यरता निस्थमनुरागमहानदी ॥३६॥
 आयान्ती तेन सा दृष्टा लीलावर्त्तेन चक्षुषा । स्पृशन्ना कवचं मुख्यं शस्त्रजातं च सादरम् ॥३७॥
 उक्ता मनोहरे हंसवभूललितगामिनि । रभसेन किमायान्यास्तव देवि प्रयोजनम् ॥३८॥

तदनन्तर मुख्य मन्त्रियोंने प्रणाम कर मन्दोदरी से इस प्रकार कहा कि हे देवि ! दशाननका शासन यमराजके शासनके समान है, वे अत्यन्त मानी और अपने आपको ही प्रधान मानने वाले हैं ॥२५॥ जिस मनुष्यके परम हितकारी वचनको वे स्वीकृत कर सकें हे स्वामिनि ! समस्त लोकमें ऐसा मनुष्य नहीं दिखाई देता ॥२६॥ कर्मानुकूल प्रवृत्ति करनेवाले मनुष्योंकी जो बुद्धि होनेवाली है उसे इन्द्र तथा देवोंके समूह भी अन्यथा नहीं कर सकते ॥२७॥ देखो, रावण समस्त अर्थ शास्त्र और सम्पूर्ण नीतिशास्त्रको जानते हैं तो भी मोहके द्वारा पीड़ित हो रहे हैं ॥२८॥ हम लोगोंने उन्हें अनेकों बार किस प्रकार नहीं समझाया है ? अर्थात् ऐसा प्रकार शेष नहीं रहा जिससे हमने उन्हें न समझाया हो फिर भी उनका चित्त इष्ट वस्तु—सीतासे पीछे नहीं हट रहा है ॥२९॥ वर्षा ऋतुके समय जिसमें जलका महा प्रवाह उल्लंघ कर बह रहा है ऐसे महानदको अथवा कर्मसे प्रेरित मनुष्यको रोक रखना कठिन काम है ॥३०॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि हम लोग कह कर हार चुके हैं तथापि आप स्वयं कहिये इसमें क्या दोष है ? संभव है कि कदाचित् आपका कहना उन्हें सुबुद्धि उत्पन्न कर सके । उपेक्षा करना अनुचित है ॥३१॥ इस प्रकार मन्त्रियोंका कहा श्रवण कर जिसने रावणके पास जाने का निश्चित विचार किया था, जो भय से काँप रही थी तथा घबड़ाई हुई लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, जो स्वच्छ, लम्बे, विचित्र और जल की सदृशताको धारण करनेवाले वस्त्रसे आवृत्त थी ऐसी मन्दोदरी रावणके पास जानेके लिए उद्यत हुई ॥३२-३३॥ कामदेवके सपीप जानेके लिए उद्यत रतिके समान, रावणके समीप जाती हुई मन्दोदरीको देख परिवारके समस्त लोगोंका ध्यान उसीकी ओर जा लगा ॥३४॥ छत्र तथा चमरोंको धारण करनेवाली स्त्रियों जिसे सब ओरसे घेरे हुई थीं ऐसी सुमुखी मन्दोदरी ऐसी जान पड़ती थी मानो इन्द्रके पास जाती हुई शची ही हो—इन्द्राणी ही हो ॥३५॥ जो लम्बी साँस भर रही थी, जो चलती-चलती बीचमें स्थलित हो जाती थी, जिसकी करधनी कुछ-कुछ ढीली हो रही थी, जो निरन्तर पतिका कार्य करनेमें तत्पर थी और जो अनुरागकी मानो महानदी ही थी ऐसी आती हुई मन्दोदरीको रावण ने लीलापूर्ण चक्षुसे देखा । उस समय रावण अपने कवच तथा मुख्य-मुख्य शस्त्रोंके समूहका आदरपूर्वक स्पर्श कर रहा था ॥३६-३७॥ रावणने कहा कि हे मनोहरे ! हे हंसीके समान सुन्दर चालसे चलनेवाली

हियते हृदयं कस्माद्दशवक्त्रस्य भामिनि । सन्नियानमिव स्वप्ने प्रस्तावपरिवर्जितम् ॥३६॥
 ततो निर्मलसम्पूर्णशशाङ्कप्रतिमानना । सम्फुल्लाम्भोजनयना निसर्गोत्तमविभ्रमा ॥४०॥
 मनोहरकटाक्षेषु विसर्जनविचक्षणा । मदनावासभृताङ्गा मधुरस्खलितस्वना ॥४१॥
 दन्ताधरविचित्रोरुच्छायापिञ्जरविग्रहा । स्तनहेममहाकुम्भभारसन्नमितोदरी ॥४२॥
 स्खलद्बलित्रयात्यन्तसुकुमाराऽतिसुन्दरी । जगाद् प्रणता नाथप्रसादस्यातिभूमिका ॥४३॥
 प्रयच्छ देव मे भर्तृभित्तामेहि प्रसन्नताम् । प्रेम्णा परेण धर्मेण कारुण्येन च सङ्गतः ॥४४॥
 वियोगनिम्नगादुःखजले सङ्कल्पवीचिके । महाराज निमज्जन्तीं मकामुत्तम धारय ॥४५॥
 कुलपद्मवनं शक्यप्रलयं विपुलं परम् । मो पेच्छिष्ठा महाबुद्धे बान्धवव्योमभास्करः ॥४६॥
 किञ्चिदाकर्णय स्वामिन् वचः परुषमप्यदः । ह्यनुमर्हसि मे यस्माद्दत्तमेव त्वया पदम् ॥४७॥
 अविरुद्धं स्वभावस्थं परिणामसुखावहम् । वचोऽप्रियमपि प्राज्ञं सुहृदामौषधं यथा ॥४८॥
 किमर्थं संशयतुलामारूढोऽस्य तुलामिमाम् । सन्तापयसि कस्मात्स्वमस्मांश्च निरवग्रहः ॥४९॥
 अद्यापि किमर्तातं ते सैव भूमिः पुरातनी । उन्मार्गप्रस्थितं चित्तं केवलं देव वारय ॥५०॥
 मनोरथः प्रवृत्तोऽयं नितान्तं तव सङ्कटे । इन्द्रियाश्चास्त्रियच्छाऽऽशु विवेकददरश्मिभृत् ॥५१॥

प्रिये ! हे देवि ! बड़े वेगसे तुम्हारे यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है ? ॥३६॥ हे भामिनि ! स्वप्नमें अकस्मात् प्राप्त हुए सन्निधानके समान तुम्हारा आगमन रावणके हृदयको क्यों हर रहा है ? ॥३६॥

तदनन्तर जिसका मुख निर्मल पूर्णचन्द्रकी तुलनाको प्राप्त था,जसके नेत्र खिले हुए कमलके समान थे, जो स्वभावसे ही उत्तम हाव-भावको धारण करनेवाली थी, जो मनोहर कटाक्षोंके छोड़नेमें चतुर थी, जिसका शरीर मानो कामदेवके रहनेका स्थान था, जिसके मधुर शब्द बीच-बीचमें खलित हो रहे थे, जिसका शरीर दौत तथा ओंठीकी रङ्ग-विरङ्गी विशाल कान्तिसे पिञ्जरवर्ण हो रहा था, जिसका उदर स्तनरूपी स्वर्णमय महाकलशोंसे भुक्त रहा था, जिसकी त्रिवलिरूपी रेखाएँ खलित हो रहीं थीं, जो अत्यन्त सुकुमार थी, अत्यधिक सुन्दरी थी, और जो पतिके प्रसादकी उत्तम भूमि थी ऐसी मन्दोदरी प्रणाम कर बोली कि ॥४०-४३॥ हे देव ! आप परमप्रेम और दया-धर्मसे सहित हो अतः मेरे लिए पतिकी भीख देओ प्रसन्नताको प्राप्त होओ ॥४४॥ हे महाराज ! हे उत्तम संकल्परूपी तरङ्गोंसे युक्त ! वियोगरूपी नदीके दुःखरूपी जलमें डूबती हुई मुझको आलम्बन देकर रोको-मेरी रक्षा करो ॥४५॥ हे महाबुद्धिमन् ! तुम अपने परिजन रूपी आकाशमें सूर्यके समान हो इसलिए प्रलयको प्राप्त होते हुए इस विशाल कुलरूपी कमल वन की अत्यन्त उपेक्षा न करो ॥४६॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मेरे वचन कठोर हैं तथापि कुछ श्रवण कीजिये । यतश्च यह पद मुझे आपने ही दिया है अतः आप मेरा अपराध क्षमा करनेके योग्य हैं ॥४७॥ मित्रोंके जो वचन विरोध रहित हैं, स्वभावमें स्थित हैं और फलकालमें सुख देने वाले हैं वे अप्रिय होने पर भी औषधिके समान ग्रहण करनेके योग्य हैं ॥४८॥ आप इस उपमा रहित संशयकी तुला पर किसलिए आरूढ़ हो रहे हैं ? और किसलिए किसी रुकावटके बिना ही अपने आपको तथा हम लोगोंको सन्ताप पहुँचा रहे हो ॥४९॥ आज भी आपका क्या चला गया ? वही आपकी पुरातनी अर्थात् पहलेकी भूमि है केवल हे देव ! उन्मार्गमें गए हुए चित्तको रोक लीजिए ॥५०॥ आपका यह मनोरथ अत्यन्त संकटमें प्रवृत्त हुआ है इसलिए इन इन्द्रियरूपी घोड़ोंको शीघ्र ही रोक लीजिए । आप तो विवेकरूपी मजबूत लगामको धारण

उद्धैर्यं च गभीरत्वं परिज्ञातं च तत्कृते ! गतं येन कुमार्येण नाथ केनापि नीयसे ॥५२॥
 दृष्ट्वा शरभवच्छायामात्मनीयां कृपवारिणि । किं प्रवृत्तोऽसि परमामापदायासदायिनि ॥५३॥
 अयशः शालमुत्तुङ्गं भिक्त्वा क्लेशकरं परम् । कदलीस्तम्भनिःसारं फलं किमभिवाञ्छसि ॥५४॥
 श्लाघ्यं जलधिगम्भीरं कुलं भूयो विभूषय । शिरोऽस्ति कुलजातानां मुञ्च भूगोचरस्त्रियम् ॥५५॥
 विरोधः क्रियते स्वामिन् वीरैः स्वासिप्रयोजनः । मृथुं च मानसे कृत्वा परेपामात्मनोऽपि वा ॥५६॥
 पराजित्यापि संघातं नाथ सम्बन्धिनां तव । कोऽर्थः सम्पद्यते तस्माद्यज्ञ सीतामयं ग्रहम् ॥५७॥
 अन्यदास्तां व्रतं तावत्परस्त्रीमुक्तिमात्रतः । पुमान् जन्मद्वये शंसां सुशीलः प्रतिपद्यते ॥५८॥
 कज्जलोपमकारीषु परनारीषु लोलुपः । मेरुगौरवयुक्तोऽपि नृणलाववमेति वा ॥५९॥
 देवैरनुगृह्योतोऽपि चक्रवर्तिसुतोऽपि वा । परस्त्रीसङ्गपङ्केन दिग्धोऽकीर्तिं व्रजेत्पराम् ॥६०॥
 योऽन्यप्रमदया साकं कुरुते मूढको रतिम् । आशीविषभुजङ्ग्याऽसौ रमते पापमानसः ॥६१॥
 निर्मलं कुलमत्यन्तं मायशोमलिनं कुरु । आत्मानं च करोषि त्वं तस्माद्दर्जय दुर्मतिम् ॥६२॥
 ध्रुवान्तराबलेच्छातः प्राप्ताः नाशं महाबलाः । सुमुखानिबोधोपाद्यास्ते च किं न गताः श्रुतिम् ॥६३॥
 सितचन्दनदिग्धाज्ञो नवर्जामृतसन्निभः । मन्दोदरीमथावोचद्रावणः कमलेक्षणः ॥६४॥

करनेवाले हैं ॥५१॥ आपकी उत्कृष्ट धीरता, गम्भीरता और विचारकता उस सीताके लिए जिस कुमार्गसे गई है हे नाथ ! जान पड़ता है कि आप भी किसीके द्वारा उसी कुमार्गसे ले जाये जा रहे हैं ॥५२॥ जिस प्रकार अष्टापद कुण्डके जलमें अपनी परिछाई देव दुःखको प्राप्त हुआ उसी प्रकार अत्यन्त दुःख देनेवाली आपत्तियोंमें तुम किसलिए प्रवृत्त हो रहे हो ॥५३॥ अत्यधिक क्रोश उत्पन्न करनेवाले अपयशरूपी ऊँचे वृत्तको भेदन कर सुखसे रहिये । आप केलेके स्तम्भके समान किस निःसार फलकी इच्छा रखते हैं ॥५४॥ हे समुद्रके समान गम्भीर ! अपने प्रशस्त कुलको फिरसे अलङ्कृत कीजिए और कुलीन मनुष्योंके शिर दर्दके समान भूमिगोचरीकी स्त्री-सीताको शीघ्र ही छोड़िए ॥५५॥ हे स्वामिन् ! वीर सामन्त जो एक दूसरेका विरोध करते हैं सो धनकी प्राप्तिके प्रयोजनसे करते हैं अथवा मनमें ऐसा विचारकर करते हैं कि या तो पर को मारूँ या मैं स्वयं मरूँ । सो यहाँ धनकी प्राप्ति तो आपके विरोधका प्रयोजन हो नहीं सकती क्योंकि आपको धनकी क्या कमी है ? और दूसरा प्रयोजन अपना पराया मरना है सो किसलिए मरना ? पराई स्त्रीके लिए मरना यह तो हास्यकर बात है ॥५६॥ अथवा माना कि शत्रुओंके समूहका पराजित करना विरोधका प्रयोजन है सो शत्रु समूहको पराजित करने पर आपका कौनसा प्रयोजन सम्पन्न होता है ? अतः हे स्वामिन् ! सीतारूपी हठ छोड़िए ॥५७॥ और दूसरा व्रत रहने दीजिए एक परस्त्रीत्याग व्रत के द्वारा ही उत्तम शीलको धारण करनेवाला पुरुष दोनों जन्मोंमें प्रशंसाको प्राप्त होता है ॥५८॥ कज्जलकी उपमा धारण करनेवाली परस्त्रियोंका लोभी मनुष्य, मेरुके समान गौरवसे युक्त होने पर भी नृणके समान तुच्छताको प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ देव जिस पर अनुग्रह करते हैं अथवा जो चक्रवर्तीका पुत्र है वह भी परस्त्रीकी आसक्तिरूपी कर्दमसे लिप्त होता हुआ परम अकीर्तिको प्राप्त होता है, जो मूर्ख परस्त्रीके साथ प्रेम करता है मानो वह पापी आशीविष नामक सर्पिणीके साथ रमण करता है ॥६०-६१॥ अत्यन्त निर्मल कुलको अपकीर्तिसे मलिन मत कीजिए । अथवा आप स्वयं अपने आपको मलिन कर रहे हैं सो इस दुर्बुद्धिको छोड़िए ॥६२॥ सुमुख तथा वज्रघोष आदि महाबलवान् पुरुष, परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे नाशको प्राप्त हो चुके सो क्या वे आपके सुननेमें नहीं आये ? ॥६३॥

अथानन्तर जिसका समस्त शरीर सफेद चन्दनसे लिप्त था तथा जो स्वयं नूतन मेघके

१. चक्रवर्तिसमोऽपि वा क० । २. अन्यो धवो धवान्तरः परपुरुषस्तथावत्ता तस्य इच्छा तस्याः परपुरुषवनिताया इच्छामात्रत इति भावः ।

अथि कान्ते किमर्थं त्वमेवं कातरतां गता । भीरुवाङ्गीरुभावसि नाम हीदं सहार्थकम् ॥६५॥
 सूर्यकीर्तिरहं नासी न चाप्यशनिघोषकः । न चेतरो नरः कश्चिकिमर्थमिति भावसे ॥६६॥
 मृद्युदावातलः सोऽहं शत्रुपादपसंहतेः । समर्पयामि वो सीतां मा भैषीर्मन्दमानसे ॥६७॥
 अनया कथया किं ते रक्षाया त्वं नियोजिता । शक्नोषि रक्षितुं नाथ मह्यमर्पय तां द्रुतम् ॥६८॥
 ऊचे मन्दोदरीं सार्द्धं तथा रतिमुखं भवान् । वाञ्छत्यर्पय मे तामित्येवं च वदतेऽप्रपः ॥६९॥
 'इत्युक्तवैश्याभवं क्रोधं वहती विपुलेक्षणा । कर्णोत्पलेन सौभाग्यमतिरेनमताडयत् ॥७०॥
 पुनरीश्यां नियम्यान्तर्जगाद वद सुन्दर । किं माहात्म्यं त्वया तस्या इष्टं तां यद्भीच्छसि ॥७१॥
 न सा गुणवती ज्ञाता ललामा न च रूपतः । कलासु च न निष्णाता न च चित्तानुवर्तिनी ॥७२॥
 ईदृश्याऽपि तथा साकं कान्त का ते रतौ मतिः । आत्मनो लाघवं शुद्धं भवस्त्वं नानुबुद्धयसे ॥७३॥
 न कश्चिस्त्वयमात्मानं शंसन्नाप्नोति गौरवम् । गुणा हि गुणतां यांति गुण्यमानाः पराननैः ॥७४॥
 तदहं नो वदाम्येवं किं तु वेत्सि त्वमेव हि । वराक्या सीतया किं वा न श्रीरपि समेति मे ॥७५॥
 विजहीहि विभोऽत्यन्तं सीतासङ्केप्सितात्मकम् । माऽनुषङ्गानले तीव्रे प्राप्सो निःपरिहारके ॥७६॥
 मद्यज्ञाकरो वाञ्छन् भूमिगोचरिणीमिमाम् । शिशुवैडूर्यमुत्सृज्य काचमिच्छसि मन्दकः ॥७७॥

समान श्यामल वर्ण था ऐसा कमल-लोचन रावण मन्दोदरीसे बोला कि ॥६४॥ हे प्रिये! तू क्यों इस तरह अत्यन्त कातरताको प्राप्त हो रही है? भीरु अर्थात् स्त्री होनेके कारण ही तू भीरु अर्थात् कातर भावको धारण कर रही है। अहो! स्त्रीका भीरु यह नाम सार्थक ही है ॥६५॥ मैं न अर्ककीर्ति हूँ, न वज्रघोष हूँ और न कोई दूसरा ही मनुष्य हूँ फिर इस तरह क्यों कह रही है? ॥६६॥ मैं शत्रुरूप वृत्तोंके समूहको भस्म करनेवाला वह मृत्युरूपी दावानल हूँ इसलिए सीताको वापिस नहीं लौटाऊँगा। हे मन्दमते! भय मत कर ॥६७॥ अथवा इस चर्चा से तुम्हें क्या प्रयोजन है? तू तो सीताकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त की गई है सो यदि रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है तो मुझे शीघ्र ही वापिस सौंप दे ॥६८॥ यह सुन मन्दोदरीने कहा कि आप उसके साथ रति-मुख चाहते हैं इसीलिए निर्लज्ज हो इस प्रकार कह रहे हैं कि उसे मुझे सौंप दो ॥६९॥ इतना कह ईश्या सम्बन्धी क्रोधको धारण करनेवाली उस दीर्घलोचना मन्दोदरीने सौभाग्यकी इच्छासे कर्णोत्पलके द्वारा रावणको ताड़ा ॥७०॥ पुनः मन ही मन ईश्याको रोऊकर उसने कहा कि हे सुन्दर! बताओ तो सही कि तुमने उसका क्या माहात्म्य देखा है? जिससे उसे इस तरह चाहते हो ॥७१॥ न तो वह गुणवती जान पड़ी है, न रूपमें सुन्दर है, न कलाओं में निपुण है और न आपके मनके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाली है ॥७२॥ फिर भी ऐसी सीताके साथ रमण करने की हे वल्लभ! तुम्हारी कौन बुद्धि है। मेरी दृष्टिमें तो केवल अपनी लघुता ही प्रकट हो रही है जिसे आप समझ नहीं रहे हैं ॥७३॥ कोई भी पुरुष स्वयं अपने आपकी प्रशंसा करता हुआ गौरवको प्राप्त नहीं होता यथार्थमें जो गुण दूसरोंके मुखोंसे प्रशंसित होते हैं वे ही गुणपनेको प्राप्त होते हैं ॥७४॥ इसीलिए मैं ऐसा कुछ नहीं कहती हूँ किन्तु आप स्वयं जानते हैं कि बेचारी सीताकी तो बात ही क्या, लक्ष्मी भी मेरे समान नहीं है ॥७५॥ इसलिए हे विभो! सीताके साथ समागम की जो अत्यधिक लालसा है उसे छोड़िये, जिसका परिहार नहीं ऐसी अपवाद्रूपी तीव्र अग्निमें मत पड़िये ॥७६॥ आप मेरा अनादर कर इस भूमिगोचरीको चाह रहे हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मूर्ख बालक वैडूर्यमणिको

१. 'मामिनी भीरुङ्गता' इति धनंजयः । २. महार्थकम् म० । ३. शक्तोऽपि म० । ४. न + अथ इति पदच्छेदः । ५. इत्युक्ते-म० । ६. यदिच्छसि म० । ७. 'प्रतो' इति स्वात्, प्रोपसर्गपूर्वकपत्ल धातोर्लुङ्मथ्यमैकवचने रूपम् । मायोगे अडागमनिषेधः ।

न दिव्यं रूपमेतस्या जायते मनसि स्थितम् । इमां ग्रामेयकाकारां नाथ कामयसे कथम् ॥७८॥
 यथासमीहिताकल्पकल्पनाऽतिविचक्षणः । भगामि कीदृशी ब्रूहि जाये त्वच्चित्तहारिणी ॥७९॥
 पद्मालयारतिः सद्यः श्रीर्भवामि किमीश्वर । शकलोचनविश्रान्तभूमिः किं वा शची प्रभो ॥८०॥
 मकरध्वजचित्तस्य बन्धनी रतिरेव वा । साक्षाद्भवामि किं देव भवद्विच्छानुवर्तिनी ॥८१॥
 ततः किंचिदधोवक्त्रो रावणोद्धातिर्वाचणः । समीढः स्वैरमुचेऽहं परस्त्रीहस्त्रयोदितः ॥८२॥
 किं मयोपचितं पश्य परमाकीर्त्तिगामिना । आत्मा लघुकृतो मूढः परस्त्रोसक्तचेतसा ॥८३॥
 विषयाऽऽमिषसक्ताऽमन् पापभाजनचञ्चलः । धिगस्तु हृदयत्वं ते हृदयक्षुद्रचेष्टिता ॥८४॥
 विलस इव चोत्सर्पिमुखेन्दुस्मितचन्द्रिकः । बुद्धाक्षिकुमुदः कान्तामेवमूचे दशाननः ॥८५॥
 देवि वैक्रियरूपेण विनैत्र प्रकृतिस्थिता । अत्यन्तदयिता त्वं मे किमन्यस्त्रीमिहत्तमे ॥८६॥
 लब्धप्रसादया देव्या ततो मुद्रितचित्तया । भाषितं देव किं भाःतीर्दीपोद्योताय युज्यते ॥८७॥
 दशानन सुहृन्मध्ये यन्मयोक्तमिदं हितम् । अन्यान्पि बुधान् पृच्छ वेद्यै नेत्यबला सती ॥८८॥
 जानन्नपि नयं सर्वं प्रमादं देवयोगतः । जन्तुना हितकामेन बोधनीयो न किं प्रभुः ॥८९॥
 आर्त्ताद्विष्णुमुरसौ साधुर्विक्रियाविस्मृतात्मकः । सिद्धान्तगीतिकाभिः किं न प्रबोधमुपाहतः ॥९०॥

छोड़कर काँचकी इच्छा करता है ॥७७॥ इससे आपका मनचाहा दिव्य रूप भी नहीं हो सकता अर्थात् यह विक्रियासे आपकी इच्छानुसार रूप नहीं परिवर्तित कर सकती फिर हे नाथ ! आप इस ग्रामीण स्त्रीको क्यों चाहते हैं ? ॥७८॥ मैं आपकी इच्छानुसार रूपको धरनेमें अतिशय निपुण हूँ सो मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं कैसी हो जाऊँ । हे स्वामिन् ! क्या शीघ्र ही तुम्हारे चित्तको हरण करनेवाली एवं कमलरूपी घरमें प्रीति धारण करनेवाला लक्ष्मी बन जाऊँ ? अथवा हे प्रभो ! इन्द्रके नेत्रोंकी विश्रामभूमिस्वरूप इन्द्राणी हो जाऊँ ? ॥७९-८०॥ अथवा कामदेवके चित्तको रोकनेवाली साक्षात् रति ही बन जाऊँ ? अथवा हे देव ! आपकी इच्छानुसार प्रयुक्ति करनेवाली क्या हो जाऊँ ? ॥८१॥

तदनन्तर जिसका मुख नीचे की ओर था, जिसके नेत्र आधे खुले थे, तथा जो लज्जासे सहित था ऐसा रावण धीरे-धीरे बोला कि हे प्रिये ! तुमने मुझे परस्त्रीसेवी कहा सो ठीक है ॥८२॥ देखो मैंने यह क्या किया ? परस्त्रीमें चित्तसे आसक्त होनेसे परम अकीर्तिको प्राप्त होते हुए मैंने इस मूर्ख आत्माको अत्यन्त लघु कर दिया है ॥८२-८३॥ जो विषयरूपी मांसमें आसक्त है, पापका भाजन है तथा चञ्चल है ऐसे इस हृदयको धिक्कार है । रे हृदय ! तेरी यह अत्यन्त नीच चेष्टा है ॥८४॥ इतना कह जिसके मुखचन्द्रको मुसकान रूपी चाँदनी ऊपर की ओर फैल रही थी, तथा जिसके नेत्ररूपी कुमुद विकसित हो रहे थे ऐसे दशाननने मन्दोदरीसे पुनः इस प्रकार कहा कि ॥८५॥ हे देवि ! विक्रिया निर्मित रूपके विना स्वभावमें स्थित रहने पर भी तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो । हे उत्तमे ! मुझे अन्य स्त्रियोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥८६॥ तदनन्तर स्वामीकी प्रसन्नता प्राप्त होनेसे जिसका चित्त खिल उठा था ऐसी मन्दोदरीने पुनः कहा कि हे देव ! सूर्यके लिए दीपकका प्रकाश दिखाना क्या उचित है ? अर्थात् आपसे मेरा कुछ निवेदन करना उसी तरह व्यर्थ है जिस तरह कि सूर्यको दीपक दिखाना ॥८७॥ हे दशानन ! मैंने मित्रोंके बीच जो यह हितकारी बात कही है सो उसे अन्य विद्वानोंसे भी पूछ लीजिये । मैं अबला होनेसे कुछ समझती नहीं हूँ ॥८८॥ अथवा समस्त शास्त्रोंको जाननेवाला भी प्रभु यदि कदाचित् दैवयोगसे प्रमाद करता है तो क्या हित की इच्छा रखनेवाले प्राणीको उसे समझाना चाहिए ॥८९॥ जैसे कि विष्णुकुमार मुनि विक्रिया द्वारा आत्माको भूल गये थे सो क्या उन्हें सिद्धान्तके

अयं पुमानियं स्त्रीति विकल्पोऽयममेधसाम् । सर्वतो वचनं साधु सर्माहन्ते सुमेधसः ॥६१॥
 स्वल्पोऽपि यदि कश्चित् प्रसादो मयि विद्यते । ततो वदामि ते सुञ्च परस्त्रीरतमार्गणम् ॥६२॥
 गृहीत्वा जानकीं कृत्वा त्वामेव च समाश्रयम् । प्रत्यापयामि मत्वाऽहं रामं भवदनुज्ञया ॥६३॥
 उपगृह्य सुतौ तेऽहं शत्रुजन्मेधवाहनौ । भ्रातरं चोपनेष्यामि किं भूरिजनहिंसया ॥६४॥
 एवमुक्तो भृशं क्रुद्धो रत्नसामधिपोऽवदत् । गच्छ गच्छ दुतं यत्र न पश्यामि मुखं तव ॥६५॥
 अहो त्वं पण्डितम्मन्या यद्विहायोऽस्ति निजाम् । परपक्षप्रशंसायां प्रवृत्ता दीनचेष्टिता ॥६६॥
 त्वं वीरजननी भूत्वा समाप्रमहिषी सती । या वच्मि क्लीबमेवं तत्कातरास्ति न ते परा ॥६७॥
 एवमुक्ता जगौ देवी शृणु यद्गदितं बुधैः । हलिनां चक्रिणां जन्म तथा च प्रतिचक्रिणाम् ॥६८॥
 विजयोऽथ त्रिपृष्ठश्च द्विपृष्ठोऽचल एव च । स्वयम्भूरिति च ख्यातस्तथा च पुरुषोत्तमः ॥६९॥
 नरसिंह प्रतीतिश्च पुण्डरीकश्च विश्रुतः । दत्तश्चेति जगद्गीरा हरयोऽस्मिन् युगे स्मृतः ॥७०॥
 समये तु महावीर्यौ पद्मनारायणौ स्मृतौ । यौ तौ ध्रुवमिमौ जातौ दशानन समागतौ ॥७१॥
 प्रत्यनीका ययुर्ग्रीवतारकाद्या यथा गताः । नाशमेभ्यस्तथा नूनं स्वमस्माद्गन्तुमिच्छसि ॥७२॥

उपदेश द्वारा प्रबोधको प्राप्त नहीं कराया गया था ॥६०॥ 'यह पुरुष है और यह स्त्री है' इस प्रकारका विकल्प निर्बुद्धि पुरुषोंको ही होता है यथार्थमें जो बुद्धिमान हैं वे स्त्री-पुरुष सभीसे हितकारी वचनोंकी अपेक्षा रखते हैं ॥६१॥ हे नाथ ! यदि आपकी मेरे ऊपर कुछ थोड़ी भी प्रसन्नता है तो मैं कहती हूँ कि परस्त्रीसे रतिकी याचना छोड़ो अथवा परस्त्रीमें रत पुरुषका मार्ग तजो ॥६२॥ यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जानकीको ले जाकर रामको आपकी शरणमें ले आती हूँ तथा तुम्हारे इन्द्रजित् और मेघवाहन नामक दोनों पुत्रों तथा भाई कुम्भकर्णको वापिस लिये आती हूँ । अधिक जनोंकी हिंसासे क्या प्रयोजन है ? ॥६३-६४॥

मन्दोदरीके इस प्रकार कहने पर रावण अत्यधिक क्रुपित होता हुआ बोला कि जा जा जल्दी जा, वहाँ जा जहाँ कि मैं तेरा मुख नहीं देखूँ ॥६५॥ अहो ! तू अपने आपको बड़ी पण्डिता मानती है जो अपनी उन्नतिको छोड़ दीन चेष्टा की धारक हो शत्रु पक्षकी प्रशंसा करनेमें तत्पर हुई है ॥६६॥ तू वीरकी माता और मेरी पट्टरानी होकर भी जो इस प्रकार दीन वचन कह रही है तो जान पड़ता है कि तुझसे बड़ कर कोई दूसरी कायर स्त्री नहीं है ॥६७॥ इस प्रकार रावणके कहने पर मन्दोदरीने कहा कि हे नाथ ! विद्वानोंने बलभद्रों, नारायणों तथा प्रतिनारायणोंका जन्म जिस प्रकार कहा है उसे सुनिये ॥६८॥ हे देव ! इस युगमें अबतक ऋविजय तथा अचल आदि सात बलभद्र और त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, नृसिंह, पुण्डरीक और दत्त ये सात नारायण हो चुके हैं । ये सभी जगत्में अत्यन्त धीरवीर तथा प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं । इस समय पद्म और लक्ष्मण नामक बलभद्र तथा नारायण होंगे । सो हे दशानन जान पड़ता है कि ये दोनों ही यहाँ आ पहुँचे हैं । जिसप्रकार अश्वघ्रीव और तारक आदि प्रतिनारायण इनसे नाशको प्राप्त हुए हैं उसी प्रकार जान पड़ता है कि तुम भी इनसे नाशको प्राप्त होना चाहते

१. विजयोऽथ म० ।

१. नौ बलभद्र—१ विजय २ अचल ३ भद्र ४ सुप्रम ५ सुदर्शन ६ आनन्द ७ नन्दन नन्द, ८ पद्म—राम और ९ बलराम ।

नौ नारायण—१ त्रिपृष्ठ २ द्विपृष्ठ ३ स्वयम्भू, ४ पुरुषोत्तम ५ नृसिंह ६ पुण्डरीक ७ दत्त ८ लक्ष्मण और कृष्ण ।

नौ प्रतिनारायण—१ अश्वघ्रीव २ तारक ३ मेरुक ४ त्रिशम्भु ५ मधु ६ बलि ७ प्रह्लाद ८ रावण और जरासंध ।

तावताशङ्कयते नाथ वक्तुं तत्त्वं हिते रतम् । वाक्प्रज्ञापनीयस्य निश्चयान्तो न दश्यते ॥१०३॥
 तत्कार्यं बुद्धियुक्तेन परब्रेह च यत्सुखम् । न तु दुःखाङ्कुरोत्पत्तिकारणं कुत्सनास्पदम् ॥१०४॥
 विषयैः सुचिरं मुक्तैर्यैः पुमाँस्तृप्तिमागतः । त्रैलोक्येऽपि वदैकं तं पापमोहित रावण ॥१०५॥
 भुक्त्वापि सकलं भोगं मुनित्वं चेन्न सेवसे । गृहिधर्मरतो भूत्वा कुरु दुःखविनाशनम् ॥१०६॥
 अणुवतासिदीप्तज्ञो नियमच्छत्रशोभितः । सम्यग्दर्शनसप्ताहः शीलकेतनलङ्घितः ॥१०७॥
 भावनाचन्दनार्द्राङ्गः सुप्रबोधशरासनः । वशेन्द्रियबलोपेतः शुभध्यानप्रतापवान् ॥१०८॥
 मर्यादांकुशसंयुक्तो निश्चयानेकपस्थितः । जिनभक्तिमहाशक्तिर्जयं दुर्गतिवाहिनीम् ॥१०९॥
 इयं हि कुटिला पापा महावेगा सुदुःसहा । बुधेन जीयते जित्वा तामेतां सुखितो भव ॥११०॥
 हिमवन्मन्दराद्येषु पर्वतेषु जिनालयान् । पूजयन् वशया सादं जम्बूद्वीपं मया चर ॥१११॥
 अष्टादशसहस्रर्क्षापाणिपल्लवलालितः । क्रीड मन्दरकुञ्जेषु मन्दाकिन्यास्तटेषु च ॥११२॥
 ईप्सितेषु प्रदेशेषु रमणीयेषु सुन्दर । विद्याधरयुगं स्वेच्छं करोति त्रिहृतिं सुखम् ॥११३॥
 लब्धवर्णं न युद्धेन किञ्चिदस्ति प्रयोजनम् । प्रसीद कुरु मे वाक्यं सर्वथैव सुखावहम् ॥११४॥
 श्वेडवद्दुर्जनं निधं परमानर्थकारणम् । जनवादिमिमं मुञ्च किं मजस्ययशोऽनुभौ ॥११५॥
 इति प्रसादयन्ती सा बद्धपाण्यटजकुड्मला । पपात पादयोस्तस्य बाँधन्ती परमं हितम् ॥११६॥

हो ॥६६-१०२॥ हे नाथ ! हित करनेमें तत्पर तत्त्वका निरूपण करनेके लिए तब तक आशंका की जाती है जब तक कि निरूपणादि तत्त्वका पूर्ण निश्चय नहीं दिखाई पड़ता है ॥१०३॥ बुद्धिमान् मनुष्यको वह कार्य करना चाहिए जो इस लोक तथा परलोकमें सुखका देनेवाला हो । दुःखरूपी अङ्कुरको उत्पत्तिका कारण तथा निन्दाका स्थान न हो ॥१०४॥ चिरकाल तक भोगे हुए भोगोंसे जो तृप्तिको प्राप्त हुआ हो ऐसा तीन लोकमें भी यदि कोई एक पुरुष हो तो हे पापसे मोहित रावण ! उसका नाम कहो ॥१०५॥ यदि समस्त भोगोंको भोगनेके बाद भी तुम मुनि पदको धारण नहीं कर सकते हो तो कमसे कम गृहस्थ धर्ममें तत्पर होकर भी दुःखका नाश करो ॥१०६॥ हे नाथ ! अणुव्रत रूपी तलवारसे जिसका शरीर देदीप्पमान है, जो नियमरूपी छत्रसे सुशोभित है, जिसने सम्यग्दर्शन रूपी कवच धारण किया है, जो शीलव्रत रूपी पताकासे युक्त है, जिसका शरीर भावनारूपी चन्दनसे आर्द्र है । सम्यग्ज्ञान ही जिसका धनुष है, जो जितेन्द्रियता रूपी बलसे सहित है, शुभध्यान रूपी प्रतापसे युक्त है, मर्यादा रूपी अङ्कुरसे सहित है, जो निश्चय रूपी हाथी पर सवार है, और जिनेन्द्र भक्ति ही जिसकी महाशक्ति है ऐसे होकर तुम दुर्गति रूपी सेनाको जीतो । यथार्थमें यह दुर्गति रूपी सेना अत्यन्त कुटिल, पापरूपिणी, और अत्यन्त दुःसह है सो इसे जीतकर तुम सुखी होओ ॥१०७-११०॥ हिमवत् तथा मेरु आदि पर्वतों पर जो अकृत्रिम जिनालय हैं उनकी मेरे साथ पूजा करते हुए जम्बू द्वीपमें विचरण करो ॥१११॥ अठारह हजार स्त्रियोंके हस्तरूपी पल्लवोंसे ललित होते हुए तुम मन्दरगिरिके निकुञ्जों और गङ्गा नदीके तटों में क्रीड़ा करो ॥११२॥ हे सुन्दर ! विद्याधर दम्पति अपने अभिलषित मनोहर स्थानोंमें इच्छानुसार सुख पूर्वक विहार करते हैं ॥११३॥ हे विद्वन् ! अथवा हे यशस्विन् ! युद्ध से कुल्ल प्रयोजन नहीं है । प्रसन्न होओ और सब प्रकारसे सुख उत्पन्न करने वाले मेरे वचन अङ्गीकृत करो ॥११४॥ विषके समान दुष्ट, निन्दनीय, तथा परम अनर्थका कारण जो यह लोकापवाद है सो इसे छोड़ो । व्यर्थ ही अपयश रूप सागरमें क्यों डूबते हो ? ॥११५॥ इस प्रकार प्रसन्न करती तथा उसका परम हित चाहती हुई मन्दोदरी हस्तकमल जोड़कर रावणके चरणोंमें गिर पड़ी ॥११६॥

विहसन्नध तामूचे भीता भयविचर्जितः । उत्थाप्य भीतिमेवं किं गता खं कारणं विना ॥११७॥
 मत्तोऽस्ति नाधिकः कश्चिद्दरारोहे नरोत्तमः । अलीका भीरुता केयं खौगादालंभ्यते स्वया ॥११८॥
 गदितं यत्प्रयाऽन्यस्य पक्षस्योद्भवसूचनम् । नारायण इति स्पष्टं तव देवि निरूप्यते ॥११९॥
 नामनारायणाः सन्ति बलदेवाश्च भूरिशः । नामोपलब्धिमात्रेण कार्यसिद्धिः किमिष्यते ॥१२०॥
 तिर्यक् कश्चिन्मनुष्यो वा कृतसिद्धाभिधानकः । वाङ्मात्रतः स किं सैद्धं सुखमाप्नोति कातरै ॥१२१॥
 रथनूपुरधामेशो यथेन्द्रोऽनिन्द्यतां मया । नीतस्तथेमर्माच्चस्व स्वमनारायणं कृतम् ॥१२२॥
 इत्युजितमुदाहृत्य प्रतिशशुः प्रतापवान् । स्वप्रभापटलच्छन्नशरीरः परमेश्वरः ॥१२३॥
 क्रीडागृहमुपाविशन्मन्दोदर्यां समन्वितः । श्रियेव सहितः शक्रो यथा कालाश्रितक्रियः ॥१२४॥
 सायाह्वसमये तावत्सन्ध्यानिर्गतमण्डलः । सविता संहरत्यंशून्कषायानिव संयतः ॥१२५॥
 सन्ध्याबलिबिदष्टौष्टपुरुसंरंभलोहितः । निर्भर्त्सयन्नैव दिनं गतः कापि दिवाकरः ॥१२६॥
 बद्धपद्माञ्जलिपुटा नलिन्योऽस्तं गतं रविम् । विरुतैश्चक्रवाकानां दीनमाकारयन्नैव ॥१२७॥
 भनुमार्गेण च प्राप्ता ग्रहनचत्रवाहिनी । विक्षेपेणैव सरितुं मृगांकेन विसर्जिता ॥१२८॥
 प्रदोषे तत्र संवृत्ते दीपिकारत्नदीपिते । प्रभाभिर्नगरी लङ्का रेजे मेरोः शिखा यथा ॥१२९॥

अथानन्तर निर्भय रावण ने हँसते हुए उस भयभीत मन्दोदरीको उठाकर कहा कि तू इस तरह कारणके बिना ही भय को क्यों प्राप्त हो रही है ? ॥११७॥ हे सुन्दरि ! मुझसे बढ़कर कोई दूसरा उत्तम मनुष्य नहीं है । तू स्त्रीपनाके कारण इस किस मिथ्या भीरुताका आलम्बन ले रही है ? अर्थात् स्त्री होनेके कारण व्यर्थ ही क्यों भयभीत हो रही है ? ॥११८॥ 'वे नारायण हैं' इस प्रकार दूसरे पक्षके अभ्युदयको सूचित करनेवाली जो बात तूने कही है सो हे देवि ! तुझे स्पष्ट बात बताऊँ कि नारायण और बलदेव इस नामको धारण करनेवाले पुरुष बहुतसे हैं क्या नामकी उपलब्धिमात्रसे कार्यकी सिद्धि हो जाती है ॥११९-१२०॥ हे भीरु ! यदि किसी तिर्यक्य या मनुष्यका सिद्ध नाम रख लिया जाय तो क्या नाममात्रसे वह सिद्ध सम्बन्धी सुखको प्राप्त हो सकता है ? ॥१२१॥ जिस प्रकार रथनूपुर नगरके अधिपति इन्द्रको मैंने अनिन्द्रपना प्राप्त करा दिया था उसी प्रकार तुम देखना कि मैंने इस नारायणको अनारायण बना दिया है ॥१२२॥ इस प्रकार अपनी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था तथा जिसकी क्रियाएँ यमराजके आश्रित थीं ऐसी प्रतापी परमेश्वर रावण, अपनी सबलताका निरूपण कर मन्दोदरीके साथ क्रीडा गृहमें उस तरह प्रविष्ट हुआ जिस तरह कि लक्ष्मीके साथ इन्द्र प्रवेश करता है ॥१२३-१२४॥

अथानन्तर सायंकालका समय आया तो सन्ध्याके कारण जिसका मण्डल अस्तोन्मुख हो गया था ऐसे सूर्यने किरणोंको उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि मुनि अपनी कषायोंको संकोच लेता है ॥१२५॥ सूर्य लाल-लाल होकर अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो सन्ध्याबलि रूप ओष्ठ जिसमें डसा जा रहा था ऐसे बहुत भारी क्रोधसे लाल-लाल हो दिनको डाँट दिखाता हुआ कहीं चला गया था ॥१२६॥ कमलिनियोंके कमल बन्द हो गये थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो कमल रूपी अञ्जलिको बाँधने वाली कमलिनियों चक्रवाक पक्षियोंके शब्दके द्वारा अस्त हुए सूर्यको दीनता पूर्वक बुला ही रही थीं ॥१२७॥ सूर्यके अस्त होते ही उसी मार्गसे ग्रह और नक्षत्रोंकी सेना आ पहुँची सो ऐसी जान पड़ती थी मानो चन्द्रमाने उसे स्वच्छन्दता-पूर्वक घूमनेके लिए छोड़ ही दिया था—उसे आज्ञा ही दे रखी थी ॥१२८॥ तदनन्तर दीपिका रूपी रत्नोंसे प्रकाशित प्रदोष कालके प्रकट होने पर प्रभासे जगमगाती हुई लंका मेरुकी शिखाके

प्रियं प्रणयिनी काचिदालिङ्गोचे सवेपथुः । अन्येकां शर्वरीमेतां मानयामि त्वया सह ॥१३०॥
 उद्धमद्युधिकाऽऽमोदमधुमत्ता विधुर्णिता । पर्यस्ता काचिदांशाङ्गे पुष्पवृष्टिः सुकोमला ॥१३१॥
 अञ्जतुल्यकमा काचित् पीवरीरुपयोधरा । वधुमती वपुमन्तं दयिता दयितं ययौ ॥१३२॥
 जग्राह भूषणं काचित्स्वभावैवैव सुन्दरी । कुर्वन्ती हेमरत्नानां चारुभावा कृतार्थताम् ॥१३३॥
 सुविद्याधरयुग्मानि प्रचिक्राह्यर्थेप्सितम् । भवने भवने भान्ति सद्यं भोगभूमिषु ॥१३४॥
 गीतानङ्गद्वालापैर्वीणावांशादिनिःस्वनैः । जल्पतीव तदा लङ्का मुदिता स्रगदाऽऽगमे ॥१३५॥
 ताम्बूलगन्धमालयाद्यैरुपभोगैः सुरोपमैः । पिबन्तो मदिरामन्ये रमन्ते दयिताम्बिताः ॥१३६॥
 काचित्स्ववदनं दृष्ट्वा चषकप्रतिबिम्बितम् । ईर्ष्येन्द्रीवरेणेशं प्राप्ता मदमताडयत् ॥१३७॥
 मदिरायां परिन्यस्तं नारीभिर्मुखसौरभम् । लोचनेषु निजो रागस्तासां मदिरया कृतः ॥१३८॥
 तदेव वस्तु संसर्गाद्वत् परमचारुताम् । तथाहि दयितापीतशेषं स्वाद्वभवनमधु ॥१३९॥
 मदिरापतितां काञ्चिदात्मीयां लोचनसुतिम् । गुह्यार्तान्द्रावरप्रस्था कान्तेन हसिता चिरम् ॥१४०॥
 अप्रीढापि सती काचिच्छनकैः पायिता सुराम् । जगाम प्रौढतां बाला मन्मथोचितवस्तुनि ॥१४१॥
 लज्जासखीमपाकृत्य तालामत्यन्तमोप्सितम् । कृतं कादम्बरीसख्या प्रियेषु क्रीडितं परम् ॥१४२॥
 घूर्णमानेक्षणं भूयः कलस्खलितज्विपतम् । चेष्टितं विकटं स्त्रीणां पुंसां जातं मनोहरम् ॥१४३॥

समान सुशोभित हो उठी ॥१२६॥ उस समय कोई स्त्री पतिका आलिङ्गन कर काँपती हुई बोली कि तुम्हारे साथ यह एक रात तो आनन्दसे बिता लूँ कल जो होगा सो होगा ॥१२७॥ जिसकी चोटीमें गुँथी हुई जुहीकी मालासे सुगन्धि निकल रही थी तथा जो मधुके नशामें मत्त हो मूम रही थी ऐसी कोई एक स्त्री पतिकी गोदमें उस तरह लोट गई मानो अत्यन्त कोमल पुष्प वृष्टि ही बिखेर दी गई हो ॥१२९॥ जिसके चरण कमलके समान थे तथा जिसकी जाँघें और स्तन अत्यन्त स्थूल थे ऐसी सुन्दर शरीरकी धारक कोई स्त्री सुन्दर शरीरके धारक बल्लभके पास गई हो ॥१३२॥ जो स्वभावसे ही सुन्दरी थी तथा सुन्दर हाव-भावको धारण करनेवाली थी ऐसी किसी स्त्रीने सुवर्ण और रत्नोंकी कृत-कृत्य करनेके लिए ही मानो उसने आभूषण धारण किये थे ॥१३३॥ विद्याधर और विद्याधरियोंके युगल इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे थे और वे घर-घरमें ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो भोगभूमियोंमें ही हों ॥१३४॥ संगीतके कामोत्तेजक आलापों और वीणा बाँसुरी आदिके शब्दोंसे उस समय लंका ऐसी जान पड़ती थी मानो रात्रिका आगमन होने पर हर्षित हो वार्तालाप ही कर रही हो ॥१३५॥ कितने ही अन्य लोग ताम्बूल गन्धमाला आदि देवोपम उपभोगोंसे मदिरा पीते हुए अपनी बल्लभाओंके साथ क्रीड़ा करते थे ॥१३६॥ नशामें निमग्न हुई कोई एक स्त्री मदिराके प्यालेमें प्रतिबिम्बित अपना ही मुख देख ईर्ष्यावश नीलकमलसे पतिको पीट रही थी ॥१३७॥ स्त्रियोंने मदिरामें अपने मुखकी सुगन्धि छोड़ी थी और मदिराने उसके बदले स्त्रियोंके नेत्रोंमें अपनी लालिमा छोड़ रखी थी ॥१३८॥ वही वस्तु इष्ट-जनकोंके संसर्गसे परम सुन्दरताको धारण करने लगती है इसी लिए तो स्त्रीके पीनेसे शेष रहा मधु स्वादिष्ट हो गया था ॥१३९॥ कोई एक स्त्री मदिरामें पड़ी हुई अपने नेत्रोंकी कान्तिको नीलकमल समझ ग्रहण कर रही थी सो पतिने उसकी चिरकाल तक हँसी की ॥१४०॥ कोई एक स्त्री यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी तथापि धीरे-धीरे उसे इतनी अधिक मदिरा पिला दी गई कि वह कामके योग्य कार्यमें प्रौढ़ताको प्राप्त हो गई अर्थात् प्रौढ़ा स्त्रीके समान कामभोगके योग्य हो गई ॥१४१॥ उस मदिरारूपी सखीने लज्जारूपी सखीको दूर कर उन स्त्रियोंकी पतियोंके विषयमें ऐसी क्रीड़ा कराई जो उन्हें अत्यन्त इष्ट थी अर्थात् स्त्रियाँ मदिराके कारण लज्जा छोड़ पतियोंके साथ इच्छानुकूल क्रीड़ा करने लगीं ॥१४२॥ जिसमें नेत्र घूम रहे थे तथा बार-बार मधुर अधकटे

१. भाते ज० । २. इवालापै- म० । ३. पीतं रोष म० । ४. कलै स्खलित म० ।

दम्पती मधु बाह्वन्तौ पीतशेषं परस्परम् । चक्रतुः प्रस्तोह्यापौ चपकस्य गतागतम् ॥१४४॥
 चपके विगतप्रीतिः कान्तामालिभ्य सुन्दरः । गण्डूषमदिरां कश्चित्पौ मुकुलितेक्षणः ॥१४५॥
 आसीद्द्विदुमकल्पानां किञ्चित्स्फुरणसेविनाम् । मधुहालितरागाणामधराणां परा धृतिः ॥१४६॥
 दन्ताघरेक्षणच्छायासंसर्गिचपके मधु । शुक्लारूपासिताभोजयुक्तं सर इवाभवत् ॥१४७॥
 गोपनीयानदर्शयन्त प्रदेशान् सुरया स्त्रियः । वाक्यान्यभाषणीयान्यभाषन्त च गतत्रयाः ॥१४८॥
 चन्द्रोदयेन मधुना यौवनेन च भूमिकाम् । आरूढो मदनस्तेषां तासां चात्यन्तमुन्नतम् ॥१४९॥
 कृतज्ञतं ससीत्कारं गृहीतौष्ट्रं समाकुलम् । सुरतं भावियुद्धस्य मङ्गलप्रहणायितम् ॥१५०॥
 एषोऽपि रत्नसामिन्द्रश्चारुचेष्टितसङ्गतः । सममानयदुद्धश्रीरन्तःपुरमशेषतः ॥१५१॥
 सुहृद्युद्धः समालिङ्ग्य स्नेहान्मन्दोदरी विभोः । अपश्यद्वदनं तृप्तिमगच्छन्ती सुलोचना ॥१५२॥
 इतः समरसंचृत्तात्परिप्राप्तजयस्य ते । आगतस्य सदा कान्त करिष्याम्यवगूहनम् ॥१५३॥
 मोक्ष्यामि क्षणमप्येकं न त्वां भूयो मनोहर । लतेव बाहुबलिनं सर्वाङ्गकृतसङ्गतिः ॥१५४॥
 वदन्त्यामेवमेतस्यां प्रेमकातरचेतसि । रुतं तान्नशिखरचक्रे समासिं च निशा गता ॥१५५॥
 नक्षत्रदीपितिभ्रंशे प्राप्ते सन्ध्यारूपागमे । गीतध्वनिर्भूद्भयो भवने भवनेऽर्हताम् ॥१५६॥

शब्दोंका उच्चारण हो रहा था ऐसी स्त्रियों और पुरुषोंकी मनको हरण करनेवाली विकट चेष्टा होने लगी ॥१४३॥ पीते-पीते जो मदिरा शेष बच रही थी उसे भी दम्पती पी लेना चाहते थे इसलिए 'तुम पियो तुम पियो' इस प्रकार जोरसे शब्द करते हुए प्यालेको एक दूसरेकी ओर बढ़ा रहे थे ॥१४४॥ किसी सुन्दर पुरुषकी प्रीति प्यालेमें समाप्त हो गई थी इसलिए वह वल्लभाका आलिङ्गनकर नेत्र बन्द करता हुआ उसके मुखके भीतर स्थित कुरलेकी मदिराका पान कर रहा था ॥१४५॥ जो मूँगाके समान थे, जो कुञ्ज-कुञ्ज फड़क रहे थे तथा मदिराके द्वारा जिनकी कृत्रिम लाली धुल गई थी ऐसे अधरोष्ठोंकी अत्यधिक शोभा बढ़ रही थी ॥१४६॥ दाँत, ओष्ठ और नेत्रों की कान्तिसे युक्त प्यालेमें जो मधु रक्खा था वह सफेद लाल और नील कमलोंसे युक्त सरोवरके समान जान पड़ता था ॥१४७॥ उस समय मदिराके कारण जिनकी लज्जा दूर हो गई थी ऐसी स्त्रियों अपने गुप्त प्रदेशोंको दिखा रही थीं तथा जिनका उच्चारण नहीं करना चाहिये ऐसे शब्दोंका उच्चारण कर रही थीं ॥१४८॥ चन्द्रोदय, मदिरा और यौवनके कारण उस समय उन स्त्री-पुरुषोंका काम अत्यन्त उन्नत अवस्थाको प्राप्त हो चुका था ॥१४९॥ जिसमें नखचूत किये गये थे, जो सीत्कारसे सहित था, जिसमें ओष्ठ डँशा गया था तथा जो आकुलतासे युक्त था ऐसा स्त्री-पुरुषोंका संभोग आगे होनेवाले युद्धका मानो मङ्गलाचार ही था ॥१५०॥ इधर सुन्दर चेष्टासे युक्त रावणने भी समस्त अन्तःपुरकी एक साथ उत्तम शोभा प्राप्त कराई अर्थात् अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियोंको प्रसन्न किया ॥१५१॥ उत्तम नेत्रोंसे युक्त मन्दोदरी बार-बार आलिङ्गनकर बड़े स्नेहसे पतिका मुख देखती थी तो भी तृप्त नहीं होती थी ॥१५२॥ वह कह रही थी कि हे कान्त ! जब तुम विजयी हो यहाँ लौटकर आओगे तब मैं सदा तुम्हारा आलिङ्गन करूँगी ॥१५३॥ हे मनोहर ! मैं तुम्हें एक क्षणके लिए भी न छोड़ूँगी और जिस प्रकार लताएँ बाहुबली स्वामीके समस्त शरीरमें समा गई थीं उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे समस्त शरीरमें समा जाऊँगी ॥१५४॥ इधर प्रेमसे कातर चित्तको धारण करनेवाली मन्दोदरी इस प्रकार कह रही थी उधर मुर्गा बोलने लगा और रात्रि समाप्त हो गई ॥१५५॥

अथानन्तर नक्षत्रोंकी कान्तिकी नष्ट करनेवाली सन्ध्याकी लाली आकाशमें आ पहुँची

१. चपकेऽपि गत- म० । २. दन्ताघरेक्षणच्छाया- म० । ३. शुक्लारूपासित म० । ४. नदर्शन्त म० ।
 ५. गृहीत्वौष्ट्रं म० । ६. कुञ्जकुटः ।

कालाग्निमण्डलाकारो रश्मिभिरलादयन् दिशः । जगामोदयसम्बन्धं भास्करो लोकलोचनः ॥१५७॥
 प्रभातसमये देव्यो व्यग्राः कृच्छ्रेण सान्त्विताः । दयितेन मनस्यू दुः किं किमिरयतिदुःसहम् ॥१५८॥
 गम्भीरास्ताडिता भेर्यः शङ्खशब्दपुरःसराः । रावणस्याऽऽज्ञया युद्धसंज्ञादानविचक्षणः ॥१५९॥
 परस्परमहंकारं वहन्तः परमोद्धताः । प्रहृष्टा निर्ययुर्वीधा ययिद्विपरथस्थिताः ॥१६०॥
 असिचापगदाकुन्तभासुराटोपसङ्घटाः । प्रचलन्नामरच्छत्रछायामण्डलशोभिनाः ॥१६१॥
 आशुकारसमुष्काः सुराकाराः प्रतापिनः । विद्याधराग्निपा योद्धुं निर्ययुः प्रवरद्धयः ॥१६२॥
 तत्र पङ्कजनेत्राणां कारुण्यं पुरयोषिताम् । निरीच्य दुर्जनस्यापि चित्तमासीत्सुदुःखितम् ॥१६३॥
 निर्गतो दयितां कश्चिदनुब्रज्यापरायणाम् । अयि मुग्धे निवर्त्तस्व व्रजामि संख्ये सत्यवाक् ॥१६४॥
 उष्णीषं भो गृहाणेति व्याजादाभिमुखं प्रियम् । चक्रे काचिन्मृगीनेत्रा वधत्रदर्शनलालसा ॥१६५॥
 दृष्टिगोचरतोऽतीते प्रिये काचिद्ब्राह्मणा । पतन्ती सह वाग्धेण सखीभिर्मुर्च्छिता वृता ॥१६६॥
 निवृथ काचिदाश्रित्य शयनीयस्य पट्टिकाम् । तस्थौ मौनमुपादाय पुस्तोपमशरीरिका ॥१६७॥
 सम्यग्दर्शनसम्पन्नः शूरः कश्चिदग्नतती । पृष्ठतो वीक्ष्यते पत्न्या पुरञ्चिदशकन्यया ॥१६८॥
 पूर्वं ^३पूर्णेन्दुवस्तौम्या बभूवुस्तमुलागमे । शूराः क्वचितोरस्काः कृतान्ताकारभासुराः ॥१६९॥
 चतुरङ्गेन सैन्येन चापङ्गत्रादिसकुलः । संप्राप्तस्तत्र मारीचो नैगमे स्त्रीवतेजसा ॥१७०॥
 असौ विमलचन्द्रश्च धनुर्मान् विमलाम्बुदः । सुनन्दानन्दनन्दाद्याः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१७१॥

और अरहन्त भगवान्के मन्दिर-मन्दिरमें संगीतका मधुर शब्द होने लगा ॥१५६॥ प्रलयकालीन अग्नि समूहके समान जिसका आकार था ऐसा लोकलोचन सूर्य, किरणोंसे दिशाओंको आच्छादित करता हुआ उदयाचलके साथ सम्बन्धको प्राप्त हुआ ॥१५७॥ प्रातःकालके समय पति जिन्हें बड़ी कठिनाईसे सान्त्वना दे रहा था ऐसी स्त्रियाँ व्यग्र होती हुई मनमें न जाने क्या-क्या दुःसह विचार धारण कर रही थीं ॥१५८॥ तदनन्तर रावणकी आज्ञासे युद्धका संकेत देनेमें निपुण शङ्ख फूँके गये और गम्भीर भेरियाँ बजाई गईं ॥१५९॥ जो परस्पर अहंकार धारण कर रहे थे तथा अत्यन्त घृधत थे ऐसे योद्धा घोड़े हाथी और रथोंपर सवार हो हर्षित होते हुए बाहर निकले ॥१६०॥ जो खड्ग, धनुष, गदा, भाले आदि चमकते हुए शस्त्र समूहको धारण कर रहे थे, जो हिलते हुए चमर और छत्रोंकी छायासे सुशोभित थे, जो शीघ्रता करनेमें तत्पर थे, देवोंके समान थे और अतिशय प्रतापी थे ऐसे विद्याधर राजा बड़े ठाट-बाटसे युद्ध करनेके लिए निकले ॥१६१-१६२॥ उस समय निरन्तर रुदन करनेसे जिनके नेत्र कमलके समान लाल हो गये थे ऐसी नगरकी स्त्रियोंकी दीनदशा देख दुष्ट पुरुषका भी चित्त अत्यन्त दुःखी हो उठता था ॥१६३॥ कोई एक योद्धा पीछे-पीछे आनेवाली स्त्रीसे यह कहकर कि 'अरी पगली ! लौट जा मैं सचमुच ही युद्धमें जा रहा हूँ' बाहर निकल आया ॥१६४॥ किसी मृगनयनी स्त्रीको पतिका मुख देखनेकी लालसा थी इसलिए उसने इस बहाने कि अरे शिरका टोप तो लेते जाओ, पतिको अपने सम्मुख किया था ॥१६५॥ जब पति दृष्टिके ओझल हो गया तब अश्रुओंके साथ-साथ कोई स्त्री मूर्च्छित हो नीचे गिर पड़ी और सखियाँने उसे घेर लिया ॥१६६॥ कोई एक स्त्री वापिस लौट, शय्याकी पाटी पकड़, मौन लेकर मिट्टीकी पुतलीकी तरह चुपचाप बैठ गई ॥१६७॥ कोई एक शूरवीर सम्यग्दृष्टि तथा अणुव्रतोंका धारक था इसलिए उसे पीछेसे तो उसकी पत्नी देख रही थी और आगेसे देवकन्या देख रही थी ॥१६८॥ जो योद्धा पहले पूर्ण चन्द्रके समान सौम्य थे वे ही युद्ध उपस्थित होनेपर कवच धारण कर यमराजके समान दमकने लगे ॥१६९॥ जो धनुष तथा छत्र आदिसे सहित था ऐसा मारीच चतुरङ्गिणी सेना ले बड़े तेजके साथ नगरके बाहर आया ॥१७०॥ धनुषको धारण करनेवाले विमलचन्द्र, विमलमेघ, सुनन्द, आनन्द तथा नन्दको आदि

१. सुत्रमित्यवाक् म० । २. प्रतोपम म० । ३. कर्णेन्दु म० ।

विद्याविनिर्मितैर्दिव्यै रथैर्दुर्लभहप्रभैः । रेजुरग्निकुमाराभा भासयन्तो दशो दिशः ॥१७२॥
 केचिद्दीप्तास्त्रसम्पूर्णैर्हिमवत्संनिभैरिभैः । ककुभरझादयन्ति स्म सविद्युद्भिरिवांबुदैः ॥१७३॥
 केचिद्भरतुरगौघैर्दशाधार्द्युर्धसङ्कटाः । सहसा ज्योतिषां चक्रं चूर्णयन्तीव वेगिनः ॥१७४॥
 बृहद्विधिववादित्रैर्हयानां हेषितैस्तथा । गजानां गर्जितारावैः पदात्वाकारितैरपि ॥१७५॥
 योधानां सिंहनादैश्च जयशब्दैश्च वन्दिनाम् । गीतैः कुशीलवानां न समुत्साहनकोविदैः ॥१७६॥
 इत्यन्यैश्च महानादैरेकीभूतैः समंततः । विननर्देव गगनं युगान्तजलदाकुलम् ॥१७७॥

रुचिरावृत्तम्

जनेशिनोऽश्वरथपदातिसंकुलाः परस्पररातिशयविभूतिभासुराः ।
 बृहद्भुजाः कवचित्तुंगवत्सस्तडित्प्रभाः प्रववृत्तिरे जयैषिणः ॥१७८॥
 पदातयोऽपि हि करवालचञ्चलाः पुरो ययुः प्रभुपरितोषणैषिणः ।
 समैश्च तैर्विविधसमूहिभिः कृतं निरगलं गगनतलं दिशस्तथा ॥१७९॥
 इति स्थिते विगतभवाभिसञ्चिते शुभाशुभे त्रिभुवनभाजि कर्मणि ।
 जनः करोत्यतिबहुधानुचेष्टितं न तं क्षमो रविरपि कर्तुं मन्यथा ॥१८०॥

इत्यार्षे रविप्रेषाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे उद्योगाभिधानं नाम त्रिसप्ततितमं पर्व ॥७३॥

लेकर सैकड़ों हजारों योद्धा युद्धस्थलमें आये सो वे विद्या निर्मित, अग्निके समान देदीप्यमान रथोंसे दशों दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो अग्निकुमार देव ही हों ॥१७१-१७२॥ कितने ही सुभट देदीप्यमान शस्त्रोंसे युक्त तथा हिमालयके समान भारी-भारी हाथियोंसे दिशाओंको इस प्रकार आच्छादित कर रहे थे मानो विजली सहित मेघोंसे ही आच्छादित कर रहे हों ॥१७३॥ पाँचों प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त कितने ही वेगशाली सुभट उत्तम घोड़ोंके समूहसे ऐसे जान पड़ते थे मानो नक्षत्र मण्डलको सहसा चूर-चूर ही कर रहे हों ॥१७४॥ नाना प्रकारके बड़े-बड़े वादियों, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंकी गर्जना, पैदल सैनिकोंके बुलानेके शब्द, योद्धाओंकी सिंहनाद, चारणोंकी जयजय ध्वनि, नटोंके गीत तथा उत्साह बढ़ाने में निपुण अन्य प्रकारके महाशब्द सब ओरसे मिलकर एक ही रहे थे इसलिए उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश प्रलयकालीन मेघोंसे व्याप्त हो दुःखसे चिल्ला ही रहा हो ॥१७५-१७७॥ उस समय जो घोड़े रथ तथा पैदल सैनिकोंसे युक्त थे, जो परस्पर—एक दूसरेसे बढ़ी-चढ़ी विभूतिसे देदीप्यमान थे, जिनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं तथा जिन्होंने अपने उन्नत वक्षःस्थलोंपर कवच धारण कर रखे थे ऐसे विजयके अभिलाषी अनेक राजा विजलीके समान जान पड़ते थे ॥१७८॥ जिनके हाथोंमें तलवारें लपलपा रही थीं तथा जो स्वामीके संतोषकी इच्छा कर रहे थे ऐसे पैदल सैनिक भी उन राजाओंके आगे-आगे जा रहे थे, विविध ऋण्डोंको धारण करनेवाले उन सब सैनिकोंसे आकाश तथा दिशाएँ ठसाठस भर गई थीं ॥१७९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार पिछले पूर्वभवोंमें संचित त्रिभुवन सम्बन्धी, शुभ-अशुभ कर्मके विद्यमान रहते हुए यह प्राणी यद्यपि नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता है तथापि सूर्य भी उसे अन्यथा करनेमें समर्थ नहीं है ॥१८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविप्रेषाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें युद्धके उद्योगका वर्णन करने वाला तेहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७३॥

चतुःसप्ततितमं पर्व

विधिक्रमेण पूर्वेण सादरो मुदमुद्गहन् । आपृच्छत् त्रिकूटेशो दयितामित्यपि प्रियाम् ॥१॥
 'को जानाति प्रिये भूगो दर्शनं चारुदर्शने । महाप्रतिभये युद्धे किं भवेन्न भवेदिति ॥२॥
 उजुस्तं दयिता नाथ नन्द नन्द रिपुञ्जय । द्रव्यामः सर्वथा भूयः संख्यैतस्त्वां समागतम् ॥३॥
 ह्युक्तो दयितानेत्रसहस्रैरभिर्वाकितः । निर्जगाम बहिर्नाथो रक्षसां विकटप्रभः ॥४॥
 अपरयच्च शरद्भानुभास्वरं बहुरूपथा । विद्यया कृतनिर्माणमैन्द्रं नाम महारथम् ॥५॥
 युक्तं दन्तिसहस्रेण प्राचूषेप्यघनत्विषा । प्रभापरिकरं मेरुं जिगीषन्तमिव स्थितम् ॥६॥
 मत्तास्ते करिणो गण्डप्रगलहाननिर्भराः । सितपीतचतुर्दंष्ट्राः शङ्खचामरशोभिणः ॥७॥
 मुक्तादामसमाकीर्णा महाघण्टानिनादिताः । ऐरावतसमा नानाधातुरागविभूषिताः ॥८॥
 दुर्दान्ता विनयाधानभूमयो धर्मगर्जिताः । विरेजुः कालमेघौघसन्निभाश्चारुविभ्रमाः ॥९॥
 मनोहराभकेयूरविदृष्टभुजमस्तकः । तमसौ रथमारूढः शुनासोरसमद्युतिः ॥१०॥
 विशालनयनस्तत्र स्थितो निरुपमाकृतिः । ओजसा सकलं लोकमग्रसिष्टेव रावणः ॥११॥
 सहस्रैर्दशभिः स्वस्य सदृशैः खेचराधिपैः । वियद्वल्लभनाथासैः स्वहितैः कृतमण्डलः ॥१२॥
 महाबलैः सुरच्छायैरभिप्रायानुवेदिभिः । क्रुद्धः सुग्रीववैदेहौ प्रत्यर्भायाय रावणः ॥१३॥

अथानन्तर पूर्वकृत पुण्योदयसे हर्षको धारण करता हुआ रावण आदरके साथ अपनी प्रिय स्त्री मन्दोदरीसे इस प्रकार पूछता है कि हे प्रिये ! चारुदर्शने ! महा भयकारी युद्ध होना है अतः कौन जाने फिर तुम्हारा दर्शन हो या न हो ॥१-२॥ यह सुन सब स्त्रियोंने कहा कि हे नाथ ! सदा वृद्धिको प्राप्त होओ, शत्रुओंको जीतो ! तुम्हें हम सब शीघ्र ही युद्धसे लौटा हुआ देखेंगी ॥३॥ ऐसा कहकर जिसे हजारों स्त्रियों अपने नेत्रोंसे देख रही थीं तथा जिसकी प्रभा अत्यन्त विशाल थी ऐसा राक्षसोंका राजा रावण नगरके बाहर निकला ॥४॥ बाहर निकलते ही उसने बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित तथा शरदू ऋतुके सूर्यके समान देदीप्यमान ऐन्द्र नामका महारथ देखा ॥५॥ वह महारथ वर्षाकालीन मेघोंके समान कान्तिवाले एक हजार हाथियोंसे जुता था, कान्तिके मण्डलसे सहित था, ऐसा जान पड़ता था मानो मेरु पर्वतकी ही जीतना चाहता हो ॥६॥ उसमें जुते हुए हाथी मदीन्मत्त थे, इनके गण्डस्थलोंसे भरने भर रहे थे, उनके सफेद पीले रंगके चार चार खड़े दाँत थे, वे शङ्खों तथा चमरोंसे सुशोभित थे, मोतियों की मालाओंसे युक्त थे, उनके गलेमें बँचे बड़े बड़े घण्टा शब्द कर रहे थे, वे ऐरावत हाथीके समान थे, नाना धातुओंके रंगसे सुशोभित थे, उनका जीतना अशक्य था, वे विनयकी भूमि थे, मेघोंके समान गर्जनासे युक्त थे, कृष्ण मेघोंके समूहके समान थे तथा सुन्दर विभ्रमको धारण करते हुए शोभायमान थे ॥७-९॥ जिसकी भुजाके अग्रभागपर मनोहर बाजूबन्द बँधा हुआ था तथा जिसकी कान्ति इन्द्रके समान थी, ऐसा रावण उस विद्या निर्मित रथपर आरूढ हुआ ॥१०॥ विशाल नयन तथा अनुपम आकृतिको धारण करनेवाला रावण उस रथपर आरूढ हुआ अपने तेजसे मानो समस्त लोकको प्रस ही रहा था ॥११॥ जो अपने समान थे, अपना हित करनेवाले थे, महा बलवान् थे, देवोंके समान कान्तिसे युक्त थे और अभिप्रायको जाननेवाले थे ऐसे गगन-वल्लभनगरके स्वामीको आदि लेकर दश हजार विद्याधर राजाओंसे घिरा रावण सुभीव और

१. का जानाति म० । २. युद्धतः । ३. विकटप्रभुः म० । ४. घनवर्जिताः म० । ५. -मग्रसिष्टेव म०, ज० । ६. सुदच्छायै -(१) म० ।

दृष्ट्वा दक्षिणतोऽत्यन्तभीमनिःस्त्रानकारिणः । मल्लुका गगने गृध्रा भ्रमन्ति क्षुब्धभास्कराः ॥१४॥
 जानन्तोऽपि निमित्तानि कथयन्ति महाक्षयम् । शौर्यमानोत्कटाः क्रुद्धा ययुरेव महानराः ॥१५॥
 पद्मानोऽपि स्वसैन्यस्थः पर्यपृच्छन् सविस्मयः । भो भो मध्येयमेतस्या नगर्यास्तेजसा ज्वलन् ॥१६॥
 जाम्बूनदमयैः कूटैः सुविशालैरलङ्कृतः । सतङ्गिन्मेघसंघातच्छायः किनामको गिरिः ॥१७॥
 पृच्छतेऽस्मै सुपेणाद्या सम्मोहं समुपागताः । न शोकुः सहसा वक्तुमपृच्छच्च स तान्मुहुः ॥१८॥
 ब्रूत किं नामधेयोऽयं गिरिरत्र निरीक्ष्यते । अगदञ्जाम्बवाद्यास्तमथो वेपथुमन्धरः ॥१९॥
 इत्यते पद्मनाभाय रथोऽयं बहुरूपया । विद्याया कल्पितोऽस्माकं मृत्युसंज्वरकोविदः ॥२०॥
 किष्किन्धराजपुत्रेण योऽसौ गत्वाभिरोषतः । रावणोऽत्रस्थितः सोऽत्र महामायामयोदयः ॥२१॥
 श्रुत्वा तद्ब्रह्मचरं तेषां लक्ष्मणः सारथिं जगौ । रथं समानय क्षिप्रमित्युक्तः स तथाऽकरोत् ॥२२॥
 ततः क्षुब्धार्णवस्वाना भीमा भेर्यः समाहताः । शङ्खकोटिस्वनोन्मिथ्राः शेषवादित्रसङ्गताः ॥२३॥
 श्रुत्वा तं निनदं हृष्टा भटा विकटचेष्टिताः । सङ्गद्धा बद्धतूणीरा लक्ष्मणस्यान्तिके स्थिताः ॥२४॥
 मा भैवीर्दयिते तिष्ठ निवर्त्तस्व शुचं त्यज । अहं लङ्केश्वरं जित्वा प्रत्येभ्यश्च तवान्तिकम् ॥२५॥
 इति गर्वोत्कटा वीरा समाश्रास्य वराङ्गनाः । अन्तःपुरात् सुसङ्गद्धा विनिर्जग्मुर्ग्रथायथम् ॥२६॥
 परस्परप्रतिस्पर्द्धाविगचोदितवाहनाः । रथादिभिर्ययुर्योधाः शस्त्रावेक्षणचञ्चलाः ॥२७॥
 रथं मद्भ्रमसंयुक्तं गम्भीरोदारनिस्वनम् । भूतस्वनः समारूढो विरेजे खेचराधिपः ॥२८॥

भामण्डलको देख कुपित होता हुआ उनके सन्मुख गया । रावणकी दक्षिण दिशामें भाङ्ग अत्यन्त भयङ्कर शब्द कर रहे थे और आकाशमें सूर्यको आच्छादित करते हुए गीघ मँडरा रहे थे ॥१२-१४॥ शूरवीरताके अहंकारसे भरे महासुभट यद्यपि यह जानते थे कि ये अपशकुन मरणकी सूचित कर रहे हैं तथापि वे कुपित हो आगे बढ़े जाते थे ॥१५॥

अपनी सेनाके मध्यमें स्थित रामने भी आश्चर्य चकित हो सैनिकोंसे पूछा कि हे भद्र-पुरुषो ! इस नगरीके बीचमें तेजसे देदीप्यमान, सुवर्णमयी बड़े-बड़े शिखरोंसे अलंकृत, तथा बिजलीसे सहित मेघ समूहके समान क्रान्तिको धारण करनेवाला यह कौन सा पर्वत है ? ॥१६-१७॥ सुपेण आदि विद्याधर स्वयं भ्रान्तिमें पड़ गये इसलिए वे पूछनेवाले रामके लिए सहसा उत्तर देनेके लिए समर्थ नहीं हो सके । फिर भी राम उनसे बार बार पूछे जा रहे थे कि कहो यह यहाँ कौन सा पर्वत दिखाई दे रहा है ? तदनन्तर भयसे काँपते हुए जाम्बव आदिने धीमे स्वरमें कहा कि हे राम ! यह बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित वह रथ है जो हम लोगोंको कालज्वर उत्पन्न करनेमें निपुण है ॥१८-२०॥ सुग्रीवके पुत्र अङ्गदने जाकर जिसे कुपित किया था ऐसा वह महामायामय अभ्युदयको धारण करनेवाला रावण इस पर सवार है ॥२१॥ जाम्बव आदिके उक्त वचन सुन लक्ष्मणने सारथिसे कहा कि शीघ्र ही रथ लाओ । सुनते ही सारथिने आज्ञा पालन किया अर्थात् रथ लाकर उपस्थित कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिनके शब्द लुभित समुद्रके शब्दके समान थे, जिनके शब्दोंके साथ करोड़ों शङ्खोंके शब्द मिल रहे थे ऐसी भयंकर भेरियाँ बजाई गईं ॥२३॥ उस शब्दको सुनकर विकट चेष्टाओंके धारक योद्धा, कवच पहिन तथा तर-कस बाँध लक्ष्मणके पास आ खड़े हुए ॥२४॥ 'हे प्रिये ! डर मत, यहीं ठहर, लौट जा, शोक तज, मैं लङ्केश्वरको जीतकर आज ही तेरे समीप वापिस आ जाऊँगा' इस प्रकार गर्विले वीर, अपनी उत्तम स्त्रियोंको सान्त्वना दे कवच आदिसे तैयार हो यथायोग्य रीतिसे बाहर निकले ॥२५-२६॥ जो परस्परकी प्रतिस्पर्द्धा वश वेगसे अपने वाहनोंको प्रेरित कर रहे थे, तथा जो शस्त्रोंकी ओर देख देख कर चञ्चल हो रहे थे ऐसे योधा रथ आदि वाहनोंपर आरूढ हो चले ॥२७॥ महागज

तेनैव विधिनाऽन्येऽपि विद्याधरजनाधिपाः । सहर्षाः प्रस्थिता योद्धुं क्रुद्धा लङ्केधरं प्रति ॥२१॥
 तं प्रति प्रसृता वीराः क्षुब्धाम्भोधिसमाकृतिम् । संवदं परमं प्रापुर्युगातुङ्गोर्मिसन्निभः ॥२०॥
 ततः सितयशोभ्यासमुवनौ परमाकृती । स्ववासतो विनिष्क्रान्तौ युद्धार्थौ रामलक्ष्मणौ ॥३१॥
 रथे सिंहयुते चारौ सम्बद्धकवचो बली । नवोदित इवादित्यः पद्मनाभो व्यराजत ॥३२॥
 गरुडं रथमारूढो वैनतेयमहाध्वजः । समुन्नताम्बुदच्छायशङ्कायाश्यामलिताम्बरः ॥३३॥
 मुकुटी कुण्डली धन्वी कवची सायकी कुणी । सन्ध्यासक्ताजनागाभः सुमित्राजो व्यराजत ॥३४॥
 महाविद्याधराश्रान्ये भालङ्कारपुरःसुराः । योद्धुं श्रेणिक निर्याता नानायानविमानगाः ॥३५॥
 गमने शकुनास्तेषां कृतकीमलनिस्वनाः । आनन्दयन् यथापूर्वमिष्टदेशनिवेशिनः ॥३६॥
 तेषामभिमुखः क्रुद्धो महाबलसमन्वितः । प्रथमो रावणो वेगी महादावसमाकृतिः ॥३७॥
 गन्धर्वाप्सरस्तेषां बलद्वितयवर्तिनाम् । नभःस्थिता नृवीराणां पुष्पाणि समुत्सुर्मुहुः ॥३८॥
 पादातैः परितो गुप्ता निपुणाधोरणेरिताः । अजनाद्रिसमाकाराः प्रसक्तुर्मत्तदन्तिनः ॥३९॥
 दिवाकररथाकारा रथाः प्रचलवाजिनः । युक्ताः सारथिभिः सान्द्रनादाः परमरंहसः ॥४०॥
 धवलगुः परमं हृष्टाः समुह्रासितहेतयः । पदातयो रणचोण्यां सगर्वा बद्धमण्डलाः ॥४१॥

से जुते तथा गम्भीर और उदार शब्द करनेवाले रथ पर सवार हुआ विद्याधरोंका राजा भूतस्वन अलग ही सुशोभित हो रहा था ॥२८॥ इसी विधिसे दूसरे विद्याधर राजाओंने भी हर्षके साथ क्रुद्ध हो युद्ध करनेके लिए लङ्केधरके प्रति प्रस्थान किया ॥२९॥ क्षुभित समुद्रके समान आकृति को धारण करनेवाले रावणके प्रति बड़े वेगसे दौड़ते हुए योद्धा, गङ्गानदीकी बड़ी ऊँची तरङ्गोंकी भाँति अत्यधिक धक्काधूमिको प्राप्त हो रहे थे ॥३०॥

तदनन्दर जिन्होंने धवल यशसे संसारको व्याप्त कर रक्खा था तथा जो उत्तम आकृति को धारण करनेवाले थे ऐसे राम लक्ष्मण युद्धके लिए अपने निवास स्थानसे बाहर निकले ॥३१॥ जो गरुडके रथपर आरूढ़ थे, जिनकी ध्वजामें गरुडका चिह्न था, जिनके शरीरकी कान्ति उन्नत मैवके समान थी, जिन्होंने अपनी कान्तिसे आकाशको श्याम कर दिया था, जो मुकुट, कुण्डल, धनुष, कवच, बाण और तरकससे युक्त थे, तथा जो सन्ध्याकी लालीसे युक्त अञ्जनगिरिके समान आभाके धारक थे ऐसे लक्ष्मण अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥३२-३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कान्तिरूपी अलंकारोंसे सुशोभित तथा नाना प्रकारके यान और विमानोंसे गमन करनेवाले अनेक बड़े-बड़े विद्याधर भी युद्ध करनेके लिए निकले ॥३५॥ जब राम लक्ष्मणका गमन हुआ तब पहलेकी भाँति इष्ट स्थानोंपर बैठकर कोमल शब्द करनेवाले पक्षियोंने उन्हें आनन्दयुक्त किया ॥३६॥

अथानन्तर क्रोधसे युक्त, महाबलसे सहित, वेगवान् एवं महादावानलके समान प्रचण्ड आकृतिको धारण करनेवाला रावण उनके सामने चला ॥३७॥ आकाशमें स्थित गन्धर्वों और अप्सराओंने दोनों सेनाओंमें रहनेवाले सुभटोंके ऊपर बार-बार फूलोंकी वर्षा की ॥३८॥ पैदल सैनिकोंके समूह जिनकी चारों ओरसे रक्षा कर रहे थे, चतुर महावत जिन्हें चला रहे थे तथा जो अञ्जनगिरिके समान विशाल आकारसे युक्त थे ऐसे मदोन्मत्त हाथी मद भरा रहे थे ॥३९॥ सूर्यके रथके समान जिनके आकार थे, जिनमें चञ्चल घोड़े जुते हुए थे, जो सारथियोंसे सहित थे, जिनसे विशाल शब्द निकल रहा था तथा जो तीव्र वेगसे सहित थे ऐसे रथ आगे बढ़े जा रहे थे ॥४०॥ जो अत्यधिक हर्षसे युक्त थे, जिनके शस्त्र चमक रहे थे, तथा जिन्होंने अपने भुण्डके भुण्ड बना रक्खे थे ऐसे गर्वाले पैदल सैनिक रणभूमिमें उछलते जा रहे थे ॥४१॥

स्थूरीपृष्ठसमारूढाः खड्गप्रियासपाणयः । खेटकाच्छादितोरस्काः संख्यधर्मा विविशुर्भटाः ॥४२॥
 आस्तृण्ण्यभिधान्ति स्पन्दन्ते निर्जयन्ति च । जीयन्ते भ्रन्ति हन्यन्ते कुर्वन्ति भटगजितम् ॥४३॥
 तुरगाः क्वचिदुदीसा भ्रमन्त्याकुलमूर्त्तयः । कचमुष्टिगदायुद्धं प्रवृत्तं गहनं क्वचित् ॥४४॥
 केचित्खड्गचतोरस्काः केचिद्विशिखताडिताः । केचिक्कुंताहताः शशुं ताडयन्ति पुनस्तथा ॥४५॥
 सततं लालितैः केचिदभीष्टार्थानुसेवनैः । इन्द्रियैः परिमुच्यन्ते कुमित्रैरिव भूमिगाः ॥४६॥
 गलदन्त्रचयाः केचिदनावृत्योरुवेदनाम् । पतन्ति शशुणा सार्धं दन्तनिष्पीडिताधराः ॥४७॥
 प्रासादशिखरे देवकुमारप्रतिमोजसः । प्रचिकाद्दुर्महाभोगा ये कान्तातनुलालिताः ॥४८॥
 ते चक्रकनकच्छिन्नाः संप्रामचित्तिशायिनः । भक्ष्यन्ते विकृताकारा गृध्रगोमायुपंक्तिभिः ॥४९॥
 नखक्षतकृताकृता कामिनीव शिवा भटम् । वहन्ती सङ्गमप्राप्तिं प्रसुप्तमुपसर्पति ॥५०॥
 स्फुरणेन पुनर्जात्वा जीवतीति ससभसा । निवर्तते यथा भीता डाकिनी मन्त्रवादिनः ॥५१॥
 शूरं विज्ञाय जीवन्तं बिभ्यती विहगो शनैः । दुष्टनारीव साशङ्का चलनेत्रापसर्पति ॥५२॥
 शुभाशुभा च जन्वृतां प्रकृतिस्तत्र लक्ष्यते । प्रत्यक्षादविशिष्टैव भंगेन विजयेन च ॥५३॥
 केचित् सुकृतसामर्थ्याद्विजयन्ते बहून्यपि । कृतपापाः प्रपद्यन्ते बहवोऽपि पराजयम् ॥५४॥
 मिश्रितं मत्सरेणपि तयोर्वैरंजितं पुरा । ते जयन्ति विजयन्ते तत्र प्रलयमागते ॥५५॥

जो घोड़ोंके पीठपर सवार थे, हाथोंमें तलवार बरखी तथा भाले लिये हुए थे और कचचसे जिनके वक्षःस्थल आच्छादित थे ऐसे योद्धाओंने रणभूमिमें प्रवेश किया ॥४२॥ वे योद्धा परस्पर एक दूसरेको आच्छादित कर लेते थे, एक दूसरेके सामने दौड़ते थे, एक दूसरेसे स्पर्धा करते थे, एक दूसरेको जीतते थे, उनसे जीते जाते थे, उन्हें मारते थे, उनसे मारे जाते थे और वीरगर्जना करते थे ॥४३॥ कहीं व्यग्रमुद्राके धारक तेजस्वी घोड़े घूम रहे थे तो कहीं केश मुट्ठी और गदाका भयंकर युद्ध हो रहा था ॥४४॥ कितने ही वीरोंके वक्षःस्थलमें तलवारसे घाव हो गये थे, कोई बाणोंसे धायल हो गये थे और कोई भालोंकी चोट खाये हुए थे तथा बदला चुकानेके लिए वे वीर भी शत्रुओंको उसी प्रकार ताड़ित कर रहे थे ॥४५॥ अभीष्ट पदार्थोंके सेवनसे जिन्हें निरन्तर लालित किया था ऐसी इन्द्रियों कितने ही सुभटोंको इस प्रकार छोड़ रही थीं, जिस प्रकार कि खोटे मित्र काम निकलनेपर छोड़ देते हैं ॥४६॥ जिनकी आँतोंका समूह बाहर निकल आया था ऐसे कितने ही सुभट अपनी बहुत भारी वेदनाको प्रकट नहीं कर रहे थे किन्तु उसे छिपाकर दाँतोंसे ओठ काटते हुए शत्रुपर प्रहार करते थे और उसीके साथ नीचे गिरते थे ॥४७॥ देवकुमारोंके समान तेजस्वी, महाभोगोंके भोगनेवाले और स्त्रियोंके शरीरसे लड़ाये हुए जो सुभट पहले महलोंके शिखरोंपर क्रीड़ा करते थे वे ही उस समय चक्र तथा कनक आदि शस्त्रोंसे खण्डित हो रणभूमिमें सो रहे थे, उनके शरीर विकृत हो गये थे तथा गीध और शियारोंके समूह उन्हें खा रहे थे ॥४८-४९॥ जिस प्रकार समागमकी इच्छा रखनेवाली स्त्री, नख क्षत देनेके अभिप्रायसे सोते हुए पतिके पास पहुँचती है उसी प्रकार नाखूनोंसे लोंचका अभिप्राय रखनेवाली शृगाली रणभूमिमें पड़े हुए किसी सुभटके पास पहुँच रही थी ॥५०॥ पास पहुँचनेपर उसके हलनचलनको देख जब शृगालीको यह जान पड़ा कि यह तो जीवित है तब वह हड़बड़ाती हुई डरकर इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि मन्त्रवादीके पाससे डाकिनी भागती है ॥५१॥ कोई एक यक्षिणी किसी शूरवीरको जीवित जानकर भयभीत हो धीरे-धीरे इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि कोई व्यभिचारिणी पतिको जीवित जान शंकासे युक्त हो नेत्र चलाती हुई भाग जाती है ॥५२॥ युद्धभूमिमें किसीकी पराजय होती थी और किसीकी हार। इससे जीवोंके शुभ अशुभ कर्मोंका उदय वहाँ समान रूपसे प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा था ॥५३॥ कितने ही सुभट पुण्य कर्मके सामर्थ्यसे अनेक शत्रुओंपर विजय प्राप्त करते थे और पूर्वभ्रममें पाप करनेवाले बहुतसे योद्धा पराजयको प्राप्त हो रहे थे ॥५४॥ जिन्होंने पूर्वपर्यायमें मत्सर भावसे पुण्य और

धर्मो रक्षति मर्माणि धर्मो जयति दुर्जयम् । धर्मः सञ्जायते पक्षः धर्मः पश्यति सर्वतः ॥५६॥
 रथैरश्वयुतैर्दिव्यैरिभैर्भूधरसन्निभैः । अश्वैः पवतरंहोभिर्भूर्धुरसुरभासुरैः ॥५७॥
 न शक्यो रक्षितुं पूर्वसुकृतेनोज्जितो नरः । एको विजयते शत्रुं पुण्येन परिपालितः ॥५८॥
 एवं संयति संवृत्ते प्रवीरभटसङ्घटे । योधा व्यवहृता योधैरवकाशं न लेभिरे ॥५९॥
 उत्पातज्ञिः पतन्निश्च भटैरायुधभासुरैः । उत्पातघनसंछन्नमिव जातं नभस्तलम् ॥६०॥
 मारीचचन्द्रनिकरवज्राक्षुकसारणैः । अन्यैश्च राक्षसाधोशैर्बलमुत्सारितं द्विषाम् ॥६१॥
 श्रीशैलेन्दुमरीचिभ्यां नीलेन कुमुदेन च । तथा भूतस्वनाद्यैश्च विध्वस्तं रक्षसां बलम् ॥६२॥
 कुन्दः कुम्भो निकुम्भश्च विक्रमः क्रमणस्तथा । श्रीजम्बुमालिवीरश्च सूर्यारो मकरध्वजः ॥६३॥
 तथाऽशनिरथाद्याश्च राक्षसीया महानृपाः । उत्थिता वेगिनो योधास्तेषां साधारणोद्यताः ॥६४॥
 भूधराचलसम्भेदविकालकुटिलाङ्गदाः । सुषेणकालचक्रोर्मितरङ्गाद्याः कपिध्वजाः ॥६५॥
 तेषामभिमुखीभूता निजसाधारणोद्यताः । नालष्यत भटः कश्चित्तदा प्रतिभटोज्जितः ॥६६॥
 अञ्जनायाः सुतस्तस्मिन्नास्त्रं द्विपयोजितम् । रथं क्रीडति पद्याब्दे सरसीव महागजः ॥६७॥
 तेन श्रेणिक शूरेण रक्षसां सुमहद्बलम् । कृतमुन्मत्तकीभूतं यथारुचित्तकारिणा ॥६८॥
 एतस्मिन्नन्तरे क्रोधसङ्गदूषितलोचनः । प्राप्तो मयमहादैत्यः प्रजहार मरुसुतम् ॥६९॥
 उद्वृष्ट्य विशिखं सोऽपि पुण्डरीकनिभेषणः । शरवृष्टिभिरुग्राभिरकरोद्विरथं मयम् ॥७०॥

पाप दोषोंका मिश्रित रूपसे संचय किया था वे युद्धभूमिमें दूसरोंको जीतते थे और मृत्यु निकट आनेपर दूसरोंके द्वारा जीते भी जाते थे ॥५५॥ इससे जान पड़ता है कि धर्म ही मर्मस्थानोंकी रक्षा करता है, धर्म ही दुर्जेय शत्रुको जीतता है, धर्म ही सहायक होता है और धर्म ही सब ओरसे देख-रेख रखता है ॥५६॥ जो मनुष्य पूर्वभवके पुण्यसे रहित है । उसकी घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य रथ, पर्वतके समान हाथी, पवनके समान वेगशाली घोड़े और असुरोंके समान देदीप्यमान पैदल सैनिक भी रक्षा नहीं कर सकते और जो पूर्वपुण्यसे रक्षित है वह अकेला ही शत्रुको जीत लेता है ॥५७-५८॥ इस प्रकार प्रचण्ड बलशाली योद्धाओंसे परिपूर्ण युद्धके होनेपर योद्धा, दूसरे योद्धाओंसे इतने पिछल जाते थे कि उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता था ॥५९॥ शत्रुओंसे चमकते हुए कितने ही योद्धा ऊपरको उल्लल रहे थे और कितने ही मर-मर कर नीचे गिर रहे थे उनसे आकाश ऐसा हो गया था मानो उत्पातके मेघोंसे ही घिर गया हो ॥६०॥

अथानन्तर मारीच, चन्द्रनिकर, वज्राक्ष, शुक, सारण तथा अन्य राक्षस राजाओंने शत्रुओं की सेनाको पीछे हटा दिया ॥६१॥ तब हनूमान्, चन्द्ररश्मि, नील, कुमुद तथा भूतस्वन आदि बानरवंशीय राजाओंने राक्षसोंकी सेनाको नष्ट कर दिया ॥६२॥ तत्पश्चात् कुन्द, कुम्भ, निकुम्भ, विक्रम, श्रीजम्बूमाली, सूर्यार, मकरध्वज तथा वज्ररथ आदि राक्षस पक्ष के बड़े-बड़े राजा तथा वेगशाली योद्धा उन्हें सहायता देनेके लिए खड़े हुए ॥६३-६४॥ तदनन्तर भूधर, अचल, संभेद, विकाल, कुटिल, अंगद, सुषेण, कालचक्र और उर्मितरङ्ग आदि बानर पक्षीय योद्धा, अपने पक्षके लोगोंको आलम्बन देनेके लिए उद्यत हो उनके सामने आये । उस समय ऐसा कोई योद्धा नहीं दिखाई देता था जो किसी प्रतिद्वन्दीसे रहित हो ॥६५-६६॥ जिस प्रकार कमलोंसे सहित सरोवरमें महागज क्रीड़ा करता है उसी प्रकार अञ्जनाका पुत्र हनूमान् हाथियोंसे जुते रथपर सवार हो उस युद्धभूमिमें क्रीड़ा कर रहा था ॥६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इच्छानुसार काम करनेवाले उस एक शूरवीरने राक्षसोंकी बड़ी भारी सेनाको उन्मत्त जैसा कर दिया— उसका होश गायब कर दिया ॥६८॥ इसी बीचमें क्रोधके कारण जिसके नेत्र दूषित हो रहे थे ऐसे महादैत्य मयने आकर हनूमान्पर प्रहार किया ॥६९॥ सो पुण्डरीकके समान नेत्रोंकी धारण

स रथान्तरमारुह्य पुनर्योद्धुं समुद्यतः । श्रीशैलेन पुनस्तस्य सायकैर्दलितो रथः ॥७१॥
 मयं विह्वलमालोक्य विद्याया बहुरूपया । रथं दशमुखं सृष्टं प्रहिणोतिस्म सत्वरम् ॥७२॥
 स तं रथं समाह्वय नाम्ना प्रज्वलितोत्तमम् । सम्बाध्य विरथं चक्रे हनूमन्तं महाद्युतिः ॥७३॥
 धावमानां समालोक्य वानरध्वजिनीं भराः । जगुः प्राप्तमिदं नाम कृतात्यन्तविपर्ययम् ॥७४॥
 वातिं व्यस्रक्तं दृष्ट्वा वैदेहः समधावत । कृतो विस्वन्दनः सोऽपि मयेन शरवर्षिणा ॥७५॥
 ततः किष्किन्धराजोऽस्य कुपितोऽवस्थितः पुरः । निरस्रोऽसावपि ढोर्णो तेन दैत्येन लम्बितः ॥७६॥
 ततो मयं पुरश्चक्रे सुसंरन्धो विभीषणः । तयोरभूत् परं युद्धमन्योन्यशरताडितम् ॥७७॥
 विभिन्नकवचं दृष्ट्वा कैकसीनन्दनं ततः । रक्ताशोकद्रुमच्छायं प्रसक्तरुधिरस्रुतिम् ॥७८॥
 निरीक्ष्योनमत्तभूतं च परित्रस्तं पराङ्मुखम् । कपिध्वजबलं शीर्णं रामो योद्धुं समुद्यतः ॥७९॥
 विद्याकेसरियुक्तं च रथमारुह्य सत्वरम् । मा भैर्षीरिति सस्वानो दधाव विहितस्मितः ॥८०॥
 सतडिभ्रावृडग्भोदधनसङ्घटसन्निभम् । विवेश परसैन्यं स बालार्कप्रतिमद्युतिः ॥८१॥
 तस्मिन् परबलध्वंसं नरेन्द्रे कर्तुं मुद्यते । वातिवैदेहसुग्रीवकैकसेया धृतिं ययुः ॥८२॥
 शाखासृगाबलं भूयः कर्तुं युक्तं समुद्यतम् । रामतो बलमासाद्य त्यक्तनिःशेषसाध्यसम् ॥८३॥
 प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते सुराणां रोमहर्षणे । लोकोऽन्य इव सञ्जातस्तदालोकविवर्जितः ॥८४॥
 ततः पद्मो मयं बाणैर्लम्बरच्छादयितुं भृशम् । स्वल्पेनैव प्रयासेन वज्रीव चमरासुरम् ॥८५॥
 मयं विह्वलितं दृष्ट्वा नितान्तं रामसायकैः । दधाव रावणः क्रुद्धः कृतान्त इव तेजसा ॥८६॥

करनेवाले हनूमान् ने भी वाण निकालकर तीक्ष्ण वाणवर्षासे मयको रथरहित कर दिया ॥७०॥ मयको विह्वल देख रावणने शीघ्र ही बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित रथ उसके पास भेजा ॥७१॥ महाकान्तिके धारक मयने प्रज्वलितोत्तम नामक उस रथपर आरूढ़ हो हनूमान्के साथ युद्ध कर उसे रथरहित कर दिया ॥७२-७३॥ तब वानरोंकी सेना भाग खड़ी हुई । उसे भागती देख राज्ञण पक्षके सुभट कहने लगे कि इसने जैसा किया ठीक उसके विपरीत फल प्राप्त कर लिया अर्थात् करनीका फल इसे प्राप्त हो गया ॥७४॥ तदनन्तर हनूमान्को शस्त्ररहित देख भामण्डल दौड़ा सो वाणवर्षा करनेवाले मयने उसे भी रथरहित कर दिया ॥७५॥ तदनन्तर किष्किन्धनगर का राजा सुग्रीव कुपित हो मयके सामने खड़ा हुआ सो मयने उसे भी शस्त्ररहित कर पृथिवीपर पहुँचा दिया ॥७६॥ तत्पश्चात् क्रोधसे भरे विभीषणने मयको आगे किया सो दोनोंमें परस्पर एक दूसरेके वाणोंको काटनेवाला महायुद्ध हुआ ॥७७॥ युद्ध करते-करते विभीषणका कवच टूट गया जिससे रुधिरकी धारा बहने लगी और वह फूले हुए अशोक वृक्षके समान लाल दिखने लगा ॥७८॥ सो विभीषणको ऐसा देख तथा वानरोंकी सेनाको विह्वल, भयभीत पराङ्मुख और विखरी हुई देखकर राम युद्धके लिए उद्यत हुए ॥७९॥ वे विद्यामयी सिंहाँसे युक्त रथपर सवार हो 'डरो मत' यह शब्द करते तथा मुसकराते हुए शीघ्र ही दौड़े ॥८०॥ रावणको सेना बिजली सहित वर्षाकालीन मेघोंकी सघन घटाके समान थी और राम प्रातःकालके सूर्यके समान कान्तिके धारक थे सो इन्होंने रावणकी सेनामें प्रवेश किया ॥८१॥ जब राम, शत्रु सेनाका संहार करनेके लिए उद्यत हुए तब हनूमान् भामण्डल, सुग्रीव और विभीषण भी धैर्यको प्राप्त हुए ॥८२॥ रामसे बल पाकर जिसका समस्त भय छूट गया था ऐसी वानरोंकी सेना पुनः युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुई ॥८३॥ उस समय देवोंके रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाले शस्त्रोंकी वर्षा होनेपर लोकमें अन्धकार छा गया और वह ऐसा लगने लगा मानो दूसरा ही लोक हो ॥८४॥ तदनन्तर राम, थोड़े ही प्रयाससे मयको वाणोंसे आच्छादित करनेके लिए उस तरह अत्यधिक तल्लीन हो गये जिस तरह कि चमरेन्द्रको वाणाच्छादित करनेके लिए इन्द्र तल्लीन हुआ था ॥८५॥ तदनन्तर रामके

अथ लक्ष्मणवीरेण भाषितः परमौजसा । प्रस्थितः क्व मया दृष्टो भवानद्यापि भो खग ॥८७॥
 तिष्ठ तिष्ठ रणं यच्छुद्धं तस्कर पापक । परस्त्रीदीपशलभ पुरुषाधम दुष्क्रिय ॥८८॥
 अथ प्रकरणं तत्ते करोमि कृतसाहसम् । कुर्यान्नवापि यच्छुद्धः कृतान्तोऽपि कुमानसः ॥८९॥
 अयं राघवदेवोऽथ समस्तवसुधापतिः । चौरस्य ते वधं कर्तुं समादिशति धर्मधीः ॥९०॥
 अबोधलक्ष्मणं कोपी विशत्यर्धाननस्ततः । भूढ ते किं न विज्ञातं लोके प्रख्यातमीदृशम् ॥९१॥
 यच्चारु भूतले सारं किञ्चिद्द्रव्यं सुखावहम् । अहामि तदहं राजा तन्वापि मयि शोभते ॥९२॥
 न गजस्योचिता घण्टा सारमेयस्य शोभते । तदत्र का कथाऽद्यापि योग्यद्रव्यसमागमे ॥९३॥
 त्वया मानुषमात्रेण यत्किञ्चनविलापिना । विधातुमसमानेन युद्धं दीनेन लज्जते ॥९४॥
 विप्रलब्धस्तथाप्येतैर्युद्धं चेत्कर्तुं मर्हसि । प्रव्यक्तं काललब्धोऽसि निर्वेदीवासि जीविते ॥९५॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽबोधेति त्वं यादृशः प्रभुः । अथ ते गजितं पाप हरामि किमिहोदितैः ॥९६॥
 इत्युक्तो रावणो वाणैः सुवाणैः कैकेयीसुतम् । प्राबुषेण्यधनाकारो गिरिकल्पं निरुद्धवान् ॥९७॥
 वज्रदण्डैः शरैस्तस्य विशल्यारमणः शरान् । अदृष्ट्वापसम्बन्धैरन्तराले न्यवारयत् ॥९८॥
 श्विञ्चैर्विपादितैः क्षोदं गतैश्च विशिखोत्करैः । शीश्च भूमिश्च सञ्जाता विवेकपरिवर्जिता ॥९९॥
 कैकेयीसूनुना न्यखः कैकेयीनन्दनः कृतः । माहेन्द्रमखमुत्सृष्टं चकार गगनासनम् ॥१००॥

बाणोंसे मयको विह्वल देख तेजसे यमकी तुलना करनेवाला रावण कुपित हो दौड़ा ॥८६॥ तब परम प्रतापी वीर लक्ष्मणने उससे कहा कि ओ चियाधर ! कहाँ जा रहे हो ? मैं आज तुम्हें देख पाया हूँ ॥८७॥ रे लुट्ट ! चोर ! पापी ! परस्त्रीरूपी दीपकपर मर भिटनेवाले शलभ ! नीच पुरुष ! दुश्चेष्ट ! खड़ा रह खड़ा रह मुझसे युद्धकर ॥८८॥ आज साहसपूर्वक तेरी वह दशा करता हूँ जिसे कुपित दुष्ट यम भी नहीं करेगा ? ॥८९॥ यह भी राघव देव समस्त पृथिवीके अधिपति हैं ! धर्ममय बुद्धिको धारण करनेवाले इन्होंने तुम्हें चोरका वध करनेके लिए मुझे आज्ञा दी है ॥९०॥

तदनन्तर क्रोधसे भरे रावणने लक्ष्मणसे कहा कि अरे मूर्ख ! क्या तुम्हें यह ऐसी लोक-प्रसिद्ध बात विदित नहीं है कि पृथिवीतलपर जो कुछ सुन्दर श्रेष्ठ और सुखदायक वस्तु है मैं ही उसके योग्य हूँ । यतश्च मैं राजा हूँ अतएव वह मुझमें ही शोभा पाती हैं अन्यत्र नहीं ॥९१-९२॥ हाथीके योग्य घण्टा कुत्ताके लिए शोभा नहीं देता । इसलिए योग्य द्रव्यका योग्य द्रव्यके साथ समागम हुआ इसकी आज भी क्या चर्चा करनी है ॥९३॥ तू एक साधारण मनुष्य है, चाहे जो बकनेवाला है, मेरी समानता नहीं रखता तथा अत्यन्त दीन है अतः तेरे साथ युद्ध करनेमें यद्यपि मुझे लज्जा आती है ॥९४॥ तथापि इन सबके द्वारा बहकाया जाकर यदि युद्ध करना चाहता है तो स्पष्ट है कि तेरे मरनेका काल आ पहुँचा है अथवा तू अपने जीवनसे मानो उदास हो चुका है ॥९५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि तू जैसा प्रभु है मैं जानता हूँ । अरे पापी ! इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? मैं तेरी सब गर्जना अभी हरता हूँ ॥९६॥ इतना कहनेपर रावणने सनसनाते हुए बाणोंसे लक्ष्मणको इस प्रकार रोका जिस प्रकार कि वर्षाऋतुका मेघ किसी पर्वतको आ रोकता है ॥९७॥ इधरसे जिनका वज्रमयी दण्ड था तथा शीघ्रताके कारण जिन्होंने मानो धनुषका सम्बन्ध देखा ही नहीं था ऐसे बाणोंसे लक्ष्मणने उसके बाणोंको बीचमें ही नष्ट कर दिया ॥९८॥ उस समय टूटे-फूटे और चूर-चूर हुए बाणोंके समूहसे आकाश और भूमि भेदरहित हो गई थी ॥९९॥

तदनन्तर जब लक्ष्मणने रावणको शस्त्ररहित कर दिया तब उसने आकाशको व्याप्त करने-

१. लज्जते म० । २. स वाणैः म० । सुवाणैः सुशब्दैः इत्यर्थः ।

सम्प्रयुज्य समीरास्त्रमस्त्रमविपश्चिता । सौमित्रिणा परिध्वंसं तन्नातं क्षणमात्रतः ॥१०१॥
 भूयः श्रेणिक संरम्भस्फुरिताननतेजसा । रावणेनास्त्रमान्नेयं क्षिप्तं ज्वलितसर्वदिक् ॥१०२॥
 लक्ष्मीधरेण तच्चापि वास्यास्त्रप्रयोगतः । निर्वापितं निमेषेण स्थितं कार्यविवर्जितम् ॥१०३॥
 कैकयेयस्ततः पापमन्त्रं चिक्षेप रक्षसि । रक्षसा तच्च धर्मास्त्रप्रयोगेण निवारितम् ॥१०४॥
 ततोऽन्धमिधनं नाम लक्ष्मणेन प्रयुज्यते । इन्धनेनैव तन्नीतं रावणेन इतार्थताम् ॥१०५॥
 फलासारं विमुञ्चद्भिः प्रसूनपञ्चलान्वितम् । गगनं वृक्षसंघातैरत्यन्तगहनीकृतम् ॥१०६॥
 भूयस्तामसवाणीधैरन्धकारीकृताग्बरैः । लक्ष्मीधरकुमारेण ह्यदितो राक्षसाधिपः ॥१०७॥
 सहस्रकिरणास्त्रेण तामसास्त्रमपोह्य सः । प्रायुङ्क्त दन्दशूकास्त्रं विस्फुरत्फगमण्डलम् ॥१०८॥
 ततस्ताप्यसमास्त्रेण लक्ष्मणेन निराकृतम् । पद्मगास्त्रं नभश्चाभूद्धेमभासेव पूरितम् ॥१०९॥
 संहारास्त्रुदनिर्घोषमुरगास्त्रमथो पुनः । पद्मनाभानुजोऽमुञ्चद् विषाम्निकणदुःसहम् ॥११०॥
 वर्हणास्त्रेण तद्दीरन्त्रिकूटेन्दुरसास्यत् । प्रायोक्षीच्च दुःखसारमस्त्रं विघ्नविनायकम् ॥१११॥
 विस्फुटे तत्र विघ्नास्त्रे वाञ्छितच्छेदकारिणि । प्रयोगे त्रिदशास्त्राणां लक्ष्मणो मोहमागमत् ॥११२॥
 वज्रदण्डान् शरानेव विससर्ज स भूरिशः । रावणोऽपि शरैरेव स्वभावस्थैर्युध्यत ॥११३॥
 आकर्णसंहतैर्वागैरासीद्युद्धं तयोः समम् । लक्ष्मीभृद्रक्षसोर्घोरं त्रिपृष्ठययिकण्ठयोः ॥११४॥

बाला माहेन्द्र शस्त्र छोड़ा ॥१००॥ इधरसे शस्त्रोंका क्रम जाननेमें निपुण लक्ष्मणने पवन वाणका प्रयोगकर उसके उस माहेन्द्र शस्त्रको क्षणभरमें नष्ट कर दिया ॥१०१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! क्रोधसे जिसके मुखका तेज दमक रहा था ऐसे रावणने फिर आग्नेय वाण चलाया जिससे समस्त दिशाएँ देदीप्यमान हो उठी ॥१०२॥ इधरसे लक्ष्मणने वाहणास्त्र चलाकर उस आग्नेय वाणको, वह कार्य प्रारम्भ करे कि उसके पूर्व ही निमेष मात्रमें, बुझा दिया ॥१०३॥ तदनन्तर लक्ष्मणने रावणपर पाप नामका शस्त्र छोड़ा सो उधरसे रावणने धर्म नामक शस्त्रके प्रयोगसे उसका निवारण कर दिया ॥१०४॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने इन्धन नामक शस्त्रका प्रयोग किया जिसे रावणने इन्धन नामक शस्त्रसे निरर्थक कर दिया ॥१०५॥ तदनन्तर रावणने फल और फूलोंकी वर्षा करनेवाले वृक्षोंके समूहसे आकाशको अत्यन्त व्याप्त कर दिया ॥१०६॥ तब लक्ष्मणने आकाशको अन्धकार युक्त करनेवाले तामसवाणोंके समूहसे रावणको आच्छादित कर दिया ॥१०७॥ तदनन्तर रावणने सहस्रकिरण अस्त्रके द्वारा तामस अस्त्रको नष्ट कर जिसमें फनोंका समूह उठ रहा था ऐसा दन्दशूक अस्त्र चलाया ॥१०८॥ तत्पश्चात् इधरसे लक्ष्मणने गरुड़वाण चलाकर उस दन्दशूक अस्त्रका निराकरण कर दिया जिससे आकाश ऐसा हो गया मानो स्वर्णकी कान्तिसे ही भर गया हो ॥१०९॥ तदनन्तर लक्ष्मणने प्रलयकालके मेघके समान शब्द करनेवाला तथा विषरूपी अग्निके कणोंसे दुःसह उरगास्त्र छोड़ा ॥११०॥ जिसे धीर वीर रावणने वर्हणास्त्रके प्रयोगसे दूर कर दिया और उसके बदले जिसका दूर करना अशक्य था ऐसा विघ्नविनाशक नामका शस्त्र छोड़ा ॥१११॥ तदनन्तर इच्छित वस्तुओंमें विघ्न डालनेवाले उस विघ्नविनाशक शस्त्रके छोड़नेपर लक्ष्मण देवोपनीत शस्त्रोंके प्रयोग करनेमें मोहको प्राप्त हो गये अर्थात् उसे निवारण करनेके लिए कौन शस्त्र चलाना चाहिये इसका निर्णय नहीं कर सके ॥११२॥ तब वे केवल वज्रमय दण्डोंसे युक्त वाणोंको ही अधिक मात्रामें चलाते रहे और रावण भी उस दशामें स्वाभाविक वाणोंसे ही युद्ध करता रहा ॥११३॥ उस समय लक्ष्मण और रावणके बीच कान तक खिंचे वाणोंसे ऐसा भयंकर युद्ध हुआ जैसा कि पहले त्रिपृष्ठ और अश्वमौवमें हुआ था ॥११४॥

उपजातिवृत्तम्

कर्मण्युपेतेऽभ्युदयं पुराणे संप्रेरके सत्यतिदारुणाङ्गे ।

तस्योचितं प्राप्तफलं मनुष्याः क्रियापवर्गप्रकृतं भजन्ते ॥११५॥

उदारसंरम्भवशः प्रपन्नाः प्रारब्धकार्यार्थनियुक्तचित्ताः ।

मरा न तीव्रं गणयन्ति शस्त्रं न पावकं नैव रविं न वायुम् ॥११६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावण-लक्ष्मणयुद्धवर्षानामिधानं
नाम चतुःसप्ततितमं पर्व ॥७४॥



गौतम स्वामी कहते हैं कि जब प्रेरणा देनेवाले पूर्वोपार्जित पुण्य-पापकर्म उदयको प्राप्त होते हैं तब मनुष्य उन्हींके अनुरूप कार्यको सिद्ध अथवा असिद्ध करनेवाले फलको प्राप्त होते हैं ॥११५॥ जो अत्यधिक क्रोधकी अधीनताको प्राप्त हैं और जिन्होंने अपना चित्त प्रारम्भ किये हुए कार्यकी सिद्धिमें लगा दिया है ऐसे मनुष्य न तीव्र शस्त्रको गिनते हैं, न अग्निको गिनते हैं, न सूर्यको गिनते हैं और न वायुको ही गिनते हैं ॥११६॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावण और लक्ष्मणके युद्धका वर्णन करनेवाला चौहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७४॥



पंचसप्ततितमं पर्व

खिलाभ्यां दीयते स्वादु जलं ताभ्यां सुशीतलम् । महात्तर्वाभिभूताभ्यामयं हि समरे विधिः ॥१॥
 अमृतोपममञ्जं च क्षुधागलपनर्मायुषोः । गोशीर्षचन्दनं स्वेदसंगिनोर्हार्दकारणम् ॥२॥
 तालवृन्तादिवातश्च हिमवारिकणो रणे । क्रियते तत्परैः कार्यं तथान्यदपि पारवर्गैः ॥३॥
 तथा तयोरतथाऽन्येषामपि स्वपरवर्गतः । इति कर्तव्यतासिद्धिः सकला प्रतिपद्यते ॥४॥
 दशाहोऽतिगतस्तीव्रमेतयोर्युध्यमानयोः । बलिनोर्भङ्गनिर्मुक्तश्चित्तयोरतिवीरयोः ॥५॥
 रावणेन समं युद्धं लक्ष्मणस्य बभूव यत् । लक्ष्मणेन समं युद्धं रावणस्य बभूव यत् ॥६॥
 यत्किञ्चरगन्धर्वाप्सरसो विस्मयं गताः । सायुशब्दविमिश्राणि पुष्पवर्षाणि चिञ्चिपुः ॥७॥
 चन्द्रवर्धननाम्नोऽथ विद्याधरजनप्रभोः । अष्टौ दुहितरो व्योम्नि विमानशिखरस्थिताः ॥८॥
 अप्रमत्तैर्महाशकैः कृत्तरत्नामहत्तरैः । पृष्टाः संगतिमेताभिरप्सरोभिः कुतूहलात् ॥९॥
 का यूयं देवताकारा भक्तिं लक्ष्मणसुन्दरे । दधाना इव वर्त्तध्वे सुकुमारशरीरिकाः ॥१०॥
 सलज्जा इव ता ऊचुः श्रूयतां यदि कौतुकम् । वैदेहीवरणे पूर्वमस्माभिः सहितः पिता ॥११॥
 आसीद्गतः तदास्थानं राज्ञां कौतुकचोदितः । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं तत्र ददावस्मै धियैव नः ॥१२॥
 ततोऽधिगम्य मात्रातो वृत्तमेतन्निवेदितम् । दर्शनादेव चाऽऽरभ्य मनस्वेष न्यवस्थितः ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! युद्धकी यह विधि है कि दोनों पक्षके खेदखिन्न तथा महाप्यासासे पीड़ित मनुष्योंके लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है । लुधासे दुखी मनुष्योंके लिए अमृततुल्य भोजन दिया जाता है । पसीनासे युक्त मनुष्योंके लिए आह्लादका कारण गोशीर्ष चन्दन दिया जाता है । पङ्के आदिसे हवाकी जाती है । बर्फके जलके छीटे दिये जाते हैं तथा इनके सिवाय जिसके लिए जो कार्य आवश्यक हो उसकी पूर्ति समीपमें रहनेवाले मनुष्य तत्परताके साथ करते हैं । युद्धकी यह विधि जिस प्रकार अपने पक्षके लोगोंके लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्षके लोगोंके लिए भी है । युद्धमें निज और परका भेद नहीं होता । ऐसा करनेसे ही कर्तव्यकी समग्र सिद्धि होती है ॥१-४॥

तदनन्तर जिनके चित्तमें हारका नाम भी नहीं था तथा जो अतिशय बलवान् थे ऐसे प्रचण्ड वीर लक्ष्मण और रावणको युद्ध करते हुए दश दिन बीत गये ॥५॥ लक्ष्मणका जो युद्ध रावणके साथ हुआ था वही युद्ध रावणका लक्ष्मणके साथ हुआ था अर्थात् उनका युद्ध उन्हींके समान था ॥६॥ उनका युद्ध देख यत् किञ्चर गन्धर्व तथा अप्सराएँ आदि आश्चर्यको प्राप्त हो धन्यवाद देते और उनपर पुष्पवृष्टि छोड़ते थे ॥७॥ तदनन्तर चन्द्रवर्धन नामक विद्याधर राजाकी आठ कन्याएँ आकाशमें विमानकी शिखरपर बैठी थीं ॥८॥ महती आशंकासे युक्त बड़े-बड़े प्रतीहारी सावधान रहकर जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसी उन कन्याओंसे समागमको प्राप्त हुई अप्सराओंने कुतूहलवश पूछा कि आपलोग देवताओंके समान आकारको धारण करनेवालीं तथा सुकुमार शरीरसे युक्त कौन हैं ? ऐसा जान पड़ता है मानो लक्ष्मणमें आपलोग अधिक भक्ति धारण कर रही हैं ॥९-१०॥ तब वे कन्याएँ लज्जित होती हुई बोलीं कि यदि आपको कौतुक है तो सुनिये । पहले जब सीताका स्वयंवर हो रहा था तब हमारे पिता हमलोगोंके साथ कौतुकसे प्रेरित हो समामण्डपमें गये थे वहाँ लक्ष्मणको देखकर उन्होंने हमलोगोंको उन्हें देनेका संकल्प किया था ॥११-१२॥ वहाँसे आकर यह वृत्तान्त पिताने माताके लिए कहा और

१. हृदि म० । २. कृत्तरत्नमहत्तरैः म० ।

सोऽयं महति संग्रामे वर्त्तते संशयावहे । भविष्यति कथं त्वेतदिति विप्रो न दुःखिताः ॥१४॥
 अस्य मानवचन्द्रस्य हृदयेशस्य या गतिः । लक्ष्मीधरकुमारस्य सैवास्माभिविजिञ्चिता ॥१५॥
 मनोहरस्वनं तासां श्रुत्वा तद्वचनं ततः । चक्षुरुद्ध्वं नियुञ्जानो लक्ष्मणस्ता व्यलोकत ॥१६॥
 तद्दर्शनात्परं प्राप्ताः प्रमोदं ताः सुकन्यकाः । सिद्धार्थः सर्वथा नाथ भवेत्युदगिरन् स्वनम् ॥१७॥
 सिद्धार्थशब्दनात्तरमान् स्मृत्वा विहसिताननः । अथं सिद्धार्थनामानं लक्ष्मणः कृतितं गतः ॥१८॥
 स सिद्धार्थमहास्त्रेण क्षिप्रं विप्रविनायकम् । अस्त्रमस्तगतं कृत्वा सुदीप्तं योद्धुमुद्यतः ॥१९॥
 गृह्णाति रावणो यद्यदस्त्रं शस्त्रविशारदः । क्षिनत्ति लक्ष्मणस्तत्त्परमास्त्रविशारदः ॥२०॥
 ततः पतत्रिसंघातैरस्य पत्रीन्द्रकेतुना । सर्वां दिशः परिच्छन्ना जीमूतैरिव भूमृतः ॥२१॥
 ततो भगवतीं विद्यां बहुरूपविधायिनीम् । प्रविरय रक्षसार्माशः समरक्रीडनं श्रितः ॥२२॥
 लक्ष्मीधरशरैस्तोन्नयैः शिरो लङ्कापुरीप्रभोः । क्षिप्रं क्षिप्रमभूत् भूयः श्रीमत्कुण्डलमण्डितम् ॥२३॥
 एकस्मिन् शिरसिच्छिन्ने शिरोद्वयमजायत । तयोरुत्कृत्तयोर्वृद्धिं शिरांसि द्विगुणां ययुः ॥२४॥
 निकृत्ते बाहुयुग्मे च जज्ञे बाहुचतुष्टयम् । तस्मिन् क्षिन्ने ययौ वृद्धिं द्विगुणा बाहुसन्ततिः ॥२५॥
 सहस्रैरुत्तमाङ्गानां^१ भुजानां चातिभूरिभिः । पद्मखण्डैरगण्यैश्च ज्ञायते रावणो वृतः ॥२६॥
 नभःकरिकशकरैः करैः केयूरभूषितैः । शिरोभिश्चाभवत्पूर्णं शस्त्ररत्नांशुपिजरम् ॥२७॥

उससे हमलोगोंको विदित हुआ । साथ ही स्वयंवरमें जबसे हमलोगोंने इसे देखा था तभीसे यह हमारे मनमें स्थित था ॥१३॥ वही लक्ष्मण इस समय जीवन-मरणके संशयको धारण करनेवाले इस महासंग्राममें विद्यमान है । सो संग्राममें क्या कैसा होगा यह हमलोग नहीं जानती इसीलिए दुःखी हो रही हैं ॥१४॥ मनुष्योंमें चन्द्रमाके समान इस हृदयवल्लभ लक्ष्मणकी जो दशा होगी वही हमारी होगी ऐसा हम सबने निश्चित किया है ॥१५॥

तदनन्तर उन कन्याओंके मनोहर वचन सुन लक्ष्मणने ऊपरकी ओर नेत्र उठाकर उन्हें देखा ॥१६॥ लक्ष्मणके देखनेसे वे उत्तम कन्याएँ परम प्रमोदको प्राप्त हो इस प्रकारके शब्द बोलीं कि हे नाथ ! तुम सब प्रकारसे सिद्धार्थ होओ—तुम्हारी भावना सब तरह सिद्ध हो ॥१७॥ उन कन्याओंके मुखसे सिद्धार्थ शब्द सुनकर लक्ष्मणकी सिद्धार्थ नामक अस्त्रका स्मरण आ गया जिससे उनका मुख खिल उठा तथा वे कृतकृत्यताको प्राप्त हो गये ॥१८॥ फिर क्या था, शीघ्र ही सिद्धार्थ महास्त्रके द्वारा रावणके विघ्नविनाशक अस्त्रको नष्टकर लक्ष्मण बड़ी तेजीसे युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥१९॥ शस्त्रोंके चलानेमें निपुण रावण जिस-जिस शस्त्रको ग्रहण करता था परमास्त्रोंके चलानेमें निपुण लक्ष्मण उसी-उसी शस्त्रको काट डालता था ॥२०॥ तदनन्तर ध्वजामें पहिराज—गरुडका चिह्न धारण करनेवाले लक्ष्मणके वाणसमूहसे सब दिशाएँ इस प्रकार व्याप्त हो गईं जिस प्रकार कि मेघोंसे पर्वत व्याप्त हो जाते हैं ॥२१॥

तदनन्तर रावण भगवती बहुरूपिणी विद्यामें प्रवेश कर युद्ध-क्रीड़ा करने लगा ॥२२॥ यही कारण था कि उसका शिर यद्यपि लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से बार-बार कट जाता था तथापि वह बार-बार देदीप्यमान कुण्डलोंसे सुशोभित हो उठता था ॥२३॥ एक शिर कटता था तो दो शिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो उससे दुगुनी वृद्धिको प्राप्त हो जाते थे ॥२४॥ दो मुजाएँ कटती थीं तो चार हो जाती थीं और चार कटती थीं उससे दूनी हो जाती थीं ॥२५॥ हजारों शिरों और अत्यधिक भुजाओंसे घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो अगणित कमलोंके समूहसे घिरा हो ॥२६॥ हाथीकी सूँडके समान आकारसे युक्त तथा वाजुवन्दसे सुशोभित भुजाओं और शिरोंसे भरा आकाश शस्त्र तथा रत्नोंकी किरणोंसे पिञ्जर वर्ण हो गया ॥२७॥

शिरोग्राहसहस्रोप्रस्तुंगबाहुतरंगभृत् । अवर्द्धत महाभीमो राक्षसाधिपसागरः ॥२८॥
 बाहुसौदामिनीदण्डप्रचण्डो घोरनिस्वनः । शिरःशिखरसंघातैर्वृधे रावणाश्रुदः ॥२९॥
 बाहुमस्तकसंघट्टनिःस्वनच्छत्रभूषणः । महासैन्यसमानोऽभूदेकोऽपि त्रिककुम्पतिः ॥३०॥
 पुराऽनेकेन युद्धोऽहमधुनैकाकिनाऽमुना । युद्धे कथमितीवायं लक्ष्मणेन बहूकृतः ॥३१॥
 रत्नशस्त्रांशुसंघातकरजालप्रदीपितः । सञ्जातो राक्षसार्थीशो दह्यमानवनोपमः ॥३२॥
 चक्रेपुशक्तिकुन्तादिशास्त्रवर्षेण रावणः । सक्तशङ्खादयितुं बाहुसहस्रैरपि लक्ष्मणम् ॥३३॥
 लक्ष्मणोऽपि परं क्रुद्धो विषादपरिवर्जितः । अर्कतुण्डैः शरैः शत्रुं प्रच्छादयितुमुद्यतः ॥३४॥
 एकं द्वे त्रीणि चत्वारि पञ्च षड् दश विंशतिः । शतं सहस्रमधुतं चिच्छेदारिशिरांसि सः ॥३५॥
 शिरःसहस्रसंछन्नं पतद्भिः सह बाहुभिः । सोत्कादण्डं पतज्ज्योतिश्चक्रमासीदिवाम्बरम् ॥३६॥
 सबाहुमस्तकच्छन्ना रणक्षोणी निरन्तरम् । सनागभोगराजीवक्षण्डशोभामधारयत् ॥३७॥
 समुत्पन्नं समुत्पन्नं शिरोबाहुकदम्बकम् । रक्षसो लक्ष्मणोच्छ्वित्तकर्मेव मुनिपुङ्गवः ॥३८॥
 गलदुधिरधाराभिः सन्तताभिः समाकुलम् । वियत्सन्ध्याविनिर्माणं समुद्भूतमिवापरम् ॥३९॥
 असंख्यातभुजः शत्रुलक्ष्मणेन द्विबाहुना । महानुभावयुक्तेन कृतो निष्फलविग्रहः ॥४०॥
 निरुच्छ्वासाननः स्वेदबिन्दुजालचिताननः । सत्त्ववानांकुलस्वांगः संवृत्तो रावणः क्षणम् ॥४१॥
 तावच्छ्रेणिक निवृत्ते तस्मिन्संख्येऽतिरीरवे । स्वभावावस्थितो भूत्वा रावणः क्रोधदीपितः ॥४२॥

जो शिररूपी हजारों मगरमच्छोंसे भयंकर था तथा भुजाओं रूपी ऊँची-ऊँची तरङ्गोंको धारण करता था ऐसा रावणरूपी महाभयंकर सागर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था ॥२८॥ अथवा जो भुजारूपी विद्युद् दण्डोंसे प्रचण्ड था और भयंकर शब्द कर रहा था ऐसा रावणरूपी मेघ शिररूपी शिखरोंके समूहसे बढ़ता जाता था ॥२९॥ भुजाओं और मस्तकोंके संघटनसे जिसके छत्र तथा आभूषण शब्द कर रहे थे ऐसा रावण एक होने पर भी महासेनाके समान जान पड़ता था ॥३०॥ 'मैंने पहले अनेकोंके साथ युद्ध किया है अब इस अकेलेके साथ क्या करूँ यह सोच कर ही मानो लक्ष्मणने उसे अनेक रूप कर लिया था ॥३१॥ आभूषणोंके रत्न तथा शस्त्र समूह की किरणोंको देदीप्यमान रावण जलते हुए बनके समान हो गया था ॥३२॥ रावण अपनी हजारों भुजाओंके द्वारा चक्र, बाण, शक्ति तथा भाले आदि शस्त्रोंकी वर्षासे लक्ष्मणको आच्छादित करनेमें लगा था ॥३३॥ और क्रोधसे भरे तथा विवादसे रहित लक्ष्मण भी सूर्यमुखी बाणोंसे शत्रुको आच्छादित करनेमें भुके हुए थे ॥३४॥ उन्होंने शत्रुके एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, दश, बीस, सौ, हजार तथा दश हजार शिर काट डाले ॥३५॥ हजारों शिरोंसे व्याप्त तथा पड़ती हुई भुजाओंसे युक्त आकाश, उस समय ऐसा हो गया था मानो उल्कादण्डोंसे युक्त तथा जिसमें तारा मण्डल गिर रहा है ऐसा हो गया था ॥३६॥ उस समय भुजाओं और मस्तकसे निरन्तर आच्छादित युद्धभूमि सर्पोंके फणासे युक्त कमल समूहकी शोभा धारण कर रही थी ॥३७॥ उसके शिर और भुजाओंका समूह जैसा जैसा उत्पन्न होता जाता था लक्ष्मण वैसा वैसा ही उसे उस प्रकार काटता जाता था जिस प्रकार कि मुनिराज नये नये बँधते हुए कर्माँको काटते जाते हैं ॥३८॥ निकलते हुए रुधिरकी लम्बी चौड़ी धाराओंसे व्याप्त आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो जिसमें संध्याका निर्माण हुआ है ऐसा दूसरा ही आकाश उत्पन्न हुआ हो ॥३९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, महानुभावसे युक्त द्विबाहु लक्ष्मणने असंख्यात भुजाओंके धारक रावण को निष्फल शरीरका धारक कर दिया ॥४०॥ देखो, पराक्रमी रावण क्षण भरमें क्यासे क्या हो गया ? उसके मुखसे श्वास निकलना बंद हो गया, उसका मुख पसीनाकी बूँदोंके समूहसे व्याप्त हो गया और उसका समस्त शरीर आकुल-व्याकुल हो गया ॥४१॥ हे श्रेणिक ! जब तक वह

युगावसानमध्याह्नसहस्रकिरणप्रभम् । परपक्षयश्चर्चाबंधकरत्नमचिन्तयत् ॥४३॥
 अप्रमेयप्रभाजालं मुक्ताजालपरिष्कृतम् । स्वयंप्रभास्वरं दिव्यं वज्रतुण्डं महाद्भुतम् ॥४४॥
 नानारत्नपरीताङ्गं दिव्यमालानुलेखनम् । अग्निप्राकारसङ्काशैवारामण्डलदीधिति ॥४५॥
 वैडूर्यारसहस्रेण युक्तं दर्शनदुःसहम् । सदा यत्नसहस्रेण कृतरत्नं प्रयत्नतः ॥४६॥
 महासंरंभसंबद्धकृतान्ताननसञ्चिभम् । चिन्तानन्तरमेतस्य चक्रं सन्निहितं करे ॥४७॥
 कृतस्तत्र प्रभास्त्रेण निष्प्रभो ज्योतिषां पतिः । चित्रार्पितरविच्छायमात्रशेषो व्यवस्थितः ॥४८॥
 गन्धर्वाऽप्सरसो विश्वावसुतुम्बुरुनारदाः । परित्यज्य रणप्रेक्षां गताः कापि विर्गीतिकाः ॥४९॥
 मतंभ्यमिति निश्चित्य तथाप्यत्यन्तधीरधीः । शत्रुं तथाविधं वीच्य पद्मानभानुजोऽवदत् ॥५०॥
 सङ्गतेनामुना किं त्वं स्थितोऽस्यैवं कदर्शवत् । शक्तिश्चेदस्ति ते काचित्प्रहारस्व नराधम ॥५१॥
 इत्युक्तः परमं क्रुद्धो दन्तदृष्टरदच्छुदः । मण्डलीकृतविस्फारिप्रभापटललोचनः ॥५२॥
 क्षुब्धमेघकुलस्वानं प्रभ्रम्य सुमहाजवम् । चिक्षेप रावणश्चक्रं जनसंशयकारणम् ॥५३॥
 दृष्ट्वाऽभिमुखमागच्छत्सुपातार्कलनिभम् । निवारयितुमुद्युक्तो वज्रास्यैर्लक्ष्मणः शरैः ॥५४॥
 वज्रावर्त्तेन पद्माभो धनुषा वेगशालिना । हलेन चोद्यपोत्रेण आमितेनान्यबाहुना ॥५५॥

अत्यन्त भयंकर युद्ध होता है तब तक क्रोधसे प्रदीप्त रावणने कुछ स्वभावस्थ हो कर उस चक्र रत्नका चिन्तवन किया जो कि प्रलयकालीन मध्याह्नके सूर्यके समान प्रभापूर्ण था तथा शत्रु पक्षका क्षय करनेमें उन्मत्त था ॥४२-४३॥

तदनन्तर-जो अपरिमित कान्तिके समूहका धारक था, मोतियोंकी झालरसे युक्त था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य था, वज्रमय मुखसे सहित था, महा अद्भुत था, नाना रत्नोंसे जिसका शरीर व्याप्त था, दिव्य मालाओं और विलेपनसे सहित था, जिसकी धारोंकी मण्डलाकार किरणें अग्निके कोटके समान जान पड़ती थीं, जो वैडूर्यमणिनिर्मित हजार आरोंसे सहित था, जिसका देखना कठिन था, हजार यत्न जिसकी सदा प्रयत्न पूर्वक रक्षा करते थे, और जो प्रलय काल सम्बद्ध यमराजके मुखके समान था ऐसा चक्र, चिन्ता करते ही उसके हाथमें आ गया ॥४४-४५॥ उस प्रभापूर्ण दिव्य अस्त्रके द्वारा सूर्य प्रभा हीन कर दिया गया जिससे वह चित्रलिखित सूर्य के समान कान्ति मात्र है शेष जिसमें ऐसा रह गया ॥४८॥ गन्धर्व, अप्सराएं, विश्वावसु, तुम्बुरु, और नारद युद्धका देखना छोड़ गायन भूल कर कहीं चले गये ॥४९॥ 'अब तो मरना ही होगा' ऐसा निश्चय यद्यपि लक्ष्मणने कर लिया था तथापि वे अत्यन्त धीर बुद्धिके धारक हो उस प्रकारके शत्रुकी ओर देख जोरसे बोले कि रे नराधम ! इस चक्रको पाकर भी कृपणके समान इस तरह क्यों खड़ा है यदि कोई शक्ति है तो प्रहार कर ॥५०-५१॥ इतना कहते ही जो अत्यन्त कुपित हो गया था, जो दांतोंसे ओंठको डश रहा था, तथा जिसके नेत्रोंसे मण्डलाकार विशाल कान्तिका समूह निकल रहा था ऐसे रावणने घुमा कर चक्ररत्न छोड़ा । वह चक्ररत्न क्षोभको प्राप्त हुए मेघमण्डलके समान भयंकर शब्द कर रहा था, महावेगशाली था, और मनुष्योंके संशयका कारण था ॥५२-५३॥

तदनन्तर प्रलय कालके सूर्यके समान सामने आते हुए उस चक्ररत्नको देख कर लक्ष्मण वज्रमुखी बाणोंसे उसे रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५४॥ रामचन्द्रजी एक हाथसे वेगशाली वज्रावर्त नामक धनुषसे और दूसरे हाथ से घुमाये हुए तीक्ष्णमुख हलसे, अत्यधिक क्षोभको धारण करने वाला सुग्रीव गदासे, भामण्डल तीक्ष्ण तलवारसे, विभीषण शत्रुका विघात करने वाले

१. किरणप्रभः म०, क० । २. छविशू म०, क० । ३. संकाशं धारामण्डलदीधिति म० । ४. संबन्ध म० । ५. प्रभास्तेन ज०, क० । ६. ऽस्यैवं म० । ७. चोद्यपोत्रेण क० । ८. भ्राम्यते नान्यबाहुना म० ।

संभ्रमं परमं विभ्रतसुर्भावो गदथा तदा । मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन प्रभामण्डलसुन्दरः ॥५६॥
 अरातिप्रतिकूलेन शूलेनासौ विभीषणः । उल्कामुद्गरलांगूलकनकाद्यैर्मस्तुतः ॥५७॥
 अंगदः परिधेनाङ्गः कुठारेणोस्तेजसा । शेषा अपि तथा शेषैः शस्त्रैः खेचरपुङ्गवाः ॥५८॥
 एकीभूय समुद्युक्ता अपि जीवितनिःस्पृहाः । ते निवारयितुं शुकुर्न तन्निदशपालितम् ॥५९॥
 तेनाऽऽगत्य परीत्य त्रिविनयस्थिं तरक्षकम् । सुखं शान्तवपुः स्वैरं लक्ष्मणस्य करे स्थितम् ॥६०॥

उपजातिवृत्तम्

माहात्म्यमेतस्सुसमासतस्ते निवेदितं कर्तुं सुविस्मयस्य ।
 रामस्य नारायणसङ्गतस्य महद्विकं श्रेणिक ! लोकतुङ्गम् ॥६१॥
 एकस्य पुण्योदयकालभाजः सञ्जायते नुः परमा विभूतिः ।
 पुण्यक्षयेऽन्यस्य विनाशयोगश्चन्द्रोऽभ्युदयेति रविर्यथाऽस्तम् ॥६२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे चक्ररत्नोत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमं पर्व ॥७५॥

त्रिशूलसे, हनूमान् उल्का, मुद्गर, लाङ्गूल तथा कनक आदिसे, अङ्गद परिघसे, अङ्ग अत्यन्त तीक्ष्ण कुठारसे और अन्य विद्याधर राजा भी शेष अस्त्र-शस्त्रोंसे एक साथ मिल कर जीवनकी आशा छोड़ उसे रोकनेके लिए उद्यत हुए पर वे सब मिलकर भी इन्द्रके द्वारा रक्षित उस चक्ररत्नको रोकनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥५४-५६॥ इधर रामकी सेनामें व्यग्रता बढ़ी जा रही थी पर भाग्य की बात देखो कि उसने आकर लक्ष्मणकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं, उसके सब रक्षक विनयसे खड़े हो गये, उसका आकार सुखकारी तथा शान्त हो गया और वह स्वेच्छासे लक्ष्मणके हाथमें आकर रुक गया ॥६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैंने तुम्हें राम-लक्ष्मणका यह अत्यन्त आश्चर्यको करने वाला महा विभूतिसे सम्पन्न एवं लोकश्रेष्ठ माहात्म्य संक्षेपसे कहा है ॥६१॥ पुण्योदयके कालको प्राप्त हुए एक मनुष्यके परम विभूति प्रकट होती है तो पुण्यका क्षय होने पर दूसरे मनुष्यके विनाशका योग उपस्थित होता है । जिस प्रकार कि चन्द्रमा उदित होता है और सूर्य अस्तको प्राप्त होता है ॥६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके चक्ररत्नकी उत्पत्तिका वर्णन करने वाला पचहत्तरवां पर्व पूर्ण हुआ ॥७५॥

षट्सप्ततितमं पर्व

उत्पन्नचक्ररत्नं तं वीक्ष्य लक्ष्मणसुन्दरम् । हृष्टा विद्याधराधीशाश्चक्रुरित्यभिनन्दनम् ॥१॥
 उक्षुश्वासीत् समादिष्टः पुरा भगवता तदा । नाथेनानन्तवीर्येण वोऽष्टमः कृष्णतायुजाम् ॥२॥
 जातो नारायणः सोऽयं चक्रपाणिर्महाद्युतिः । अत्युत्तमवपुः श्रीमान् न शक्यो बलवर्णने ॥३॥
 अयं च बलदेवोऽसौ रथं यस्य वहन्त्यमी । उद्वृत्तकेसरसटाः सिंहा भास्करभासुराः ॥४॥
 नीतो मयमहादैत्यो येन वन्दिगृहं रणे । हलरत्नं करे यस्य भृशमेतद्विराजते ॥५॥
 रामनाराणावेतौ तौ जातौ पुरुषोत्तमौ । पुण्यानुभावयोगेन परमप्रेमसङ्गतौ ॥६॥
 लक्ष्मणस्य स्थितं पाणौ समालोक्य सुदर्शनम् । रत्नसामधिपश्चिन्तायोगमेवमुपागतः ॥७॥
 बन्धेनानन्तवीर्येण दिव्यं यद्भाषितं तदा । ध्रुवं तद्विदमायातं कर्मानिलसमीरितम् ॥८॥
 यस्यातपत्रमालोक्य सन्त्रस्ताः खेचराधिपाः । भङ्गं प्रापुर्महासैन्धाः पर्यस्तच्छत्रकेतनाः ॥९॥
 आकूपारपयोवासा हिमवद्विन्ध्यसुस्तना । दासीवाज्ञाकरी यस्य त्रिखण्डवसुधाभवत् ॥१०॥
 सोऽहं भृगोचरेणाज्ञौ जेतुमालोचितः कथम् । कष्टेयं वर्त्ततेऽवस्था पश्यताद्भुतमीदृशम् ॥११॥
 धिगिमां नृपतेर्लक्ष्मीं कुलटासमचेष्टिताम् । भक्तुमेकपदे पापान् त्यजन्ती चिरसंस्तुतान् ॥१२॥
 किम्पाकफलवन्नोगा विपाकविरसा भृशम् । अनन्तदुःखसम्बन्धकारिणः साधुगर्हिताः ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे लक्ष्मण सुन्दरको देख कर विद्याधर राजाओंने हर्षित हो उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया ॥१॥ वे कहने लगे कि पहले भगवान् अनन्तवीर्य स्वामीने जिस आठवें नारायणका कथन किया था यह वही उत्पन्न हुआ है । चक्ररत्न इसके हाथमें आया है । यह महाकान्तिमान्, अत्युत्तम शरीरका धारक और श्रीमान् है तथा इसके बलका वर्णन करना अशक्य है ॥२-३॥ और यह राम, आठवां बलभद्र है जिसके रथको खड़ी जटाओंको धारण करने वाले तथा सूर्यके समान देदीप्यमान सिंह खींचते हैं ॥४॥ जिसने रणमें मय नामक महादैत्यको बन्दीगृहमें भेजा था तथा जिसके हाथमें यह हल रूपी रत्न अत्यन्त शोभा देता है ॥५॥ ये दोनों ही पुरुषोत्तम पुण्यके प्रभावसे बलभद्र और नारायण हुए हैं तथा परम प्रीतिसे युक्त हैं ॥६॥

तदनन्तर सुदर्शन चक्रको लक्ष्मणके हाथमें स्थित देख, राजसधिपति रावण इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७॥ वह विचार करने लगा कि उस समय बन्दीय अनन्तवीर्य केबलीने जो दिव्यध्वनिमें कहा था जान पड़ता है कि वही यह कर्म रूपी वायुसे प्रेरित हो आया है ॥८॥ जिसका छत्र देख विद्याधर राजा भयभीत हो जाते थे, बड़ी बड़ी सेनाएं छत्र तथा पताकाएं फेंके बिनाशको प्राप्त हो जाती थीं तथा समुद्रका जल ही जिसका वस्त्र है और हिमालय तथा विन्ध्ययाचल जिसके स्तन हैं ऐसी तीन खण्डकी वसुधा दासीके समान जिसकी आज्ञाकारिणी थी ॥९-१०॥ वही मैं आज युद्धमें एक भूमिगोचरीके द्वारा पराजित होनेके लिए किस प्रकार देखा गया हूँ ? अहो ! यह बड़ी कष्टकर अवस्था है ? यह आश्चर्य भी देखो ॥११॥ कुलटाके समान चेष्टाको धारण करने वाली इस राजलक्ष्मीको धिक्कार हो यह पापी मनुष्योंका सेवन करनेके लिए चिर परिचित पुरुषोंको एक साथ छोड़ देती है ॥१२॥ ये पञ्चेन्द्रियोंके भोग किंपाक फलके समान परिपाक कालमें अत्यन्त विरस हैं, अनन्त दुःखोंका संसर्ग कराने वाले हैं और साधुजनोंके द्वारा

१. नारायणतोपेतानां नारायणाना मिति यावत् । कृष्णातायुजान् म०, ब० । २. क्षणे म० ।

भरताद्याः सधन्यास्ते पुरुषा भुवनोत्तमाः । चक्राङ्कं ये परिस्फोटं राज्यं कण्टकवर्जितम् ॥१४॥
 विषमिश्राणवच्यक्त्वा जैनेन्द्रं व्रतमाश्रिताः । रत्नत्रयं समाराध्य प्रापुश्च परमं पदम् ॥१५॥
 मोहेन बलिनाऽव्यन्तं संसारस्फातिकारिणा । पराजितो वराकोऽहं विड्मार्मादृशचेष्टितम् ॥१६॥
 उत्पन्नचक्ररत्नेन लक्ष्मणेनाथ रावणः । विभीषणास्यमालोक्य जगदे पुरुतेजसा ॥१७॥
 अद्यापि खगसम्पूज्य समर्प्य जनकात्मजाम् । रामदेवप्रसादेन जीवामीति वचो वद ॥१८॥
 ततस्तथाविधैवेयं तव लक्ष्मीरवस्थिता । विश्राय मानभङ्गं हि सन्तो यान्ति कृतार्थताम् ॥१९॥
 रावणेन ततोऽवोचि लक्ष्मणः स्मितकारिणा । अहो कारणनिर्मुक्तो गर्वः क्षुद्रस्य ते मुधा ॥२०॥
 दर्शयाम्यद्य तेऽवस्थां यां तामनुभवाश्रम । अहं रावण एवाऽसौ स च त्वं धरणीचरः ॥२१॥
 लक्ष्मणेन ततोऽभाणि किमत्र बहुभाषितैः । सर्वथाऽहं समुत्पन्नो हन्ता नारायणस्तव ॥२२॥
 उक्तं तेन निजाकृताद्यदि नारायणायसे । इच्छामात्रान् सुरेन्द्रत्वं कस्मान्न प्रतिपद्यसे ॥२३॥
 निर्वासितस्य ते पित्रा दुःखिनो वनचारिणः । अपत्रपाविर्हानस्य ज्ञाता केशवता मया ॥२४॥
 नारायणो भवाऽन्यो वा यत्ते मनसि वर्त्तते । विस्फूर्जितं करीभ्येषु तव भ्रंशं मनोरथम् ॥२५॥
 अनेनालातचक्रेण किल त्वं कृतितानं गतः । अथवा क्षुद्रजन्तूनां खलेनाऽपि महोरसवम् ॥२६॥
 सहार्मीभिः खगैः पापैः सचक्रं सहवाहनम् । पाताले त्वां नयाम्यद्य कथितेनापरेण किम् ॥२७॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य नवनारायणो रुषा । प्रभ्रम्य चक्रमुद्यम्य चिक्षेप प्रति रावणम् ॥२८॥
 वज्रप्रभवमेवौघघोरनिर्घोषभीषणम् । प्रलयार्कसमच्छायां तच्चक्रमभवत्तदा ॥२९॥

निन्दित हैं ॥१३॥ वे संसार श्रेष्ठ भरतादि पुरुष धन्य हैं जो चक्ररत्नसे सहित निष्कण्टक विशाल राज्यको विष मिश्रिते अन्नके समान छोड़कर जिनेन्द्र सम्बन्धी व्रतको प्राप्त हुए तथा रत्नत्रयकी आराधना कर परम पदको प्राप्त हुए ॥१४-१५॥ मैं दीन पुरुष संसार वृद्धिका अतिशय कारण जो बलवान् मोह कर्म है उसके द्वारा पराजित हुआ हूँ। ऐसी चेष्टाको धारण करने वाले मुझको धिक्कार है ॥१६॥

अथानन्तर जिन्हें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे विशाल तेजके धारक लक्ष्मणने विभीषण का मुख देख कर कहा कि हे विद्याधरोंके पूज्य ! यदि अब भी तुम सीताको सौंप कर यह वचन कहो कि मैं भी रामदेवके प्रसादसे जीवित हूँ तो तुम्हारी यह लक्ष्मी ज्यों की त्यों अवस्थित है क्यों कि सत्पुरुष मान भङ्ग करके ही कृतकृत्यताको प्राप्त हो जाते हैं ॥१७-१८॥ तब मन्द हास्य करने वाले रावणने लक्ष्मणसे कहा कि अहो ! तुम लुट्टका यह अकारण गर्व करना व्यर्थ है ॥२०॥ अरे नीच ! मैं आज तुम्हें जो दशा दिखाता हूँ उसका अनुभव कर । मैं वह रावण ही हूँ और तू वही भूमिगोचरी है ॥२१॥ तब लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? मैं सब तरहसे तुम्हें मारने वाला नारायण उत्पन्न हुआ हूँ ॥२२॥ तदनन्तर रावणने व्यङ्ग्य पूर्ण चेष्टा बनाते हुए कहा कि यदि इच्छा मात्रसे नारायण वन रहा है तो फिर इच्छा मात्रसे इन्द्रपना क्यों नहीं प्राप्त कर लेता ॥२३॥ पिताने तुम्हें घरसे निकाला जिससे दुखी होता हुआ वन वनमें भटकता रहा अब निर्लज्ज हो नारायण वनने चला है सो तेरा नारायणपना मैं खूब जानता हूँ ॥२४॥ अथवा तू नारायण रह अथवा जो कुछ तेरे मनमें हो सो वन जा परन्तु मैं लगे हाथ तेरे मनोरथको भङ्ग करता हूँ ॥२५॥ तू इस अलातचक्रसे कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्यों कि लुट्ट जन्तुओंको दुष्ट वस्तुसे भी महान् उत्सव होता है ॥२६॥ अथवा अधिक कहने से क्या ? मैं आज तुम्हें इन पापी विद्याधरोंके साथ चक्रके साथ और वाहनके साथ सीधा पाताल भेजता हूँ ॥२७॥ यह वचन सुन नूतन नारायण-लक्ष्मणने क्रोध बरा धुमाकर रावणको ओर चक्ररत्न फेंका ॥२८॥ उस समय वह चक्र वज्रको जन्म देने वाले मेघ समूहकी घोर गर्जनाके समान

हिरण्यकशिपुः क्षिप्तं हरिणेन तदायुधम् । निवारयितुमुद्युक्तः संरब्धो रावणः शरैः ॥३०॥
भूयश्चण्डेन दण्डेन जविना पविना पुनः । तथाऽपि डौकते चक्रं वक्रं पुण्यपरिच्छये ॥३१॥
चन्द्रहासं समाकृष्य ततोऽभ्यर्णन्वमागतम् । जघान गहनोऽसर्पिस्फुलिगांचितपुष्करम् ॥३२॥
स्थितस्याभिमुखस्यास्य राक्षसेन्द्रस्य शालिनः । तेन चक्रेण निर्भिन्नं वज्रसारमुरःस्थलम् ॥३३॥
उत्पातवातसन्नुन्ममहाञ्जनगिरिप्रभः । पपात रावणः क्षोण्यां पतिते पुण्यकर्मणि ॥३४॥
स्तेरिव पतिः सुप्तश्च्युतः स्वर्गादिवामरः । महींस्थितो रराजासौ संदृष्टदशनच्छ्रुतः ॥३५॥
स्वामिनं पतितं दृष्ट्वा सैन्यं सागरनिम्बनम् । शीर्णं वितानतां प्राप्तं पर्यस्तच्छत्रकेतुकम् ॥३६॥
उत्सारय रथं देहि मार्गमश्वमितो नय । प्राप्नोऽर्थं पृच्छतो हस्ती विमानं कुरु पार्ष्वतः ॥३७॥
पतितोऽयमहो नाथः कष्टं जातमनुत्तमम् । ह्यालापमलं भ्रान्तं बलं तत्रैव विह्वलम् ॥३८॥
अन्योन्यापूरणासंक्तान्महाभयविकम्पितान् । दृष्ट्वा निःशर्यानेताञ्जनान् पतितमस्तकान् ॥३९॥
किञ्चिन्धपतिवैदेहसमोरणसुतादयः । न भेतव्यं न भेतव्यमिति साधारमानयन् ॥४०॥
^३भमितोपरिवृत्तान्तपल्लवानां समन्ततः । सैन्यमाशवासितं तेषां वाक्यैः कर्णरसायनैः ॥४१॥

रुचिरानुत्तम

तथाविधां श्रियमनुभूय भूयसीं कृताद्भुतां जगति समुद्रवारिते ।

परिच्छये सति सुकृतस्य कर्मणः खलामिमां प्रकृतिमितो दशाननः ॥४२॥

भयंकर तथा प्रलयकालीन सूर्यके समान कान्तिका धारक था ॥२६॥ जिसतरह पूर्वमें, नारायण के द्वारा चलाये हुए चक्रको रोकनेके लिए हिरण्यकशिपु उद्यत हुआ था उसी प्रकार क्रोधसे भरा रावण वाणोंके द्वारा उस चक्रको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥३०॥ यद्यपि उसने तीक्ष्ण दण्ड और वेगशाली वज्रके द्वारा भी उसे रोकनेका प्रयत्न किया तथापि पुण्य क्षीण हो जानेसे वह कुटिल चक्र रुका नहीं किन्तु उसके विपरीत समीप ही आता गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणने चन्द्रहास खड्ग खींचकर समीप आये हुए चक्ररत्न पर प्रहार किया सो उसकी टक्करसे प्रचुर मात्रामें निकलने वाले तिलगोंसे आकाश व्याप्त हो गया ॥३२॥ तत्पश्चात् उस चक्ररत्नने सन्मुख खड़े हुए शोभाशाली रावणका वज्रके समान वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया ॥३३॥ जिससे पुण्य कर्म क्षीण होने पर प्रलय कालकी वायुसे प्रेरित विशाल अञ्जनगिरिके समान रावण पृथिवी पर गिर पड़ा ॥३४॥ ओंठोंको उशाने वाला रावण पृथिवी पर पड़ा ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो कामदेव ही सो रहा हो अथवा स्वर्गसे कोई देव ही आकर च्युत हुआ हो ॥३५॥ स्वामीको पड़ा देख समुद्रके समान शब्द करने वाली जीर्ण शीर्ण सेना छत्र तथा पताकाएँ फेंक चौड़ी हो गई अर्थात् भाग गई ॥३६॥ 'रथ हटाओ, मार्ग देओ, घोड़ा इधर ले जाओ, यह पीछेसे हाथी आ रहा है, विमानको बगलमें करो, अहो ! यह स्वामी गिर पड़ा है, बड़ा कष्ट हुआ' इस प्रकार वार्तालाप करती हुई वह सेना विह्वल हो भाग खड़ी हुई ॥३७-३८॥

तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरे पर पड़ रहे थे, जो महाभयसे कंपायमान थे, और जिनके मस्तक पृथिवी पर पड़ रहे थे ऐसे इन शरणहीन मनुष्योंको देख कर सुभीव भामण्डल तथा हनूमान् आदिने 'नहीं डरना चाहिए' 'नहीं डरना चाहिए' आदि शब्द कह कर सान्त्वना प्राप्त कराई ॥३६-४०॥ जिन्होंने सब ओर ऊपर वस्त्रका छोर घुमाया था ऐसे उन सुभीव आदि महा पुरुषोंके, कानांके लिए रसायनके समान मधुर वचनोंसे सेना सान्त्वनाको प्राप्त हुई ॥४१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! समुद्रान्त पृथिवीमें अनेक आश्चर्यके कार्य करने वाली उस प्रकारकी

१. हिरण्यकशिपुक्षिप्तं म० । २. शक्तान् म०, क० । ३. भ्रमितोपरिवृत्तान्तःपल्लवानां म०, व० ।

धिगीदशीं श्रियमतिचञ्चलात्मिकां विवर्जितां सुकृतसमागमाशया ।
इति स्फुटं मनसि निधाय भो जनास्तपोधना भवत रवेर्जितौजसः ॥४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे दशप्रीववधाभिधानं नाम
षट्सप्ततितमं पर्व ॥७६॥



लक्ष्मीका उपभोग कर रावण, पुण्य कर्मका क्षय होने पर इस दुर्दशाको प्राप्त हुआ ॥४२॥ इसलिए अत्यन्त चञ्चल एवं पुण्यप्राप्तिकी आशासे रहित इस लक्ष्मीको धिक्कार है। हे भव्य जनो! ऐसा मनमें विचार कर सूर्यके तेजको जीतने वाले तपोधन होओ—तपके धारक बनो ॥४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके
वधका कथन करने वाला छिहंशरवां पर्व
समाप्त हुआ ॥७६॥



सप्तसप्ततितमं पर्व

सोदरं पतितं दृष्ट्वा महादुःखसमन्वितः । क्षुरिकायां करं चक्रे स्ववधाय विभीषणः ॥१॥
 वारयन्ती वधं तस्य निश्चेष्टीकृतविग्रहा । मूर्च्छां कालं कियन्तं चिर्चकारोपकृतिं पराम् ॥२॥
 लब्धसंज्ञो जिघांसुः स्वं तायं दुःसहमुद्वहन् । रामेण विधुतः^१ कृच्छ्रादुत्तीर्य निजतो रथात् ॥३॥
 त्यक्त्वास्त्रकवचो भूम्यां पुनर्मूर्च्छांमुपागतः । प्रतिबुद्धः पुनश्चक्रे विलापं करुणाकरम् ॥४॥
 हा भ्रातः करुणोदार शूर संश्रितवत्सल । मनोहर कथं प्राप्तोऽस्यवस्थामिति पापिकाम् ॥५॥
 किं तन्मद्बचनं नाथ गद्यमानं हितं परम् । न मानितं यतो युद्धे वीक्षे^२ त्वां चकताडितम् ॥६॥
 कष्टं भूमितले देव विद्याधरमहेश्वर । कथं सुप्तोऽसि लङ्केश भोगदुर्ललितारमकः ॥७॥
 उत्तिष्ठ देहि मे वाक्यं चारुवाक्य गुणाकर । साधारण्य कृपाधार मग्नं मां शोकसागरे ॥८॥
 एतस्मिन्नन्तरे^३ ज्ञातदशानननिपातनम् । क्षुब्धमन्तःपुरं शोकमहाकल्लोलसङ्कुलम् ॥९॥
 सर्वाश्च वनिता वाष्पधारासिक्तमहीतलाः । रणक्षोणीं समाजगमुर्मुहुःप्रखलितक्रमाः ॥१०॥
 तं चूडामणिसङ्घातं क्षितेरालोक्य सुन्दरम् । निश्चेतनं पतिं नार्यो निपेतुरतिवेगतः ॥११॥
 रम्भा चन्द्रानना चन्द्रमण्डला प्रवरोर्वशी । मन्दोदरी महादेवी सुन्दरी कमलानना ॥१२॥
 रूपिणी रुक्मिणी शीला रत्नमाला तनूदरी । श्रीकान्ता श्रीमती भद्रा कनकाभा मृगावती ॥१३॥
 श्रीमाला मानवी लक्ष्मीरानन्दानङ्गसुन्दरी । वसुन्धरा तडिन्माला पद्मा पद्मावती सुखा ॥१४॥

अथानन्तर भाईको पड़ा देख महादुःखसे युक्त विभीषणने अपना वध करनेके लिए छुरीपर हाथ रक्खा ॥१॥ सो उसके इस वधको रोकती तथा शरीरको निश्चेष्ट करती मूर्च्छाने कुछ काल तक उसका बड़ा उपकार किया ॥२॥ जब सचेत हुआ तब पुनः आत्मघातकी इच्छा करने लगा सो राम ने अपने रथसे उतर कर उसे बड़ी कठिनाईसे पकड़ कर रक्खा ॥३॥ जिसने अस्त्र और कवच छोड़ दिये थे ऐसा विभीषण पुनः मूर्च्छित हो पृथिवी पर पड़ा रहा । तत्पश्चात् जब पुनः सचेत हुआ तब करुणा उत्पन्न करने वाला विलाप करने लगा ॥४॥ वह कह रहा था कि हे भाई ! हे उदार करुणाके धारी । हे शूर वीर ! हे आश्रितजनवत्सल ! हे मनोहर ! तुम इस पाप पूर्ण दशाको कैसे प्राप्त हो गये ? ॥५॥ हे नाथ । क्या उस समय तुमने मेरे कहे हुए हितकारी वचन नहीं माने इसीलिए युद्धमें तुम्हें चक्र से ताड़ित देख रहा हूँ ॥६॥ हे देव ! हे विद्याधरों के अधिपति ! हे लंकाके स्वामी ! तुम तो भोगोंसे लालित हुए थे फिर आज पृथिवीतल पर क्यों सो रहे हो ? ॥७॥ हे सुन्दर वचन बोलने वाले ! हे गुणोंके खानि ! उठो मुझे वचन देओ-मुझसे वार्तालाप करो । हे कृपाके आधार ! शोक रूपी सागरमें डूबे हुए मुझे सान्त्वना देओ ॥८॥

तदनन्तर इसी बीचमें जिसे रावणके गिरनेका समाचार विदित हो गया था ऐसा अन्तः-पर शोककी बड़ी बड़ी लहरोंसे व्याप्त होता हुआ क्षुभित हो उठा ॥९॥ जिन्होंने अश्रुधारासे पृथिवी तलको सींचा था तथा जिनके पैर बारबार लड़खड़ा रहे थे ऐसी समस्त स्त्रियां रणभूमि में आ गई ॥१०॥ और पृथिवीके चूडामणिके समान सुन्दर पतिकी निश्चेतन देख अत्यन्त वेगसे भूमिपर गिर पड़ीं ॥११॥ रम्भा, चन्द्रानना, चन्द्रमण्डला, प्रवरा, उर्वशी, मन्दोदरी, महादेवी, सुन्दरी, कमलानना, रूपिणी, रुक्मिणी, शीला, रत्नमाला, तनूदरी, श्रीकान्ता, श्रीमती, भद्रा, कनकाभा, मृगावती, श्रीमाला, मानवी, लक्ष्मी, आनन्दा, अनङ्गसुन्दरी, वसुन्धरा, तडिन्माला,

१. कियन्तं च चकारोप- म० । २. वीक्षे ज० । ३. ज्ञातं दशानन- म० । ४. मण्डलाञ्ज म० ।

देवी पद्मावती कान्तिः प्रीतिः सन्ध्यावली शुभा । प्रभावती मनोवेगा रतिकान्ता मनोवती ॥१५॥
 अष्टादशैवमादीनां सहस्राणि सुयोषिताम् । परिवार्य पतिं चक्रुराकन्दं सुमहाशुचा ॥१६॥
 काश्चिन्मोहं गताः सत्यः सिक्ताश्चन्दनवारिणा । समुत्प्लुतमृणालानां पद्मिनीनां श्रियं दधुः ॥१७॥
 आश्लिष्टदयिताः काश्चिद्गाढं मूर्च्छामुपागताः । अञ्जनादिलमासक्तसन्ध्यारेखाश्रुतिं दधुः ॥१८॥
 निर्व्यूढमूर्च्छनाः काश्चिदुरस्ताडनचञ्चलाः । घनाघनसमापङ्कितदिन्मालाकृतिं श्रिताः ॥१९॥
 विधाय वदनाम्भोजं काचिदङ्गे सुविह्वला । वक्षःस्थलपरामर्शकारिणी मूर्च्छिता मुहुः ॥२०॥
 हा हा नाथ गतः कासि त्यक्त्वा मामतिक्रान्तराम् । कथं नाऽपेक्षसे दुःखनिमग्नं जनमानसम् ॥२१॥
 स त्वं सत्त्वयुतः कान्तिमण्डनः परमद्युतिः । विभूत्या शकसङ्काशो मानो भरतभूपतिः ॥२२॥
 प्रधानपुरुषो भूत्वा महाराज मनोरमः । किमर्थं स्वपिपि क्षीण्यां विद्याधरमहेश्वरः ॥२३॥
 उत्तिष्ठ कान्त कारुण्य-पर स्वजनवत्सल । अमृतप्रतिमं वाक्यं यच्छैकमपि सुन्दरम् ॥२४॥
 अपराधविसुक्तानामस्माकं सक्तचेतसाम् । प्राणेश्वर किमित्येवं स्थितस्त्वं कोपसङ्गतः ॥२५॥
 परिहासकथासक्तं दन्तज्योत्स्नामनोहरम् । वदनेन्दुमिमं नाथ सकृद्धारय पूर्ववत् ॥२६॥
 वराङ्गनापरिक्रीडास्थानेस्मिञ्छपि सुन्दरे । वक्षःस्थले कथं न्यस्तं पदं ते चक्रधारया ॥२७॥
 बन्धूकपुष्पसङ्काशस्तवायं दशनच्छदः । नार्मोत्तरप्रदानाय कथं स्फुरति नाधुना ॥२८॥
 प्रसीद न चिरं कोपः सेवितो जातुचिस्त्रया । प्रत्युतास्माकमेव त्वमकरोः सान्त्वनं पुरा ॥२९॥

पद्मा, पद्मावती, सुखा, देवी, पद्मावती, कान्ति, प्रीति, सन्ध्यावली, शुभा, प्रभावती, मनोवेगा, रतिकान्ता और मनोवती, आदि अठारह हजार स्त्रियों पतिको घेर कर महाशोक से रुदन करने लगीं ॥१२-१६॥ जिनके ऊपर चन्दनका जल सींचा गया था ऐसी मूर्च्छाको प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियाँ, जिनके मृणाल उखाड़ लिये गये हैं ऐसी कमलिनियोंकी शोभा धारण कर रही थीं ॥१७॥ पतिका आलिङ्गन कर गाढ़ मूर्च्छाको प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियाँ अञ्जवगिरिसे संसक्त सन्ध्याकी कान्तिको धारण कर रही थीं ॥१८॥ जिनकी मूर्च्छा दूर हो गई थी तथा जो छातीके पीटनेमें चञ्चल थीं ऐसी कितनी ही स्त्रियाँ भेघ कौंधती हुई विद्युन्मालाकी आकृतिको धारण कर रही थीं ॥१९॥ कोई एक स्त्री पतिका मुखकमल अपनी गोदमें रख अत्यन्त विह्वल हो रही थी तथा वक्षःस्थलका स्पर्श करती हुई बारबार मूर्च्छित हो रही थी ॥२०॥

वे कह रही थीं कि हाय हाय हे नाथ ! तुम मुझ अतिशय भीरुको छोड़ कहीं चले गये हो ? दुःखमें डूबे हुए अपने लोगोंकी ओर क्यों नहीं देखते हो ? ॥२१॥ हे महाराज ! तुम तो धैर्य गुणसे सहित हो, कान्ति रूपी आभूषणसे विभूषित हो, परम कीर्तिके धारक हो, विभूतिमें इन्द्रके समान हो, मानी हो, भरत क्षेत्रके स्वामी हो, प्रधान पुरुष हो, मनको रमण करने वाले हो, और विद्याधरोंके राजा हो फिर इसतरह पृथिवी पर क्यों सो रहे हो ? ॥२२-२३॥ हे कान्त ! हे दयातत्पर, हे स्वजनवत्सल ! उठो एक बार तो अमृत तुल्य सुन्दर वचन देओ ॥२४॥ हे प्राणनाथ ! हम लोग अपराधसे रहित हैं तथा हम लोगोंका चित्त एक आप ही में आसक्त है फिर क्यों इसतरह कोपको प्राप्त हुए हो ? ॥२५॥ हे नाथ ! परिहासकी कथामें तत्पर और दांतोंकी कान्ति रूपी चांदनीसे मनोहर इस मुख रूपी चन्द्रमाको एक बार तो पहलेके समान धारण करो ॥२६॥ तुम्हारा यह सुन्दर वक्षःस्थल उत्तम स्त्रियोंका क्रीडा स्थल है फिर भी इसपर चक्र धारणने कैसे स्थान जमा लिया ? ॥२७॥ हे नाथ ! दुपहरियाके फूलके समान लाल लाल यह तुम्हारा ओंठ क्रीडा पूर्ण उत्तर देनेके लिए इस समय क्यों नहीं फड़क रहा है ? ॥२८॥ प्रसन्न होओ, तुमने कभी इतना लम्बा

उदपाद्येष यस्वत्तः कल्पलोकान् परिच्युतः । बन्धने मेघवाहोऽसौ दुःखमास्ते तथेन्द्रजित् ॥३०॥
 विधाय सुकृतज्ञेन वीरेण गुणशालिना । पद्माभेन सह प्रीतिं भ्रातृपुत्री विमोचय ॥३१॥
 जीवितेश समुत्तिष्ठ प्रयच्छ वचनं प्रियम् । सुचिरं देव किं शेषे विधत्स्व नृपतेः क्रियाम् ॥३२॥
 विरहाग्निप्रदीप्तानि भृशं सुन्दरविभ्रम । कान्त विध्यापयाङ्गानि प्रसीद प्रणयिप्रिय ॥३३॥
 अवस्थामेतकां प्राप्समिदं वदनपङ्कजम् । प्रियस्य हृदयालोक्य दीर्यते शतभ्रा न किम् ॥३४॥
 वज्रसारमिदं नूनं हृदयं दुःखभाजनम् । ज्ञान्वापि यत्तवावस्थामिमां तिष्ठति निर्दयम् ॥३५॥
 विधे किं कृतमस्माभिर्भवतः सुन्दरेतरम् । विहितं येन कर्मैदं स्वया निर्दयदुष्करम् ॥३६॥
 समालिङ्गनमात्रेण दूरं निर्भूय मानकम् । परस्परार्पणस्वादु नाथ यन्मधुसेवितम् ॥३७॥
 यच्चान्यत्प्रमदागोत्रग्रहणस्खलिते सति । कार्ज्यागुणेन नातोऽसि बहुशो बन्धनं प्रिय ॥३८॥
 वतसेन्द्रीवराघातात् कोपप्रस्फुरिताधरम् । प्रापितोऽसि प्रभो यच्च किञ्जल्कोच्छ्रुसितालिकम् ॥३९॥
 प्रेमकोपविनाशाय यच्चातिप्रियवादिना । कृतं पदार्पणं मूर्ध्नि हृदयद्रवकारणम् ॥४०॥
 यानि चात्यन्तरम्याणि रतानि परमेश्वर । कान्त चाटुसमेतानि सेवितानि यथेप्सितम् ॥४१॥
 परमानन्दकारीणि तदेतानि मनोहर । अधुना स्मर्यमाणानि दहन्ति हृदये भृशम् ॥४२॥
 कुरु प्रसादमुत्तिष्ठ पादावेथा नमामि ते । न हि प्रियजने कोपः सुचिरं नाथ शोभते ॥४३॥
 एवं रावणपत्नीनां श्रुत्वापि परिदेवनम्^१ । कस्य न प्राणिनः प्राप्तं हृदयं द्रवतामलम्^३ ॥४४॥

क्रोध नहीं किया अपितु हम लोगोंको तुम पहले सान्त्वना देते रहे हो ॥२६॥ जिसने स्वर्ग लोकसे च्युत हो कर आपसे जन्म ग्रहण किया था ऐसा वह मेघवाहन और इन्द्रजित् शत्रुके बन्धनमें दुःख भोग रहा है ॥३०॥ सो सुकृतको जानने वाले गुणशाली वीर रामके साथ प्रीति कर अपने भाई कुम्भकर्ण तथा पुत्रोंको बन्धनसे छुड़ाओ ॥३१॥ हे प्राणनाथ ! उठो, प्रिय वचन प्रदान करो । हे देव ! चिरकाल तक क्यों सो रहे हो ? उठो राजकार्य करो ॥३२॥ हे सुन्दर चेष्टाओंके धारक ! हे कान्त ! हे प्रेमियोंसे प्रेम करने वाले ! प्रसन्न होओ और विरह रूपी अग्निसे जलते हुए हमारे अंगोंको शान्त करो ॥३३॥ रे हृदय ! इस अवस्थाको प्राप्त हुए पतिके मुख कमलको देखकर तू सौ दूक क्यों नहीं हो जाता है ? ॥३४॥ जान पड़ता है कि हमारा यह दुःखका भाजन हृदय वज्रका बना हुआ है इसीलिए तो तुम्हारी इस अवस्थाको जानकर भी निर्दय हुआ स्थित है ॥३५॥ हे विधातः ! हम लोगोंने तुम्हारा कौन सा अशोभनीक कार्य किया था जिससे तुमने यह ऐसा कार्य किया जो निर्दय मनुष्योंके लिए भी दुष्कर है—कठिन है ॥३६॥ हे नाथ ! आलिङ्गन-मात्रसे मानको दूरकर परस्पर—एक दूसरेके आदान-प्रदानसे मनोहर जो मधुका पान किया था ॥३७॥ हे प्रिय ! अन्य स्त्रीका नाम लेनेरूप अपराध होने पर जो मैंने तुम्हें अनेकों बार मेखला-सूत्रसे बन्धनमें डाला था ॥३८॥ हे प्रभो ! मैंने क्रोधसे ओंठको कम्पित करते हुए जो उस समय तुम्हें कर्णाभरणके नील कमलसे ताड़ित किया था और उस कमलको केशर तुम्हारे ललाटमें जा लगी थी ॥३९॥ प्रणय कोपको नष्ट करनेके लिए मधुर वचन कहते हुए जो तुमने हमारे पैर उठा कर अपने मस्तक पर रख लिये थे और उससे हमारा हृदय तत्काल द्रवीभूत हो गया था, और हे परमेश्वर ! हे कान्त ! मधुर वचनोंसे सहित अत्यन्त रमणीय जो रत इच्छानुसार आपके साथ सेवन किये गये थे । हे मनोहर ! परम आनन्दको करने वाले वे सब कार्य इस समय एक-एककर स्मृति-पथमें आते हुए हृदयमें तीव्र दाह उत्पन्न कर रहे हैं ॥४०-४२॥ हे नाथ ! प्रसन्न होओ, उठो, मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करती हूँ । क्योंकि प्रियजनों पर चिरकालतक रहने वाला क्रोध शोभा नहीं देता ॥४३॥ गीतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस तरह रावणकी स्त्रियोंका विलाप सुनकर किस प्राणीका हृदय अत्यन्त द्रवताको प्राप्त नहीं हुआ था ? ॥४४॥

१. प्रियम् म० । २. विलापम् । ३. द्रवताम् + अलम् ।

१०-३

अथ पद्मामसौमित्रौ साकं खेचरपुङ्गवैः । स्नेहगर्भं परिष्वज्य वाष्पापूरितलोचनौ ॥४५॥
 उच्यतेः करुणोद्युक्तौ परिसान्त्वनकोविदौ । विभीषणमिदं वाक्यं लोकवृत्तान्तपण्डितौ ॥४६॥
 राजस्रलं रुदित्वैवं विषादमधुना त्यज । जानास्येव ननु व्यक्तं कर्मणामिति चेष्टितम् ॥४७॥
 पूर्वकर्मानुभावेन प्रमादं भजतां नृणाम् । प्राप्तव्यं जायतेऽवश्यं तत्र शोकस्य कः क्रमः ॥४८॥
 प्रवर्त्तते यदाऽकार्यं जनो ननु तदैव सः । मृतश्चिरंमृते तस्मिन् किं शोकः क्रियतेऽधुना ॥४९॥
 यः सदा परमप्रीत्या हिताय जगतो रतः । समाहितमतिर्वाढं प्रजाकर्मणि पण्डितः ॥५०॥
 सर्वशास्त्रार्थसम्बोधज्ञाकृतात्मापि रावणः । मोहेन बलिना नीतोऽवस्थामेतां सुदारुणाम् ॥५१॥
 असौ विनाशमेतेन प्रकारेणानुभूतवान् । नूनं विनाशकाले हि नृणां ध्वान्तायते मतिः ॥५२॥
 रामीयवचनस्यान्ते प्रभामण्डलपण्डितः । जगाद वचनं विभ्रन्माधुर्यं परमोत्कटम् ॥५३॥
 विभीषण रणे भीमे युध्यमानो महामनाः । मृधुना वीरयोग्येन^१ रावणः स्वस्थितिं श्रितः ॥५४॥
 किं तस्य पतितं यस्य मानो^२ न पतितः प्रभोः । नन्वत्यन्तमसौ धन्यो योऽमृतमर्त्यैर्वमुद्धत ॥५५॥
 महासत्त्वस्य वीरस्य शोक्यं तस्य न विद्यते । शत्रुन्दमसमा लोके शोक्याः पार्थिवराजज्ञाः ॥५६॥
 लक्ष्मीहरिध्वजोद्भूतो बभूवाक्षपुरे नृपः । अरिन्दम इति ख्यातः पुरन्दरसमश्रिया ॥५७॥
 स जित्वा शत्रुसङ्घातं नानादेशान्यवस्थितम् । प्रत्यागच्छन्निजं स्थानं देवीदर्शनकांक्षया ॥५८॥

अथानन्तर जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, जो करुणा प्रकट करनेमें उद्यत थे, सान्त्वना देनेमें निपुण थे, तथा लोक व्यवहारके पण्डित थे ऐसे राम-लक्ष्मण श्रेष्ठ विद्याधरोंके साथ विभीषणका स्नेहपूर्ण आलिङ्गन कर यह वचन बोले ॥४५-४६॥ किं हे राजन् ! इस तरह रोना व्यर्थ है, अब विषाद छोड़ो, आप जानते हैं कि यह कर्मों की चेष्टा है ॥४७॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे प्रमाद करनेवाले मनुष्योंकी जो वस्तु प्राप्त होने योग्य है वह अवश्य ही प्राप्त होती है इसमें शोकका क्या अवसर है ? ॥४८॥ मनुष्य जब अकार्यमें प्रवृत्त होता है वह तभी मर जाता है फिर रावण तो चिरकाल बाद मरा है अतः अब शोक क्यों किया जाता है ? ॥४९॥ जो सदा परम प्रीतिपूर्वक जगत्का हित करनेमें तत्पर रहता था, जिसकी बुद्धि सदा सावधान रूप रहती थी, जो प्रजाके कार्यमें पण्डित था, और समस्त शास्त्रों के अर्थ ज्ञानसे जिसकी आत्मा धुली हुई थी ऐसा रावण बलवान् मोहके द्वारा इस अवस्था को प्राप्त हुआ है ॥५०-५१॥ उस रावणने इस अपराधसे विनाशका अनुभव किया है सो ठीक ही है क्योंकि विनाशके समय मनुष्योंकी बुद्धि अन्धकारके समान हो जाती है ॥५२॥

तदनन्तर रामके कहनेके बाद अतिशय चतुर भामण्डलने परमोत्कट माधुर्यको धारण करनेवाले निम्नांकित वचन कहे ॥५३॥ उसने कहा कि हे विभीषण ! भयंकर रणमें युद्ध करता हुआ महामनस्वी रावण वीरोंके योग्य मृत्युसे मर कर आत्मस्थिति अथवा ऋश्वरस्थितिको प्राप्त हुआ है ॥५४॥ जिस प्रभुका मान नष्ट नहीं हुआ उसका क्या नष्ट हुआ ? अर्थात् कुल्ल नहीं । यथार्थमें रावण अत्यन्त धन्य है जिसने शत्रुके सम्मुख प्राण छोड़े ॥५५॥ वह तो महा धैर्यशाली वीर रहा अतः उसके विषयमें शोक करने योग्य बात ही नहीं है । लोक में जो क्षत्रिय अरिन्दमके समान हैं वे ही शोक करने योग्य हैं ॥५६॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि अक्षपुर नामा नगरमें लक्ष्मी और हरिध्वजसे उत्पन्न हुआ अरिन्दम नामका एक राजा था जो इन्द्रके समान सम्पत्तिसे प्रसिद्ध था ॥५७॥ वह एक बार नाना देशोंमें स्थित शत्रु समूहको जीत कर अपनी स्त्रीको देखने

१. चिरं मृते म० । २. वीरयोग्येन म० । ३. मनः व० । ४. प्रति + अरि + अमुञ्चत ।

५. ध्वजो दूतः म० ।

ऋ स्वस्मिन् स्थितिः स्वस्थितिः ताम् । अथवा स्वः स्वर्गं स्थितिः स्वस्थितिः ताम् 'स्वर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' इत्यनेन विकल्पेन विसर्गलोपात् । 'रणे निहताः स्वर्गं यान्ति' इति प्रसिद्धिः ।

परमोऽकण्ठया युक्तः केतुतोरणमण्डितम् । पुरं विवेश सोऽकस्माद्भवैर्मानसगर्वरैः ॥५६॥
 स्वं गृहं संस्कृतं दृष्ट्वा भूषितां च स्वसुन्दरीन् । अष्टच्छद्विदितोऽहं ते कथमेतीत्यवेदितम् ॥६०॥
 सा जगौ मुनिमुख्येन नाथ कीर्तिधरेण मे । अवधिज्ञानिना शिष्टं पृष्टेनैतेन पारणाम् ॥६१॥
 अवोचदीर्घ्या युक्तो गत्वाऽसौ मुनिपुङ्गवम् । यदि त्वं वेत्सि तच्चिन्तां मदीया मम बोधय ॥६२॥
 मुनिना गदितं चित्ते त्वयेदं विनिवेशितम् । यथा किल कथं मृत्युः कदा वा मे भविष्यति ॥६३॥
 स त्वमस्माद्दिनादङ्घ्रि सप्तमे वज्रताडितः । मृत्वा भविष्यसि स्वस्मिन् कीटो विड्भवने महान् ॥६४॥
 ततः प्रीतिकरामिष्यमागत्य तनयं जगौ । त्वयाऽहं विड्गृहे जातो हन्तव्यः स्थूलकीटकः ॥६५॥
 तथाभूतं स दृष्ट्वा तं तनयं हन्तुमुद्यतम् । विड्मध्यमविशददूरं मृत्युभीतिपरिद्रुतः ॥६६॥
 मुनिं प्रीतिकरौ गत्वा पप्रच्छ भगवन् कुतः । संदिश्य मायमाणोऽसौ कीटो दूरं पलायते ॥६७॥
 उवाच वचनं साधुर्विवादाभिह मा क्रुधाः । योनिं यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति सः ॥६८॥
 आत्मनस्तत्कुरु श्रेयो मुच्यसे येन क्लिबिवात् । ननु स्वकृतसम्प्राप्तिप्रवणाः सर्वदेहिनः ॥६९॥
 एवं भवस्थितिं ज्ञात्वा परमासुखकारिणीम् । प्रीतिकरौ महायोगी बभूव विगतस्पृहः ॥७०॥

शार्दूलचिकीडितम्

एवं ते विविधा विभीषण न किं ज्ञाता जगत्संस्थिति-

यंच्छूरं कृतनिश्चयं विधिवशात्प्रायणेनाहतम् ।

सङ्ग्रामेऽभिमुखं प्रधानपुरुषं शोचस्यहो रावणं

स्वार्थे सम्प्रति यच्च चित्तममुना शोकेन किं कारणम् ॥७१॥

की इच्छासे अपने घरकी ओर लौट रहा था ॥५८॥ तीव्र उत्कंठासे युक्त होनेके कारण उसने मनके समान शीघ्रगामी घोड़ोंसे अकस्मात् ही पताकाओं और तोरणोंसे अलंकृत नगरमें प्रवेश किया ॥५९॥ अपने घरको सजा हुआ तथा स्त्रीको आभूषणादिसे अलंकृत देख उसने पूछा कि बिना कहे तुमने कैसे जान लिया कि ये आ रहे हैं ॥६०॥ स्त्रीने कहा कि हे नाथ ! आज मुनियोंमें मुख्य अवधिज्ञानी कीर्तिधर मुनि पारणाके लिए आये थे मैंने उनसे आपके आनेका समय पूछा था तो उन्होंने कहा कि राजा आज ही अकस्मात् आवेंगे ॥६१॥ राजा अरिंदमको मुनिके भविष्य-ज्ञान पर कुछ ईर्ष्या हुई अतः वह उनके पास जाकर बोला कि यदि तुम जानते हो तो मेरे मन की बात बताओ ॥६२॥ मुनिने कहा कि तुमने मनमें यह बात रख छोड़ी है कि मेरी कब और किस प्रकार मृत्यु होगी ? ॥६३॥ सो तुम आजसे सातवें दिन वज्रपातसे मर कर अपने विष्णा-गृहमें महान् कीड़ा होओगे ॥६४॥ वहाँसे आकर राजा अरिंदमने अपने पुत्र प्रीतिकरसे कहा कि मैं विष्णागृहमें एक बड़ा कीड़ा होऊँगा सो तुम मुझे मार डालना ॥६५॥

तदनन्तर जब पुत्र विष्णागृहमें स्थूल कीड़ाको देखकर मारनेके लिए उद्यत हुआ तब वह कीड़ा मृत्युके भयसे भागकर बहुत दूर विष्णाके भीतर घुस गया ॥६६॥ प्रीतिकरने मुनिराजके पास जाकर पूछा कि हे भगवन् ! कहे अनुसार जब मैं उस कीड़ेको मारता हूँ तब वह दूर क्यों भाग जाता है ? ॥६७॥ मुनिराजने कहा कि इस विषयमें विवाद मत करो ! यह प्राणी जिस योनिमें जाता है उसीमें प्रीतिको प्राप्त हो जाता है ॥६८॥ इसीलिए आत्माका कल्याण करनेवाला वह कार्य करो जिससे कि आत्मा पापसे छूट जाय । यह निश्चित है कि सब प्राणी अपने द्वारा किये हुए कर्मका फल प्राप्त करनेमें ही लीन हैं ॥६९॥ इस प्रकार अत्यन्त दुःखको उत्पन्न करनेवाली संसार दशाको जानकर प्रीतिकर निःस्पृह हो महामुनि हो गया ॥७०॥ इस प्रकार भामण्डल विभीषणसे कहता है कि हे विभीषण ! क्या तुम्हें यह संसारकी विविध दशा ज्ञात नहीं है जो

श्रुत्येमां प्रतिबोधदानकुशलां चित्रस्वभावान्वितां
 सत्प्रीतिङ्करसंयतस्य चरितप्रोत्कीर्त्तनीयां कथाम् ।
 सर्वैः खेचरपुङ्गवैरभिहिते साधूदितं साधिवति
 अष्टः शुक्तिमिराद्विभीषणरविर्लोकोत्तराचारवित् ॥७२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मायने प्रीतिङ्करोपाख्यानं नाम सप्तसप्ततितमं पर्व ॥७७॥

शूरवीर, दृढ़ निश्चयी एवं कर्मोदयके कारण युद्धमें नारायणके द्वारा सम्मुख मारे हुए प्रधान पुरुष रावणके प्रति शोक कर रहा है । अब तो अपने कार्यमें चित्त देओ इस शोकसे क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार प्रतिबोधके देनेमें कुशल, नाना स्वभावसे सहित, एवं प्रीतिङ्कर मुनिराजके चरितको निरूपण करनेवाली कथा सुनकर सब विद्याधर राजाओंने ठीक ठीक यह शब्द कहे और लोकोत्तर—सर्वश्रेष्ठ आचारको जाननेवाला विभीषण रूपी सूर्य शोकरूपी अन्धकारसे छूट गया अर्थात् विभीषणका शोक दूर हो गया ॥७१-७२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण या पद्मायन नामक ग्रन्थमें प्रीतिङ्करका उपाख्यान करनेवाला सप्तहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७७॥

अष्टसप्ततितमं पर्व

ततो हलधरोऽवोचत् कर्त्तव्यं किमतः परम् । मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ॥१॥
 परलोकं गतस्यातो लङ्केशस्योत्तमं वपुः । महानरस्य संस्कारं प्रापयामः सुखैधितम् ॥२॥
 तत्राभिनन्दिते वाक्ये विभीषणसमन्वितौ । बलनारायणौ साकं शेषैस्तां ककुभं श्रितौ ॥३॥
 यत्र मन्दोदरी शोकविह्वला कुररीसमम् । योषित्सहस्रमध्यस्था विरोति करुणावहम् ॥४॥
 भवतीर्य महानागात् सखरं बलकेशवी । मन्दोदरीमुपायाती साकं खेचरपुङ्गवैः ॥५॥
 दृष्ट्वा तौ सुतरां नार्यो हृद्दुर्मुक्तकण्ठकम् । विरुणरत्नवलया वसुधापांसुभूसराः ॥६॥
 मन्दोदर्या समं सर्वमङ्गनानिवहं बलः । वाग्भिश्चित्राभिरानिन्ये समाश्रामं विचक्षणः ॥७॥
 कर्पूरागुरुगोशीर्षचन्द्रनाद्रिभरतमैः । संस्कार्यं रावणं याताः सर्वे पद्मसरो महत् ॥८॥
 उपविश्य सरस्तारे पद्मेनोक्तं सुचेतसा । कुम्भादयो विमुच्यन्तां सामन्तैः सहिता इति ॥९॥
 खेचरेशैस्ततः कैश्चिदुक्तं ते क्रूरमानसाः । हन्यन्तां वैरिणो यद्वन्त्रियन्तां बन्धने स्वयम् ॥१०॥
 बलदेवो जगौ भूयः क्षात्रं नेदं विचेष्टितम् । प्रसिद्धा वा न विज्ञाता भवद्भिः किमिथं स्थितिः ॥११॥
 सुसबद्धनतत्रस्तदन्तदृष्टादयो भटाः । न हन्तव्या इति क्षात्रो धर्मो जगति राजते ॥१२॥
 एवमस्त्विति सन्नद्धास्तानानेतुं महाभटाः । नानाऽऽयुधधरा जग्मुः स्याम्यादेशपरायणाः ॥१३॥
 इन्द्रजित्कुम्भकर्णश्च मारीचो वनवाहनः । तथा मयमहादैत्यप्रमुखाः खेचरोत्तमाः ॥१४॥
 पुरिता निगडैः स्थूलैरमी खणखणायितैः । प्रमादरहितैः शूरैरानीयन्ते समाहितैः ॥१५॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि अब क्या करना चाहिए ? क्योंकि विद्वानोंके वैर तो मरण पर्यन्त ही होते हैं ॥१॥ अच्छा हो कि हम लोग परलोकको प्राप्त हुए महामानव लङ्केश्वरको सुखसे बढ़ाये हुए उत्तम शरीरका दाह संस्कार करावें ॥२॥ रामके उक्त वचनकी सबने प्रशंसा की । तब विभीषण सहित राम लक्ष्मण अन्य सब विद्याधर राजाओंके साथ उस दिशामें पहुँचे जहाँ हजारों स्त्रियोंके बीच बैठी मन्दोदरी शोकसे विह्वल हो कुररीके समान करुण विलाप कर रही थी ॥३-४॥ राम और लक्ष्मण महागजसे उतर कर प्रमुख विद्याधरोंके साथ मन्दोदरीके पास गये ॥५॥ जिन्होंने रत्नोंकी चूड़ियाँ तोड़कर फेंक दी थीं तथा जो पृथिवीकी धूलिसे धूसर शरीर हो रही थीं ऐसी सब स्त्रियाँ राम लक्ष्मणको देख गला फाड़ फाड़कर अत्यधिक रोने लगीं ॥६॥ बुद्धिमान् रामने मन्दोदरीके साथसाथ समस्त स्त्रियोंके समूहको नाना प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना प्राप्त कराई ॥७॥ तदनन्तर कपूर, अगुरु, गोशीर्ष और चन्द्रन आदि उत्तम पदार्थोंसे रावणका संस्कार कर सब पद्म नामक महासरोवर पर गये ॥८॥ उत्तम चित्तके धारक रामने सरोवरके तीरपर बैठकर कहा कि सब सामन्तोंके साथ कुम्भकर्णादि छोड़ दिये जावें ॥९॥ यह सुन कुञ्ज विद्याधर राजाओंने कहा कि वे बड़े क्रूर हृदय हैं अतः उन्हें शत्रुओंके समान मारा जाय अथवा वे स्वयं ही बन्धनमें पड़े पड़े मर जावें ॥१०॥ तब रामने कहा कि यह क्षत्रियोंकी चेष्टा नहीं । क्या आप लोग क्षत्रियोंकी इस प्रसिद्ध नीतिको नहीं जानते कि सोते हुए, बन्धनमें बँधे हुए, नस्त्रीभूत, भयभीत तथा दाँतोंमें तृण दबाये हुए आदि योधा मारने योग्य नहीं हैं । यह क्षत्रियोंका धर्म जगत्में सर्वत्र सुशोभित है ॥११-१२॥ तब 'एवमस्तु' कहकर स्वामीकी आज्ञा पाळन करनेमें तत्पर, नाना प्रकारके शस्त्रोंके धारक महायोद्धा कवचादिसे युक्त हो उन्हें लानेके लिये गये ॥१३॥

तदनन्तर इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण, मारीच, मेघवाहन तथा मय महादैत्यको आदि लेकर

विलोक्यानीयमानांस्तान्दिङ्मत्तङ्गजसन्निभान् । जजहपुः कपयः स्वैरं संहतिस्थाः परस्परम् ॥१६॥
 प्रउलन्तीं चित्तां वीक्ष्य रावणीयां रुषं यदि । प्रयातीन्द्रजितो जातु कुम्भकर्णनृपोऽपि वा ॥१७॥
 अनयोरेकस्यापि ततो विकृतिमीयुषः । कः समर्थः पुरः स्थातुं कपिध्वजबले नृपः ॥१८॥
 यो यत्रावस्थितस्तस्मात् स्थानादुद्याति नैव सः । अनयोर्हि बलं दृष्टमेतैः सङ्ग्राममूर्ध्नि ॥१९॥
 भामण्डलेन चात्मीया गदिता भटपुङ्गवाः । यथा नाद्यापि विश्रम्भो विधातव्यो विभीषणे ॥२०॥
 कदाचित् स्वजनानेतान् प्राप्य निर्धूतबन्धनाम् । भ्रातृदुःखानुत्सस्य जायतेऽस्य विकारिता ॥२१॥
 इत्युद्भूतसमाशङ्कैर्वैदेहादिभिरावृताः । नीयन्ते कुम्भकर्णाद्या बलनारायणान्तिकम् ॥२२॥
 रागद्वेषविनिर्मुक्ता मनसा मुनितां गताः । धरणीं सौम्यया दृष्ट्वा वीक्षमाणः शुभाननाः ॥२३॥
 संसारे सारगन्धोऽपि न कश्चिदिह विद्यते । धर्म एको महाबन्धुः सारः सर्वशरीरिणाम् ॥२४॥
 विमोक्षं यदि नामास्मान् प्राप्स्यामो बन्धनाद् वयम् । पारणां पाणिपात्रेण करिष्यामो निरम्बराः ॥२५॥
 प्रतिज्ञामेवमारूढा रामस्यान्तिकमाश्रिताः । विभीषणं समाजमुः कुम्भकर्णादयो नृपाः ॥२६॥
 वृत्ते यथायथं तत्र दुःखसम्भाषणेऽगदन् । प्रशान्ताः कुम्भकर्णाद्या बलनारायणविति ॥२७॥
 अहो वः परमं धैर्यं गाम्भीर्यं चेष्टितं बलम् । सुरैरप्यजयो नीतो मृत्युं यद्वाञ्छसाधिपः ॥२८॥
 परं कृतापकारोऽपि मानो निर्व्यूढभाषितः । अत्युन्नतगुणः शत्रुः श्लाघनीयो विपश्चिताम् ॥२९॥

अनेक उत्तम विद्याधर जो रामके कटकमें कैद थे तथा खन खन करनेवालो बड़ी मोटी बेड़ियोंसे जो सहित थे वे प्रमाद रहित सावधान चित्तके धारक शूरवीरों द्वारा लाये गये ॥१४-१५॥ दिग्गजोंके समान उन सबको लाये जाते देख, समूहके बीच बैठे हुए विद्याधर इच्छानुसार परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे कि यदि कहीं रावणकी जलती चिताको देखकर इन्द्रजित् अथवा कुम्भकर्ण क्रोधको प्राप्त होता है अथवा इन दोमें से एक भी विगड़ उठता है तो उसके सामने खड़ा होनेके लिए वानरोंकी सेनामें कौन राजा समर्थ है ? ॥१६-१८॥ उस समय जो जहाँ बैठा था उस स्थानसे नहीं उठा सो ठीक ही है क्योंकि ये सब रणके अप्रभागमें उनका बल देख चुके थे ॥१९॥ भामण्डलने अपने प्रधान योद्धाओंसे कह दिया कि विभीषणका अब भी विरवास नहीं करना चाहिये ॥२०॥ क्योंकि कदाचित् बन्धनसे छूटे हुए इन आत्मीय जनोंको पाकर भाईके दुःखसे संतप्त रहनेवाले इसके विकार उत्पन्न हो सकता है ॥२१॥ इस प्रकार जिन्हें नाना प्रकारकी शङ्काएँ उत्पन्न हो रही थीं ऐसे भामण्डल आदिके द्वारा घिरे हुए कुम्भकर्णादि राम लक्ष्मणके समीप लाये गये ॥२२॥

वे कुम्भकर्णादि सभी पुरुष राग-द्वेषसे रहित हो हृदयसे मुनिपनाको प्राप्त हो चुके थे, सौम्य दृष्टिसे पृथिवीको देखते हुए आ रहे थे, सबके मुख अत्यन्त शुभ-शान्त थे ॥२३॥ वे अपने मनमें यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि इस संसारमें कुछ भी सार नहीं है एक धर्म ही सार है जो सब प्राणियोंका महाबन्धु है । यदि हम इस बन्धनसे छुटकारा प्राप्त करेंगे तो निर्ग्रन्थ साधु हो पाणि-मात्र से ही आहार ग्रहण करेंगे । इस प्रकारकी प्रतिज्ञाको प्राप्त हुए वे सब रामके समीप आये । कुम्भकर्ण आदि राजा विभीषणके भी सम्मुख गये ॥२४-२६॥ तदनन्तर जब दुःखके समयका वार्तालाप धीरे-धीरे समाप्त हो गया तब परम शान्तिको धारण करनेवाले कुम्भकर्णादि ने राम-लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा कि अहो ! आप लोगोंका धैर्य, गाम्भीर्य, चेष्टा तथा बल आदि सभी उत्कृष्ट है क्योंकि जो देवों के द्वारा भी अजेय था ऐसे रावणको आपने मृत्यु प्राप्त करा दी ॥२७-२८॥ अत्यन्त अपकारी, मानो और कटुभाषी होनेपर भी यदि शत्रुमें उत्कृष्ट गुण हैं तो वह विद्वानोंका प्रशंसनीय ही होता है ॥२९॥

१. यातु म० । २. ख्यातुं म० । ३. नामेति सम्भावनायाम् । ४. मद्राज्ञसाधिपः म० ।

परिसान्त्वय ततश्चक्री वचनैर्हृदयङ्गमैः । जगाद् पूर्ववद्युयं भोगैस्तिष्ठत सङ्गताः ॥३०॥
 गदितं तैरलं भोगैरस्माकं विषदारुणैः । महामोहावहैभीमैः सुमहादुःखदायिभिः ॥३१॥
 उपायाः सन्ति ते नैव यैर्न ते कृतसान्त्वनाः । तथापि भोगसम्बन्धं प्रतीयुर्न मनस्विनः ॥३२॥
 नारायणे तथात्मने स्वयं हृलधरेऽपि च । दृष्टिर्भोगे परार्चीना तेषामासीद्गवाचिव ॥३३॥
 भिन्नाजनदलच्छाये तस्मिन् सुसरसो जले । अबन्धनैरिमैः साकं स्नाताः सर्वे सगन्धिनि ॥३४॥
 राजीवसरसस्तस्मादुत्तीर्यानुक्रमेण च । यथा स्वं निलयं जम्मुः कपयो राजसस्तथा ॥३५॥
 सरसोऽस्य तटे रम्ये खेचरा बद्धमण्डलाः । केचिच्छूकराश्चक्रुर्विस्मयव्याप्तमानसाः ॥३६॥
 ददुः केचिदुपालम्भं दैवस्य क्रूरकर्मणः । मुमुक्षुः केचिदस्त्राणि सन्ततानि स्वनोऽभक्तम् ॥३७॥
 आपूर्यमाणचेतस्का गुणैः स्मृतिपथं गतैः । रावणोऽयैर्जनाः केचिदुरुदुर्मुक्तकण्ठकम् ॥३८॥
 चित्रतां कर्मणां केचिद्वोचक्षतिसङ्कटाम् । अन्ये संसारकान्तारं चिनिन्दुरतिदुस्तरम् ॥३९॥
 केचिद्भोगेषु विद्वेषं परमं समुपागताः । राजलक्ष्मीं चलां केचिदमन्यन्त निरर्थकाम् ॥४०॥
 गतिरेषैव वीराणामिति केचिद् भभाषिरे । अकार्यगर्हणं केचिच्चक्रुरुत्तमबुद्धयः ॥४१॥
 रावणस्य कथां केचिद्भजन् गर्वशालिनीम् । केचित्पद्मगुणान्बुः शक्तिं केचिच्च लाक्ष्मणीम् ॥४२॥
 केचिद् बलमसृष्यन्तो मन्दकम्पितमस्तकाः । सुकृतस्य फलं वीराः शशंसुः स्वच्छ्वेत्तसः ॥४३॥
 गृहे गृहे तदा सर्वाः क्रियाः प्राप्ताः परिच्ययम् । प्रावर्तन्त कथा एव शिशूनामपि केवलाः ॥४४॥

तदनन्तर लक्ष्मणने मनोहर वचनों द्वारा सान्त्वना देकर कहा कि आप सब पहले की तरह भोगोपभोग करते हुए आनन्दसे रहिये ॥३०॥ यह सुन उन्होंने कहा कि विषके समान दारुण, महामोहको उत्पन्न करनेवाले, भयङ्कर तथा महादुःख देनेवाले भोगोंकी हमें आवश्यकता नहीं है ॥३१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! उस समय वे उपाय शेष नहीं रह गये थे जिनसे उन्हें सान्त्वना न दी गई हो परन्तु फिर भी उन मनस्वी मनुष्योंने भोगोंका सम्बन्ध स्वीकृत नहीं किया ॥३२॥ यद्यपि नारायण और बलभद्र स्वयं उस तरह उनके पीछे लगे हुए थे अर्थात् उन्हें भोग स्वीकृत करानेके लिए बार-बार समझा रहे थे तथापि उनकी दृष्टि भोगोंसे उस तरह विमुख ही रही जिस तरह कि सूर्यसे लगी दृष्टि अन्धकारसे विमुख रहती है ॥३३॥ मसले हुए अञ्जनके कर्णोंके समान कान्तिवाले उस सरोवरके सुगन्धित जलमें बन्धनमुक्त कुम्भ-कर्णादिके साथ सबने स्नान किया ॥३४॥ तदनन्तर उस पद्मसरोवरसे निकलकर सब वानर और राजस, यथायोग्य अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३५॥ कितने ही विद्याधर इस सरोवरके मनोहर तटपर मण्डल बाँधकर बैठ गये और आश्चर्यसे चकितचित्त होते हुए शूरवीरोंकी कथा करने लगे ॥३६॥ कितने ही विद्याधर क्रूरकर्मा दैवके लिए उपालम्भ देने लगे और कितने ही शबररहित-चुपचाप अत्यधिक अश्रु छोड़ने लगे ॥३७॥ स्मृतिमें आये हुए रावणके गुणोंसे जिनके चित्त भर रहे थे ऐसे कितने ही लोग गला फाड़-फाड़कर रो रहे थे ॥३८॥ कितने ही लोग कर्मोंकी अत्यन्त संकटपूर्ण विचित्रताका निरूपण कर रहे थे और कितने ही अत्यन्त दुस्तर संसाररूपी अटवीकी निन्दा कर रहे थे ॥३९॥ कितने ही लोग भोगोंमें परम विद्वेषको प्राप्त होते हुए राज्य-लक्ष्मीको चञ्चल एवं निरर्थक मान रहे थे ॥४०॥ कोई यह कह रहे थे कि वीरोंकी ऐसी ही गति होती है और कोई उत्तम बुद्धिके धारक अकार्य-खोटे कार्यकी निन्दा कर रहे थे ॥४१॥ कोई रावणकी गर्वभरी कथा कर रहे थे, कोई रामके गुण गा रहे थे और कोई लक्ष्मणकी शक्तिकी चर्चा कर रहे थे ॥४२॥ जिनका मस्तक धीरे-धीरे हिल रहा था तथा जिनका चित्त अत्यन्त स्वच्छ था ऐसे कितने ही वीर, रामकी प्रशंसा न कर पुण्यके फलकी प्रशंसा कर रहे थे ॥४३॥ उस समय घर-घरमें सब कार्य समाप्त हो गये थे केवल बालकोंमें कथाएँ चल रही थीं ॥४४॥ उस

लङ्कायां सर्वलोकस्य वाष्पदुर्दिनकारिणः । शोकेनैव व्यलीयन्त महता कुट्टिमान्यपि ॥४५॥
 शेषभूतव्यपोहेन जलात्मकमिवाभवत् । नयनेभ्यः प्रवृत्तेन वारिणा भुवनं तदा ॥४६॥
 हृदयेषु पदं चक्रुस्तापाः परमदुःसहाः । नेत्रवारिप्रवाहेभ्यो भीता इव समन्ततः ॥४७॥
 धिक्धिक्कष्टमहो हा ही किमिदं जातमद्भुतम् । एवं निर्जम्बुरालापा जनेभ्यो वाष्पसङ्गताः ॥४८॥
 भूमिशरयासु मौनेन केचिन्नियमिताननाः । निष्कम्पविग्रहास्तरस्थुः पुस्तकर्मगता इव ॥४९॥
 बभञ्जुः केचिदस्त्राणि चिन्तिपुभूर्पणानि च । रमणोवदनाभोजदृष्टिद्वेषमुपागताः ॥५०॥
 उष्णैर्निश्वासवातुलैर्दाधिष्ठैः कलपैरलम् । अमुञ्चदिव तद्दुःखं प्रारोहान्विरलेतरान् ॥५१॥
 केचित् संसारभावेभ्यो निर्वेदं परमागताः । चक्रुर्द्वैगम्बरीं दीक्षां मानसे जिनभाषिताम् ॥५२॥
 अथ तस्य दिनस्थान्ते महासहस्रमन्वितः । अप्रमेयबलः स्वातो लङ्कां प्राप्नो मुनीश्वरः ॥५३॥
 रावणे जीवति प्राप्तो यदि स्यात् स महामुनिः । लक्ष्मणेन समं प्रीतिर्जाता स्यात्तस्य पुष्कला ॥५४॥
 तिष्ठन्ति मुनयो यस्मिन् देशे परमलक्ष्ययः । तथा केवलिनस्तत्र योजनानां शतद्वयम् ॥५५॥
 पृथिवी स्वर्गसङ्काशा जायते निरुपद्रवा । वैरानुबन्धमुक्ताश्च भवन्ति निकटे नृपाः ॥५६॥
 अमूर्त्तत्वं यथा व्योम्नश्चलत्वमनिलस्य च । महामुनेर्निसर्गेण लोकस्याह्लादनं तथा ॥५७॥
 अनेकाद्भुतसम्पन्नैर्मुनिभिः स समावृतः । यथाऽऽगतस्तथा वक्तुं केन श्रेणिक शक्यते ॥५८॥
 सुवर्णकुम्भसङ्काशः संयतद्वर्षा स सङ्गतः । आगत्याऽऽवासितो धीमानुद्याने कुसुमायुधे ॥५९॥

समय लङ्कामें जब कि सब लोग दुर्दिनकी भाँति लगातार अश्रुओंकी वर्षा कर रहे थे तब ऐसा जान पड़ता था मानो वहाँ के फस भी बहुत भारी शोकके कारण पिघल गये हों ॥४५॥ उस समय लङ्कामें जहाँ देखो वहाँ नेत्रोंसे पानी ही पानी भर रहा था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो संसार अन्य तीन भूतोंको दूर कर केवल जल रूप ही हो गया था ॥४६॥ सब ओर बहनेवाले नेत्र-जलके प्रवाहोंसे भयभीत होकर ही मानो अत्यन्त दुःसह सन्तापोंने हृदयोंमें स्थान जमा रक्खा था ॥४७॥ धिक्कार हो, धिक्कार हो, हाय-हाय बड़े कष्टकी बात है, अहो हा ही यह क्या अद्भुत कार्य हो गया, उस समय लोगोंके मुखसे अश्रुओंके साथ-साथ ऐसे ही शब्द निकल रहे थे ॥४८॥ कितने ही लोग मौनसे मुँह बन्दकर पृथ्वीरूपी शय्यापर निश्चल शरीर होकर इस प्रकार बैठे थे मानो मिट्टीके पुतले ही हों ॥४९॥ कितने ही लोगोंने राख तोड़ डाले, आभूषण फेंक दिये और स्त्रियोंके मुख कमलसे दृष्टि हटा ली ॥५०॥ कितने ही लोगोंके मुखसे गरम लम्बे और कलुषित श्वासके बधरूले निकल रहे थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो उनका दुःख अविरल अंकुर ही छोड़ रहा हो ॥५१॥ कितने ही लोग संसारसे परम निर्वेदको प्राप्त हो मनमें जिन-कथित दिगम्बर दीक्षाको धारण कर रहे थे ॥५२॥

अथानन्तर उस दिनके अन्तिम पहरमें अनन्तवीर्य नामक मुनिराज महासंघके साथ लङ्का नगरीमें आये ॥५३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि यदि रावणके जीवित रहते वे महामुनि लङ्कामें आये होते तो लक्ष्मणके साथ रावणकी घनी प्रीति होती ॥५४॥ क्योंकि जिस देशमें ऋद्धि-धारी मुनिराज और केवली विद्यमान रहते हैं वहाँ दो सौ योजनतककी पृथ्वी स्वर्गके सदृश सर्वप्रकारके उपद्रवोंसे रहित होती है और उनके निकट रहनेवाले राजा निर्वैर हो जाते हैं ॥५५-५६॥ जिस प्रकार आकाशमें अमूर्तिकपना और वायुमें चञ्चलता स्वभावसे हैं उसी प्रकार महा-मुनिमें लोगोंको आह्लादित करनेकी क्षमता स्वभावसे ही होती है ॥५७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अनेक आश्चर्योंसे युक्त मुनियोंसे घिरे हुए वे अनन्तवीर्य मुनिराज लङ्कामें जिस प्रकार आये थे उसका कथन कौन कर सकता है ? ॥५८॥ जो अनेक ऋद्धियोंसे सहित होनेके

षट्पञ्चाशत्सहस्रेस्तु खेचरैर्मुनिभिः परैः । रेजे तत्र समासीनो ग्रहैर्विपुर्निवाऽवृत्तः ॥६०॥

शुक्लध्यानप्रवृत्तस्य सद्विक्रमे शिलातले । तस्याभवे समुत्पन्नं शर्वर्या तस्य केवलम् ॥६१॥

तस्यातिशयसम्बन्धं कीर्त्यमानं मनोहरम् । शृणु श्रेणिक ! पापस्य नोदनं परमाद्भुतम् ॥६२॥

अथ मुनिवृषभं तथाऽनन्तसत्त्वं मृगेन्द्रासने सन्निविष्टं भुवोऽधोनिवासाः मरुत्सागविद्युत्सुर्पणादयो विंशतेरर्धभेदाः । तथा षोडशाङ्गप्रकाराः स्मृता व्यन्तराः किन्नराद्याः सहस्रांशुचन्द्रग्रहाद्याश्च पञ्चप्रकारान्धिता ज्योतिराख्या, द्विरष्टप्रकाराश्च कल्पपालयाः ख्यातसौधर्मनामादयो घातकीखण्डवास्ये समुद्भूतकालोत्सवे स्फीतपूजां सुमेरोः शिरस्युत्तमे देवदेवं जिनेन्द्रं शुभै रत्नभ्रातृवन्दकुम्भैः सुभक्त्याभिविच्य प्रणुत्य, प्रसीभिः पुनर्मातुरङ्गे सुखं स्थापयित्वा प्रभुं बालकं बालकर्मप्रमुक्तं प्रवन्द्य प्रहृष्टा विधाद्योचितं वस्तुकृत्यं परावर्त्तमानाः, समालोक्य तस्याभिजग्मुः समीपं, प्रभावानुकृष्टाः प्रवरविमानानि केचित्समानानि रत्नोद्दामानि दीप्तांशु-त्रिम्बप्रकाशानि देवाः समारूढवन्तोऽत्र केचित् शङ्खप्रतीकाशसद्राजहंसाश्रिताः केचिदुद्दामदानप्रसेकातिसद्-गन्धसम्बन्धसम्भ्रान्तगुञ्जत्बद्धक्षिप्र-प्रहृष्टोरुचक्रातिनीलप्रमाजालकोच्छ्वासिगण्डस्थलानेकपाथीशपृष्ठाधिरूढास्तथा बालचन्द्राभदंद्गाकरालाननव्याघ्रसिंहादिवाहाधिरूढा मुनेरन्तिकं प्रस्थिताश्चारुचित्ताः पटुपटहसृदङ्गगम्भीर-

कारण सुवर्णकलशके समान जान पड़ते थे, ऐसे वे मुनि लङ्कामें आकर कुसुमायुधनामक उद्यानमें ठहरे ॥६१॥ वे छप्पन हजार आकाशगामी उत्तम मुनियोंके साथ उस उद्यानमें बैठे हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा ही हो ॥६०॥ निर्मल शिलातलपर शुक्लध्यानमें आरूढ हुए उन मुनिराजको उसी रात्रिमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥६१॥ हे श्रेणिक ! मैं पापको दूर करनेवाला परमआश्चर्यसे युक्त उनके मनोहर अतिशयोंका वर्णन करता हूँ सो सुन ॥६२॥

अथानन्तर केवलज्ञान उत्पन्न होते ही वे मुनिराज कीर्यान्तराय कर्मका क्षय हो जानेसे अनन्तबलके स्वामी हो गये तथा देवनिर्मित सिंहासन पर आरूढ हुए । पृथ्वीके नीचे पाताल-लोकमें निवास करनेवाले वायुकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार तथा सुवर्णकुमार आदि दश प्रकारके भवनवासी, किन्नरोंको आदि लेकर आठ प्रकारके व्यन्तर, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह आदि पाँच प्रकारके ज्योतिषी और सौधर्म आदि सोलह प्रकारके कल्पवासी इस तरह चारों निकायके देव घातकी खण्डद्वीपमें उत्पन्न हुए किसी तीर्थङ्करके जन्मकल्याणक सम्बन्धी उत्सवमें गये हुए थे, वहाँ विशाल पूजा तथा सुमेरु पर्वतके उत्तम शिखर पर विराजमान देवाधिदेव जिनेन्द्र बालकका शुभ रत्नमयी एवं सुवर्णमयी कलशों द्वारा अभिषेक कर उन्होंने उत्तम शब्दोंसे उनकी स्तुति की । तदनन्तर वहाँसे लौटकर जिन बालकको माताको गोदमें सुखसे विराजमान किया । जो बालक अवस्था होने पर भी बालकों जैसी चपलतासे रहित थे ऐसे जिन बालकको नमस्कार कर उन देवोंने हर्षित हो, मेरुसे लौटनेके बाद तीर्थङ्करके घर पर होनेवाले ताण्डवनृत्य आदि कार्य यथा-योग्य रीतिसे किये । तदनन्तर वहाँसे लौटकर लङ्कामें अनन्तवीर्य मुनिका केवलज्ञान महोत्सव देख उनके समीप आये । मुनिराजके प्रभावसे खिचे हुए उन देवोंमें कितने ही देव रत्नोंकी बड़ी-बड़ी मालाओंसे युक्त, सूर्यबिम्बके समान प्रकाशमान एवं योग्य प्रमाणसे सहित उत्तम विमानोंमें आरूढ थे, कितने ही शङ्खके समान सफेद उत्तमराज हँसोंपर सवार थे, कितने ही उन हाथियोंकी पीठपर आरूढ थे, जिनके कि गण्डस्थल अत्यधिक मद् सम्बन्धी श्रेष्ठ सुगन्धिके सम्बन्धसे गूँजते हुए भ्रमरसमूहकी श्यामकान्तिके कारण कुछ बड़े हुए-से दिखायी देते थे और कितने ही बालचन्द्रमाके समान दाढ़ोंसे भयङ्कर मुखवाले व्याघ्र-सिंह आदि वाहनों पर आरूढ थे । वे सब देव प्रसन्न चित्तके धारक ही उन मुनिराजके समीप आ रहे थे । उस समय जोर-जोरसे बजनेवाले पटह,

१. वृत्तगन्धिगद्ययुक्तोऽयं भागः । अत्र सर्वत्र भागे भुजङ्गप्रयातच्छन्दसः आभासो दृश्यते ।

११-३

भेरीनिनादैः कण्डूशवीणासुमुन्दैर्भण्णकर्मरैकैः, स्वन्दभूरिशंखैर्महामेघसङ्घातनिर्घोषमन्दध्वनिदुन्दुभिवात-
रम्यैर्मनोहारिदेवाङ्गनागीतकान्तेनभोमण्डलं व्यतिमासीत्तदा प्रतिभयतमसि प्रभचक्रमालोक्य तत्रार्द्धरात्रे-
विमानस्थरत्नादिजातं निशम्य ध्वनिं दुन्दुभिनां च तारसमुद्दिग्गचित्तोऽभवद्राघवो लक्ष्मणश्च क्षणं तद् विदित्वा
यथावत्पुनस्तुष्टिमतौ । उद्धिरिव कपिध्वजानां बलं क्षुभ्यते राक्षसानां तथैवोजितं भक्तितस्ते च विद्याधराः
पद्मानारायणाद्याश्च सन्मानवाः सद्द्विपेन्द्राधिरुढास्तथा भानुकर्णेन्द्रजिन्मेववाहादयो गन्तुमभ्युद्यताः रथ-
चरतुरगान् समारूढ्य शुभ्रातपत्रध्वजप्रौढहंसावलीशोभनप्रोल्लसन्नामराटोपयुक्ता नभश्छादयन्तसमीपबभूवुः ।
प्रसूनायुधोद्यानमिन्द्रा ह्रवोदारसम्मोद्गन्धर्वयज्ञाप्सरःसङ्घससेवित। वाहनेभ्योऽवतीर्थानिनिर्मुक्तकेत्वातपत्रा-
दियोगाः समागत्य योगीन्द्रमभ्यर्च्य पादारविन्दद्वयं संविधाय प्रणामं प्रभक्त्या परिष्टुत्य सस्तोत्रमन्त्रप्रगाढैर्व-
चोभिर्यथाहं चित्ती सन्निविरय स्थिता धर्मशुश्रूषया युक्तचित्ताः सुखं शुश्रुवुर्धर्ममेवं मुनीन्द्रास्वतो निर्गतम् ।
गतय ईहं चतस्रो भवे यासु नानामहादुःखचक्राधिरुढाः सदा देहिनः पर्यटन्त्यष्टकर्मवन्दाः शुभं चाशुभं च
स्वयं कर्म कुर्वन्ति रौद्रात्तुक्ताः महामोहनीयेन तस्मिन्ना बुद्धियुक्ताः कृता ये सदा प्राणिघातैरसत्यैः परद्र-
व्यहारैः परस्त्रीपरिष्वङ्गरागैः प्रमाणप्रहाणार्थसङ्गैर्महालोभसंबद्धितैर्यान्ति योमं कुकर्माभिनुज्ञास्तके मृत्युमाप्य

मृदङ्ग, गम्भीर और भेरियोंके नादसे, बजती हुई वासुरियां और वीणाओंकी उत्तम भक्तकारसे, भक्त-भक्त करनेवाली माँझोंसे शब्द करनेवाले अनेक शङ्खोंसे, महा मेघमण्डलकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त दुन्दुभि-समूहके रमणीय शब्दोंसे और मनको हरण करने वाली देवाङ्गनाओंके सुन्दर सङ्गीतसे आकाशमण्डल व्याप्त हो गया था। उस अर्थ रात्रिके समय सहसा अन्धकार विलीन हो गया और विमानोंमें लगे हुए रत्नों आदिका प्रकाश फैल गया, सो उसे देख तथा दुन्दुभियोंकी गम्भीर गर्जना सुनकर राम-लक्ष्मण पहले तो कुछ उद्दिग्गचित्त हुए फिर क्षण-एकमें ही यथार्थ समाचार जानकर सन्तोषको प्राप्त हुए। चानरों और राक्षसोंकी सेनामें ऐसी हलचल मच गई मानो समुद्र ही लहराने लगा हो। तदनन्तर भक्तिसे प्रेरित विद्याधर, राम-लक्ष्मण आदि सत्पुरुष और भानुकर्ण, इन्द्रजित्, मेघवाहन आदि राक्षस, कोई उत्तम हाथियों पर आरूढ होकर और कोई रथ तथा उत्तम घोड़ों पर सवार हो केवल भगवानके समीप चले। उस समय वे अपने सफेद छत्रों, ध्वजाओं और तरुण हंसावलीके समान शोभायमान चमरोंसे युक्त थे तथा आकाशको आच्छादित करते हुए जा रहे थे।

जिस प्रकार अत्यधिक हर्षसे युक्त गन्धर्व, यज्ञ और अप्सराओंके समूहसे सेवित इन्द्र अपने कामोद्यानमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार सब लोगोंने अपने-अपने वाहनोंसे उतरकर तथा ध्वजा छत्रादिके संयोगका त्यागकर लङ्काके उस कुसुमायुध उद्यानमें प्रवेश किया। समीपमें जाकर सबने मुनिराजकी पूजा की, उनके चरण कमल युगलमें प्रणाम किया और उत्तम स्तोत्र तथा मन्त्रोंसे परिपूर्ण वचनोंसे भक्ति पूर्वक स्तुति की। तदनन्तर धर्मश्रवण करनेकी इच्छासे सब यथायोग्य पृथिवी पर बैठ गये और सावधान चित्त होकर मुनिराजके मुखसे निकले हुए धर्मका इस प्रकार श्रवण करने लगे—

उन्होंने कहा कि इस संसारमें नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देवके भेदसे चार गतियाँ हैं जिनमें नाना प्रकारके महादुःखरूपी चक्र पर चढ़े हुए समस्त प्राणी निरन्तर घूमते रहते हैं तथा अष्टकर्मोंसे बद्ध हो स्वयं शुभ अशुभ कर्म करते हैं। सदा आर्त्तरौद्र ध्यानसे युक्त रहते हैं तथा मोहनीय कर्म उन्हें बुद्धिरहित कर देता है। ये प्राणी सदा प्राणिघात, असत्य भाषण, पर-द्रव्यापहरण, परस्त्री समालिङ्गन और अपरिमित धनका समागम, महालोभ कषायके साथ

प्रपद्यन्वधस्तान्महीरत्नप्रभाशर्कराबालुकापङ्कधूमप्रभाध्वान्तभातिप्रकृष्टान्धकाराभिधास्ताश्च नित्यं महाध्वान्त-
युक्ताः सुदुर्गन्धवीभक्तसदुःप्रेक्ष्यदुःस्पर्शरूपा महादारुणास्तसलोहोपमक्मातलाः क्रन्दनाक्रोशनप्रासनैराकुला
यत्र ते नारकाः पापबन्धेन दुष्कर्मणा सर्वकालं महातीव्रदुःखामनेकार्णवोपम्यबन्धस्थितिं प्राप्नुवन्तीदमेवं
विदित्वा बुधाः पापबन्धादतिद्विष्टचित्ता रमध्वं सुधर्मं व्रतनियमविनाकृताश्च स्वभावाज्जवाद्यैर्गुणैरञ्जिताः
केचिदाश्रान्ति मानुष्यमन्ये तपोभिविचित्रैः सुराणां निवासं तत्परच्युताः प्राप्य भूयो मनुष्यत्वमुत्सृष्टधर्माभिलाषा
जना ये भवन्त्येतके श्रेयसा विप्रमुक्ताः पुनर्जन्ममृत्युदुमोदारकान्तारमध्ये अमन्युप्रदुःखादृताशाः । अथातोऽपरे
भव्यधर्मस्थिताः प्राणिनो देवदेवस्य वाग्भिर्भृशं भाविताः सिद्धिमागानुसारेण शीलेन सत्येन शौचेन सम्यक्-
तपोदर्शनज्ञानचारित्रयोनेन चात्युत्कटाः येन ये यावदष्टप्रकारस्य कुर्वन्ति निर्णाशनं कर्मणस्तावदुःखसुखभूत्यन्विताः
स्वर्भवानां भवन्त्युत्तमाः स्वामितस्तत्र चाम्भोधितुल्यान् प्रभूताननेकप्रभेदान् समासाद्य सौख्यं ततः प्रच्युता
धर्मशेषस्य लब्ध्वा फलं स्कीतभोगान् श्रियं प्राप्य बोधिं परित्यज्य राज्यादिकं जैनलिङ्गं समादाय कृत्वा
तपोज्यन्तघोरं समुत्पाद्य सद्दयानिनः केवलज्ञानमायुःष्ये कृत्स्नकर्मप्रमुक्ता भवन्तस्त्रिलोकप्रमारुह्य सिद्धा
अनन्तं शिवं सौख्यमात्मस्वभावं परिप्राप्नुवन्त्युत्तमम् ।

उपजातिवृत्तम्

अथेन्द्रजिद्वारिदवाहनाभ्यां पृष्टः स्वपूर्वं जननं मुनीन्द्रः ।

उवाच कौशाम्ब्यभिधानपुर्यां भ्रातृद्वयं निःस्वकुलीनमासीत् ॥६३॥

वृद्धिको प्राप्त हुए इन पाँच पापोंके साथ संसर्गको प्राप्त होते हैं । अन्तमें छोटे कर्मोंसे प्रेरित
हुए मानव, मृत्युको प्राप्त हो नीचे पाताललोकमें जन्म लेते हैं । नीचेकी पृथिवीके नाम इस
प्रकार हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा और महातमःप्रभा । ये
पृथिवियाँ निरन्तर महा अन्धकारसे युक्त, अत्यन्त दुर्गन्धित, घृणित दुर्दृश्य एवं दुःखदायी स्पर्श
रूप हैं । महादारुण हैं, वहाँ की पृथिवी तपे हुए लोहे के समान हैं । सबकी सब तीव्र आक्रन्दन,
आक्रोशन और भयसे आकुल हैं । जिन पृथिवियोंमें नारकी जीव पापसे बँधे हुए दुष्कर्मके कारण
सदा महा तीव्र दुःख अनेक सागरोंकी स्थिति पर्यन्त प्राप्त होते रहते हैं । ऐसा जान कर
हे विद्वज्जन हो पापबन्धसे चित्तको द्वेष युक्त कर उत्तम धर्ममें रमण करो । जो प्राणी व्रत-नियम
आदिसे तो रहित हैं परन्तु स्वाभाविक सरलता आदि गुणोंसे सहित हैं ऐसे कितने ही प्राणी
मनुष्य गतिको प्राप्त होते हैं और कितने ही नाना प्रकारके तपश्चरण कर देवगतिको प्राप्त होते
हैं । वहाँसे च्युत हो पुनः मनुष्य पर्याय पाकर जो धर्म की अभिलाषा छोड़ देते हैं वे कल्याणसे
रहित हो पुनः उग्र दुःखसे दुःखी होते हुए जन्म-मरणरूपी वृत्तोंसे युक्त विशाल संसार वनमें
भ्रमण करते रहते हैं ।

अथानन्तर जो भव्य प्राणी देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंसे अत्यन्त प्रभावित हो
मोक्षमार्गके अनुरूप शील, सत्य, शौच, सम्यक् तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्रके युक्त होते हुए अष्ट
कर्मोंके नाशका प्रयत्न करते हैं, वे उत्कृष्ट वैभवसे युक्त ही देवोंके उत्तम स्वामी होते हैं और वहाँ
अनेक सागर पर्यन्त नाना प्रकारका सुख प्राप्त करते रहते हैं । तदनन्तर वहाँसे च्युत हो अवशिष्ट
धर्मके फल स्वरूप बहुत भारी भोग और लक्ष्मीको प्राप्त होते हैं और अन्तमें रत्नत्रयको प्राप्त कर
राज्यादि वैभवका त्याग कर जैनलिङ्ग—निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण करते हैं तथा अत्यन्त तीव्र तपश्चरण
कर शुक्लध्यानके धारी हो केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और आयुःका क्षय होनेपर समस्त कर्मोंसे
रहित होते हुए तीन लोकके अग्र भाग पर आरूढ़ हो सिद्ध बनते हैं एवं अन्तरहित आत्मस्व-
भावमय आह्लादरूप अनन्त सुख प्राप्त करते हैं ।

अथानन्तर इन्द्रजित् और मेघवाहनने अनन्तवीय मुनिराजसे अपने पूर्वभव पूछे । सो
इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि कौशाम्बी नगरीमें दरिद्रकुलमें उत्पन्न हुए दो भाई रहते थे ।

आषोऽत्र नाम्ना 'प्रथमो' द्वितीयः प्रकीर्तितः 'पश्चिम' नामधेयः ।
 अथाऽन्यदा तां भवदत्तनामा पुरीं प्रयातो विहरन् भदन्तः ॥६५॥
 श्रुत्वाऽस्य पार्श्वे विनयेन धर्मं तौ भ्रातरौ लुल्लकरूपमेतौ ।
 मुनिं च तं द्रष्टुमितो नगर्यास्तस्याः पतिः सद्युतिरिन्दुनामा ॥६५॥
 उपेक्षयैवाऽऽदरकार्यमुक्तः स्थितः समालोक्य मुनिर्मनीषी ।
 मिथ्या यतो दर्शनमस्य राज्ञो विशातमेतेन तदानुपायम् ॥६६॥
 श्रेष्ठीति नन्दीति जिनेन्द्रभक्तस्ततः पुरो द्रष्टुमितो भदन्तम् ।
 तस्यादरो राजसमस्य भूत्या कृतोऽनगारेण यथाभिधानम् ॥६७॥
 तमादृतं वीक्ष्य मुनीरवरेण निदानमावाध्यत पश्चिमेन ।
 भवाम्यहं नन्दिमुतो यथेति धर्मं तदर्थं च कुधीरकर्षीत् ॥६८॥
 स बोध्यमानोऽप्यनिवृत्तचित्तो मृतो निदानग्रहदूषितात्मा ।
 सुतोऽभवन्नन्दिन इन्दुमुख्यां सुशोषिति श्लाघ्यगुणान्वितायाम् ॥६९॥
 गर्भस्थं एवाऽत्र महीपतीनां स्थानेषु लिङ्गानि बहून्यभूवन् ।
 एतस्य राज्योद्भवसूचनानि प्राकारपातप्रभृतीनि सद्यः ॥७०॥
 ज्ञात्वा नृपास्तं विविधैर्निमित्तैर्महानरं भाविनमुग्रसूतिम् ।
 जन्मप्रभृत्थादरसम्प्रयुक्तैर्द्रव्यैरसेवन्त सुदूतनीतैः ॥७१॥
 रतेरसौ वर्द्धनमादधानः समस्तलोकस्य यथार्थशब्दः ।
 अभूत्तरेणो रतिवर्द्धनाख्यो यस्येन्दुरप्यागतवान् प्रणामम् ॥७२॥

पहलका नाम 'प्रथम' था और दूसरा 'पश्चिम' कहलाता था । किसी एक दिन विहार करते हुए भवदत्त मुनि उस नगरीमें आये ॥६३-६४॥ उनके पास धर्म श्रवणकर दोनों भाई लुल्लक हो गये । किसी दिन उस नगरीका कान्तिमान इन्दु नामका राजा उन मुनिराजके दर्शन करने आया, सो उसे देख मुनिराज उपेक्षा भावसे बैठे रहे । उन्होंने राजाके प्रति कुछ भी आदर भाव प्रकट नहीं किया । इसका कारण यह था कि बुद्धिमान् मुनिराजने यह जान लिया था कि राजाका मिथ्या दर्शन अनुपाय है—दूर नहीं किया जा सकता ॥६५-६६॥ तदनन्तर राजाके चले जानेके बाद नगरका नन्दी नामक जिनेन्द्र भक्त सेठ मुनिके दर्शन करनेके लिये आया । वह सेठ विभूति में राजाके ही समान था और मुनिने उसके प्रति यथायोग्य सम्मान प्रकट किया ॥६७॥ नन्दी सेठको मुनिराजके द्वारा आहत देख पश्चिम नामक लुल्लकने निदान बाँधा कि मैं नन्दी सेठके पुत्र होऊँ । यथार्थमें वह दुर्बुद्धि इसके लिए ही धर्म कर रहा था ॥६८॥ यद्यपि उसे बहुत समझाया गया तथापि उसका चित्त उस ओरसे नहीं हटा, अन्तमें वह निदान बन्धसे दूषित चित्त होता हुआ मरा और मरकर नन्दी सेठकी प्रशंसनीय गुणोंसे युक्त इन्दुमुखी नामक स्त्रीके पुत्र हुआ ॥६९॥ जब यह गर्भमें स्थित था तभी इसकी राज्य प्राप्तिकी सूचना देनेवाले, कोटका गिरना आदि बहुतसे चिह्न राजाओंके स्थानोंमें होने लगे थे ॥७०॥ नाना प्रकारके निमित्तोंसे यह जानकर कि यह आगे चलकर महापुरुष होगा । राजा लोग जन्मसे ही लेकर उत्तम दूतोंके द्वारा आदर पूर्वक भेजे हुए पदार्थोंसे उसकी सेवा करने लगे थे ॥७१॥ वह सब लोगोंकी रति अर्थात् प्रीतिकी वृद्धि करता था, इसलिए सार्थक नामको धारण करने वाला रतिवर्द्धन नामका राजा हुआ । ऐसा राजा कि कौशाम्बीका अधिपति इन्दु भी जिसे प्रणाम करता था ॥७२॥

एवं स तावत्सुमहाविभूत्या सप्तोऽभवद् यः पुनरस्य पूर्वम् ।
 ज्यायानभूद्धर्मसौ विधाय मृत्वा गतः कल्पनिवासिभावम् ॥७३॥
 स पूर्वमेव प्रतिबोधकार्यं कनीयसा याचित उद्धदेवः ।
 समाश्रितः क्षुल्लकरूपमेतं प्रबोधमानेतुमभूत्कृताशः ॥७४॥
 गृहं च तस्य प्रविशन्नियुक्तैर्दरैर्नरैर्वृरनिराकृतः सन् ।
 रूपं श्रितोऽसौ रतिवर्द्धनस्य देवः क्षणेनोपनतं यथावत् ॥७५॥
 कृत्वा च तं तल्लगरप्रभावितोन्मत्सकाकारमरण्यमारात् ।
 निर्वास्य गत्वा गदति स्म का ते वात्ताऽधुना मत्परिभूतिभाजः ॥७६॥
 जगौ च पूर्वं जननं यथावत्ततः प्रबोधं समुपागतोऽसौ ।
 सम्यक्त्वयुक्तो रतिवर्द्धनोऽभून्नद्याद्यश्चापि नृपा विशेषात् ॥७७॥
 प्रव्रज्य राजा प्रथमामरस्य गतः सकाशं कृतकालधर्मः ।
 तत्परच्युतौ तौ विजयेऽभिजातौ उर्वावसाख्यौ नगरे नरेन्द्रात् ॥७८॥
 सहोदरौ तौ पुनरेव धर्मं विधाय जैनं त्रिदशावभूताम् ।
 तत्परच्युताविन्द्रजिदग्दवाहौ जातौ भवन्ताविह खेचरेशौ ॥७९॥
 या नन्दिनश्चेन्दुमुखी द्वितीया भवान्तरान्तर्हितजन्मिका सा ।
 मन्दोदरी स्नेहवशेन सेयं माताऽभवद्वा जिनधर्मसक्ता ॥८०॥

आर्याच्छन्दः

श्रुत्वा भवमिति विविधं त्यक्त्वा संसारवस्तुनि प्रीतिम् ।
 पुरुसवेगसमेतौ जगृहतुरुग्रामिमौ दीक्षाम् ॥८१॥

इस प्रकार प्रथम और पश्चिम इन दो भाइयोंमें पश्चिम तो महाविभूति पाकर मत्त हो गया उसके मदमें भूल गया और पूर्वभवमें जो उसका बड़ा भाई प्रथम था वह मरकर स्वर्गमें देव पर्यायको प्राप्त हुआ ॥७३॥ पश्चिमने प्रथमसे उस पर्यायमें याचना की थी कि यदि तुम देवताओं और मैं मनुष्य होऊँ तो तुम मुझे सम्बोधन करना । इस याचनाकी स्मृतिमें रखता हुआ प्रथमका जीव देव रतिवर्धनको सम्बोधनके लिए क्षुल्लकरूप धर कर उसके घरमें प्रवेश कर रहा था कि द्वार पर नियुक्त पुरुषों द्वारा उसने उसे दूर हटा दिया । तदनन्तर उस देवने क्षणभरमें रतिवर्धनका रूप रख लिया और असली रतिवर्धनको पागल जैसा बनाकर जङ्गलमें दूर खदेड़ दिया । तदनन्तर उसके पास जाकर बोला कि तुमने मेरा अनादर किया था, अब कहो तुम्हारा क्या हाल है ? ॥७४-७६॥ इतना कहकर उस देवने रतिवर्धनके लिए अपने पूर्व जन्मका यथार्थ निरूपण किया जिससे वह शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हो सम्यग्दृष्टि हो गया । साथ ही नन्दी सेठ आदि भी सम्यग्दृष्टि हो गये ॥७७॥ तदनन्तर राजा रतिवर्धन दीक्षा धारण कर कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त होता हुआ बड़े भाई प्रथमका जीव जहाँ देव था वहीं जाकर उत्पन्न हुआ । तदनन्तर दोनों देव वहाँसे च्युत हो विजय नामक नगरमें वहाँके राजाके उर्व और उर्वसु नामक पुत्र हुए ॥७८॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र प्रणीत धर्म धारण कर दोनों भाई फिरसे देव हुए और वहाँसे च्युत हो आप दोनों यहाँ इन्द्रजित् और मेघवाहन नामक विद्याधराधिपति हुए ही ॥७९॥ और जो नन्दी सेठकी इन्द्रमुखी नामकी भार्या थी वह भवान्तरमें एक जन्मका अन्तर ले स्नेहके कारण जिनधर्ममें लीन तुम्हारी माता मन्दोदरी हुई है ॥८०॥

इस प्रकार अपने अनेक भव सुन संसार सम्बन्धी वस्तुओंमें प्रीति छोड़ परम संवेगसे

१. गदितस्य म०, गदितस्स ख० । २. मत्परिभूतभाजः म० ।

कुम्भश्रुतिमारीचावन्येऽत्र महाविशालसंवेगाः ।
 अपरातकवायरागाः श्रामण्येऽवस्थिताः परमे ॥८२॥
 तृणमिव खेचरविभवं विहाय विधिना सुधर्मचरणस्थाः ।
 बहुविधलब्धिसमेताः पर्याटुरिमे महीं मुनयः ॥८३॥
 मुनिसुव्रततीर्थकृतस्तार्थं तपसा परेण सम्बद्धाः ।
 श्लेयास्ते वरमुनयो वन्था भव्यासुवाहानाम् ॥८४॥
 पतिपुत्रविरहदुःखज्वलनेन विदीपिता सती जाता ।
 मन्दोदरी नितान्तं विह्वलहृदया महाशोका ॥८५॥
 मूर्च्छामित्य विबोधं प्राप्य पुनः कुररकामिनी करुणम् ।
 कुरुते स्म समाक्रन्दं पतिता दुःखाग्निधातुमे ॥८६॥
 हा पुत्रेन्द्रजितेदं व्यवसितमीदृक् कथं त्वया कृत्यम् ।
 हा मेघवाहन कथं जननी नापेक्षिता दीना ॥८७॥
 युक्तमिदं किं भवतोरनपेक्ष्य यदुग्रदुःखसन्तप्ताम् ।
 मातरमेतद्विहितं किञ्चित्कार्यं सुदुःखेन ॥८८॥
 विरहितविद्याविभवौ मुक्ततनू च्छितितले कथं परुषे ।
 स्थातास्थो मे वत्सौ देवोपमभोगदुर्ललितौ ॥८९॥
 हा तात कृतं किमिदं भवताऽपि विमुष्य भोगमुत्तमं रूपम् ।
 एकपदे कथय कथं त्यक्तः स्नेहस्त्वया त्वपरयासक्तः ॥९०॥
 जनको भर्ता पुत्रः स्त्रीणामेतावदेव रक्षानिमित्तम् ।
 मुक्ता सर्वैरभिः कं शरणं संश्रयामि पुण्यविहीना ॥९१॥

युक्त हुए इन्द्रजित् और मेघनादने कठिन दीक्षा धारण कर ली। इनके सिवाय जो कुम्भकर्ण तथा मारीच आदि अन्य विद्याधर थे वे भी अत्यधिक संवेगसे युक्त हो कषाय तथा रागभाव छोड़कर उत्तम मुनि पदमें स्थित हो गये ॥८२-८३॥ जिन्होंने विद्याधरोंके विभवको तृणके समान छोड़ दिया था, जो विधिपूर्वक उत्तम धर्मका आचरण करते थे, तथा जो नानाप्रकारकी श्रद्धियोंसे सहित थे, ऐसे ये मुनिराज पृथिवीमें सर्वत्र भ्रमण करने लगे ॥८३॥ मुनिसुव्रत तीर्थ-ङ्करके तीर्थमें वे परम तपसे युक्त तथा भव्य जीवोंके वन्दना करने योग्य उत्तम मुनि हुए हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥८४॥

जो पति और पुत्रोंके विरहजन्य दुःखाग्निसे जल रही थी ऐसी मन्दोदरी महाशोकसे युक्त हो अत्यन्त विह्वल हृदय हो गई ॥८५॥ दुःखरूपी भयङ्कर समुद्रमें पड़ी मन्दोदरी पहले तो मूर्च्छित हो गई फिर सचेत हो कुररीके समान करुण विलाप करने लगी ॥८६॥ वह कहने लगी कि हाय पुत्र इन्द्रजित्! तूने यह ऐसा कार्य क्यों किया? हाय मेघवाहन! तूने दुःखिनी माताकी अपेक्षा क्यों नहीं की? ॥८७॥ तीव्र दुःखसे सन्तप्त माताकी उपेक्षा कर अतिशय दुःखसे दुःखी हो तुम लोगोंने यह जो कुछ कार्य किया है सो क्या ऐसा करना तुम्हें उचित था? ॥८८॥ हे पुत्रो! तुम देवतुल्य भोगोंसे लड़ाये हुए हो। अब विद्याके विभवसे रहित हो, शरीरसे स्नेह छोड़ कठोर पृथ्वीतल पर कैसे पड़ोगे? ॥८९॥ तदनन्तर मन्दोदरी भयको लक्ष्य कर बोली कि हाय पिता! तुमने भी उत्तम भोग छोड़कर यह क्या किया? कहो तुमने अपनी सन्तानका स्नेह एक साथ कैसे छोड़ दिया? ॥९०॥ पिता, भर्ता और पुत्र इतने ही तो स्त्रियोंकी रक्षाके निमित्त हैं,

१. मव्यप्राणिनाम् इत्यर्थः, भव्याः सुवाहानाम् म० ज० ख० । २. त्यक्तस्नेहस् म० ज० ।

परिदेवनमिति करुणं भजमाना वाष्पदुर्दिनं जनयन्ती ।
शशिकान्तयाऽऽर्ययाऽसौ प्रतिबोधं वारिभरुत्तमाभिरानीता ॥६२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

मूढे ! रोदिषि किं त्वनादिसमये संसारचक्रे त्वया
तिर्यङ्मानुषभूरियोनिनिवहे सम्भूतिमायातया ।
नानाबन्धुवियोगविह्वलधिया भूयः कृतं रोदनम्
किं दुःखं पुनरभ्युपैषि पदवीं स्वास्थ्यं भजस्वाधुना ॥६३॥
संसारप्रकृतिप्रबोधनपरैर्वाक्यैर्मनोहारिभिः—
स्तस्याः प्राप्य विबोधमुत्तमगुणा संवेगमुग्रं श्रिता ।
त्यक्ताशेषगृहस्थवेषरचना मन्दोदरी संयता
जाताऽऽत्यन्तविशुद्धधर्मनिरता शुक्लैकवस्त्राऽऽवृता ॥६४॥
लब्ध्वा बोधिमनुत्तमां शशिनखाऽऽभ्यार्यामिमामाश्रिता
संशुद्धभ्रमणा ब्रतोरुविधवा जाता नितान्तोत्कटा ।
चत्वारिंशदथाष्टकं सुमनसां ज्ञेयं सहस्राणि हि
स्त्रीणां संयममाश्रितानि परमं तुल्यानि भासां रवेः ॥६५॥
इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे इन्द्रजितादिनिष्कमणाभिधाने
नामाष्टसप्ततितमं पर्व ॥७८॥

सो मैं पापिनी इन सबके द्वारा छोड़ी गई हूँ, अब किसकी शरणमें जाऊँ ? ॥६१॥ इस तरह जो करुण विलापको प्राप्त होती हुई आँसुओंकी अविरल वर्षा कर रही थी ऐसी मन्दोदरीको शशिकान्ता नामक आर्यिकाने उत्तम वचनोंके द्वारा प्रतिबोध प्राप्त कराया ॥६२॥ आर्यिकाने समझाया कि अरी मूर्खे ! व्यर्थ ही क्यों रो रही है ? इस अनादि कालीन संसारचक्रमें भ्रमण करतो हुई तू तिर्यञ्च और मनुष्योंकी नाना योनियोंमें उत्पन्न हुई है, वहाँ तूने नाना बन्धुजनोंके वियोगसे विह्वल बुद्धि हो अत्यधिक रुदन किया है । अब फिर क्यों दुःखको प्राप्त हो रही है आत्मपदमें लीन हो स्वस्थताको प्राप्त हो ॥६३॥

तदनन्तर जो संसार दशाका निरूपण करनेमें तत्पर शशिकान्ता आर्यिकाके मनोहारी वचनोंसे प्रबोधको प्राप्त हो उत्कृष्ट संवेगको प्राप्त हुई थी ऐसी उत्तम गुणोंकी धारक मन्दोदरी गृहस्थ सम्बन्धी समस्त वेष रचनाको छोड़ अत्यन्त विशुद्ध धर्ममें लीन होती हुई एक सफेद वस्त्रसे आवृत आर्यिका हो गई ॥६४॥ रावणकी बहिन चन्द्रनखा भी इन्हीं आर्यिके पास उत्तम रत्नत्रयको पाकर ब्रतरूपी विशाल-सम्पदाको धारण करने वाली उत्तम साध्वी हुई । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिस दिन मन्दोदरी आदिने दीक्षा ली उस दिन उत्तम हृदयको धारण करने वाली एवं सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान अड़तालीस हजार स्त्रियोंने संयम धारण किया ॥६५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें इन्द्रजित् आदिका दीक्षाका वर्णन करने वाला अठहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७८॥

एकोनाशीतितमं पर्व

ततश्च पद्मनाभस्य लक्ष्मणस्य च पार्थिव । कर्त्तव्या सुमहाभूतिः कथा लङ्काप्रवेशने ॥१॥
महाविमानसङ्घातैर्घटाभिश्च सुदन्तिनाम् । परमैरश्ववृन्दैश्च रथैश्च भवनोपमैः ॥२॥
निकुञ्जप्रतिस्वानबधिरीकृतदिङ्मुखैः । वादित्रनिःस्वनै रभ्यैः शङ्खस्वनविमिश्रितैः ॥३॥
विद्याधरमहाचक्रसमेतौ परमद्युता । बलनारायणौ लङ्कां प्रविष्टाविन्द्रसन्निभौ ॥४॥
दृष्ट्वा तौ परमं हर्षं जनता समुपागता । मेने जन्मान्तरोपात्तधर्मस्य विपुलं फलम् ॥५॥
तस्मिन् राजपथे प्राप्ते बलदेवे सञ्चक्रिणि । व्यापाराः पौरलोकस्य प्रयाताः कापि पूर्वकाः ॥६॥
विकचाक्षैर्मुखैः स्त्रीणां जालमार्गास्तिरोहिताः । सर्नालोःपलराजावैरित्र रेजुनिरन्तरम् ॥७॥
महाकौतुकयुक्तानामाकुलानां निरीक्षणैः । तासां मुखेषु निश्चेरुरिति वाचो मनोहराः ॥८॥
सखि पश्यैव रामोऽसौ राजा दशरथात्मजः । राजत्युत्तमया योऽयं रत्नराशिरिव श्रिया ॥९॥
सम्पूर्णचन्द्रसङ्काशः पुण्डरीकायतेक्षणः । अपूर्वकर्मणां सर्गः कोऽपि स्तुत्यधिकाकृतिः ॥१०॥
इमं या लभते कन्या धन्या रमणमुत्तमम् । कीर्तिस्तम्भस्तया लोके स्थापितोऽयं स्वरूपया ॥११॥
परमश्रितो धर्मशिरं जन्मान्तरे यया । ईदृशं लभते नाथं सा सुनारी कुतोऽपरा ॥१२॥
सहायतां निशास्वस्य या नारी प्रतिपद्यते । सैवैका योपितां मूर्द्धनि वर्त्तते परया तु किम् ॥१३॥
स्वर्गतः प्रच्युता नूनं कल्याणी जनकात्मजा । इमं रमयति श्लाघ्यं पतिमिन्द्रं शचीव या ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! अब राम और लक्ष्मण का महावैभवके साथ लङ्कामें प्रवेश हुआ, सो उसकी कथा करना चाहिए ॥१॥ महाविमानोंके समूह, उत्तम हाथियोंके घण्टा, उत्कृष्ट घोड़ोंके समूह, मन्दिर तुल्य रथ, लतागृहोंमें गूँजने वाली प्रतिध्वनिसे जिनने दिशाएँ बहरी कर दी थीं तथा जो शङ्खके शब्दोंसे मिले थे ऐसे वादित्रोंके मनोहर शब्दोंसे तथा विद्याधरोंके महा चक्रसे सहित, उत्कृष्ट कान्तिके धारक, इन्द्र समान राम और लक्ष्मणने लङ्कामें प्रवेश किया ॥२-४॥ उन्हें देख जनता परम हर्षको प्राप्त हुई और जन्मान्तर में संचित धर्मका महा फल मानती हुई ॥५॥ जब चक्रवर्ती-लक्ष्मणके साथ बलभद्र—श्री राम राज पथमें आये तब नगरवासी जनोके पूर्व व्यापार मानों कहीं चले गये अर्थात् जे अन्य सब कार्य छोड़ इन्हें देखने लगे ॥६॥ जिनके नेत्र फूल रहे थे, ऐसे स्त्रियोंके मुखोंसे आच्छादित भरोखे निरन्तर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो नीलकमल और लाल कमलोंसे ही युक्त हों ॥७॥ जो राम-लक्ष्मणके देखनेमें आकुल हो महा कौतुकसे युक्त थीं ऐसी उन स्त्रियोंके मुखसे इस प्रकार के मनोहर वचन निकलने लगे ॥८॥ कोई कह रही थी कि सखि ! देख, ये दशरथके पुत्र राजा रामचन्द्र हैं जो अपनी उत्तम शोभासे रत्न राशिके समान सुशोभित हो रहे हैं ॥९॥ जो पूर्ण चन्द्रमाके समान हैं, जिनके नेत्र पुण्डरीकके समान विशाल हैं तथा जिनकी आकृति स्तुतिसे अधिक है ऐसे ये राम मानों अपूर्व कर्मों की कोई अद्भुत सृष्टि ही हैं ॥१०॥ जो कन्या इस उत्तम पतिको प्राप्त होती है वही धन्या है तथा उसी सुन्दरीने लोकमें अपनी कीर्तिका स्तम्भ स्थापित किया है ॥११॥ जिसने जन्मान्तरमें चिर काल तक परम धर्मका आचरण किया है वही ऐसे पतिको प्राप्त होती है । उस स्त्रीसे बढ़कर और दूसरी उत्तम स्त्री कौन होगी ? ॥१२॥ जो स्त्री रात्रिमें इसकी सहायताको प्राप्त होती है वही एक मानों स्त्रियोंके मस्तक पर विद्यमान है अन्य स्त्रीसे क्या प्रयोजन है ? ॥१३॥ कल्याणवती जानकी निश्चित ही स्वर्गसे च्युत हुई है जो इन्द्राणीके समान इस प्रशंसनीय पतिको रमण कराती है ॥१४॥

असुरेन्द्रसमो येन रावणो रणमस्तके । साधितो लक्ष्मणः सोऽयं चक्रपाणिर्विराजते ॥१५॥
 भिक्षाञ्जनदलच्छाया कान्तिरस्य बलत्विषा^१ । भिक्षा प्रयागतीर्थस्य ध्वसे शोभां विसारिणीम् ॥१६॥
 चन्द्रोदरसुतः सोऽयं विराधितनरेश्वरः । नययोगेन येनेयं विपुला श्रीरवाप्यते ॥१७॥
 असौ किष्किन्धराजोऽयं सुग्रीवः सत्त्वसङ्गतः । परमं रामदेवेन प्रेम यत्र नियोजितम् ॥१८॥
 अयं स जानकीभ्राता प्रभामण्डलमण्डितः । इन्दुना खेचरेन्द्रेण यो नीतः पदमीदृशम् ॥१९॥
 वीरोऽङ्गदकुमारोऽयमसौ दुर्लभितः परम् । यस्तदा राक्षसेन्द्रस्य विघ्नं कर्तुं समुद्यतः ॥२०॥
 पश्य पश्येममुत्तुङ्गं स्थन्दनं सखि सुन्दरम् । वातेरितमहाध्मातषनाभा यत्र दन्तिनः ॥२१॥
 रणाङ्गणे विपच्छाणां यस्य वानरलक्ष्मणाः । ध्वजयष्टिरलं भीष्मा श्रीशैलोऽयं स मारुतिः ॥२२॥
 एवं वाग्भिर्विचित्राभिः पूज्यमाना महौजसः । राजमार्गं व्यगाहन्त पथनाभादयः सुखम् ॥२३॥
 अथान्तिकस्थितासुक्त्वा पथश्रामरधारिणीम् । पप्रच्छ सादरं प्रेमरसार्द्रहृदयः परम् ॥२४॥
 या सा मद्द्विरहे दुःखं परिप्राप्ता सुदुःसहम् । भामण्डलस्वसा कासाविह देशोऽवतिष्ठते ॥२५॥
 ततोऽसौ रत्नबलयप्रभाजटिलबाहुका । करशाखां प्रसार्योचे स्वामितोषणतत्परः ॥२६॥
 अट्टहासान्विमुञ्चन्तमिमं निर्भरवारिभिः । पुष्पप्रकीर्णनामानं राजन् पश्यति यं गिरिम् ॥२७॥
 नन्दनप्रतिमेऽमुष्मिन्नुद्याने जनकात्मजा । कीर्त्तिशीलपरीवारा रमणी तव तिष्ठति ॥२८॥
 तस्या अपि समीपस्था सखी सुप्रियकारिणी । अङ्गुलीमूर्मिकौरम्यां प्रसार्यैवमभाषत ॥२९॥

कोई कह रही थी कि जिसने रणके अग्रभागमें असुरेन्द्रके समान रावणको जीता है ऐसे ये चक्र हाथमें लिये लक्ष्मण सुशोभित हो रहे हैं ॥१५॥ श्री रामकी धवल कान्तिसे मिली तथा मसले हुए अंजन कणकी समानता रखने वाली इनकी श्यामल कान्ति प्रयाग तीर्थकी विस्तृत शोभा धारण कर रही है ॥१६॥ कोई कह रही था कि यह चन्द्रोदरका पुत्र राजा विराधित है जिसने नीतिके संयोगसे यह विपुल लक्ष्मी प्राप्त की है ॥१७॥ कोई कह रही थी कि किष्किन्धका राजा बकशाली सुग्रीव है जिस पर श्री रामने अपना परम प्रेम स्थापित किया है ॥१८॥ कोई कह रही थी कि यह जानकीका भाई भामण्डल है जो चन्द्रगति विद्याधरके द्वारा ऐसे पदको प्राप्त हुआ है ॥१९॥ कोई कह रही थी कि यह अत्यन्त लड़ाया हुआ वीर अंगद कुमार है जो उस समय रावणके विघ्न करनेके लिए उद्यत हुआ था ॥२०॥ कोई कह रही थी कि हे सखि ! देख-देख इस ऊँचे सुन्दर रथको देख, जिसमें वायुसे कम्पित गरजते मेघके समान हाथी जुते हैं ॥२१॥ कोई कह रही थी कि जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा रणाङ्गणमें शत्रुओंके लिए अत्यन्त भय उपजाने वाली थी ऐसा यह पवनञ्जयका पुत्र श्री शैल-हनुमान है ॥२२॥ इस तरह नाना प्रकारके वचनोंसे जिनकी पूजा हो रही थी तथा जो उत्तम प्रतापसे युक्त थे ऐसे राम आदिने सुखसे राजमार्गमें प्रवेश किया ॥२३॥

अथानन्तर प्रेम रूपी रससे जिनका हृदय आर्द्र हो रहा था ऐसे श्री रामने अपने समीप में स्थित चमर ढोलने वाली स्त्रीसे परम आदरके साथ पूछा कि जो हमारे विरहमें अत्यन्त दुःसह दुःखकी प्राप्ति हुई है ऐसी भामण्डलकी बहिन यहाँ किस स्थानमें विद्यमान है ? ॥२४-२५॥ तदनन्तर रत्नमयी चूड़ियोंकी प्रभासे जिसकी भुजाएँ व्याप्त थीं एवं जो स्वामीको संतुष्ट करनेमें तत्पर थी ऐसी चमर ग्राहिणी स्त्री अङ्गुली पसार कर बोली कि यह जो सामने नीमरनोंके जलसे अट्टहासको छोड़ते हुए पुष्प-प्रकीर्णक नामा पर्वत देख रहे हो इसीके नन्दन वनके समान उद्यान में कीर्ति और शील रूपी परिवारसे सहित आपकी प्रिया विद्यमान है ॥२६-२८॥

उधर सीताके समीपमें भी जो सुप्रिय कारिणी सखी थी वह अंगूठीसे सुरोभित अङ्गुली

१. बलत्विषः म० । २. लक्ष्मणम् म० । ३. मूर्मिकां रम्यां म० ।

आतपत्रमिदं यस्य चन्द्रमण्डलसक्तिभम् । चन्द्रादिद्यप्रतीकाशो धत्ते यश्चैव कुण्डले ॥३०॥
 शरनिर्करसंकशो हारो यस्य विराजते । सोऽयं मनोहरो देवि महाभूतिर्नरोत्तमः ॥३१॥
 परमं त्वद्वियोगेन सुवशत्रे खेदमुद्ग्रहन् । दिग्गजेन्द्र इवाऽऽयाति पद्मः पद्मनिरीक्षणे ॥३२॥
 मुखारविन्दमालोक्य प्राणनाथस्य जानकी । चिरात्स्वप्नमिव प्राप्तं मेने भूयो विषादिनी ॥३३॥
 उत्तीर्य द्विरदापीशास्पन्ननाभः ससन्भ्रमः । प्रमोदमुद्ग्रहन्सीतां ससार विकवेक्षणः ॥३४॥
 घनवृन्दादिवोत्तीर्य चन्द्रवह्नाङ्गलायुधः । रोहिण्या इव वैदेह्यास्तुष्टिं चक्रे समाव्रजन् ॥३५॥
 प्रत्यासन्नत्वमायातं ज्ञात्वा नाथं ससन्भ्रमा । मृगीवदाकुला सीता समुत्तस्थी महाशक्तिः ॥३६॥
 भूरेणुधूसरीभूतकेशीं मलिनदेहिकाम् । कालनिर्गलितच्छायबन्धूकसदशाधराम् ॥३७॥
 स्वभावेनैव तन्वह्नीं विरहेण विशेषतः । तथापि किञ्चिदुच्छ्वासं दर्शनेन समागताम् ॥३८॥
 आलिङ्गतीमिव किन्धैर्मयूखैः करजोद्गतैः । स्नपयन्तीमिवोद्ध्वेलविलोचलनभरीचिभिः ॥३९॥
 लिम्पन्तीमिव लावण्यसम्पदा क्षणवृद्धया । वाजयन्तीमिवोच्छ्वासैर्हर्षनिर्भरनिर्गतैः ॥४०॥
 पृथुलारोहवच्छोणीं नेत्रविश्रामभूमिकाम् । पाणिपल्लवसौन्दर्यजितश्रीपाणिपङ्कजाम् ॥४१॥
 सौभाग्यरत्नसम्भूतिधारिणीं धर्मरक्षिताम् । सम्पूर्णचन्द्रवदनां कलङ्कपरिवर्जिताम् ॥४२॥
 सौदामिनीसदृच्छायामतिधोरत्वयोगिनीम् । मुखचन्द्रान्तरोद्भूतस्फीतनेत्रसरोरुहाम् ॥४३॥
 कलुषत्वविनिर्मुक्तां समुन्नतपयोधराम् । चापयष्टिमनङ्गस्य चक्रतापरिवर्जिताम् ॥४४॥

पसार कर इस प्रकार बोली कि जिनके ऊपर यह चन्द्रमण्डलके समान छत्र फिर रहा है, जो चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशमान कुण्डलोंको धारण कर रहे हैं तथा जिनके वक्षःस्थलमें शरद्भ्रतुके निर्करके समान हार शोभा दे रहा है, हे कमल लोचने देवि ! वही ये महा वैभवके धारी नरोत्तम श्री राम तुम्हारे वियोगसे परम खेदको धारण करते हुए दिग्गजेन्द्रके समान आ रहे हैं ॥३६-३९॥ अत्यधिक विवादसे युक्त सीताने चिरकाल बाद प्राणनाथका मुखकमल देख ऐसा माना, मानो स्वप्न ही प्राप्त हुआ हो ॥३३॥ जिनके नेत्र विकसित हो रहे थे ऐसे राम शीघ्र ही गजराजसे उतर कर हर्ष धारण करते हुए सीताके समीप चले ॥३४॥ जिसप्रकार मेघमण्डल से उतर कर आता हुआ चन्द्रमा रोहिणीको संतोष उत्पन्न करता है उसी प्रकार हाथीसे उतर कर आते हुए श्री रामने सीताको संतोष उत्पन्न किया ॥३५॥ तदनन्तर रामको निकट आया देख महा संतोषको धारण करने वाली सीता संभ्रमके साथ मृगीके समान आकुल होती हुई उठ कर खड़ी हो गई ॥३६॥

अथानन्तर जिसके केश पृथिवीकी धूलिसे धूसरित थे, जिसका शरीर मलिन था, जिसके ओठ मुरझाये हुए बन्धूकके फूलके समान निष्प्रभ थे, जो स्वभावसे ही दुबली थी और उस समय विरहके कारण जो और भी अधिक दुबली हो गई थी, यद्यपि दुबली थी तथापि पतिके दर्शनसे जो कुल्ल-कुल्ल उल्लासको धारण कर रही थी, जो नखोंसे उत्पन्न हुई सचिक्कण किरणोंसे मानो आलिङ्गन कर रही थी, खिले हुए नेत्रोंकी किरणोंसे मानो अभिषेक कर रही थी, क्षण-क्षणमें बढ़ती हुई लावण्य रूप सम्पत्तिके द्वारा मानो लिप्त कर रही थी और हर्षके भारसे निकले हुए उच्छ्वासोंसे मानो पङ्खा ही चल रही थी, जिसके नितम्ब स्थूल थी, जो नेत्रोंके विश्राम करनेकी भूमि थी, जिसने कर-किसलयके सौन्दर्यसे लक्ष्मीके हस्त-कमलको जीत लिया था, जो सौभाग्यरूपी रत्न-संपदाकी धारण कर रही थी, धर्मने ही जिसकी रक्षा की थी, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, अत्यन्त धैर्यगुणसे सहित थी, जिसके मुखरूपी चन्द्रमाके भीतर विशाल नेत्ररूपी कमल उत्पन्न हुए थे, जो कलुषतासे रहित थी, जिसके स्तन अत्यन्त उन्नत थे, और जो कामदेवकी

आयान्तीमन्तिकं किञ्चिद्देहीमापराजितः । विलोक्य निरुपाख्यानं भावं कमपि सङ्गतः ॥४५॥
 विनयेन समासाद्य रमणं रतिसुन्दरी । बाष्पाकुलेक्षणा तस्थौ पुरः सङ्गमनाकुला ॥४६॥
 शर्चाव सङ्गता शर्कं रतिर्वा कुसुमायुधम् । निजधर्ममहिंसा नु सुभद्रा भरतेश्वरम् ॥४७॥
 चिरस्यालोवय तां पद्मः सङ्गमं नूतनं विदन् । मनोरथशतैर्लब्धो फलभारप्रणामिभिः ॥४८॥
 हृदयेन वहन् कम्पं चिरासङ्गस्वभावजम् । महाद्युतिधरः कान्तः सम्भ्रान्ततरलेक्षणः ॥४९॥
 केयूरदृष्टमूलाभ्यां भुजाभ्यां क्षणमात्रतः । सज्जातपीवरत्वाम्यामालिलिङ्ग रसाधिकम् ॥५०॥
 तामालिङ्गन्विलीनो नु मग्नो नु सुखसागरे । हृदयं सप्रविष्टो नु पुनर्विरहतो भयात् ॥५१॥
 प्रियकण्ठसमासक्तबाहुपाशा सुमानसा । कल्पपादपसंसक्तहेमवर्णाव सा बभौ ॥५२॥
 उद्भूतपुलकस्यास्य सङ्गमेनातिसौख्यतः । मिथुनस्थोपमां प्राप्तं तदेव मिथुनं परम् ॥५३॥
 रष्ट्रा सुविहितं सीतारामदेवसमागमम् । तमम्बरगता देवा मुमुक्षुः कुसुमाञ्जलिम् ॥५४॥
 गन्धोदकं च संगुञ्जद् भ्रान्तभ्रमरभीरुकम् । विमुच्य मेघपृष्ठस्थाः सप्तजुभारतीरिति ॥५५॥
 अहो निरुपमं धैर्यं सीतायाः साधुचेतसः । अहो गाम्भीर्यमचोभमहो शीलमनोज्ञता ॥५६॥
 अहो नु व्रतनैष्कम्यमहो सत्वं समुन्नतम् । मनसाऽपि यथा नेष्टो रावणः शुद्धवृत्त्या ॥५७॥
 सम्भ्रान्तो लक्ष्मणस्तावद् वैदेह्याश्चरणद्वयम् । अभिवाद्य पुरस्तस्थौ विनयानतविग्रहः ॥५८॥

मानो कुटिलतासे रहित-सीधी धनुषयष्टि हो ऐसी सीताको कुछ समीप आती देख श्रीराम किसी अनिर्वचनीयभावको प्राप्त हुए ॥३८-४५॥ रतिके समान सुन्दरी सीता विनय पूर्वक पतिके समीप जाकर मिलनेकी इच्छासे आकुल होती हुई सामने खड़ी हो गई । उस समय उसके नेत्र हर्षके अश्रुओंसे व्याप्त हो रहे थे ॥४६॥ उस समय रामके समीप खड़ी सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो इन्द्रके समीप इन्द्राणी ही आई हो, कामके समीप मानो रति ही आई हो, जिन धर्मके समीप मानो अहिंसा ही आई हो और भरत चक्रवर्तिके समीप मानो सुभद्रा ही आई हो ॥४७॥ जो फलके भारसे नम्रीभूत हो रहे थे ऐसे सैकड़ों मनोरथोंसे प्राप्त सीताको चिरकाल बाद देखकर रामने ऐसा समझा मानो नवीन समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥४८॥

अथानन्तर जो चिरकाल बाद होने वाले समागमके स्वभावसे उत्पन्न हुए कम्पनको हृदयमें धारण कर रहे थे, जो महा दीप्तिके धारक थे, सुन्दर थे और जिनके चञ्चल नेत्र घूम रहे थे ऐसे श्रीरामने अपनी उन भुजाओंसे रसनिमग्न हो सीताका आलिङ्गन किया, जिनके कि मूल भाग बाजूबन्दोंसे अलंकृत थे तथा क्षणमात्रमें ही जो स्थूल हो गई थी ॥४९-५०॥ सीताका आलिङ्गन करते हुए राम क्या विलीन हो गये थे, या सुख रूपी सागरमें निमग्न हो गये थे या पुनः विरहके भयसे मानो हृदयमें प्रविष्ट हो गये थे ॥५१॥ पतिके गलेमें जिसके भुजपाश पड़े थे, ऐसी प्रसन्न चित्तकी धारक सीता उस समय कल्पवृक्षसे लिपटी सुवर्णलताके समान सुशोभित हो रही थी ॥५२॥ समागमके कारण बहुत भारी सुखसे जिसे रोमाञ्च उठ आये थे ऐसे इस दम्पतीकी उपमा उस समय उसी दम्पतीको प्राप्त थी ॥५३॥ सीता और श्रीरामदेवका सुखसमागम देख आकाशमें स्थित देवोंने उनपर पुष्पाञ्जलियाँ छोड़ीं ॥५४॥ मेघोंके ऊपर स्थित देवोंने, गुञ्जारके साथ घूमते हुए भ्रमरोंको भय देनेवाला गन्धोदक वर्षा कर निम्नलिखित वचन कहे ॥५५॥ वे कहने लगे कि अहो ! पवित्र चित्तकी धारक सीताका धैर्य अनुपम है । अहो ! इसका गाम्भीर्य चोभ रहित है, अहो ! इसका शीलव्रत कितना मनोज्ञ है ? अहो ! इसकी व्रत सम्बन्धी दृढ़ता कैसी अद्भुत है ? अहो ! इसका धैर्य कितना उन्नत है कि शुद्ध आचारको धारण करने वाली इसने रावणको मनसे भी नहीं चाहा ॥५६-५७॥

तदनन्तर जो हड़बड़ये हुए थे और विनयसे जिनका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे

१. रामः । २. अहोणुव्रतनैष्कम्य -ख० ज० ।

पुरन्दरसमच्छायं दृष्ट्वा चक्रधरं तदा । अस्त्रान्वितेक्षणा साध्वी जानकी परिपस्वजे ॥५६॥
 उवाच च यथा भद्रं गदितं श्रमणोत्तमैः । महाज्ञानधरैः प्राप्तं पदमुच्चैस्तथा त्वया ॥६०॥
 स त्वं चक्राङ्गराज्यस्य भाजनस्वमुपागतः । न हि निर्ग्रन्थसम्भूतं वचनं जायतेऽन्यथा ॥६१॥
 एषोऽसौ बलदेवस्त्वं तव ज्येष्ठः समागतः । विरहानलमग्नाया येन मे जनिता कृपा ॥६२॥
 दङ्गुमाथांशुविशदद्युतिस्तावदुपाययी । स्वसुःसमीपधरणीं श्रीभामण्डलमण्डितः ॥६३॥
 दृष्ट्वा तं मुदितं सीता सौदर्यस्नेहनिर्भरा । रणप्रत्यागतं वीरं विनीतं परिपस्वजे ॥६४॥
 सुग्रीवो वायुतनयो नलो नीलोऽङ्गदस्तथा । विराधितोऽथ चन्द्राभः सुषेणो जाम्बवो बली ॥६५॥
 जीमूतशल्यदेवाद्यास्तथा परमस्त्रेचराः । संश्राव्य निजनामानि मूर्ध्ना कृत्वाभिवादनम् ॥६६॥
 विलेपनानि चारूणि वस्त्राण्याभरणानि च । पारिजातादिजातानि माल्यानि सुरभीणि च ॥६७॥
 सीताचरणराजावयुगलान्तिकभूतले । अतिष्ठिपन् सुवर्णादिपात्रस्थानि प्रमोदिनः ॥६८॥

उपजातिवृत्तम्

ऊचुश्च देवि त्वमुदारभावा सर्वत्र लोके प्रथितप्रभावा ।
 श्रिया महत्या गुणसम्पदा च प्राप्ता पदं तुङ्गतमं मनोज्ञम् ॥६९॥
 देवस्तुत्ताचारविभूतिधानी प्रीताऽधुना मङ्गलभूतदेहा ।
 जीया^२ जयश्रीर्बलदेवयुक्ता प्रभारवेर्यद्रुदात्तलीला ॥७०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतासमागमाभिधानं नामैकोनशीतितमं पर्व ॥७६॥

लक्ष्मण सीताके चरण युगलको नमस्कार कर सामने खड़े हो गये ॥५८॥ उस समय इन्द्रके समान कान्तिके धारक चक्रधरको देख साध्वी सीताके नेत्रोंमें वात्सल्यके अश्रु निकल आये और उसने बड़े स्नेहसे उनका आलिङ्गन किया ॥५९॥ साथ ही उसने कहा कि हे भद्र ! महाज्ञानके धारक मुनियोंने जैसा कहा था वैसा ही तुमने उच्च पद प्राप्त किया है ॥६०॥ अब तुम चक्र चिह्नित राज्य—नारायण पदकी पात्रताको प्राप्त हुए हो । सच है कि निर्ग्रन्थ मुनियोंसे उत्पन्न वचन कभी अन्यथा नहीं होते ॥६१॥ यह तुम्हारे बड़े भाई बलदेव पदको प्राप्त हुए हैं जिन्होंने विरहाग्निमें डूबी हुई मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है ॥६२॥ इतनेमें ही चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिको धारण करनेवाला भामण्डल बहिनकी समीपवर्ती भूमिमें आया ॥६३॥ प्रसन्नतासे भरे, रणसे लौटे उस विजयी वीरको देख, भाईके स्नेहसे युक्त सीताने उसका आलिङ्गन किया ॥६४॥ सुग्रीव, हनुमान्, नल, नील, अङ्गद, विराधित, चन्द्राभ, सुषेण, बलवान् जाम्बव, जीमूत और शल्यदेव आदि उत्तमोत्तम विद्याधरोंने अपने-अपने नाम सुनाकर सीताको शिरसे अभिवादन किया ॥६५-६६॥ उन सबने हर्षसे युक्त हो सीताके चरणयुगलकी समीपवर्ती भूमिमें सुवर्णादिके पात्रमें स्थित सुन्दर विलेपन, वस्त्र, आभरण और पारिजात आदि वृत्तोंकी सुगन्धित मालाएँ भेट कीं ॥६७-६८॥ तदनन्तर सबने कहा कि हे देवि ! तुम उत्कृष्ट भावको धारण करने वाली हो, तुम्हारा प्रभाव समस्त लोकमें प्रसिद्ध है तथा तुम बहुत भारी लक्ष्मी और गुणरूप सम्पदाके द्वारा अत्यन्त श्रेष्ठ मनोहर पदको प्राप्त हुई हो ॥६९॥ तुम देवोंके द्वारा स्तुत आचाररूपी विभूतिको धारण करनेवाली हो, प्रसन्न हो, तुम्हारा शरीर मङ्गल रूप है, तुम विजय लक्ष्मी स्वरूप हो, उत्कृष्ट लीलाकी धारक हो, ऐसी हे देवि ! तुम सूर्यकी प्रभाके समान बलदेवके साथ चिरकाल तक जयवन्त रहो ॥७०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें सीताके समागमका वर्णन करने थाला उन्यासीवें पर्व समाप्त हुआ ॥७६॥

अशीतितमं पर्व

ततस्तां सङ्गमादित्यप्रबोधितमुखाम्बुजाम् । पाणावादाय हस्तेन समुत्तरथौ हलायुधः ॥१॥
 ऐरावतोपमं नागमारोप्य स्ववशानुगम् । आरोपयन् महातेजाः समग्रां कान्तिसुदहन् ॥२॥
 चलद्वण्टाभिरामस्य नागमेघस्य पृष्ठतः । जानकीरोहिणीयुक्तः शुशुभे पञ्चचन्द्रमाः ॥३॥
 समाहितमतिः प्रीतिं दधानोऽत्यर्थमुन्नताम् । पूर्यमाणो जनौघेन महद्द्वयं परितो वृतः ॥४॥
 महद्भिरनुयातेन खेचरैरनुरागिभिः । अन्वितश्चक्रहस्तेन लक्ष्मणेनोत्तमत्विषा ॥५॥
 रावणस्य विमानाभं भवनं भुवनद्युतेः^१ । पञ्चनाभः परिप्राप्तः प्रविष्टश्च विचक्षणः ॥६॥
 अपश्यच्च गृहस्थास्य मध्ये परमसुन्दरम् । भवनं शान्तिनाथस्य युक्तविस्तारतुङ्गतम् ॥७॥
 हेमस्तम्भसद्वनेन रचितं विकटश्रुति । नानारत्नसमाकीर्णभित्तिभागं मनोरमम् ॥८॥
 विदेहमध्यदेशस्थमन्दराकारशोभितम् । क्षीरोदकेन^२पटलच्छायां नयनबन्धनम् ॥९॥
 कणक्किङ्किणिकाजालमहाप्लवजविराजितम् । मनोज्ञरूपसङ्कीर्णमशक्यपरिवर्णनम् ॥१०॥
 उत्तीर्य नागतो मत्तनागेन्द्रसमविक्रमः । प्रसन्ननयनः श्रीमान् सद्दिवेश सहाङ्गनः ॥११॥
 कायोत्सर्गविधानेन प्रलम्बितभुजद्वयः । प्रशान्तहृदयः कृत्वा सामायिकपरिग्रहम् ॥१२॥
 बद्ध्वा करद्वयाम्भोजकुड्मलं सह सीतया । अघप्रमथनं पुण्यं रामः स्तोत्रमुदाहरत् ॥१३॥

अथानन्तर समागमरूपी सूर्यसे जिसका मुखकमल खिल उठा था ऐसी सीताका हाथ अपने हाथसे पकड़ श्रीराम उठे और इच्छानुकूल चलनेवाले ऐरावतके समान हाथी पर बैठकर स्वयं उसपर आरूढ़ हुए । महातेजस्वी तथा सम्पूर्ण कान्तिको धारण करनेवाले श्रीराम हिलते हुए घंटोंसे मनोहर हाथीरूपी मेघपर सीतारूपी रोहिणीके साथ बैठे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१-३॥ जिनकी बुद्धि स्थिर थी, जो अत्यधिक उन्नत प्रीतिको धारण कर रहे थे, बहुत भारी जनसमूह जिनके साथ था, जो चारों ओरसे बहुत बड़ी सम्पदासे घिरे थे, बड़े-बड़े अनुरागी विधाधरोंसे अनुगत, उत्तम कान्तियुक्त चक्रपाणि लक्ष्मणसे जो सहित थे तथा अतिशय निपुण थे ऐसे श्रीराम, सूर्यके विमान समान जो रावणका भवन था उसमें जाकर प्रविष्ट हुए ॥४-६॥ वहाँ उन्होंने भवनके मध्यमें स्थित श्रीशान्तिनाथ भगवान्का परमसुन्दर मन्दिर देखा । वह मन्दिर योग्य विस्तार और ऊँचाईसे सहित था, स्वर्णके हजार खम्भोंसे निर्मित था, विशाल कान्तिका धारक था, उसकी दीवारोंके प्रदेश नानाप्रकारके रत्नोंसे युक्त थे, वह मत्तको आनन्द देनेवाला था, विदेह क्षेत्रके मध्यमें स्थित मेरुपर्वतके समान था, क्षीर समुद्रके फेनपटलके समान कान्तिवाला था, नेत्रोंको बाँधनेवाला था, रुणभुग करनेवाली किङ्किणियोंके समूह एवं बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे सुशोभित था, मनोज्ञरूपसे युक्त था तथा उसका वर्णन करना अशक्य था ॥७-१०॥

तदनन्तर जो मत्तगजराजके समान पराकमी थे, निर्मल नेत्रोंके धारक थे तथा श्रेष्ठ लक्ष्मीसे सहित थे, ऐसे श्रीरामने हाथीसे उतरकर सीताके साथ उस मन्दिरमें प्रवेश किया ॥११॥ तत्पश्चात् कायोत्सर्ग करनेके लिए जिन्होंने अपने दोनों हाथ नीचे लटका लिये थे और-जिनका हृदय अत्यन्त शान्त था, ऐसे श्रीरामने सामायिककर सीताके साथ दोनों करकमलरूपी कुड्मलोंको जोड़कर श्रीशान्तिनाथ भगवान्का पापभञ्जक पुण्यवर्धक स्तोत्र पढ़ा ॥१२-१३॥

१. भवनद्युतेः म० । २. क्षीरोदकेन परल -म० ।

यस्यावतरणे शान्तिर्जाता सर्वत्र विष्टये । प्रलयं सर्वरोगाणां कुर्वती घृत्तिकारिणी ॥१४॥
 चलित्वाऽऽसनकैरिन्द्रैरागत्योत्तमभूतिभिः । यो मेरुशिखरे हृष्टैरभिषिक्तः सुभक्तिभिः ॥१५॥
 'चक्रेणारिगणं जिप्त्वा बाह्यं बाह्येन यो नृपः । आन्तरं ध्यानचक्रेण जिगाय मुनिपुङ्गवः ॥१६॥
 मृत्युजन्मजराभीतिखड्गाद्यायुधचञ्चलम् । भवासुरं परिध्वंस्य योऽग्रासिद्धिपुरं शिवम् ॥१७॥
 उपमारहितं नित्यं शुद्धमात्माश्रयं परम् । प्राप्तं निर्वाणसाम्राज्यं येनात्यन्तदुरासदम् ॥१८॥
 तस्मै ते शान्तिनाथाय त्रिजगच्छान्तिहेतवे । नमस्त्रिधा महेशाय प्राप्त्यात्थन्तिकशान्तये ॥१९॥
 चराचरस्य सर्वस्य नाथ त्वमतिवत्सलः^१ । शरण्यः परमन्नाता समाधिद्युतिबोधिदः ॥२०॥
 गुरुर्वन्धुः प्रणेता च स्वमेकः परमेश्वरः । चतुर्णिकायदेवानां सशक्राणां समर्चितः ॥२१॥
 त्वं कर्ता धर्मतीर्थस्य येन भव्यजनः सुखम् । प्राप्नोति परमं स्थानं सर्वदुःखविमोक्षदम् ॥२२॥
 नमस्ते देवदेवाय नमस्ते स्वस्तिकर्मणे । नमस्ते कृतकृत्याय लब्धलभ्याय ते नमः ॥२३॥
 महाशान्तिस्वभावस्थं सर्वदोषविवर्जितम् । प्रसीद भगवन्नुच्चैः पदं नित्यं विदेहिर्नः ॥२४॥
 एवमादि पठन् स्तोत्रं पद्मः पद्मयातेक्षणः । चैत्यं प्रदक्षिणं चक्रे दक्षिणः पुण्यकर्मणि ॥२५॥
 प्रह्लाहा पृष्ठतस्तस्य जानकी स्तुतितत्परः । समाहितकराम्भोजकुड्मला भाविनी स्थिता ॥२६॥

स्तोत्र पाठ करते हुए उन्होंने कहा कि जिनके जन्म लेते ही संसारमें सर्वत्र ऐसी शान्ति छा गई कि जो सब रोगोंका नाश करनेवाली थी तथा दीप्तिको बढ़ानेवाली थी ॥१४॥ जिनके आसन कम्पायमान हुए थे तथा जो उत्तम विभूतिसे युक्त थे ऐसे हर्षसे भरे भक्तिमन्त इन्द्रोंने आकर जिनका मेरुके शिखर पर अभिषेक किया था ॥१५॥ जिन्होंने राज्यअवस्थामें बाह्यचक्रके द्वारा बाह्यशत्रुओंके समूहको जीता था और मुनि होने पर ध्यानरूपी चक्रके द्वारा अन्तरङ्ग शत्रु-समूहको जीता था ॥१६॥ जो जन्म, जरा, मृत्यु, भयरूपी खड्ग आदि शस्त्रोंसे चञ्चल संसाररूपी असुरको नष्ट कर कल्याणकारी सिद्धिपर मोक्षको प्राप्त हुए थे ॥१७॥ जिन्होंने उपमा रहित, नित्य, शुद्ध, आत्माश्रय, उत्कृष्ट और अत्यन्त दुरासद निर्वाणका साम्राज्य प्राप्त किया था, जो तीनों लोकोंकी शान्तिके कारण थे, जो महा ऐश्वर्यसे सहित थे तथा जिन्होंने अनन्त शान्ति प्राप्त की थी ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्के लिए मन, वचन, कायसे नमस्कार हो ॥१८-१९॥ हे नाथ ! आप समस्त चराचर विश्वसे अत्यन्त स्नेह करनेवाले हैं, शरणदाता हैं, परम रक्षक हैं, समाधिरूप तेज तथा रत्नत्रयरूपी बोधिको देनेवाले हैं ॥२०॥ तुम्हीं एक गुरु हो, बन्धु हो, प्रणेता हो, परमेश्वर हो, इन्द्र सहित चारों निकायोंके देवोंसे पूजित हो ॥२१॥ हे भगवन् ! आप उस धर्मरूपी तीर्थके कर्ता हो जिससे भव्य जीव अनायास ही समस्त दुःखोंसे छुटकारा देनेवाला परम स्थान-मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥२२॥ हे नाथ ! आप देवोंके देव हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कल्याणरूप कार्यके करनेवाले हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कृतकृत्य हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थोंको प्राप्त कर चुके हैं इसलिये आपको नमस्कार हो ॥२३॥ हे भगवन् ! प्रसन्न हूजिये और हमलोगोंके लिये महाशान्तिरूप स्वभावमें स्थित, सर्वदोष रहित, उत्कृष्ट तथा नित्यपद-मोक्षपद प्रदान कीजिये ॥२४॥ इसप्रकार स्तोत्र पाठ पढ़ते हुए कभलायतलोचन तथा पुण्य कर्ममें दक्ष श्रीरामने शान्तिजिनेन्द्रकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी ॥२५॥ जिसका शरीर नम्र था, जो स्तुति पाठ करनेमें तत्पर थी तथा जिसने हस्तकमल जोड़ रखे थे ऐसी भाव भीनी सीता श्रीरामके पीछे खड़ी थी ॥२६॥

१. 'चक्रेण यः शत्रुभयङ्करेण जिप्त्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।

समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥' बृहत्स्वयंभूस्तोत्रे स्वामिसमन्तभद्रस्य ।

२. भावासुरं म० । ३. यो नात्यन्त- म० । ३. विह्वलः म० । ४. नः = अस्मभ्यम् ।

महादुन्दुभिर्निर्घोषप्रतिमे रामनिस्वने । जानकीस्वनितं जज्ञे वीणानिःकगकोमलम् ॥२७॥
 सखिशक्यस्ततश्चाकी सुग्रीवो रश्मिमण्डलः । तथा वायुसुताद्याश्च मङ्गलस्तोत्रतत्परः ॥२८॥
 बद्धपाणिपुटा धन्या भाविता जिनपुङ्गवे । गृहीतमुकुलाम्भोजा इव राजन्ति ते तदा ॥२९॥
 विमुञ्चस्तु स्वनं तेषु सुरजस्वनसुन्दरम् । मेघध्वनिकृताशङ्का ननृतुरच्छेकबर्हिणः ॥३०॥
 कृत्वा स्तुतिं प्रणामं च भूयो भूयः सुचेतसः । यथासुखं समालीनाः प्राङ्गणे जिनवेरमनः ॥३१॥
 यावत्ते वन्दनां चक्रुस्तावद्वाजा विभीषणः । सुमालिमात्यवद्वत्नश्रवप्रभृतिबान्धवान् ॥३२॥
 संसारानित्यताभावदेशनात्यन्तकोविदः । परिसान्त्वनमानिन्ये महादुःखनिपीडितान् ॥३३॥
 आर्यो तात स्वकर्मात्थफलभोजिषु जन्तुषु । विधीयते मुधा शोकः क्रियतां स्वहिते मनः ॥३४॥
 दृष्टागत्सा महाश्चिन्ता यूथमेवं विचक्षणः । विस्थ जातो यदि प्राणी मृत्युं न प्रतिपद्यते ॥३५॥
 पुष्पसौन्दर्यसङ्काशं यौवनं दुर्भ्यतिक्रमम् । पल्लवश्रीसमालम्बमीर्जीवितं विद्युदध्रुवम् ॥३६॥
 जलबुद्बुदसंयोगप्रतिमा^१ बन्धुसङ्गमाः । सन्ध्यारागसमा भोगाः क्रियाः स्वप्नक्रियोपमाः ॥३७॥
 यदि नाम प्रपद्येरन् जन्तवो नैव^२ पञ्चताम् । कथं^३ स भवतां योत्रमागतः^४ स्यान्नवान्तरात् ॥३८॥
 आत्मनोऽपि यदा नाम नियमाद्दिशाराकता । तदा कथमिवात्यर्थं क्रियते शोकमूढता ॥३९॥
 एवमेतदिति ध्यानं संसारान्तरगोचरम् । सतां शोकविनाशाय पर्याप्तं क्षणमात्रकम् ॥४०॥
 भाषितान्यनुभूतानि दृष्टानि च सुबन्धुभिः । समं वृत्तानि साधूनां तापयन्ति मनः क्षणम् ॥४१॥

रामका स्वर महादुन्दुभिके स्वरके समान अत्यन्त परुष था तो सीताका स्वर वीणाके स्वरके समान अत्यन्त कोमल था ॥२७॥ तदनन्तर विशाल्या सहित लक्ष्मण, सुग्रीव, भामण्डल तथा हनुमान् आदि सभी लोग मङ्गलमय स्तोत्र पढ़नेमें तत्पर थे ॥२८॥ जिन्होंने हाथ जोड़ रक्खे थे तथा जो जिनेन्द्र भगवान्में अपनी भावना लगाये हुए थे, ऐसे वे सब धन्यभाग विद्याधर उस समय ऐसे जान पड़ते थे मानो कमलकी बोंडियों ही धारण कर रहे हो ॥२९॥ जब वे मृदङ्ग ध्वनिके समान सुन्दर शब्द छोड़ रहे थे तब चतुर मयूर मेघगर्जनाकी शङ्का करते हुए नृत्य कर रहे थे ॥३०॥ इसप्रकार बार-बार स्तुति तथा प्रणाम कर शुद्ध हृदयको धारण करनेवाले वे सब जिन मन्दिरके चौकमें यथायोग्य सुखसे बैठ गये ॥३१॥

जब तक इन सबने वन्दनाकी तब तक राजा विभीषणने सुमाली, माल्यवान् तथा रत्नश्रवा आदि परिवारके लोगोंको जो कि महादुःखसे पड़ित हो रहे थे सान्त्वना दी । विभीषण संसारकी अनित्यताका भाव बतलानेमें अत्यन्त निपुण था ॥३२-३३॥ उसने सान्त्वना देते हुए कहा कि हे आर्यो ! हे तात ! संसारके प्राणी अपने-अपने कर्मके अनुसार फलको भोगते ही हैं अतः शोक करना व्यर्थ है आत्महितमें मन लगाइए ॥३४॥ आप लोग तो आगमके दृष्टा, विशाल हृदय और विज्ञापुरुष हैं अतः जानते हैं कि उत्पन्न हुआ प्राणी मृत्युको प्राप्त होता है या नहीं ॥३५॥ जिसका वर्णन करना बड़ा कठिन है ऐसा यौवन फूलके सौन्दर्यके समान है, लक्ष्मी पल्लवकी शोभाके समान है, जीवन बिजलीके समान अनित्य है ॥३६॥ बन्धु जनोंके समागम जलके बबूलेके समान हैं, भोग सन्ध्याकी लालीके तुल्य है, और क्रियाएँ स्वप्नकी क्रियाओंके समान हैं ॥३७॥ यदि ये प्राणी मृत्युको प्राप्त नहीं होते तो वह रावण भवान्तरसे आपके गोत्रमें कैसे आता ? ॥३८॥ अरे ! जब हम लोगोंको भी एक दिन नियमसे नष्ट हो जाना है तब यह शोक विषयक मूर्खता किस लिए की जाती है ? ॥३९॥ 'यह ऐसा है' अर्थात् नष्ट होना इसका स्वभाव ही है इस प्रकार संसारके स्वभावका ध्यान करना सत्पुरुषोंके शोकको क्षणमात्रमें नष्ट करनेके लिए पर्याप्त है । भावार्थ—जो ऐसा विचार करते हैं कि संसारके पदार्थ पश्वर ही हैं उनका शोक क्षण मात्रमें नष्ट हो जाता है ॥४०॥ बन्धुजनोंके साथ कथित,

भवत्येव हि शोकेन सङ्गो बन्धुवियोगिनः । बलादिव विशालेन स्मृतिविभ्रंशकारिणा ॥४२॥
 तथाऽप्यनादिकेऽमुष्मिन्संसारे भ्रमतो मम । केन बान्धवतां प्राप्ता इति ज्ञात्वा सुगुह्यताम् ॥४३॥
 यथा शक्त्या जिनेन्द्राणां भवध्वंसविधायिनाम् । विधाय शासने चित्तमात्मा स्वार्थे नियुज्यताम् ॥४४॥
 एवमादिभिरालापैर्भुरैर्हृदयङ्गमैः । परिसान्द्रव्य समाधाय बन्धून् कृत्ये गृहं गतः ॥४५॥
 अग्रां देवीसहस्रस्य व्यवहारविचक्षणाम् । प्रजिघाय विदग्धाख्यां महिषीं हलिनोऽन्तिकम् ॥४६॥
 आगत्य साभिजातेन प्रणामेन कृतार्थताम् । ससीती भ्रातरौ वाक्यमिदं क्रमविदब्रवीत् ॥४७॥
 अस्मत्स्वामिगृहं देव स्वगृहाशयलक्षितम् । कर्तुं पादतलासङ्गान्महानुग्रहमर्हसि ॥४८॥
 वर्तते सङ्कथा यावत्तेषां वार्तासमुद्भवा । स्वयं विभीषणस्तावत्प्राप्तोऽत्यन्तमहादरः ॥४९॥
 उच्यते गृहं यामः प्रसादः क्रियतामिति । तेनोक्तः सानुगः पद्मस्तद्गृहं गन्तुमुद्यतः ॥५०॥
 यानैर्नानाविधैस्तुङ्गैर्जैरम्बुदसन्निभैः । तरङ्गञ्चलैरश्वै रथैः प्रासादशोभिभिः ॥५१॥
 विधाय कृतसंस्कारं राजमार्गं निरन्तरम् । विभीषणगृहं तेन प्रस्थितास्ते यथाक्रमम् ॥५२॥
 प्रलयाम्बुदनिर्घोषास्त्सूर्यशब्दाः समुद्रताः । शङ्खकोटिरवोन्मिशा गङ्गरप्रतिवादिनः ॥५३॥
 भम्भाभेरीमृदङ्गानां पटहानां सहस्रशः । लम्पाककाहलाधुनधुदुन्दुभीनां च निःस्वनैः ॥५४॥
 अम्लाम्लातकढकानां हैकानां च निरन्तरम् । गुञ्जाहुङ्कारसुन्दानां तथा पूरितमम्बरम् ॥५५॥
 स्फातैर्हलहलाशब्दैरट्टहासैश्च सन्ततैः । नानावाहननादैश्च दिगन्ता अधिरीकृताः ॥५६॥

अनुभूत और दृष्ट पदार्थ सत् पुरुषोंके मनको एक क्षण ही सन्ताप देते हैं अधिक नहीं ॥४१॥ जिसका बन्धु-जनोके साथ वियोग होता है यद्यपि उसका स्मृतिको नष्ट करनेवाले विशाल शोकके साथ समागम मानो बल पूर्वक ही होता है तथापि इस अनादि संसारमें भ्रमण करते हुए मेरे कौन-कौन लोग बन्धु नहीं हुए हैं ऐसा विचार कर उस शोकको छिपाना चाहिए ॥४२-४३॥ इसलिए संसारको नष्ट करनेवाले श्री जिनेन्द्रदेवके शासनमें यथाशक्ति मन लगाकर आत्माको आत्माके हितमें लगाइए ॥४४॥ इत्यादि हृदयको लगने वाले मधुर वचनोंसे सबको काममें लगाकर विभीषण अपने घर गया ॥४५॥

घर आकर उसने एक हजार स्त्रियोंमें प्रधान तथा सब व्यवहारमें विचक्षण विदग्धा नामक रानीको श्री रामके समीप भेजा ॥४६॥ तदनन्तर क्रमको जानने वाली विदग्धाने आकर प्रथम ही सीता सहित राम-लक्ष्मणको कुलके योग्य प्रणाम किया । तत्पश्चात् यह वचन कहे कि हे देव ! हमारे स्वामीके घरको अपना घर समझ चरण-तलके संसर्गसे पवित्र कीजिए ॥४७-४८॥ जब तक उन सबके बीचमें यह वार्ता हो रही थी तब तक महा आदरसे भरा विभीषण स्वयं आ पहुँचा ॥४९॥ आते ही उसने कहा कि उठिए, घर चलें प्रसन्नता कीजिए । इस प्रकार विभीषणके कहने पर राम, अपने अनुगामियोंके साथ उसके घर जानेके लिए उद्यत हो गये ॥५०॥ राज मार्ग की अविरल सजावट की गई और उससे वे नाना प्रकारके वाहनों, मेघ समान ऊँचे हाथियों, लहरों के समान चञ्चल घोंड़ों और महलोंके समान सुशोभित रथों पर यथाक्रमसे सवार हो विभीषणके घरकी ओर चले ॥५१-५२॥ प्रलय कालीन मेघोंकी गर्जनाके समान जिनका विशाल शब्द था जिनमें करोड़ों शङ्खोंका शब्द मिल रहा था तथा गुफाओंमें जिनकी प्रतिध्वनि पड़ रही थी ऐसे तुरहीके विशाल शब्द उत्पन्न हुए ॥५३॥ भंभा, भेरी, मृदङ्ग, हजारों पटह, लंपाक, काहला, धुन्धु, दुन्दुभि, अम्लातक, ढक्का, हैका, गुंजा, हुंकार और सुन्द नामक वादियोंके शब्दसे आकाश भर गया ॥५४-५५॥ अत्यन्त विस्तारको प्राप्त हुआ हल हला शब्द, बहुत भारी अट्टहास और नाना वाहनोंके शब्दोंसे दिशाएँ बहिरी हो गईं ॥५६॥ कितने ही विद्याधर व्याघ्रोंकी पीठ

केचिच्छार्दूलपृष्ठस्थाः केचिन् केसरिपृष्ठगाः । केचिद् रथादिभिर्वीराः प्रस्थिताः खेचरेश्वराः ॥५७॥
 नर्तकीनटभण्डार्थैर्नृत्यद्विरतिसुन्दरम् । वन्दिदृष्टदृष्टैश्च ते जग्मुः स्तूयमाना महास्वनैः ॥५८॥
 अकाण्डकौमुदीसर्गमण्डितैरलत्रमण्डलैः । नानायुधदलैश्चासन् भानुभासरितरोहिताः ॥५९॥
 दिव्यस्त्रीवदनाम्भोजखण्डनन्दनमुत्तमम् । कुर्वन्तस्ते परिप्राप्ता विभीषणवृपालयम् ॥६०॥
 विभूतियाँ तदा तेषां बभूव शुभलक्षणा । सा परं ह्युनिवासानां विद्यते जनिताद्भुता ॥६१॥
 अवतीर्याथ नागेन्द्राद् रत्नावादिपुरस्कृता । रम्यं विवशतुः सद्यः ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥६२॥
 मध्ये महालयस्यास्य स्नतोरणसङ्गतम् । पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य भवनं हेमसङ्घिभम् ॥६३॥
 प्रान्तावस्थितहर्म्यालीपरिवारमनोहरम् । शेषपर्वतमध्यस्थं मन्दरौपरम्यमागतम् ॥६४॥
 हेमस्तम्भसहस्रेण घटमुत्तमभासुरम् । पूजितायामविस्तारं नानामणिविगणार्चितम् ॥६५॥
 बहुरूपधरैर्युक्तं चन्द्रभैरवैर्लभापुटैः । गवाक्षप्रान्तसंस्तुक्तैर्मुक्ताजालैर्विराजितम् ॥६६॥
 अनेकाङ्गतसङ्कीर्णैर्युक्तैः प्रतिसरादिभिः । प्रदेशैर्विविधैः कान्तं पापप्रमथनं परम् ॥६७॥
 एवंविधे गृहे तस्मिन् पद्मरागमयी प्रभोः । पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य प्रतिमां प्रतिमोजिहताम् ॥६८॥
 भासमम्भोजखण्डानां दिशन्तीं मणिभूमिषु । स्तुत्वा च परिवन्दिता यथाऽहं समवस्थिताः ॥६९॥
 यथायथं ततो याता खेचरेन्द्रा निरूपिताम् । समाश्रयं बलं चित्ते विभ्राणाश्चक्रिणां तथा ॥७०॥
 अथ विद्याधरस्त्रीभिः पद्मलक्ष्मणयोः पृथक् । सीतायाश्च शरीरस्य क्रियायोगः प्रवर्तितः ॥७१॥

पर बैठ कर जा रहे थे, कितने ही सिंहींकी पीठ पर सवार हो कर चल रहे थे और कितने ही रथ आदि वाहनोंसे प्रस्थान कर रहे थे ॥५७॥ उनके आगे आगे नर्तकियाँ नट तथा भांडू आदि सुन्दर नृत्य करते जाते थे तथा चारणोंके समूह बड़ी उच्च ध्वनिमें उनका विरद बखानते जा रहे थे ॥५८॥ असमयमें प्रकट हुई चौदनीके समान मनोहर छत्रोंके समूहसे तथा नाना शस्त्रोंके समूहसे सूर्यकी किरणें आच्छादित हो गई थी ॥५९॥ इस प्रकार सुन्दरी स्त्रियोंके मुख-कमलोंको विकसित करते हुए वे सब विभीषणके राजभवनमें पहुँचे ॥६०॥ उस समय राम लक्ष्मण आदिकी शुभ-लक्षणोंसे युक्त जो विभूति थी वह देवोंके लिए भी आश्चर्य उत्पन्न करने वाली थी ॥६१॥

अथानन्तर हाथीसे उतरकर, जिनका रत्नोंके अर्थ आदिसे सत्कार किया गया था ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मणने विभीषणके सुन्दर भवनमें प्रवेश किया ॥६२॥ विभीषणके विशाल भवनके मध्यमें श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रका वह मन्दिर था जो रत्नमयी तौरणोंसे सहित था, स्वर्णके समान देदीप्यमान था, समीपमें स्थित महलोंके समूहसे मनोहर था, शेष नामक पर्वतके मध्यमें स्थित था, प्रेमकी उपमाको प्राप्त था, स्वर्णमयी हजार खम्भोंसे युक्त था, उत्तम देदीप्यमान था, योग्य लम्बाई और विस्तारसे सहित था, नाना मणियोंके समूहसे शोभित था, चन्द्रमाके समान चमकती हुई नाना प्रकारकी बलभियोंसे युक्त था, झरोखोंके समीप लटकती हुई मोतियोंकी जालीसे सुशोभित था, अनेक अद्भुत रचनाओंसे युक्त प्रतिसर आदि विविध प्रदेशोंसे सुन्दर था, और पापको नष्ट करने वाला था ॥६३-६५॥ इस प्रकारके उस मन्दिरमें श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र की पद्मराग मणि निर्मित वह अनुपम प्रतिमा विराजमान थी । जो अपनी प्रभासे मणिमय भूमिमें कमल-समूह की शोभा प्रकट कर रही थी । सबलोग उस प्रतिमाकी स्तुति-वन्दना कर यथा योग्य बैठ गये ॥६६-६८॥ तदनन्तर विद्याधर राजा, हृदयमें राम और लक्ष्मणको धारण करते हुए जहाँ जिसके लिए जो स्थान बनाया गया था वहाँ यथा योग्य रीतिसे चले गये ॥७०॥

यथानन्तर विद्याधर स्त्रियोंने राम-लक्ष्मण और सीताके स्नानकी पृथक् पृथक् विधि

१. उपमारहिताम् ।

१३-३

अक्ताः सुगन्धिभिः पथैः स्नेहैः वर्णमनोहरैः । घ्राणदेहानुकूलैश्च शुभैरुद्गतैः कृतः ॥७२॥
 स्थितानां स्नानपठेषु प्राङ्मुखानां सुमङ्गलः । ऋद्ध्या स्नानविधिस्तेषां क्रमयुक्तः प्रवर्तितः ॥७३॥
 वपुःकषणपानीयविसर्जनलयान्वितम् । हारिं प्रवृत्तमातोषं सर्वोपकरणाश्रितम् ॥७४॥
 हैमैर्मारकतैर्वाज्रैः स्फटिकैरिन्द्रनीलजैः । कुम्भैर्गन्धोदकापूर्णैः स्नानं तेषां समापितम् ॥७५॥
 पवित्रवस्त्रसर्वाताः सुस्नाताः सदलंकृताः । प्रविश्य चैश्वभवनं पद्मभं ते ववन्दिरे ॥७६॥
 तेषां प्रत्यवसानार्थां कार्यां विस्तारिणीं कथां । श्रुताद्यैः पूरिता वाग्यः सद्गुरवैः पर्वताः कृताः ॥७७॥
 वनेषु नन्दनाद्येषु वस्तुजातं यदुद्भूतम् । मनोघ्राणेक्षणभाष्टं तत्कृतं भोजनावनी ॥७८॥
 मृष्टमन्नं स्वभावेन जानक्या तु समन्ततः । कथं वर्णयितुं शक्यं पद्मनाभस्य चेतसः ॥७९॥
 पद्मानामर्थयुक्तत्वमिन्द्रियाणां तदेव हि । यदाभीष्टसमायोरो जायते कृतनिवृत्तिः ॥८०॥
 तदा भुक्तं तदा प्राप्तं तदा स्पृष्टं तदेक्षितम् । तदा श्रुतं यदा जन्तोर्जायते प्रियसङ्गमः ॥८१॥
 विषयः स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते । स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे ॥८२॥
 रसायनरसैः कान्तैरद्भुतैर्वहुवर्णकैः । भक्ष्यैश्च विविधैस्तेषां निवृत्ता भोजनक्रिया ॥८३॥
 खेचरेन्द्रा यथायोग्यं कृतभूमिनिवेशनाः । भोजिता कृतसन्मानाः परिवारसमन्विताः ॥८४॥

प्रस्तुत की ॥७१॥ सर्व प्रथम उन्हें सुगन्धित हितकारी तथा मनोहर वर्ण वाले तेलका मर्दन किया गया, फिर घ्राण और शरीरके अनुकूल पदार्थोंका उपटन किया गया ॥७२॥ तदनन्तर स्नानकी चौकीपर पूर्व दिशाकी ओर मुख कर बैठे हुए उनका बड़े वैभवसे क्रमपूर्वक मङ्गल मय स्नान कराया गया ॥७३॥ उस समय शरीरको घिसना पानी छोड़ना आदि की लयसे सहित मनको हरण करने वाले तथा सब प्रकारकी साज-सामग्रीसे युक्त वाजे बज रहे थे ॥७४॥ गन्धोदकसे परिपूर्ण सुवर्ण, मरकत मणि, हीरा, स्फटिक मणि तथा इन्द्रनीलमणि निर्मित कलशोंसे उनका अभिषेक पूर्ण हुआ ॥७५॥ तदनन्तर अच्छी तरह स्नान करनेके बाद उन्होंने पवित्र वस्त्र धारण किये, उत्तम अलंकारोंसे शरीर अलंकृत किया और तदनन्तर मन्दिरमें प्रवेश कर श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रकी वन्दना की ॥७६॥

अथानन्तर उन सबके लिए जो भोजन तैयार किया गया था, उसकी कथा बहुत विस्तृत है । उस समय घी दूध दही आदिका बावड़ियाँ भरी गई थीं और खाने योग्य उत्तमोत्तम पदार्थोंके समानो पर्वत बनाये गये थे अर्थात् पर्वतोंके समान बड़ी-बड़ी राशियाँ लगाई गई थीं ॥७७॥ मन घ्राण और नेत्रोंके लिए अभीष्ट जो भी वस्तुएँ चन्दन आदि वनोंमें उत्पन्न हुई थीं वे लाकर भोजन-भूमिमें एकत्रित की गई थीं ॥७८॥ वह भोजन स्वभावसे ही सधुर था फिर जानकीके समीप रहते हुए तो कहना ही क्या था ? उस समय श्रीरामके मनकी जो दशा थी उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ! ॥७९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेष्ठिक ! पाँचो इन्द्रियोंकी सार्थकता तभी है जब इष्ट पदार्थोंका संयोग होने पर उन्हें संतोष उत्पन्न होता है ॥८०॥ इस जन्तुने उसी समय भोजन किया है, उसी समय सूँवा है, उसी समय स्पर्श किया है, उसी समय देखा है और उसी समय सुना है जब कि उसे प्रियजनका समागम प्राप्त होता है । भावार्थ—प्रियजनके विग्रहमें भोजन आदि कार्य निसार जान पड़ते हैं ॥८१॥ विग्रह कालमें स्वर्ग तुल्य भी देश तर्कके समान जान पड़ता है और प्रियजनके समागम रहते हुए महावन भी स्वर्गके समान जान पड़ता है ॥८२॥ सुन्दर अद्भुत और बहुत प्रकारके रसायन सम्बन्धी रसों की तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे उन सब की भोजन-क्रिया पूर्ण हुई ॥८३॥ जो यथा योग्य भूमि पर बैठायें गये थे, जिनका सम्मान किया गया था तथा जो अपने अपने परिवार

१. पूर्णमनोहरैः म० । २. मनोहरम् । ३. पर्वताकृता म०, ज० । ४. तदेव म० ।

चन्दनाद्यैः कृताः सर्वैर्गन्धैरावद्वपट्पदैः । भद्रशालाद्यरघोत्थैः कुसुमैश्च विभूषिताः ॥८५॥
 स्पर्शानुकूललघुभिर्वस्त्रैर्युक्ता महाभयैः । नानारत्नप्रभाजालकरालितदिगाननाः ॥८६॥
 सर्वे सम्भाविताः सर्वे फलयुक्तमनोरथाः । दिवा रात्रौ च चित्राभिः कथाभी रतिमागताः ॥८७॥
 अहो राक्षसवंशस्य भूषणोऽयं विभीषणः । अनुवृत्तिरियं येन कृतेऽवपन्नचक्रिणोः ॥८८॥
 श्लाघ्यो महानुभावोऽयं जगत्पुत्रोऽङ्गतां यतः । कृतार्थो भवने यस्य स्थितः पद्मः सलक्ष्मणः ॥८९॥
 एवं विभीषणाधारगुणप्रहणतरपरः । विद्याधरजनस्तस्थौ सुखं मत्सरवर्जितः ॥९०॥
 पद्मलक्ष्मणवन्देर्हाविभीषणकथागतः । पौरलोकः समस्तोऽभूत् परित्यक्तान्यसङ्कथः ॥९१॥
 सम्प्राप्तबलदेवः पद्मं लाङ्गललक्षणम् । नारायणं च सम्प्राप्तचक्ररत्नं त्रेश्वरम् ॥९२॥
 अभिषेक्तुं समासक्ता विभीषणपुरःसराः । सर्वविद्याधराधीशा विनयेन हुढीकिरे ॥९३॥
 उच्यतुस्तौ गुरोः पूर्वमभिषेकमवाप्तवान् । प्रभुर्भरत एवाऽऽस्तेऽयोध्यायां वः स एव नौ ॥९४॥
 उक्तं तैरेवमेवैतत्तथाप्यभिषेवेऽत्र कः । मङ्गले दृश्यते दोषो महापुरुषसेविते ॥९५॥
 क्रियमाणामसौ पूजां भवतीरनुमन्यते । श्रूयतेऽत्यन्तधीरोऽसौ मनसो नैति विक्रियाम् ॥९६॥
 वस्तुतो बलदेवस्त्वचक्रित्वप्राप्तिकारणात् । सम्प्रतिष्ठा तयोरासीत् पूजासम्भारसङ्गता ॥९७॥
 एवमत्युच्यतां लक्ष्मीं सम्प्राप्तौ रामलक्ष्मणौ । लङ्काम्यामूषतुः स्वर्गानगर्यां त्रिदशानिव ॥९८॥

इष्ट जनोसे सहित थे ऐसे समस्त विद्याधर राजाओंको भोजन कराया गया ॥८४॥ जिनपर भ्रमरोंने मण्डल बाँध रक्खे थे ऐसे चन्दन आदि सब प्रकारकी गन्धोंसे तथा भद्रशाल आदि वनोंमें उत्पन्न हुए पुष्पोंसे सब विभूषित किये गये ॥८५॥ जो स्पर्शके अनुकूल, हल्के और अत्यन्त सघन बुने हुए वस्त्रोंसे युक्त थे तथा नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे जिन्होंने दिशाओंको व्याप्त कर रक्खा था ऐसे उन सब लोगोंका सम्मान किया गया था, उनके सब मनोरथ सफल किये थे, और रात दिन नाना प्रकार की कथाओंसे सबको प्रसन्न किया गया था ॥८६-८७॥ अहो! यह विभीषण राक्षसवंशका आभूषण है, जिसने कि इस प्रकार राम-लक्ष्मणकी अनुवृत्ति की—उनके अनुकूल आचरण किया ॥८८॥ यह महानुभाव प्रशंसनीय है तथा जगतमें अत्यन्त उत्तम अवस्थाको प्राप्त हुआ है । जिसके घरमें कृतकृत्य हो राम-लक्ष्मणने निवास किया उसकी महिमाका क्या कहना है ? ॥८९॥ इस प्रकार विभीषणमें पाये जाने वाले गुणोंके प्रहण करनेमें जो तत्पर थे तथा मात्सर्य भावसे रहित थे ऐसे सब विद्याधर भी विभीषणके घर सुखसे रहे ॥९०॥ उस समय नगरीके समस्त लोक राम, लक्ष्मण, सीता और विभीषणकी ही कथामें संलग्न रहते थे—अन्य सब कथाएँ उन्हींने छोड़ दी थीं ॥९१॥

अथानन्तर विभीषण आदि समस्त विद्याधर राजा जिन्हें बलदेव पद प्राप्त हुआ था ऐसे हल लक्षणधारी राम और जिन्हें नारायण पद प्राप्त हुआ था ऐसे चक्ररत्नके धारी राजा लक्ष्मण का अभिषेक करनेके लिए उद्यत हो विनयपूर्वक आये ॥९२-९३॥ तब राम लक्ष्मणने कहा कि पहले, पिता दशरथसे जिसे राज्याभिषेक प्राप्त हुआ है ऐसा राजा भरत अयोध्यामें विद्यमान है वही तुम्हारा और हम दोनोंका स्वामी है ॥९४॥ इसके उत्तरमें विभीषणादिने कहा कि जैसा आप कह रहे हैं यद्यपि वैसा ही है तथापि महापुरुषोंके द्वारा सेवित इस मङ्गलमय अभिषेकमें क्या दोष दिखाई देता है ? अर्थात् कुछ नहीं ? ॥९५॥ आप दोनोंके इस किये जाने वाले सत्कारको राजा भरत अवश्य ही स्वीकृत करेंगे क्योंकि वे अत्यन्त धीर-गम्भीर सुने जाते हैं । वे मनसे रञ्ज मात्र भी विकारको प्राप्त नहीं होते ॥९६॥ यथार्थमें बलदेवत्व और चक्रवर्तित्व की प्राप्तिके कारण उनके अनेक प्रकारकी पूजासे युक्त प्रतिष्ठा हुई थी ॥९७॥ इस प्रकार अत्यन्त

पुरे तत्रेन्द्रनगरप्रतिमे स्फीतभोगदे । नर्दासरस्तटाद्येषु देशेष्वस्थुर्नभश्चराः ॥१६६॥
 दिव्यालङ्कारताम्रवृलवस्त्रहारविलेपनाः । चिक्रीडुस्तत्र ते स्वेच्छं सखीकाः स्वर्गिणो यथा ॥१७०॥
 दिनरत्नकरालीढसितपद्मान्तरशुति । वैदेहीवदनं पश्यन् पद्मस्तृप्तिमियाय न ॥१७१॥
 विरामरहितं रामस्तथाऽयन्ताभिरामया । रामया सहितो रेमे रमणीयासु भूमिषु ॥१७२॥
 विशल्यासुन्दरीयुक्तस्तथा नारायणो रतिम् । जगाम चिन्तितप्राप्तसर्ववस्तुसमागमः ॥१७३॥
 यातात्मः श्व इति स्वान्तं कृत्वापि पुनस्तमाम् । सम्प्राप्य रतिमेतेषां गमनं स्मृतित्रय्युत्तम् ॥१७४॥
 तयोर्बहूनि वर्षाणि रतिभोगोपयुक्तयोः । गतान्येकदिनौषम्यं भजमानानि सौख्यतः ॥१७५॥
 कदाचिदथ संस्मृत्य लक्ष्मणश्चारुलक्षणः । पुराणि कूवरादीनि प्रजिघाय विराधितम् ॥१७६॥
 साभिज्ञानानसौ लेखानुपादाय महर्षिकः । कन्याभ्योऽदर्शयद् गत्वा क्रमेण विधिकीविद्ः ॥१७७॥
 संवादजनितानन्दाः पितृभ्यामनुमोदिताः । आजग्मुरनु रूपेण परिवारेण सङ्गताः ॥१७८॥
 देवाङ्गभोगनगरस्वामिनः कुलिशश्रुतेः^१ । प्राप्ता रूपवती नाम कन्या रूपवती परा ॥१७९॥
 कूवरस्थाननाथस्य वालिखिल्यस्य देहजा । सर्वकल्याणमालाख्या प्राप्ता परमसुन्दरी ॥१८०॥
 पृथिवीपुरनाथस्य पृथिवीधरभूभृतः । प्रथिता वनमालेति दुहिता समुपागता ॥१८१॥
 क्षेमाञ्जलिपुरेशस्य जितशत्रोर्महीक्षितः । जितपद्मेति विख्याता तनया समुपागता ॥१८२॥
 उज्जयिन्यादितोऽप्येता नगराद् राजकन्यकाः । जन्मान्तरकृतान् पुण्यात् परमापतिमीदृशा ॥१८३॥

उन्नत लक्ष्मीको प्राप्त हुए राम-लक्ष्मण लङ्कामें इस प्रकार रहे जिस प्रकार कि स्वर्गकी नगरीमें दो देव रहते हैं ॥६८॥ इन्द्रके नगरके समान अत्यधिक भोगोंको देनेवाले उस नगरमें-विद्याधर लोग, नदियों और तालाबों आदिके तटोंपर आनन्दसे बैठते थे ॥६९॥ दिव्य अलंकार, पान, वस्त्र, हार और विलेपन आदिसे सहित वे सब विद्याधर अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ उस लङ्कामें इच्छानुसार देवोंके समान क्रीड़ा करते थे ॥१७०॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीताका मुख सूर्यकी किरणोंसे व्योम सफेद कमलके भीतरी भागके समान कान्तियुक्त था, उसे देखते हुए श्री राम वृष्णिको प्राप्त नहीं हो रहे थे ॥१७१॥ उस अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीके साथ राम, निरन्तर मनोहर भूमियोंमें क्रीड़ा करते थे ॥१७२॥ जिन्हें इच्छा करते ही सर्व वस्तुओंका समागम प्राप्त हो रहा था ऐसे राम लक्ष्मण विशल्या सुन्दरीके साथ अलग ही प्रीतिको प्राप्त हो रहे थे ॥१७३॥ वे यद्यपि हम कल चले जावेंगे, ऐसा मनमें सङ्कल्प करते थे तथापि विभीषणादिका उत्तम प्रेम पाकर 'जाना' इनकी स्मृतिसे छूट जाता था ॥१७४॥ इस प्रकार रति और भोगोपभोगकी सामग्रीसे युक्त राम लक्ष्मणके सुखसे भोगे जाने वाले अनेक वर्ष एक दिनके समान व्यतीत हो गये ॥१७५॥

अथानन्तर किसी दिन सुन्दर लक्ष्णोंके धारक लक्ष्मणने स्मरण कर विराधितको कूवरादि नगर भेजा ॥१७६॥ सो महाविभूतिके धारक, एवं सब प्रकारकी विधि मिलानेमें निपुण विराधितने क्रम-क्रमसे जाकर कन्याओंके लिए परिचायक चिह्नोंके साथ लक्ष्मणके पत्र दिखाये ॥१७७॥ तदनन्तर शुभ-समाचारसे जिन्हें हर्ष उत्पन्न हुआ था और माता-पिताने जिन्हें अनुमति दे रखी थी ऐसी वे कन्याएँ अनुकूल परिवारके साथ वहाँ आईं ॥१७८॥ कहाँ कहाँसे कौन-कौन कन्याएँ आई थीं इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है । दशपुर नगरके स्वामी राजा वज्रकर्णकी रूपवती नामकी अत्यन्त सुन्दरी कन्या आई थी ॥१७९॥ कूवर स्थान नगरके राजा वालिखिल्यकी सर्व-कल्याणमाला नामकी सुन्दरी पुत्री आई ॥१८०॥ पृथिवीपुर नगरके राजा पृथिवीधरकी प्रसिद्ध पुत्री वनमाला आई ॥१८१॥ क्षेमाञ्जलिपुरके राजा जितशत्रुकी प्रसिद्ध पुत्री जितपद्मा आई ॥१८२॥ इनके सिवाय उज्जयिनी आदि नगरोंसे आई हुई राजकन्याओंने जन्मान्तरमें किये हुए

१. विद्या- म० । २. देशांग- म० । ३. श्रुते म० ।

दमदानदद्यायुक्तं शीलाख्यं गुरुसाक्षिकम् । न ह्युत्तमं तपोऽकृत्वा प्राप्यते पतिरीदृशः ॥११४॥
 नूनं नास्तमिते भानौ युक्तं साध्वी न दूषिता । विमानिता न दिग्ब्रह्मा जातोऽयं पतिरीदृशः ॥११५॥
 योग्यो नारायणस्तासां योग्या नारायणस्य ताः । अन्योऽन्यं तेन ताभिश्च गृहीतं सुरतामृतम् ॥११६॥
 न सा सम्पन्नता शोभा न सा लीला न सा कला । तस्य तासां च या नाऽऽसीत् तत्र श्रेणिक कथा ॥
 कथं पद्मं कथं चन्द्रः कथं लक्ष्मीः कथं रतिः । भण्यतां सुन्दरत्वेन श्रुत्वा तं किल तास्तथा ॥११७॥
 रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा सम्पदं तां तथाविधाम् । विद्याधरजनौघानां विस्मयः परमोऽभवत् ॥११८॥
 चन्द्रवर्द्धनजातानामपि सङ्गमनी कथा । कर्तव्या सुमहानन्दा विवाहस्य च सूचनी ॥११९॥
 पद्मनाभस्य कन्यानां सर्वासां सङ्गमस्तथा । स विवाहोऽभवत्सर्वलोकानन्दकरः परः ॥१२०॥
 यथेप्सितमहाभोगसम्बन्धसुखभागिनौ । ताविन्द्राविव लङ्कायां रेमाते प्रमदान्वितौ ॥१२१॥
 वैदेहीदेहविन्ध्यस्तसमस्तेन्द्रियसम्पदः । वर्षाणि षडतीतानि लङ्कायां सीरलक्ष्मणैः ॥१२२॥
 सुखार्णवे निमग्नस्य चारुचेष्टाविधायिनः । काकुत्स्थस्य तदा सर्वमन्यस्मृतिपथाच्च्युतम् ॥१२३॥
 एवं तावदिदं वृत्तं कथान्तरमिदं पुनः । पापक्षयकरं भूप शृणु तत्परमानसः ॥१२४॥
 असाविन्द्रजितो योगी भगवान् सर्वपापहा । विद्यालब्धिसुसम्पन्नो विजहार महीतलम् ॥१२५॥
 वैराग्यानिलयुक्तेन सम्यक्वारिणजन्मना । कर्मकचं महाघोरमदहद्विधानवह्निना ॥१२६॥

परम पुण्यसे ऐसा पति प्राप्त किया ॥११३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! दम, दान और दयासे युक्त, शीलसे सहित एवं गुरुकी साक्षी पूर्वक लिये हुए उत्तम तपके किये बिना ऐसा पति नहीं प्राप्त हो सकता ॥११४॥ सूर्यास्त होने पर जिसने भोजन नहीं किया है, जिसने कभी आर्थिकाको दोष नहीं लगाया है और दिग्ब्रह्म मुनि जिसके द्वारा अपमानित नहीं हुए, उसी स्त्रीका ऐसा पति होता है ॥११५॥ नारायण उन सबके योग्य थे और वे सब नारायणके योग्य थीं, इसीलिए नारायण और उन स्त्रियोंने परस्पर संभोग रूपी अमृत ग्रहण किया था ॥११६॥ हे श्रेणिक ! न तो वह सम्पत्ति थी, न वह शोभा थी, न वह लीला थी और न वह कला थी जो लक्ष्मण और उनकी उन स्त्रियोंमें न पाई जाती फिर औरकी क्या कथा की जाय ? ॥११७॥ सौन्दर्यकी अपेक्षा उनके मुखको देख कर कहा जाय कि कमल क्या है ? चन्द्रमा क्या है ? और उन स्त्रियोंको देख कर कहा जाय कि लक्ष्मी क्या है ? और रति क्या है ? ॥११८॥ राम-लक्ष्मणकी उस-उस प्रकारकी संपदाको देख कर विद्याधरजनोंको बड़ा आश्चर्य हो रहा था ॥११९॥ यहाँ चन्द्रवर्द्धनकी पुत्रियोंका समागम कराने तथा उनके विवाहकी आनन्दमयी सूचना देने वाली कथाका निरूपण करना भी उचित जान पड़ता है ॥१२०॥ उस समय श्री राम तथा चन्द्रवर्द्धनकी समस्त कन्याओंका समागम कराने वाला वह विवाहोत्सव हुआ जो समस्त लोगोंको परम आनन्दका करने वाला था ॥१२१॥ इच्छानुसार महाभोगोंके सम्बन्धसे सुखको प्राप्त होने वाले वे राम लक्ष्मण, अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ लङ्कामें इन्द्र-प्रतीन्द्रके समान क्रीड़ा करते थे ॥१२२॥ जिनकी समस्त इन्द्रियोंकी सम्पदा सीताके शरीरके आधीन थी, ऐसे श्री रामको लङ्कामें रहते हुए लड़कपन व्यतीत हो गये ॥१२३॥ उस समय उत्तम चेष्टाओंके धारक रामचन्द्र, सुखके सागरमें ऐसे निमग्न हुए कि अन्य सब कुल्ल उनकी स्मृतिके मार्गसे च्युत हो गया ॥१२४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकारकी यह कथा तो रहने दो अब एकाग्र चित्त हो पापका क्षय करने वाली दूसरी कथा सुनो ॥१२५॥

अथानन्तर समस्त पापोंको नष्ट करने वाले भगवान् इन्द्र जित् मुनिराज, अनेक ऋद्धियोंकी प्राप्तिसे युक्त हो पृथिवीतल पर विहार करने लगे ॥१२६॥ उन्होंने वैराग्य रूपी पवनसे युक्त तथा सम्यग्दर्शन रूपी वाससे उत्पन्न ध्यान रूपी अग्निके द्वारा कर्म रूपी भयंकर वनको भस्म कर दिया

१ मेघवाहोऽनगारोऽपि विषयेन्धनपावकः । केवलज्ञानतः प्राप्तः स्वभावं जीवगोचरम् ॥१२८॥
 तयोरनन्तरं सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितः । शुक्ललेख्याविशुद्धात्मा कलशश्रवणो मुनिः ॥१२९॥
 पर्यल्लोकमलोकं च केवलेन तथाविधम् । विरजस्कः परिप्राप्तः परमं पदमच्युतम् ॥१३०॥
 सुरासुरजनार्थाशैरुद्धातोत्तमकर्त्तयः । शुद्धशीलधरा दीप्ताः प्रणताश्च महर्षयः ॥१३१॥
 गोष्पदीकृतनिःशोषगहनज्ञेयतेजसः । संसारक्लेशदुर्मोचजालबन्धननिर्गताः ॥१३२॥
 अपुनःपतनस्थानसम्प्राप्तिस्वार्थसङ्गताः । उपमानविनिर्मुक्तनिष्प्रत्यूहसुखात्मकाः ॥१३३॥
 एतेऽन्ये च महात्मानः सिद्धा निर्धूनशत्रवः । दिशन्तु बोधिमारोग्यं श्रोतॄणां जिनशासने ॥१३४॥
 यशसा परिर्वीतान्यद्यत्वेऽपि परमात्मनाम् । स्थानानि तानि दृश्यन्ते दृश्यन्ते साधवो न ते ॥१३५॥
 विन्ध्यारण्यमहास्थलयां सार्द्धमिन्द्रजितौ यतः । मेघनादः स्थितस्तेन तीर्थं मेघरवं स्मृतम् ॥१३६॥
 तूष्णीगतिमहाशैले नानाद्रुमलताकुले । नानापक्षिगणाकीर्णं नानाश्वापदसेविते ॥१३७॥
 परिप्राप्तोऽहमिन्द्रत्वं जम्बुमाली महाबलः । अहिंसादिगुणाढ्यस्य किमु धर्मस्य दुष्करम् ॥१३८॥
 ऐरावतेऽवतीर्त्वासी महाव्रतविभूषणः । कैवल्यतेजसा युक्तः सिद्धस्थानं गमिष्यति ॥१३९॥
 अरजा निस्तमो योगी कुम्भकर्णो महामुनिः । निर्धूतो नर्मदातीरे तृतीर्थं पिठरत्तम् ॥१४०॥
 तमोविचारिणीं पूर्वं लब्ध्वि प्राप्य महाद्युतिः । मयो विहरणं चक्रे स्वेच्छं निर्वाणभूमिषु ॥१४१॥
 प्रदेशानृषभादीनां देवागमस्येवितान् । महाद्युतिपरोऽपश्यद्रत्नत्रितयमण्डनः ॥१४२॥

था ॥१२७॥ विषय रूपी ईन्धनको जलानेके लिए अग्निके समान जो मेघ वाहन मुनिराज थे वे केवलज्ञान प्राप्त कर आत्म स्वभावको प्राप्त हुए ॥१२८॥ उन दोनोंके बाद सम्पग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्रको धारण करने वाले कुम्भकर्ण मुनिराज भी शुक्ल लेख्याके प्रभावसे अत्यन्त विशुद्धात्मा हो केवलज्ञानके द्वारा लोक और अलोकको ज्योंका त्यों देखते हुए कर्मभूलिको दूर कर अविनाशी परम पदको प्राप्त हुए ॥१२९-१३०॥ इनके सिवाय सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा चक्रवर्ती जिनकी उत्तम कीर्तिका गान करते थे, जो शुद्ध शीलके धारक थे, देदीप्यमान थे, गर्व रहित थे, जो समस्त पदार्थ रूपी सघन ज्ञेयको गोष्पदके समान तुच्छ करने वाले तेजसे सहित थे, जो संसारके क्लेश रूपी कठिन बन्धनके जालसे निकल चुके थे, जहाँसे पुनः लौटकर नहीं आना पड़ता ऐसे मोक्ष स्थानकी प्राप्ति रूपी स्वार्थसे जो सहित थे, अनुपम तथा निर्विघ्न सुख ही जिनका स्वरूप था, जिनकी आत्मा महान् थी, जो सिद्ध थे तथा शत्रुओंको नष्ट करने वाले थे, ऐसे ये तथा अन्य जो महर्षि थे वे जिनशासनके श्रोता मनुष्योंके लिए रत्नत्रय रूपी आरोग्य प्रदान करें ॥१३१-१३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उनपर महात्माओंका प्रभाव तो देखो कि आज भी उन परमात्माओंके यशसे व्याप्त वे दिखाई देते हैं पर वे साधु नहीं दिखाई देते ॥१३५॥ विन्ध्यवन की महाभूमिमें जहाँ इन्द्रजितके साथ मेघवाहन मुनिराज विराजमान रहे वहाँ आज मेघरव नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ है ॥१३६॥ अनेक वृक्षां और लताओंसे व्याप्त, नानापक्षियोंके समूहसे युक्त एवं नाना जानवरोंसे सेवित तूष्णीगति नामक महाशैल पर महा बलवान् जम्बुमाली नामक मुनि अहमिन्द्र अथस्थाको, प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि अहिंसादि गुणोंसे युक्त धर्मके लिए क्या कठिन है ? ॥१३७-१३८॥ यह जम्बुमालीका जीव ऐरावत क्षेत्रमें अवतार ले महाव्रत रूपी विभूषणसे अलंकृत तथा केवल ज्ञान रूपी तेजसे युक्त हो मुक्ति स्थानको प्राप्त होगा ॥१३९॥ रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित महामुनि कुम्भकर्ण योगी नर्मदाके जिस तीर पर निर्वाणको प्राप्त हुए थे वहाँ पिठरत्त नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ ॥१४०॥ महा दीप्तिके धारक मय मुनिने आकाश-गामिनी ऋद्धि पाकर इच्छानुसार निर्वाण-भूमियोंमें विहार किया ॥१४१॥ रत्नत्रय रूपी मण्डनको

१. मेघवाहनगारोऽपि म० । २. कुम्भकर्णः । ३. मिन्द्रजितो म० ।

मारीचः कल्पवासित्वं प्राप्याऽन्ये च महर्षयः । सर्वं यथाविधं यस्य फलं तस्य तथाविधम् ॥१४३॥
 वैदेहाः परम माहात्म्यं दृढव्रतसमुद्भवम् । यथा सम्पालितं शीलं द्विषन्तश्च विवर्जिताः ॥१४४॥
 सीताया अतुलं धैर्यं रूपं सुभगता मतिः । कल्याणगुणपूर्णायाः स्नेहबन्धश्च भर्तरि ॥१४५॥
 शीलतः स्वर्गगामिन्या स्वभर्तृपरितुष्टया । चरितं रामदेवस्य सीतया साधु भूषितम् ॥१४६॥
 एकेन व्रतरत्नेन पुरुषान्तरवर्जिना । स्वर्गरोहणसामर्थ्यं योषितामपि विद्यते ॥१४७॥
 मयोऽपि मायया तीव्रः कृत्वा प्राणिवधान् बहून् । प्रपद्य वीतरागत्वं पापलब्ध्याः सुसंयतः ॥१४८॥
 उवाच श्रेणिको नाथ ! श्रुतमिन्द्रजितादिजम् । माहात्म्यमधुना श्रोतुं चान्ध्यामि मयसम्भवम् ॥१४९॥
 सन्धन्याः शीलवत्यश्च नृणां वसुमतीतले । स्वभर्तृनिरताःस्मानस्ता नु किं स्वर्गभाविताः ॥१५०॥
 गण्यूचे यदि सीताया निश्चयेन व्रतेन च । तुल्याः पतिव्रताः स्वर्गं व्रजन्त्येव गुणान्विताः ॥१५१॥
 सुकृतासुकृतास्वादिनस्पन्दीकृतवृत्तयः । शीलवत्यः समा राजन् ननु सर्वां विचेष्टितैः ॥१५२॥
 वीरुदरवेभलोहानामुपलक्ष्मवाससाम् । योषितां पुरुषाणां च विशेषोऽस्ति महान् नृप ॥१५३॥
 न हि चित्रभृतं वल्क्यां वल्क्यां कृष्माण्डमेव वा । एवं न सर्वनारीषु सद्बृत्तं नृप विद्यते ॥१५४॥
 पतिव्रताभिमाना प्रागतिवंशसमुद्भवा । शीलाङ्कुशादिनिर्याता प्राप्ता दुर्मतवारणम् ॥१५५॥

धारण करने वाले तथा महान् धैर्यके धारक उन मय मुनिने देवागमनसे सेवित ऋषभादि तीर्थकरोंके कल्याणक प्रदेशोंके दर्शन किये ॥१४२॥ मारीच मुनि कल्पवासी देव हुए तथा अन्य महर्षियोंने जिसका जैसा तपोबल था उसने वैसा ही फल प्राप्त किया ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! शीलव्रतकी दृढ़तासे उत्पन्न सीताका माहात्म्य तो देखो कि उसने शीलव्रतका पालन किया तथा शत्रुओंको नष्ट कर दिखाया ॥१४४॥ कल्याणकारी गुणोंसे परिपूर्ण सीताका धैर्य, रूप, सौभाग्य, बुद्धि और पति विषयक स्नेहका बन्धन—सभी अनुपम था ॥१४५॥ जो शीलव्रतके प्रभावसे स्वर्गगामिनी थी तथा अपने पतिमें ही सन्तुष्ट रहती थी ऐसी सीताने श्रीराम देवके चरितको अच्छी तरह अलंकृत किया था ॥१४६॥ पर-पुरुषका त्याग करने वाले एक व्रत रूपी रत्नके द्वारा स्त्रियोंमें भी स्वर्ग प्राप्त करनेकी सामर्थ्य विद्यमान है ॥१४७॥ जिस विकट मायावी मयने पहले अनेक जीवोंका वध किया था, अब उसने भी वीर राग भावको धारण कर उत्तम मुनि हो अनेक ऋद्धियों प्राप्त की थी ॥१४८॥

तदनन्तर राजा श्रेणिकने कहा कि हे नाथ ! मैंने इन्द्रजित् आदिका माहात्म्य तो सुन लिया है अब मयका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ ॥१४९॥ हे भगवन् ! इस पृथिवी तल पर मनुष्योंकी और भी शीलवती ऐसी स्त्रियाँ हुई हैं जो कि अपने पतिमें ही लीन रही हैं सो क्या वे सब भी स्वर्गको प्राप्त हुई हैं ? ॥१५०॥ इसके उत्तरमें गणधर बोले कि यदि वे निश्चय और व्रतकी अपेक्षा सीताके समान हैं, पतिव्रत्य धर्मसे सहित एवं अनेक गुणोंसे युक्त हैं तो नियमसे स्वर्गका ही जाती हैं ॥१५१॥ हे राजन् ! पुण्य, पापका फल भोगनेमें जिनकी आत्मा निश्चल है अर्थात् जो समता भावसे पूर्वकृत पुण्य, पापका फल भोगती हैं ऐसी सभी शीलवती स्त्रियाँ अपनी चेष्टाओंसे समान ही होती हैं ॥१५२॥ वैसे हे राजन् ! लता, चोड़ा, हाथी, लोहा, पाषाण, वृक्ष, वस्त्र, स्त्री और पुरुष इनमें परस्पर बड़ा अन्तर होता है ॥१५३॥ जिस प्रकार हरएक लतामें न ककड़ी फलती है और न कुम्हड़ा ही, इसी प्रकार हे राजन् ! सब स्त्रियोंमें सदाचार नहीं पाया जाता ॥१५४॥ पहले अनि-वंशमें उत्पन्न हुई एक अभिमाना नामकी स्त्री हो गई है जो अपने आपको पतिव्रता प्रकट करती थी किन्तु यथार्थमें शील रूपी अङ्कुशसे रहित हो दुर्मत रूपी वारणको प्राप्त हुई थी । भावार्थ—

१. प्राप लब्धीः म० । २. महानृपः म० । ३. चित्रभृतं ख०, कर्कटिका (श्रीचन्द्रमुनिकृत-टिप्पण्यम्) । ४. च प्रति- म० ।

लोकशास्त्रातिनिःसारसृणिना नैष शक्यते । वर्षाकत्तु^१ मनोहस्ता कुगतिं नयते ततः ॥१५६॥
 सर्वशोक्यङ्कुशेनैव^२ दयासौख्यान्विते पथि । शक्यो योजयितुं युक्तमतिना भव्यजन्तुना ॥१५७॥
 शृणु संक्षेपतो वच्येऽभिमानाशीलवर्णनम् । परम्परासमायातमाख्यानकं विपश्चिताम् ॥१५८॥
 आर्साजनपदो यस्मिन् काले रोगानिलाहतः । धान्यप्रामात्तदा पत्न्या सहैको निर्गतो द्विजः ॥१५९॥
 आसीन्नोदननासावभिमानाभिवाङ्मना । अग्निनाम्ना समुपज्ञा मानिन्व्यामभिमानीनी ॥१६०॥
 नोदनेनाभिमानासौ क्षुद्धायाविह्वलात्मना । त्यक्त्वा गजवने प्राप्ता पतिं कररुहं नृपम् ॥१६१॥
 पुष्पप्रकीर्णनगरस्वामी लब्धप्रसादया । पादेन मस्तके जातु तयाऽसौ ताडितो रतौ ॥१६२॥
 आस्थानस्थः प्रभातेऽसौ पथ्यृच्छद् बहुश्रुतान् । पादेनाऽऽहन्ति यो राजशिरस्तस्य किमिष्यते ॥१६३॥
 तस्मिन् बहवः प्रोचुः सभ्याः पण्डितमानिनः । यथाऽस्य छिद्यते पादः प्राणैर्वा स वियोज्यताम् ॥१६४॥
 हेमाङ्कस्तत्र नामैको विप्रोऽभिप्रायकोविदः । जगद् तस्य पादोऽसौ पूजां सम्प्राप्यतां पराम् ॥१६५॥
 कोविदः कथमाहक् त्वमिति पृष्टः स भूभृता । इष्टस्त्रीदन्तशस्त्रीयं क्षतमिष्टं स्वमैल्यत् ॥१६६॥
 अभिप्रायविदित्येव हेमाङ्कस्तेन भूभृता । प्रापितः परमासृष्टिं सर्वेभ्यश्चान्तरं गतम् ॥१६७॥
 हेमाङ्कस्य गृहे तस्य नाम्ना मित्रयशाः सर्ता । अमोघशरसञ्ज्ञस्य भार्गवस्य प्रियाऽवसत् ॥१६८॥

इस प्रकार मूठ-मूठ ही पतिव्रताका अभिमान रखने वाली स्त्री पति-व्रता नहीं है ॥१५५॥ यह मन रूपी हाथी लौकिक शास्त्ररूपी निर्धूल अंकुशके द्वारा वश नहीं किया जा सकता इसलिए वह इस जीवको कुमतिमें ले जाता है ॥१५६॥ उत्तम बुद्धिको धारण करने वाला भव्यजीव, जिनवाणी रूपी अङ्कुशके द्वारा ही मनरूपी हाथीको दया और सुखसे सहित समीचीनमार्गमें ले जा सकता है ॥१५७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अब मैं विद्वानोंके बीच परम्परासे आगत अभिमानके शील वर्णनकी कथा संक्षेपमें कहता हूँ सो सुन ॥१५८॥

वे कहने लगे कि जिस समय समस्त देश रोगरूपी वायुसे पीडित था उस समय धान्यप्राम का रहने वाला एक ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ उस ग्रामसे बाहर निकला ॥१५९॥ उस ब्राह्मणका नाम नोदन था और उसकी स्त्रीका नाम अभिमाना था । अभिमाना अग्निनामक पितासे मानिनी नामक स्त्रीमें उत्पन्न हुई थी तथा अत्यधिक अभिमानको धारण करने वाली थी ॥१६०॥ तदनन्तर भूख की बाधासे जिसकी आत्मा विह्वल हो रही थी ऐसे नोदनने अभिमानाको छोड़ दिया । धीरे धीरे अभिमाना हाथियोंके वनमें पहुँची वहाँ उसने राजा कररुहको अपना पति बना लिया ॥१६१॥ राजा कररुह पुष्पप्रकीर्ण नगरका स्वामी था । तदनन्तर जिसे पतिकी प्रसन्नता प्राप्त थी ऐसी उस अभिमानाने किसी समय रतिकालमें राजा कररुहके शिरमें अपने पैरसे आघात किया अर्थात् उसके शिरमें लात मारी ॥१६२॥ दूसरे दिन प्रभात होने पर जब राजा सभामें बैठा तब उसने बहुश्रुत विद्वानोंसे पूछा कि जो राजाके शिरको पैरके आघातसे पीडित करे उसका क्या करना चाहिए ॥१६३॥ राजाका प्रश्न सुन, सभामें अपने आपको पण्डित माननेवाले जो बहुतसे सभासद् बैठे थे उन्होंने कहा कि उसका पैर काट दिया जाय अथवा उसे प्राणोंसे वियुक्त किया जाय ? ॥१६४॥ उसी सभामें राजाके अभिप्रायको जाननेवाला एक हेमाङ्क नामका ब्राह्मण भी बैठा था सो उसने कहा कि राजन्, उसके पैरकी अत्यधिक पूजा की जाय अर्थात् अलंकार आदिसे अलंकृत कर उसका सत्कार किया जाय ॥१६५॥ राजाने उससे पूछा कि तुम इस प्रकार विद्वान् कैसे हुए अर्थात् तुमने यथार्थ बात कैसे जान ली ? तब उसने कहा कि इष्टस्त्रीके इस दन्तरूपी शस्त्रने अपने इष्टको अपने द्वारा घायल दिखलाया है अर्थात् आपके ओठमें स्त्रीका दन्ताघात देख कर मैंने सब रहस्य जाना है ॥१६६॥ यह सुन राजाने 'यह अभिप्रायका जानने वाला है' ऐसा समझ हेमाङ्क को बहुत सम्पदा दी तथा अपनी त्रिकटता प्राप्त कराई ॥१६७॥ हेमाङ्कके घरमें अमोघशर

विधवा दुःखिनी तस्मिन् वसन्ती भवने सुतम् । अशिक्ष्यदसावेवं स्मृतभर्तृगुणोकरा ॥१६६॥
 सुनिश्चिताभना येन बाल्ये विद्यागमः कृतः । हेमाङ्कस्य द्युतिं तस्य विदुषः पश्य पुत्रक ॥१७०॥
 शरविज्ञाननिर्भूतसर्वभार्गवसम्पदः । पितुस्तथाविधस्य त्वं तनयो वालिशोऽभवः ॥१७१॥
 वाष्पविप्लुतनेत्रायाः श्रुत्वा मातुर्वचस्तदा । प्रशाम्यतां गतो विद्यां शिषितुं सोऽभिमानवान् ॥१७२॥
 ततो व्याघ्रपुरे सर्वाः कलाः प्राप्य गुरोर्गृहे । तत्प्रदेशसुकान्तस्य सुतां हत्वा विनिर्गतः ॥१७३॥
 तस्याः शीलाभिधानायाः कन्यकाया सहोदरः । सिंहेन्दुरिति,निर्यातो युद्धार्थं पुरुविक्रमः^१ ॥१७४॥
 एकको बलसम्पन्ने जित्वा सिंहेन्दुमाहवे । श्रीवर्धितोऽन्वितो मात्रा सम्प्राप्तः परमां द्युतिम् ॥१७५॥
 महाविज्ञानयुक्तेन तेन प्रख्यातकीर्तिना । लब्धं कररुहादायं नगरे पोदनहाथे ॥१७६॥
 सुकान्ते पञ्चतां प्राप्ते सिंहेन्दुर्गुंतिशृणा । अभिभूतः समं देव्या निरैद्गोहात् सुरङ्गया ॥१७७॥
 सम्भ्रान्तः शरणं गच्छन् भगिनीं खेदवान् भृशम् । प्राप्तस्ताम्बूलिकैर्भारं वाहितः सह भार्यया ॥१७८॥
 भानावस्तङ्गतेऽभ्याशं^२ पोदनस्य स सङ्गतः । मुक्तो राजभटै^३ रात्रौ त्रासितो गहनं श्रितः ॥१७९॥
 महोरगेण सन्दष्टस्तं देवी परिदेविनी^४ । कृत्वा स्कन्धे परिप्राप्ता देशं यत्र मयः स्थितः ॥१८०॥
 वज्रस्तम्भसमानस्य प्रतिमास्थानमीयुषः । महालब्धेः समीपस्य पादश्रोतमतिष्ठिपत् ॥१८१॥

नामक ब्राह्मणकी मित्रयशां नामकी पतिव्रता पत्नी रहती थी। वह बेचारी विधवा तथा दुःखिनी होकर उसी घरमें निवास करती और अपने पतिके गुणोंका स्मरण कर पुत्रको ऐसी शिक्षा देती थी ॥१६८-१६९॥ कि हे पुत्र ! जिसने बाल्य अवस्थामें निश्चिन्तचित्त होकर विद्याभ्यास किया था उस विद्वान् हेमाङ्कका प्रभाव देख ॥१७०॥ जिसने वाणविद्याके द्वारा समस्त ब्राह्मणों अथवा परशुरामकी सम्पदाको तिरस्कृत कर दिया था उस पिताके तू ऐसा मूर्ख पुत्र हुआ है ॥१७१॥ आँसुओंसे जिसके नेत्र भर रहे थे ऐसी माताके वचन सुन उसका श्रीवर्धित नामका अभिमानी बालक माताको सान्त्वना देकर उसी समय विद्या सीखनेके लिए चला गया ॥१७२॥

तदनन्तर व्याघ्रपुर नगरमें गुरुके घर समस्त कलाओंको सीख विद्वान् हुआ और वहाँके राजा सुकान्तकी पुत्रीका हरणकर वहाँसे निकल भागा ॥१७३॥ पुत्रीका नाम शीला था और उसके भाईका नाम सिंहेन्दु था, सो प्रबल पराक्रमका धारक सिंहेन्दु बहिनको वापिस लानेके लिए युद्धको इच्छा करता हुआ निकला ॥१७४॥ परन्तु श्रीवर्धित अस्त्र-शस्त्रमें इतना निपुण हो गया था कि उसने अकेले ही सेनासे युक्त सिंहेन्दुको युद्धमें जीत लिया और वह घर आकर तथा मातासे मिलकर परम सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥१७५॥ श्रीवर्धित महाविज्ञानी तो था ही धीरे-धीरे उसका यश भी प्रसिद्ध हो गया, अतः उसे राजा कररुहसे पोदनपुर नगरका राज्य मिल गया ॥१७६॥ कालक्रमसे जय व्याघ्रपुरका राजा सुकान्त मृत्युको प्राप्त हो गया तब द्युतिनामक शत्रुने उसके पुत्र सिंहेन्दुपर आक्रमण किया जिससे भयभीत हो वह अपनी स्त्रीके साथ एक सुरंग द्वारा घरसे बाहर निकल गया ॥१७७॥ वह अत्यन्त घबड़ा गया था तथा बहुत खिन्न होता हुआ बहिनकी शरणमें जा रहा था। मार्गमें तंबोलियोंका साथ हो गया सो उनका भार शिर-पर रखते हुए वह अपनी स्त्री सहित सूर्यास्त होनेके बाद पोदनपुरके समीप पहुँचा। वहाँ राजाके योद्धाओंने उसे पकड़कर धमकाया सो जिस-किसी तरह छूटकर भयभीत होता हुआ वनमें पहुँचा ॥१७८-१७९॥ सो वहाँ एक महासर्पने उसे डँस लिया जिससे विलाप करती हुई उसकी स्त्री उसे कंधेपर रखकर उस स्थानपर पहुँची जहाँ मयमुनि विराजमान थे ॥१८०॥ महा-ऋद्धियोंके धारक मयमुनि प्रतिमा योग धारण कर वज्र स्तम्भके समान निश्चल खड़े थे, सो रानीने

१. पुरविक्रमः म० । २. अभ्यासं म० । ३. राजन् म० । ४. परिदेविनी म० ।

पादौ मुनेः परामृष्य पत्थुर्गात्रं त्रिसप्तशतम् । देवी ततः परिप्राप्तः सिंहेन्दुर्जीवितं पुनः ॥१८२॥
 चैत्यस्य वन्दनां कृत्वा भक्त्या केसरिचन्द्रमाः । प्रणनाम मुनिं भूयो भूयो दयितया समम् ॥१८३॥
 उद्गते भास्करे साधुः समाप्तनियमोऽभवत् । प्राप्तो विनयदत्तस्तं वन्दनार्थमुपासकः ॥१८४॥
 सन्देशाच्छ्रावको गत्वा पुरं श्रीवर्द्धिताय तम् । सिंहेन्दुं प्राप्तमाचख्यौ श्रुत्वा सन्नद्धमुद्यतः ॥१८५॥
 ततो यथावदाख्याते प्रीतिसङ्गतमानसः । महोपचारशोभुष्या श्यालं श्रीवर्द्धितोऽगमत् ॥१८६॥
 ततो बन्धुसमायोगं प्राप्तः परमसम्पदः । श्रीवर्द्धितः सुखासीनं पप्रच्छेति मयं नतः ॥१८७॥
 भगवन् ज्ञातुमिच्छामि पूर्वं जननमात्मनः । स्वजनानां च सत्साधुस्ततो वचनमववात् ॥१८८॥
 भासीच्छोभपुरे नाम्ना भद्राचार्यो दिग्म्बरः । अमलाख्यः पुरस्थास्य स्वामी गुणसमुत्करः ॥१८९॥
 स तं प्रत्यहमाचार्यं सेवितुं याति सन्मताः । अन्यदा गन्धमाजघ्नौ देशे तत्र सुदुःसहम् ॥१९०॥
 स तं गन्धं समाघ्राय कुष्टिन्यङ्गलमुद्गतम् । पद्मयामेव निजं रोहं गतोऽसहनको दुतम् ॥१९१॥
 अन्यतः कुष्टिनी सा तु प्राप्ता चैत्यान्तिके तदा । विश्रान्ताऽऽसीद्भ्रजेभ्योऽस्या दुर्गन्धोऽसौ विनिर्धयो ॥१९२॥
 अणुव्रतानि सा प्राप्य भद्राचार्यसकाशतः । देवलोकं गता च्युत्वाऽसौ कान्ता शीलवत्यभूत् ॥१९३॥
 यस्वसावमलो राजा पुत्रन्यस्तनृपक्रियः । सन्तुष्टः सोऽष्टभिर्मातैः श्रावकस्वमुपाचरत् ॥१९४॥

सिंहेन्दुको उनके चरणोंके समीप लिटा दिया ॥१८१॥ सिंहेन्दुकी स्त्रीने मुनिराजके चरणोंका स्पर्श कर पतिके शरीरका स्पर्श किया जिससे वह पुनः जीवित हो गया ॥१८२॥ तदनन्तर सिंहेन्दुने भक्तिपूर्वक प्रतिमाकी वन्दना की और उसके बाद आकर अपनी स्त्रीके साथ बार-बार मुनिराजकी प्रणाम किया ॥१८३॥

अथानन्तर सूर्योदय होनेपर मुनिराजका नियम समाप्त हुआ, उसी समय वन्दनाके लिए विनयदत्त नामका श्रावक उनके समीप आया ॥१८४॥ सिंहेन्दुके संदेशसे श्रावकने नगरमें जाकर श्रीवर्द्धितके लिए बताया कि राजा सिंहेन्दु आया है । यह सुन श्रीवर्द्धित युद्धके लिए तैयार हो गया ॥१८५॥ तदनन्तर जब यथार्थ बात मालूम हुई तब प्रीतियुक्त चित्त होता हुआ श्रीवर्द्धित सन्मान करनेकी भावनासे अपने सालेके पास गया ॥१८६॥ तत्पश्चात् इष्टजनोंका समागम प्राप्त कर हर्षित होते हुए श्रीवर्द्धितने सुखसे बैठे हुए मय मुनिराजसे विनयपूर्वक पूछा कि हे भगवन् ! मैं अपने तथा अपने परिवारके लोगोंके पूर्वभव जानना चाहता हूँ । तदनन्तर उत्तम मुनिराज इस प्रकार वचन बोले कि ॥१८७-१८८॥

शोभपुर नगरमें एक भद्राचार्य नामक दिग्म्बर मुनिराज थे । उस नगरका राजा अमल था जो कि गुणोंके समूहसे सुशोभित था ॥१८९॥ उत्तम हृदयकी धारण करनेवाला अमल प्रतिदिन उन आचार्यकी सेवा करनेके लिए आता था । एक दिन आनेपर उसे उस स्थानपर अन्यन्त दुःसह दुर्गन्ध आई ॥१९०॥ कोढ़िनोंके शरीरसे उत्पन्न हुई वह दुर्गन्ध इतनी भयंकर थी कि राजा उसे सहन नहीं कर सका और पैदल ही शीघ्र अपने घर चला गया ॥१९१॥ वह कोढ़िनी स्त्री किसी अन्य स्थानसे आकर उस मन्दिरके समीप ठहरी थी, उसीके यावोंसे वह दुर्गन्ध निकल रही थी ॥१९२॥ उस स्त्रीने भद्राचार्यके पास अणुव्रत धारण किये जिसके फलस्वरूप वह मरकर स्वर्ग गई और वहाँसे च्युत होकर यह शीला नामक तुम्हारी स्त्री हुई है ॥१९३॥ वहाँ जो अमल नामका राजा था उसने सब राज्यकार्य पुत्रके लिए सौंप दिया और स्वयं

देवलोकमसौ गत्वा च्युतः श्रीवर्द्धितोऽभवत् । अधुना पूर्वकं जन्म मातुरत्तव वदाम्यहम् ॥१६५॥
 एको वैदेशिको भ्राम्यन् ग्रामं क्षुद्रपाधितोऽविशत् । स भोजनगृहे भुक्तिमलध्वा कोपसङ्गतः ॥१६६॥
 सर्वं ग्रामं दहामीति निगद्य कटुकस्वरम् । निष्कान्तः सृष्टितोऽसौ च ग्रामः प्राप्तः प्रदीपनम् ॥१६७॥
 ग्राम्यैरानीय सङ्कुडैः द्विसोऽसौ तत्र पावके । मृतो दुःखेन सम्भूतः स्वकारी नृपालये ॥१६८॥
 ततो मृता परिप्राप्ता नरकं घोरवेदनम् । तस्मादुत्तीर्य माताऽभूत्तत्र मित्रयशोऽभिधा ॥१६९॥
 बभूव पोदनस्थाने नाम्ना गोवाणिजो महान् । भुजपत्रेति तद्भार्या सौकान्तिः सोऽभवन्मृतः ॥२००॥
 भुजपत्रापि जाताऽस्य कामिनी रतिवर्द्धनी । पीडनाद्गर्दभादीनां पुरा भारं च वाहिति ॥२०१॥
 एवमुक्त्वा मयो व्योम भासयन् स्वेषिसत्तं ययौ । श्रीवर्द्धितोऽपि नगरं प्राप्तवन्धुसमागमः ॥२०२॥
 पूर्वभाग्योदयाद्वाजन् संसारे चित्रकर्मणि । राज्यं कश्चिद्वाप्नोति प्राप्तं नश्यति कस्यचित् ॥२०३॥
 अन्वेकस्माद्गुरोः प्राप्य जन्तूनां धर्मसङ्गतिम्^१ । निदाननिर्दिदानाभ्यां मरणाभ्यां पृथग्गतिः ॥२०४॥
 उत्तरन्मुदधिं केचिद्रत्नपूर्णाः सुखान्विताः । मध्ये केचिद्विशीर्यन्ते तटे केचिद्वनाधिपाः ॥२०५॥
 इति ज्ञत्वाऽऽमनः श्रेयः सदा कार्यं मनीषिभिः । दयादमतपःशुद्ध्या^२ विनयेनागमेन वा ॥२०६॥
 सकलं पोदनं नूनं तदा मयवचःश्रुतेः । उपशान्तमभूद्धर्मगतचित्तं^३ नराधिप ॥२०७॥

वह आठ गाँवोंसे संतुष्ट हो श्रावक हो गया ॥१६४॥ आयुके अन्तमें वह स्वर्ग गया और वहाँसे च्युत हो श्रीवर्द्धित हुआ । इतना कहकर मय मुनिराजने कहा कि अब मैं तुम्हारी माताका पूर्व भव कहता हूँ ॥१६५॥

एक बार एक विदेशी मनुष्य भूखसे पीड़ित हो घूमता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ । नगरकी भोजनशालामें भोजन न पाकर वह कुपित होता हुआ कटुक शब्दोंमें यह कहकर बाहर निकल गया कि 'मैं समस्त गाँवको अभी जलाता हूँ' । भाग्यकी बात कि उसी समय गाँवमें आग लग गई ॥१६६-१६७॥ तत्र क्रोधसे भरे ग्रामवासियोंने उसे लाकर उसी अग्निमें डाल दिया, जिससे दुःखपूर्वक मरकर वह राजाके घर रसोइन हुआ ॥१६८॥ तदनन्तर मरकर घोर वेदनासे युक्त नरक पहुँची और वहाँसे निकलकर तुम्हारी माता मित्रयशा हुई है ॥१६९॥ पोदनपुरमें एक गोवाणिज नामका बड़ा गृहस्थ था, भुजपत्रा उसकी स्त्रीका नाम था । गोवाणिज मरकर सिंहेन्दु हुआ और भुजपत्रा उसकी रतिवर्द्धनी नामकी स्त्री हुई । इन दोनोंने पूर्वभवमें गर्दभ आदि पशुओंपर अधिक लोभ लाद-लाद उन्हें पीड़ा पहुँचाई थी इसलिए उन्हें भी तंत्रोलियोंका भार उठाना पड़ा ॥२००-२०१॥ इस प्रकार कहकर मय मुनिराज आकाशको देदीप्यमान करते हुए अपने इच्छित स्थानपर चले गये और श्रीवर्द्धित भी इष्टजनोंका समागम प्राप्त कर नगरमें चला गया ॥२०२॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस विचित्र संसारमें पूर्वकृत भाग्यका उदय होनेपर कोई राज्यको प्राप्त होता है और किसीका प्राप्त हुआ राज्य नष्ट हो जाता है ॥२०३॥ एक ही गुरुसे धर्मकी संगति पाकर निदान अथवा निदानरहित मरणसे जीवोंकी गति भिन्न-भिन्न होती है ॥२०४॥ रत्नोंसे पूर्णताको प्राप्त हुए कितने ही धनेश्वरी मनुष्य सुखपूर्वक समुद्रको पार करते हैं, कितने ही बीचमें डूब जाते हैं और कितने ही तटपर डूब मरते हैं ॥२०५॥ ऐसा जानकर बुद्धिमान् मनुष्योंको सदा दया, दम, तपश्चरणकी शुद्धि, विनय तथा आगमके अभ्याससे आत्माका कल्याण करना चाहिए ॥२०६॥ हे राजन् ! उस समय मय मुनिराजके वचन सुनकर समस्त

१. कटुकः स्वरम् म० । २. संकुडः । ३. धर्मसंगतिः म०, ख०, ज० । ४. तपस्तुष्ट्या ज० । ५. चित्तं म० ।

आर्याच्छुन्दः

ईदृग्गुणो विधिज्ञः प्रासुविहारी मयः प्रशान्तात्मा ।
 पण्डितमरणं प्राप्तोऽभूदीशाने सुरश्रेष्ठः ॥२०८॥
 एतन्मयस्य साधोर्माहात्म्यं ये पठन्ति सच्चित्ताः ।
 अस्यः क्रव्यादा वा हिंसन्ति न तान् कदाचिदपि ॥२०९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मयोपाख्यानां नामाऽशीतितमं पर्व ॥८०॥

पोदनपुर अत्यन्त शान्त हो गया तथा धर्ममें उसका चित्त लग गया ॥२०७॥ इस प्रकारके गुणोंसे युक्त, धर्मकी विधिको जाननेवाले, प्रशान्त चित्त तथा पासुक स्थानमें विहार करनेवाले मय मुनिराज, पण्डित मरणको प्राप्त हो श्रेष्ठ देव हुए ॥२०८॥ इस तरह जो उत्तम चित्त होकर मय मुनिराजके इस माहात्म्यको पढ़ते हैं, शत्रु अथवा मांसभोजी सिंहादि उनकी कभी भी हिंसा नहीं करते ॥२०९॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मय मुनिराजका वर्णन करनेवाला अस्सीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८०॥

एकाशीतितमं पर्व

बहूलोकभवाकारां लक्ष्मीं लक्ष्मणपूर्वजः । चन्द्राङ्गचूडदेवेन्द्रप्रतिमोऽनुभवसौ ॥१॥
 भस्त्रपुत्रवियोगाग्निज्वालाशोषितविग्रहाम् । विस्मृतः कथमेकान्तं जननीमपराजिताम् ॥२॥
 सप्तमं तलमारूढा प्रासादस्य सखीवृता । उद्विग्रासन्नप्रपूर्णाया नवधेनुरिवाकुला ॥३॥
 वीक्षते सा दिशः सर्वाः पुत्रस्नेहपरायणा । काञ्चन्ती दर्शनं तीव्रशोकसागरवर्तिनी ॥४॥
 पताकाशिखरे तिष्ठन्नुत्पतोत्पतवायसं । पद्मः पुत्रो ममाऽऽयातु तव दास्यामि पायसम् ॥५॥
 ह्युक्त्वा चेष्टितं तस्य ध्यात्वा ध्यानं मनोहरम् । विलापं कुरुते नेत्रवाष्पदुर्दिनकारिणी ॥६॥
 हा वत्सक क यातोऽसि सततं सुखलालितः । विदेशभ्रमणे प्रीतिस्तव केयं समुद्भूता ॥७॥
 पादपङ्क्तयोः पीडां प्राप्नोपि परुषे पथि । विश्रमिष्यसि कस्याऽथो गहनस्योत्कटभ्रमः ॥८॥
 मन्दभागां परित्यज्य मकामस्थर्थदुःखिताम् । यातोऽसि कतमाशां भ्रात्रा पुत्रकसङ्गतः ॥९॥
 परदेवनमारेभे सा कन्तुं चैवमादिकम् । देवर्षिश्च परिप्राप्तो गगनाङ्गणगोचरः ॥१०॥
 जटाकूर्चधरः शुक्लवस्त्रप्रावृतविग्रहः । अवधारगुणाभिल्यो नारदः क्षितिविश्रुतः ॥११॥
 तं समीपत्वमायातमभ्युत्थायापराजिता । आसानाद्युपचारेण सादरं सममानयत् ॥१२॥

अथानन्तर जो स्वर्ग लोककी लक्ष्मीके समान राजलक्ष्मीका उपभोग कर रहे थे ऐसे चन्द्राङ्गचूड इन्द्रके तुल्य श्रीराम, पति और पुत्रके वियोगरूपी अग्निकी ज्वालासे जिनका शरीर सूख गया था ऐसी माता कौसल्याको एकदम क्यों भूल गये थे ? ॥१-२॥ जो निरन्तर उद्विग्न रहती थी, जिसके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त रहते थे, जो नवप्रसूता गायके समान अपने पुत्रसे मिलनेके लिए अत्यन्त व्याकुल थी, पुत्रके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें तत्पर थी, तीव्र शौकरूपी सागरमें विद्यमान थी और पुत्रके दर्शनकी इच्छा रखती थी, ऐसी कौसल्या सखियोंके साथ महलके सातवें खण्डपर चढ़ कर सब दिशाओंकी ओर देखती रखती थी ॥३-४॥ वह पागलकी भाँति पताकाके शिखरपर बैठे हुए काकसे कहती थी कि रे वायस ! उड़-उड़ । यदि मेरा पुत्र राम आ जायगा तो मैं तुझे खीरका भोजन देऊँगी ॥५॥ ऐसा कहकर उसकी मनोहर चेष्टाओंका ध्यान करती और जब उसकी ओरसे कुछ उत्तर नहीं मिलता तब नेत्रोंसे आँसुओंकी घनघोर वर्षा करती हुई विलाप करने लगती ॥६॥ वह कहती कि हाय पुत्र ! तू कहाँ चला गया ? तू निरन्तर सुखसे लड़ाया गया था । तुझे विदेश भ्रमणकी यह कौन-सी प्रीति उत्पन्न हुई है ? ॥७॥ तू कठोर मार्गमें चरण-किसलयोंकी पीडाको प्राप्त हो रहा होगा । अर्थात् कंकरीले पथरीले मार्गमें चलते-चलते तेरे कोमल पैर दुखने लगते होंगे तब तू अत्यन्त थक कर किस वनके नीचे विश्राम करता होगा ? ॥८॥ हाय बेटा ! अत्यन्त दुःखिनी मुझ मन्दभागिनीको छोड़ तू भाई लक्ष्मणके साथ किस दिशामें चला गया है ? ॥९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वह कौसल्या जिस समय इस प्रकारका विलाप कर रही थी उसी समय आकाशमार्गमें विहार करनेवाले देवर्षि नारद वहाँ आये ॥१०॥ वे नारद जटाहारी कूर्चको धारण किये हुए थे, सफेद वस्त्रसे उनका शरीर आवृत था, अवधार नामके धारक थे और पृथिवीमें सर्वत्र प्रसिद्ध थे ॥११॥ उन्हें समीपमें आया देख कौसल्याने उठकर तथा आसन आदि देकर उनका

१. चन्द्रार्क म० । २. कौशल्याम् । ३. रिवावृता. म० । ४. जननी व० । ५. वायसः म० । ६. नेत्र-वायस म० । ७. भ्रात्रा म० । ८. परिवेदन- म० । ९. समीपस्थ म० ।

सिद्धयोगमुनिर्हृष्टा तामश्रुतरलेच्छनाम् । आकारसूचितोदारशोकं सम्परिपृष्टवान् ॥१३॥
 कुतः प्राप्ताऽसि कल्याणि विमाननमिदं यतः । रुदते न तु सम्भाव्यं तव दुःखस्य कारणम् ॥१४॥
 सुकोशलमहाराजदुहिता लोकविश्रुता । श्लाघ्याऽपराजिताभिख्या पत्नी दशरथश्रुतेः ॥१५॥
 पद्मनाभनृत्नस्य प्रसवित्री सुलक्षणा । येन त्वं कोपिता मान्वा देवतेव हतात्मना ॥१६॥
 अद्यैव कुरुते तस्य प्रतापाक्रान्तविष्टपः । नृपो दशरथः श्रीमान्निग्रहं प्राणहारिणम् ॥१७॥
 उवाच नारदं देवी स त्वं चिरतरागतः । देवर्षे वेत्सि वृत्तान्तं नेमं येनेति भाषसे ॥१८॥
 अन्य एवासि संबृत्तो वात्सल्यं तत्पुरातनम् । कुतो विशिथिलीभूतं लक्ष्यते निष्ठुरस्य ते ॥१९॥
 कथं वार्त्तमपीदानीं त्वं नोपलभसे गुरुः । अतिदूरादिवायातः कुतोऽपि भ्रमणप्रियः ॥२०॥
 तेनोक्तं धातकीखण्डे सुरेन्द्ररमणे पुरे । विदेहेऽजनि पूर्वस्मिन्नैलोक्यपरमेश्वरः ॥२१॥
 मन्दरे तस्य देवेन्द्रैः सुरासुरसमन्वितैः । दिव्ययाऽद्भुतया भूत्या जननाभिपदः कृतः ॥२२॥
 तस्य देवाधिदेवस्य सर्वपापप्रणाशनः । अभिषेको मया इष्टः पुण्यकर्मप्रवर्द्धकः ॥२३॥
 आनन्दं ननृतुस्तत्र देवाः प्रमुदिताः परम् । विद्याधराश्च विभ्राणा विभूतिमतिशोभनाम् ॥२४॥
 जिनेन्द्रदर्शनाप्तकस्तस्मिन्नतिमनोहरे । त्रयोविंशतिवर्षाणि द्वीपेऽहमुषितः सुखम् ॥२५॥
 तथापि जननीतुह्यां संस्मृत्य भरतक्षितिम् । महाधृतिकरीमेष प्राप्तोऽहं चिरसेविताम् ॥२६॥
 जम्बूभरतमागत्य ब्रजाम्यद्यापि न क्वचित् । भवतीं द्रष्टुमायातो वार्त्ताज्ञानपिपासितः ॥२७॥

आदर किया ॥१२॥ जिसके नेत्र आँसुओंसे तरल थे तथा जिसकी आकृतिसे ही बहुत भारी शोक प्रकट हो रहा था ऐसी कौसल्याको देख नारदने पूछा कि हे कल्याणि ! तुमने किससे अनादर प्राप्त किया है, जिससे रो रही हो ? तुम्हारे दुःखका कारण तो सम्भव नहीं जान पड़ता ? ॥१३-१४॥ तुम सुकोशल महाराजकी लोकप्रसिद्ध पुत्री हो, प्रशंसनीय हो तथा राजा दशरथकी अपराजिता नामकी पत्नी हो ॥१५॥ मनुष्योंमें रत्नस्वरूप श्रीरामकी माता हो, उत्तम लक्षणोंसे युक्त हो तथा देवताके समान माननीय हो । जिस दुष्टने तुम्हें क्रोध उत्पन्न कराया है, प्रतापसे समस्त संसारको व्याप्त करनेवाले श्रीमान् राजा दशरथ आज ही उसका प्रणापहारी निग्रह करेंगे अर्थात् उसे प्राणदण्ड देंगे ॥१६-१७॥

इसके उत्तरमें देवी कौसल्याने कहा कि हे देवर्षे ! तुम बहुत समय बाद आये हो इसलिए इस समाचारको नहीं जानते और इसीलिए ऐसा कह रहे हो ॥१८॥ जान पड़ता है कि अब तुम दूसरे ही हो गये हो और तुम्हारी निष्ठुरता बढ़ गई है अन्यथा तुम्हारा वह पुराना वात्सल्य शिथिल क्यों दिखाई देता ? ॥१९॥ आज तक भी तुम इस वार्त्ताको क्यों नहीं प्राप्त हो सके ? जान पड़ता है कि तुम भ्रमणप्रिय हो और अभी कहीं बहुत दूरसे आ रहे हो ॥२०॥ नारदने कहा कि धातकी खण्ड-द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक सुरेन्द्ररमण नामका नगर है वहाँ श्रीतीर्थकर भगवान्का जन्म हुआ था ॥२१॥ सुरासुरसहित इन्द्रोंने सुमेरु पर्वतपर आश्चर्यकारी दिव्य वैभवके साथ उनका जन्माभिषेक किया था ॥२२॥ सो समस्त पापोंको नष्ट करने एवं पुण्यकर्मको बढ़ानेवाला तीर्थकर भगवान्का वह अभिषेक मैंने देखा है ॥२३॥ उस उत्सवमें आनन्दसे भरे देवोंने तथा अत्यन्त शोभायमान विभूतिको धारण करनेवाले विद्याधरोंने आनन्दसे नृत्य किया था ॥२४॥ जिनेन्द्र भगवान्के दर्शनोंमें आसक्त हो मैं उस अतिशय मनोहारी द्वीपमें यद्यपि तेईस वर्ष तक सुखसे निवास करता रहा ॥२५॥ तथापि चिरकालसे सेवित तथा महान् धैर्य उत्पन्न करनेवाली माताके तुल्य इस भरत-क्षेत्रकी भूमिका स्मरण कर यहाँ पुनः आ पहुँचा हूँ ॥२६॥ जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें आकर मैं अभीतक कहीं अन्यत्र नहीं गया हूँ, सीधा समाचार, जाननेकी प्यास लेकर तुम्हारा दर्शन करनेके लिए आया हूँ ॥२७॥

ततोऽपराजिताऽन्वादीद् यथावृत्तमशेषतः । सर्वप्राणिहिताचार्यस्वागति गणधारिणः ॥२८॥
 वैदेहस्य समायोगं महाविद्याधरप्रभोः । दशस्यन्दनराजस्य प्रवृत्त्यां पार्थिवैः समम् ॥२९॥
 सीतालक्ष्मणयुक्तस्य पद्मनाभस्य निर्गमम् । वियोगं सीतया साकं सुग्रीवादिसमागमम् ॥३०॥
 लक्ष्मणं समरे शक्त्या लङ्कानाथेन ताडितम् । द्रोणमेघस्य कन्याया नयनं त्वरयान्वितम् ॥३१॥
 इत्युक्त्वाऽनुस्मृतात्प्यन्ततीव्रदुःखपरायणा । अश्रुधारां विमुञ्चन्ती सा पुनः पर्यदेवत ॥३२॥
 हा हा पुत्र गतः क्वासि चिरमेहि प्रयच्छ मे । वचनं कुरु साधारं मग्नायाः शोकसागरे ॥३३॥
 पुण्योष्किता त्वदीयास्यमपरयन्ती सुजातक । तीव्रदुःखानलालीढा हतं मन्ये स्वजीवितम् ॥३४॥
 वन्द्रीगृहं समानीता राजपुत्री सुखैधिता । बाला वनमृगीमुग्धा सीता दुःखेन तिष्ठति ॥३५॥
 निर्धृणै न दशास्येन शक्त्या लक्ष्मणसुन्दरः । ताडितो जीवितं धत्ते नेति वार्त्ता न विद्यते ॥३६॥
 हा तुदुर्लभकौ पुत्री हा सीते सति बालिके । प्राप्तासि जलधेर्मध्ये कथं दुःखमिदं परम् ॥३७॥
 तं वृत्तान्तं ततो ज्ञात्वा वीणां श्लिष्ट्वा महीतले । उद्विग्नो नारदस्तस्थौ हस्ताधाधाय मस्तके ॥३८॥
 क्षणनिष्कम्पदेहश्च विमृश्य बहुवृद्धितः । अब्रवीद् देवि नो मग्ध्यवृत्तमेतद्विभाति मे ॥३९॥
 त्रिखण्डाधिपतिश्चण्डो विद्याधरमहेश्वरः । वैदेहकपिनाथान्यां रावणः किं प्रकोपितः ॥४०॥
 तथापि कौशले शोकं मा कृथाः परमं शुभे । अचिरादेव ते वार्त्तामानयामि न संशयः ॥४१॥
 कृत्यं विधातुमेतावदेवि सामर्थ्यमस्ति मे । शक्तः स एव शेषस्य कार्यस्य तव नन्दनः ॥४२॥
 प्रतिज्ञामेवमादाय नारदः खं समुद्रगतः । वीणां क्लृप्तान्तरे कृत्वा सखीमिव परां प्रियाम् ॥४३॥

तदनन्तर अपराजिता (कौसल्या) ने जो वृत्तान्त जैसा हुआ था वह सब नारदसे कहा । उसने कहा कि सङ्गसहित सर्वभूतहित आचार्यका आगमन हुआ । महा विद्याधरोंके राजा भामण्डलका संयोग हुआ । राजा दशरथने अनेक राजाओंके साथ दीक्षा धारण की, सीता और लक्ष्मणके साथ राम वनको गये, वहाँ सीताके साथ उनका वियोग हुआ, सुग्रीवादिके साथ समागम हुआ, युद्धमें लङ्काके धनी-रावणने लक्ष्मणको शक्तिसे ताड़ित किया और द्रोणमेघकी कन्या विशाल्या शीघ्रतासे वहाँ ले जाई गई ॥२८--२९॥ इतना कहते ही जिसे तीव्र दुःखका स्मरण हो आया था ऐसी कौसल्या अश्रुधारा छोड़ती हुई पुनः विलाप करने लगी ॥३०॥ हाय हाय पुत्र ! तू कहाँ गया ? कहाँ है ? बहुत समय हो गया, शीघ्र ही आ, मेरे लिए वचन दे—मुझसे वार्त्ता-लाप कर और शोकसागरमें डूबी हुई मेरे लिए सान्त्वना दे ॥३१॥ हे सत्पुत्र ! मैं पुण्यहीना तुम्हारे मुखको न देखती तथा तीव्र दुःखाग्निसे व्याप्त हुई अपने जीवनको निरर्थक मानती हूँ ॥३२॥ सुखसे जिसका लालन-पालन हुआ तथा जो वनकी हरिणीके समान भोली है ऐसी राजपुत्री बेटी सीता शत्रुके बन्दीगृहमें पड़ी दुःखसे समय काट रही होगी ॥३३॥ निर्दय रावणने लक्ष्मणको शक्तिसे घायल किया सो जीवित है या नहीं इसकी कोई खबर नहीं है ॥३४॥ हाय मेरे अत्यन्त दुर्लभ पुत्रो ! और हाय मेरी पतिव्रते बेटी सीते ! तुम समुद्रके मध्य इस भयङ्कर दुःखको कैसे प्राप्त हो गई ॥३५॥

तदनन्तर यह वृत्तान्त जानकर नारदने वीणा पृथ्वीपर फेंक दी और स्वयं उद्विग्न हो दोनों हाथ मस्तकसे लगा चुपचाप बैठ गये ॥३६॥ उनका शरीर क्षणमात्रमें निश्चल पड़ गया । जब विचारकर उनकी ओर अनेक बार देखा तब वे बोले कि हे देवि ! मुझे यह बात अच्छी नहीं जान पड़ती ॥३६॥ रावण तीन खण्डका स्वामी है, अत्यन्त क्रोधी तथा समस्त विद्याधरोंका स्वामी है सो उसे भामण्डल तथा सुग्रीवने क्यों कुपित कर दिया ? ॥४०॥ फिर भी हे कौसल्ये ! हे शुभे ! अत्यधिक शोक मत करो । यह मैं शीघ्र ही जाकर तुम्हारे लिए समाचार लाता हूँ इसमें कुल भी संशय नहीं है ॥४१॥ हे देवि ! इतना ही कार्य करनेकी मेरी सामर्थ्य है । शेष कार्यके करनेमें तुम्हारा पुत्र ही समर्थ है ॥४२॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा कर तथा परमप्यारी सखीके समान वीणाको बगलमें दबाकर नारद आकाशमें उड़ गये ॥४३॥

ततो वातगतिः क्षीणो परयन् दुर्लभ्यपर्वताम् । लङ्कां प्रतिकृताशङ्को नारदश्चकितं ययौ ॥४४॥
 समीपीभूय लङ्कायाश्चिन्तामेवमुपागतः । कथं वार्तापरिज्ञानं करोमि निरुपायकम् ॥४५॥
 पद्मलक्ष्मणवार्तायाः प्रश्ने दोषोऽभिलक्ष्यते । पृच्छतो दशवक्त्रं तु स्फीतमार्गो न हरयते ॥४६॥
 अनेनैवानुपूर्व्येण वार्तां ज्ञास्ये मनीषिताम् । इति ध्यात्वा सुविभ्रदधो गतः पद्मसरो यतः ॥४७॥
 तस्यां च तत्र वेलायामन्तःपुरसमन्वितः । तारायास्तनयः क्रीडां कुरुते चारुविभ्रमः ॥४८॥
 तदस्थं पुरुषं तस्य कृतपूर्वप्रियोदितः । कुशलं रावणस्येति पद्मच्छावस्थितः क्षणम् ॥४९॥
 श्रुत्वा तद्वचनं क्रुद्धाः किङ्कराः स्फुरिताधराः । जगदुः कथमेव त्वं दुष्टं तापस भाषसे ॥५०॥
 कुतो रावणवर्गीणो मुनिखेटस्त्वमागतः । इत्युक्त्वा परिवार्यासावङ्गदस्यान्तिकीकृतः ॥५१॥
 कुशलं रावणस्वायं पृच्छतीत्युदिते भटैः । न कार्यं दशवक्त्रेण ममेति मुनिरभ्यधात् ॥५२॥
 तैरुक्तं यद्यदः सत्यं तस्य कस्मात्प्रमोदवान् । कुशलोदन्तसम्प्रश्ने वर्त्तसे परमादरः ॥५३॥
 ततोऽङ्गदः प्रहस्योचे ब्रजतैर्न कुतापसम् । दुरीहं पद्मनाभाय मूढं दर्शयत द्रुतम् ॥५४॥
 पृष्ठतः प्रेर्यमाणोऽसौ बाह्वाकर्षणतत्परैः । सुकष्टं नीयमानस्तैरिति चिन्तामुपागतः ॥५५॥
 बहवः पद्मनाभाख्याः सन्त्यत्र वसुधातले । न जाने कतमः स स्यात्कीये यस्याहमन्तिकम् ॥५६॥
 अर्हच्छासनवात्सल्या देवता मम तायनम् । काचित् कुर्वीत किं नाम पतितोऽस्म्यतिसंशये ॥५७॥

तदनन्तर वायुके समान तीव्र गतिसे जाते और दुर्लभ्य पर्वतोसे युक्त पृथिवीको देखते हुए नारद लंकाकी ओर चले । उस समय उनके मनमें कुछ शङ्का तथा कुछ आश्चर्य—दोनों ही उत्पन्न हो रहे थे ॥४४॥ चलते-चलते नारद जब लंकाके समीप पहुँचे तब ऐसा विचार करने लगे कि मैं उपायके बिना राम-लक्ष्मणका समाचार किस प्रकार ज्ञात करूँ ? ॥४५॥ यदि साक्षात् रावणसे राम-लक्ष्मणकी वार्ता पूछता हूँ तो इसमें दोष दिखायी देता है । क्या करूँ ? कुछ स्पष्ट मार्ग दिखायी नहीं देता ॥४६॥ अथवा मैं इसी क्रमसे इच्छित वार्ताको जानूँगा । इस प्रकार मनमें ध्यान कर निश्चिन्त हो पद्मसरोवरकी ओर गये ॥४७॥ उस समय उस पद्मसरोवरमें उत्तम शोभाको धारण करनेवाला अङ्गद अपने अन्तःपुरके साथ क्रीड़ा कर रहा था ॥४८॥ वहाँ जाकर नारद मधुर वार्ता द्वारा तटपर स्थित किसी पुरुषसे रावणकी कुशलता पूछते हुए क्षणभर खड़े रहे ॥४९॥ उनके वचन सुन, जिनके ओंठ काँप रहे थे ऐसे सेवक कुपित हो बोले कि रे तापस ! तू इस तरह दुष्टतापूर्ण वार्ता क्यों कर रहा है ? ॥५०॥ 'रावणके वर्गका तू दुष्ट तापस यहाँ कहाँसे आ गया ?' इस प्रकार कहकर तथा घेरकर किङ्कर लोग उन्हें अङ्गदके समीप ले गये ॥५१॥ 'यह तापस रावणकी कुशल पूछता है' इस प्रकार जब किङ्करोंने अंगदसे कहा तब नारदने उत्तर दिया कि मुझे रावणसे कार्य नहीं है ॥५२॥ तब किङ्करोंने कहा कि यदि यह सत्य है तो फिर तू हर्षित हो रावणका कुशल पूछनेमें परमआदरसे युक्त क्यों है ? ॥५३॥ तदनन्तर अङ्गदने हँसकर कहा कि जाओ इस खोटी चेष्टाके धारक मूर्ख तापसको शीघ्र ही पद्मनाभके दर्शन कराओ अर्थात् उनके पास ले जाओ ॥५४॥ अङ्गदके इतना कहते ही कितने ही किङ्कर नारदकी भुजा खींचकर आगे ले जाने लगे और कितने ही पीछेसे प्रेरणा देने लगे ! इस प्रकार किङ्करों द्वारा कष्टपूर्वक ले जाये गये नारदने मनमें विचार किया कि इस पृथ्वीतलपर पद्मनाभ नामकी धारण करनेवाले बहुतसे पुरुष हैं । न जाने वह पद्मनाभ कौन है जिसके कि पास मैं ले जाया जा रहा हूँ ? ॥५५-५६॥ जिनशासनसे स्नेह रखनेवाली कोई देवी मेरी रक्षा करे, मैं अत्यन्त संशयमें पड़ गया हूँ ॥५७॥

शिखान्तिकगतप्राणो नारदः पुरुवेपथुः । विभीषणगृहद्वारं प्रविष्टः सद्गुहाकृतिम् ॥५८॥
 पद्मामं दूरतो दृष्ट्वा सहस्रोद्भ्रान्तमानसः । अब्रह्मण्यमिति स्फीतं प्रस्वेदी मुमुचे स्वरम् ॥५९॥
 श्रुत्वा तस्य रवं दत्त्वा दृष्टिं लक्ष्मणपूर्वजः । अवद्वारं परिज्ञाय स्वयमाहादरान्वितः ॥६०॥
 सुब्रह्ममाशु सुब्रह्मध्वमेतमित्युक्तिस्तत्र सः । पद्माभस्थान्तिकं गत्वा प्रहृष्टोऽवस्थितः पुरः ॥६१॥
 स्वस्थाशीभिः समानन्द्य पद्मनारायणावुषिः । परित्यक्तपरित्रासः स्थितो दत्ते सुखासने ॥६२॥
 पद्मनाभस्ततोऽवोचत् सोऽवद्वारगतिर्भवान् । क्षुल्लकोऽभ्यागतः कस्मादुक्तश्च स जगौ क्रमात् ॥६३॥
 व्यसनार्णवमग्नाया जनन्या भवतोऽन्तिकत्वात् । प्राप्सोऽस्मि वेदितुं वार्त्तां त्वत्पादकमलान्तिकम् ॥६४॥
 मान्यापराजिता देवी भव्या भगवती तव । माताऽश्रुधौतवदना दुःखमास्ते स्वया विना ॥६५॥
 सिंही किशोररूपेण रहितेव समाकुला । विकीर्णकेशसम्भारा कृतकुट्टिमलोटना ॥६६॥
 विलापं कुरुते देव तादृशं येन तत्क्षणम् । मन्ये सज्जायते व्यक्तं दृषदानपि मार्दवम् ॥६७॥
 तिष्ठति त्वयि सत्पुत्रे कथं तनयवत्सला । महागुणधरी स्तुत्या कृच्छ्रं सा परमं गता ॥६८॥
 अद्यर्धानमिदं मन्ये तस्याः प्राणविवर्जनम् । यदि तां नेत्रसे शुष्कां स्वद्वियोगीरुभानुना ॥६९॥
 प्रसादं कुरुतां पश्य व्रजोत्तिष्ठ किमास्यते । एतस्मिन्ननु संसारे बन्धुमाता प्रधानतः ॥७०॥
 वात्सेयमेव कैकय्या अपि दुःखेन वर्धते । तथा हि कुट्टिमतलं कृतमन्त्रेण पत्न्यलम् ॥७१॥
 नाहारे शयने रात्रौ न दिवास्ति सनागपि । तस्याः स्वस्थतया योगो भवतोऽविप्रयोगतः ॥७२॥

अथानन्तर चोटीतक जिनके प्राण पहुँच गये थे, तथा जिन्हें अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसे नारद उत्तम गुहाका आकार धारण करनेवाले विभीषणके घरके द्वारमें प्रविष्ट हुए ॥५८॥ वहाँ दूरसे ही रामको देख, जिनका चित्त सहसा हर्षको प्राप्त हो रहा था ऐसे पसीनेसे लथपथ नारदने 'अहो अन्याय हो रहा है' इस प्रकार जोरसे आवाज लगाई ॥५९॥ रामने नारदका शब्द सुन उनकी ओर दृष्टि डालकर पहिचान लिया कि ये तो अवद्वार नामक नारद हैं। उसी समय उन्होंने आदरके साथ सेवकोंसे कहा कि इन्हें छोड़ो, शीघ्र छोड़ो। तदनन्तर सेवकोंने जिन्हें तत्काल छोड़ दिया था ऐसे नारद श्रीरामके पास जाकर हर्षित हो सामने खड़े हो गये ॥६०-६१॥ जिनका भय छूट गया था ऐसे ऋद्धि मङ्गलमय आशीर्वादोंसे राम-लक्ष्मणका अभिनन्दन कर दिये हुए सुखासनपर बैठ गये ॥६२॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि आप तो अवद्वारगति नामक लुल्लक हैं। इस समय कहाँसे आ रहे हैं? इस प्रकार श्रीरामके कहनेपर नारदने क्रम-क्रमसे कहा कि ॥६३॥ मैं दुःखरूपी सागरमें निमग्न हुए आपकी माताके पाससे उनका समाचार जतानेके लिए आपके चरणकमलोंके समीप आया हूँ ॥६४॥ इस समय आपकी माता माननीय भगवती अपराजितादेवी आपके बिना बड़े कष्टमें हैं, वे रात-दिन आँसुओंसे मुख प्रक्षालित करती रहती हैं ॥६५॥ जिस प्रकार अपने बालकके बिना सिंही व्याकुल रहती है उसी प्रकार आपके बिना वे व्याकुल रहती हैं। उनके बाल बिखरे हुए हैं तथा वे पृथ्वीपर लोटती रहती हैं ॥६६॥ हे देव! वे ऐसा विलाप करती हैं कि उस समय स्पष्ट ही पत्थर भी कोमल हो जाता है ॥६७॥ तुम सत्पुत्रके रहते हुए भी वह पुत्रवत्सला, महागुणधारिणी स्तुतिके योग्य उत्तम माता कष्ट क्यों उठा रही है? ॥६८॥ यदि अपने वियोगरूपी सूर्यसे सूखी हुई उस माताके आप शीघ्र ही दर्शन नहीं करते हैं तो मैं समझता हूँ कि आजकलमें ही उसके प्राण छूट जावेंगे ॥६९॥ अतः प्रसन्न होओ, चलो, उठो, माताके दर्शन करो। क्यों बैठे हो? यथार्थमें इस संसारमें माता ही सर्वश्रेष्ठ बन्धु है ॥७०॥ जो बात आपकी माताकी है ठीक यही बात दुःखसे कैकेयी सुमित्राकी हो रही है! उसने अश्रु बहा-बहाकर महलके फर्शको मानो छोटा-मोटा तालाब ही बना दिया है ॥७१॥ आप दोनोंके

कुररीव कृताक्रन्दो शात्रकेन वियोगिनी । उरः शिरश्च सा हन्ति कराभ्यां विह्वला भृशम् ॥७३॥
 हा लक्ष्मीधर सजात जननीमेहि जीवय । द्रुतं वाक्यं प्रयच्छेति विलापं सा निषेवते ॥७४॥
 तनयायोगतीव्राग्निज्वालालीढशरीरके । दर्शनामृतधाराभिर्मातरौ नद्यतं शमम् ॥७५॥
 एवमुक्तं निशम्यैतौ सञ्जातौ दुःखितौ भृशम् । विमुक्तासौ समाश्रासं खेचरेशैरुपाहृतौ ॥७६॥
 उवाच वचनं पद्मः कथञ्चिद्द्वैर्यमागतः । अहो महोपकारोऽयमस्माकं भवता कृतः ॥७७॥
 विकर्मणा स्मृतेरेव जननी नः परिश्रुता । स्मारिता भवता साऽहं किमतोऽन्यन्महत्प्रियम् ॥७८॥
 पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये स्थितः । कुरुते परिशुश्रूषां किङ्करस्वमुपरागतः ॥७९॥
 एवं मातृमहास्नेहरसप्लावितमानसः । अपूजयद्बद्धारं लक्ष्मणेन समं नृपः ॥८०॥
 अतिसम्भ्रान्तचित्तश्च समाह्वय विभीषणम् । प्रभामण्डलसुग्रीवसञ्जिवाचित्यभावत ॥८१॥
 महेन्द्रभवनाकारे भवनेऽस्मिन् विभीषण । तव नो विदितोऽस्माभिर्यातः कालो महानपि ॥८२॥
 प्रैष्मादिस्थांशुसन्तानतापितस्यैव तत्सरः । चिरादवस्थितं चित्ते मातृदर्शनमद्य मे ॥८३॥
 स्मृतमात्रवियोगाग्नितापितान्यतिमात्रकम् । तद्दर्शनाम्बुनाङ्गानि प्रापयाम्यतिनिर्वृतिम् ॥८४॥
 अयोध्यानगरीं द्रष्टुं मनो मेऽयुःसुकं स्थितम् । सा हि माता द्वितीयेव स्मरत्यथधिकं वरा ॥८५॥
 ततो विभीषणोऽवोचत् स्वामिन्नेवं विधीयताम् । यथाज्ञापयसि स्वान्तं देवस्योपैतु शान्तताम् ॥८६॥

वियोगसे उसे न आहारमें, न शयनमें, न दिनमें और न रात्रिमें थोड़ा भी आनन्द प्राप्त होता है ॥७२॥ वह पुत्र-वियोगसे कुररीके समान रुदन करती रहती है तथा अत्यन्त विह्वल हो दोनों हाथोंसे छाती और शिर पीटती रहती है ॥७३॥ 'हाय लक्ष्मण बेटा ! आओ माताको जीवित करो, शीघ्र ही वचन बोलो' इस प्रकार वह निरन्तर विलाप करती रहती है ॥७४॥ पुत्रोंके वियोगरूपी तीव्र अग्निकी ज्वालाओंसे जिनके शरीर व्याप्त हैं ऐसी दोनों माताओंको दर्शनरूपी अमृतकी धाराओंसे शान्ति प्राप्त कराओ ॥७५॥ यह सुनकर राम, लक्ष्मण दोनों भाई अत्यन्त दुःखी हो उठे, उनके नेत्रोंसे आँसू निकलने लगे। तब विद्याधरोंने उन्हें सान्त्वना प्राप्त कराई ॥७६॥

तदनन्तर किसी तरह धैर्यको प्राप्त हुए रामने कहा कि अहो ऋषे ! आपने हमारा बड़ा उपकार किया ॥७७॥ खोटे कर्मके उदयसे माता हम लोगोंकी स्मृतिसे ही छूट गई थी सो आपने उसका हमें स्मरण करा दिया इससे प्रिय बात और क्या हो सकती है ? ॥७८॥ संसारमें वह मनुष्य बड़ा पुण्यात्मा है जो माताकी विनयमें तत्पर रहता है तथा किङ्करभावको प्राप्त हो उसकी सेवा करता है ॥७९॥ इस प्रकार माताके महास्नेहरूपी रससे जिनका मन आर्द्र हो रहा था ऐसे राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ नारदकी बहुत पूजा की ॥८०॥ और अत्यन्त संभ्रान्त-चित्त हो विभीषणको बुलाकर भामण्डल तथा सुग्रीवके समीप इस प्रकार कहा कि हे विभीषण ! इन्द्रभवनके समान आपके इस भवनमें हम लोगोंका बिना जाने ही बहुत भारी काल व्यतीत हो गया है ॥८१-८२॥ जिस प्रकार ग्रीष्मकालीन सूर्यकी किरणोंके समूहसे सन्तापित मनुष्यके हृदयमें सदा उत्तम सरोवर विद्यमान रहता है उसी प्रकार हमारे हृदयमें यद्यपि चिरकालसे माताके दर्शनकी लालसा विद्यमान थी तथापि आज उस वियोगाग्निके स्मरण मात्रसे मेरे अङ्ग-अङ्ग अत्यन्त सन्तप्त हो उठे हैं सो मैं माताके दर्शन रूपी जलके द्वारा उन्हें अत्यन्त शान्ति प्राप्त कराना चाहता हूँ ॥८३-८४॥ आज अयोध्यानगरीको देखनेके लिए मेरा मन अत्यन्त उत्सुक हो रहा है क्योंकि वह दूसरी माताके समान मुझे अधिक स्मरण दिला रही है ॥८५॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि हे स्वामिन् ! जैसी आज्ञा हो वैसा कीजिये । आपका हृदय

१. विकर्मणः म० । २. विनयस्थितः क० । ३. तत्सरः म०, तत्सरः ज०, क०, ख० । ४. कां वरा क०, ख० ।

प्रेष्यन्ते नगरिं दूता वार्तां ज्ञापयितुं शुभाम् । भवतोऽन्नागमं येन जनन्धौ व्रजतः सुखम् ॥८७॥
 स्वया तु षोडशाहानि स्थानुमत्र पुरे विभो । प्रसादो मम कर्त्तव्यः समाश्रितसुखसलः ॥८८॥
 इत्युक्त्वा मस्तकं न्यस्य समर्पिण रामपादयोः । तावद् विभीषणस्तस्थौ यात्रस्त्य प्रतिपन्नवान् ॥८९॥
 अथ प्रासादमूर्धस्था नित्यदक्षिणदिङ्मुखी । वूरतः खेचरान् चीच्य जगादेत्यपराजिता ॥९०॥
 पश्य पश्य सुदूरस्थानेतान् कैकयि खेचरान् । आयातोऽभिमुखानाशु वातेरितघनोपमान् ॥९१॥
 अद्यैते श्राविकेऽवश्यं कथयिष्यन्ति शोभनाम् । वार्तां सम्प्रेषिता नूनं सानुजेन सुतेन मे ॥९२॥
 सर्वथैवं भवस्वेतदिति यावत् कथा तयोः । वर्त्तते तावदायाताः सर्मापं दूनखेचराः ॥९३॥
 उत्सृजन्तश्च पुष्पाणि समुत्तीर्थं नभस्तलात् । प्रविश्य भवनं ज्ञाताः प्रहृष्टा भरतं ययुः ॥९४॥
 राज्ञा प्रमोदिता तेन सन्मानं समुपाहृताः । आशीर्वादप्रसक्तास्ते योग्यासनसमाश्रिताः ॥९५॥
 यथावद्वृत्तमाचल्युरतिमुन्दरचेतसः । पद्माभं बलदेवत्वं प्राप्तं लाङ्गललक्ष्मणम् ॥९६॥
 उत्पन्नचक्ररत्नं च लक्ष्मणं हरितामितम् । तयोर्भरतवास्यस्थ^३ स्वामित्वं परमोन्नतम् ॥९७॥
 रावणः पञ्चतां प्राप्तै लक्ष्मणेन हृते रणे । दीक्षाभिन्द्रजितादीनां वन्दिगृहमुपेयुषाम् ॥९८॥
 तार्च्यकैसरिसद्विद्याप्राप्तिं साधुप्रसादतः । विभीषणमहाप्रीतिं भोगं लङ्काप्रवेशनम् ॥९९॥
 एवं पद्मामलक्ष्मीभृदुद्भयस्तुतिस्ममदी । स्रक्ताम्बलसुगन्धाद्यैर्दूतानभ्यर्हयन्नुपः ॥१००॥

शान्तिको प्राप्त हो यही हमारी भावना है ॥८६॥ हम माताओंको यह शुभ वार्ता सूचित करने के लिए अयोध्यानगरीके प्रति दूत भेजते हैं जिससे आपका आगमन जान कर माताएँ सुखको प्राप्त होंगी ॥८७॥ हे विभो ! हे आश्रितजनवत्सल ! आप सोलह दिन तक इस नगरमें ठहरनेके लिए मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये ॥८८॥ इतना कह कर विभीषणने अपना मणि सहित मस्तक रामके चरणोंमें रख दिया और तब तक रखे रहा तब तक कि उन्होंने स्वीकृत नहीं कर लिया ॥८९॥

अथानन्तर महलके शिखर पर खड़ी अपराजिता (कौशल्या) निरन्तर दक्षिण दिशाकी ओर देखती रहती थी । एक दिन उसने दूरसे विद्याधरोंको आते देख समीपमें खड़ी कैकयी (सुमित्रा) से कहा कि हे कैकयि ! देख देख वे बहुत दूरी पर वायुसे प्रेरित मेघोंके समान विद्याधर शीघ्रतासे इसी ओर आ रहे हैं ॥९०-९१॥ हे श्राविके ! जान पड़ता है कि ये छोटे भाई सहित मेरे पुत्रके द्वारा भेजे हुए हैं और आज अवश्य ही शुभ वार्ता कहेंगे ॥९२॥ कैकयीने कहा कि जैसा आप कहती हैं सर्वथा ऐसा ही हो । इस तरह जब तक उन दोनोंमें वार्ता चल रही थी तब तक वे विद्याधर दूत समीपमें आ गये ॥९३॥ पुष्पवर्षा करते हुए उन्होंने आकाशसे उतर कर भवनमें प्रवेश किया और अपना परिचय दे हर्षित होते हुए वे भरतके पास गये ॥९४॥ राजा भरतने हर्षित हो उनका सन्मान किया और आशीर्वाद देते हुए वे योग्य आसनोंपर आरूढ़ हुए ॥९५॥ सुन्दर चित्तको धारण करनेवाले उन विद्याधर दूतोंने सब समाचार यथायोग्य कहे । उन्होंने कहा कि रामको बलदेव पद प्राप्त हुआ है । लक्ष्मणके चक्ररत्न प्रकट हुआ है तथा उन्हें नारायण पद मिला है । राम-लक्ष्मण दोनोंको भरत क्षेत्रका उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त हुआ है । युद्धमें लक्ष्मणके द्वारा घायल हो रावण मृत्युको प्राप्त हुआ है, वन्दीगृहमें रहनेवाले इन्द्रजित् आदिने जिन दीक्षा धारण कर ली है, देशभूषण और कुलभूषण मुनिका उपसर्ग दूर करनेसे गरुडेन्द्र प्रसन्न हुआ था सो उसके द्वारा राम-लक्ष्मणको सिंहवाहिनी तथा गरुडवाहिनी विद्याएँ प्राप्त हुई हैं । विभीषणके साथ महाप्रेम उत्पन्न हुआ है, उत्तमोत्तम भोग-सम्पदाएँ प्राप्त हुई हैं तथा लंकामें उनका प्रवेश हुआ है ॥९६-९९॥ इस प्रकार राम-लक्ष्मणके अभ्युदयसूचक समाचारोंसे प्रसन्न हुए राजा भरतने उन दूतोंका माला पान तथा सुगन्ध आदिके द्वारा सन्मान किया ॥१००॥

१. सुवत्सलः म० । २. हरेर्भावो हरिता तां नारायणताम् इतम्-प्राप्तम् म० । ३. वासस्थ म० ।

गृहीत्वा तांस्तयोर्मात्रोः सकाशं भरतो ययौ । शोकिन्यौ वाष्पपूर्णद्वयौ ते समानन्दिते च तैः ॥१०१॥
 पद्मानचक्रभ्रून्मात्रोर्दूतानां च सुसंकथा । मनःप्रह्लादिनी यावद् वर्त्तते भूतिशंसिनी ॥१०२॥
 रवेश्रावृष्य पन्थानं तावत्तत्र सहस्रशः । हेमरत्नादिसम्पूर्णैर्वाहनैरतिगात्रैः ॥१०३॥
 विचित्रजलदाकाराः प्रापुर्वैद्याधरा गणाः । जिनावतरणे काले देवा इव महौजसः ॥१०४॥
 ततस्ते व्योमपृष्ठस्था नानारत्नमयीं पुरि । वृष्टिं मुमुक्षुरुद्योतपूरिताशां समन्ततः ॥१०५॥
 पूरितायामयोध्यायामेकैकस्य कुटुम्बिनः । गृहेषु भूधराकाराः कृता हेमादिराशयः ॥१०६॥
 जन्मान्तरकृतरलाध्यकर्मा स्वर्ग्युतोऽथवा । लोकोऽयोध्यानिवासी यो येन प्राप्तस्तथा श्रियन् ॥१०७॥
 तस्मिन्नेव पुरे दत्ता घोषणाऽनेन वस्तुना । मणिचामीकराद्येन यो न तृप्तिमुपागतः ॥१०८॥
 प्रविश्य स नरः स्त्री वा निर्भयं पार्थिवालयम् । द्रव्येण पूरयत्वाऽऽभ्रमवतं निजयेच्छ्रया ॥१०९॥
 श्रुत्वा तां घोषणां सर्वस्तस्यां जनपदोऽगदत् । अस्माकं भवने शून्यं स्थानमेव न विद्यते ॥११०॥
 विस्मयादित्यसम्पर्कविकचाननपङ्कजाः । शशंसुर्वनिताः पद्मं कृतदारिद्र्यनाशनाः ॥१११॥
 आगत्य बहुभिस्तावद्दृष्टैः खेचरशिखिभिः । रूप्यहेमादिभिर्लेपैलिता भवनभूमयः ॥११२॥
 चैत्यागाराणि दिव्यानि जनितान्यतिभूरिशः । महाप्रासादमालाश्च विन्ध्यकूटावलीसमाः ॥११३॥
 सहस्रस्तम्भसम्पन्ना मुक्तादामविराजिताः । रचिता मण्डपाश्चित्राश्चित्रपुस्तोपशोभिताः ॥११४॥
 खचितानि महारत्नैर्द्वाराणि करमास्वरैः । पताकालीसमायुक्तास्तोरणौघाः समुच्छ्रिताः ॥११५॥
 अनेकाश्चर्यसम्पूर्णां प्रवृत्तसुमहोत्सवा । साऽयोध्या नगरी जाता लङ्कादिजयकारिणी ॥११६॥

तदनन्तर भरत उन विद्याधरोंको लेकर उन माताओंके पास गया और विद्याधरोंने निरन्तर शोक करने तथा अश्रुपूर्ण नेत्रोंको धारण करनेवाली उन माताओंको आनन्दित किया ॥१०१॥ राम-लक्ष्मणकी माताओं और उन विद्याधर दूतोंके बीच मनको प्रसन्न करने तथा उनकी विभूतिको सूचित करनेवाली यह मनोहर कथा जबतक चलती है तबतक सुवर्ण और रत्नादिसे परिपूर्ण हजारों शीघ्रगामी वाहनोंसे सूर्यका मार्ग रोककर रङ्ग-विरङ्गे मेघोंका आकार धारण करनेवाले हजारों विद्याधरोंके मुण्ड उस तरह आ पहुँचे जिस तरह कि जिनेन्द्रावतारके समय महातेजस्वी देव आ पहुँचते हैं ॥१०२-१०४॥ तदनन्तर आकाशमें स्थित उन विद्याधरोंने सब ओरसे दिशाओंको प्रकाशके द्वारा परिपूर्ण करनेवाली नानारत्नमयी वृष्टि छोड़ी ॥१०५॥ अयोध्याके भर जाने पर हर एक कुटुम्बके घरमें पर्वतोंके समान सुवर्णादिकी राशियाँ लग गईं ॥१०६॥ जान पड़ता था कि अयोध्यानिवासी लोगोंने जन्मान्तरमें पुण्य कर्म किये थे अथवा स्वर्गसे चयकर वहाँ आये थे इसीलिए तो उन्हें उस समय उस प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त हुई थी ॥१०७॥ उसी समय भरतने नगरमें यह घोषणा दिलवाई कि जो रत्न तथा स्वर्णादि वस्तुओंसे सन्तोषको प्राप्त नहीं हुआ हो वह पुरुष अथवा स्त्री निर्भय हो राजमहलमें प्रवेश कर अपनी इच्छानुसार द्रव्यसे अपने घरको भर ले ॥१०८-१०९॥ उस घोषणाको सुनकर अयोध्यावासी लोगोंने आकर कहा कि हमारे घरमें खाली स्थान ही नहीं है ॥११०॥ विस्मयरूपी सूर्यके संपर्कसे जिनके मुख कमल खिल रहे थे तथा जिनकी दरिद्रता नष्ट हो चुकी थी ऐसी स्त्रियाँ रामकी स्तुति कर रही थीं ॥१११॥ उसी समय बहुतसे चतुर विद्याधर कारीगरोंने आकर चाँदी तथा सुवर्णादिके लेपसे भवनकी भूमियोंको लिप्त किया ॥११२॥ अच्छे-अच्छे बहुतसे जिन-मन्दिर तथा विन्ध्याचलके शिखरोंके समान अत्यन्त उन्नत बड़े-बड़े महलोंके समूहकी रचना की ॥११३॥ जो हजारों खम्भोंसे सहित थे, मोतियोंकी मालाओंसे सुशोभित थे, तथा नाना प्रकारके पुतलोंसे युक्त थे ऐसे विविध प्रकारके मण्डप बनाये ॥११४॥ दरवाजे किरणोंसे चमकते हुए बड़े-बड़े रत्नोंसे खचित किये तथा पताकाओंकी पंक्तिसे युक्त तोरणोंके समूह खड़े किये ॥११५॥ इस तरह जो अनेक

महेन्द्रशिखरामेषु चैत्यगोहेषु सन्तताः । अभिषेकोत्सवा लग्नाः सङ्गीतध्वनिनादिताः ॥११७॥
 भ्रमरैरुपगीतानि समानि सजलैर्धनैः । उद्यानानि सुपुष्पाणि जातानि सफलानि च ॥११८॥
 बहिराशास्वशेषासु वनैर्मुदितजन्तुभिः । नन्दनप्रतिमैर्जाता नगरी सुमनोहरा ॥११९॥
 नवयोजनविस्तारा द्वादशायामसङ्गता । द्वयधिकानि तु षड्विंशत्परिक्षेपेण पूरसौ ॥१२०॥
 दिनैः षोडशभिश्चारुनभोगोचरशिल्पिभिः । निर्मिता शंसितुं शक्या न सा वर्षशतैरपि ॥१२१॥
 वाप्यः काञ्चनसोपाना दीर्घिकाश्च सुरोधसः । पद्मादिभिः समाकीर्णा जाता ग्रीष्मेऽप्यशोषिताः ॥१२२॥
 स्नानक्रीडातिसम्भोग्यास्तटस्थितजिनालयाः । द्युस्ताः परमां शोभां वृक्षपालीसमावृताः ॥१२३॥
 कृतां स्वर्गपुरीतुल्यां ज्ञात्वा तां नगरीं हली । श्रवोयानशंसिनीं स्थाने घोषणां समदापयत् ॥१२४॥

दशस्थवृत्तम्

यदैव वार्ता गगनाङ्गणायनी सुनिस्तयोर्मानृसमुद्भवां जगौ ।
 ततः प्रभृथेव हि सीरिचक्रिणौ सदा सविभ्यौ हृदयेन बभ्रतुः ॥१२५॥
 अचिन्तितं कृत्स्नमुपैति चारुतां कृतेन पुण्येन पुराऽसुधारिणाम् ।
 ततो जनः पुण्यपरोऽस्तु सन्ततं न येन चिन्तारवितापमश्नुते ॥१२६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे साकेतनगरीवर्णनं नामैकाशीतितमं पर्व ॥८१॥

आश्चर्योसे परिपूर्ण थी तथा जिसमें निरन्तर महोत्सव होते रहते थे ऐसी वह अयोध्यानगरी लंका आदिको जीतनेवाली हो रही थी ॥११६॥ महेन्द्र गिरिके शिखरोंके समान आभावाले जिन मन्दिरोंमें निरन्तर संगीतध्वनिके साथ अभिषेकोत्सव होते रहते थे ॥११७॥ जो जलभृत मेघोंके समान श्यामवर्ण थे तथा जिनपर भ्रमर गुञ्जार करते रहते थे ऐसे बाग-बगीचे उत्तमोत्तम फूलों और फलोंसे युक्त हो गये थे ॥११८॥ बाहरकी समस्त दिशाओंमें अर्थात् चारों ओर प्रमुदित जन्तुओंसे युक्त नन्दन वनके समान सुन्दर वनोंसे वह नगरी अत्यन्त मनोहर जान पड़ती थी ॥११९॥ वह नगरी नौ योजन चौड़ी बारह योजन लम्बी और अङ्गुलीस योजन परिधिसे सहित थी ॥१२०॥ सोलह दिनोंमें चतुर विद्याधर कारीगरोंने अयोध्याको ऐसा बना दिया कि सौ वर्षोंमें भी उसकी स्तुति नहीं हो सकती थी ॥१२१॥ जिनमें सुवर्णकी सीढियाँ लगी थीं ऐसी वापिकाएँ तथा जिनके सुन्दर-सुन्दर तट थे ऐसी परिखाएँ कमल आदिके फूलोंसे आच्छादित हो गईं और उनमें इतना पानी भर गया कि ग्रीष्म ऋतुमें भी नहीं सूख सकती थीं ॥१२२॥ जो स्नान सम्बन्धी क्रीड़ासे उपभोग करने योग्य थीं, जिनके तटोंपर उत्तमोत्तम जिनालय स्थित थे तथा जो हरेभरे वृक्षोंकी कतारोंसे सुशोभित थीं ऐसी परिखाएँ उत्तम शोभा धारण करती थीं ॥१२३॥ अयोध्या-पुरीको स्वर्गपुरीके समानकी हुई जानकर हलके धारक श्रीरामने स्थान-स्थान पर आगामी दिन प्रस्थानको सूचित करनेवाली घोषणा दिलवाई ॥१२४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! आकाशरूपी आँगनमें विहार करनेवाले नारद ऋषिने जबसे माताओं सम्बन्धी समाचार सुनाया था तभीसे राम-लक्ष्मण अपनी-अपनी माताओंको हृदयमें धारण कर रहे थे ॥१२५॥ पूर्वभवमें किये हुए पुण्यकर्मके प्रभावसे प्राणियोंके समस्त अचिन्तित कार्य सुन्दरताको प्राप्त होते हैं इसलिए समस्तलोग सदा पुण्य संचय करनेमें तत्पर रहें जिससे कि उन्हें चिन्ता रूपी सूर्यका संताप न भोगना पड़े ॥१२६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें अयोध्याका वर्णन करनेवाला इत्यासीनों पर्व समाप्त हुआ ॥८१॥

द्वयशीतितमं पर्व

अधोदयमिते भानौ पद्मनारायणौ तदा । यानं पुष्पकमारुह्य साकेतां प्रस्थितौ शुभौ ॥१॥
 परिवारसमायुक्ता विविधैर्यानवाहनैः । विद्याधरेश्वरा गन्तुं सक्तास्तत्सेवनोद्यताः ॥२॥
 छत्रध्वजनिरुद्धार्ककिरणं वायुगोचरम् । समाश्रिता महीं दूरं पश्यन्तो गिरिभूषिताम् ॥३॥
 विलसद्दिविधमणिमङ्गलात् चारसागरम् । व्यतीत्य खेचरा लीलां वहन्तो यान्ति हर्षिणः ॥४॥
 पद्मस्याङ्गता सीता सती गुणसमुत्कटा । लक्ष्मरिव महाशोभा पुरी न्यस्तेज्ज्वा जगौ ॥५॥
 जम्बूद्वीपतलस्येदं मध्ये नाथ किर्मास्यते । अत्यन्तमुज्ज्वलं पद्मस्ततोऽभाषत सुन्दरीम् ॥६॥
 देवि यत्र पुरा देवैर्मुनिसुव्रततीर्थकृत् । देवदेवप्रभुर्वालये हृष्टैर्नीतोऽभिषेचनम् ॥७॥
 सोऽयं रत्नमयैस्तुङ्गैः शिखरैश्चिह्नहारिभिः । विराजते नगाधीशो मन्दरो नाम विश्रुतः ॥८॥
 अहो वेगादतिक्रान्तं विमानं पदवीं पराम् । एहि भूयो बलं याम इति गत्वा पुनर्जगौ ॥९॥
 एतत्तु दण्डकारण्यमिभाभोगमहातमः । लङ्कानाथेन यत्रस्था ह्युता त्वं स्वोपघातिना ॥१०॥
 चारुणभ्रमणौ यत्र त्वया साद्धं मया तदा । पारणं लम्बितौ सैषा सुभगे दश्यते नदी ॥११॥
 सोऽयं सुलोचने भूचूडं सोऽभिलष्योऽभिलक्ष्यते । दृष्टौ यत्र मुनी युक्तौ देशगोत्रविभूषणौ ॥१२॥
 कृतं मया ययोरसीद् भवत्या लक्ष्मणेन च । प्रातिहार्यं ततो यातं केवलं शिवसौख्यदम् ॥१३॥
 बालिखिल्यपुरं भद्रे तदेतद् यत्र लक्ष्मणः । प्राप कल्याणमालाख्यां कन्यां काञ्चिच्चया समा ॥१४॥

अथानन्तर सूर्योदय होने पर शुभ चेष्टाओंके धारक राम और लक्ष्मण पुष्पक विमानमें आरूढ हो अयोध्याकी ओर चले ॥१॥ उनकी सेवामें तत्पर रहनेवाले अनेक विद्याधरोंके अधिपति अपने-अपने परिवारके साथ नाना प्रकारके यानों और वाहनों पर सवार हो साथ चले ॥२॥ छत्रों और ध्वजाओंसे जहाँ सूर्यकी किरणें रुक गई थीं ऐसे आकाश में स्थित सब लोग पर्वतोंसे भूषित पृथिवीको दूरसे देख रहे थे ॥३॥ जिसमें नाना प्रकारके प्राणियोंके समूह क्रीड़ा कर रहे थे ऐसे लवण-समुद्रको लॉघ कर हर्षसे भरे वे विद्याधर लीला धारण करते हुए जा रहे थे ॥४॥ रामके समीप बैठी गुणगणको धारण करनेवाली सती सीता लक्ष्मीके समान महाशोभाकी धारण कर रही थी । वह सामनेकी ओर दृष्टि डालती हुई रामसे बोली कि हे नाथ ! जम्बूद्वीपके मध्यमें यह अत्यन्त उज्ज्वल वस्तु क्या दिख रही है ? तब रामने सुन्दरी सीतासे कहा कि हे देवि ! जहाँ पहले बाल्यावस्थामें देवाधिदेव भगवान् मुनि-सुव्रतनाथका हर्षसे भरे देवोंने अभिषेक किया था ॥५-७॥ यह वही रत्नमय ऊँचे मनोहारी शिखरोंसे युक्त मन्दर नामका प्रसिद्ध पर्वतराज सुशोभित हो रहा है ॥८॥ 'अहो ! वेगके कारण विमान दूसरे मार्गमें आ गया है, आओ अब पुनः सेनाके पास चलो' यह कह तथा सेना के पास जाकर राम बोले कि हे प्रिये ! यह वही दण्डक वन है जहाँ काले-काले हाथियोंकी घटासे महाअन्धकार फैल रहा है तथा जहाँ पर बैठी हुई तुम्हें अपना घात करनेवाला रावण हर कर ले गया था ॥९-१०॥ हे सुन्दरि ! यह वही नदी दिखाई देती है जहाँ मेरे साथ तुमने दो चारुण ऋद्धिधारी मुनियोंके लिए पारणा कराई थी ॥११॥ हे सुलोचने ! यह वही वंशस्थविल नामका पर्वत दिखाई देता है जहाँ एक साथ विराजमान देशभूषण और कुलभूषण मुनियोंके दर्शन किये थे ॥१२॥ जिन मुनियोंकी मैंने, तुमने तथा लक्ष्मणने उपसर्ग दूर कर सेवा की थी और जिन्हें मोक्ष सुखका देनेवाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ था ॥१३॥ हे भद्रे ! यह बालिखिल्य

१. शक्ता म० । २. समाश्रितां म० । ३. क्षीरसागरम् । ४. सुन्दरी म० । ५. हृष्टौ म० ।

दशाङ्गभोगनगरमदस्तद् दृश्यते प्रिये । रूपवत्याः पिता वज्रश्रवा यच्छ्रावकः^१ पुरः ॥१५॥
 पुनरालोक्य धरणीं पुनः प्रपच्छ जानकी । कान्तेयं नगरी कस्य खेचरेशस्य दृश्यते ॥१६॥
 विमानसदृशैर्गैरैरियमत्यन्तमुत्कटा । न जातुचिन्मया दृष्टा त्रिविष्टपविडम्बिता ॥१७॥
 जानकीवचनं श्रुत्वा दिशश्चालोक्य मन्थरम् । क्षणं विभ्रान्तचेतस्को ज्ञात्वा पथाः स्मिती जगौ ॥
 प्रयोध्या प्रिये तेयं नूनं खेचरशिल्पिभिः । अन्येव रचिता भाति जितलङ्का परद्युतिः ॥१८॥
 ततोऽयुग्मं विहायःस्यं विमानं सहसा परम् । द्वितीयादित्यसङ्काशं वीक्ष्य क्षुब्धा नगर्यसौ ॥२०॥
 आरूढ च महानागं भरतः प्राप्तसम्भ्रमः । विभूत्या परया युक्तः शक्रवन्निरगान् पुरः ॥२१॥
 तावदैक्षत सर्वांशाः स्थगिता गगनायनैः । नानायानविमानस्थैर्विचित्रखिंसमन्वितैः ॥२२॥
 दृष्ट्वा भरतमाधान्तं भूमिस्थापितपुष्पकौ । पद्मलक्ष्मीधरो यातौ समीपत्वं सुसम्मदौ ॥२३॥
 समीपौ तावितौ दृष्ट्वा गजादुतीर्य कैकेयः । पूजामघशतैश्चक्रे तयोः स्नेहादिपुरितैः ॥२४॥
 विमानशिखराक्षौ तं निष्क्रम्य प्रीतिनिर्भरम् । केयूरभूषितभुजावप्रजावालिलिङ्गतुः ॥२५॥
 दृष्ट्वा पृष्टौ च कुशलं कृतशंसनसत्कथौ । भरतेन समेतौ तावारूढौ पुष्पकं पुनः ॥२६॥
 प्रविशन्ति ततः सर्वे क्रमेण कृतसत्क्रियाम् । अयोध्यानगरीं चित्रपताकाशबलीकृताम् ॥२७॥
 सङ्कटसङ्गतैर्यानेविमानैर्यतिभिः^३ रथैः । अनेकपद्मटाभिश्च मार्गोऽभूद् व्यवकाशकः^४ ॥२८॥

का नगर है जहाँ लक्ष्मणने तुम्हारे समान कल्याणमाला नामकी अद्भुत कन्या प्राप्त की थी ॥१४॥ हे प्रिये ! यह दशाङ्गभोग नामका नगर दिखाई देता है जहाँ रूपवतीका पिता वज्रकर्ण नामका उत्कृष्ट श्रावक रहता था ॥१५॥ तदनन्तर पृथिवीकी ओर देख कर सीताने पुनः पूछा कि हे कान्त ! यह नगरी किस विद्याधर राजाकी दिखाई देती है ॥१६॥ यह नगरी विमानोंके समान उत्तम भवनोंसे अत्यन्त व्याप्त है तथा स्वर्गकी विडम्बना करनेवाली ऐसी नगरी मैंने कभी नहीं देखी ॥१७॥

सीताके वचन सुन तथा धीरे-धीरे दिशाओंकी ओर देख रामका चित्त स्वयं क्षणभरके लिए विभ्रममें पड़ गया । परन्तु बादमें सब समाचार जान कर मन्द हास्य करते हुए बोले कि हे प्रिये ! यह अयोध्या नगरी है । जान पड़ता है कि विद्याधर कारीगरोंने इसकी ऐसी रचना की है कि यह अन्य नगरीके समान जान पड़ने लगी है, इसने लंकाको जीत लिया है तथा उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त है ॥१८-१९॥ तदनन्तर द्वितीय सूर्यके समान देदीप्यमान तथा आकाशके मध्यमें स्थित विमानको सहसा देख नगरी क्षोभको प्राप्त हो गई ॥२०॥ क्षोभको प्राप्त हुआ भरत महागजपर सवार हो महाविभूतियुक्त होता हुआ इन्द्रके समान नगरीसे बाहर निकला ॥२१॥ उसी समय उसने नाना यानों और विमानोंमें स्थित तथा विचित्र ऋद्धियोंसे युक्त विद्याधरोंसे समस्त दिशाओंको आच्छादित देखा ॥२२॥ भरतको आता हुआ देख जिन्होंने पुष्पकविमानको पृथिवी पर खड़ा कर दिया था ऐसे राम और लक्ष्मण हर्षित हो समीपमें आये ॥२३॥ तदनन्तर उन दोनोंको समीपमें आया देख भरतने हाथीसे उतर कर स्नेहादिसे पूरित सैकड़ों अर्धोंसे उनकी पूजा की ॥२४॥ तत्पश्चात् विमानके शिखरसे निकल कर बाजूबंदोंसे सुशोभित भुजाओंको धारण करनेवाले दोनों अग्रजोंने बड़े प्रेमसे भरतका आलिङ्गन किया ॥२५॥ एक दूसरेको देख कर तथा कुशल समाचार पूछ कर राम-लक्ष्मण पुनः भरतके साथ पुष्पकविमान पर आरूढ हुए ॥२६॥

तदनन्तर जिसकी सजावट की गई थी और जो नाना प्रकारकी पताकाओंसे चित्रित थी ऐसी अयोध्या नगरीमें क्रमसे सबने प्रवेश किया ॥२७॥ धक्का धूमीके साथ चलनेवाले यानों,

१. पुरः म० । २. भरतः । ३. अश्वैः । ४. विगतावकाशः ।

प्रलम्बजलभृत्तुल्यास्वर्यघोषाः समुद्युः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्रा भम्भाभेरीमहारवाः ॥२६॥
 पट्टहानां पटोपांसो मन्द्राणां मन्द्रता ययुः । लम्पानां कम्पशम्पानां धुन्धूनां मधुरा मृशम् ॥३०॥
 कृत्वाभ्लातकहृत्कानां हैकहुक्कारसङ्गिनाम् । गुञ्जारटितनाम्नां च वादित्राणां महास्वनाः ॥३१॥
 सुकलाः काहला नादा घना हलहलारवाः । अट्टहासास्तुरङ्गेभसिंहव्याघ्रादिनिस्वनाः ॥३२॥
 वंशस्वनानुगामोनि गीतानि विविधानि च । विनर्दितानि भाण्डानां वन्दिनां पठितानि च ॥३३॥
 सङ्क्रोडितानि रम्याणि स्थानां सूर्यतेजसाम् । वसुधात्तोभघोषाश्च प्रतिशब्दाश्च कोटिशः ॥३४॥
 एवं विद्याधराशीशैर्भिर्भ्रज्जिः परमां श्रियम् । वृत्तौ विविशतः कान्तौ पुरं पद्माभचक्रिणौ ॥३५॥
 आसन् विद्याधरा देवः इन्द्रौ पद्माभचक्रिणौ । अयोध्यानगरी स्वर्गो वर्णना तत्र कीदृशी ॥३६॥
 पद्मानननिशानार्थं वीच्य लोकमहोदधिः । कलध्वनिर्निर्यौ वृद्धिमत्यावर्त्तनवेलेया ॥३७॥
 विज्ञायमानपुररुपैः पूज्यमानौ पदे पदे । जय वर्द्धस्व जीवेति नन्देति च कृताशिषौ ॥३८॥
 अत्युत्तुङ्गविमानाभभवनानां शिरः स्थिताः । सुन्दर्यस्तौ विलोकन्त्यो विक्रवाभोजलोचनाः ॥३९॥
 संपूर्णचन्द्रसङ्काशं पद्मं पद्मनिभेषणम् । प्रावृषेण्यघनच्छायं लक्ष्मणं च सुलक्षणम् ॥४०॥
 नार्यो निरीक्षितुं सक्ता मुक्ताशेषापरक्रियाः । गवाक्षान् वदनैश्चक्रुर्व्यामाभोजवनोपमान् ॥४१॥
 राजह्वन्योन्यसम्पर्के निर्भरै सति योषिताम् । सृष्टाऽपूर्वा तदा वृष्टिशिञ्जहारैः पयोधरैः ॥४२॥

विमानों, घोड़ों, रथों और हाथियोंकी घटाओंसे अयोध्याके मार्ग अवकाशरहित हो गये ॥२८॥
 लूमते हुए मेघोंकी गर्जनाके समान तुरहीके शब्द तथा करोड़ों शङ्खोंके शब्दोंसे मिश्रित भम्भा
 और भेरियोंके शब्द होने लगे ॥२६॥ बड़े-बड़े नगाड़ोंके जोरदार शब्द तथा बिजलीके समान
 चञ्चल लंप और धुन्धुओंके मधुर शब्द गम्भीरताको प्राप्त हो रहे थे ॥३०॥ हैक नामक वादियों-
 की हुँकारसे सहित झालर, अम्लातक, हक्का, और गुञ्जारटित नामक वादित्रोंके महाशब्द,
 काहलोंके अस्फुट एवं मधुर शब्द, निविडताको प्राप्त हुए हलहल्लोंके शब्द, अट्टहासके शब्द, घोड़े,
 हाथी, सिंह और व्याघ्रादिके शब्द, बाँसुरीके स्वरसे मिले हुए नाना प्रकारके संगीतके शब्द,
 भाँड़ोंके विशाल शब्द, वंदीजनोंके विरद पाठ, सूर्यके समान तेजस्वी रथोंकी मनोहर चीत्कार,
 पृथिवीके कम्पनसे उत्पन्न हुए शब्द और इन सबकी करोड़ों प्रकारकी प्रतिध्वनियोंके शब्द सब
 एक साथ मिलकर विशाल शब्द कर रहे थे ॥३१-३४॥ इस प्रकार परम शोभाको धारण करने-
 वाले विद्याधर राजाओंसे घिरे हुए सुन्दर शरीरके धारक राम और लक्ष्मणने नगरीमें प्रवेश
 किया ॥३५॥ उस समय विद्याधर देव थे, राम-लक्ष्मण इन्द्र थे और अयोध्यानगरी स्वर्ग थी तब
 उनका वर्णन कैसा किया जाय ? ॥३६॥ श्रीरामके मुख रूपी चन्द्रमाको देखकर मधुरध्वनि करने-
 वाला लोक रूपी सागर, बढ़ती हुई चेलाके साथ वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥३७॥ पहिचानमें
 आये पुरुष जिन्हें पद-पद पर पूज रहे थे, तथा जयवन्त रहो, बढ़ते रहो, जीते रहो, समृद्धिमान्
 होओ, इत्यादि शब्दोंके द्वारा जिन्हें स्थान-स्थान पर आशीर्वाद दिया जा रहा था ऐसे दोनों
 भाई नगरमें प्रवेश कर रहे थे ॥३८॥ अत्यन्त ऊँचे विमान तुल्य भवनोंके शिखरों पर स्थित
 स्त्रियोंके नेत्रकमल राम लक्ष्मणको देखते ही खिल उठते थे ॥३९॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान कमल-
 लोचन राम और वर्षाकालीन मेघके समान श्याम, सुन्दर लक्षणोंके धारक लक्ष्मणको देखनेके
 लिए तत्पर स्त्रियों अन्य सब काम छोड़ अपने मुखोंसे झरोखोंको कमल वनके समान कर रहीं
 थीं ॥४०-४१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि राजन् ! उस समय परस्परमें अत्यधिक सम्पर्क होने
 पर जिनके हार टूट गये थे ऐसी स्त्रियोंके पयोधरों अर्थात् स्तनरूपी पयोधरों अर्थात् मेघोंने

१. प्रलय-म० । २. कम्पे शपा इव तेषाम् । ३. मट्टहासा-म० । ४. चक्र-म० । ५. शक्ता

म०, क० ।

स्युनं भिपतितं भूमौ काञ्चीनूपुरकुण्डलम् । तासां तद्गतचित्तानां ध्वनयश्चैवमुद्रताः ॥४३॥
 वस्यैपाङ्गता भाति प्रिया गुणधरा सती । देवी विदेहजा सोऽयं पद्मनाभो महेश्वरः ॥४४॥
 निहतः प्रथमे येन सुग्रीवाकृतितस्करः । वृत्रदैत्यपतेर्नसा स साहसगतिः खलः ॥४५॥
 अयं लक्ष्मीधरो येन शक्रतुल्यपराक्रमः । हतो लङ्केश्वरो युद्धे स्वेन चक्रेण वक्षसि ॥४६॥
 सुग्रीवोऽयं महासत्त्वस्तनयोऽस्यायमङ्गदः । अयं भामण्डलाभिरुयः सीतादेव्याः सहोदरः ॥४७॥
 देवेन जातमात्रः सञ्जासीद् योऽपहृतस्तदा । मुक्तोऽनुकम्पया भूयो दृष्टो विद्याधरेन्दुना ॥४८॥
 उन्मादेन (?) वने तस्मिन् गृहीत्वा च प्रमोदिना । पुत्रस्तवायमित्युक्त्वा पुण्यवत्यै समर्पितः ॥४९॥
 एपोऽसौ दिव्यरत्नात्मकुण्डलोत्थितताननः । विद्याधरमहाधीशो भाति सार्धकशब्दितः ॥५०॥
 चन्द्रोदरसुतः सोऽयं सखि श्रीमान् विराधितः । श्रीशैलः पवनस्याऽयं पुत्रो वानरकेतनः ॥५१॥
 एवं विस्मययुक्ताभिस्तोषिणाभिः समुत्कटाः । लक्षिताः पौरनारीभिः प्राप्तास्ते पार्थिवालयम् ॥५२॥
 तावत्प्रासादमूर्द्धस्थे पुत्रनेहपरायणे । सम्प्रस्रुतस्तने वीरमातराववतेरतुः ॥५३॥
 महागुणधरा देवी साधुशीलाऽपराजिता । कैकयी कैकया चापि सुप्रजाश्च सुचेष्टिताः ॥५४॥
 भवान्तरसमायोगमिव प्राप्तास्तथोरमा । मातरोऽयुः समीपस्वं मङ्गलोद्यतचेतसः ॥५५॥
 ततो मानृजनं वीच्य मुद्रितौ कमलेक्षणौ । पुष्पयानाद् समुत्तीर्य लोकपालोपमद्युती ॥५६॥

अपूर्व वृष्टि की थी ॥४२॥ जिनके चित्त राम-लक्ष्मणमें लग रहे थे ऐसी स्त्रियोंकी मेखला, नूपुर और कुण्डल टूट-टूटकर पृथिवी पर पड़ रहे थे तथा उनमें परस्पर इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था ॥४३॥ कोई कह रही थी कि जिनकी गोदमें गुणोंको धारण करनेवाली यह राजा जनककी पुत्री पतिव्रता सीता प्रिया विद्यमान है यही विशाल नेत्रोंको धारण करनेवाले राम हैं ॥४४॥ कोई कह रही थी कि हाँ, ये वे ही राम हैं जिन्होंने सुग्रीवको आकृतिके चोर दैत्यराज वृत्रके नाती दुष्ट साहसगतिको युद्धमें मारा था ॥४५॥ कोई कह रही थी कि ये इन्द्र तुल्य पराक्रमके धारी लक्ष्मण हैं जिन्होंने युद्धमें अपने चक्रसे वृत्रःस्थल पर प्रहार कर रावणको मारा था ॥४६॥ कोई कह रही थी कि यह महाशक्तिशाली सुग्रीव है, यह उसका बेटा अंगद है, यह सीतादेवीका सगा भाई भामण्डल है जिसे उत्पन्न होते ही देवने पहले तो हर लिया था फिर दयासे छोड़ दिया था और चन्द्रगति विद्याधरने देखा था ॥४७-४८॥ यही नहीं किन्तु हर्षसे युक्त हो उसे वनमें भेला था तथा 'यह तुम्हारा पुत्र है' इस प्रकार कहकर रानी पुण्यवतीके लिए सौंपा था । अपने दिव्य रत्नमयी कुण्डलोंसे जिसका मुख देदीप्यमान हो रहा है तथा जो सार्धक नामका धारी है ऐसा यह विद्याधरोंका राजा भामण्डल अत्यधिक शोभित हो रहा है ॥४९-५०॥ हे सखि ! यह चन्द्रोदरका लड़का श्रीमान् विराधित है और यह वानरचिह्नित पताकाको धारण करनेवाला पवनञ्जयका पुत्र श्रीशैल (हनुमान) है ॥५१॥ इस प्रकार आश्चर्य तथा संतोषको धारण करनेवाली नगरवासिनी स्त्रियाँ जिन्हें देख रही थीं ऐसे उत्कट शोभाके धारक सब लोग राज-भवनमें पहुँचे ॥५२॥ जब तक ये सब राजभवनमें पहुँचे तब तक जो भवनके शिखर पर स्थित थीं, पुत्रोंके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें तैयार थीं तथा जिनके स्तनोंसे दूध भर रहा था ऐसी दोनों वीर माताएँ ऊपरसे उतर कर नीचे आ गईं ॥५३॥ महागुणोंको धारण करनेवाली तथा उत्तम शीलसे युक्त अपराजिता (कौशलया) कैकयी (सुमित्रा), कैकया (भरतकी माता) और सुप्रजा (सुप्रभा) उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली तथा मङ्गलाचारमें निपुण ये चारों माताएँ साथ-साथ राम-लक्ष्मणके समीप आईं मानो भवान्तरमें ही संयोगको प्राप्त हुईं हों ॥५४-५५॥

तदनन्तर जो माताओंको देखकर प्रसन्न थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे और जो लोकपालोंके तुल्य कान्तिको धारण करनेवाले थे ऐसे राम-लक्ष्मण दोनों भाई पुष्पक विमानसे उतर

१. न पतितं क०, ख०, म० । २. 'उन्मादेन' इति पाठेन भाव्यम् ।

कृताञ्जलिपुटौ नञ्चौ सनृपौ साङ्गनाजनौ । मातणां नेमतुः पादावुपगम्य क्रमेण तौ ॥५७॥
 आशीर्वादसहस्राणि यच्छन्यः शुभदानि ताः । परिवस्वजिरे पुत्रौ स्वसंवेद्यमिताः सुखम् ॥५८॥
 पुनः पुनः परिवस्व्य तृप्तिसम्बन्धवर्जिताः । लुचुम्बुर्मस्तके कम्पिकरामशान्तपराः ॥५९॥
 आनन्दवाष्पपूर्णाक्षाः कृतासनपरिग्रहाः । सुखदुःखं समावेद्य धृतिं ताः परमां ययुः ॥६०॥
 मनोरथसहस्राणि गुणितान्यसकृत्पुरा । तासां श्रेणिक पुण्येन फलितानोप्यिताधिकम् ॥६१॥
 सर्वाः सूरजनन्यस्ताः साधुभक्ताः सुचेतसः । स्तुवाशातसमाकीर्णा लक्ष्मीविभवसङ्गताः ॥६२॥
 वीरपुत्रानुभावेन निजपुण्योदयेन च । महिमानं परिप्राप्ता गौरवं च सुपूजितम् ॥६३॥
 चारोदसागरान्तायां प्रतिघातविवर्जिताः । शितावेकातपप्रायां ददुराज्ञां यथेप्सितम् ॥६४॥

आर्याच्छुद्धः

इष्टसमागममेतं शृणोति यः पठति चातिशुद्धमतिः ।
 लभते सम्पदमिष्टामायुः पूर्णं सुपुण्यं च ॥६५॥
 एकोऽपि कृतो नियमः प्राप्तोऽभ्युदयं जनस्य सद्बुद्धेः ।
 कुर्वते प्रकाशमुच्चै रविरिव तस्मादिमं कुर्वत ॥६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलक्ष्मणसमागमाभिधानं नाम द्रव्यशीतितमं पर्व ॥८२॥

कर नीचे आये और दोनोंने हाथ जोड़कर नञ्चौभूत हो साथमें आये हुए समस्त राजाओं और अपनी स्त्रियोंके साथ क्रमसे समीप जाकर माताओंके चरणोंमें नमस्कार किया ॥५६-५७॥ कल्याणकारी हजारों आशीर्वादोंको देती हुई उन माताओंने दोनों पुत्रोंका आलिङ्गन किया । उस समय वे सब स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हो रही थीं अर्थात् जो सुख उन्हें प्राप्त हुआ था उसका अनुभव उन्हींकी हो रहा था—अन्य लोग उसका वर्णन नहीं कर सकते थे ॥५८॥ वे बार-बार आलिङ्गन करती थीं फिर भी तृप्त नहीं होती थीं, मस्तक पर चुम्बन करती थीं, काँपते हुए हाथसे उनका स्पर्श करती थीं, और उनके नेत्र हर्षके आँसुओंसे पूर्ण हो रहे थे । तदनन्तर आसन पर आरूढ़ हो परस्परका सुख-दुःख पूछ कर वे सब परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥५९-६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इनके जो हजारों मनोरथ पहले अनेकों बार गुणित होते रहते थे वे अब पुण्यके प्रभावसे इच्छासे भी अधिक फलीभूत हुए ॥६१॥ जो साधुओंकी भक्त थीं, उत्तम चित्तको धारण करनेवाली थीं, सैकड़ों पुत्र-वधुओंसे सहित थीं, तथा लक्ष्मीके वैभवकी प्राप्त थीं ऐसी उन वीर माताओंने वीर पुत्रोंके प्रभाव और अपने पुण्योदयसे लोकोत्तर महिमा तथा गौरवको प्राप्त किया ॥६२-६३॥ वे एक छत्रसे सुशोभित लवणसमुद्रान्त पृथिवीमें विना किसी बाधाके इच्छानुसार आज्ञा प्रदान करती थीं ॥६४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अत्यन्त विशुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला जो मनुष्य इस इष्ट समागमके प्रकरणको सुनता है अथवा पढ़ता है वह इष्ट सम्पत्ति पूर्ण आयु तथा उत्तम पुण्यको प्राप्त होता है ॥६५॥ सद्बुद्धि मनुष्यका किया हुआ एक नियम भी अभ्युदयको प्राप्त हो सूर्यके समान उत्तम प्रकाश करता है । हे भव्य जनो ! इस नियमको अवश्य करो ॥६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणके समागमका वर्णन करनेवाला व्यासीर्षो पर्व समाप्त हुआ ॥८२॥

त्र्यशीतितमं पर्व

पुनः प्रणम्य शिरसा पृच्छति श्रेणिको यतिम् । गृहे श्रीविस्तरं^१ तेषां समुद्रतामिकौतुकः ॥११॥
 उवाच गौतमः पाद्माः लाचमणा भारता नृप । शात्रुघ्नाश्च न शक्यन्ते भोगाः कात्स्थेन शंसितुम् ॥२॥
 तथाऽपि शृणु ते राजन् वेदयामि समासतः । रामचक्रिप्रभावेण विभवस्य समुद्रवम् ॥३॥
 नन्द्यावर्ताख्यसंस्थानं बहुद्वारोष्णगोपुरम् । शकालयसमं कान्तं भवनं भवनं श्रियः ॥४॥
 चतुःशाल इति ख्यातः प्राकारोऽस्य विराजते । महाद्विशिखरोत्तुङ्गो वैजयन्त्यभिधा सभा ॥५॥
 शाला चन्द्रमणी रम्या सुवीथीति प्रकीर्त्तिता । प्रासादकूटमत्यन्तमुत्तुङ्गभवलोकनम् ॥६॥
 प्रेक्षागृहं च विन्ध्याभं वर्द्धमानककीर्त्तनम् । परिकर्मोपयुक्तानि कर्मान्तभवनानि च ॥७॥
 कुक्कुटाण्डप्रभं गर्भगृहकूटं महाद्भुतम् । एकस्तम्भघृतं कल्पतरुतुल्यं मनोहरम् ॥८॥
 मण्डलेन तदावृत्य देवीनां गृहपालिका । तरङ्गाली परिख्याता स्थिता रत्नसमुज्ज्वला ॥९॥
 महदम्भोजकाण्डं च विद्युदलसमद्युति^२ । सुश्लिष्टा सुभगस्पर्शा शय्या सिंहशिरःस्थिता ॥१०॥
 उद्यत्स्करसङ्काण्डमुत्तमं हरिविष्टरम् । चामराणि शशाङ्कांशुसञ्जयप्रतिमानि च ॥११॥
 इष्टच्छायाकरं स्फीतं छत्रं तारापतिप्रभम् । सुखेन^३ गमने कान्ते पादुके विषमोचिके ॥१२॥
 अनर्थाणि च वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च । दुर्भेद्यं कवचं कान्तं मणिकुण्डलयुग्मकम् ॥१३॥
 अमोघाश्च गदाखड्गकनकारिशिल्पासुखाः । अन्यानि च महास्त्राणि भासुराणि रणाजिरे ॥१४॥

अथानन्तर जिसे अत्यन्त कौतुक उत्पन्न हुआ था ऐसे राजा श्रेणिकने शिरसे प्रणाम कर गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! उन राम-लक्ष्मणके घरमें लक्ष्मीका विस्तार कैसा था ? ॥१॥ तब गौतम स्वामीने कहा कि हे राजन् ! यद्यपि राम-लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्नके भोगोंका वर्णन सम्पूर्ण रूपसे नहीं किया जा सकता तथापि हे राजन् ! बलभद्र और नारायणके प्रभावसे उनके जो वैभव प्रकट हुआ था वह संक्षेपसे कहता हूँ सो सुन ॥२-३॥ उनके अनेक द्वारों तथा उच्च गोपुरोंसे युक्त, इन्द्रभवनके समान सुन्दर लक्ष्मीका निवासभूत नन्द्यावर्त नामका भवन था ॥४॥ किसी महागिरिके शिखरोंके समान ऊँचा चतुःशाल नामका कोट था, वैजयन्ती नामकी सभा थी । चन्द्रकान्त मणियोंसे निर्मित सुवीथी नामकी मनोहरशाला थी, अत्यन्त ऊँचा तथा सब दिशाओंका अवलोकन करानेवाला प्रासादकूट था, विन्ध्यगिरिके समान ऊँचा वर्द्धमानक नामक प्रेक्षागृह था, अनेक प्रकारके उपकरणोंसे युक्त कार्यालय थे, उनका गर्भगृह कुक्कुटीके अण्डके समान महान् आश्चर्यकारी था, एक खम्भे पर खड़ा था, और कल्पवृक्षके समान मनोहर था, ॥५-८॥ उस गर्भगृहकी चारों ओरसे घेर कर तरङ्गाली नामसे प्रसिद्ध तथा रत्नोंसे देदीप्यमान रानियोंके महलोंकी पंक्ति थी ॥९॥ बिजलीके खण्डोंके समान कान्तिवाला अम्भोजकाण्ड नामका शय्यागृह था, सुन्दर, सुकोमल स्पर्शवाली तथा सिंहके शिरके समान पायों पर स्थित शय्या थी, उगते हुए सूर्यके समान उत्तम सिंहासन था, चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके समान चमर थे ॥१०-११॥ इच्छानुकूल छायाको करनेवाला चन्द्रमाके समान कान्तिसे युक्त बड़ा भारी छत्र था, सुखसे गमन करानेवाली विषमोचिका नामकी दो खड़ाऊँ थीं ॥१२॥ अनर्घ्य वस्त्र थे, दिव्य आभूषण थे, दुर्भेद्य कवच था, देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंका जोड़ा था, कभी व्यर्थ नहीं जानेवाले गदा, खड्ग, कनक, चक्र, बाण तथा रणाङ्गणमें चमकनेवाले अन्य बड़े-बड़े

१. श्रीविस्तरे म० । २. द्युतिः म०, न० । ३. गमने म०, न० ।

पञ्चाशद्वलकोटीनां लक्ष्मि गदितानि च । स्वयं चरणशीलानां कोटिरभ्यधिका गवाम् ॥१५॥
 सप्ततिः साधिकाः कोटयः कुलानां स्फोतसम्पदाम् । नित्यं न्यायप्रवृत्तानां साकेतनगरीजुषाम् ॥१६॥
 भवनान्यतिशुभ्राणि सर्वाणि विविधानि च । अर्हणकोशपूर्णानि रत्नवन्ति कुटुम्बिनाम् ॥१७॥
 पाश्या बहुविधैर्धान्यैः पूर्णा गण्डाद्रिसन्निभाः । विज्ञेयाः कुटुमितलाश्रनुःशालाः सुखावहाः ॥१८॥
 प्रवरोद्यानमध्यस्था नानाकुसुमशोभिताः । दीर्घिकारचारुलोपानाः परिक्रीडनकोचिताः ॥१९॥
 प्रेक्ष्यगोमहिषीवृन्दस्फोतस्तत्र कुटुम्बिनः । सौख्येन महता युक्ताः रेजुः सुरवरा इव ॥२०॥
 दण्डनायकसामन्ता लोकपाला इवोदिताः । महेन्द्रतुल्यविभवा राजानः पुरुतेजसः ॥२१॥
 सुन्दर्यांस्तरसां तुल्याः संसारसुखभूमयः । निखिलं चोपकरणं यथाभिमतसौख्यदम् ॥२२॥
 एवं रामेण भरतं नीतं शोभां परामिदम् । हरिषेणनरेन्द्रेण यथा चक्रभृता पुरा ॥२३॥
 चैत्यानि रामदेवेन कारितानि सहस्रशः । भान्ति भव्यजनैर्नित्यं पूजितानि महद्भिः ॥२४॥
 देशग्रामपुरारभ्यगृहस्थागतो जनः । सदेति सङ्ख्यां चक्रे सुखा रचितमण्डलः ॥२५॥
 साकेतविषयः सर्वः सर्वथा पश्यताऽधुना । विलम्बयितुमुद्युक्तश्चित्रं गीर्वाणविष्टपम् ॥२६॥
 मध्ये शक्रपुरांतुल्या नगरी यस्य राजते । अयोध्यांनिलयैस्तुङ्गैरशक्यपरिवर्णनैः ॥२७॥
 किमसीं त्रिदशक्रांडापर्वतास्तेजसाऽऽवृताः । आहोस्विच्छरदभ्रीषाः किंवा विद्यामहालयः ॥२८॥
 प्राकारोऽयं समस्ताशा शोतयन् परमोन्नतः । समुद्रवेदिकातुल्यो महाशिखरशोभितः ॥२९॥

राज्यं ॥१३-१४॥ पचास लाख हल थे, एक करोड़से अधिक अपने आप दूध देनेवाली गायें थीं ॥१५॥ जो अत्यधिक सम्पत्तिके धारक थे तथा निरन्तर न्यायमें प्रवृत्त रहने थे ऐसे अयोध्या-नगरीमें निवास करनेवाले कुलोंकी संख्या कुल अधिक सत्तर करोड़ थीं ॥१६॥ गृहस्थोंके समस्त घर अत्यन्त सफेद, नाना आकारोंके धारक, अर्हण खजानोंसे परिपूर्ण तथा रत्नोंसे युक्त थे ॥१७॥ नानाप्रकारके अन्नोंसे परिपूर्ण नगरके बाह्य प्रदेश छोटे मोटे गोल पर्वतोंके समान जान पड़ते थे और पक्के फरसोंसे युक्त भवनोंकी चौशालें अत्यन्त सुखदायी थीं ॥१८॥ उत्तमोत्तम बगीचोंके मध्यमें स्थित, नाना प्रकारके फूलोंसे सुशोभित, उत्तम सीढ़ियोंसे युक्त एवं क्रीडाके योग्य अनेकों वापिकाएँ थीं ॥१९॥ देखनेके योग्य अर्थात् सुन्दर सुन्दर गायों और भैंसोंके समूहसे युक्त वहाँके कुटुम्बी अत्यधिक सुखसे सहित होनेके कारण उत्तम देवोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२०॥ रुनाके नायक स्वरूप जो सामन्त थे वे लोकपालोंके समान कहे गये थे तथा विशाल तेजके धारक राजा लोग महेन्द्रके समान वैभवसे युक्त थे ॥२१॥ अप्सराओंके समान संसारके सुखकी भूमि स्वरूप अनेक सुन्दरी स्त्रियाँ थीं, और इच्छानुकूल सुखके देनेवाले अनेक उपकरण थे ॥२२॥ जिस प्रकार पहले, चक्ररत्नको धारण करनेवाले राजा हरिषेणके द्वारा यह भरत क्षेत्र परम शोभाको प्राप्त हुआ था उसी प्रकार यह भरत क्षेत्र रामके द्वारा परम शोभाको प्राप्त हुआ था ॥२३॥ अत्यधिक सम्पदाको धारण करनेवाले भव्यजन जिनकी निरन्तर पूजा करते थे ऐसे हजारों चैत्यालय श्री रामदेवने निर्मित कराये थे ॥२४॥ देश, गाँव, नगर, वन, घर और गलियोंके मध्यमें स्थित सुखिया मनुष्य मण्डल बौध्-बौध्कर सदा यह चर्चा करते रहते थे ॥२५॥ कि देखो यह समस्त साकेत देश, इस समय आश्चर्यकारी स्वर्ग लोककी उपमा प्राप्त करनेके लिए उद्यत है ॥२६॥ जिस देशके मध्यमें जिनका वर्णन करना शक्य नहीं है ऐसे ऊँचे ऊँचे भवनोंसे अयोध्यापुरी इन्द्रकी नगरीके समान सुशोभित हो रही है ॥२७॥ वहाँके बड़े बड़े विद्यालयोंको देखकर यह संदेह उत्पन्न होता था कि क्या ये तेजसे आवृत देवोंके क्रीडाचल हैं अथवा शग्द ऋतुके मेघोंका समूह है ? ॥२८॥ इस नगरीका यह प्राकार समस्त दिशाओंको देदीप्यमान कर रहा है, अत्यन्त ऊँचा है, समुद्रकी वेदिकाके समान है और बड़े-बड़े शिखरोंसे

१. पञ्चाशद्वलकोटीनां म० । ४. लक्ष्मण—म०, ख० । रक्ष्ण ज० । ३. चोपशर्यां म० ।

सुवर्णरत्नसंघातो रश्मिर्दापितपुष्करः । कुत ईदृक्त्रिलोकेऽस्मिन् मानसस्याप्यगोचरः ॥३०॥
 नूनं पुण्यजनैरेषा विनीता नगरी शुभा । सम्पूर्णा रामदेवेन त्रिहिताऽप्येव शोभना ॥३१॥
 सम्प्रदायेन यः स्वर्गः श्रूयते कोऽपि सुन्दरः । नूनं तमेवमादाय सम्प्राप्तौ रामलक्ष्मणौ ॥३२॥
 आहोस्वित् सैत्र पूर्वयं भवेदुत्तरकोशला । दुर्गमा जनितात्यन्तं प्राणिनां पुण्यवर्जिताम् ॥३३॥
^१सशरीरेण लोकेन ^२सर्त्वापशुधनादिना । त्रिदिवं रघुचन्द्रेण नीता कान्तिभिर्मां गता ॥३४॥
 एक एव महान् दोषः ^३सुप्रकाशेऽत्र दृश्यते । महानिन्दात्रपाहेतुः सतामत्यन्तदुस्त्यजः ॥३५॥
 यद्विद्याधरनाथेन हताभिरमता ध्रुवम् । वैदेही पुनरानीता तर्हि पद्मस्य युज्यते ॥३६॥
 क्षत्रियस्य कुलीनस्य ज्ञानिनो मानशालिनः । जनाः पश्यत कर्मदं किमन्यस्याभिधीयताम् ॥३७॥
 इति क्षुद्रजनोद्गीतः परिवादः समन्ततः । सीतायाः कर्मतः पूर्वाद् विस्तारं विष्टपे गतः ॥३८॥
 अथास्तौ भरतस्तत्र पुरे ^४स्वर्गत्रपाकरे । सुरेन्द्रसदृशैर्भोगैरपि नो विन्दते रतिम् ॥३९॥
 स्त्रीणां शतस्य सार्द्धस्य भर्त्ता प्राणमहेश्वरः । विद्वेष्टि सन्ततं राज्यलक्ष्मीं तुङ्गां तथापि ताम् ॥४०॥
 निर्व्यूहबलभीशृङ्गप्रघणस्रतिहारिभिः । प्रासादैर्मण्डलीबन्धरचितैरुपशोभितैः ^५ ॥४१॥
 त्रिचित्रमणिनिर्माणकुट्टिमे चारुदीर्घिके । मुक्तादामचित्ते श्लेषखचित्ते पुष्पितदुमे ॥४२॥
 अनेकाश्चर्यसंकीर्णैः ^६यथाकालमनोहरे । सर्वशमुरजस्थाने सुन्दरीजनसंकुले ॥४३॥

सुशोभित है ॥३६॥ जिसने अपनी किरणोंसे आकाशको प्रकाशित कर रक्खा है तथा जिसका चिन्तवन मनसे भी नहीं किया जा सकता ऐसे सुवर्ण और रत्नोंकी राशि जैसी अयोध्यामें थी वैसी तीनलोकमें भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं थी ॥३०॥ जान पड़ता है कि पुण्यजनोंके द्वारा भरी हुई यह शुभ और शोभायमान नगरी श्रीरामदेवके द्वारा मानो अन्य ही कर दी गई है ॥३१॥ सम्प्रदाय वश सुननेमें आता है कि स्वर्ग नामका कोई सुन्दर पदार्थ है सो ऐसा लगता है मानो उस स्वर्गको लेकर ही राम-लक्ष्मण यहाँ पधारे हों ॥३२॥ अथवा यह वही पहलेकी उत्तरकोशाल पुरी है जो कि पुण्यहीन मनुष्योंके लिए अत्यन्त दुर्गम हो गई है ॥३३॥ ऐसा जान पड़ता है कि इस कान्तिको प्राप्त हुई यह नगरी श्री रामचन्द्रके द्वारा इसी शरीर तथा स्त्री पशु और धनादि सहित लोगोंके साथ ही साथ स्वर्ग भेज दी गई है ॥३४॥ इस नगरीमें यही एक सबसे बड़ा दोष दिखाई देता है जो कि महानिन्दा और लज्जाका कारण है तथा सत्पुरुषोंके अत्यन्त दुःख पूर्वक छोड़नेके योग्य है ॥३५॥ वह दोष यह है कि विद्याधरोंका राजा रावण सीताको हर ले गया था सो उसने अवश्य ही उसका सेवन किया होगा । अब वही सीता फिरसे लाई गई है सो क्या रामको ऐसा करना उचित है ? ॥३६॥ अहो जनो ! देखो जब क्षत्रिय, कुलीन, ज्ञानी और मानी पुरुषका यह काम है तब अन्य पुरुषका क्या कहना है ॥३७॥ इस प्रकार क्षुद्र मनुष्योंके द्वारा प्रकट हुआ सीताका अपवाद, पूर्व कर्मोदयसे लोकमें सर्वत्र विस्तारको प्राप्त हो गया ॥३८॥

अथानन्तर स्वर्गको लज्जा करनेवाले इस नगरमें रहता हुआ भरत इन्द्र तुल्य भोगोंसे भी प्रीतिको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥३९॥ वह यद्यपि डेढ़ सौ स्त्रियोंका प्राणनाथ था तथापि निरन्तर उस उन्नत राज्यलक्ष्मीके साथ द्वेष करता रहता था ॥४०॥ वह ऐसे मनोहर क्रीडास्थलमें जो कि छपरियों-अट्टालिकाओं, शिखरों और देहलियोंकी मनोहर कान्तिसे युक्त, पंक्तिबद्धरचित बड़े-बड़े महलोंसे सुशोभित था, जहाँके फर्स नाना प्रकारके रङ्ग-चिरङ्गे मणियोंसे बना हुआ था, जहाँ सुन्दर सुन्दर वापिकाएँ थीं, जो मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, सुवर्णजटित था, जहाँ वृक्ष फूलोंसे युक्त थे, जो अनेक आश्चर्यकारी पदार्थोंसे व्याप्त था, समयानुकूल मनको हरण करनेवाला था, बांसुरी और मृदङ्गके बजनेका स्थान था, सुन्दरी स्त्रियोंसे युक्त था, जिसके समीप ही मदभीगे

१. स्वशरीरेण ज०, ख०, म० । २. स्वस्त्री म० । ३. सुप्रकाशेऽत्र म० । ४. स्वर्ग्य म० ।

५. राज्य लक्ष्मी म०, ज० । ६. -रूपशोभितैः त० । ७. यथा काले म० ।

प्रान्तस्थितमदक्लिन्नकपोलवरवारणे । वासिते मदगन्धेन तुरङ्गरवहरिणि ॥४४॥
 कृतकोमलसङ्गीते रत्नोद्योतपटावृते^१ । रम्ये क्रीडनकस्थाने रुचिष्ये स्वर्गिणामपि ॥४५॥
 संसारभीरुरत्यन्तं नृपश्चकित्तमानसः । धृतिं न लभते ज्याधभीरुः सारङ्गको यथा ॥४६॥
 लभ्यं दुःखेन मानुष्यं चपलं जलबिन्दुवत् । यौवनं फेनपुञ्जेन सदृशं दोषसङ्कटम् ॥४७॥
 समासिविरसा भोगा जीवितं स्वप्नसञ्चिभम् । सम्बन्धो बन्धुभिः साङ्गं पक्षिसङ्गमनोपमः ॥४८॥
 इति निश्चित्य यो धर्मं करोति न शिवावहम् । स जराजर्जरः पश्चाद्दृष्ट्यते शोकवह्निना ॥४९॥
 यौवनेऽभिनवे रागः कोऽस्मिन् मूढकनह्वमे । अपवादकुलावासे सन्धोद्योतविनश्वरे ॥५०॥
 अवश्यं त्यजनीये च नानाव्याधिकुलालये । शुक्रशोणितसन्मूले देहयन्त्रेऽपि का रतिः ॥५१॥
 न तृप्यन्तान्धनैर्वाह्निः सलिलैर्न नदीपतिः । न जीवो विषयैर्वावस्संसारमपि खेचितैः ॥५२॥
 कामासक्तमतिः पापो न किञ्चिद् वेत्ति देहवान् । यत्पतङ्गसमो लोभी दुःखं प्राप्नोति दाहणम् ॥५३॥
 गलगण्डसमानेषु क्लेदचरणकारिषु । स्तनाख्यमांसपिण्डेषु बीभत्सेषु कथं रतिः ॥५४॥
 दन्तकीटकसम्पूर्णं ताम्बूलरसलोहिते । क्षुरिकाच्छेदसदृशे शोभा वक्त्रविले नु^२ का ॥५५॥
 नारीणां चेष्टिते वायुदोषादिव समुद्गते । उन्मादजनिते प्रीतिर्विलासमिहितेऽपि का ॥५६॥
 गृहान्तर्ध्वनिना तुल्ये मनोधृतिनिवासिनी । सङ्गीते रुदिते चैव विशेषो नोपलक्ष्यते ॥५७॥

कपोलोंसे युक्त हाथी विद्यमान थे, जो मदकी गन्धसे सुवासित था, घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे मनोहर था, जहाँ कोमल संगीत हो रहा था, जो रत्नोंके प्रकाशरूपी पटसे आवृत था, तथा देवोंके लिए भी रुचिकर था, धैर्यको प्राप्त नहीं होता था । चकित चित्तका धारक भरत संसारसे अत्यन्त भयभीत रहता था । जिस प्रकार शिकारीसे भयको प्राप्त हुआ हरिण सुन्दर स्थानोंमें धैर्यको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार भरत भी उक्त प्रकारके सुन्दर स्थानोंमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥४१-४६॥ वह सोचता रहता था कि मनुष्य पर्याय बड़े दुःखसे प्राप्त होती है फिर भी पानीकी बूँदके समान चञ्चल है, यौवन फेनके समूहके समान भङ्गुर तथा अनेक दोषोंसे संकट पूर्ण है ॥४७॥ भोग अन्तिम कालमें विरस अर्थात् रससे रहित है, जीवन स्वप्नके समान है और भाई-बन्धुओंका सम्बन्ध पक्षियोंके समागमके समान है ॥४८॥ ऐसा निश्चय करनेके बाद भी जो मनुष्य मोक्ष-सुखदायी धर्म धारण नहीं करता है वह पीछे जरासे जर्जर चित्त हो शोक-रूपी अग्निसे जलता रहता है ॥४९॥ जो मूर्ख मनुष्योंको प्रिय है, अपवाद अर्थात् निन्दाका कुलभवन है एवं सन्ध्याके प्रकाशके समान विनश्वर है ऐसे नवयौवनमें क्या राग करना है ? ॥५०॥ जो अवश्य ही छोड़ने योग्य है, नाना व्याधियोंका कुलभवन है, और रजवीर्य जिसका मूल कारण है ऐसे इस शरीर रूपी यन्त्रमें क्या प्रीति करना है ? ॥५१॥ जिस प्रकार ईन्धनसे अग्नि नहीं तृप्त होती और जलसे समुद्र नहीं तृप्त होता उसी प्रकार जब तक संसार है तब तक सेवन किये हुए विषयोंसे यह प्राणी तृप्त नहीं होता ॥५२॥ जिसकी बुद्धि पापमें आसक्त हो रही है ऐसा पापी मनुष्य कुल भी नहीं समझता है और लोभी मनुष्य पतंगके समान दाहण दुःखको प्राप्त होता है ॥५३॥ जिनका आकार गलगण्डके समान है तथा जिनसे निरन्तर पसीना फरता रहता है, ऐसे स्तन नामक मांसके घृणित पिण्डोंमें क्या प्रेम करना है ? ॥५४॥ जो दाँतरूपी कीड़ोंसे युक्त है तथा जो ताम्बूलके रसरूपी रुधिरसे सहित है ऐसे छुरीके छापके समान जो मुखरूपी विल है उसमें क्या शोभा है ? ॥५५॥ ब्रिचोंकी जो चेष्टा मानो वायुके दोषसे ही उत्पन्न हुई है अथवा उन्माद जनित है उसके विलासपूर्ण होने पर भी उसमें क्या प्रीति करना है ? ॥५६॥ जो घरके भीतरकी ध्वनिके समान है तथा जो मनके धैर्यमें निवास करता है (रोदन पक्षमें मनके अधैर्यमें निवास करता है) ऐसे संगीत तथा रोदनमें कोई

१. पटाहते म० । २. तृप्यन्ति धनै- म० । ३. विलेन का० म० ।

अभेधमयदेहाभिरङ्गनाभिः केवलं त्वचा । नारीभिः कीदृशं सौख्यं सेवमानस्य जायते ॥५८॥
 विदुःकुम्भद्वितयं नीत्वा संयोगमतिलज्जनम् । विमूढमानसः लोकः सुखमित्यभिमन्यते ॥५९॥
 इच्छामात्रसमुद्भूतैर्दिव्यैर्यो भोगविस्तरैः । न तृप्यति कथं तस्य तृप्तिर्मानुषभोगकैः ॥६०॥
 तृप्तिं न तृणकोटिस्थैरवश्यायकणैर्वने । व्रजतीन्धनविक्रायः केवलं श्रमसृष्टुति ॥६१॥
 तथाऽप्युत्तमया राज्यश्रिया तृप्तिमनासवात् । सीदासः कुत्सितं कर्म तथाविधमसेवत ॥६२॥
 गङ्गायां पूरयुक्तायां प्रविष्टा मांसलुब्धकाः । काका हस्तिशवं मृत्युं प्राप्नुवन्ति महोदधौ ॥६३॥
 मोहपङ्कनिसगनेयं प्रजामण्डूकिकाद्य ते । लोभाहिनाऽतितीव्रेण नरकच्छिद्रमापिताः ॥६४॥
 एवं चिन्तयतस्तस्य भरतस्य विरागिणः । विघ्नेन बहवो यान्ति दिवसाः शान्तचेतसः ॥६५॥
 व्रतमप्राप्नुवन्मनैः सर्वदुःखविनाशनम् । पञ्जरस्थो यथा सिंहः स समयोऽपि सीदति ॥६६॥
 प्रशान्तहृदयोऽत्यर्थकेकयायाचनादसौ । ध्रियते हलिचक्रिण्यां सस्नेहाभ्यां समुत्कटम् ॥६७॥
 उच्यते च यथा भ्रातस्त्वमेव पृथिवीतले । सकले स्थापितो राजा पित्रा दीक्षामिलाषिणा ॥६८॥
 सोऽभिषिक्तो भवाश्राधो गुरुणा विष्टपे न^१ नु । अस्माकमपि हि स्वामी कुह लोकस्य पालनम् ॥६९॥
 इदं सुदर्शनं चक्रमिमे विद्याधराधिपाः । तत्राज्ञासाधनं पत्नीमिव शुंघव वसुन्धराम् ॥७०॥
 धारयामि स्वयं क्षुभ्रं शशाङ्कधवलं तव । शत्रुघ्नश्रामरं धत्से मन्त्री लक्ष्मणसुन्दरः ॥७१॥

विशेषता नहीं दिखाई देती ॥५७॥ जिनका शरीर अपवित्र वस्तुओंसे तन्मय है तथा जो केवल चमड़ेसे आच्छादित हैं ऐसी स्त्रियोंसे उनकी सेवा करने वाले पुरुषको क्या सुख होता है ? ॥५८॥
 मूर्खमना प्राणी मलभृत घटके समान अत्यन्त लजाकारी संयोगको प्राप्त हो मुझे सुख हुआ है ऐसा मानता है ॥५९॥ अरे ! जो इच्छामात्रसे उत्पन्न होनेवाले स्वर्गसम्बन्धी भोगोंके समूहसे तृप्त नहीं होता उसे मनुष्य पर्यायके तुच्छ भोगोंसे कैसे तृप्ति हो सकती है ? ॥६०॥ ईन्धन बेचने वाला मनुष्य वनमें तृणोंके अग्रभाग पर स्थित ओसके कणोंसे तृप्तिको प्राप्त नहीं होता केवल श्रमको ही प्राप्त होता है ॥६१॥ उस सीदासको तो देखो जो राजलक्ष्मीसे तृप्त नहीं हुआ किन्तु इसके विपरीत जिसने नरमांस-भक्षण जैसा अयोग्य कार्य किया ॥६२॥ जिस प्रकार प्रवाह-युक्त गङ्गामें मांसके लोभी काक, मृत हस्तीके शवको चूथते हुए तृप्त नहीं होते और अन्तमें महासागरमें प्रविष्ट हो मृत्युको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार संसारके प्राणी विषयोंमें तृप्त न हो अन्तमें भवसागरमें डूबते हैं ॥६३॥ हे आत्मन् ! मोहरूपी कीचड़में फँसी यह तेरी प्रजारूपी मेंडकी लोभरूपी तीव्र सर्पके द्वारा ग्रस्त हो आज नरक रूपी बिलमें ले जाई जा रही है ॥६४॥ इस प्रकार विचार करते हुए उस शान्त चित्तके धारक विरागी भरतकी दीक्षामें विघ्न करने वाले बहुतसे दिन व्यतीत हो गये ॥६५॥ जिस प्रकार समर्थ होने पर भी पिंजड़ेमें स्थित सिंह दुखी होता है उसी प्रकार भरत दीक्षाचारण करनेमें संमर्थ होता हुआ भी सर्व दुःखको नष्ट करने वाले जिनेन्द्रव्रतको नहीं प्राप्त होता हुआ दुःखी हो रहा था ॥६६॥ भरतकी माता केकयाने उसे रोकनेके लिए रामलक्ष्मणसे याचना की सो अत्यधिक स्नेहके धारक रामलक्ष्मणने प्रशान्तचित्त भरतको रोक कर इस प्रकार समझाया कि हे भाई ! दीक्षाके अभिलाषी पिताने तुम्हींको सकल पृथिवीतलका राजा स्थापित किया था ॥६७-६८॥ यतश्च पिताने जगत्का शासन करनेके लिए निश्चयसे आपका अभिषेक किया था इसलिए हमलोगोंके भी आप ही स्वामी हो । अतः आप ही लोकका पालन कीजिये ॥६९॥ यह सुदर्शनचक्र और ये विद्याधर राजा तुम्हारी आज्ञाके साधन हैं इसलिए पत्नीके समान इस वसुधाका उपभोग करो ॥७०॥ मैं स्वयं तुम्हारे ऊपर

१. द्वितीयं । २. शोकः म० । ३. प्रजां मण्डूकिकायते म० । ४. मायिना म० । दायिना ख० ।
 नरकच्छिद्रनायिना ब०, क० । ५. विष्टपेव न तु म० ।

ह्युक्तोऽपि न चेद्वाक्यं ममेदं कुरुते भवान् । यास्यामोऽद्य ततो भूयस्तदेव मृगवदनम् ॥७२॥
 जित्वा राक्षसवंशस्य तिलकं रावणाभिधम् । भवदर्शनसौख्यस्य तृषिता वयमागताः ॥७३॥
 निःप्रत्युहमिदं राज्यं भुञ्ज्यतां तावदायतम् । अस्माभिः सहितः पश्चात्प्रवेक्ष्यसि तपोवनम् ॥७४॥
 एवं भाषितुमासक्तमेनं पद्मं सुचेतसम् । जगद् भरतोऽत्यन्तविषयासक्तिनिःस्पृहः ॥७५॥
 इच्छामि देव सन्न्यक्तमेतां राज्यश्रियं द्रुतम् । त्यक्त्वा यां सत्तपः कृत्वा वीरा मोक्षं समाश्रिताः ॥७६॥
 सदा नरेन्द्र कामार्थी चञ्चलौ दुःखसङ्गता । विद्वेष्यौ सूरिलोकस्य सुमूढजनसेवितौ ॥७७॥
 अशाश्वतेषु भोगेषु सुरलोकमेष्वपि । इलायुध न मे तृणा समुद्रौपम्यवस्त्वपि ॥७८॥
 संसारसागरं घोरं मृत्युपातालसङ्कुलम् । जन्मकल्लोलसङ्कोर्णं रथरथ्युत्वीचिकम् ॥७९॥
 रागद्वेषमहाप्राहं जानादुःखभयङ्करम् । व्रतपोतं समारूढं वाञ्छामि तरितुं नृप ॥८०॥
 पुनःपुनरहं राजन् भ्राम्यन् विविधयोनिषु । गर्भवासादिषु श्रान्तो दुःसहं दुःखमाप्तवान् ॥८१॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य वाष्पण्याकुललोचनाः । नृपा विस्मयमापन्ना जगदुः कम्पितस्वनाः ॥८२॥
 वचनं कुरु तातीयं लोकं पालय पार्थिव । यदि तेऽजमता लक्ष्मीर्मुनिः पश्चाद् भविष्यसि ॥८३॥
 उवाच भरतो बालं तातस्योक्तं मया कृतम् । चिरं प्रपालितो लोको मानितो भोगविस्तरः ॥८४॥
 दत्तं च परमं दानं साधुवर्गः सुतर्पितः । तातेन यत्कृतं कर्तुं तदपीच्छामि साम्प्रतम् ॥८५॥
 अनुमोदनमद्यैव मह्यं किं न प्रयच्छत । श्लाघ्ये वस्तुनि सम्बन्धः कर्तव्यो हि यथा तथा ॥८६॥

चन्द्रमाके समान सफेद छत्र धारण करता हूँ, शत्रुघ्न चमर धारण करता है और लक्ष्मण तेरा मन्त्री है ॥७१॥ इस प्रकार कहने पर भी यदि तुम मेरी बात नहीं मानते हो तो मैं फिर उसी तरह हरिणकी नाई आज वनमें चला जाऊँगा ॥७२॥ राक्षस वंशके तिलक रावणको जीत कर हम लोग आपके दर्शन सम्बन्धी सुखकी तृष्णासे ही यहाँ आये हैं ॥७३॥ अभी तुम इस निर्विघ्न विशालराज्यका उपभोग करो परचात् हमारे साथ तपोवनमें प्रवेश करना ॥७४॥ विषय सम्बन्धी आसक्तिसे जिसका हृदय अत्यन्त निःस्पृह हो गया था ऐसे भरतने पूर्वोक्त प्रकार कथन करनेमें तत्पर एवं उत्तम हृदयके धारक रामसे इस तरह कहा कि ॥७५॥ हे देव ! जिसे छोड़कर तथा उत्तम तप कर वीर मनुष्य मोक्षको प्राप्त हुए हैं मैं उस राज्यलक्ष्मीका शीघ्र ही त्याग करना चाहता हूँ ॥७६॥ हे राजन् ! ये काम और अर्थ चञ्चल हैं, दुःखसे प्राप्त होते हैं, अत्यन्त मूर्ख जनोंके द्वारा सेवित हैं तथा विद्वज्जनोंके द्वेषके पात्र हैं ॥७७॥ हे इलायुध ! ये नरवर भोग स्वर्ग लोकके समान हों अथवा समुद्र की उपमाको धारण करनेवाले हों तो भी मेरी इनमें तृष्णा नहीं है ॥७८॥ हे राजन् ! जो अत्यन्त भयंकर है, मृत्यु रूपी पाताल तक व्याप्त है, जन्म रूपी कल्लोलोंसे युक्त है, जिसमें रति और अरति रूपी बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं, जो राग-द्वेष रूपी बड़े-बड़े मगर-मच्छोंसे सहित है एवं नाना प्रकारके दुःखोंसे भयंकर है, ऐसे इस संसार रूपी सागरको मैं व्रत रूपी जहाज पर आरूढ़ हो तैरना चाहता हूँ ॥७९-८०॥ हे राजन् ! नाना योनियोंमें बार-बार भ्रमण करता हुआ मैं गर्भवासादिके दुःसह दुःख प्राप्त कर थक गया हूँ ॥८१॥

इस प्रकार भरतके शब्द सुन जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो रहे थे, जो आश्चर्यको प्राप्त थे तथा जिनके स्वर कम्पित थे ऐसे राजा बोले कि हे राजन् ! पिताका वचन अङ्गीकृत करो और लोकका पालन करो । यदि लक्ष्मी तुम्हें इष्ट नहीं है तो कुछ समय पीछे मुनि हो जाना ॥८२-८३॥ इसके उत्तरमें भरतने कहा कि मैंने पिताके वचनका अच्छी तरह पालन किया है, चिरकाल तक लोककी रक्षा की है, भोगसमूहका सम्मान किया है ॥८४॥ परम दान दिया है, साधुओंके समूहको संतुष्ट किया है, अब जो कार्य पिताने किया था वही करना चाहता हूँ ॥८५॥ आप लोग मेरे लिए आज ही अनुमति क्यों नहीं देते हैं ? यथार्थमें उत्तम कार्यके साथ तो जिस तरह

जित्वा शत्रुगणं संख्ये द्विपसङ्घातभीषणे । नन्दाद्यैरिव या लक्ष्मीर्भवन्निः समुपार्जिता ॥८७॥
 महत्यपि न सा तृप्तिं मनोत्पादयितुं क्षमा । गङ्गेव वारिनाथस्य तत्त्वमार्गे घटे ततः ॥८८॥
 ह्ययुक्तवात्यन्तसंविग्नस्तानापृच्छथ ससम्भ्रमः । सिंहासनात् समुत्तस्थौ भरतो भरतो यथा ॥८९॥
 मनोहरगतिश्चैव यावद् गन्तुं समुद्यतः । नारायणेन संरुद्धस्तावत् सस्नेहसम्भ्रमम् ॥९०॥
 करेणोद्गर्तयन्नेव सौमित्रिकरपल्लवम् । यावदाश्वासयत्यश्रुदुर्दिनास्थां च मातरम् ॥९१॥
 तावद् रामाज्ञया प्राप्ताः स्त्रियो लक्ष्मीसुविभ्रमाः । रुद्धुर्भरतं वातकम्पितोत्पललोचनाः ॥९२॥
 एतस्मिन्नन्तरे सीता स्वयं श्रीरिव देहिनी । उर्वी भानुमती देवी विशल्या सुन्दरी तथा ॥९३॥
 ऐन्द्री रत्नवती लक्ष्मीः सार्था गुणवतीश्रुतिः । कान्ता बन्धुमती भद्रा कौबेरी नलकूवरा ॥९४॥
 तथा कल्याणमालासौ चन्द्रिणी मानसोत्सवा । मनोरमा प्रियानन्दा चन्द्रकान्ता कलावती ॥९५॥
 रत्नस्थली सुरवती श्रीकान्ता गुणसागरा । पद्मावती तथाऽन्याश्च स्त्रियो दुःशक्यवर्णनाः ॥९६॥
 मनःप्रहरणाकारा दिव्यवस्त्रविभूषणाः । समुद्भवशुभक्षेत्रभूमयः स्नेहरोत्रजाः ॥९७॥
 कलासमस्तसन्द्रोहफलदर्शनतत्पराः । वृत्ताः समन्ततश्चारुचेतसो लोभनोद्यताः ॥९८॥
 सर्वोदरेण भरतं जगदुर्हारिनिःस्वनाः । वातोद्भूतनवोदारपद्मिनीखण्डकान्तयः ॥९९॥
 देवर क्रियतामेकः प्रसादोऽस्माकमुद्यतः । सेवामहे जलक्रीडां भवता सह सुन्दरीम् ॥१००॥
 त्यज्यतामर्परा चिन्ता नाथ मानसखेदिनी । भ्रातृजायासमूहस्य क्रियतामस्य सुप्रियम् ॥१०१॥

बने उसी तरह सम्बन्ध जोड़ना चाहिए ॥८६॥ हाथियोंकी भीड़से भयङ्कर युद्धमें शत्रुसमूहको जीतकर नन्द आदि पूर्व बलभद्र और नारायणोंके समान आपने जो लक्ष्मी उपार्जित की है वह यद्यपि बहुत बड़ी है तथापि मुझे संतोष उत्पन्न करनेके लिए समर्थ नहीं है । जिस प्रकार गङ्गा नदी समुद्र को तृप्त करनेमें समर्थ नहीं है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी मुझे तृप्त करनेमें समर्थ नहीं है, इसलिए अब तो मैं यथार्थ मार्गमें ही प्रवृत्त होता हूँ ॥८७-८८॥ इस प्रकार कहकर तथा उनसे पूछकर तीव्र संवेगसे युक्त भरत संभ्रमके साथ भरत चक्रवर्तीकी नाई शीघ्र ही सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ ॥८९॥ अथानन्तर मनोहर गतिकी धारण करनेवाला भरत ज्यों ही वनको जानेके लिए उद्यत हुआ त्योंही लक्ष्मणने स्नेह और संभ्रमके साथ उसे रोक लिया अर्थात् उसका हाथ पकड़ लिया ॥९०॥ अपने हाथसे लक्ष्मणके करपल्लवको अलग करता हुआ भरत जब तक अवि-रल अश्रुवर्षा करनेवाली माताको समझाता है तब तक रामकी आज्ञासे, जिनकी लक्ष्मीके समान चेष्टाएँ थीं तथा जिनके नेत्र वायुसे कम्पित नील कमलके समान थे ऐसी भरतकी स्त्रियों आकर उसके प्रति रोदन करने लगीं ॥९१-९२॥ इसी बीचमें शरीरधारिणी साक्षात् लक्ष्मीके समान सीता, उर्वी, भानुमती, विशल्या, सुन्दरी, ऐन्द्री, रत्नवती, लक्ष्मी, सार्थक नामको धारण करने वाली गुणवती, कान्ता, बन्धुमती, भद्रा, कौबेरी, नलकूवरा, कल्याणमाला, चन्द्रिणी, मानसोत्सवा, मनोरमा, प्रियानन्दा, चन्द्रकान्ता, कलावती, रत्नस्थली, सुरवती, श्रीकान्ता, गुणसागरा, पद्मावती, तथा जिनका वर्णन करना अशक्य है ऐसी दोनों भाइयोंकी अन्य अनेक स्त्रियाँ वहाँ आ पहुँचीं ॥९३-९६॥ उन सब स्त्रियोंका आकार मनको हरण करनेवाला था, वे सब दिव्य वस्त्रा-भूषणोंसे सहित थीं, अनेक शुभभावोंके उत्पन्न होनेकी क्षेत्र थीं, स्नेह की वंशज थीं, समस्त कलाओंके समूह एवं फलके दिखानेमें तत्पर थीं, घेरकर सब ओर खड़ी थीं, सुन्दर चित्तकी धारक थीं, लुभावनेमें उद्यत थीं, मनोहर शब्दोंसे युक्त थीं, तथा वायुसे कम्पित कमलिनियोंके समूहके समान कान्तिकी धारक थीं । उन सबने बड़े आदरके साथ भरतसे कहा ॥९७-९९॥ कि देवर ! हम लोगों पर एक बड़ी प्रसन्नता कीजिए । हम लोग आपके साथ मनोहर जलक्रीडा करना चाहती हैं ॥१००॥ हे नाथ ! मनको खिन्न करनेवाली अन्य चिन्ता छोड़िए, और अपनी

१. भरत-चक्रवर्तीव । २. वृत्ताः म० । ३. वातोद्भूत-म० । ४. -मपरां म० । ५. चिन्तां म० ।

तादृशीभिस्तथाप्यस्य सङ्गतस्य न मानसम् । जगाम विक्रियां काञ्चिद् दाक्षिण्यं केवलं श्रितः ॥१०२॥
 सम्प्राप्तप्रसारास्तस्मात्ततः शङ्काविवर्जिताः । नार्यस्ता भरतीयाश्च प्रापुः परमसम्पदम् ॥१०३॥
 परिवार्य ततस्तास्तं समस्ताश्चाहविभ्रमाः । भवतीर्णा महारम्यं सरः सरसिनेक्षणाः ॥१०४॥
 क्रीडानिस्पृहचित्तोऽसौ तस्वार्थगतमानसः । योपितामनुरोधेन जलसङ्गमशिभिश्चत् ॥१०५॥
 देवीजनसमाक्रीर्णो विनयेन समन्वितः । विरराज सरः प्राप्तः करी यूथपतिर्यथा ॥१०६॥
 स्निग्धैः सुगन्धिभिः कान्तैस्त्रिभिरुद्धर्तनैरसौ । उद्धर्तितः पृथुच्छायापट्टरञ्जितवारिभिः ॥१०७॥
 किञ्चिदसंक्रोडय सञ्ज्ञेयः सुस्नातः सुमनोहरः । सरसः केकयीसुनुरुत्तीर्णः परमेश्वरः ॥१०८॥
 विहितार्हन्महापूजः पद्मनीलोत्पलादिभिः । सादरेणाङ्गनौघेन स समप्रमलङ्कृतः ॥१०९॥
 एतस्मिन्नन्तरे योऽसौ महाजलधराकृतिः । त्रिलोकमण्डनाभिस्थः ख्यातो गजपतिः शुभः ॥११०॥
 आलानं स समाभिद्य महाभैरवनिःस्वनः । निःससार निजावासाद् दानदुर्दिनिताम्बरः ॥१११॥
 घनाघनघनोदारगर्भारं तस्य गजितम् । श्रुत्वाऽथोध्यापुरी जाता समुन्मत्तजनेव सा ॥११२॥
 जनितोदारसङ्घट्टैर्भयस्तब्धश्रुतेक्षणैः । राजमार्गान्तराः पूर्णाः सायासाधोरणैर्गजैः ॥११३॥
 यथानुकूलमाश्रित्य दिशो दश महाभयाः । नेशुस्ते मदनिर्युक्ता गृहीतयमिरेहसा ॥११४॥
 हेमरत्नमहाकूर्टं गोपुरं गिरिसन्निभम् । विध्वंस्य भरतं तेन प्रवृत्तो वारणोत्तमः ॥११५॥

भौजाइयोंके समूहकी यह प्रिय प्रार्थना स्वीकृत कीजिए ॥१०१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि उन सब स्त्रियोंने भरतको घेर लिया था फिर भी उसका चित्त रञ्जमात्र भी विकारको प्राप्त नहीं हुआ । केवल दाक्षिण्य वश उसने उनकी प्रार्थना स्वीकृत कर ली ॥१०२॥

तदनन्तर आज्ञा प्राप्त कर राम, लक्ष्मण और भरतकी स्त्रियों शङ्कारहित हो परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१०३॥ तत्पश्चात् सुन्दर चेष्टाओंसे युक्त वे कमललोचना स्त्रियों भरतको घेरकर महारमणीय सरोवरमें उतरी ॥१०४॥ जिसका चित्त तत्त्वके चिन्तन करनेमें लगा हुआ था तथा क्रीड़ासे निःस्पृह था ऐसा भरत केवल स्त्रियोंके अनुरोधसे ही जलके समागमको प्राप्त हुआ था अर्थात् जलमें उतरा था ॥१०५॥ स्त्रियोंसे विरा हुआ विनयी भरत, सरोवरमें पहुँचकर ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भुण्डका स्वामी गजराज ही हो ॥१०६॥ अपनी विशाल कान्तिसे जलको रङ्गीन करनेवाले, चिकनाईसे युक्त, सुन्दर तथा सुगन्धित तीन उपटन उस भरतकी देहपर लगाये गये थे ॥१०७॥ उत्तम चेष्टाओंसे युक्त एवं अतिशय मनोहर राजा भरत, कुञ्ज क्रीड़ाकर तथा अच्छी तरह स्नानकर सरोवरसे बाहर निकल आये ॥१०८॥ तदनन्तर कमल और नीलोत्पल आदिसे जिसने अर्हन्त भगवान्की महापूजा की थी ऐसा भरत उन आदरपूर्ण स्त्रियोंके समूहसे अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१०९॥

इसी बीचमें महामेघके समान त्रिलोकमण्डन नामका जो प्रसिद्ध गजराज था वह खम्भेको तोड़कर अपने निवासगृहसे बाहर निकल आया । उस समय वह महाभयंकर शब्द कर रहा था तथा मद जलसे आकाशको वर्षायुक्त कर रहा था ॥११०-१११॥ मेघकी सघन विशाल गर्जनाके समान उसकी गर्जना सुनकर समस्त अथोध्यापुरी ऐसी हो गई मानो उसके समस्त लोग उन्मत्त ही हो गये हों ॥११२॥ जिन्होंने भीड़के कारण धक्कामुक्की कर रक्खी थी, तथा जिनके कान और नेत्र भयसे स्थिर थे ऐसे इधर-उधर दौड़नेका श्रम उठाने वाले महावतोंसे युक्त हाथियोंसे नगरके राजमार्ग भर गये थे ॥११३॥ घोड़ोंके वेगको ग्रहण करनेवाले वे महाभयदायी मदोन्मत्त हाथी इच्छानुकूल दशों दिशाओंमें बिखर गये—फैल गये ॥११४॥ जिसके महाशिखर सुवर्ण तथा रत्नमय थे ऐसे पर्वतके समान विशाल गोपुरको तोड़कर वह त्रिलोकमण्डन हाथी जिस

त्रासाकुलेक्षणं नायों महासम्भ्रमसङ्गताः । शिश्रियुर्भरतं त्राणं भातुं वीधितयो तथा ॥११६॥
 भरताभिमुखं यान्तं जनो वीषय गजोत्तमम् । हाहेति परमं तारं विलापं परितोऽकरोत् ॥११७॥
 विह्वला मातरश्चास्य महोद्वेगसमागताः । बभूवुः परमाशङ्काः पुत्रस्नेहपरायणाः ॥११८॥
 तावत् परिकरं बद्ध्वा पश्चाभो लक्ष्मणस्तथा । उपसर्पति सच्छ्रममहाविज्ञानसङ्गतः ॥११९॥
 नभश्चरमहामात्रान् समुत्सार्य भयार्दितान् । बलाद् गृहीतुमुद्युक्तो तमिभेन्द्रमलं चलम् ॥१२०॥
 सरोषमुक्तनिरवानो दुःप्रेषयः प्रबलो जवी । नागपाशैरपि गजः संरोद्धुं न स शक्यते ॥१२१॥
 ततोऽङ्गनाजनान्तस्थं श्रीमन्तं कमलेक्षणम् । भरतं वीषय नागोऽसौ व्यतीतं भवमस्मरत् ॥१२२॥
 सञ्जातोद्वेगभारश्च कृत्वा प्रशिथिलं करम् । भरतस्याग्रतो नागस्तस्थौ विनयसङ्गतः ॥१२३॥
 जगाद् भरतश्चैनं परं मधुरया गिरा । अहोऽनेकपनाथ त्वं रोषितः केन हेतुना ॥१२४॥
 निशम्य वचनं तस्य संज्ञां सम्प्राप्य वारणः । अत्यर्थशान्तचेतस्को निश्चलः सौम्यदर्शनः ॥१२५॥
 स्थितमग्रे वरस्त्रीणां स्निग्धं भरतमीक्षते । पुरे वापसरसां दृन्दे स्वर्गे गीर्वाणसत्तमम् ॥१२६॥
 परिज्ञानी ततो नागश्चिन्तामेवं समाश्रितः । मुक्तात्याऽऽयतनिःश्वासो विकारपरिवर्जितः ॥१२७॥
 पृषोऽसौ यो महानासीत् कल्पे बह्वोत्तराभिधे । देवः शशाङ्कशुभ्रश्रीर्वयस्यः परमो मम ॥१२८॥
 च्युतोऽस्य पुण्यशेषेण जातः पुरुषसत्तमः । कष्टं निन्दितकर्माहं तिर्यग्योनिमुपागतः ॥१२९॥
 कार्याकार्यविवेकेन सुदूरं परिवर्जितम् । कथं प्राप्तोऽस्मि हस्तित्वं धिगेतदिति गदितम् ॥१३०॥

ओर भरत विद्यमान था उसी ओर गया ॥११५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र भयसे व्याकुल थे और जो बहुत भारी बेचैनीसे युक्त थी ऐसी समस्त स्त्रियों रक्षाके निमित्त भरतके समीप उस प्रकार पहुँची जिस प्रकार कि किरणें सूर्यके समीप पहुँचती हैं ॥११६॥ उस गजराजको भरतके सन्मुख जाता देख, लोग चारों ओर 'हाय हाय' इसप्रकार जोरसे विलाप करने लगे ॥११७॥ पुत्रस्नेहमें तत्पर माताएँ भी महा उद्वेगसे सहित, परम शंकासे युक्त तथा अत्यन्त विह्वल हो उठीं ॥११८॥ उसी समय छल तथा महाविज्ञानसे युक्त राम और लक्ष्मण, कमर कसकर भयसे पीड़ित विद्याधर महावतोंको दूर हटा उस अतिशय चपल गजराजको बलपूर्वक पकड़नेके लिए उद्यत हुए ॥११९-१२०॥ वह गजराज क्रोधपूर्वक उच्च चिंघाड़ कर रहा था, दुर्दर्शनीय था, प्रबल था, वेगशाली था और नागपाशोंके द्वारा भी नहीं रोका जा सकता था ॥१२१॥

तदनन्तर स्त्रीजनोंके अन्तमें स्थित श्रीमान् कमललोचन भरतको देखकर उस हाथीको अपने पूर्व भवका स्मरण हो आया ॥१२२॥ जिसे बहुत भारी उद्वेग उत्पन्न हुआ था ऐसा वह हाथी सूडको शिथिलकर भरतके आगे विनयसे बैठ गया ॥१२३॥ भरतने मधुर वाणीमें उससे कहा कि अहो गजराज ! तुम किस कारण रोषको प्राप्त हुए हो ॥१२४॥ भरतके उक्त वचन सुन चैतन्यको प्राप्त हुआ गजराज अत्यन्त शान्तचित्त हो गया, उसकी चञ्चलता जाती रही और उसका दर्शन अत्यन्त सौम्य हो गया ॥१२५॥ उत्तमोत्तम स्त्रियोंके आगे स्थित स्नेह पूर्ण भरतको वह हाथी इस प्रकार देख रहा था मानो स्वर्गमें अप्सराओंके समूहमें बैठे हुए इन्द्रको ही देख रहा हो ॥१२६॥

तदनन्तर जो परिज्ञानी था, अत्यन्त दीर्घ उच्छ्वास छोड़ रहा था ऐसा वह विकाररहित हाथी इस प्रकारको चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२७॥ वह चिन्ता करने लगा कि यह वही है जो ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें चन्द्रमाके समान शुक्र शोभाको धारण करनेवाला मेरा परम मित्र देव था ॥१२८॥ यह वहाँसे च्युत हो अवशिष्ट पुण्यके कारण उत्तम पुरुष हुआ और खेद है कि मैं निन्दित कार्य करता हुआ इस तिर्यञ्च योनिमें उत्पन्न हुआ हूँ ॥१२९॥ मैं कार्य-अकार्यके विवेकसे रहित

परितन्वेऽधुना व्यर्थं किमिदं स्मृतिसङ्गतः । करोमि कर्म तद्येन लभ्यते हितमात्मने ॥१३१॥
उद्वेगकरणं नात्र कारणं दुःखमोचने । तस्मादुपायमेवाहं घटे सर्वादरान्वितः ॥१३२॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्मृतातीतभवो राजेन्द्रो भवे तु वैराग्यमलं प्रपन्नः ।
दुरीहितैकान्तपराङ्मुखात्मा स्थितः सुकर्माज्जनचिन्तनाग्रः ॥१३३॥

उपजातिवृत्तम्

कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्वं सन्तापमुग्रं जनयन्ति पश्चात् ।
तस्माज्जनाः कर्म शुभं कुरुध्वं रवौ सति प्रस्खलनं न युक्तम् ॥१३४॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणो त्रिभुवनालङ्कारक्षोभाभिधानं नाम त्र्यशीतितमं पर्व ।

इस हस्ती पर्यायको कैसे प्राप्त हो गया ? अहो इस पापपूर्ण चेष्टाको धिक्कार हो ॥१३०॥ अब इस समय पूर्ण भवकी स्मृतिको प्राप्त हो व्यर्थ ही क्यों संताप करूँ, अब तो वह कार्य करता हूँ कि जिससे आत्महितकी प्राप्ति हो ॥१३१॥ उद्वेग करना दुःखके छूटनेका कारण नहीं है इसलिए मैं पूर्ण आदरके साथ वही उपाय करता हूँ जो दुःखके छूटनेका कारण है ॥१३२॥ इसप्रकार जिसे पूर्वभवका स्मरण हो रहा था, जो संसारके विषयमें अत्यधिक वैराग्यको प्राप्त हुआ था, जिसकी आत्मा पापरूप चेष्टासे अत्यन्त विमुख थी तथा जो पुण्य कर्मके संचय करनेकी चिन्तासे युक्त था ऐसा वह त्रिलोकमण्डन हाथी भरतके आगे शान्तिसे बैठ गया ॥१३३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पूर्वभवमें किये हुए अशुभकर्म पीछे चलकर उग्र संताप उत्पन्न करते हैं इसलिए हे भव्यजनो ! शुभ कार्य करो क्योंकि सूर्यके रहते हुए स्खलित होना उचित नहीं है ॥१३४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें त्रिलोकमण्डन हाथीके क्षमित होनेका वर्णन करनेवाला तेरासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८३॥

चतुरशीतितमं पर्व

तथा विचिन्तयन्नेष विनयी द्विपसत्तमः । पद्याभचक्रपाणिभ्यां बहद्भयां विस्मयं परम् ॥१॥
 किञ्चिदाशङ्कितारमाभ्यामुपसृत्य शनैः शनैः । महाकालघनाकारो जगृहे भावितप्रियः ॥२॥
 प्राप्य नारायणादाज्ञामन्वैरुत्तमसम्भदैः । सर्वालङ्कारयोगेन परां पूजां च लभितः ॥३॥
 प्रशान्ते द्विरदश्रेष्ठे नगर्याकुलतोडिकता । घनाघनपटोन्मुक्ता रराज शरदा समम् ॥४॥
 त्रिद्याधरनाधीश्वरश्रण्डा यस्योत्तमा गतिः । रोद्धुं नातिबलैः शक्या नाकसद्यभिरिव वा ॥५॥
 सोऽयं कैलासकम्पस्य राक्षसेन्द्रस्य वाहनः । भूतपूर्वः कथं रुद्धः सीरिणा लक्ष्मणेन च ॥६॥
 तादृशीं विकृतिं गत्वा यदयं शममागतः । तदस्य पूर्वलोकस्य पुण्यं दीर्घायुरात्रहम् ॥७॥
 नगर्यामिति सर्वस्यां परं विस्मयमीयुषः । लोकस्य संकथा जाता विधूतकरमस्तका ॥८॥
 ततः सीताविशहयाभ्यां समं तं वारणेश्वरम् । आरुह्य सुमहाभूतिभरतः प्रस्थितो गृहम् ॥९॥
 महालङ्कारधारिण्यः शोपा अपि वराङ्गनाः । विचित्रवाहनारूढा भरतं पर्यवेष्टयन् ॥१०॥
 तुरङ्गरथमारूढो विभूत्या परयाऽन्वितः । शकुन्तोऽस्य महातेजाः प्रययावप्रतः स्थितः ॥११॥
 कम्लाभ्लातकभेर्यादिमहावादित्रनिस्वनः । सञ्जातः शङ्खशब्देन मिश्रः कोलाहलान्वितः ॥१२॥
 कुसुमामोदमुद्यानं त्यक्त्वा ते नन्दनोपमम् । त्रिदशा इव सम्प्रापुरालयं सुमनोहरम् ॥१३॥
 उत्तार्य द्विरदाद् राजा प्रविश्याऽऽहारमण्डपम् । साधुन् सन्तप्यं विधिवत् प्रणम्य च विशुद्धधीः ॥१४॥

अथानन्तर जो इस प्रकार विचार कर रहा था जिसका आकार महाश्याम मेघके समान था तथा जिसके प्रति मधुर शब्दोंका उच्चारण किया गया था ऐसे उस हाथीकी परम आश्चर्य धारण करनेवाले तथा कुछ कुछ शङ्कित चित्तवाले राम लक्ष्मणने धीरे धीरे पास जाकर पकड़ लिया ॥१-२॥ लक्ष्मणकी आज्ञा पाकर उत्तम हर्षसे युक्त अन्य लोगोंने सर्व प्रकारसे अलङ्कार पहिनाकर उस हाथीका बहुत भारी सत्कार किया ॥३॥ उस गजराजके शान्त होनेपर जिसकी आकुलता छूट गई थी ऐसी वह नगरी मेघरूपी पटसे रहित हो शरद् ऋतुके समान सुशीभित हो रही थी ॥४॥ जिसकी अत्यन्त प्रचण्ड गति विद्याधर राजाओं तथा अत्यन्त बलवान् देवोंके द्वारा भी नहीं रोकी जा सकती थी ॥५॥ ऐसा यह कैलासकी कम्पित करनेवाले रावणका भूतपूर्व वाहन राम और बलभद्रके द्वारा कैसे रोक लिया गया ? ॥६॥ उस प्रकारकी विकृतिको प्राप्त होकर जो यह शान्त भावको प्राप्त हुआ है सो यह उसकी दीर्घायुका कारण पूर्व पर्यायका पुण्य ही समझना चाहिए ॥७॥ इस तरह समस्त नगरीमें परम आश्चर्यको प्राप्त हुए लोगोंमें हाथ तथा मस्तकको हिलानेवाली चर्चा हो रही थी ॥८॥ तदनन्तर सीता और विशाल्याके साथ उस गजराज पर सवार हो महाविभूतिके धारक भरतने घरकी ओर प्रस्थान किया ॥९॥ जो उत्तमोत्तम अलङ्कार धारण कर रही थी तथा नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ थी ऐसी शेष स्त्रियाँ भी भरतको घेरे हुए थी ॥१०॥ घोड़ोंके रथपर बैठा परम विभूतिसे युक्त महातेजस्वी शत्रुघ्न, भरतके आगे आगे चल रहा था ॥११॥ शङ्खोंके शब्दसे मिश्रित तथा कोलाहलसे युक्त कम्ला अम्लातक तथा भेरी आदि महावादित्रोंका शब्द हो रहा था ॥१२॥ जिस प्रकार देव नन्दन वनको छोड़कर अपने अत्यन्त मनोहर स्वर्गको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे सब फूलोंकी सुगन्धिसे युक्त कुसुमामोद नामक उद्यानको छोड़कर अपने मनोहर घरको प्राप्त हुए ॥१३॥

तदनन्तर विशुद्ध बुद्धिके धारक राजा भरतने हाथीसे उतरकर आहार मण्डपमें प्रवेशकर

विनामात्रादिभिः सार्द्धं भ्रातृपत्नीभिरेव च । आहारमकरोत् स्वं स्वं ततो यातो जनः पदम् ॥१५॥
 किं क्रुद्धः किं पुनः शान्तः किंस्थितो भरतान्तिके । किमेतदिति लोकस्य कथा नेभे निवर्तते ॥१६॥
 मगधेन्द्राय निःशेषा महामात्राः समागताः । प्रणम्यादरिणोऽवोचन् पथं लक्ष्मणसङ्गतम् ॥१७॥
 अहोऽद्य वर्तते देव तुरीयो राजदन्तिनः । विमुक्तपूर्वकृत्यस्य श्लथविग्रहधारिणः ॥१८॥
 यतः प्रभृति संक्षोभं सम्प्राप्य शममागतः । तत एव समारभ्य वर्तते ध्यानसङ्गतः ॥१९॥
 महायतं विनिःश्वस्य मुकुलाक्षोऽतिविह्वलः । चिरं किं किमपि ध्यात्वा हन्ति हस्तेन मेदिनीम् ॥२०॥
 बहुप्रियशतैः स्तोत्रैः स्तूयमानोऽपि सन्ततम् । कवलं नैव गृह्णाति न रवं कुरुते श्रुतौ ॥२१॥
 विधाय वन्तयोरग्रे करं मीलितलोचनः । लेप्यकर्म गजेन्द्रस्य चिरं याति समुन्नतम् ॥२२॥
 किमयं कृत्रिमो दन्ती किंवा सत्यमहाद्विपः । इति तत्र समस्तस्य मतिर्लोकस्य वर्तते ॥२३॥
 चातुवाक्यासुरोधेन गृहीतमपि कृच्छ्रतः । विमुञ्चत्यास्यमप्राप्तं कवलं मृष्टमप्यलम् ॥२४॥
 त्रिपदीक्षेत्रललितं समुत्सृज्य शुचान्वितः । आसज्य किञ्चिदालाने विनिःश्वस्यावतिष्ठते ॥२५॥
 समस्तशास्त्रसत्कारविमलीकृतमानसैः । प्रख्यातैरप्यलं वैद्यैर्भावो नास्थोपलक्ष्यते ॥२६॥
 रचितं स्वाद्रेणापि सङ्गीतं सुमनोहरम् । न शृणोति यथापूर्वं कापि नितिसमानसः ॥२७॥
 मङ्गलैः कौतुकैर्योगैर्मन्त्रैर्विद्याभिरौषधैः । न प्रत्यापत्तिमायाति लालितोऽपि महादरैः ॥२८॥
 न विहारं न निद्रायाम् न प्रासे न च वारिणि । कुरुते याचितोऽपीच्छां सुहृन्मानमितो यथा ॥२९॥

और विधिपूर्वक प्रणामकर साधुओंको समुत्सृष्ट किया ॥१४॥ तत्पश्चात् मित्रों, मन्त्री आदि परि-
 जनों और भौजाइयोंके साथ भोजन किया । उसके बाद सब लोग अपने अपने स्थान पर चले गये
 ॥१५॥ त्रिलोकमण्डन हाथी कुपित क्यों हुआ ? फिर शान्त कैसे हो गया ? भरतके पास क्यों
 जा बैठा ? यह सब क्या बात है ? इस प्रकार लोगोंकी हस्तिविषयक कथा दूर ही नहीं होती
 थी ॥ भावार्थ—जहाँ देखो वही हाथीके विषयकी चर्चा होती रहती थी ॥१६॥ तदनन्तर गौतम
 स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सब महावतोंने आकर तथा आदर पूर्वक प्रणाम कर राम
 लक्ष्मणसे कहा ॥१७॥ कि हे देव ! अहो ! सब कार्य छोड़े और शिथिल शरीरको धारण किये
 हुए त्रिलोकमण्डन हाथीको आज चौथा दिन है ॥१८॥ जिस समयसे वह चोभको प्राप्त हो
 शान्त हुआ है उसी समयसे लेकर वह ध्यानमें आरूढ है ॥१९॥ वह आँख बन्दकर अत्यन्त
 विह्वल होता हुआ बड़ी लम्बी सांस भरता है और चिरकाल तक कुछ कुछ ध्यान करता हुआ
 सँडसे पृथ्वीको ताड़ित करता रहता है अर्थात् पृथिवीपर सँड पटकता रहता है ॥२०॥ यद्यपि
 उसकी निरन्तर सैकड़ों प्रिय स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है तथापि वह न प्रास ग्रहण करता है और
 न कानोंमें शब्द ही करता है अर्थात् कुछ भी सुनता नहीं है ॥२१॥ वह नेत्र बन्दकर दाँतोंके
 अग्रभाग पर सँड रखे हुए ऐसा निश्चल खड़ा है मानो चिरकाल तक स्थिर रहनेवाला हाथीका
 चित्राम ही है ॥२२॥ क्या यह बनावटी हाथी है ? अथवा सचमुचका महागजराज है इस प्रकार
 उसके विषयमें लोगोंमें तर्क उत्पन्न होता रहता है ॥२३॥ मधुर वचनोंके अनुरोधसे यदि किसी
 तरह प्रास ग्रहण कर भी लेता है तो वह उस मधुर प्रासको मुख तक पहुँचनेके पहले ही छोड़
 देता है ॥२४॥ वह त्रिपदी छेदकी लीलाको छोड़कर शोकसे युक्त होता हुआ किसी स्वप्नेमें कुछ
 थोड़ा अटककर सांस भरता हुआ खड़ा है ॥२५॥ समस्त शास्त्रोंके सत्कारसे जिनका मन अत्यन्त
 निर्मल हो गया है ऐसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैद्यांके द्वारा भी इसके अभिप्रायका पता नहीं चलता ॥२६॥
 जिसका चित्त किसी अन्य पदार्थमें अटक रहा है ऐसा यह हाथी बड़े आदरके साथ रचित
 अत्यन्त मनोहर संगीतको पंहुलेके समान नहीं सुनता है ॥२७॥ वह महान् आदरसे प्यार किये जाने
 पर भी मङ्गल मय कौतुक, योग, मन्त्र, विद्या और औषधि आदिके द्वारा स्वस्थताको प्राप्त नहीं
 हो रहा है ॥२८॥ वह मानको प्राप्त हुए मित्रके समान याचित होनेपर भी न विहारमें, न निद्रामें,

दुर्ज्ञानान्तरमीदृच्छं रहस्यं परमाद्भुतम् । किमेतदिति नो विद्यो गजस्य मनसि स्थितम् ॥३०॥
 न शक्यस्तोषमानेतुं न च लोभं कदाचन । न याति क्रोधमप्येष दन्ती चित्रार्पितो यथा ॥३१॥
 सकलस्यास्य राज्यस्य मूलमद्भुतविक्रमः । त्रिलोकभूषणो देव वर्तते करटीदृशः ॥३२॥
 इति विशय देवोऽत्र प्रमाणं कृत्यवस्तुनि । निवेदनक्रियामात्रसारा ह्यस्मादृशां मतिः ॥३३॥

इन्द्रवज्रा

श्रुत्वेहितं नागपतेस्तदीदृक् पूर्वेहितात्यन्तविभिन्नरूपम् ।
 जातौ नरेद्रावधिकं चिन्तितौ पद्माभलचर्मनिलयौ क्षणेन ॥३४॥

उपजातिः

आलाननोहासितः किमर्थं शमं पुनः केन गुणेन यातः^१ ।
 वृणोति कस्मादृशं न नाग इत्युद्युतिः पद्मरविर्भूव ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे त्रिभुवनालङ्कारशामिधानं नाम
 चतुरशीतितमं पर्व ॥८५॥

न घ्रास उटानेमें और न जलमें ही इच्छा करता है ॥२६॥ जिसका जानना कठिन है ऐसा यह कौनसा परम अद्भुत रहस्य इस हाथीके मनमें स्थित है यह हम नहीं जानते ॥३०॥ यह हाथी न तो सन्तोषको प्राप्त हो सकता है न कभी लोभको प्राप्त होता है और न कभी क्रोधको प्राप्त होता है, यह तो चित्रलिखितके समान खड़ा है ॥३१॥ हे देव ! अद्भुत पराक्रमका धारी यह हाथी समस्त राज्यका मूल कारण है । हे देव ! यह त्रिलोकमण्डन ऐसा ही हाथी है ॥३२॥ हे देव ! इस प्रकार जानकर अब जो कुछ करना हो सो इस विषयमें आप ही प्रमाण हैं अर्थात् जो कुछ आप जानें सो करें क्योंकि हमारे जैसे लोगोंकी बुद्धि तो निवेदन करना ही जानती है ॥३३॥ इस प्रकार गजराजकी पूर्वचेष्टाओंसे अत्यन्त विभिन्न पूर्वोक्त चेष्टाको सुनकर राम लक्ष्मण राजा क्षण भरमें अत्यधिक चिन्तित हो उठे ॥३४॥ 'यह हाथी बन्धनके स्थानसे किसलिए बाहर निकला ? फिर किस कारण शान्तिको प्राप्त हो गया ? और किस कारण आहारको स्वीकृत नहीं करता है' इस प्रकार रामरूपी सूर्य अनेक वितर्क करते हुए उदित हुए ॥३५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें त्रिलोकमण्डन हाथीके शान्त होनेका वर्णन करनेवाला चौरासीवें पर्व समाप्त हुआ ॥८५॥

पञ्चाशोत्तमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे राजन् भगवान् देशभूषणः । कुलभूषणयुक्तश्च सम्प्राप्तौ मुनिभिः समम् ॥१॥
 ययोर्वंशगिरावासीत् प्रतिमां चतुराननाम् । श्रितयोरुपसर्गोऽसौ जनितः पूर्ववैरिणा ॥२॥
 पद्मलक्ष्मणव्रीराभ्यां प्रातिहार्ये कृते ततः । केवलज्ञानमुत्पन्नं लोकालोकावभासनम् ॥३॥
 ततस्तुष्टेन ताद्व्येण भक्तिस्नेहमुपेयुषा । रत्नास्त्रवाहनान्याभ्यां दत्तानि विविधानि वै ॥४॥
 यत्प्रसादाङ्गिस्त्रयं प्राप्त्वा संशयितीं रणे । चक्रतुर्विजयं शत्रोर्यतो राज्यमवापतुः ॥५॥
 देवासुरस्तुतावेतौ तौ लोकत्रयविश्रुतौ । मुनीन्द्रौ नगरीमुख्यां प्राप्ताञ्जुचरकोशलाम् ॥६॥
 नन्दनप्रतिमे सौ च महेन्द्रोदयनामनि । उद्यानेऽवस्थितौ पूर्वं यथा सञ्जयनन्दनौ ॥७॥
 महागणसमाकीर्णौ चन्द्रार्कप्रतिमाविमौ । सम्प्राप्तौ नगरीलोको विवेदु परमोदयौ ॥८॥
 ततः पद्माभचक्रेशौ भरतारिनिषूदनौ । एते बन्दारवो गन्तुं संयतेन्द्रान् समुद्यताः ॥९॥
 आरुह्य वारणानुप्रानुक्त्वा भानौ समुद्रते । जातिस्मरं पुरस्कृत्य त्रिलोकविजयं द्विपम् ॥१०॥
 देवा इव प्रदेशं तं प्रस्थिताश्चारुचेतसः । कल्याणपर्वतौ यत्र स्थितौ निर्ग्रन्थसत्तमौ ॥११॥
 कैक्या कैक्यौ देवी कोशलैन्द्रात्मजा तथा । सुप्रजाश्चेति विख्यातास्तेषां श्रेणिक मातरः ॥१२॥
 जिनशासनसद्भावाः साधुभक्तिपरायणाः । देवीशतसमाकीर्णां देव्याभा गन्तुमुद्यताः ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! इसी बीचमें अनेक मुनियोंके साथ-साथ देशभूषण और कुलभूषण केवली अयोध्यामें आये ॥१॥ वे देशभूषण कुलभूषण जिन्हें कि वंशस्थविल पर्वत पर चतुरानन प्रतिमा योगको प्राप्त होने पर उनके पूर्वभवके वैरीने उपसर्ग किया था और वीर राम-लक्ष्मणके द्वारा सेवा किये जाने पर जिन्हें लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥२-३॥ तदनन्तर संतोषको प्राप्त हुए गरुडेन्द्रने भक्ति और स्नेहसे युक्त हो राम-लक्ष्मणके लिए नानाप्रकारके रत्न, अस्त्र और वाहन प्रदान किये थे ॥४॥ निरस्त्र होनेके कारण रणमें संशय अवस्थाको प्राप्त हुए राम-लक्ष्मणने जिनके प्रसादसे शत्रुको जीता था तथा राज्य प्राप्त किया था ॥५॥ देव और धरणेन्द्र जिनकी स्तुति कर रहे थे तथा तीनों लोकोंमें जिनकी प्रसिद्धि थी ऐसे वे मुनिराज देशभूषण तथा कुलभूषण नगरियोंमें प्रमुख अयोध्या नगरीमें आये ॥६॥ जिसप्रकार पहले संजय और नन्दन नामक मुनिराज आये थे उसी प्रकार आकर वे नन्दनवनके समान महेन्द्रोदय नामक वनमें ठहर गये ॥७॥ वे केवली, मुनियोंके महासंघसे सहित थे, चन्द्रमा और सूर्यके समान देदीप्यमान थे तथा परम अभ्युदयके धारक थे । उनके आते ही नगरीके लोगोंको इनका ज्ञान हो गया ॥८॥ तदनन्तर बन्दना करनेके अभिलाषी राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये चारों भाई उन केवलियोंके पास जानेके लिए उद्यत हुए ॥९॥ सूर्योदय होने पर उन्होंने नगरमें सर्वत्र घोषणा कराई । तदनन्तर उन्नत हाथियों पर सवार हो एवं जातिस्मरणसे युक्त त्रिलोकमण्डन हाथीको आगे कर देवोंके समान सुन्दर चित्तके धारक होते हुए वे सब उस स्थानकी ओर चले जहाँ कि कल्याणके पर्वतस्वरूप दोनों निर्ग्रन्थ मुनिराज विराजमान थे ॥१०-११॥ जिनका उत्तम अभिप्राय जिनशासनमें लग रहा था, जो साधुओंकी भक्ति करनेमें तत्पर थीं, सैकड़ों देवियों जिनके साथ थीं तथा देवाङ्गनाओंके समान जिनकी आभा थी ऐसी हे श्रेणिक ! उन चारों भाइयोंकी माताएँ कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रजा (सुप्रभा) भी जानेके लिए उद्यत हुईं

मुनिदर्शनतृष्टप्रस्ता सुमीवप्रमुखा मुदा । विद्याधराः समायाता महाविभवसङ्गताः ॥१७॥
 आतपत्रं मुनेर्दृष्ट्वा सकलोडुपसन्निभम् । उत्तोर्यं पद्मनाभाद्या द्विरदेभ्यः समागताः ॥१८॥
 कृताञ्जलिपुटाः स्तुत्वा प्रणम्य च यथाक्रमम् । समर्थ्य च सुनीस्तस्थुरात्मयोग्यासु भूमिषु ॥१९॥
 शुश्रुवुश्च मुनेर्वाक्यं सुसमाहितचेतसः । संसारकारणध्वंसि धर्मशंसनतत्परम् ॥१७॥
 अणुधर्मोऽप्रवर्धश्च श्रेयसः पदवी द्वयी । पारम्पर्येण तत्राद्या परा साक्षात्प्रकीर्तिता ॥१८॥
 गृहाश्रमविधिः पूर्वः महाविस्तारसङ्गतः । परो निर्ग्रन्थसूराणां कीर्तितोऽव्यन्तदुःसहः ॥१९॥
 अनादिनिधने लोके यत्र लोभेन मोहिताः । जन्तवो दुःखमत्युग्रं प्राप्नुवन्ति कुर्यानिषु ॥२०॥
 धर्मो नाम परो बन्धुः सोऽयमेको हितो महान् । मूलं यस्य दया शुद्धा फलं वक्तुं न शक्यते ॥२१॥
 ईप्सितुं जन्तुना सर्वं लभ्यते धर्मसङ्गमात् । धर्मः पूज्यतमो लोके बुधा धर्मेण भाविताः ॥२२॥
 दयामूलस्तु यो धर्मो महाकल्याणकारणम् । दग्धधर्मेषु सोऽन्येषु विद्यते नैव जातुचित् ॥२३॥
 जिनेन्द्रविहिते सोऽयं मार्गो परमदुर्लभे । सदा सन्निहिता येन त्रैलोक्याग्रमवाप्यते ॥२४॥
 पातालेशुरनाथाद्या चोण्यां चक्रधरादयः । फलं शकादयः स्वर्गो परमं यस्य भुञ्जते ॥२५॥
 तावत् प्रस्तावमासाद्य साधुं नारायणः स्वयम् । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छदिति सङ्गतपाणिकः ॥२६॥
 उपसृष्ट प्रभो स्तम्भं नागेन्द्रः सौभमागतः । प्रशमं हेतुना केन सहसा पुनरागतः ॥२७॥
 भगवन्निति संशीतिमप्यपाकर्तुमर्हसि । ततो जयाद् वचनं केवली देशभूषणः ॥२८॥

जो मुनिराजके दर्शन करनेकी तृष्णासे प्रस्तुत थे तथा महावैभवसे सहित थे ऐसे सुग्रीव आदि विद्याधर भी हर्षपूर्वक वहाँ आये थे ॥१२-१४॥ पूर्णचन्द्रमाके समान मुनिराजका छत्र देखते ही रामचन्द्र आदि हाथियोंसे उतर कर पैदल चलने लगे ॥१५॥ सबने हाथ जोड़कर यथाक्रमसे मुनियोंकी स्तुति की, प्रणाम किया, पूजा की और तदनन्तर सब अपने-अपने योग्य भूमियोंमें बैठ गये ॥१६॥ उन्होंने एकाग्र चित्त होकर संसारके कारणोंको नष्ट करनेवाले एवं धर्मकी प्रशंसा करनेमें तत्पर मुनिराजके वचन सुने ॥१७॥ उन्होंने कहा कि अणुधर्म और पूर्णधर्म—अणुव्रत और महाव्रत ये दोनों मोक्षके मार्ग हैं इनमेंसे अणुधर्म तो परम्परासे मोक्षका कारण है, पर महाधर्म साक्षात् ही मोक्षका कारण कहा गया है ॥१८॥ पहला अणुधर्म महाविस्तारसे सहित है तथा गृहस्थाश्रममें होता है और दूसरा जो महाधर्म है वह अत्यन्त कठिन है तथा महाशूर वीर निर्ग्रन्थ साधुओंके ही होता है ॥१९॥ इस अनादिनिधन संसारमें लोभसे मोहित हुए प्राणी नरक आदि कुर्यानियोंमें तीव्र दुःख पाते हैं ॥२०॥ इस संसारमें धर्म ही परम बन्धु है, धर्म ही महाहितकारी है । निर्मल दया जिसकी जड़ है उस धर्मका फल नहीं कहा जा सकता ॥२१॥ धर्मके समागमसे प्राणी समस्त इष्ट वस्तुओंको प्राप्त होता है । लोकमें धर्म अत्यन्त पूज्य है । जो धर्मकी भावनासे सहित हैं, लोकमें वही विद्वान् कहलाते हैं ॥२२॥ जो धर्म दयामूलक है वही महाकल्याणका कारण है । संसारके अन्य अधम धर्मोंमें वह दयामूलक धर्म कभी भी विद्यमान नहीं है अर्थात् उनसे वह भिन्न है ॥२३॥ वह दयामूलकधर्म, जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा प्रणीत परम दुर्लभमार्गमें सदा विद्यमान रहता है जिसके द्वारा तीन लोकका अग्रभाग अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है ॥२४॥ जिस धर्मके उत्तम फलको पातालमें धरणेन्द्र आदि, पृथिवी पर चक्रवर्ती आदि और स्वर्गमें इन्द्र आदि भोगते हैं ॥२५॥ उसीसमय प्रकरण पाकर लक्ष्मणने स्वयं हाथ जोड़कर शिरसे प्रणामकर मुनिराजसे यह पूछा कि हे प्रभो ! त्रिलोकमण्डन नामक गजराज खम्भेको तोड़कर किस कारण क्षोभको प्राप्त हुआ और फिर किस कारण अकस्मात् ही शान्त हो गया ? ॥२६-२७॥ हे भगवन् ! आप मेरे इस संशयको दूर करनेके लिए योग्य हैं । तदनन्तर देशभूषण केवलीने निम्नप्रकार वचन कहे ॥२८॥

१. श्रुत्वा म० । २. पूर्व म० । ३. हितः पुमान् म० । ४. इहितं म० । ५. सन्निहिते म० ।

बलोद्रेकादयं तुङ्गात् संज्ञोभं परमं गतः । स्मृत्वा पूर्वभवं भूयः शमयोगमश्रियत् ॥२६॥
 आसीदाद्ये युगेऽयोध्यानगर्यामुत्तमश्रुतिः । नाभितो मरुदेव्याश्च निमित्तात्तनुमाश्रितः ॥३०॥
 त्रैलोक्यज्ञोभणं कर्म समुपाज्यं महोदयः । प्रकटत्वं परिप्रापदिति देवेन्द्रभूतिभिः ॥३१॥
 विन्ध्यद्विमनगोत्तुङ्गस्तनीं सागरमेखलाम् । पत्नीमिव निजां साध्वीं वरयां योऽसेवत कितिम् ॥३२॥
 भगवान् पुरुषेन्द्रोऽसौ लोकत्रयनमस्कृतः । पुराऽऽमत पुर्यस्यां दिवीं च त्रिदशाधिपः ॥३३॥
 श्रीमान् ऋषभदेवोऽसौ द्युतिकान्तिसमन्वितः । लक्ष्मीश्रीकान्तिसम्पन्नः कल्याणगुणसागरः ॥३४॥
 त्रिज्ञानी धीरगम्भीरो इड्मनोहारिचेष्टितः । अभिरामवपुः सत्त्वी प्रतापी परमोऽभवत् ॥३५॥
 सौधर्मेन्द्रप्रधानैर्यज्ञिदशैरग्रजन्मनि । हेमरत्नघटैर्मैरावभिषिक्तः सुभक्तिभिः ॥३६॥
 गुणान् कस्तस्य शक्नोति वक्तुं केवलवर्जितः । ऐश्वर्यं प्रार्थ्यते यस्य सुरेन्द्रैरपि सन्ततम् ॥३७॥
 कालं द्राधिष्ठमत्यन्तं भुक्त्वा श्रीविभवं परम् । अप्सरःपरमां वीच्य तां नीलाञ्जनवर्तकीम् ॥३८॥
 स्तुतो लोकान्तिकैर्देवैः स्वयम्बुद्धो महेश्वरः । न्यस्य पुत्रशते राज्यं निष्क्रान्तो जगतां गुरुः ॥३९॥
 उद्याने तिलकाभिल्ये प्रजाभ्यो यदसौ गतः । प्रजागमिति तत्तेन लोके तीर्थं प्रकीर्तितम् ॥४०॥
 संवत्सरसहस्रं स दिव्यं मेरुरिवाचलः । गुरुः प्रतिमया तस्थौ त्यक्ताशेषपरिग्रहः ॥४१॥
 स्वामिभक्त्या समं तेन ये श्रामण्यमुपस्थिताः । षण्मासाभ्यन्तरे भग्ना दुःसहैस्ते परीषहैः ॥४२॥

उन्होंने कहा कि यह हाथी अत्यधिक पराक्रमकी उत्कटतासे पहले तो परम ज्ञोभको प्राप्त हुआ था और उसके बाद पूर्वभवका स्मरण होनेसे शान्तिको प्राप्त हो गया था ॥२६॥ इस कर्म-भूमिरूपी युगके आदिमें इसी अयोध्या नगरीमें राजा नाभिराज और रानी मरुदेवीके निमित्तसे शरीरको प्राप्तकर उत्तम नामको धारण करनेवाले भगवान् ऋषभदेव प्रकट हुए थे । उन्होंने पूर्व-भवमें तीन लोकको ज्ञोभित करनेवाले तीर्थङ्कर नाम कर्मका बन्ध किया था उसीके फलस्वरूप वे इन्द्रके समान विभूतिसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए थे ॥३०-३१॥ विन्ध्याचल और हिमाचल ही जिसके उन्नत स्तन थे तथा समुद्र जिसकी करधनी थी ऐसी पृथिवीका जिन्होंने सदा अनुकूल चलनेवाली अपनी पतिव्रता पत्नीके समान सदा सेवन किया था ॥३२॥ तीनों लोक जिन्हें नमस्कार करते थे ऐसे वे भगवान् ऋषभदेव पहले इस अयोध्यापुरीमें उस प्रकार रमण करते थे जिस प्रकार कि स्वर्गमें इन्द्र रमण करता है ॥३३॥ वे श्रीमान् ऋषभदेव द्युति तथा कान्तिसे सहित थे, लक्ष्मी, श्री और कान्तिसे सम्पन्न थे, कल्याणकारी गुणोंके सागर थे, तीन ज्ञानके धारी थे, धीर और गम्भीर थे, नेत्र और मनको हरण करनेवाली चेष्टाओंसे सहित थे, सुन्दर शरीरके धारक थे, बलवान् थे और परम प्रतापी थे ॥३४-३५॥ जन्मके समय भक्तिसे भरे सौधर्मेन्द्र आदि देवोंने सुमेरु पर्वतपर सुवर्ण तथा रत्नमयी घटोंसे उनका अभिषेक किया था ॥३६॥ इन्द्र भी जिनके ऐश्वर्यकी निरन्तर चाह रखते थे उन ऋषभदेवके गुणोंका वर्णन केवली भगवान्को छोड़कर कौन कर सकता है ? ॥३७॥ बहुत लम्बे समय तक लक्ष्मीके उत्कृष्ट वैभवका उपभोग कर वे एक दिन नीलाञ्जना नामकी अप्सराको देख प्रतिबोधको प्राप्त हुए ॥३८॥ लौकान्तिक देवोंने जिनकी स्तुति की थी ऐसे महावैभवके धारी जगद्गुरु भगवान् ऋषभदेव अपने सौ पुत्रोंपर राज्यभार सौंपकर घरसे निकल पड़े ॥३९॥ यतश्च भगवान् प्रजासे निःस्पृह हो तिलकनामा उद्यानमें गये थे इसलिए लोकमें वह उद्यान प्रजाग इस नामका तीर्थ प्रसिद्ध हो गया ॥४०॥ वे भगवान् समस्त परिग्रहका त्यागकर एक हजार वर्ष तक मेरुके समान अचल प्रतिमा योगसे खड़े रहे अर्थात् एक हजार वर्ष तक उन्होंने कठिन तपस्या की ॥४१॥ स्वामिभक्तिके कारण उनके साथ जिन चार हजार राजाओंने मुनिव्रतका धारण किया था वे छः महीनेके भीतर ही दुःसह परीषहोंसे पराजित हो गये ॥४२॥

१. स्थलीं म० । २. प्रयाग म० ।

ते भग्ननिश्चयाः क्षुद्राः स्वेच्छाविरचितव्रताः । वरिभनः फलमूलाद्यैर्वालवृत्तिमुपाश्रिताः ॥४३॥
 तेषां मध्ये महामानो मरीचिरिति यो ह्यसौ । परिव्राज्यमयञ्जकं कापार्या सकषायधीः ॥४४॥
 सुप्रभस्य विनीतायां सूर्यचन्द्रोदयौ सुतौ । प्रह्लादनाख्यमहिषीकुचिभूमिमहामर्णा ॥४५॥
 स्वामिना सह निष्कान्तौ प्रथितौ सर्वविष्टे । भग्नौ श्रामण्यतोऽश्नन्तप्रीतौ तं शरणं गतौ ॥४६॥
 मरीचिशिष्ययोः कृत्प्रतापघ्नतमानिनोः । तयोः शिष्यगणो जातः परिव्राड्द्वितो महान् ॥४७॥
 कुश्मार्चरणाद् भ्रान्तौ संसारं तौ चतुर्गतिम् । सहितौ पूरिता क्षीणी ययोस्स्यक्तकलेवरैः ॥४८॥
 ततश्चन्द्रोदयः कर्मवशान्नामाभिधे पुरे । राज्ञो हरिपतेः पुत्रो मनोलूतासमुद्भवः ॥४९॥
 जातः कुलंकराभित्यः प्राप्तश्च नृपतां पराम् । पूर्वस्नेहानुबन्धेन भावितेन भवान् बहून् ॥५०॥
 सूर्योदयः पुरेऽत्रैव ख्यातः श्रुतिरतः श्रुती । विश्वाङ्के^३नाग्निकुण्डायां जातोऽभूत्पुरोहितः ॥५१॥
 कुलङ्करोऽप्यदा गोत्रसन्तत्या कृतसेवनात् । तापसान् सेवितुं गच्छन्नपश्यन्मुनिपुङ्गवम् ॥५२॥
 अभिनन्दितसंज्ञेन तेनाऽसौ नत्तिमागतः । जगदेऽत्रधिनेत्रेण सर्वलोकहितैषिणा ॥५३॥
 यत्र त्वं प्रस्थितस्तत्र तव चेभ्यः पितामहः । तापसः सर्पतां प्राप्तः काष्ठमध्येऽवतिष्ठते ॥५४॥
 काष्ठे विपाठ्यमाने तं तापसेन गतो भवान् । रक्षिस्थितिं^५ गतस्यास्य तच्च सर्वं तथाऽभवत् ॥५५॥

उन क्षुद्र पुरुषोंने अपना निश्चय तोड़ दिया, स्वेच्छानुसार नाना प्रकारके व्रत धारण कर लिये और वे अज्ञानी जैसी चेष्टाको प्राप्त हो फल-मूल आदिका भोजन करने लगे ॥४३॥

उन भ्रष्ट राजाओंके बीच महामानी, कषायले—गेरुसे रंगे वस्त्रोंको धारण करनेवाला तथा कषाय युक्त बुद्धिसे युक्त जो मरीचि नामका साधु था उसने परिव्राजकका मत प्रचलित किया ॥४४॥ इसी विनीता नगरीमें एक सुप्रभ नामका राजा था उसकी प्रह्लादना नामकी स्त्रीकी कुचिरूपी भूमिसे उत्पन्न हुए महामणियोंके समान सूर्योदय और चन्द्रोदय नामके दो पुत्र थे ॥४५॥ ये दोनों पुत्र समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे । उन्होंने भगवान् आदिनाथके साथ ही दीक्षा धारण की थी परन्तु मुनिपदसे भ्रष्ट होकर वे पारस्परिक तीव्र प्रीतिके कारण अन्तमें मरीचिकी शरणमें चले गये ॥४६॥ मायामयी तपश्चरण और व्रतको धारण करनेवाले मरीचिके उन दोनों शिष्योंके अनेक शिष्य हो गये जो परिव्राट् नामसे प्रसिद्ध हुए ॥४७॥ मिथ्याधर्मका आचरण करनेसे वे दोनों चतुर्गति रूप संसारमें साथ-साथ भ्रमण करते रहे । उन दोनों भाइयोंने पूर्वभवोंमें जो शरीर झोड़े थे उनसे समस्त पृथिवी भर गई थी ॥४८॥

तदनन्तर चन्द्रोदयका जीव कर्मके वशीभूत हो नाग नामक नगरमें राजा हरिपतिके मनोलूता नामक रानीसे कुलंकर नामक पुत्र हुआ जो आगे चलकर उत्तम राज्यको प्राप्त हुआ । और सूर्योदयका जीव इसी नगरमें विश्वाङ्क नामक ब्राह्मणके अग्निकुण्डा नामकी स्त्रीसे श्रुतिरत्त नामका विद्वान् पुत्र हुआ । अनेक भवोंमें बुद्धिको प्राप्त हुए पूर्वस्नेहके संस्कारसे श्रुतिरत्त राजा कुलंकरका पुरोहित हुआ ॥४९-५१॥ किसी समय राजा कुलंकर गोत्रपरम्परासे जिनकी सेवा होती आ रही थी ऐसे तपस्वियोंकी सेवा करनेके लिए जा रहा था सो मार्गमें उसने किन्हीं दिग्गम्बर मुनिराजके दर्शन किये ॥५२॥ उन मुनिराजका नाम अभिनन्दित था, वे अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे सहित थे तथा सब लोगोंका हित चाहनेवाले थे । जब राजा कुलंकरने उन्हें नमस्कार किया तब उन्होंने कहा कि हे राजन् ! तू जहाँ जा रहा है वहाँ तेरा सम्पन्न पितामह जो तापस हो गया था मरकर साँप हुआ है और काष्ठके मध्यमें विद्यमान है । एक तापस उस काष्ठको चीर रहा है सो तू जाकर उसकी रक्षा करेगा । जब कुलंकर वहाँ गया तब मुनिराजके कहे अनुसार ही सब

१. वल्लिनः म० । २. श्रामयतोऽ-म० । ३. विश्वाङ्केना-म०, क० । ४. तापसेभ्यः म० । तव च + इभ्यः । ५. रक्षिस्थिति म०, ज० ।

कदागमसमापन्नान् दृष्ट्वाऽप्यौ तापसांस्ततः । प्रबोधमुत्तमं प्राप्ताः श्रान्मथं कर्तुं मुद्यतः ॥५६॥
 वसुपर्वतकश्रुत्या मूढश्रुतिरतस्ततः । तममोहयदेवं च पापकर्मा पुनर्जगौ ॥५७॥
 गोप्रक्रमागतो राजन् धर्मोऽग्रं तव वैदिकः । ततो हरिपतेः पुत्रो यदिदं तत्तमाचर ॥५८॥
 नाथ वेदविधिं कृत्वा सुतं न्यस्य निजे पदे । करिष्यसि हितं पश्चात् प्रसादः क्रियतां मम ॥५९॥
 एवमेतदथाभांष्टा श्रीदामेति प्रकांतिता । महिष्यचिन्तयत्यस्य नूनं राज्ञाऽन्यसङ्गता ॥६०॥
 ज्ञातास्मि येन वैराग्यात् प्रव्रज्यां कर्तुं मिच्छति । प्रव्रजयेदपि किं नो वा को जानाति मनोगतिम् ॥६१॥
 तस्माद्द्वयापादयाम्येनं विपेणेत्यनुचिन्त्य सा । पुरोहितान्वितं पापा कुलङ्करममारयत् ॥६२॥
 ततोऽनुध्यातमात्रेण पशुघातेन पापतः । कालप्रासावभूतां तौ निकुञ्जे शयकौ वने ॥६३॥
 भेकत्वं मूषकत्वं च बर्हिणस्त्वं पृदाकुताम् । रुस्त्वं च पुनः प्राप्सौ कर्मानिलजवेरितौ ॥६४॥
 पूर्वश्रुतिरतौ हस्तां ददुरश्चेतरोऽभवत् । तस्याक्रान्तः स पादेन चकारासुविमोचनम् ॥६५॥
 वर्षाभूत्त्वं पुनः प्राप्तः शुष्के सरसि भक्षितः । काकैः कुक्कुटतां प्राप्तो मार्जारत्वं तु हस्यसौ ॥६६॥
 कुलङ्करचरो जन्मप्रित्तयं कुक्कुटोऽभवत् । भक्षितो द्विजपूर्वेण मार्जारिण नृजन्मना ॥६७॥
 राजद्विजचरौ मस्यशिशुमारस्त्वमागतौ । बद्धौ जालेन कैवर्त्तैः कुटारेणऽहतौ मृतौ ॥६८॥
 शिशुमारस्तयोस्तुक्काबहाशतनयोऽभवत् । त्रिनोदो रमणो मस्यो द्विजो राजगृहे तयोः ॥६९॥

हुआ ॥५३-५५॥ तदनन्तर उन तापसोंको मिथ्याशास्त्रसे युक्त देखकर राजा कुलंकर उत्तम प्रबोधको प्राप्त हो मुनिपद धारण करनेके लिए उद्यत हुआ ॥५६॥

अथानन्तर राजा वसु और पर्वतके द्वारा अनुमोदित 'अजैर्यष्टयम्' इस श्रुतिसे मोहको प्राप्त हुए पापकर्मा श्रुतिरत नामा पुरोहितने उन्हें मोहमें डालकर इस प्रकार कहा कि हे राजन् ! वैदिक धर्म तुम्हारी वंशपरम्परासे चला रहा है इसलिए यदि तुम राजा हरिपतिके पुत्र हो तो उसी वैदिक धर्मका आचरण करो ॥५७-५८॥ हे नाथ ! अभी तो वेदमें बताई हुई विधिके अनुसार कार्य करो फिर पिछली अवस्थामें अपने पद पर पुत्रको स्थापित कर आत्माका हित करना । हे राजन् ! मुझपर प्रसाद करो—प्रसन्न होओ ॥५९॥

अथानन्तर राजा कुलंकरने 'यह बात ऐसी ही है' यह कह कर पुरोहितकी प्रार्थना स्वीकृत की । तदनन्तर राजाकी श्रीदामा नामकी प्रिय स्त्री थी जो परपुरुषासक्त थी । उसने उक्त घटनाको देखकर विचार किया कि जान पड़ता है इस राजाने मुझे अन्य पुरुषमें आसक्त जान लिया है इसीलिए यह विरक्त हो दीक्षा लेना चाहता है । अथवा यह दीक्षा लेगा या नहीं लेगा इसकी मनकी गतिको कौन जानता है ? मैं तो इसे विष देकर मारती हूँ ऐसा विचार कर उस पापिनीने पुरोहित सहित राजा कुलंकरको मार डाला ॥६०-६२॥ तदनन्तर पशुघातका चिन्तयन करने मात्रके पापसे वे दोनों मर कर निकुञ्ज नामक वनमें खरगोश हुए ॥६३॥ तदनन्तर कर्मरूपी वायुके वेगसे प्रेरित हो क्रमसे मेंडक, चूहा, मयूर, अजगर और मृग पर्यायको प्राप्त हुए ॥६४॥ तत्परिचात् श्रुतिरत पुरोहितका जीव हाथी हुआ और राजा कुलंकरका जीव मेंडक हुआ सो हाथीके पैरसे दबकर मेंडक मृत्युको प्राप्त हुआ ॥६५॥ पुनः सूखे सरोवरमें मेंडक हुआ सो कौओंने उसे खाया । तदनन्तर मुर्गा हुआ और हाथीका जीव मार्जार हुआ ॥६६॥ सो मार्जारने मुर्गाका भक्षण किया । इस तरह कुलंकरका जीव तीन भव तक मुर्गा हुआ और पुरोहितका जीव जो मार्जार था वह मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ सो उसने उस मुर्गाको खाया ॥६७॥ तदनन्तर राजा और पुरोहितके जीव क्रमसे मच्छ और शिशुमार अवस्थाको प्राप्त हुए । सो धीवरोंने जालमें फँसाकर उन्हें पकड़ा तथा कुल्हाड़ोंसे काटा जिससे मरणको प्राप्त हुए ॥६८॥ तदनन्तर उन दोनोंमें जो शिशुमार था वह

१. -ऽनुध्यान -म०, क० । २. सर्पताम् । ३. कुस्त्वं म० । ४. मयङ्कताम् । ५. कुक्कुटोऽ- म० ।

निःस्वप्नेनाश्वरत्वे च सति जन्तुर्द्विपात्^१ पशुः । रमणः सम्प्रथायैवं वेदार्थी निःसृतो गृहात् ॥७०॥
 क्षोणीं पर्यटता तेन गुरुवेश्मसु शिञ्जिताः । चक्ष्वारः साङ्गका वेदाः प्रस्थितश्च पुनर्गृहम् ॥७१॥
 मागर्थं नगरं प्राप्तो भ्रातृदर्शनलालसः । भास्करेऽस्तङ्गते चासी व्योमिन् मेघान्यकारिते ॥७२॥
 नगरस्य बहिर्यच्चनिलये वा समाश्रितः । जौर्णोद्यानस्य मध्यस्थे तत्र चेदं प्रवर्त्तते ॥७३॥
 विनोदस्याङ्गना तस्य समिधाख्या कुशीलिका^२ । अशोकदत्तसंकेता तं यज्ञालयमागता ॥७४॥
 अशोकदत्तको मार्गं गृहीतो दण्डपाशिकैः । विनोदोऽपि गृहीतासिर्भार्यानुपदमागतः ॥७५॥
 सद्भावमन्त्रणं श्रुत्वा समिधा क्रोधसंगिना । सायकेन विनोदेन रमणः प्रासुर्कीकृतः ॥७६॥
 विनोदो दयितायुक्तो हृष्टः प्रच्छन्नपापकः । गृहं गतः पुनस्तौ च संसारं पुरुमाटतुः ॥७७॥
 महिषत्वमितोऽरण्ये विनोदो रमणः पुनः । ऋत्तो बभूव निश्चक्षुर्दग्धौ शालवने च तौ ॥७८॥
 जातौ गिरिवने व्याधौ मृतौ च हरिणौ पुनः । तयोर्वन्धुजनस्त्रासाद्दिशो यातो यथायथम् ॥७९॥
 जीवन्तावेव^३ तावात्तौ^४ निषादैः कान्तलोचनौ । स्वयम्भूतिरथो राजा विमलं बन्दितुं गतः ॥८०॥
 सुरासुरैः समं नत्वा जिनेन्द्रं समहर्षिकः । प्रत्यागच्छन्न्ददर्शोती स्थापितौ च जिनालये ॥८१॥

मरकर राजगृह नगरमें बह्मशा नामक पुरुष और उल्का नामक स्त्रीके विनोद नामका पुत्र हुआ तथा जो मच्छ था वह भी कुछ समय बाद उसी नगरमें तथा उन्हीं दम्पतीके रमण नामका पुत्र हुआ ॥६६॥ दोनों ही अत्यन्त दरिद्र तथा मूर्ख थे इसलिए रमणने विचार किया कि अत्यन्त दरिद्रता अथवा मूर्खताके रहते हुए मनुष्य मानो दो पैर वाला पशु ही है । ऐसा विचारकर वह वेद पढ़नेकी इच्छासे घरसे निकल पड़ा ॥७०॥ तदनन्तर पृथिवीमें घूमते हुए उसने गुरुओंके घर जाकर अङ्गों सहित चारों देशोंका अध्ययन किया । अध्ययनके बाद वह पुनः अपने घर की ओर चला ॥७१॥ जिसे भाईके दर्शनकी लालसा लग रही थी ऐसा रमण चलता-चलता जब सूर्यास्त हो गया था और आकाशमें मेघोंमें अन्धकार छा रहा था तब राजगृह नगर आया ॥७२॥ वहाँ वह नगरके बाहर एक पुराने बगीचामें जो यज्ञका मन्दिर था उसमें ठहर गया । वहाँ निम्न प्रकार घटना हुई ॥७३॥ रमणका जो भाई विनोद राजगृह नगरमें रहता था उसकी स्त्रीका नाम समिधा था । यह समिधा दुराचारिणी थी सो अशोकदत्त नामक जारका संकेत पाकर उसी यज्ञ-मन्दिरमें पहुँची जहाँ कि रमण ठहरा हुआ था ॥७४॥ अशोकदत्तको मार्गमें कोतवालने पकड़ लिया इसलिए वह संकेतके अनुसार समिधाके पास नहीं पहुँच सका । इधर समिधाका असली पति विनोद तलवार लेकर उसके पीछे-पीछे गया ॥७५॥ वहाँ समिधाके साथ रमणका सद्भावपूर्ण वार्तालाप सुन विनोदने क्रोधित हो रमणको तलवारसे निष्प्राण कर दिया ॥७६॥

तदनन्तर प्रच्छन्न पापी विनोद हर्षित होता हुआ अपनी स्त्रीके साथ घर आया । उसके बाद वे दोनों दीर्घकाल तक संसारमें भटकते रहे ॥७७॥ तत्पश्चात् विनोदका जीव तो वनमें भँसा हुआ और रमणका जीव उसी वनमें अन्धा रीछ हुआ सो दोनों ही उस शालवनमें जलकर मरे ॥७८॥ तदनन्तर दोनों ही गिरिवनमें व्याध हुए फिर मरकर हरिण हुए । उन हरिणोंके जो माता पिता आदि बन्धुजन थे वे भयके कारण दिशाओंमें इधर-उधर भाग गये । दोनों बच्चे अकेले रह गये । उनके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे इसलिए व्याधोंने उन्हें जीवित ही पकड़ लिया । अथानन्तर तीसरा नारायण राजा स्वयंभूति श्रीविमलनाथ स्वामीके दर्शन करनेके लिए गया ॥७९-८०॥ बहुत भारी ऋद्धिकी धारण करनेवाला राजा स्वयंभू जब सुरों और असुरोंके साथ जिनेन्द्रदेवकी वन्दना करके लौट रहा था तब उसने उन दोनों हरिणोंको देखा सो व्याधोंके

१. पादद्वयधारकः पशुः इत्यर्थः । २. कुशीलकः म० । ३. तौ + आत्तौ इतिच्छेदः । तावत्तौ म० ।

४. विषादैः म०, निषादैः व्याधैः ।

संयतान् तत्र परयन्ती भक्षयन्ती यथेप्सितम् । अन्नं राजकुले प्राप्सौ हरिणौ परमान् धृतिम् ॥८२॥
 आयुर्वेषः परिच्छोणे लब्धमृद्युः समाधिना । सुरलोकमितोऽन्योऽपि तिर्यक्तु पुनरभयम् ॥८३॥
 ततः कथमपि प्राप कर्मयोगान्मनुष्यताम् । विनोदचरसारङ्गः स्वप्ने राशिमिवोदितम् ॥८४॥
 जम्बूद्वीपस्य भरते काम्पिल्यनगरे धनी । द्वाविंशतिप्रमाणाभिर्हेमकोटिभिरुजितः ॥८५॥
 अमुष्य धनदाहस्य वणिजो रमणोऽमरः । च्युतो भूषणनामाऽभूद् वारुण्यां तनयः शुभः ॥८६॥
 नैमित्तेनायमादिष्टः प्रव्रजिष्यत्ययं ध्रुवम् । श्रुत्वैवं धनदो लोकादभू दुद्विग्नमानसः ॥८७॥
 सत्पुत्रप्रेमसक्तेन तेन वैशम निधापितम् । योग्यं सर्वक्रियायोगे यत्र तिष्ठति भूषणः ॥८८॥
 सेव्यमानो वरस्त्रीभिर्वस्त्राहारविलेपनैः । विचित्रैर्ललितं चक्रे सुन्दरं तत्र भूषणः ॥८९॥
 नैत्तिष्ठ भानुमुद्यन्तं नास्तं यान्तं च नोडुपम् । स्वप्नेऽप्यसौ गतौ भूमिं गृहशैलस्य पञ्चमीम् ॥९०॥
 मनोरथशतैर्लब्धः पुत्रोऽसात्रेक एव हि । पूर्वस्नेहानुबन्धेन दयितो जीवितादपि ॥९१॥
 धनदः सोदरः पूर्व भूषणस्य पिताऽभवत् । विचित्रं खलु संसारे प्राणिनां नटचेष्टितम् ॥९२॥
 तावत्तपाक्ष्ये श्रुत्वा देवदुन्दुभिनिस्वनम् । इष्ट्वा देवागमं श्रुत्वा शब्दं चाऽभूद् विखड्बवान् ॥९३॥
 स्वभावान्मृदुचेतस्कः सद्धर्माचारतत्परः । महाप्रमोदसम्पन्नः करकुञ्जलमस्तकः ॥९४॥

पाससे लेकर उसने उन्हें जिनमन्दिरमें रखवा दिया ॥८१॥ वहाँ मुनियोंके दर्शन करते और राजदरबारसे इच्छानुकूल भोजन ग्रहण करते हुए दोनों हरिण परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥८२॥ उन दोनों हरिणोंमें एक हरिण आयु क्षीण होनेपर समाधिभरणकर स्वर्ग गया और दूसरा निर्यञ्चोंमें भ्रमण करता रहा ॥८३॥

तदनन्तर विनोदका जीव जो हरिण था उसने कर्मयोगसे किसी तरह मनुष्य पर्याय प्राप्त की मानो स्वप्नमें राज्य ही उसे मिल गया हो ॥८४॥ अधानन्तर जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें काम्पिल्य नामक नगरके मध्य बाईस करोड़ दीनारका धनी एक धनद नामका वैश्य रहता था सो रमणका जीव मरकर जो देव हुआ था वह वहाँसे च्युत हो उसकी वारुणी नामक स्त्रीसे भूषण नामका उत्तम पुत्र हुआ ॥८५-८६॥ किसी निमित्तज्ञानीने धनद वैश्यसे कहा कि तेरा यह पुत्र निश्चित ही दीक्षा धारण करेगा सो निमित्तज्ञानीके वचन सुन धनद संसारसे उद्विग्नचित्त रहने लगा ॥८७॥ उस उत्तम पुत्रकी प्रीतिसे युक्त धनद सेठने एक ऐसा घर बनवाया जो सब कार्य करनेके योग्य था । उसी घरमें उसका भूषण नामा पुत्र रहता था । भावार्थ—उसने सब प्रकारकी सुविधाओंसे पूर्ण महल बनवाकर उसमें भूषण नामक पुत्रको इसलिए रक्खा कि कहीं बाहर जानेपर किसी मुनिको देखकर वह दीक्षा न ले ले ॥८८॥ उत्तमोत्तम स्त्रियाँ नाना प्रकारके वस्त्र आहार और विलेपन आदिके द्वारा जिसकी सेवा करती थीं ऐसा भूषण वहाँ सुन्दर चेष्टाएँ करता था ॥८९॥ वह सदा अपने महलरूपी पर्वतके पाँचवें खण्डमें रहता था इसलिए उसने कभी स्वप्नमें भी न तो उदित हुए सूर्यको देखा था और न अस्त होता हुआ चन्द्रमा ही देखा था ॥९०॥ धनद सेठने सैकड़ों मनोरथोंके बाद यह एक ही पुत्र प्राप्त किया था इसलिए वह उसे पूर्व स्नेहके संस्कारवशा प्राणोंसे भी अधिक प्यारा था ॥९१॥ धनद, पूर्वभवमें भूषणका भाई था अब इस भवमें पिता हुआ सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें प्राणियोंकी चेष्टाएँ नटकी चेष्टाओं के समान विचित्र होती हैं ॥९२॥ तदनन्तर किसी दिन रात्रि समाप्त होते ही भूषणने देव दुन्दुभिका शब्द सुना, देवोंका आगमन देखा और उसका शब्द सुना जिससे वह विबोधको प्राप्त हुआ ॥९३॥ वह भूषण स्वभावसे ही कोमलचित्त था, समीचीन धर्मका आचरण करनेमें तत्पर था, महाहर्षसे युक्त था तथा उसने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा रक्खे थे ॥९४॥

श्रीधरस्य मुनीन्द्रस्य वन्दनार्थं त्वरान्वितः । सोपानेऽवतरन्दष्टः सोऽहिना तनुमयजत् ॥६५॥
 माहेन्द्रस्वर्गमारूढश्च्युतो द्वीपे च पुष्करे । चन्द्रादित्यपुरे जातः प्रकाशयशसः सुतः ॥६६॥
 मातास्य माधवीत्यासीत् स जगद्युतिसंज्ञितः । राजलक्ष्मीं परिप्राप्तः परमां यौवनोदये ॥६७॥
 संसारान् परमं भीरुरसौ स्थविरमन्त्रिभिः । उपदेशं प्रयच्छद्भिः राज्यं कृच्छ्रेण कारयते ॥६८॥
 कुलकमागतं वत्स राज्यं पालय सुन्दरम् । पालितेऽस्मिन् समस्तैषं सुखिनी जायते प्रजा ॥६९॥
 तपोधनान् स राज्यस्थः साधून् सन्तर्प्य सन्ततम् । गत्वा देवकुरुं काले कल्पमैशानमाश्रितः ॥७०॥
 पत्न्योपमान् बहून् तत्र देवीजनसमावृतः । नानारूपधरो भोगान् बुभुजे परमद्युतिः ॥७१॥
 च्युतो जम्बूमति द्वीपे विदेहे मेरुपश्चिमे । रत्नाख्या^१ बालहरिणी महिष्य^२चलचक्रिणः ॥७२॥
 बभूव तनयस्तस्य सर्वलोकसमुत्सवः । अभिरामोऽङ्गनामाभ्यां महागुणसमुच्चयः ॥७३॥
 महावैराग्यसम्पन्नं प्रजयाभिमुखं च तम् । ऐश्वर्येऽधोजयच्चक्री कृतवीवाहकं बलात् ॥७४॥
 त्रीणि नारीसहस्राणि सततं गुणवर्तिनम् । लालयन्ति स्म यत्नेन वारिस्थमिव चारणम् ॥७५॥
 वृत्तस्ताभिरसौ मेने रतिसौख्यं विषोपमम् । श्रामण्यं केवलं कर्तुं न लेभे शान्तमानसः ॥७६॥
 असिधाराव्रतं तीव्रं तासां मज्जगतो विभुः । चकार हारकेयूरमुकुटादिविभूषितः ॥७७॥
 स्थितो वरासने श्रीमान् वनिताभ्यः समन्ततः । उपदेशं ददौ जैनधर्मशंसनकारिणम् ॥७८॥

वह श्रीधर मुनिराजकी वन्दनाके लिए शीघ्रतासे सीढ़ियोंपर उतरता चला आ रहा था कि साँपके काटनेसे उसने शरीर छोड़ दिया ॥६५॥ वह मरकर माहेन्द्र नामक चतुर्थ स्वर्गमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत होकर पुष्करद्वीपके चन्द्रादित्य नामक नगरमें राजा प्रकाशयशका पुत्र हुआ । माधवी इसकी माता थी और स्वयं उसका जगद्युति नाम था । यौवनका उदय होनेपर वह अत्यन्त श्रेष्ठ राज्यलक्ष्मीको प्राप्त हुआ ॥६६-६७॥ वह संसारसे अत्यन्त भयभीत रहता था, इसलिए वृद्ध मन्त्री उपदेश दे देकर बड़ी कठिनाईसे उससे राज्य कराते थे ॥६८॥ वृद्ध मन्त्री उससे कहा करते थे कि हे वत्स ! कुलपरम्परासे आये हुए इस सुन्दर राज्यका पालन करो क्योंकि राज्यका पालन करनेसे ही समस्त प्रजा सुखी होती है ॥६९॥ भूषण, राज्यकार्यमें स्थिर रहता हुआ सदा तपस्वी मुनियोंको आहारादिसे सन्तुष्ट रखता था । अन्तमें वह मरकर देवकुरु नामा भोगभूमिमें गया और वहाँसे मरकर ऐशान स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥७०॥ वहाँ परम कान्ति को धारण करनेवाले उस भूषणके जीवने देवीजनोंसे आवृत होकर तथा नानारूपके धारक हो अनेक पत्नियों तक भोगोंका उपभोग किया ॥७१॥ वहाँसे च्युत हो जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें अचल चक्रवर्तीकी बालमृगीके समान सरल, रत्ना नामकी रानीके सच लोगोंको आनन्दित करनेवाला महागुणोंका धारी पुत्र हुआ । वह पुत्र शरीर तथा नाम दोनोंसे ही अभिराम था अर्थात् 'अभिराम' इस नामका धारी था और शरीरसे अत्यन्त सुन्दर था ॥७२-७३॥ अभिराम महावैराग्यसे सहित था तथा दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत था परन्तु चक्रवर्तीने उसका विवाह कर उसे जबर्दस्ती ऐश्वर्यमें-राज्यपालनमें नियुक्त कर दिया ॥७४॥ सदा तीन हजार स्त्रियों, जलमें स्थित हाथीके समान उस गुणी पुत्रका सावधानी पूर्वक लालन करती थीं ॥७५॥ उन सब स्त्रियोंसे विरा हुआ अभिराम, रतिसम्बन्धी सुखको विषके समान मानता था और शान्त चित्त हो केवल मुनिव्रत धारण करनेके लिए उत्कण्ठित रहता था परन्तु पिताकी परतन्त्रतासे उसे वह प्राप्त नहीं कर पाता था ॥७६॥ उन सब स्त्रियोंके बीचमें बैठा तथा हार केयूर मुकुट आदिसे विभूषित हुआ वह अत्यन्त कठिन असिधारा व्रतका पालन करता था ॥७७॥ जिसे चारों ओरसे स्त्रियाँ घेरे हुई थीं ऐसा वह श्रीमान् अभिराम, उत्तम आसनपर बैठकर उन सबके

१. रत्नाख्यान् ज० । २. महिष्याः ज० । ३. विवाहकं म० ।

चिरं संसारकान्तारे भ्राम्यता पुण्यकर्मतः । मानुष्यकमिदं कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा ॥१०६॥
 जानानः को जनः कूपे क्षिपति स्वं महाशयः । विषं वा कः पिबेत् को वा भृगौ निद्रां निपेवते ॥११०॥
 को वा रत्नेप्सया नाग मस्तकं पाणिना स्पृशेत् । विनाशकेषु कामेषु घृतिर्जायेत कस्य वा ॥१११॥
 सुकृतासक्तिरेकैव रक्षाया मुक्तिसुखावहा । जनानां चञ्चलेऽयन्तं जीविते निस्पृहात्मनाम् ॥११२॥
 एवमाद्या गिरः श्रुत्वा परमार्थोपदेशिनीः । उपशान्ता स्त्रियः शक्त्या^१ नियमेषु ररंजिरे ॥११३॥
 राजपुत्रः सुदेहेऽपि स्वकीये रागवर्जितः । चतुर्धादिनिर्वाहारैः कर्मकालुष्यमक्षिणोत् ॥११४॥
 तपसा च विचित्रेण समाहितमना विभुः । शरीरं तनुतां निन्ये ग्रीष्मादित्य इवोदकम् ॥११५॥
 चतुःषष्टिसहस्राणि वर्षाणां स सुदर्शनः । भकम्पितमना वीरस्तपश्चक्रोऽतिदुःसहम् ॥११६॥
 पञ्चप्रणामसंयुक्तं समाधिभरणं श्रितः । अशिश्रियत् सुदेवत्वं कल्पे ब्रह्मोत्तरश्रुतौ ॥११७॥
 भसौ धनदपूर्वस्तु जीवः संसृत्य योनिषु । पोदने नगरे जज्ञे जम्बूभरतदक्षिणे ॥११८॥
^३शकुनाग्निमुखास्तस्य माहनी जन्मकारणम् । नाम्ना मृदुमतिश्चासौ व्यर्थेन परिभाषितः ॥११९॥
 धूताविनयसक्तात्मा स्थयारेणुसमुद्भितः । नानापराधवद्द्वेष्यः स बभूव दुरीहितः ॥१२०॥
 लोकोपालम्भस्त्रिभ्यां पितृभ्यां स निराकृतः । पर्येक्य धरणीं प्राप यौवने पोदनं पुनः ॥१२१॥

लिए जैनधर्मकी प्रशंसा करनेवाला उपदेश देता था ॥१०८॥ वह कहा करता था इस संसाररूपी अटवीमें चिरकालसे भ्रमण करनेवाला प्राणी पुण्यकर्मोदयसे बड़ी कठिनाईसे इस मनुष्य भवकी प्राप्त होता है ॥१०६॥ उदार अभिप्रायको धारण करनेवाला कौन मनुष्य जान-बूझकर अपने आपको कुँएमें गिरता है ? कौन मनुष्य विषपान करता है ? अथवा कौन मनुष्य पहाड़की चोटीपर शयन करता है ? ॥११०॥ अथवा कौन मनुष्य रत्न पानेकी इच्छासे नागके मस्तकको हाथसे छूता है ? अथवा विनाशकारी इन इन्द्रियोंके विषयोंमें किसे कब सन्तोष हुआ है ? ॥१११॥ अत्यन्त चञ्चल जीवनमें जिनकी स्पृहा शान्त हो चुकी है ऐसे मनुष्योंकी जो एक पुण्यमें प्रशंसनीय आसक्ति है वही उन्हें मुक्तिका सुख देनेवाली है ॥११२॥ इत्यादि परमार्थका उपदेश देनेवाली बाणी सुनकर उसकी वे स्त्रियाँ शान्त हो गई थीं तथा शक्ति अनुसार नियमोंका पालन करने लगी थीं ॥११३॥ वह राजपुत्र अपने सुन्दर शरीरमें भी रागसे रहित था इसलिए वेला आदि उपवासोंसे कर्मकी कलुषताको दूर करता रहता था ॥११४॥ जिसका चित्त सदा सावधान रहता था ऐसा वह राजपुत्र विचित्र तपस्याके द्वारा शरीरको उस तरह कृश करता रहता था जिस तरह कि ग्रीष्मऋतुका सूर्य पानीको कृश करता रहता है ॥११५॥ निर्मल सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले उस निश्चलचित्त वीर राजपुत्रने चौंसठ हजार वर्षतक अत्यन्त दुःसह तप किया ॥११६॥ अन्तमें पञ्चपरमेष्ठियोंके नमस्कारसे मुक्त समाधिभरणको प्राप्त हो ब्रह्मोत्तर नामक स्वर्गमें उत्तम देव पर्यायको प्राप्त हुआ है ॥११७॥

अथानन्तर भूषणके भवमें जो उसका पिता धनदसेठ था उसका जीव नाना योनियोंमें भ्रमणकर जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामें स्थित जो पोदनपुर नामका नगर था उसमें अग्निमुख और शकुना नामक ब्राह्मण ब्राह्मणी उसके जन्मके कारण हुए । उन दोनोंके वह मृदुमति नामका पुत्र हुआ । वह मृदुमति निरर्थक नामका धारी था अर्थात् मृदुबुद्धि न होकर कठोर बुद्धि था ॥११८-११९॥ जिसकी बुद्धि जुआ तथा अविनयमें आसक्त रहती थी, जो मार्ग धूलिसे धूसरित रहता था तथा जो नाना प्रकारके अपराध करनेके कारण लोगोंके द्वेषका पात्र था, ऐसा वह अत्यन्त दुष्ट चेष्टाओंका धारक था ॥१२०॥ लोगोंके उलाहनोंसे खिन्न होकर माता-पिताने उसे घरसे निकाल दिया जिससे वह पृथिवीमें जहाँ तहाँ भ्रमण कर यौवनके समय पुनः

प्रविष्टो भवन् किञ्चिजलं पातुमयाचत । अद्दान्माहनी तस्मै जलं निपतदश्रुका ॥१२२॥
 सुशीतलाश्वत्थाम्ना पप्रच्छासौ कुतस्त्वया । रुद्यते करुणायुक्तं इत्युक्ते माहनी जगौ ॥१२३॥
 भद्रं त्वदाकृतिर्बालो मया पतिसमेतया । करुणोत्क्रियतया गेहात् पुत्रको हा निराकृतः ॥१२४॥
 स स्वया भ्राम्यता देशे यदि स्यादीक्षितः क्वचित् । नीलोत्पलप्रतीकाशस्ततो वेदय तद्गतम् ॥१२५॥
 ततोऽसावश्रुमानूचे सवित्रि रुदितं त्यज । समाश्रसिहि सोऽहं ते चिरदुर्लभ्यकः सुतः ॥१२६॥
 शकुनाग्निमुखेनामा पुत्रप्राप्तिमहोत्सवम् । परिप्राप्ता सुखं तस्थौ तत्क्षणप्रसूतस्तनी ॥१२७॥
 तेजस्वी सुन्दरो धीमान्नानाशास्त्रविशारदः । सर्वस्त्रीदङ्मनोहारी धूर्तानां मस्तके स्थितः ॥१२८॥
 दुरोदरे सदा जेता सुविदग्धः कलालयः । कामोपभोगसक्ताऽन्ना रेमे मृदुमतिः पुरे ॥१२९॥
 वसन्तडमरा नाम गणिकानामनुत्तमा । द्वितीया रमणाचारे तस्याभूत् परमेष्ठिता ॥१३०॥
 पितरौ बन्धुभिः सार्द्धं दरिद्रवात्सेन मोचितौ । राजलीलां परिप्राप्तौ लब्धसर्वसमीहितौ ॥१३१॥
 कुण्डलाद्यैरलङ्कारैः पिताभूदतिभासुरः । नानाकार्यगणव्यग्रा माता काञ्चयादिमण्डिता ॥१३२॥
 शशाङ्कनगरे राजगृहं चौधरतोऽन्यदा । विष्टो मृदुमतिः शब्दमश्रुणोत्तान्दिवर्धनम् १३३॥
 शशाङ्कमुखसंज्ञस्य गुरोश्चरणमूलतः । मयाद्य परमो धर्मः श्रुतः शिवसुखप्रदः ॥१३४॥
 विषया विषवहेवि परिणामे सुदारुणाः । तस्माद्भ्रजाम्यहं दीक्षां न शोकं कर्तुं मर्हसि ॥१३५॥

पोदनपुरमें आया ॥१२१॥ वहाँ एक ब्राह्मणके घरमें प्रविष्ट हो उसने पीनेके लिए जल माँगा सो ब्राह्मणीने उसे जल दिया । जल देते समय उस ब्राह्मणोके नेत्रोंसे टप-टप कर आंसू नीचे पड़ रहे थे ॥१२२॥ अत्यन्त शीतल जलसे जिसकी आत्मा संतुष्ट हो गई थी ऐसे उस मृदुमतिने पूछा कि हे दयावति ! तू इस तरह क्यों रो रही है ? उसके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मणीने कहा कि ॥१२३॥ हे भद्र ! मुझने निर्दया हो अपने पतिके साथ मिलकर तेरे ही समान आकृतिवाले अपने छोटेसे पुत्रको बड़े दुःखकी बात है कि घरसे निकाल दिया था ॥१२४॥ सो अनेक देशोंमें घूमते हुए तूने यदि कहीं उसे देखा हो तो उसका पता बता, वह नीलकमलके समान श्यामवर्ण था ॥१२५॥ तदनन्तर अश्रु छोड़ते हुए उसने कहा कि हे माता ! रोना छोड़, धैर्य धारण कर, वह मैं ही तेरा पुत्र हूँ जो चिरकाल बाद सामने आया हूँ ॥१२६॥ शकुना ब्राह्मणी, अपने अग्निमुख नामक पतिके साथ पुत्र प्राप्तिके महोत्सवको प्राप्त हो सुखसे रहने लगी और उसके स्तनोंसे दूध भरने लगा ॥१२७॥ मृदुमति, अत्यन्त तेजस्वी था, सुन्दर था, बुद्धिमान् था, नाना शास्त्रोंमें निपुण था, सर्व स्त्रियोंके नेत्र और मनको हरनेवाला था, धूर्तके मस्तकपर स्थित था अर्थात् उनमें शिरोमणि था ॥१२८॥ वह जुआमें सदा जीतता था, अत्यन्त चतुर था, कलाओंका घर था, और कामोपभोगमें सदा आसक्त रहता था । इस तरह वह नगरमें सदा क्रीड़ा करता रहता था ॥१२९॥ उस पोदनपुर नगरमें एक वसन्तडमरा नामकी वेश्या, समस्त वेश्याओंमें उत्तम थी । जो कामभोगके विषयमें उसकी अत्यन्त इष्ट स्त्री थी ॥१३०॥ उसने अपने माता-पिताको अन्य बन्धुजनोंके साथ-साथ दरिद्रतासे मुक्त कर दिया था जिससे वे समस्त इच्छित पदार्थोंको प्राप्त कर राजा-रानी जैसी लीलाको प्राप्त हो रहे थे ॥१३१॥ उसका पिता कुण्डल आदि अलंकारोंसे अत्यन्त देदीप्यमान था तथा माता मेखला आदि अलंकारोंसे युक्त हो नाना कार्य-कलापमें सदा व्यग्र रहती थी ॥१३२॥ एक दिन वह मृदुमति चोरी करनेके लिए शशाङ्कनामा नगरके राजमहलमें घुसा । वहाँका राजा नन्दिवर्धन विरक्त हो रानीसे कह रहा था सो उसे उसने सुना था ॥१३३॥ उसने कहा कि आज मैंने शशाङ्कमुख नामक गुरुके चरणमूलमें मोक्ष सुखका देनेवाला उत्तम धर्म सुना है ॥१३४॥ हे देवि ! ये विषय विषके समान अत्यन्त दारुण हैं

१. करुणायुक्तं म०, करुणायुक्ते इत्युक्ते इति पदच्छेदः । २. सवितृ म० । ३. वसन्तसमये म० ।
 ४. परमेष्ठिता म० । ५. नन्दिवर्धनम् म० ।

शिखरान्तं नृपं देवीमेवं श्रीनन्दिवर्धनम् । श्रुत्वा मृदुमतिबोधिं निर्मलां समुपाश्रितः ॥१३६॥
 संसारभावसंविग्नः साधोश्चन्द्रमुखश्रुतेः । पादमूलेऽभजद्दीक्षां सर्वग्रन्थविमोचितम् ॥१३७॥
 अतपत् स तपो धीरं विधिं शास्त्रोक्तमाचरन् । भिक्षां^१ स्थात् प्राप्नुवन्किञ्चित् प्रासुकां सत्त्वमान्वितः १३८
 अथ दुर्गगिरेर्मुक्तिं नाम्ना गुणनिधिर्मुनिः । चकार चतुरो मासान्वाप्तुं कान्तमुक्तिदान् ॥१३९॥
 सुरासुरस्तुतो धीरः समाप्तनियमोऽभवत् । उपपात मुनिः कापि विधिना गगनायनः ॥१४०॥
 अधो मृदुमतिर्भिक्षाकरणार्थं सुचेष्टितः । आलोकनगरं प्राप्नो युगमात्राहितेषणः ॥१४१॥
 ददर्श सम्भ्रमेणैतं पौरलोकः सपार्थिवः । शैलाम्नेऽवस्थितः सोऽयमिति ज्ञात्वा सुभक्तिकः ॥१४२॥
 भक्ष्यैर्बहुप्रकारैस्तं तर्पयन्ति स्म पूजितम् । जिह्वेन्द्रियरतो मायां स च भेजे कुकर्मतः ॥१४३॥
 स त्वं यः पर्वतस्याग्रे यतिनाथो व्यवस्थितः । वन्दितस्त्रिदशैरेवमुक्तः सोऽनमयच्छिरः ॥१४४॥
 अज्ञानादभिमानेन दुःखबीजमुपाजितम् । स्वाद्गौरवसक्तेन^३ तेनेदं स्वस्य वञ्चनम् ॥१४५॥
 एतत्तेन गुरोरग्रे न मायाशक्त्यमुद्धृतम् । दुःखभाजनतां येन सम्प्राप्तः परमामिमाम् ॥१४६॥
 ततो मृदुमतिः कालं कृत्वा तं कल्पमाश्रितः । अभिरामोऽमरो यत्र वर्तते महिमान्वितः ॥१४७॥
 पूर्वकर्मानुभावेन तयोरतिनिरन्तरा । त्रिविष्टपेऽभवत् प्रीतिः परमद्विसमेतयोः ॥१४८॥
 देवीजनसमाकीर्णौ सुखसागरवर्तिनौ । बहूनब्धिसर्मांस्तत्र रेभाते तौ स्वपुण्यतः ॥१४९॥

इसलिए मैं दीक्षा धारण करता हूँ तुम शोक करनेके योग्य नहीं हो ॥१३५॥ इस प्रकार रानीको शिखा देते हुए श्री नन्दिवर्धन राजाको सुनकर वह मृदुमति अत्यन्त निर्मल बोधिको प्राप्त हुआ ॥१३६॥ संसारकी दशासे विरक्त हो उसने शशाङ्कमुख नामा गुरुके पादमूलमें सर्व परिग्रह का त्याग करानेवाली जिनदीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ अब वह शास्त्रोक्त विधिका आचरण करता तथा जब कभी प्रासुक भिक्षा प्राप्त करता हुआ क्षमाधर्मसे युक्त हो घोर तप करने लगा ॥१३८॥

अथानन्तर गुणनिधि नामक एक उत्तम मुनिराजने दुर्गगिरि नामक पर्वतके शिखर पर आहारका परित्याग कर चार माहके लिए वर्षायोग धारण किया ॥१३९॥ सुर और असुरोंने जिसकी स्तुति की तथा जो चारण ऋद्धिके धारक थे ऐसे वे धीर वीर मुनिराज चार माहका नियम समाप्त कर कहीं विधिपूर्वक आकाशमार्गसे उड़ गये—विहार कर गये ॥१४०॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाओंके धारक एवं युगमात्र पृथिवी पर दृष्टि डालनेवाले मृदुमति नामक मुनिराज भिक्षा के लिए आलोकनामा नगरमें आये ॥१४१॥ सो राजा सहित नगरवासी लोगोंने यह जानकर कि ये वे ही महामुनि हैं जो पर्वतके अग्रभाग पर स्थित थे उन्हें आते देख चड़े संभ्रमसे भक्ति सहित उनके दर्शन किये ॥१४२॥ तथा उनकी पूजा कर उन्हें नाना प्रकारके आहारोंसे संतुष्ट किया । और जिह्वा इन्द्रियमें आसक्त हुए उन मुनिने पाप कर्मके उदयसे माया धारण की ॥१४३॥ नगरवासी लोगोंने कहा कि तुम वही मुनिराज हो जो पर्वतके अग्रभागपर स्थित थे तथा देवीने जिनकी वन्दना की थी । इस प्रकार कहने पर उन्होंने अपना सिर नीचा कर लिया किन्तु यह नहीं कहा कि मैं वह नहीं हूँ ॥१४४॥ इस प्रकार भोजनके स्वादमें लीन मृदुमति मुनिने अज्ञान अथवा अभिमानके कारण दुःखके बीजस्वरूप इस आत्मवञ्चनाका उपार्जन किया अर्थात् माया की ॥१४५॥ यतश्च उन्होंने गुरुके आगे अपना यह माया शक्त्य नहीं निकाली इसलिए वे इस परम दुःखकी पात्रताको प्राप्त हुए ॥१४६॥ तदनन्तर मृदुमति मुनि मरण कर उसी स्वर्गमें पहुँचे जहाँ कि ऋद्धियों सहित अभिराम नामका देव रहता था ॥१४७॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे परम ऋद्धिको धारण करनेवाले उन दोनों देवोंकी स्वर्गमें अत्यन्त प्रीति थी ॥१४८॥ देवियोंके समूहसे

१. भिक्षां प्राप्नुवन् किञ्चित्प्रासुकां स क्षमान्वितः म० । २. नत्र म० । ३. तनु प० । ३. तेनेदं म० ।

४. समास्तत्र ज० ।

च्युतो मृदुमतिस्तस्मात् पुण्यराशिपरिचये । मायावशेषकर्माक्तो जम्बूद्वीपं समागतः ॥१५०॥
 उच्छुश्रिखरो नाम्ना निकुञ्ज इति भूधरः । अटव्यां तस्य शङ्कव्यां गहनायां विशेषतः ॥१५१॥
 अयं जीभूतसंघातसंकाशो वारपोऽभवत् । क्षुब्धार्णवसमस्वानो गतिनिश्चितमाहृतः ॥१५२॥
 अत्यन्तभैरवाकारः कोपकालेऽभिमानवान् । शशाङ्काकृतिसदंष्ट्रो दन्तिराजगुणान्वितः ॥१५३॥
 विजयादिमहानागमोत्रजः परमद्युतिः । द्विषश्चैरावतस्येव स्वच्छन्दकृतविग्रहः ॥१५४॥
 सिंहव्याघ्रमहावृत्तगण्डशैलविनाशकृत् । आसतां मानुषास्तावद्दुर्महः खेचरैरपि ॥१५५॥
 समस्तश्वापदत्रासं कुर्वन्नामोदमात्रतः । रमते गिरिकुञ्जेषु नानापञ्चवहारिषु ॥१५६॥
 अङ्गोभ्ये विमले नानाकुसुमैरुपशोभिते । मानसे सरसि क्रीडां कुरुतेऽनुचरान्वितः ॥१५७॥
 विलासं सेवते सारं कैलासे सुकभेक्षिते । मन्दाकिन्याः मनोज्ञेषु हृदेषु च परः सुखी ॥१५८॥
 अन्येषु च नगारण्यप्रदेशेष्वतिहारिषु । भजते क्रीडनं कान्तं बान्धवानां महोदयः ॥१५९॥
 अनुवृत्तिप्रसक्तानां करेणूनां स भूरिभिः । सहस्रैः सङ्गतः सौर्यं भजते यूथपोचितम् ॥१६०॥
 इतस्ततश्च विचरन् द्विरदौघसमावृतः । शोभते पक्षिसङ्घातैर्विनतानन्दनो यथा ॥१६१॥
 घनाघनघनस्वानो दाननिर्भरपर्वतः । लङ्घन्द्रेणेक्षितः सोऽयमासीद्वारणसत्तमः ॥१६२॥
 विद्यापराक्रमोप्रेण तेनायं साधितोऽभवत् । त्रिलोककण्टकाभिर्यां प्रापितश्चाहलक्षणः ॥१६३॥

युक्त तथा सुखरूपी सागरमें निमग्न रहनेवाले वे दोनों देव अपने पुण्योदयसे अनेक सागरपर्यन्त उस स्वर्गमें क्रीड़ा करते रहे ॥१४६॥

तदनन्तर मृदुमतिकी जीव, पुण्यराशिके क्षीण होने पर वहाँसे च्युत हो मायाचारके दोषसे दूषित होनेके कारण जम्बूद्वीपमें आया ॥१५०॥ जम्बूद्वीपमें ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सहित निकुञ्ज नामका एक पर्वत है उस पर अत्यन्त सघन शल्लकी नामक वन है ॥१५१॥ उसी वनमें यह मेघ-समूहके समान हाथी हुआ है । इसका शब्द क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान है, इसने अपनी गतिसे वायुको जीत लिया है, क्रोधके समय इसका आकार अत्यन्त भयंकर हो जाता है, यह महा अभिमानी है, इसकी दाँदें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हैं। यह गजराजके गुणोंसे सहित है, विजय आदि महागजराजोंके वंशमें उत्पन्न हुआ है, परम दीप्तिको धारण करनेवाला है, मानो ऐरावत हाथीसे द्वेष ही रखता है, स्वेच्छानुसार युद्ध करनेवाला है, सिंह व्याघ्र बड़े-बड़े वृत्त तथा छोड़ी मोटी अनेक गोल चट्टानोंका विनाश करने वाला है, मनुष्योंकी बात जाने दो विद्याधरोंके द्वारा भी इसका पकड़ा जाना सरल नहीं है, यह अपनी गन्धमात्रसे समस्त वन्य पशुओंको भय उत्पन्न करता है तथा नाना प्रकारके पल्लवोंसे युक्त पहाड़ी निकुञ्जोंमें क्रीड़ा करता रहता है । ॥१५२-१५६॥ जिसे कोई क्षोभित नहीं कर सकता तथा जो नाना प्रकारके फूलोंसे सुशोभित है ऐसे मानस सरोवरमें यह अपने अनुयायियोंके साथ क्रीड़ा करता है ॥१५७॥ यह अनायास दृष्टिमें आये हुए कैलास पर्वत पर तथा गङ्गा नदीके मनोहर हृदयोंमें अत्यन्त सुखी होता हुआ श्रेष्ठ शोभाको प्राप्त होता है ॥१५८॥ अपने बन्धुजनोंके महाभ्युदयको बढ़ानेवाला यह हाथी इनके सिवाय अत्यन्त मनोहर पहाड़ी वन प्रदेशोंमें सुन्दर क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ अनुकूल आचरण करनेमें तत्पर रहनेवाली हजारों हथिनियोंके साथ मिलकर यह यूथपतिके योग्य सुखका उपभोग करता है ॥१६०॥ हाथियोंके समूहसे घिरा हुआ यह हाथी जब यहाँ-वहाँ विचरण करता है तब पक्षियोंके समूहसे आवृत गरुड़के समान सुशोभित होता है ॥१६१॥

जिसकी गर्जना मेघगर्जनाके समान सघन है तथा जो दानरूप भरनोंके निकलनेके लिए मानो पर्वत ही है ऐसा यह उत्तम गजराज लंकाके धनी रावणके द्वारा देखा गया अर्थात् रावणने इसे देखा ॥१६२॥ तथा विद्या और पराक्रमसे उग्र रावणने इसे वशीभूत किया एवं सुन्दर-सुन्दर

अप्सरोभिः समं स्वर्गे प्रक्रीड्य सुचिरं सुखम् । करिणीभिः समं क्रीडामकरोत् सुकरी पुनः ॥१६४॥
 ईदृशी कर्मणां शक्तिर्यजीवाः सर्वयोनिषु । वस्तुतो दुःखयुक्तासु प्राप्नुवन्ति परां रतिम् ॥१६५॥
 च्युतः सन्नभिरामोऽपि साकैतानगरे नृपः । भरतोऽयमभूद्धीमान् सद्धर्मगतमानसः ॥१६६॥
 विलीनमोहनचयः सोऽयं भोगपराङ्मुखः । भ्रामण्यमाहते कर्तुं पुनर्भवनिवृत्तये ॥१६७॥
 गोदण्डमार्गसदृशो यौ मरीचिप्रवृत्तिते । समये दीक्षितावास्तां परित्यक्तमहाव्रतौ ॥१६८॥
 तावेतौ मानिनौ भानुशशाङ्कोदयसंज्ञितौ । संसारदुःखितौ भ्रान्तौ भ्रातरौ कर्मचेष्टितौ ॥१६९॥
 कृतस्य कर्मणो लोके सुखदुःखविधायितः । जना निस्तपसोऽवरथं प्राप्नुवन्ति फलोदयम् ॥१७०॥
 चन्द्रः कुलङ्करो यश्च समाधिभरणां मृगः । सोऽयं नरपतिर्जातो भरतः साधुमानसः ॥१७१॥
 आदिग्यश्रुतिविप्रश्च कृष्णयुः कुरङ्गकः । सम्प्राप्तो गजतामेष पापकर्मानुभावतः ॥१७२॥
 प्रमृग्य बन्धनस्तम्भं बलवानुद्धतः परम् । भरतालोकनात् स्मृत्वा पूर्वजन्म शर्मं गतः ॥१७३॥

शार्दूलचिक्रीडितम्

ज्ञात्वैवं गतिमागतिं च विविधां बाह्यं सुखं वा ध्रुवं
 कर्मारण्यमिदं विहाय विषमं धर्मं रमध्वं बुधाः ।
 मानुष्यं समवाप्य यैर्जिनवरप्रोक्तो न धर्मः कृत-
 स्ते संसारसुहृत्त्वमभ्युपगताः स्वार्थस्य दूरे स्थिताः ॥१७४॥

लक्षणोंसे युक्त इस हाथीका त्रिलोककण्ठक नाम रखा ॥१६३॥ यह पूर्वभवमें स्वर्गमें अप्सराओंके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा कर सुखी हुआ अब हस्तिनियोंके साथ क्रीड़ा कर सुखी हो रहा है ॥१६४॥ यथार्थमें कर्मोंकी ऐसी ही विचित्र शक्ति है कि जीव, दुःखोंसे युक्त नाना योनियोंमें परम प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१६५॥ अभिरामका जीव भी च्युत हो अयोध्या नगरीमें राजा भरत हुआ है । यह भरत अत्यन्त बुद्धिमान् है तथा समीचीन धर्ममें इसका हृदय लग रहा है ॥१६६॥ जिसके मोहका समूह विलीन हो चुका है तथा जो भोगोंसे विमुख है ऐसा यह भरत पुनर्भव दूर करनेके लिए मुनि दीक्षा धारण करना चाहता है ॥१६७॥ श्रीऋषभदेवके समय ये दोनों सूर्योदय और चन्द्रोदय नामक भाई थे तथा उन्हीं ऋषभदेवके साथ जिनधर्ममें दीक्षित हुए थे किन्तु बादमें अभिमानसे प्रेरित हो महाव्रत छोड़कर मरीचिके द्वारा चलाये हुए परिव्राजक मतमें दीक्षित हो गये जिसके फलस्वरूप संसारके दुःखसे दुःखी हो कर्मोंका फल भोगते हुए चिरकाल तक संसारमें भ्रमण करते रहे ॥१६८-१६९॥ सो ठीक ही है क्योंकि संसारमें जो मनुष्य तप नहीं करते हैं वे अपने द्वारा किये हुए सुख दुःखदायी कर्मका फल अवश्य ही प्राप्त करते हैं ॥१७०॥ जो चन्द्रोदयका जीव पहले कुलंकर और उसके बाद समाधि मरण करनेवाला मृग हुआ था वही क्रम-क्रमसे उत्तम हृदयको धारण करनेवाला राजा भरत हुआ है ॥१७१॥ और सूर्योदय ब्राह्मणका जीव मरकर मृग हुआ फिर क्रम-क्रमसे पापकर्मके उदयसे इस हस्ती पर्यायको प्राप्त हुआ है ॥१७२॥ अत्यन्त उत्कट बलको धारण करनेवाला यह हाथी पहले तो बन्धनका खम्भा उखाड़ कर शोभको प्राप्त हुआ परन्तु बादमें भरतके देखनेसे पूर्वभवका स्मरणकर शान्त हो गया ॥१७३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे विद्वज्जनो ! इस तरह नाना प्रकारकी गति-आगति तथा बाह्य सुख और दुःखको जानकर इस विषम कर्म अटवीको छोड़ धर्ममें रमण करो क्योंकि जिन्होंने मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जिनेन्द्र कथित धर्म धारण नहीं किया है वे संसार-भ्रमणको प्राप्त हो

१. यो म० । २. मरीचिः प्रवर्तते म० । ३. रमणी मृगः ज० ।

आर्यागोतिवृत्तम्

जिनवरवदनत्रिनिर्गतमुपलभ्य शिवैकदानतःपरमतुलम् ।

निर्जितरत्रिरुचिसुकृतं कुरुत यतो यात निर्मलं परमपदम् ॥१७५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणान्चार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतत्रिभुवनालङ्कारसमाध्यनुभवानुकीर्त्तनं
नाम पञ्चाशीतित्तमं पर्व ॥८५॥

आत्म-हितसे दूर रहते हैं ॥१७४॥ हे भव्यजनो ! जो श्री जिनेन्द्र देवके मुखारविन्दसे प्रकट हुआ है तथा मोक्षके देनेमें तत्पर है ऐसे अनुपम जिनधर्मको पाकर सूर्यकी कान्तिको जीतने-वाला पुण्य संचय करो जिससे निर्मल परम पदको प्राप्त हो सको ॥१७५॥

इस प्रकार आर्षे नामते प्रसिद्ध रविषेणान्चार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरत तथा त्रिलोकमण्डन हाथीके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला पचीसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥८५॥

षडशीतितमं पर्व

साधोस्तद्वचनं श्रुत्वा सुपवित्रं तमोऽपहम् । संसारसागरे घोरे नानादुःखनिवेदनम् ॥१॥
 विस्मयं परमं प्राप्ता भरतानुभवोज्ज्वलम् । पुस्तकर्मगतैवाऽऽसीत् सा सभा चेष्टितोऽभिला ॥२॥
 भरतोऽथ समुत्थाय प्रचलद्धारकुण्डलः । प्रतापप्रथितः श्रीमान् देवेन्द्रसमविभ्रमः ॥३॥
 बहन् संवेगमुत्तुङ्गं प्रह्लाकायो महामनाः । रभसान्वितमासाद्य बद्धपाण्यब्जकुङ्कुमलः ॥४॥
 जानुसर्पाद्वितक्षोणिः प्रणिपत्य सुनीश्वरम् । संसारवासखिन्नोऽसौ अगाद् सुमनोहरम् ॥५॥
 नाथ योनिसहस्रेषु सङ्कटेषु चिरं भ्रमन् । महाध्वश्रमखिन्नोऽहं यच्छ मे मुक्तिकारणम् ॥६॥
 उद्यमानाय सम्भूतिमरणोत्तरङ्गया । मह्यं संसृतिर्नद्या त्वं हस्तालम्बकरो भव ॥७॥
 इत्युक्त्वा त्यक्तनिःशेषप्रन्थपर्यङ्कवन्धगः । स्वकरेणाऽकरोत्कुञ्जं महासर्वसमन्वितः ॥८॥
 परं सम्यक्त्वमासाद्य महाव्रतपरिग्रहः । दीक्षितो भरतो जातस्तच्छणेन मुनिः परः ॥९॥
 साधु साध्विति देवानामन्तरिक्षेऽभवत् स्वनः । पेतुः पुष्पाणि दिव्यानि भरते मुनितामिते ॥१०॥
 सहस्रमधिकं राज्ञां भरतस्यानुरागतः । क्रमागतां श्रियं त्यक्त्वा श्रामण्यं समशिश्रियत् ॥११॥
 अनुग्रहाक्तयः केचिन्नमस्कृत्य मुनिं जनाः । उपासाञ्चक्रिरे धर्मं विधिनागारसङ्गतम् ॥१२॥
 सम्भ्रान्ता केकया वाष्पदुर्दिनाऽऽकुलचेतना । धावन्ती पतिता भूमौ व्यामोहं च समागता ॥१३॥

अथानन्तर जो अत्यन्त पवित्र थे, अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले थे, संसाररूपी घोर सागरके नाना दुःखोंका निरूपण करनेवाले थे और भरतके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाले थे ऐसे महामुनि श्री देशभूषण केवलीके उक्त वचन सुन कर वह समस्त सभा चित्रलिखितके समान निश्चल हो गई ॥१-२॥ तदनन्तर जिनके हार और कुण्डल हिल रहे थे, जो प्रतापसे प्रसिद्ध थे, श्रीमान् थे, इन्द्रके समान विभ्रमको धारण करनेवाले थे, अत्यधिक संवेगके धारक थे, जिनका शरीर नम्रीभूत था, मन उदार था, जिन्होंने हस्तरूपी कमलकी बोंडियोंको बाँध रक्खा था और जो संसार सम्बन्धी निवाससे अत्यन्त खिन्न थे ऐसे भरतने पृथिवी पर घुटने टेक कर मुनिराज को नमस्कार कर इस प्रकारके अत्यन्त मनोहारी वचन कहे ॥३-५॥ कि हे नाथ ! मैं संकटपूर्ण हजारों योनियोंमें चिरकालसे भ्रमण करता हुआ मार्गके महाश्रमसे खिन्न हो चुका हूँ अतः मुझे मोक्षका कारण जो तपश्चरण है वह दीजिये ॥६॥ हे भगवन् ! मैं जन्म-मरण रूपी ऊँची लहरोंसे युक्त संसाररूपी नदीमें चिरकालसे बहता चला आ रहा हूँ सो आप मुझे हाथका सहारा दीजिये ॥७॥ इस प्रकार कह कर भरत समस्त परिग्रहका परित्याग कर पर्यङ्कासनसे स्थित हो गये तथा महाधैर्यसे युक्त हो उन्होंने अपने हाथसे केश लोंच कर डाले ॥८॥ इस प्रकार परम सम्यक्त्वको पाकर महाव्रतको धारण करनेवाले भरत तत्क्षणमें दीक्षित हो उत्कृष्ट मुनि हो गये ॥९॥ उस समय भरतके मुनि अवस्थाको प्राप्त होनेपर आकाशमें देवोंका धन्य धन्य यह शब्द हुआ तथा दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हुई ॥१०॥ भरतके अनुरागसे प्रेरित हो कुञ्ज अधिक एक हजार राजाओंने क्रमागत राज्यलक्ष्मीका परित्याग कर मुनिदीक्षा धारण की ॥११॥ जिनकी शक्ति हीन थी ऐसे कितने ही लोगोंने मुनिराजको नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म धारण किया ॥१२॥ जो निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा कर रही थी, तथा जिसकी चेतना अत्यन्त आकुल थी ऐसी भरतकी माता केकया घबड़ा कर उनके पीछे-पीछे दौड़ती जा रही थी सो बीचमें ही पृथिवी

१. बद्धः पाण्यब्ज -म० । २. -सन्नोऽहं ख०, ज० । ३. नद्यास्त्वं म०, ज० । ४. हस्तलम्ब -म० ।

सुतप्रीतिभराक्रान्ता ततोऽसौ निश्चलाङ्गिका । गोशीर्षादिपथःसेकैरपि संज्ञामुपैति न ॥१३॥
व्यक्तचेतनतां प्राप्य चिराय स्वयमेव सा । अरोदीत् करुणं धेनुर्वत्सेनेव विद्योजिता ॥१५॥
हा मे वत्स मनोह्राद् सुविनीत गुणाकर । क प्रयातोऽसि वचनं प्रयच्छाङ्गानि धारय ॥१६॥
त्वया पुत्रक संत्यक्ता दुःखसागरवत्तिनी । कथं स्थास्यामि शोकार्त्ता हा किमेतदनुष्ठितम् ॥१७॥
कुर्वन्तीति समाक्रन्दं हलिना चक्रिणा च सा । आनीयत समास्वासं वचनैरतिसुन्दरैः ॥१८॥
पुण्यवान् भरतो विद्वानग्र शोकं परित्यज । आवां ननु न किं पुत्री तवाज्ञाकरणोद्यतौ ॥१९॥
इति कातरतां कृच्छ्रास्याजिता शान्तमानसा । सपत्नीवाक्यजातैश्च सा बभूव विशोकिका ॥२०॥
विबुद्धा चाकरोन्नन्दामात्मनः शुद्धमानसा । धिक् स्त्रीकलेवरमिदं बहुदोषपरिप्लुतम् ॥२१॥
अत्यन्ताशुचिबीभत्सं नगरीनिर्भरोपमम् । करोमि कर्म तद् येन विमुष्ये पापकर्मतः ॥२२॥
पूर्वमेव जिनोक्तेन धर्मेणाऽसौ सुभाविता । महासंवेगसम्पन्ना सितैकवसनान्विता ॥२३॥
सकाशे पृथिवीमत्याः सह नारीशतैस्त्रिभिः । दीक्षां जग्राह सम्यक्त्वं धारयन्ती सुनिर्मलम् ॥२४॥

उपजातिः

त्यक्त्वा समस्तं गृह्णधर्मजालं प्राप्याऽऽर्यिकाधर्ममनुत्तमं सा ।
रराज मुक्ता घनसङ्गमेन शशाङ्कलेखेव कलङ्कहीना ॥२५॥
इतोऽभवद्भिक्षुगणः सुतेजास्तथाऽऽर्यिकाणां प्रचयोऽन्यतोऽभूत् ।
तदा सदो भूरिसरोजयुक्तसरः समं तन्नवति स्म कान्तम् ॥२६॥

पर गिर कर मूर्छित हो गई थी ॥१३॥ तदनन्तर जो पुत्रकी प्रीतिके भारसे युक्त थी, तथा जिसका शरीर निश्चल पड़ा हुआ था ऐसी वह केकया गोशीर्ष आदि चन्दनके जलके सींचने पर भी चेतनाको प्राप्त नहीं हो रही थी ॥१४॥ बहुत समय बाद जब वह स्वयं चेतनाको प्राप्त हुई तब बल्लुड़ेसे रहित गायके समान करुण रोदन करने लगी ॥१५॥ वह कहने लगी कि हाय मेरे वत्स ! तू मनको आह्लादित करनेवाला था, अत्यन्त विनीत था और गुणोंकी खान था । अब तू कहाँ चला गया ? उत्तर दे और मेरे अङ्गोंको धारण कर ॥१६॥ हाय पुत्रक ! तेरे द्वारा छोड़ी हुई मैं दुःखरूपी सागरमें निमग्न हो शोकसे पीड़ित होती हुई कैसे रहूँगी ? यह तूने क्या किया ? ॥१७॥ इस प्रकार विलाप करती हुई भरतकी माताको राम और लक्ष्मणने अत्यन्त सुन्दर वचनोंसे सन्तोष प्राप्त कराया ॥१८॥ उन्होंने कहा—हे माता ! भरत बड़ा पुण्यवान् और विद्वान् है, तू शोक छोड़ । क्या हम दोनों तेरे आज्ञाकारी पुत्र नहीं हैं ? ॥१९॥ इस प्रकार जिससे बड़े भयसे उत्पन्न कातरता छुड़ाई गई थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध था, ऐसी वह केकया सपत्नीजनोंके वचनोंसे शोकरहित हो गई थी ॥२०॥ वह शुद्धहृदया जब सचेत हुई तब अपने आपकी निन्दा करने लगी । वह कहने लगी कि स्त्रीके इस शरीरको धिक्कार हो जो अनेक दोषोंसे आच्छादित है ॥२१॥ अत्यन्त अपवित्र है, ग्लानिपूर्ण है, नगरी निर्भर अर्थात् गटरके प्रवाहके समान है । अब तो मैं वह कार्य करूँगी जिसके द्वारा पापकर्मसे मुक्त हो जाऊँगी ॥२२॥ वह जिनेन्द्र प्रणीत धर्मसे तो पहले ही प्रभावित थी, इसलिए महान् वैराग्यसे प्रयुक्त हो एक सफेद साड़ीसे युक्त हो गई ॥२३॥ तदनन्तर निर्मल सम्यक्त्वको धारण करती हुई उसने तीन सौ स्त्रियोंके साथ साथ पृथिवीमती नामक आर्याके पास दीक्षा ग्रहण कर ली ॥२४॥ समस्त गृह्णधर्मके जालको छोड़ कर तथा आर्यिकाका उत्कृष्ट धर्म धारण कर वह केकया मेघके संगमसे रहित निष्कलंक चन्द्रमाकी रेखाके समान सुशोभित हो रही थी ॥२५॥ उस समय देशभूषण मुनिराजकी सभामें एक ओर तो उत्तम तेजको धारण करनेवाले मुनियोंका समूह विद्यमान था और दूसरी ओर

एवं जनस्तत्र बभूव नाना-व्रतक्रियासङ्गपवित्रचित्तः ।
समुत्तते भव्यजनस्य कस्य रवौ प्रकाशेन न युक्तिरस्ति ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतकेक्यानिष्कमणाभिधानं
नाम षडशीतितमं पर्व ॥२६॥



आर्यिकाओंका समूह स्थित था इसलिए वह सभा अत्यधिक कमल और कमलिनियोंसे युक्त सरोवरके समान सुन्दर जान पड़ती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह वहाँ जितने मनुष्य विद्यमान थे उन सभीके चित्त नाना प्रकारकी व्रत सम्बन्धी क्रियाओंके संगसे पवित्र हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि सूर्योदय होने पर कौन भव्य जन प्रकाशसे युक्त नहीं होता ? अर्थात् सभी होते हैं ॥२७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरत और केक्याकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला छियासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥



सप्ताशीतितमं पर्व

अथ साधुः प्रशान्तात्मा लोकत्रयविभूषणः । अणुव्रतानि मुनिना विधिना परिलम्बितः ॥१॥
 सम्यग्दर्शनसंयुक्तः प्रज्ञानः सत्क्रियोद्यतः । सागारधर्मसम्पूर्णो मतङ्गजवरोऽभवत् ॥२॥
 पञ्चमासादिभिर्भक्तश्च्युतैः^१ पत्रादिभिः स्वयम् । शुष्कैः स पारणां चक्रे दिनपूर्णेकवेलिकाम् ॥३॥
 गजः संसारभीतोऽयं सञ्चेष्टितपरायणः । अर्च्यमानो जनैः क्षोणीं विजहार विशुद्धिमाद् ॥४॥
 लड्डुकान् मण्डकान् मृष्टान्निविधाश्चारुपूरिकाः । पारणासमये तस्मै ससत्कारं ददौ जनः ॥५॥
 तनुकर्मशरीरोऽसौ संवेगाऽऽलानसंयतः । उग्रं चत्वारि वर्षाणि तपश्चक्रे यमाङ्कुशः ॥६॥
 स्वैरं स्वैरं परित्यज्य मुक्तिमुग्रतपा गजः । सल्लेखनां परिप्राप्य ब्रह्मोत्तरमशिश्चियत् ॥७॥
 वराङ्गनासमाकोर्णो हारकुण्डलमण्डितः । पूर्वं सुरसुखं प्राप्नो गजः पुण्यानुभावतः ॥८॥
 भरतोऽपि महातेजः महाव्रतधरो विभुः । धराधरगुरुस्त्यक्तबाह्यान्तरपरिग्रहः ॥९॥
 व्युत्सृष्टाङ्गो महाधीरस्तिष्ठन्नस्तमिते रवौ । विजहार यथान्यायं चतुराराधनोद्यतः ॥१०॥
 अविरुद्धो यथा वायुर्भोगेन्द्र इव निर्भयः । अकूपार इवाशोभ्यो निष्कम्पो मन्दरो यथा ॥११॥
 जातरूपधरः सत्यकवचः क्षान्तिसायकः । परोपहजयोद्युक्तस्तपःसंयत्यवर्तत ॥१२॥
 समः शत्रौ च मित्रे च समानः सुखदुःखयोः । उत्तमः श्रमणः सोऽभूत् समर्थास्तृणरत्नयोः ॥१३॥

अथानन्तर जिसकी आत्मा अत्यन्त शान्त थी ऐसे उस उत्तम त्रिलोकमण्डन हाथीको मुनिराजने विधिपूर्वक अणुव्रत धारण कराये ॥१॥ इस तरह वह उत्तम हाथी, सम्यग्दर्शनसे युक्त, सम्यग्ज्ञानका धारी, उत्तम क्रियाओंके आचरणमें तत्पर और गृहस्थ धर्मसे सहित हुआ ॥२॥ वह एक पत्र अथवा एक मास आदिका उपवास करता था तथा उपवासके बाद अपने आप गिरे हुए सूखे पत्तोंसे दिनमें एक बार पारणा करता था ॥३॥ इस तरह जो संसारसे भयभीत था, उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेमें तत्पर था, और अत्यन्त विशुद्धिसे युक्त था ऐसा वह गजराज मनुष्योंके द्वारा पूजित होता हुआ पृथिवी पर भ्रमण करता था ॥४॥ लोग पारणाके समय उसके लिए बड़े सत्कारके साथ मीठे-मीठे लाडू माँडे और नाना प्रकारकी पूरियाँ देते थे ॥५॥ जिसके शरीर और कर्म—दोनों ही अत्यन्त क्षीण हो गये थे, जो संवेग रूपी खम्भेसे बँधा हुआ था, तथा यम ही जिसका अंकुश था ऐसे उस हाथीने चार वर्ष तक उग्र तप किया ॥६॥ जो धीरे-धीरे भोजनका परित्याग कर अपने तपश्चरणको उग्र करता जाता था ऐसा वह हाथी सल्लेखना धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्गको प्राप्त हुआ ॥७॥ वहाँ उत्तम स्त्रियोंसे सहित तथा हार और कुण्डलोंसे मण्डित उस हाथीने पुण्यके प्रभावसे पहले ही जैसा देवोंका सुख प्राप्त किया ॥८॥

इधर जो महातेजके धारक थे, महाव्रती थे, विभु थे, पर्वतके समान स्थिर थे, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहके त्यागी थे, शरीरकी ममतासे रहित थे, महाधीर वीर थे, जहाँ सूर्य डूब जाता था वहीं बैठ जाते थे, और चार आराधनाओंकी आराधनामें तत्पर थे ऐसे भरत महामुनि न्याय-पूर्वक विहार करते थे ॥९-१०॥ वे वायुके समान बन्धनसे रहित थे, सिंहके समान निर्भय थे, समुद्रके समान क्षोभसे रहित थे, और मेरुके समान निष्कम्प थे ॥११॥ जो दिग्गम्बर मुद्राको धारण करनेवाले थे, सत्यरूपी कवचसे युक्त थे, क्षमारूपी वाणोंसे सहित थे और परीषहोंके जीतनेमें सदा तत्पर रहते थे ऐसे वे भरतमुनि सदा तपरूपी युद्धमें विद्यमान रहते थे ॥१२॥ वे शत्रु और मित्र, सुख और दुःख तथा तृण और रत्नमें समान रहते थे । इस तरह वे समबुद्धिके

१. च्युतः म० । २. तपोरूपसंग्रामे ।

सूचीनचित्तमार्गेषु आभ्यस्तः शास्त्रपूर्वकम् । शत्रुस्थानेषु तस्याभून्नुरकुलचारिता ॥१४॥
अत्यन्तप्रलयं कृत्वा मोहनीयस्य कर्मणः । अवाप केवलज्ञानं लोकालोकावभासनम् ॥१५॥

आर्यागोतिः

ईदृक्काहात्म्ययुतः काले समनुक्रमेण विगतरजस्कः ।
यदभीप्सितं तदेष स्थानं प्राप्तो यतो न भूयः पातः ॥१६॥
भरतर्षेरिदमनघं सुचरितमनुर्कात्तयेन्नरो यो भक्त्या ।
स्वायुरियत्तिं स कीर्त्तिं यशो बलं धनविभूतिमारोग्यं च ॥१७॥
सारं सर्वकथानां परममिदं चरितमुन्नतगुणं शुभ्रम् ।
शृण्वन्तु जना भक्त्या निर्जितरवितेजसो भवन्ति यदाशु ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतनिर्वाणगमनं नामसप्ताशीतितमं पर्व ॥८७॥

धारक उत्तम मुनि थे ॥१३॥ वे डाभकी अनियोंसे व्याप्त मार्गमें शास्त्रानुसार ईर्यासमितिसे चलते थे तथा शत्रुओंके स्थानोंमें भी उनका निर्भय विहार होता था ॥१४॥ तदनन्तर मोहनीय कर्मका अत्यन्त प्रलय—समूल न्य कर वे लोक-अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त हुए ॥१५॥ जो इस प्रकारकी महिमासे युक्त थे तथा अनुक्रमसे जिन्होंने कर्मरजको नष्ट किया था ऐसे वे भरतमुनि उस अभीष्ट स्थान—सुक्तिस्थानको प्राप्त हुए कि जहाँसे फिर लौटकर आना नहीं होता ॥१६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य भरतमुनिके इस निर्मल चरितको भक्तिपूर्वक कहता-सुनता है वह अपनी आयु पर्यन्त कीर्त्ति, यश, बल, धनवैभव और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७॥ यह चरित्र सर्व कथाओंका उत्तम सार है, उन्नत गुणोंसे युक्त है और उज्ज्वल है । हे भव्यजनो ! इसे तुम सब ध्यानसे सुनो जिससे शीघ्र ही सूर्यके तेजको जीतनेवाले हो सको ॥१८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरतके निर्वाणका कथन करनेवाला सप्तासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८७॥

अष्टाशीतितमं पर्व

भरतेन समं वीरा निष्क्रान्ता ये महानृपाः । निःस्पृहा स्वशरीरेऽपि प्रव्रज्या समुपागताः ॥१॥
 प्राप्तानां दुर्लभं मार्गं तेषां सुपरमात्मनाम् । कीर्त्तयिष्यामि केवाञ्छिञ्चामानि शृणु पार्थिव ॥२॥
 सिद्धार्थः सिद्धसाध्यार्थो रतिदो रतिवर्द्धनः । अम्बुवाहरथो जाम्बूनदः शल्यः शशाङ्कपात् ॥३॥
 विरसो नन्दनो नन्द आनन्दः सुमतिः सुधीः । सदाश्रयो महाबुद्धिः सूर्यारो जनवल्लभः ॥४॥
 इन्द्रध्वजः श्रुतधरः सुचन्द्रः पृथिवीधरः । अलकः सुमतिः क्रोधः कुन्दरः सत्ववान्हरिः ॥५॥
 सुमित्रा धर्ममित्रायः सम्पूर्णन्दुः प्रभाकरः । नद्युषः सुन्दनः शान्तिः प्रियधर्मादयस्तथा ॥६॥
 विशुद्धकुलसम्भूताः सदाचारपरायणाः । सद्ब्रह्माधिकसंख्याना भुवनाख्यातचेष्टिताः ॥७॥
 एते हस्त्यश्वपादात् प्रवालस्वर्णमौक्तिकम् । अन्तःपुरं च राज्यं च बहुजीर्णतृणं यथा ॥८॥
 महाव्रतधराः शान्ता नानालब्धिसमागताः । आत्मध्यानानुरूपेण यथायोग्यं पदं धिताः ॥९॥
 निष्क्रान्ते भरते तस्मिन् भरतोपमचेष्टिते । मेने शून्यकमारासान् लक्ष्मणः स्मृततद्गुणः ॥१०॥
 शोकाकुलितचेतस्को विषादं परमं भजन् । सूक्तारमुखरः बलान्तलोचनेन्दोवरश्रुतिः ॥११॥
 विराधितभुजस्तम्भकृतावष्टम्भविग्रहः । तथापि प्रज्वलन् लक्ष्म्या मन्दवर्णमत्रोच्चत ॥१२॥
 अधुना वसन्ते कासौ भरतो गुणभूषणः । तरुणेन सता येन शरीरे प्रीतिरुज्जिता ॥१३॥
 इष्टं बन्धुजनं त्यक्त्वा राज्यं च त्रिदशोपमम् । सिद्धार्थी स कथं भेजे जैनधर्मं सुदुर्धरम् ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अपने शरीरमें भी स्पृहा नहीं रखनेवाले जो बड़े-बड़े वीर राजा भरतके साथ दीक्षाको प्राप्त हुए थे तथा अत्यन्त दुर्लभ मार्गको प्राप्त हो जिन्होंने परमात्म पद प्राप्त किया था ऐसे उन राजाओंमेंसे कुछके नाम कहता हूँ सो सुनो ॥१-२॥ जिसके समस्त साध्य पदार्थ सिद्ध हो गये थे ऐसा सिद्धार्थ, रतिको देनेवाला रतिवर्द्धन, मेघरथ, जाम्बूनद, शल्य, शशाङ्कपाद् (चन्द्रकिरण), विरस, नन्दन, नन्द, आनन्द, सुमति, सुधी, सदाश्रय, महाबुद्धि, सूर्यार, जनवल्लभ, इन्द्रध्वज, श्रुतधर, सुचन्द्र, पृथिवीधर, अलक, सुमति, क्रोध, कुन्दर, सत्ववान्, हरि, सुमित्र, धर्ममित्राय, पूर्णचन्द्र, प्रभाकर, नद्युष, सुन्दन, शान्ति और प्रियधर्म आदि ॥३-६॥ ये सभी राजा विशुद्ध कुलमें उत्पन्न हुए थे, सदाचारमें तत्पर थे, हजारसे अधिक संख्याके धारक थे और संसारमें इनकी चेष्टाएँ प्रसिद्ध थीं ॥७॥ ये सब हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक, मूँगा, सोना, मोती, अन्तःपुर और राज्यको जीर्ण-तृणके समान छोड़कर महाव्रतके धारी हुए थे । सभी शान्तचित्त एवं नाना ऋद्धियोंसे युक्त थे और अपने-अपने ध्यानके अनुरूप यथायोग्य पदको प्राप्त हुए थे ॥८-९॥

भरत चक्रवर्तीके समान चेष्टाओंके धारक भरतके दीक्षा ले लेने पर उसके गुणोंका स्मरण करनेवाले लक्ष्मण अपने आपको सूना मानने लगे ॥१०॥ यद्यपि उनका चित्त शोकसे आकुलित हो रहा था, वे परम विषादको प्राप्त थे, उनके मुखसे सू-सू शब्द निकल रहा था, जिनके नेत्र-रूपी नील-कमलोंकी कान्ति म्लान हो गई थी और उनका शरीर विराधितकी भुजारूपी खम्भोंके आश्रय स्थित था तथापि वे लक्ष्मीसे देदीप्यमान होते हुए धीरे-धीरे बोले कि ॥११-१२॥ गुण-रूपी आभूषणोंको धारण करनेवाला वह भरत इस समय कहाँ है ? जिसने तरुण होने पर भी शरीरसे प्रीति छोड़ दी है ॥१३॥ इष्ट बन्धुजनोंको तथा देवोंके समान राज्यको छोड़कर सिद्ध होनेकी इच्छा रखता हुआ वह अत्यन्त कठिन जैनधर्मको कैसे धारण कर गया ? ॥१४॥

आह्लाद्यन् सदः सर्वं ततः पद्मो विधानवित् । जगाद् परमं धन्यो भरतः सुमहानसौ ॥१५॥
 तस्यैकस्य मतिः शुद्धा तस्य जन्मार्थसङ्गतम् । विपान्नमिव यस्यक्त्वा राज्यं प्राप्तव्यमास्थितः ॥१६॥
 पूज्यता वर्ण्यतां तस्य कथं परमयोगिनः । देवेन्द्रा अपि नो शक्ता यस्य वक्तुं गुणाकरम् ॥१७॥
 क्रेक्यानन्दनस्यैव प्रारब्धगुणकीर्तनाः । सुखदुःखरसोन्मिथा मुहूर्त्तं पार्थिवा स्थिताः ॥१८॥
 ततः समुत्थिते पद्मे सोद्वेगे लक्ष्मणे तथा । तथा स्वमास्पदं याता नरेन्द्रा बहुविस्मयाः ॥१९॥
 सम्प्रधार्य पुनः प्राप्ताः कर्त्तव्याहितचेतसः । पयनाभं नमस्कृत्य प्रीत्या वचनमब्रुवन् ॥२०॥
 विदुषामज्ञकानां वा प्रसादं कुरु नाथ नः । राज्याभिषेकमन्विच्छुः सुरलोकसमुत्थितः ॥२१॥
 विदधस्त्वेफलत्वं नश्वश्रुषोर्हृदयस्य च । तत्राभिषेकसौख्येन भरितस्य नरोत्तम ॥२२॥
 विभ्ररत्सगुणैश्चर्यं राजराजो दिने दिने । पादौ नमति यत्रैष तत्र राज्येन किं मम ॥२३॥
 प्रतिकूलमिदं वाच्यं न भवद्भिर्मयीदृशम् । स्वेच्छाविधानमात्रं हि ननु राज्यमुदाहृतम् ॥२४॥
 इत्युक्ते जयशब्देन पद्मामभमिनन्ध ते । गत्वा नारायणं प्रोचुः स चायातो बलान्तिकम् ॥२५॥
 प्रावृट्टारम्भसम्भूतबम्बराभ्योदनिःस्वनाः । ततः समाहता भेर्यः शङ्खशब्दपुरःसराः ॥२६॥
 दुन्दुभ्यानकभङ्ग्यस्सूर्याणि प्रवराणि च । मुमुचुर्नादमुत्तुङ्गं वंशादिस्वनसङ्गतम् ॥२७॥
 चारुमङ्गलगीतानि नाट्यानि विविधानि च । प्रवृत्तानि मनोज्ञानि यच्छन्ति प्रमदं परम् ॥२८॥

तदनन्तर समस्त सभाको आह्लादित करते हुए विधि-विधानके वेत्ता रामने कहा कि वह भरत परम धन्य तथा अत्यन्त महान् है ॥१५॥ एक उसीकी बुद्धि शुद्ध है, और उसीका जन्म सार्थक है कि जो विषमिश्रित अन्नके समान राज्यका त्याग कर दीक्षाको प्राप्त हुआ है ॥१६॥ जिसके गुणोंकी खानका वर्णन करनेके लिए इन्द्र भी समर्थ नहीं है ऐसे उस परम योगीकी पूज्यताका कैसे वर्णन किया जाय ? ॥१७॥ जिन्होंने भरतके गुणोंका वर्णन करना प्रारब्ध किया था, ऐसे राजा मुहूर्त्त भर सुख-दुःखके रससे मिश्रित होते हुए स्थित थे ॥१८॥ तदनन्तर उद्वेगसे सहित राम और लक्ष्मण जब उठ कर खड़े हुए तब बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त राजा लोग अपने अपने स्थान पर चले गये ॥१९॥

अथानन्तर करने योग्य कार्यमें जिनका चित्त लग रहा था ऐसे राजा लोग परस्पर विचार कर पुनः रामके पास आये और नमस्कार कर प्रीति पूर्वक निम्न वचन बोले ॥२०॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! हम विद्वान् हों अथवा मूर्ख ! हमलोगों पर प्रसन्नता कीजिये । आप देवोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले हैं अतः राज्याभिषेककी स्वीकृति दीजिये ॥२१॥ हे पुरुषोत्तम ! आप हमारे नेत्रों तथा अभिषेक सम्बन्धी सुखसे भरे हुए हमारे हृदयकी सफलता करो ॥२२॥ यह सुन रामने कहा कि जहाँ सात गुणोंके ऐश्वर्यको धारण करनेवाला राजाओंका राजा लक्ष्मण प्रति-दिन हमारे चरणोंमें नमस्कार करता है वहाँ हमें राज्यकी क्या आवश्यकता है ? ॥२३॥ इस-लिए आप लोगोंकी मेरे विषयमें इस प्रकारके विरुद्ध वचन नहीं कहना चाहिये क्योंकि इच्छानु-सार कार्य करना ही तो राज्य कहलाता है ॥२४॥ कहनेका सार यह है कि आपलोग लक्ष्मणका राज्याभिषेक करो । रामके इस प्रकार कहने पर सबलोग जयध्वनिके साथ रामका अभिनन्दन कर लक्ष्मणके पास पहुँचे और नमस्कार कर राज्याभिषेक स्वीकृत करनेकी बात बोले । इसके उत्तरमें लक्ष्मण श्रीरामके समीप आये ॥२५॥

तदनन्तर वर्षाऋतुके प्रारम्भमें एकत्रित घनघटाके समान जिनका विशाल शब्द था तथा जिनके प्रारम्भमें शङ्खोंके शब्द हो रहे थे ऐसी भेरियाँ बजाई गई ॥२६॥ दुन्दुभि, ढक्का, भालर, और उत्तमोत्तम तूर्य, बाँसुरी आदिके शब्दोंसे सहित उच्च शब्द छोड़ रहे थे ॥२७॥ मङ्गलमय

तस्मिन् महोत्सवे जाते स्नानीयासनवर्तिनी । विभूत्या परया युक्तौ सङ्गतौ रामलक्ष्मणौ ॥२१॥
 रुक्मकाञ्चननिर्माणनारत्नमयैस्तथा । कलशैर्युक्तपद्मास्यैरभिषिक्तौ यथाविधि ॥३०॥
 मुकुटाङ्गदकेयूरहारकुण्डलभूषितौ । दिव्यस्रग्वस्त्रसम्पन्नौ वरालेपनचर्चितौ ॥३१॥
 सौरपाणिर्जयत्वेपश्वक्री जयतु लक्ष्मणः । इति तौ जयशब्देन खेचरैरभिनन्दितौ ॥३२॥
 राजेन्द्रयोस्तयोः कृत्वा खेचरेन्द्रा महोत्सवम् । गत्वाऽभिषिपिचुर्देवीं स्वामिनीं तु विदेहजाम् ॥३३॥
 महासौभाग्यसम्पन्ना पूर्वमेव हि साऽभवत् । प्रधाना सर्वदेवीनामभिषेकाद् विशेषतः ॥३४॥
 आनन्द जयशब्देन वैदेहीमभिषेचनम् । ऋद्धया चक्रुर्विशल्यायाश्चक्रिपत्नीविभुत्वकृत् ॥३५॥
 स्वामिनी लक्ष्मणस्यापि प्राणदानाद् बभूव या । मर्यादामात्रकं तस्यास्तज्जातमभिषेचनम् ॥३६॥
 जय खिखण्डनाधस्य लक्ष्मणस्याथ सुन्दरि । इति तां जयशब्देन तेऽभिनन्द्य स्थिताः सुखम् ॥३७॥
 त्रिकूटशिखरे राज्यं ददौ रामो विभीषणे । सुग्रीवस्य च किष्किन्धे वानरध्वजभृत्तः ॥३८॥
 श्रीपर्वते मरुजस्य गिरौ श्रीनगरे पुरे । विराधितनरेन्द्रस्य गोत्रकमनिषेविते ॥३९॥
 महार्णवोर्मिसन्तानचुम्बिते बहुकौतुके । कैष्किन्धे च पुरे स्फीतं पतित्वं नलनीलयोः ॥४०॥
 विजयार्द्धदक्षिणे स्थाने प्रख्याते रथनूपुरे । राज्यं जनकपुत्रस्य प्रणतोऽग्रनभश्चरम् ॥४१॥
 देवोपगीतनगरे कृतो रत्नजटी नृपः । शेषा अपि यथायोग्यं विषयस्वामिनः कृताः ॥४२॥

सुन्दर गीत, और नाना प्रकारके मनोहर नृत्य उत्तम आनन्द प्रदान कर रहे थे ॥२८॥ इस प्रकार उस महोत्सवके होने पर परम विभूतिसे युक्त राम और लक्ष्मण साथ ही साथ अभिषेकके आसन पर आरूढ हुए ॥२९॥ तत्पश्चात् जिनके मुख, कमलोंसे युक्त थे ऐसे चाँदी सुवर्ण तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित कलशोंके द्वारा विधिपूर्वक उनका अभिषेक हुआ ॥३०॥ दोनों ही भाई मुकुट, अङ्गद, केयूर, हार और कुण्डलोंसे विभूषित किये गये । दोनों ही दिव्य मालाओं और वस्त्रोंसे सम्पन्न तथा उत्तमोत्तम विलेपनसे चर्चित किये गये ॥३१॥ जिनके हाथमें हलायुध विद्यमान है ऐसे श्रीराम और जिनके हाथमें चक्ररत्न विद्यमान है ऐसे लक्ष्मणकी जय हो इस प्रकार जय-जयकारके द्वारा विद्याधरोंने दोनोंका अभिनन्दन किया ॥३२॥ इस प्रकार उन दोनों राजाधिराजोंका महोत्सव कर विद्याधर राजाओंने स्वामिनी सीतादेवीका जाकर अभिषेक किया ॥३३॥ वह सीतादेवी पहलेसे ही महा सौभाग्यसे सम्पन्न थी फिर उस समय अभिषेक होनेसे विशेष कर सब देवियोंमें प्रधान हो गई थी ॥३४॥ तदनन्तर जय-जयकारसे सीताका अभिनन्दन कर उन्होंने बड़े वैभवके साथ विशल्याका अभिषेक किया । उसका वह अभिषेक चक्रवर्तीकी पट्ट-राज्ञीके विभुत्वको प्रकट करनेवाला था ॥३५॥ जो विशल्या प्राणदान देनेसे लक्ष्मणकी भी स्वामिनी थी उसका अभिषेक केवल मर्यादा मात्रके लिए हुआ था अर्थात् वह स्वामिनी तो पहले से ही थी उसका अभिषेक केवल नियोग मात्र था ॥३६॥ अथानन्तर हे तीन खण्डके अधिपति लक्ष्मणकी सुन्दरि ! तुम्हारी जय हो इस प्रकारके जय-जयकारसे उसका अभिनन्दन कर सब राजा लोग सुखसे स्थित हुए ॥३७॥

तदनन्तर श्री रामने विभीषणके लिए त्रिकूटाचलके शिखरका, वानरवंशियोंके राजा सुग्रीवको किष्किन्ध पर्वतका, हनूमानको श्रीपर्वतका, राजा विराधितके लिए उसकी वंश-परम्परासे सेवित श्रीपुर नगरका और नल तथा नीलके लिए महासागरकी तरङ्गोंसे चुम्बित अनेक कौतुकोंको धारण करनेवाले, किष्किन्धपुरका विशाल साम्राज्य दिया ॥३८-४०॥ भामण्डलके लिए विजयार्ध पर्वतके दक्षिणमें स्थित रथनूपुर नगर नामक प्रसिद्ध स्थानमें उग्र विद्याधरोंको नम्रीभूत करनेवाला राज्य दिया ॥४१॥ रत्नजटीको देवोपगीत नगरका राजा बनाया और शेष लोग भी यथायोग्य देशोंके स्वामी किये गये ॥४२॥

उपजातिः

एवं स्वपुण्योदययोग्यमाप्ता राज्यं नरेन्द्राश्विरमप्रकम्पम् ।

रामानुमत्या बहुलप्रहर्षास्तस्थुर्यथास्वं निलयेषु दीप्ताः ॥४३॥

पुण्यानुभावस्य फलं विशालं विज्ञाय सम्भ्रजगति प्रसिद्धम् ।

कुर्वन्ति ये धर्मरतिं मनुष्या रवेर्द्युतिं ते जनयन्ति तन्वीम् ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीरविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे राज्याभिषेकामिधानं विभागदर्शनं नाम
अष्टाशीतितमं पर्व ॥८८॥

इस प्रकार जो अपने-अपने पुण्योदयके योग्य चिरस्थायी राज्यको प्राप्त हुए थे तथा रामचन्द्रजीकी अनुमतिसे जिन्हें अनेक हर्षके कारण उपलब्ध थे ऐसे वे सब देदीप्यमान राजा अपने-अपने स्थानोंमें स्थित हुए ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य जगतमें प्रसिद्ध पुण्यके प्रभावका फल जानकर धर्ममें प्रीति करते हैं वे सूर्यकी व्रभाको भी कुश कर देते हैं ॥४४॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राज्याभिषेकका वर्णन करनेवाला तथा अन्य राजाओंके विभागको दिखलानेवाला
अष्टाशीवीं पर्व समाप्त हुआ ॥८८॥

नवाशीतितमं पर्व

अथ सम्भ्रवहन् प्रीतिं पद्माभो लक्ष्मणस्तथा । ऊचे शत्रुघ्नमिष्टं त्वं विषयं रुचिमानय ॥१॥
 गृह्णासि किमयोध्यादं साधु वा पौन्द्रनापुरम् । किं वा राजगृहं रम्यं यदि वा पौण्ड्रसुन्दरम् ॥२॥
 इत्याद्याः शतशस्तस्य राजधान्यः सुतेजसः । उपदिष्टा न चास्थैता निदधुर्मानसे पद्मम् ॥३॥
 मथुरायाचने तेन कृते पद्मः पुनर्जगौ । मधुर्नाम च तस्त्वामी त्वया ज्ञातो न किं रिपुः ॥४॥
 जामाता रात्रणस्यासावनेकाहवशोभितः । शूलं चमरनाथेन यस्य दत्तमनिष्कलम् ॥५॥
 अमरैरपि दुर्वारं तस्मिन्नायार्कदुःसहम् । हत्वा प्राणान् सहस्रस्य शूलमेति पुनः करम् ॥६॥
 यस्याथ कुर्वतां मन्त्रमस्माकं वर्त्तते समा । रात्रावपि न विन्दामो निद्रां चिन्तासमाकुलाः ॥७॥
 हरोणामन्वयो येन जायमानेन पुष्कलः । नीतः परममुद्योतं लोकस्तिग्मांशुना यथा ॥८॥
 खेचरैरपि दुःसाध्यो लवणार्णवतंशकः । सुतो यस्य कथं शूरं तं विजेतुं भवान् चमः ॥९॥
 ततो जगद् शत्रुघ्नः किमत्र बहुभाषितैः । प्रयच्छ मथुरां मद्यं प्रहोष्यामि ततः स्वयम् ॥१०॥
 मधुकमिव हन्तामि मधुं यदि न संयुगे । ततो दशरथेनाहं पित्रा मानं वहामि नो ॥११॥
 शरभः सिंहसङ्घातमिव तस्य बलं यदि । न चूर्णयामि न भ्राता युष्माकमहकं तदा ॥१२॥
 नास्मि सुपजसः कुशो सम्भूतो यदि तं रिपुम् । तयामि दीर्घनिद्रां न त्वदार्शाः कृतपालवः ॥१३॥

अथानन्तर अच्छी तरह प्रीतिको धारण करनेवाले राम और लक्ष्मणने शत्रुघ्नसे कहा कि जो देश तुम्हें इष्ट हो उसे स्वीकृत कर ॥१॥ क्या तू अयोध्याका आधाभाग लेना चाहता है ? या उत्तम पौन्द्रनपुरको ग्रहण करना चाहता है ? या राजगृह नगर चाहता है अथवा मनोहर पौण्ड्रसुन्दर नगरकी इच्छा करता है ? ॥२॥ इस प्रकार राम-लक्ष्मणने उस तेजस्वीके लिए सैकड़ों राजधानियाँ बताईं पर वे उसके मनमें स्थान नहीं पा सकीं ॥३॥ तदनन्तर जब शत्रुघ्नने मथुराकी याचना की तब रामने उससे कहा कि मथुराका स्वामी मधु नामका शत्रु है यह क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है ? ॥४॥ वह मधु रावणका जमाई है, अनेक युद्धोंसे सुशोभित है, और चमरेन्द्रने उसके लिए कभी व्यर्थ नहीं जानेवाला वह शूल रत्न दिया है, कि जो देवोंके द्वारा भी दुर्निवार है, जो प्रोष्म ऋतुके सूर्यके समान अत्यन्त दुःसह है, और जो हजारोंके प्राण हरकर पुनः उसके हाथमें आ जाता है ॥५-६॥ जिसके लिए मन्त्रणा करते हुए हमलोग चिन्तातुर हो सारी रात निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं ॥७॥ जिस प्रकार सूर्य उदित होता हुआ ही समस्त लोकको परमप्रकाश प्राप्त कराता है उसी प्रकार जिसने उत्पन्न होते ही विशाल हरिवंशको परमप्रकाश प्राप्त कराया था ॥८॥ और जिसका लवणार्णव नामका पुत्र विद्याधरोंके द्वारा भी दुःसाध्य है उस शूरवीरको जीतनेके लिए तू किस प्रकार समर्थ हो सकेगा ? ॥९॥

तदनन्तर शत्रुघ्नने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? आप तो मुझे मथुरा दे दीजिये मैं उससे स्वयं ले लूँगा ॥१०॥ यदि मैं युद्धमें मधुको मधुके छलेके समान नहीं तोड़ डालूँ तो मैं पिता दशरथसे अहंकार नहीं धारण करूँ अर्थात् उनके पुत्र होनेका गर्व छोड़ दूँ ॥११॥ जिस प्रकार अष्टापद सिंहोंके समूहको नष्ट कर देता है उसी प्रकार यदि मैं उसके बलको चूर्ण नहीं कर दूँ तो आपका भाई नहीं होऊँ ॥१२॥ आपका आशीर्वाद ही जिसकी रक्षा कर रहा है ऐसा मैं यदि उस शत्रुको दीर्घ निद्रा नहीं प्राप्त करा दूँ तो मैं सुपजाकी कुक्षिमें उत्पन्न हुआ नहीं कहलाऊँ ॥१३॥ इस प्रकार उत्तम तेजका धारक शत्रुघ्न जब पूर्वोक्त प्रतिज्ञाको प्राप्त हुआ

एवमास्थां समारूढे तस्मिन्नुत्तमतेजसि । विस्मयं परमं प्राप्ता विद्याधरमहेरवराः ॥१४॥
 ततस्तमुद्यतं गन्तुं समुत्सार्थं हलायुधः । जगाद दक्षिणामेकां धीर मे यच्छ याचितः ॥१५॥
 तमरिन्दोऽब्रवीद्दाता त्वमनन्यसमो विभुः । याचसे किं त्वतः श्लाघ्यं परं मेऽन्यद् भविष्यति ॥१६॥
 असूनाप्रपि नाथस्त्वं का कथाऽन्यत्र वस्तुनि । युद्धविघ्नं विमुच्यैकं ब्रूहि किं करवाणि वः ॥१७॥
 ध्यात्वा जगाद पद्माभो वत्सकासौ त्वया मधुः । रहितः शूलरत्नेन क्षोभ्यः क्षिप्ते मदर्थनात् ॥१८॥
 यथाऽऽज्ञायसीत्युक्त्वा सिद्धान्त्वा समर्च्य च । भुङ्क्त्वा मातरमागत्य नत्वाऽपृच्छन् सुखस्थिताम् ॥१९॥
 स्वमाद्य तन्मयं देवी स्नेहादाप्राय मस्तके । जगाद जय वत्स त्वं शरैः शत्रुगणं शिखैः ॥२०॥
 वायमर्धासने कृत्वा वीरमूरगादन् पुनः । वीर दर्शयितव्यं ते पृष्ठं संयति न क्षिपाम् ॥२१॥
 प्रत्यागतं कृतार्थं त्वां वीर्य जातक संयुगान् । पूजां परां करिष्यामि जिनानां हेमपङ्कजैः ॥२२॥
 त्रैलोक्यमङ्गलाद्यानः सुरासुरनमस्कृताः । मङ्गलं तव यच्छन्तु जितरागादयो जिनाः ॥२३॥
 संसारप्रभवो मोहो यैजितोऽत्यन्तदुर्जयः । अर्हन्तो भगवन्तस्ते भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२४॥
 चतुर्गतिविधानं ये देशयन्ति त्रिकालगम् । ददतां ते स्वयम्बुद्धास्तव बुद्धिं रिपोर्जये ॥२५॥
 करस्थः मलकं यद्ब्रह्मालोकं स्वतेजसा । परयन्तः केवलालोका भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२६॥
 कर्मणाऽऽपकारेण मुक्तास्त्रैलोक्यपूर्वगाः । सिद्धाः सिद्धिकरा वत्स भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२७॥
 कमलादित्यचन्द्रवमानन्दरात्रिवियत् समाः । आचार्याः परमाधारा भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२८॥

तव विद्याधर राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१४॥ तदनन्तर वहाँ जानेके लिए उद्यत शत्रुघ्न-
 को सागनेसे दूर हटाकर श्रीरामने कहा कि हे धीर ! मैं तुझसे याचना करता हूँ तू मुझे एक
 दक्षिणा दे ॥१५॥ यह सुन शत्रुघ्नेने कहा कि असाधारण दाता तो आप ही हैं सो आप ही जब
 याचना कर रहे हैं तब मेरे लिए इससे बढ़कर अन्य प्रशंसनीय क्या होगा ? ॥१६॥ आप
 तो मेरे प्राणोंके भी स्वामी हैं फिर अन्य वस्तुकी क्या कथा है ? एक युद्धके विघ्नको छोड़कर
 कहिये कि मैं आपकी क्या करूँ ? आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥१७॥

तदनन्तर रामने कुछ ध्यान कर उससे कहा कि हे वत्स ! मेरे कहनेसे तू एक बात मान
 ले । वह यह कि जब मधु शूल रत्नसे रहित हो तभी तू अवसर पाकर उसे क्षोभित करना अन्य
 समय नहीं ॥१८॥ तत्पश्चात् 'जैसी आपकी आज्ञा हो' यह कहकर तथा सिद्ध परमोद्दिष्टोंको
 नमस्कार और उनकी पूजा कर भोजनोपरान्त शत्रुघ्न सुखसे बैठी हुई माताके पास आकर तथा
 प्रणाम कर पृच्छने लगा ॥१९॥ रामो सुप्रजाने पुत्रको देखकर उसका मस्तक सँघा और उसके
 बाद कहा कि हे पुत्र ! तू तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा शत्रु समूहको जीते ॥२०॥ वीरप्रसविनी माताने
 पुत्रको अर्धासन पर बैठाकर पुनः कहा कि हे वीर ! तुझे युद्धमें शत्रुओंको पीठ नहीं दिखाना
 चाहिए ॥२१॥ हे पुत्र ! तुझे युद्धसे विजयी हो लौटा देखकर मैं सुवर्ण कमलोंसे जिनेन्द्र भगवान्-
 की परम पूजा करूँगी ॥२२॥ जो तीनों लोकोंके लिए मङ्गल स्वरूप हैं, तथा सुर और असुर
 जिन्हें नमस्कार करते हैं ऐसे वीतराग जिनेन्द्र तेरे लिए मङ्गल प्रदान करें ॥२३॥ जिन्होंने संसार-
 के कारण अत्यन्त दुर्जय मोहको जीत लिया है ऐसे अर्हन्त भगवान् तेरे लिए मङ्गल स्वरूप हों
 ॥२४॥ जो तीन काल सम्बन्धी चतुर्गतिके विधानका निरूपण करते हैं ऐसे स्वयम्बुद्ध जिनेन्द्र
 भगवान् तेरे लिए शत्रुके जीतनेमें बुद्धि प्रदान करें ॥२५॥ जो अपने तेजसे समस्त लोकालोकको
 हाथ पर रखे हुए आमलकके समान देखते हैं ऐसे केवलज्ञानी तुम्हारे लिए मङ्गल स्वरूप हों
 ॥२६॥ जो आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित हो त्रिलोक शिखर पर विद्यमान हैं ऐसे सिद्धिके करनेवाले
 सिद्ध परमेशी, हे वत्स ! तेरे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥२७॥ जो कमलके समान निर्लिप्त, सूर्यके

परामशासनाभिज्ञाः कृतानुगतशासनाः । सदायुष्मनुपाध्यायाः कुर्वन्तु तव मङ्गलम् ॥२६॥
 तपसा द्वादशाङ्गेन निर्वाणं साधयन्ति ये । भद्र ते साधवः शूरा भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२७॥
 इति प्रतीष्णं विघ्नघ्नोमाशिषं दिव्यमङ्गलाम् । प्रणम्य मातरं यातः शत्रुघ्नः सद्यो बहिः ॥२८॥
 हेमकक्षापरीतं स समारूढो महागजम् । रराजाम्बुदृष्टस्थः सम्पूर्णं इव चन्द्रमाः ॥२९॥
 नानावायानसमारूढैर्नरराजशतैर्वृतः । शुशुभे स वृतो देवैः सहस्रनयनो यथा ॥३०॥
 त्रीनावासानुहर्षति भ्रातरं स समागतम् । जगौ पूज्य निवर्त्तस्व द्वाग्बजाम्बनपेक्षतः ॥३१॥
 लक्ष्मणेन धनुर्वज्रं समुद्रावर्त्तमर्षितम् । तस्मै ज्वलनवक्त्राश्च शराः पवनरंहसः ॥३२॥
 कृतान्तवक्त्रमात्मानं नियोज्यास्मै चमूपतिम् । लक्ष्मणेन समं रामश्चिन्तायुक्तो न्यवर्त्तत ॥३३॥
 राजहरिघ्नवीरोऽपि महाबलसमन्वितः । मथुरां प्रति याति स्म मथुराजेन पालिताम् ॥३४॥
 क्रमेण पुण्यभागयास्तीरं प्राप्य ससम्भ्रमम् । सैन्यं न्यवेशयद्दूरमध्वानं समुपागतम् ॥३५॥
 कृताशेषक्रियस्तत्र मन्त्रिवर्गो गतश्रमः । चकार संशयापन्नो मन्त्रमत्यन्तसूक्ष्मधीः ॥३६॥
 मधुमङ्गकृताशंसं पश्यतास्य धियं शिशोः । केवलं योऽभिमानेन प्रवृत्तो नयवर्जितः ॥३७॥
 महावीर्यः पुरा येन मान्धाता निर्जितो रणे । खेवरैरपि दुःसाध्यो जय्यः सोऽस्य कथं मधुः ॥३८॥
 चलापादात्तुङ्गोर्मिशस्त्रप्राहकुलाकुलम् । कथं वाल्ङ्कति बाहुभ्यां तरितुं मधुसागरम् ॥३९॥

समान तेजस्वी, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक, पृथिवीके समान निश्चल, सुमेरुके समान उन्नत-
 उदार, समुद्रके समान गम्भीर और आकाशके समान निःसङ्ग हैं तथा परम आधार स्वरूप हैं
 ऐसे आचार्य परमेष्ठी तेरे लिए मङ्गलरूप हों ॥२८॥ जो निज और पर शासनके जाननेवाले हैं
 तथा जो अपने अनुगामी जनोंको सदा उपदेश करते हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी हे आयुष्मन् ! तेरे
 लिए मङ्गल रूप हों ॥२९॥ और जो बारह प्रकारके तपके द्वारा मोक्ष सिद्ध करते हैं—निर्वाण
 प्राप्त करते हैं ऐसे शूरवीर साधु परमेष्ठी हे भद्र ! तेरे लिए मङ्गल स्वरूप हों ॥३०॥ इस प्रकार
 विघ्नोंको नष्ट करनेवाले दिव्य मङ्गल स्वरूप आशीर्वादको स्वीकृत कर तथा माताको प्रणाम कर
 शत्रुघ्न घरसे बाहर चला गया ॥३१॥ सुवर्णमयी मालाओंसे युक्त महागज पर बैठा शत्रुघ्न
 मेघपृष्ठ पर स्थित पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥३२॥ नाना प्रकारके वाहनों पर
 आरूढ सैकड़ों राजाओंसे घिरा हुआ वह शत्रुघ्न, देवोंसे घिरे इन्द्रके समान सुशोभित हो रहा
 था ॥३३॥ अत्यधिक प्रीतिको धारण करनेवाले भाई राम और लक्ष्मण तीन पड़ाव तक उसके
 साथ गये थे । तदनन्तर उसने कहा कि हे पूज्य ! आप लौट जाइये अब मैं निरपेक्ष हो शीघ्र ही
 आगे जाता हूँ ॥३४॥ उसके लिए लक्ष्मणने सागरावर्त्त नामका धनुषरत्न और वायुके समान
 वेगशाली अग्निमुख बाण समर्पित किये ॥३५॥ तत्पश्चात् अपनी समानता रखनेवाले कृतान्त-
 वक्त्रको सेनापति बनाकर रामचन्द्रजी चिन्तायुक्त होने हुए लक्ष्मणके साथ वापिस लौट गये ॥३६॥
 गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! बड़ी भारी सेना अथवा अत्यधिक पराक्रमसे युक्त वीर
 शत्रुघ्ने मधु राजाके द्वारा पालित मथुराकी ओर प्रयाण किया ॥३७॥ क्रम-क्रमसे पुण्यभाग
 नदीका तट पाकर उसने दीर्घ मार्गको पार करनेवाली अपनी सेना संभ्रम सहित ठहरा दी ॥३८॥
 वहाँ जिन्होंने समस्त क्रिया पूर्ण की थी, जिनका श्रम दूर हो गया था और जिनकी बुद्धि अत्यन्त
 सूक्ष्म थी ऐसे मन्त्रियोंके समूहने संशयारूढ हो परस्पर इस प्रकार विचार किया ॥३९॥ कि अहो !
 मधुके पराजयकी आकांक्षा करनेवाली इस बालककी बुद्धि तो देखो जो नीतिरहित हो केवल
 अभिमानसे ही युद्धके लिए प्रवृत्त हुआ है ॥४०॥ जो विद्याधरोंके द्वारा भी दुःसाध्य था ऐसा
 महाशक्तिशाली मान्धाता जिसके द्वारा पहले युद्धमें जीता गया था वह मधु इस बालकके द्वारा
 कैसे जीता जा सकेगा ? ॥४१॥ जिसमें चलते हुए पैदल सैनिक रूपी ऊँची ऊँची लहरें उठ रही

१. सदा युष्मानुपाध्यायाः म० । २. प्रतीक्ष्य । ३. विघ्नापहारिणीम् । ४. चलात् ज० ।

२१-३

पादात्सुमहावृक्षं मत्तवारणभीषणम् । प्रविश्य मधुकान्तारं को निःक्रान्तिर्जीवितः ॥४३॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य कृतान्तकुटिलोऽवदत् । यूयं भीताः किमित्येवं त्यक्त्वा मानसमुन्नतिम् ॥४४॥
 अमोघेन किलाऽऽरूढो गर्वं शूलेन यद्यपि । हन्तुं तथापि तं शक्तो मधुं शत्रुघ्नसुन्दरः ॥४५॥
 करेण बलवान् दन्ती पातयेद्वरणीरुहान् । प्रचरद्द्वानधाराऽपि सिंहेन तु निपात्यते ॥४६॥
 लक्ष्मीप्रतापसम्पन्नः सत्त्ववान् बलवान् बुधः । सुमहायश्च शत्रुघ्नः शत्रुघ्नो जायते ध्रुवम् ॥४७॥
 अथ मन्त्रिजनाऽऽदेशान् मथुरानगरीं गताः । प्रत्यावृत्त्य चरा वार्ता वदन्ति स्म यथाविधि ॥४८॥
 शृणु देवाऽस्ति पूर्वस्यां मथुरा नगरी दिशि । उद्यानं रम्यमत्यन्तं राजलोकसमावृतम् ॥४९॥
 मध्येऽमरं कुरोयद्वैकुण्ठेच्छन्दसञ्चितम् । इच्छापूर्णसम्पन्नं विपुलं राजतेतराम् ॥५०॥
 जयन्त्यात्र महादेव्या सहितस्याद्य वर्त्तते । वारीगतगजस्त्वेव स्पर्शवश्यस्य भूभृतः ॥५१॥
 कामिनो दिवसः षष्ठस्यक्वारीपान्यकर्मणः । महासुस्थाभिमानस्य प्रमादवशवर्त्तिनः ॥५२॥
 प्रतिज्ञां तव नो वेद नागमं कामवश्ययोः । बुधैरुपेक्षितो मोहात्स भिपग्निः सरोगवत् ॥५३॥
 प्रस्तावे यदि नैतस्मिन् मथुराऽऽध्यास्यते ततः । अन्यपुंवाहिनीवाहेर्दुःसहः स्यान्मधूदधिः ॥५४॥
 वचनं तत्समाकर्ण्य शत्रुघ्नः क्रमकोविदः । ययौ शतसहस्रेण ययूनां मथुरां पुरीम् ॥५५॥

हैं तथा जो शस्त्ररूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है ऐसे मधुरूपी सागरको यह भुजाओंसे कैसे तैरना
 चाहता है ? ॥४२॥ जो पैदल सैनिक रूभी बड़े-बड़े वृक्षोंसे युक्त तथा मदीन्मत्त हाथियोंसे भयंकर
 है ऐसे मधुरूपी वनमें प्रवेश कर कौन पुरुष जीवित निकलता है ? ॥४३॥ इस प्रकार मन्त्रियोंका
 कहा सुनकर कृतान्तवक्त्र सेनापतिने कहा कि तुम लोग अभिमानको छोड़कर इस तरह भयभीत
 क्यों हो रहे हो ? ॥४४॥ यद्यपि मधु, अमोघ शूलके कारण गर्व पर आरूढ है—अहंकार कर
 रहा है तथापि शत्रुघ्न उसे मारनेके लिए समर्थ है ॥४५॥ जिसके मदकी धारा भर रही है ऐसा
 बलवान् हाथी यद्यपि अपनी सूँड़से घुत्तोंको गिरा देता है तथापि वह सिंहके द्वारा मारा जाता
 है ॥४६॥ यतश्च शत्रुघ्न लक्ष्मी और प्रतापसे सहित है, धैर्यवान् है, बलवान् है, बुद्धिमान् है,
 और उत्तम सहायकोंसे युक्त है इसलिए अवश्य ही शत्रुको नष्ट करनेवाला होगा ॥४७॥

अथानन्तर मन्त्रिजनोंके आदेशसे जो गुप्तचर मथुरा नगरी गये थे उन्होंने लौटकर विधि-
 पूर्वक यह समाचार कहा कि हे देव ! सुनिये, यहाँसे उत्तर दिशामें मथुरा नगरी है। यहाँ नगरके
 बाहर राजलोकसे घिरा हुआ एक अत्यन्त सुन्दर उद्यान है ॥४८-४९॥ सो जिस प्रकार देवकुरुके
 मध्यमें इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला कुबेरच्छन्द नामका विशाल उपवन सुशोभित है उसी प्रकार
 यहाँ वह उद्यान सुशोभित है ॥५०॥ अपनी जयन्ती नामक महादेवीके साथ राजा मधु इसी
 उद्यानमें निवास कर रहा है। जिस प्रकार हथिनीके वशमें हुआ हाथी बन्धनमें पड़ जाता है
 उसी प्रकार राजा मधु भी महादेवीके वशमें हुआ बन्धनमें पड़ा है ॥५१॥ वह राजा अत्यन्त
 कामी है, उसने अन्य सब काम छोड़ दिये हैं वह महा अभिमानी है तथा प्रमादके वशीभूत है।
 उसे उद्यानमें रहते हुए आज छठवाँ दिन है ॥५२॥ जिसकी बुद्धि कामके वशीभूत है ऐसा वह
 मधु राजा, न तो तुम्हारी प्रतिज्ञाको जानता है और न तुम्हारे आगमनका ही उसे पता है।
 जिस प्रकार वैद्य किसी रोगीकी उपेक्षा कर देते हैं उसी प्रकार मोहकी प्रबलतासे विद्वानोंने भी
 उसकी उपेक्षा कर दी है ॥५३॥ यदि इस समय मथुरापर अधिकार नहीं किया जाता है तो फिर
 वह मधुरूपी सागर अन्य पुरुषोंकी सेनारूपी नदियोंके प्रवाहसे दुःसह हो जायगा—उसका जीतना
 कठिन हो जायगा ॥५४॥ गुप्तचरोंके यह वचन सुनकर क्रमके जाननेमें निपुण शत्रुघ्न एक लाख
 घोड़ा लेकर मथुराकी ओर चला ॥५५॥

१. देवकुरो- । २. अश्वानाम् ।

अर्द्धरात्रे व्यतीतेऽसौ परलोके प्रमादिनि । निवृत्य प्राविशद्द्वारस्थानं लब्धमहोदयः ॥५६॥
 आसीद् योगीव शत्रुघ्नः द्वारं कर्मैव चूर्णितम् । प्राप्ताऽत्यन्तमनोज्ञा च मथुरा सिद्धिभूरिव ॥५७॥
 देवो जयति शत्रुघ्नः श्रीमान् दशरथात्मजः । वन्दितामिति वक्त्रेभ्यो महाकादः समुद्यौ ॥५८॥
 परेणथ समाकान्तां विज्ञाय नगरीं जनः । लङ्कायामद्गदप्राप्तौ यथा क्षोभमितो भयात् ॥५९॥
 त्रासात्तरलनेत्राणां स्त्रीणामाकुलताजुषाम् । सद्यः प्रचलिता गर्भा हृदयेन समं भुशम् ॥६०॥
 महाकलकलारावप्रेरणे प्रतिकोधिनः । उद्ययुः सहसा शूराः सिंहा इव भयोत्थिताः ॥६१॥
 विश्वस्य शब्दमात्रेण शत्रुलोकं मथोर्युहम् । सुप्रभातनयोऽविचक्ष्णन्तोऽजितविक्रमः ॥६२॥
 तत्र दिव्यायुधाकीर्णां सुतेजाः परिपालयन् । शालामवस्थितः प्रीतो यथाहं समितोदयः ॥६३॥
 मथुराभिर्ननोज्ञाभिर्भारताभिरशेषतः । नीतो लोकः समाश्वासं जहौ त्राससमागमम् ॥६४॥
 शत्रुघ्नं मथुरां ज्ञात्वा प्रविष्टं मधुसुन्दरः । निरैद् रावणवक्रकोपादुद्यानान् स महाबलः ॥६५॥
 शत्रुघ्नरक्षितं स्थानं प्रवेष्टुं मथुरार्थिवः । निर्ग्रन्थरक्षितं मोहो यथा शक्नोति नो तदा ॥६६॥
 प्रवेशं विविधोपायैरलङ्घ्याप्यभिमानवान् । रहितश्चापि शूलेन न सन्धिं वृणुते मधुः ॥६७॥
 असहन्तः परानाकं द्रष्टुं दर्पसमुद्भुरम् । शत्रुघ्नसैनिकाः सैन्यान् स्वरमाजिर्यथुरश्विनः ॥६८॥
 तत्राहवत्समारम्भे शात्रुघ्नं स क्लं बलम् । प्राप्तं जातश्च संयोगस्तयोः सैन्यसमुद्भयोः ॥६९॥
 रथेभ्योऽदिपादात्ताः समर्यां विविधायुधाः । रथेभ्यैः सादिपादात्तैरालग्नाः सह वेगिभिः ॥७०॥

तदनन्तर अर्धरात्रि व्यतीत होनेपर जब सब लोग आलस्यमें निमग्न थे, तब महान् ऐश्वर्य को प्राप्त हुए शत्रुघ्नेने लौटकर मथुराके द्वारमें प्रवेश किया ॥५६॥ वह शत्रुघ्न योगीके समान था, द्वार कर्मके समूहके समान चूर चूर हो गया था, और अत्यन्त मनोहर मथुरा नगरी सिद्ध भूमिके समान थी ॥५७॥ 'राजा दशरथके पुत्र शत्रुघ्नकी जय हो' इस प्रकार वन्दीजनोंके मुखोंसे बड़ा भारी शब्द उठ रहा था ॥५८॥

अथानन्तर जिस प्रकार लंकामें अंगदके पहुँचने पर लंकाके निवासी लोग भयसे क्षोभको प्राप्त हुए थे उसी प्रकार नगरीको शत्रुके द्वारा आक्रान्त जान मथुरावासी लोग भयसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥५९॥ भयके कारण जिनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे तथा जो आकुलताको प्राप्त थीं ऐसी स्त्रियोंके गर्भ उनके हृदयके साथ-साथ अत्यन्त विचलित हो गये ॥६०॥ महाकलकल शब्दकी प्रेरणा होने पर जो जाग उठे थे ऐसे निर्भय शूर-वीर सिंहाके समान सहसा उठ खड़े हुए ॥६१॥ तत्पश्चात् अत्यन्त प्रबल पराक्रमको धारण करनेवाला शत्रुघ्न, शब्दमात्रसे ही शत्रुसमूहको नष्ट कर राजा मधुके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥६२॥ वहाँ वह अतिशय प्रतापी शत्रुघ्न दिव्य शस्त्रोंसे व्याप्त आयुधशालाकी रक्षा करता हुआ स्थित था । वह प्रसन्न था तथा यथायोग्य अभ्युदयको प्राप्त था ॥६३॥ वह मधुर तथा मनोज्ञ वाणीके द्वारा सबको सान्त्वना प्राप्त कराता था इसलिए सबने भयका परित्याग किया था ॥६४॥ तदनन्तर शत्रुघ्नको मथुरामें प्रविष्ट जानकर वह महाबलवान् मधुसुन्दर रावणके समान क्रोध वश उद्यानसे बाहर निकला ॥६५॥ उस समय जिस प्रकार निर्ग्रन्थ मुनिके द्वारा रक्षित आत्मामें मोह प्रवेश करनेके लिए समर्थ नहीं हैं उसी प्रकार शत्रुघ्नके द्वारा रक्षित अपने स्थानमें राजा मधु प्रवेश करनेके लिए समर्थ नहीं हुआ ॥६६॥ यद्यपि मधु नाना उपाय करने पर भी मथुरामें प्रवेशको नहीं पा रहा था, और शूलसे रहित था तथापि वह अभिमानी होनेके कारण शत्रुघ्नसे सन्धिकी प्रार्थना नहीं करता था ॥६७॥ तत्पश्चात् अहंकारसे उत्कट शत्रु सेनाको देखनेके लिए असमर्थ हुए शत्रुघ्नके घुड़सवार सैनिक अपनी सेनासे बाहर निकले ॥६८॥ वहाँ युद्ध प्रारम्भ होते-होते शत्रुघ्नकी समस्त सेना आ पहुँची और दोनों ही पक्षकी सेना रूपी सागरोंके बीच संयोग हो गया अर्थात् दोनों ही सेनाओंमें मुठभेड़ शुरू हुई ॥६९॥ उस समय शक्तिसे सम्पन्न तथा नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले रथ हाथी तथा

असहनपरसैन्यस्य दर्पं रौद्रमहास्वनम् । कृतान्तकुटिलोऽविविद्ध वेगवानाहितं बलम् ॥७१॥
 अवारितगतित्स्त्रय रणे क्रीडां चकार सः । स्वयम्भूरमणोद्याने त्रिविष्टपतिर्यथा ॥७२॥
 अथ तं गोचरीकृत्य कुमारो लवणार्णवः । बाणैर्वन इवाम्भोभिस्तिरश्त्रके महाधरम् ॥७३॥
 सोऽप्याकर्णसमाकृष्टैः शरैराशीविषप्रभैः । चिच्छेद् सायकानस्य तैश्च व्यासं महीनभः ॥७४॥
 अन्योन्यं विरथाकृत्य सिंहाविव बलोत्कटौ । करिपृष्ठसमारूढौ सरोषौ चक्रतुर्बुधम् ॥७५॥
 विताडितः कृतान्तः सः प्रथमं वत्सलीपुणा । चकार कवचं शत्रुं शरैरखैरनन्तरम् ॥७६॥
 ततस्तोमरमुद्यम्य कृतान्तवदनं पुनः । लवणोऽताडयत् क्रोधविस्फुरखलोचनद्युतिः ॥७७॥
 स्वशोणितनिषेकाक्तौ महासंरम्भवतिनी । विशुक्रानोकहृच्छायी प्रवीरौ तौ विरेजतुः ॥७८॥
 गदासिचक्रसम्पातो बभूव तुमुलस्तयोः । परस्परबलोन्मादविपादकरणोत्कटः ॥७९॥
 दत्तयुद्धश्चिरं शक्त्या ताडितो लवणार्णवः । वत्सस्यपास्तः क्षोणीं स्वर्गाव सुकृतक्षयात् ॥८०॥
 पतितं तनयं वीच्य मधुराहवमस्तके । धावन् कृतान्तवक्त्राय शत्रुघ्नेन विशब्दितः ॥८१॥
 शत्रुघ्नगिरिणा रूढो मधुवाहो व्यत्रर्द्धत । गृहीतः शोकक्रोधाभ्यां दुःसहाभ्यामुपक्रमन् ॥८२॥
 दृष्टिमाशीविषस्येव तस्याशक्तं निरीक्षितुम् । सैन्यं व्यद्ववदस्युप्राद् वाताद् वानदलौघवत् ॥८३॥
 तस्याभिमुखमालोक्य व्रजन्तं सुव्रजः सुतम् । अभिमानसमारूढा योधाः प्रत्यागता मुहुः ॥८४॥

घोड़ोंके सवार एवं पैदल सैनिक, वेगशाली रथ, हाथी तथा घोड़ोंके सवारों एवं पैदल सैनिकोंके साथ भिड़ गये ॥७०॥ शत्रु सेनाके भयंकर शब्द करनेवाले दर्पको सहन नहीं करता हुआ कृतान्तवक्त्र बड़े वेगसे शत्रुकी सेनामें जा घुसा ॥७१॥ सो जिस प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्रमें इंद्र विना किसी रोक-टोकके क्रीड़ा करता है उसी प्रकार वह कृतान्तवक्त्र भी विना किसी रोक-टोकके युद्धमें क्रीड़ा करने लगा ॥७२॥ तदनन्तर जिस प्रकार मेघ, जलके द्वारा महापर्वतको आच्छादित करता है उसी प्रकार मधुसुन्दरके पुत्र लवणार्णवने, कृतान्तवक्त्रका सामना कर उसे बाणोंसे आच्छादित किया ॥७३॥ इधर कृतान्तवक्त्रने भी, कान तक खिंचे हुए सर्प तुल्य बाणोंके द्वारा उसके बाण काट डाले और उनसे पृथिवी तथा आकाशको व्याप्त कर दिया ॥७४॥ सिंहाके समान बलसे उत्कट दोनों योद्धा परस्पर एक दूसरेके रथ तोड़कर हाथीकी पीठ पर आरूढ हो क्रोध सहित युद्ध करने लगे ॥७५॥ प्रथम ही लवणार्णवने कृतान्तवक्त्रके वक्षःस्थल पर बाणसे प्रहार किया सो उसके उत्तरमें कृतान्तवक्त्रने भी बाणों तथा शस्त्रोंके प्रहारसे शत्रु और कवचको अन्तरसे रहित कर दिया अर्थात् शत्रुका कवच तोड़ डाला ॥७६॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसके नेत्रोंकी कान्ति देवीप्यमान हो रही थी ऐसे लवणार्णवने तोमर उठाकर कृतान्तवक्त्र पर पुनः प्रहार किया ॥७७॥ जो अपने रुधिरके निषेकसे युक्त थे तथा महाक्रोध पूर्वक जो भयंकर युद्ध कर रहे थे ऐसे दोनों वीर फूले हुए पलाश वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ उन दोनोंके बीच, अपनी-अपनी सेनाके हर्ष विषाद करनेमें उत्कट गदा खड्ग और चक्र नामक शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा हो रही थी ॥७९॥ तदनन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जिसके वक्षःस्थल पर शक्ति नामक शस्त्रसे प्रहार किया गया था ऐसा लवणार्णव पृथिवी पर इस प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार कि पुण्य न्य होनेसे कोई देव पृथिवी पर आ पड़ता है ॥८०॥

रणाग्र भागमें पुत्रको गिरा देख मधु कृतान्तवक्त्रको लक्ष्य कर दौड़ा परन्तु शत्रुघ्नेने उसे बीचमें धर ललकाग ॥८१॥ जो दुःखसे सहन करने योग्य शोक और क्रोधके वशीभूत था ऐसा मधुरूपी प्रवाह शत्रुघ्नरूपी पर्वतसे रुककर समीपमें वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥८२॥ आशीविष सर्पके समान उसकी दृष्टिको देखनेके लिए असमर्थ हुई शत्रुघ्नकी सेना उस प्रकार भाग उठी जिस प्रकार कि तीक्ष्ण वायुसे सूखे पत्तोंका समूह भाग उठता है ॥८३॥ तदनन्तर शत्रुघ्नको उसके

तावदेव प्रपद्यन्ते भङ्गं भीत्याऽनुगामिनः । यावत्स्वामिनमीक्षन्ते न पुरो विक्रवाननम् ॥८५॥
 अथोत्तमरथारूढो दिव्यं कार्मुकमाश्रयन् । हारराजितवक्त्रस्को मुकुटीलोलकुण्डलः ॥८६॥
 शरदादित्यसङ्काशो निःप्रव्यूहगतिः प्रभुः । प्रजस्रभिमुखः शत्रोरत्युप्रकोधसङ्गतः ॥८७॥
 तदा शतानि योधानां बहूनि दहति क्षणात् । संशुष्कपत्रफूटानि यथा दावोऽरिर्मर्दनः ॥८८॥
 न कश्चिदग्रतस्तस्य रणे वीरोऽवतिष्ठते । जिनशासनवीरस्य यथान्यमतदूषितः ॥८९॥
 योऽपि तेन समं योद्धुं कश्चिद् वान्छति मानवान् । सोऽपि दन्तीव सिंहाग्रे विध्वंसं व्रजति क्षणात् ॥९०॥
 उन्मत्तसदृशं जातं तस्मै न्यं परमाकुलम् । निपतत्क्षतभूयिष्ठं मधुं शरणमाश्रितम् ॥९१॥
 रंहसा गच्छतस्तस्य मधुश्चिच्छेदं केतनम् । रथाथास्तस्य तेनाऽपि विलुप्ताः क्षुरसायकैः ॥९२॥
 ततः सम्भ्रान्तचेतस्को मधुः क्षितिधरोपमम् । वारुणेन्द्रं समारुह्य क्रोधञ्जलितविग्रहः ॥९३॥
 प्रच्छादयितुमुद्युक्तः शरैरन्तरवर्जितैः । महामेघ इवादिष्यन्निम्बं दशरथात्मजः ॥९४॥
 क्षिन्दानेन शरान् बद्धकवचं तस्य पुष्कलः । रणप्राघूर्णकाचारः कृतः शत्रुघ्नसूरिणा ॥९५॥
 अथ शूलायुधस्यक्तं ज्ञात्वाऽऽमानं निबोधवान् । सुतमृत्युमहाशोको वीक्ष्य शत्रुं सुदुर्जयम् ॥९६॥
 बुद्ध्वाऽऽत्मनोऽवसानं च कर्म च क्षीणभूर्जितम् । नैर्ग्रन्थं वचनं धीरः सस्मारानुशयान्वितः ॥९७॥

सामने जाते देख जो अभिमानी योद्धा थे वे पुनः लौट आये ॥८४॥ सो ठीक ही है क्योंकि अनुगामी-सैनिक भयसे तभी तक पराजयको प्राप्त होते हैं जब तक कि वे सामने प्रसन्नमुख स्वामीको नहीं देख लेते हैं ॥८५॥

अथानन्तर जो उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ दिव्य धनुषको धारण कर रहा था, जिसका वक्त्रस्थल हारसे सुशीभित था, जो शिर पर मुकुट धारण किये हुए था, जिसके कुण्डल हिल रहे थे, जो शरत् ऋतुके सूर्यके समान देदीप्यमान था, जिसको चालको कोई रोक नहीं सकता था, जो सब प्रकारसे समर्थ था, और अत्यन्त तीक्ष्ण क्रोधसे युक्त था ऐसा शत्रुघ्न शत्रुके सामने जा रहा था ॥८६-८७॥ जिस प्रकार दावानल, सूखे पत्तोंकी राशिको क्षण भरमें जला देता है उसी प्रकार शत्रुओंको नष्ट करनेवाला वह शत्रुघ्न सैकड़ों योधाओंको क्षण भरमें जला देता था ॥८८॥ जिस प्रकार जिनशासनमें निपुण विद्वान्के सामने अन्य मतसे दूषित मनुष्य नहीं ठहर पाता है उसी प्रकार कोई भी वीर युद्धमें उसके आगे नहीं ठहर पाता था ॥८९॥ जो कोई भी मानी मनुष्य, उसके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करता था वह सिंहके आगे हाथीके समान क्षणभरमें विनाशको प्राप्त हो जाता था ॥९०॥ जो उन्मत्तके समान अत्यन्त आकुल थी तथा जो अधिकांश घायल होकर गिरे हुए योद्धाओंसे प्रचुर थी ऐसी राजा मधुकी सेना मधुकी शरणमें पहुँची ॥९१॥

अथानन्तर मधुने वेगसे जाते हुए शत्रुघ्नकी ध्वजा काट डाली और शत्रुघ्नने भी क्षुराके समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसके रथ और घोड़े छेद दिये ॥९२॥ तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त सम्भ्रान्त था, और जिसका शरीर क्रोधसे प्रज्वलित हो रहा था ऐसा मधु पर्वतके समान विशाल गजराज पर आरूढ़ होकर निकला ॥९३॥ सो जिस प्रकार महामेघ सूर्यके निम्बको आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार मधु भी निरन्तर छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुघ्नको आच्छादित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥९४॥ इधर चतुर शत्रुघ्नने भी उसके बाण और कसे हुए कवचको छेदकर रणके पाहुनेका जैसा सत्कार होना चाहिए वैसा पुष्कलताके साथ उसका सत्कार किया अर्थात् खूब खबर ली ॥९५॥

अथानन्तर जो अपने आपको शूल नामक शस्त्रसे सहित जानकर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ था तथा पुत्रकी मृत्युका महाशोक जिसे पीड़ित कर रहा था ऐसे मधुने शत्रुको दुर्जय देख कर विचार किया कि अब मेरा अन्त होनेवाला है। भाग्य की बात कि उसी समय उसके प्रबल

अशाश्वते समस्तेऽस्मिन्नारम्भे दुःखदायिनि । कर्मकमेव संसारे शस्यते धर्मकारणम् ॥६८॥
 नृजन्म सुकृती प्राप्य धर्मे दत्ते न यो मतिम् । स मोहकर्मणा जन्तुर्वञ्जितः परमार्थतः ॥६९॥
 भुवं पुनर्भवं ज्ञात्वा पापेनात्महितं मया । न कृतं स्ववशे काले धिङ्मां मूर्खं प्रमादिनम् ॥१००॥
 आत्माधीनस्य पापस्य कथं जाता न मे सुधीः । पुरस्कृतोऽरिणेदानीं किं करोमि हताशकः ॥१०१॥
 प्रदीप्ते भवने कीदृक् तद्भागखननादरः । को वा भुजङ्गदृष्टस्य कालो मन्त्रस्य साधने ॥१०२॥
 सर्वथा यावदेतस्मिन् समये स्वार्थकारणम् । शुभं मनःसमाधानं कुर्वे तावदनाकुलः ॥१०३॥
 अर्हन्तोऽथ विमुक्तोऽथ आचार्येभ्यस्तथा त्रिधा । उपाध्यायगुरुभ्यश्च साधुभ्यश्च नमो नमः ॥१०४॥
 अर्हन्तोऽथ विमुक्तश्च साधवः केवलांतरितः । धर्मश्च मङ्गलं शश्वदुत्तमं मे चतुष्टयम् ॥१०५॥
 द्वीपेष्वर्धन्तृतीयेषु त्रिपञ्चाजर्जभूमिषु । अर्हतां लोकनाथानामेषोऽस्मि प्रणतस्त्रिधा ॥१०६॥
 यावज्जीवं सहावधं योगं मुञ्चे न चात्मकम् । निन्दामि च पुरोपात्तं प्रत्याख्यानपरायणम् ॥१०७॥
 अनादौ भवकान्तारे यन्मया समुपाजितम् । मिथ्या दुष्कृतमेतन्मे स्थितोऽहं तत्त्वसङ्गतौ ॥१०८॥
 व्युत्सृजाम्येष हातव्यसुपादेचसुपाददे । ज्ञानं दर्शनमात्मा मे शेषं संयोगलक्षणम् ॥१०९॥
 संस्तरः परमार्थेन न तृणं न च भूः शुभा । मत्या कलुषया मुक्तो जाँव एव हि संस्तरः ॥११०॥
 एवं सद्ब्रह्मणमाख्यं त्यक्त्वा ग्रन्थं द्वयात्मकम् । द्रव्यतो गजउष्टस्यो मधुः केशानपानयत् ॥१११॥

कर्मका उदय क्षीण हो गया जिससे उसने बड़ी धीरता और पश्चात्तापके साथ दिग्मन्त्र मुनियोंके वचनका स्मरण किया ॥६६-६७॥ वह विचार करने लगा कि यह समस्त आरम्भ क्षणभङ्गुर तथा दुःख देनेवाला है । इस संसारमें एक वही कार्य प्रशंसा योग्य है जो धर्मका कारण है ॥६८॥ जो पुण्यात्मा प्राणी मनुष्य जन्म पाकर धर्ममें बुद्धि नहीं लगाता है वह यथार्थमें मोह कर्मके द्वारा ठगा गया है ॥६९॥ पुनर्जन्म अवश्य ही होगा ऐसा जानकर भी मुझ पापीने उस समय अपना हित नहीं किया जिस समय कि काल अपने आधीन था अतः प्रमाद करनेवाले मुझ मूर्खको धिक्कार है ॥१००॥ मैं पापी जब स्वाधीन था तब मुझे सद्बुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न हुई ? अब जब कि शत्रु मुझे अपने सामने किये हुए है तब मैं अभागा क्या करूँ ? ॥१०१॥ जब भवन जलने लगता है तब कुँआ खुदवानेके प्रति आदर कैसा ? और जिसे सौंपने उस लिया है उसे मन्त्र सिद्ध करनेका समय क्या है ? अर्थात् ये सब कार्य तो पहलेसे करनेके योग्य होते हैं ॥१०२॥ इस समय तो सब प्रकारसे यही उचित जान पड़ता है कि मैं निराकुल हो मनका शुभ समाधान करूँ क्योंकि वही आत्महितका कारण है ॥१०३॥ अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचों परमेष्ठियोंके लिए मन, वचन कायसे बार बार नमस्कार हो ॥१०४॥ अर्हन्त, सिद्ध, साधु और केवली भगवान्के द्वारा कहा हुआ धर्म ये चारों पदार्थ मेरे लिए सदा मङ्गल स्वरूप हैं ॥१०५॥ अर्हन्त द्वीप सम्बन्धी पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जितने अर्हन्त हैं मैं उन सबको मन वचन कायसे नमस्कार करता हूँ ॥१०६॥ मैं जीवन पर्यन्तके लिए सावध योगका त्याग करता हूँ उसके विपरीत शुद्ध आत्माका त्याग नहीं करता हूँ तथा प्रत्याख्यातमें तत्पर होकर पूर्वोपाजित पाप कर्मकी निन्दा करता हूँ ॥१०७॥ इस आदिरहित संसार रूप अटवीमें मैंने जो पाप किया है वह मिथ्या हो । अब मैं तत्त्व विचार करनेमें लीन होता हूँ ॥१०८॥ यह मैं छोड़ने योग्य समस्त कार्योंको छोड़ता हूँ और ग्रहण करने योग्य कार्यको ग्रहण करता हूँ, ज्ञान दर्शन ही मेरी आत्मा है पर पदार्थके संयोगसे होनेवाले अन्य भाव सब पर पदार्थ हैं ॥१०९॥ समाधिमरणके लिए यथार्थमें न तृण ही सांथरा है और न उत्तम भूमि ही सांथरा है किन्तु कलुषित बुद्धिसे रहित आत्मा ही उत्तम सांथरा है ॥११०॥ इस प्रकार समीचीन ध्यान पर आरूढ हो उसने अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग दोनों प्रकारके परिग्रह छोड़ दिये

१. पञ्चदशकर्मभूमिषु । २. प्रणतीस्त्रिधा म० ।

गाढस्रतशरीरोऽसौ धृतिं परमदुर्धराम् । अभ्यासीनः कृतोऽसर्गः कायादेः सुविशुद्धधीः ॥११२॥
शत्रुघ्नोऽपि तदाऽऽगत्य नमस्कारपरायणः । तन्तव्यं च स्वया साधो मम दुष्कृतकारिणः ॥११३॥
अमराप्सरसः संख्यं निरीक्षितुमुपागताः । पुष्पाणि मुमुक्षुस्तस्मै विस्मिता भावतःपराः ॥११४॥

उपजातिवृत्तम्

ततः समाधिं समुपेत्य कालं कृत्वा मधुस्तक्ष्णमात्रकेण ।
महासुखारभोधिनिमग्नचेताः सनत्कुमारे विबुधोत्तमोऽभूत् ॥११५॥
शत्रुघ्नवीरोऽप्यभवत्कृतार्थो विवेश मोदी मथुरां सुतेजाः ।
स्थितश्च तस्यां गजसंज्ञितायां पुरां मेघेश्वरसुन्दरोऽसौ ॥११६॥
एवं जनस्य स्वविधानभाजो भवे भवत्यात्मनि दिव्यरूपम् ।
तस्मात् सदा कर्म शुभं कुरुध्वं रवेः परां येन रुचिं प्रयाताः ॥११७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मधुसुन्दरवधाभिधानं नाम नवाशीतितमं पर्व ॥८६॥

और बाह्यमें हाथीपर बैठे बैठे ही उसने केश उखाड़कर फेंक दिये ॥१११॥ यद्यपि उसके शरीरमें गहरे घाव छग रहे थे, तथापि वह अत्यन्त दुर्धर धैर्यको धारण कर रहा था । उसने शरीर आदिकी ममता छोड़ दी थी और अत्यन्त विशुद्ध बुद्धि धारण की थी ॥११२॥ जब शत्रुघ्ने यह हाल देखा तब उसने आकर उसे नमस्कार किया और कहा कि हे साधो ! मुझ पापोंके लिए क्षमा कीजिए ॥११३॥ उस समय जो अप्सराएँ युद्ध देखनेके लिए आई थीं उन्होंने आश्चर्यसे चकित हो विशुद्ध भावनासे उस पर पुष्प छोड़े ॥११४॥ तदनन्तर समाधिभरणकर मधु क्ष्ण मात्रमें ही जिसका हृदय उत्तम सुखरूपी सागरमें निमग्न था ऐसा सनत्कुमार स्वर्गमें उत्तम देव हुआ ॥११५॥ इधर वीर शत्रुघ्न भी कृतकृत्य हो गया । अब उत्तम तेजके धारक उस शत्रुघ्ने बड़ी प्रसन्नतासे मथुरामें प्रवेश किया और जिस प्रकार हस्तिनापुरमें मेघेश्वर-जयकुमार रहते थे उसी प्रकार वह मथुरामें रहने लगा ॥११६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस प्रकार समाधि धारण करनेवाले पुरुष जो भव धारण करते हैं उसमें उन्हें दिव्य रूप प्राप्त होता है इसलिए हे भव्य जनो ! सदा शुभ कार्य ही करो जिससे सूर्यसे भी अधिक उत्कृष्ट कार्तिको प्राप्त हो सके ॥११७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मधु सुन्दरके वधका वर्णन करनेवाला नवासीवों पर्व समाप्त हुआ ॥८६॥

नवतितमं पर्व

ततोऽरिघ्नानुभावेन विफलं तेजसोऽधिकतम् । अमोघमपि तद्विष्यं शूलरत्नं विधिच्युतम् ॥१॥
 वहन् खेदं च शोकं च त्रपां च जवमुक्तवत् । स्वामिनोऽसुरनाथस्य चमरस्यान्तिकं ययौ ॥२॥
 मरणे कथिते तेन मधोरचमरपुङ्गवः । आहतः खेदशोकाभ्यां तत्सौहार्दगतस्मृतिः ॥३॥
 रसातलात्समुत्थाय त्वरावानतिभासुरः । प्रवृत्तो मथुरां गन्तुमसौ संरम्भसङ्गतः ॥४॥
 भ्राम्यन्नय सुपर्णेन्द्रो वेणुदारी तमैक्षत । अष्टच्छन्न क दैत्येन्द्र गमनं प्रस्तुतं त्वया ॥५॥
 जचेऽसौ परमं मित्रं येन मे निहतं मधुः । सजनस्यास्य वैषम्यं विधातुमहमुद्यतः ॥६॥
 सुपर्णेशो जगौ किं न विशल्यासम्भवं त्वया । माहात्म्यं निहितं कर्णे येनैवमभिलष्यसि ॥७॥
 जगादासावतिक्रान्ताः कालास्ते परमाद्भुताः । अचिन्त्यं येन माहात्म्यं विशल्यायास्तथाविधम् ॥८॥
 कौमारव्रतयुक्तासावासीदद्भुतकारिणी । योयेन जनितेदानीं निर्विवेक भुजङ्गिका ॥९॥
 नियताचारयुक्तानां प्रभवन्ति मनाषिणाम् । भावा निरतिचाराणां श्लाघ्याः पूर्वकपुण्यजाः ॥१०॥
 जितं विशल्यया तावद् गर्वमाश्रितया परम् । यावन्नारायणस्यास्यं न दष्टं मदनवाहम् ॥११॥
 सुरासुरपिशाचाद्या विभ्यति व्रतचारिणाम् । तावद् यावन्न ते तीक्ष्णं निश्चयासि जहत्यहो ॥१२॥

अथानन्तर मधु सुन्दरका वह दिव्य शूल रत्न यद्यपि अमोघ था तथापि शत्रुघ्नके प्रभावसे निष्फल हो गया था, उसका तेज छूट गया था और वह अपनी विधिसे च्युत हो गया था ॥१॥ अन्तमें वह खेद शोक और लज्जाको धारण करता हुआ निर्वेगकी तरह अपने स्वामी असुरोंके अधिपति चमरेन्द्रके पास गया ॥२॥ शूल रत्नके द्वारा मधुके मरणका समाचार कहे जाने पर उसके सौहार्दका जिसे बार-बार स्मरण आ रहा था ऐसा चमरेन्द्र खेद और शोकसे पीड़ित हुआ ॥३॥ तदनन्तर वेगसे युक्त, अत्यन्त देदीप्यमान और क्रोधसे सहित वह चमरेन्द्र पातालसे उठकर मथुरा जानेके लिए उद्यत हुआ ॥४॥ अथानान्तर भ्रमण करते हुए गरुडकुमार देवोंके इन्द्र वेणुदारीने चमरेन्द्रको देखा और देखकर उससे पूछा कि हे दैत्यराज ! तुमने कहाँ जानेकी तैयारी की है ? ॥५॥ तब चमरेन्द्रने कहा कि जिसने मेरे परम मित्र मधु सुन्दरको मारा है उस मनुष्यकी विषमता करनेके लिए यह मैं उद्यत हुआ हूँ ॥६॥ इसके उत्तरमें गरुडेन्द्रने कहा कि क्या तुमने कभी विशल्याका माहात्म्य कर्णमें धारण नहीं किया—नहीं सुना जिससे कि ऐसा कह रहे हो ? ॥७॥ यह सुन चमरेन्द्रने कहा कि अब अत्यन्त आश्चर्यको करनेवाला वह समय व्यतीत हो गया जिस समय कि विशल्याका वैसा अचिन्त्य माहात्म्य था ॥८॥ जब वह कौमार व्रतसे युक्त थी तभी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थी अब इस समय तो नारायणके संयोगसे वह विष रहित भुजङ्गीके समान हो गई है ॥९॥ जो मनुष्य नियमित आचारका पालन करते हैं, बुद्धिमान् हैं तथा सब प्रकारके अतिचारोंसे रहित हैं उन्हींके पूर्व पुण्यसे उत्पन्न हुए प्रशंसनीय भाव अपना प्रभाव दिखाते हैं ॥१०॥ अत्यधिक गर्वको धारण करनेवाली विशल्याने तभी तक विजय पाई है जब तक कि उसने काम चेष्टाको धारण करनेवाला नारायणका मुख नहीं देखा था ॥११॥ व्रतका आचरण करनेवाले मनुष्योंसे सुर-असुर तथा पिशाच आदि तभी तक डरते हैं जब तक कि वे निश्चय रूपी तीक्ष्ण खड्गको नहीं छोड़ देते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य मद्य मांससे निवृत्त हैं, सैकड़ों प्रतिपत्तियोंको नष्ट करनेवाले उसके अन्तरको दुष्ट जीव तब तक नहीं लौंघ सकते जब तक कि इसके नियमरूपी कोट विद्यमान रहता है ॥१३॥ रुद्रोंमें एक कालाग्नि नामक भयंकर

१. वेणुधारी म० । २. क पुस्तके एष श्लोको नास्ति । ३. प्रतिचारिणां म० । ४. जहत्यहो म०, ज० ।

मद्याभियनिवृत्तस्य तावद्भूस्तशतान्तरम् । लङ्घयन्ति न दुःसत्त्वा यावन् सालोऽस्य नैयमः ॥१३॥
 कालाग्निर्नाम रुद्राणां दाहणे न श्रुतस्त्वया । सको दयितया साकं निर्विद्यो निधने गतः ॥१४॥
 ब्रज वा किं तत्रैतेन कुरु कृत्यं मनीषितम् । ज्ञास्यामि स्वयमेवाहं कर्तव्यं मित्रविद्विषः ॥१५॥
 इत्युक्त्वा खं व्यतिक्रम्य मथुरायां सुदुर्मनाः । ऐषतोत्सवमत्यन्तं महान्तं सर्वलोकगम् ॥१६॥
 अचिन्तयन्न लोकोऽयमकृतज्ञो महाखलः । स्थाने राष्ट्रे च यदैन्यस्थाने तोषमितः परम् ॥१७॥
 बाहुच्छायां समाश्रित्य सुचिरं सुरसौख्यवान् । स्थितो यः स कथं लोको मधोर्भृत्योर्न दुःखितः ॥१८॥
 प्रवीरः कातरैः शूरसहस्रेण च पण्डितः । सेव्यः किञ्चिद्भजेन्मूर्खमकृतज्ञं परित्यजेत् ॥१९॥
 आस्तां तावदसौ राजा स्निग्धो मे येन सूदितः । संस्थानं राष्ट्रमेवैतत्क्षयं तावन्नयाम्यहम् ॥२०॥
 इति ध्यात्वा महारौद्रः क्रोधसम्भारचोदितः । उपसर्गं समारंभे कर्तुं लोकस्य दुःसहम् ॥२१॥
 विकृत्य सुमहारोगालोकं दग्धुं समुद्यतः । त्वयदाव इवोदारं कथ्यं कारुण्यवर्जितः ॥२२॥
 यत्रैव यः स्थितः स्थाने निविष्टः शयितोऽपि वा । अचलस्तत्र तत्रैव दीर्घनिद्रामसौवितः ॥२३॥
 उपसर्गं समालोक्य कुलदैवतचोदितः । अयोध्यानगरीं यातः शत्रुघ्नः साधनान्वितः ॥२४॥
 तमुपात्तजयं शूरं प्रत्यायातं महाहवात् । समभ्यनन्दयन् हृष्टा बलचक्रधरादयः ॥२५॥
 पूर्णाशा सुप्रजाश्राप्ती विषाय जिनपूजनम् । धामिकेभ्यो महादानं दुःखितेभ्यस्तथाऽददात् ॥२६॥

आर्यावृत्तम्

यद्यपि महाभिरामा साकेता काञ्चनोऽज्वलैः प्रासादैः ।

धेनुरिव सर्वकामप्रदानचतुरा त्रिविष्टपोपभोगा ॥२७॥

रुद्रका नाम क्या तुमने नहीं सुना जो आसक्त होनेके कारण विद्या रहित हो स्त्रीके साथ ही साथ मृत्युको प्राप्त हुआ था ॥१४॥ अथवा जाओ, तुम्हे इससे क्या प्रयोजन ? इच्छानुसार काम करो, मैं स्वयं ही मित्र और शत्रुका कर्तव्य ज्ञात करूंगा ॥१५॥

इतना कहकर अत्यन्त दुष्ट चित्तको धारण करनेवाला वह चमरेन्द्र आकाशको लोंघकर मथुरा पहुँचा और वहाँ पहुँच कर उसने समस्त लोगोंमें व्याप्त बहुत भारी उत्सव देखा ॥१६॥ वह विचार करने लगा कि ये मथुराके लोग अकृतज्ञ तथा महादुष्ट हैं जो घर अथवा देशमें दुःखका अवसर होने पर भी परम संतोषको प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् खेदके समय हर्ष मना रहे हैं ॥१७॥ जिसकी भुजाओंकी छाया प्राप्त कर जो चिरकाल तक देवों जैसा सुख भोगते रहे वे अब उस मधुकी मृत्युसे दुःखी क्यों नहीं हो रहे हैं ? ॥१८॥ शूर-वीर मनुष्य कायर मनुष्योंके द्वारा सेवनीय है और पण्डित-जन हजारों शूर-वीरोंके द्वारा सेव्य है सो कदाचित् मूर्खकी तो सेवा की जा सकती है पर अकृतज्ञ मनुष्यको छोड़ देना चाहिए ॥१९॥ अथवा यह सब रहें, जिसने हमारे स्नेही गजाको मारा है मैं उसके निवास स्वरूप इस समस्त देशको पूर्ण रूपसे त्तय प्राप्त कराता हूँ ॥२०॥ इस प्रकार विचारकर महारौद्र परिणामोंके धारक चमरेन्द्रने क्रोधके भारसे प्रेरित हो लोगोंपर दुःसह उपसर्ग करना प्रारम्भ किया ॥२१॥ जिस प्रकार प्रलयकालका दावानल विशाल वनको जलानेके लिए उद्यत होता है उसी प्रकार वह निर्दय चमरेन्द्र अनेक महारोग फैलाकर लोगोंको जलानेके लिए उद्यत हुआ ॥२२॥ जो मनुष्य जिस स्थानपर खड़ा था, बैठा था अथवा सो रहा था वह वहीं अचल हो दीर्घ निद्रा-मृत्युको प्राप्त हो गया ॥२३॥ उपसर्ग देखकर कुल-देवतासे प्रेरित हुआ शत्रुघ्न अपनी सेनाके साथ अयोध्या चला गया ॥२४॥ विजय प्राप्त कर महायुद्धसे लौटे हुए शूरवीर शत्रुघ्नका राम, लक्ष्मण आदिने हर्षित हो अभिनन्दन किया ॥२५॥ जिसकी आशा पूर्ण हो गई थी ऐसी शत्रुघ्नकी माता सुप्रजाने जिनपूजा कर धर्मात्माओं तथा दीन-दुःखी मनुष्योंके लिए दान दिया ॥२६॥ यद्यपि अयोध्या नगरी सुवर्णमयी महलोंसे अत्यन्त

१. अमौ + इतः इतिच्छेदः ।

२२-३

शत्रुघ्नकुमारोऽसौ मथुरापुर्यां सुरकहृदयोऽव्यन्तम् ।
 न तथापि घृतिं भेजे वैदेह्या विरहितो तथासीद् रामः ॥२८॥
 स्वप्न इव भवति चारुसंयोगः प्राणिनां यदा तनुकालः ।
 जनयति परमं तार्यं निदाघरविरश्मिजनितादधिकम् ॥२९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे मथुरोपसर्गाभिधानं नाम नवतितमं पर्व ॥६०॥

सुन्दर थी, कामधेनुके समान समस्त मनोरथोंके प्रदान करनेमें चतुर थी और स्वर्ग जैसे भोगो-
 पभोगोंसे सहित थी तथापि शत्रुघ्नकुमारका हृदय मथुरामें ही अत्यन्त अनुरक्त रहता था वह,
 जिस प्रकार सीताके बिना राम, धैर्यको प्राप्त नहीं होते थे उसी प्रकार मथुराके बिना धैर्यको प्राप्त
 नहीं होता था ॥२७-२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! प्राणियोंको सुन्दर वस्तुओंका
 समागम जब स्वप्नके समान अल्प कालके लिए होता है तब वह मोक्षश्रुतु सम्बन्धी सूर्यकी
 किरणोंसे उत्पन्न सन्तापसे भी कहीं अधिक सन्तापको उत्पन्न करता है ॥२९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्यद्वारा कथित पद्मपुराणमें मथुरापर
 उपसर्गका वर्णन करनेवाला नव्वेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६०॥

एकनवतितमं पर्व

अथ राजगृहस्वामी जगादाद्भुतकौतुकः । भगवन्नेन कार्येण तामेवासावयाचत ॥१॥
 बहवो राजधान्योऽन्याः सन्ति स्वर्लोकसन्निभाः । तत्र शत्रुघ्नवीरस्य का प्रीतिर्मथुरां प्रति ॥२॥
 दिव्यज्ञानसमुद्रेण गणोद्भुशशिना ततः । गौतमेनोच्यत प्रीतिर्यथा तत्कुरु चेत्नि ॥३॥
 बहवो हि भवास्तस्य तस्यामेवाभवंस्ततः । तामेव प्रति सोद्रेकं स्नेहमेव न्यषेवत ॥४॥
 संसारार्णवसंसेवी जीवः कर्मस्वभावतः । जम्बूमद्वीपभरते मथुरां समुपागतः ॥५॥
 क्रूरो यमुनदेवाख्यो धर्मैकान्तपराङ्मुखः । स प्रेत्य क्रोडवालेयवायसत्वान्यसेवत ॥६॥
 अजस्रं च परिप्राप्तो मृतो भवनदाहतः । महिषो जलवाहोऽभूदायते गबले वहन् ॥७॥
 षड्वारान्महिषो भूत्वा दुःखप्राणसङ्गतः । पञ्चकृत्वो मनुष्यत्वं दुःकुलेष्वधनोऽभजत् ॥८॥
 मध्यकर्मसमाचाराः प्राप्स्यार्थत्वं मनुष्यताम् । प्राणिनः प्रतिपद्यन्ते किञ्चित्कर्मपरिष्वयम् ॥९॥
 ततः कुलन्धराभिष्यः साधुसेवापरायणः । विप्रोऽसावभवद्दुःशीलसेवाविवर्जितः ॥१०॥
 अशङ्कित इव स्वामी पुरस्तस्या जयाशया । यातो देशान्तरं तस्य महिषी ललिताभिधा ॥११॥
 प्रासादस्था कदाचित्सा वातायनगतेषणा । निरैक्षत तर्कं विप्रं दुश्चेष्टं कृतकारणम् ॥१२॥
 सा तं क्रोडन्तमालोक्य मनोभवशराहता । आनाययद्रहोऽत्यन्तमासया चित्तहारिणम् ॥१३॥
 तस्या एकासने चासानुपविष्टो नृपश्च सः । अज्ञातागमनोऽपश्यत्सहसा तद्विचेष्टितम् ॥१४॥

अथानन्तर अद्भुत कौतुकको धारण करने वाले राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! वह शत्रुघ्न किस कार्यसे उसी मथुराकी याचना करता था ॥१॥ स्वर्गलोकके समान अन्य बहुत सी राजधानियाँ हैं उनमेंसे केवल मथुराके प्रति ही वीर शत्रुघ्नकी प्रीति क्यों है ? ॥२॥ तब दिव्य ज्ञानके सागर एवं गणरूपी नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमाके समान गौतम गणधरने कहा कि जिस कारण शत्रुघ्नकी मथुरामें प्रीति थी उसे मैं कहता हूँ तू चित्तमें धारण कर ॥३॥ यतश्च उसके बहुतसे भव उसी मथुरामें हुए थे इसलिए उसीके प्रति वह अत्यधिक स्नेह धारण करता था ॥४॥ संसार रूपी सागरका सेवन करने वाला एक जीव कर्मस्वभावके कारण जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रकी मथुरा नगरीमें यमुनदेव नामसे उत्पन्न हुआ । वह स्वभावका क्रूरा था तथा धर्मसे अत्यन्त विमुख रहता था । मरनेके बाद वह क्रमसे सूकर, गधा और कौआ हुआ ॥५-६॥ फिर बकरा हुआ, तदनन्तर भवनमें आग लगनेसे मर कर लम्बे-लम्बे सींगोंको धारण करनेवाला भैंसा हुआ । यह भैंसा पानी ढोनेके काम आता था ॥७॥ यह यमुनदेवका जीव छह बार तो नाना दुःखोंको प्राप्त करनेवाला भैंसा हुआ और पाँच बार नीच कुलोंमें निर्धन मनुष्य हुआ ॥८॥ सो ठीक ही है क्योंकि जो प्राणी मध्यम आचरण करते हैं वे आर्य मनुष्य हो कुल-कुल कर्मोंका क्षय करते हैं ॥९॥ तदनन्तर वह साधुओंकी सेवामें तत्पर रहने वाला कुलन्धर नामका ब्राह्मण हुआ । वह कुलन्धर रूपयान् तो था पर शीलकी आराधनासे रहित था ॥१०॥ एक दिन उस नगरका राजा विजय प्राप्त करनेकी आशासे निःशङ्क की तरह दूसरे देशको गया था और उसकी ललिता नामकी रानी महलमें अकेली थी । एक दिन वह झरोखेपर दृष्टि डाल रही थी कि उसने संकेत करनेवाले उस दुरचेष्ट ब्राह्मणको देखा ॥११-१२॥ क्रीडा करते हुए उस कुलन्धर ब्राह्मणकी देख कर रानी कामके बाणोंसे घायल हो गई जिससे उसने एक विश्वासपात्र सखीके द्वारा उस हृदयहारीको अत्यन्त एकान्त स्थानमें बुलवाया ॥१३॥ महलमें जाकर वह

मायाप्रवीणया तावद्देव्या क्रन्दितमुन्नतम् । वन्दिकोऽयमिति त्रस्तो गृहीतश्च भटैरसौ ॥१५॥
 अष्टाङ्गनिग्रहं कर्तुं नगरीतो बहिः कृतः । सेवितेनासकृद्दृष्टः कल्याणारथेन साधुना ॥१६॥
 यदि प्रवजर्सात्युक्त्वा तेनासौ प्रतिपन्नवान् । राज्ञः क्रूरमनुष्येभ्यो मोचितः श्रमणोऽभवत् ॥१७॥
 सोऽतिकष्टं तपः कृत्वा महाभावनयान्वितः । अभूदतुविमानेशः किन्तु धर्मस्य दुष्करम् ॥१८॥
 मथुरायां महाचित्तश्चन्द्रभद्र इति प्रभुः । तस्य भार्या धरा नाम त्रयस्तस्याश्च सोदराः ॥१९॥
 सूर्याधिपयमुनाशब्दैर्देवान्तैर्नामभिः स्मृता । श्रीसस्त्रिचन्द्रप्रभोगार्का मुखान्ताश्रापराः सुताः ॥२०॥
 द्वितीया चन्द्रभद्रस्याद्वितीया कनकप्रभा । आगत्यर्तुविमानान् स तस्यां जातोऽचलामिधः ॥२१॥
 कलागुणसमृद्धोऽसौ सर्वलोकमनोहरः । बभौ देवकुमारारभः सत्क्रोडाकरणोद्यतः ॥२२॥
 अधान्यः कश्चिदङ्गाल्यः कृत्वा धर्मानुमोदनम् । श्रावस्यामङ्गिकागर्भे कम्पेनापामिधोऽभवत् ॥२३॥
 कवाटर्जाविना तेन कम्पेनाविनयान्वितः । अपो निर्घाटितो गेहाद् दुद्राव भयदुःखितः ॥२४॥
 अथाचलकुमारोऽसौ नितान्तं दयितः पितुः । धराया भ्रातृभिस्तैश्च मुखान्तैरष्टभिः सुतैः ॥२५॥
 ईर्ष्यामणो रहो हन्तुं मात्रा ज्ञात्वा पलायितः । महता कण्ठकेनाङ्घ्रौ ताडितस्तिलके वने ॥२६॥

रानीके साथ जिस समय एक आसनपर बैठा था उसी समय राजा भी कहींसे अकस्मात् आ गया और उसने उसकी वह चेष्टा देख ली ॥१४॥ यद्यपि मायाचारमें प्रवीण रानीने जोरसे रोदन करते हुए कहा कि यह वन्दी जन है तथापि राजाने उसका विश्वास नहीं किया और योद्धाओंने उस भयभीत ब्राह्मणको पकड़ लिया ॥१५॥ तदनन्तर आठों अङ्गोंका निग्रह करनेके लिए वह कुलन्धर विप्र नगरीके बाहर ले जाया गया वहाँ जिसकी इसने कई बार सेवा की थी ऐसे कल्याण नामक साधुने इसे देखा और देखकर कहा कि यदि तू दीक्षा ले ले तो तुझे छुड़ाता हूँ । कुलन्धरने दीक्षा लेना स्वीकृत कर लिया जिससे साधुने राजाके दुष्ट मनुष्योंसे उसे छुड़ाया और छुड़ाते ही वह श्रमण साधु हो गया ॥१६-१७॥ तदनन्तर बहुत बड़ी भावनाके साथ अत्यन्त कष्टदायी तप तपकर वह सौधर्मस्वर्गके ऋतुविमानका स्वामी हुआ सो ठीक ही है क्योंकि धर्मके लिए क्या कठिन है ? ॥१८॥

अथानन्तर मथुरामें चन्द्रभद्र नामका उदारचित्त राजा था, उसकी स्त्रीका नाम धरा था और धराके तीन भाई थे—सूर्यदेव, सागरदेव और यमुनादेव । इन भाइयोंके सिवाय उसके श्रीमुख, सन्मुख, सुमुख, इन्द्रमुख, प्रभामुख, उग्रमुख, अर्कमुख और अपरमुख ये आठ पुत्र थे । ॥१९-२०॥ उसी चन्द्रभद्र राजाकी द्वितीय होने पर भी जो अद्वितीय—अनुपम थी ऐसी कनकप्रभा नामकी द्वितीय पत्नी थी सो कुलन्धर विप्रका जीव ऋतु-विमानसे च्युत हो उसके अचल नामका पुत्र हुआ ॥२१॥ वह अचल कला और गुणोंसे समृद्ध था, सब लोगोंके मनको हरनेवाला था और सभीचीन क्रीड़ा करनेमें उद्यत रहता था इसलिए देव कुमारके समान सुशोभित होता था ॥२२॥

अथानन्तर कोई अङ्क नामका मनुष्य धर्मकी अनुमोदना कर श्रावस्ती नामा नगरीमें कम्प नामक पुरुषकी अङ्गिका नामक स्त्रीसे अप नामका पुत्र हुआ ॥२३॥ कम्प कषाट बनानेकी आजी-विका करता था अर्थात् जातिका बढ़ई था और उसका पुत्र अत्यन्त अविनयी था इसलिए उसने उसे घरसे निकाल दिया था । फलस्वरूप वह भयसे दुखी होता हुआ इधर-उधर भटकता रहा ॥२४॥ अथानन्तर पूर्वोक्त अचलकुमार पिताका अत्यन्त प्यारा था इसलिए इसकी सौतेली माता धराके तीन भाई तथा मुखान्त नामको धारण करनेवाले आठों पुत्र एकान्तमें मारनेके लिए उसके साथ ईर्ष्या करते रहते थे । अचलकी माता कनकप्रभाको उनकी इस ईर्ष्याका पता चल गया

गृहीतदारुभारेण तेनपेनाथ वीक्षितम् । अतिकष्टं कृणन् खेदादचलो निश्चलः स्थितः ॥२७॥
 दारुभारं परित्यज्य तेन तस्यासिक्कन्यया । आकृष्टः कण्टको दत्त्वा^१ कटकं चेति भाषितः ॥२८॥
 यदि नामाचलं किञ्चिच्चृणुयात्कोकविश्रुतम् । त्वया तस्य ततोऽभ्याशं गन्तव्यं संशयोऽभिमतम् ॥२९॥
 अपो^२ यथोचितं यातो राजपुत्रोऽपि दुःखवान् । कौशाम्बीबाह्यमुदेशं प्राप्तः सत्त्वसमुन्नतः ॥३०॥
 तत्रेन्द्रदत्तनामानं^३ कोशावत्ससमुद्भवम् । ययौ कलकलाशब्दात् सेवमानं खरूलिकाम् ॥३१॥
 विजित्य विशिखाचार्यं लब्धपूजोऽथ भूभृता । प्रवेश्य नगरीमिन्द्रदत्ताख्यां लम्बितः सुताम् ॥३२॥
 क्रमेण चानुभावेन चारुणा पूर्वकर्मणा । उपाध्याय इति ख्यातो वारोऽसौ पार्थिवोऽभवत् ॥३३॥
 अङ्गाद्यान् विषयाजित्वा प्रतापी मथुरां श्रितः । बाह्योद्देशे कृतावासः स्थितः कटकसङ्गतः ॥३४॥
 चन्द्रभद्रनृपः पुत्रमारोऽयमिति भाषितैः । सामन्ताः सकलास्तस्य मित्रास्थेनार्थसङ्गतैः ॥३५॥
 एकाकी चन्द्रभद्रश्च विषादं परमं भजन् । श्यालान् सम्प्रेषयद्देवशब्दान्तान् सन्धिवाञ्छुया ॥३६॥
 दृष्ट्वा ते तं परिज्ञाय विलक्षास्त्रासमागताः । अदृष्टसेवकाः साकं धरायास्तनयैः कृताः ॥३७॥
 अचलस्य समं मात्रा सञ्जातः परमोत्सवः । राज्यं च प्रणताक्षेपराजकं गुणपूजितम् ॥३८॥

इसलिए उसने उसे कहीं बाहर भगा दिया । एक दिन अचल तिलक नामक वनमें जा रहा था कि उसके पैरमें एक बड़ा भारी काँटा लग गया । काँटा लग जानेके कारण दुःखसे अत्यन्त दुःख-दार्ढी शब्द करता हुआ वह उसी तिलक वनमें एक ओर खड़ा हो गया । उसी समय लकड़ियोंका भार लिये हुए अप वहाँसे निकला और उसने अचलको देखा ॥२५-२७॥ अपने लकड़ियोंका भार छोड़ छुरीसे उसका काँटा निकाला । इसके बदले अचलने उसे अपने हाथका कड़ा देकर कहा कि यदि तू कभी किसी लोक प्रसिद्ध अचलका नाम सुने तो तुम्हें संशय छोड़कर उसके पास जाना चाहिए ॥२८-२९॥

तदनन्तर अप यथायोग्य स्थान पर चला गया और राजपुत्र अचल भी दुःखी होता हुआ धैर्यसे युक्त हो कौशाम्बी नगरीके बाह्यप्रदेशमें पहुँचा ॥३०॥ वहाँ कौशाम्बीके राजा कोशावत्सका पुत्र इन्द्रदत्त, बाण चलानेके स्थानमें बाण विद्याका अभ्यास कर रहा था सो उसका कलकला शब्द सुन अचल उसके पास चला गया ॥३१॥ वहाँ इन्द्रदत्तके साथ जो उसका विशिखाचार्य अर्थात् शस्त्र विद्या सिखानेवाला गुरु था उसे अचलने पराजित किया था । तदनन्तर जब राजा कोशावत्सको इसका पता चला तब उसने अचलका बहुत सन्मान किया और सम्मानके साथ नगरीमें प्रवेश कराकर उसे अपनी इन्द्रदत्ता नामकी कन्या विवाह दी ॥३२॥ तदनन्तर वह क्रम-क्रमसे अपने प्रभाव और पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मसे पहले तो उपाध्याय इस नामसे प्रसिद्ध था और उसके बाद राजा हो गया ॥३३॥ तत्पश्चात् वह प्रतापी अङ्ग आदि देशोंको जीत कर मथुरा आया और उसके बाह्य स्थानमें डेरे देकर सेनाके साथ ठहर गया ॥३४॥ यह चन्द्रभद्र राजा 'पुत्रको मारनेवाला है' ऐसे यथार्थ शब्द कहकर उसने उसके समस्त सामन्तोंको अपनी ओर फोड़ लिया ॥३५॥ जिससे चन्द्रभद्र अकेला रह गया । अन्तमें परम विषादको प्राप्त होते हुए उसने सन्धिकी इच्छासे अपने सूर्यदेव, अग्निदेव और यमुनादेव नामक तीन साले भेजे ॥३६॥ सो वे उसे देख तथा पहिचान कर लज्जित हो भयको प्राप्त हुए और धरा रानीके आठों पुत्रोंके साथ-साथ सेवकोंसे रहित हो गये अर्थात् भयसे भाग गये ॥३७॥ अचलको माताके साथ मिलकर बड़ा उल्लास हुआ और जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत थे तथा जो गुणोंसे पूजित था ऐसा राज्य उसे प्राप्त हुआ ॥३८॥

१. कण्टकं म० । २. अथो ल० । ३. कोशावत्ससमुद्भवम् म० । कोशावत्समयोक्तिमतम् क० ।

अन्यदा नटरङ्गस्य मध्ये तमपमागतम् । हन्यमानं प्रतीहारैर्दृष्ट्वाऽभिज्ञातवान् नृपः ॥३६॥
 तस्मै संयुक्तमापाद्य श्रावस्तीं जन्मभूमिकाम् । कृतापरङ्गसंज्ञाय ददावचलभूपतिः ॥४०॥
 तावुद्यानं गतौ क्रीडां विधातुं पुरुसम्पदौ । यशःसमुद्रमाचार्यं दृष्ट्वा नैर्ग्रन्थ्यमाश्रितौ ॥४१॥
 संयमं परमं कृत्वा सम्यग्दर्शनभाषितौ । मृतौ समाधिना जातौ देवेशौ कमलोत्तरे ॥४२॥
 ततश्च्युतः समानोऽसावचलः पुण्यशेषतः । सुप्रजोलोचनानन्दः शशुघ्नोऽयमभून्नृपः ॥४३॥
 तेनानेकभवप्राप्तिसम्बन्धेनास्य भूपतेः । बभूव परमप्रीतिर्मथुरां प्रति पार्थिव ॥४४॥
 गृहस्य शाखिनी वाऽपि यस्यच्छायां समाश्रयेत् । स्थीयते दिनमध्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते ॥४५॥
 किं पुनर्थत्र भूयोऽपि जन्मभिः संगतिः कृता । संसारभावयुक्तानां जीवानामीदृशी गतिः ॥४६॥
 परिच्युत्यापरङ्गोऽपि पुण्यशोपाद्भूदसौ । कृतान्तवक्त्रविख्यातः सेनायाः पतिरुजितः ॥४७॥
 इति धर्माज्ञनादेतौ प्राप्सौ परमसम्पदः । धर्मेण रहितैर्लभ्यं न हि किञ्चिस्सुखावहम् ॥४८॥
 अनेकमपि सञ्चित्य जन्तुर्दुःखमलक्षये । धर्मतीर्थे श्रुते(श्रयेत्) शुद्धिं जलतीर्थमनर्थकम् ॥४९॥

आर्या

एवं पारम्पर्यादागतमिदमद्भुतं नितान्तसुदारम् ।

कथितं शशुघ्नायनमवबुध्य बुधा भवन्तु धर्मसुरक्ताः ॥५०॥

अथानन्तर किसी एक समय पैरका काँटा निकालनेवाला अप नटोंकी रङ्गभूमिमें आया सो प्रतीहासी लोग उसे मार रहे थे । राजा अचलने उसे देखते ही पहिचान लिया ॥३६॥ और अपने पास बुलाकर उसका अपरंग नाम रक्खा तथा उसकी जन्मभूमि स्वरूप श्रावस्ती नगरी उसके लिए दे दी ॥४०॥ ये दोनों ही मित्र साथ-साथ ही रहते थे । परम सम्पदाको धारण करनेवाले दोनों मित्र एक दिन क्रीडा करनेके लिए उद्यान गये थे सो वहाँ यशःसमुद्र नामक आचार्यके दर्शन कर उनके समीप दोनों ही निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हो गये ॥४१॥ सम्यग्दर्शनकी भावनासे युक्त दोनों मुनियोंने परम संयम धारण किया और दोनों ही आयुके अन्तमें समाधि-मरण कर स्वर्गमें देवेन्द्र हुए ॥४२॥ सन्मानसे सुशोभित वह अचलका जीव, स्वर्गसे च्युत हो अवशिष्ट पुण्यके प्रभावसे माता सुप्रजाके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाला यह राजा शशुघ्न हुआ है ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अनेक भवोंमें प्राप्तिका सम्बन्ध होनेसे इसकी मथुराके प्रति परम प्रीति है ॥४४॥ जिस घर अथवा वृक्षकी छायाका आश्रय लिया जाता है अथवा वहाँ एक दिन भी ठहरा जाता है उसकी उसमें प्रीति हो जाती है ॥४५॥ फिर जहाँ अनेक जन्मोंमें बार-बार रहना पड़ता है उसका क्या कहना है ? यथार्थमें संसारमें परिभ्रमण करनेवाले जीवोंकी ऐसी ही गति होती है ॥४६॥ अपरंगका जीव भी स्वर्गसे च्युत हो पुण्य शेष रहनेसे कृतान्तवक्त्र नामका प्रसिद्ध एवं बलवान् सेनापति हुआ है ॥४७॥ इस प्रकार धर्माज्ञनके प्रभावसे ये दोनों परम सम्पदाको प्राप्त हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि धर्मसे रहित प्राणी किसी सुखदायक वस्तुको नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥४८॥ इस प्राणीने अनेक भवोंमें पापका संचय किया है सो दुःख रूपी मलका क्षय करनेवाले धर्मरूपी तीर्थमें शुद्धिको प्राप्त करना चाहिए इसके लिए जल-रूपी तीर्थका आश्रय लेना निरर्थक है ॥४९॥ इस प्रकार आचार्य परम्परासे आगत, अत्यन्त आश्चर्यकारी एवं उत्कृष्ट शशुघ्नके इस चरितको जानकर हे विद्वज्जनों ! सदा धर्ममें अनुरक्त

१. सुप्रजालोचनानन्दः म०, ज० । २. धर्माज्ञनादेतौ म० ।

श्रुत्वा परमं धर्मं न भवति येषां सदीहिते प्रीतिः ।
शुभनेत्राणां तेषां रविरुदितोऽनधंकीभवति ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शत्रुघ्नभवानुकीर्तनं नामैकनवतितमं पर्व ॥६१॥

होओ ॥५०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस परमधर्मको सुनकर जिनको उत्तम चेष्टामें प्रवृत्ति नहीं होती शुभ नेत्रोंको धारण करनेवाले उन लोगोंके लिए उदित हुआ सूर्य भी निरर्थक हो जाता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शत्रुघ्नके भवोंका वर्णन करनेवाला एकानववेवौ पर्व समाप्त हुआ ॥६१॥

द्विनवतितमं पर्व

विहरन्तोऽन्यदा प्राप्ता निर्ग्रन्था मथुरां पुरीम् । गगनायनिनः सप्त सप्तसप्तिसप्तस्त्रियः ॥१॥
सुरमन्युर्द्वितीयश्च श्रीमन्युरिति कीर्तितः । अन्यः श्रीनिचयो नाम तुरीयः सर्वसुन्दरः ॥२॥
पञ्चमो जयवान् ज्ञेयः षष्ठो विनयलालसः । चरमो जयमित्राख्यः सर्वे चारित्रसुन्दराः ॥३॥
राजः श्रीनन्दनस्यैते धरणीसुन्दरीभवाः । तनया जगति ख्याता गुणैः शुद्धैः प्रभापुरे ॥४॥
प्रीतिङ्करमुनीन्द्रस्य देवागममुदोच्य ते । प्रतिबुद्धाः समं पित्रा धर्मं कर्तुं समुद्यताः ॥५॥
मासजातं नृपो न्यस्य राज्ये डमरमङ्गलम् । प्रवव्राज समं पुत्रैर्वीरः प्रीतिङ्करान्तिके ॥६॥
केवलज्ञानमुत्पाद्य काले श्रीनन्दनोऽविशत् । सप्तर्षयस्त्वमी तस्य तनया मुनिसत्तमाः ॥७॥
काले विकालवकाले कन्दवृन्दानुत्तरे । न्यग्रोधतरुमूले ते योगं सन्मुनयः श्रिताः ॥८॥
तेषां तपःप्रभावेन चमरासुरनिर्मिता । मारी श्वशुरदृष्टेव नारी विटगताऽनशत् ॥९॥
घनजामृतसंसिक्ता मथुराविषयोर्वरा । अकृष्टपच्यसस्यौघैः सङ्घना सुमहाशयैः ॥१०॥
रोगेति परिनिर्मुक्ता मथुरानगरी शुभा । पितृदर्शनतुष्टेव रराज नविका वधुः ॥११॥
युक्तं बहुप्रकारेण रसत्यागादिकेन ते । षष्ठादिनोपवासेन चक्रुस्त्युक्तं तपः ॥१२॥
नभो निमेषमात्रेण विप्रकृष्टं विलङ्घ्य ते । चक्रुः पुरेषु विजयपोदनादिषु पारणाम् ॥१३॥

अथानन्तर किसी समय गगनगामी एवं सूर्यके समान कान्तिके धारक सात निर्ग्रन्थ मुनि विहार करते हुए मथुरापुरी आये । उनमेंसे प्रथम सुरमन्यु, द्वितीय श्रीमन्यु, तृतीय श्रीनिचय, चतुर्थ सर्वसुन्दर, पञ्चम जयवान्, षष्ठ विनयलालस और सप्तम जयमित्र नामके धारक थे । ये सभी चारित्रसे सुन्दर थे अर्थात् निर्दोष चारित्रके पालक थे । राजा श्रीनन्दनकी धरणी नामक रानीसे उत्पन्न हुए पुत्र थे, निर्दोष गुणोंसे जगत्में प्रसिद्ध थे तथा प्रभापुर नगरके रहने वाले थे ॥१-४॥ ये सभी, प्रीतिङ्कर मुनिराजके केवलज्ञानके समय देवोंका आगमन देख प्रतिबोधको प्राप्त हो पिताके साथ धर्म करनेके लिए उद्यत हुए थे ॥५॥ वीरशिरोमणि राजा श्रीनन्दन, डमर-मङ्गल नामक एक माहके बालकको राज्य देकर अपने पुत्रोंके साथ प्रीतिङ्कर मुनिराजके समीप दीक्षित हुए थे ॥६॥ समय पाकर श्रीनन्दन राजा तो केवलज्ञान उत्पन्न कर सिद्धालयमें प्रविष्ट हुए और उनके उक्त पुत्र उत्तम मुनि हो सप्तर्षि हुए ॥७॥ जहाँ परस्परका अन्तर कन्दोंके समूहसे आवृत्त था ऐसे वर्षाकालके समय वे सब मुनि मथुरा नगरीके समीप वटवृत्तके नीचे वर्षा योग लेकर विराजमान हुए ॥८॥ उन मुनियोंके तपके प्रभावसे चमरेन्द्रके द्वारा निर्मित महामारी उस प्रकार नष्ट हो गई जिस प्रकार कि श्वसुरके द्वारा देखी हुई विट मनुष्यके पास गई नारी नष्ट हो जाती है ॥९॥ अत्यधिक मेघोंसे सींची गई मथुराके देशोंकी उपजाऊ भूमि बिना जोते बखरे अर्थात् अनायास ही उत्पन्न होने वाले बहुत भारी धान्यके समूहसे व्याप्त हो गई ॥१०॥ उस समय रोग और ईतियोंसे छूटी शुभ मथुरा नगरी उस प्रकार सुशोभित हो रही थी, जिस प्रकार कि पिताके देखनेसे सन्तुष्ट हुई नई बहू सुशोभित होती है ॥११॥ वे सप्तर्षि नाना प्रकारके रस परित्याग आदि तथा वेला तैला आदि उपवासोंके साथ अत्यन्त उक्त तप करते थे ॥१२॥ वे अत्यन्त दूरवर्ती आकाशको निमेष मात्रमें लौंघकर विजयपुर, पोदनपुर आदि दूर-दूरवर्ती नगरोंमें

१. सूर्यसप्तकान्तयः । २. संसक्ता म० । ३. षष्ठादिनोप-म० ।

लब्धां परगृहे भिक्षां पाणिपात्रतलस्थिताम् । शरीरघृतिमात्राय जक्षुस्ते क्षणोत्तमाः ॥१४॥
 नभोमध्यगते भानावन्त्या ते महाशमाः । साकेतामविशन् वीरा युगमात्रावलोकिनः ॥१५॥
 शुद्धभिक्षैपणाकृताः प्रलम्बितमहाभुजाः । अर्हद्दत्तगृहं प्राप्ता भ्राम्यन्तस्ते यथाविधि ॥१६॥
 अर्हद्दत्तश्च सम्प्राप्तश्चिन्तामेतामसन्भ्रमः । वर्षाकालः क्व चेदत्तः क्व चेदं मुनिचेष्टितम् ॥१७॥
 प्राग्भारकन्दरासिन्धुतटे मूले च शाखिनः^१ । शून्यालये जिनागरे ये चान्यत्र क्वचित्स्थिताः ॥१८॥
 नगर्यां भ्रमणा अस्यां नेमे समयखण्डनम् । कृत्वा हिण्डनशीलत्वं प्रपद्यन्ते सुचेष्टिताः ॥१९॥
 प्रतिकूलितसूत्रार्था एते तु ज्ञानवज्रिताः । निराचार्या निराचाराः कथं कालेऽत्र हिण्डकाः ॥२०॥
 अकालेऽपि किल प्राप्ताः स्नुषयाऽस्य सुभक्त्या । तर्पिताः प्राप्तकाज्ञेन ते गृहीतार्थया तथा ॥२१॥
 आर्हतं भवन् जग्मुः शुद्धसंयतसङ्कुलम् । यत्र त्रिभुवनानन्दः स्थापितो मुनिसुवतः ॥२२॥
 चतुरहुलमानेन ते स्वकप्रणीतलाः । आयान्तो द्युतिना इष्टा लब्धिप्राप्ताः प्रसाधवः ॥२३॥
 पद्मधामेव जिनागारं प्रविष्टाः अद्भ्योद्भया । अभ्युत्थाननमस्यादिविधिना द्युतिनाचिताः ॥२४॥
 अस्मदीयोऽयमाचार्यो यत्किञ्चिद्वन्दनोद्यतः । इति ज्ञात्वा द्युतेः शिष्या दध्युः सप्तर्षिनिन्दनम्^२ ॥२५॥
 जिनेन्द्रवन्दनां कृत्वा सम्यक् स्तुतिपरायणाः । यातास्ते वियदुत्पत्य स्वमाश्रमपदं पुनः ॥२६॥
 चारणभ्रमणान् ज्ञात्वा मुनीस्ते मुनयः पुनः । स्वनिन्दनादिना युक्ताः साधुचित्तमुपागताः ॥२७॥

पारणा करते थे ॥१३॥ वे उत्तम मुनिराज परगृहमें प्राप्त एवं हस्तरूपी पात्रमें स्थित भिक्षाको केवल शरीरकी स्थिरताके लिए ही भक्षण करते थे ॥१४॥

अथानन्तर किसी एक दिन जब कि सूर्य आकाशके मध्यमें स्थित था तब महा शान्तिकी धारण करने वाले वे धीर-वीर मुनिराज जूड़ा प्रमाण भूमिको देखते हुए अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥१५॥ जो शुद्ध भिक्षा ग्रहण करनेके अभिप्रायसे युक्त थे और जिनकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं ऐसे वे मुनि विधि पूर्वक भ्रमण करते हुए अर्हद्दत्त सेठके घर पहुँचे ॥१६॥ उन मुनियोंको देखकर संभ्रमसे रहित अर्हद्दत्त सेठ इस प्रकार विचार करने लगा कि यह ऐसा वर्षा काल कहाँ और यह मुनियोंकी चेष्टा कहाँ ? ॥१७॥ इस नगरीके आस-पास प्राग्भार पर्वतकी कन्दराओंमें, नदीके तटपर, वृक्षके मूलमें, शून्य घरमें, जिनालयमें तथा अन्य स्थानोंमें जहाँ कहीं जो मुनिराज स्थित हैं उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाले वे मुनिराज समयका खण्डन कर अर्थात् वर्षा योग पूरा किये बिना इधर-उधर परिभ्रमण नहीं करते ॥१८-१९॥ परन्तु ये मुनि आगमके अर्थको विपरीत करनेवाले हैं, ज्ञानसे रहित हैं, आचार्योंसे रहित हैं और आचारसे भ्रष्ट हैं इसीलिए इस समय यहाँ घूम रहे हैं ॥२०॥ यद्यपि वे मुनि असमयमें आये थे तो भी अर्हद्दत्त सेठकी भक्त एवं अभिप्रायको ग्रहण करनेवाली वधूने उन्हें आहार देकर सन्तुष्ट किया था ॥२१॥ आहारके बाद वे शुद्ध-निर्दोष प्रवृत्ति करनेवाले मुनियोंसे व्याप्त अर्हन्त भगवान् के उस मन्दिरमें गये जहाँ कि तीन लोकको आनन्दित करनेवाले श्री मुनिसुवत भगवान्की प्रतिमा विराजमान थी ॥२२॥ अथानन्तर जो पृथिवीसे चार अंगुल ऊपर चल रहे थे ऐसे उन ऋद्धिधारी उत्तम मुनियोंको मन्दिरमें विद्यमान श्री द्युतिभट्टारकने देखा ॥२३॥ उन मुनियोंने उत्तम श्रद्धाके साथ पैदल चल कर ही जिन मन्दिरमें प्रवेश किया तथा द्युतिभट्टारकने खड़े होकर नमस्कार करना आदि विधिसे उनकी पूजा की ॥२४॥ 'यह हमारे आचार्य चाहे जिसकी वन्दना करनेके लिए उद्यत हो जाते हैं।' यह जानकर द्युतिभट्टारकके शिष्योंने उन सप्तर्षियोंकी निन्दा का विचार किया ॥२५॥ तदनन्तर सम्यक् प्रकारसे स्तुति करनेमें तत्पर वे सप्तर्षि, जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना कर आकाशमार्गसे पुनः अपने स्थानको चले गये ॥२६॥ जब वे आकाशमें उड़े तब उन्हें चारण ऋद्धिके धारक जान कर द्युतिभट्टारकके शिष्य जो अन्य मुनि थे वे अपनी

१. शालिनः म० । २. नन्दनम् म० । वन्दनम् ल० ।

अर्हद्वाय याताय जिनालयमिहान्तरे । द्युतिना गदितं दृष्टाः साधवः स्युस्त्वयोत्तमाः ॥२८॥
 वन्दिताः पूजिता वा स्युर्महासखा महीजसः । मथुराकृतसंवासा मयाऽमी कृतसंकथाः ॥२९॥
 महातपोधना दृष्टास्तेऽस्माभिः शुभचेष्टिताः । मुनयः परमोदारा वन्द्या गगनगामिनः ॥३०॥
 ततः प्रभात्रसाकर्ण्य साधूनां श्रावकाश्रिपः । तदा त्रिषण्णहृदयः पश्चात्तापेन तप्यते ॥३१॥
 धिक् सोऽहमगृहीतार्थः सम्यग्दर्शनवर्जितः । अयुक्तोऽसदाचारो न तुल्यो मेऽस्त्यधार्मिकः ॥३२॥
 मिथ्यादृष्टिः कुतोऽस्थान्यो मत्तः प्रत्यपरोऽधुना । अभ्युत्थायार्जितान् नखा साधवो यत्र तपिताः ॥३३॥
 साधुरूपं समालोक्य न मुञ्जत्यासनं तु यः । दृष्ट्वाऽपमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते ॥३४॥
 पापोऽहं पापकर्मा च पापात्मा पापभाजनम् । यो वा निन्द्यततः कश्चिज्जिनवाक्यबहिःकृतः ॥३५॥
 शरीरे मर्मसंपाते तावन्मे दह्यते मनः । यावदञ्जलिमुद्वृष्य साधवस्ते न वन्दिताः ॥३६॥
 अहंकारसमुत्थस्य पापस्यास्य न विद्यते । प्रायश्चित्तं परं तेषां मुनीनां वन्दनादृते ॥३७॥
 अथ ज्ञात्वा समासन्नं कार्तिकीं परमोत्सुकः । अर्हच्छ्रेष्ठो महादृष्टिर्नृपतुल्यपरिच्छदः ॥३८॥
 निर्जातमुनिमाहात्म्यः स्वनिन्दाकरणोद्यतः । सप्तर्षिपूजनं कर्तुं प्रस्थितो बन्धुभिः समम् ॥३९॥
 रथकुञ्जरपादात्तुरङ्गौघसमन्वितः । पूजां यौगेरवरीं कर्तुमसौ याति स्म सत्वरम् ॥४०॥
 समृद्ध्या परया युक्तः शुभध्यानपरायणः । कात्तिकामलसप्तम्यां प्राप्तः सातमुनं पदम् ॥४१॥

निन्दा गद्दी आदि करते हुए निर्मल हृदयको प्राप्त हुए अर्थात् जो मुनि पहले उन्हें उन्मार्गगामी समझकर उनकी निन्दाका विचार कर रहे थे वे ही मुनि अब उन्हें चारण ऋद्धिके धारक जान कर अपने अज्ञानकी निन्दा करने लगे तथा अपने चित्तकी कटुपताको उन्होंने दूर कर दिया ॥२७॥ इसी बीचमें अर्हद्दत्त सेठ जिन-मन्दिरमें आया सो द्युतिभङ्गारकने उससे कहा कि आज तुमने उत्तम मुनि देखे होंगे ? ॥२८॥ वे मुनि सबके द्वारा वन्दित हैं, पूजित हैं, महाधैर्य-शाली हैं, एवं महाप्रतापी हैं । वे मथुराके निवासी हैं और उन्होंने मेरे साथ वार्तालाप किया है ॥२९॥ महातपश्चरण ही जिनका धन है, जो शुभ चेष्टाओंके धारक हैं, अत्यन्त उदार हैं, वन्दनीय हैं और आकाशमें गमन करनेवाले हैं ऐसे उन मुनियोंके आज हमने दर्शन किये हैं ॥३०॥ तदनन्तर द्युतिभङ्गारकसे साधुओंका प्रभाव सुनकर अर्हद्दत्त सेठ बहुत ही खिन्न चित्त हो पश्चात्तापसे संतप्त हो गया ॥३१॥ वह विचार करने लगा कि यथार्थ अर्थको नहीं समझने वाले मुझ मिथ्यादृष्टिको धिक्कार हो । मेरा अनिष्ट आचरण अयुक्त था, अनुचित था, मेरे समान दूसरा अधार्मिक नहीं है ॥३२॥ इस समय मुझसे बढ़कर दूसरा मिथ्यादृष्टि कौन होगा जिसने उठ कर मुनियोंकी पूजा नहीं की तथा नमस्कार कर उन्हें आहारसे सन्तुष्ट नहीं किया ॥३३॥ जो मुनिको देखकर आसन नहीं छोड़ता है तथा देख कर उनका अपमान करता है वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है ॥३४॥ मैं पापी हूँ, पापकर्मा हूँ, पापात्मा हूँ, पापका पात्र हूँ अथवा जिनागमकी श्रद्धासे दूर रहनेवाला जो कोई निन्द्यतम है वह मैं हूँ ॥३५॥ जब तक मैं हाथ जोड़कर उन मुनियोंकी वन्दना नहीं कर लेता तब तक शरीर एवं मर्मस्थलमें मेरा मन दाहको प्राप्त होता रहेगा ॥३६॥ अहंकारसे उत्पन्न हुए इस पापका प्रायश्चित्त उन मुनियोंकी वन्दनाके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता ॥३७॥ अथानन्तर कार्तिकी पूर्णिमाको निकटवर्ती जानकर जिसकी उत्सुकता बढ़ रही थी, जो महासम्यग्दृष्टि था, राजाके समान वैभवका धारक था, मुनियोंके माहात्म्यको अच्छी तरह जानता था, तथा अपनी निन्दा करनेमें तत्पर था ऐसा अर्हद्दत्त सेठ सप्तर्षियोंकी पूजा करनेके लिए अपने बन्धुजनोंके साथ मथुराकी ओर चला ॥३८-३९॥ रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंके समूहके साथ वह सप्तर्षियोंकी पूजा करनेके लिए बड़ी शीघ्रतासे जा रहा था ॥४०॥ परम समृद्धिसे युक्त एवं शुभध्यान करनेमें तत्पर रहनेवाला वह सेठ कार्तिक शुक्ला सप्तमीके दिन सप्तर्षियोंके

तत्राप्युत्तमसम्यक्त्वो विधाय मुनिवन्दनाम् । पूजोपकरणं कर्तुमुद्यतः सर्वयत्नतः ॥४२॥
 प्रयानाटकसङ्गीतशालादिपरिराजितम् । जातं तदाश्रमस्थानं स्वर्गदेशमनोहरम् ॥४३॥
 तं वृत्तान्तं समाकर्ण्य शत्रुघ्नः स्वतुरीयकः । महानुरङ्गमारूढः ससमुन्वन्तिकं ययौ ॥४४॥
 मुनीनां परथा भक्त्या पुत्रस्नेहाच्च पुष्कलान् । माताऽप्यस्य गता पश्चात् समुद्रप्राहितकोष्ठिका ॥४५॥
 ततः प्रणम्य भक्तात्मा सम्मदी रिपुमर्दनः । मुनीन् समास्रनियमान् पारणार्थमयाचत ॥४६॥
 तत्रोक्तं मुनिमुख्येन नरपुङ्गव कल्पितम् । उपेक्ष्य भोक्तुमाहारं संयतानां न वर्त्तते ॥४७॥
 भक्त्यकारितां भिक्षां मनसा नानुमोदिताम् । गृह्णतां विधिना युक्तां तपः पुष्यति योगिनाम् ॥४८॥
 सतो जगाद् शत्रुघ्नः प्रसादं मुनिपुङ्गवाः । भवेदं कर्तुमर्हन्ति विज्ञापकसुवत्सलाः ॥४९॥
 कियन्तमपि कालं मे नगर्यामिह तिष्ठत । शिवं सुभिच्छमेतस्यां प्रजानां येन जायते ॥५०॥
 आगतेषु भवत्स्वेषा समृद्धा सर्वतोऽभवत् । नष्टापातेषु नलिनी यथा विसरदुरत्सवा ॥५१॥
 इत्युक्त्वाऽचिन्तयच्छ्राद्धः कदा नु खलु वाञ्छितम् । अन्नं दास्यामि साधुभ्यो विधिना सुसमाहितः ॥५२॥
 अथ श्रेणिक शत्रुघ्नं निरीच्याऽऽनतमरतकम् । कालानुभावमाचक्षौ यथावन्मुनिसत्तमः ॥५३॥
 धर्मनन्दनकालेषु व्ययं यातेऽवनुकमात् । भविष्यति प्रचण्डोऽत्र निर्धर्मसमयो महान् ॥५४॥
 दुःपाषण्डैरिदं जैनं शासनं परमोन्नतम् । तिरोधायिष्यते क्षुद्रैर्जोभिर्भानुबिम्बवत् ॥५५॥

स्थान पर पहुँच गया ॥४१॥ वहाँ उत्तम सम्यक्त्वको धारण करनेवाला वह श्रेष्ठ मुनियोंकी वन्दना कर पूर्ण प्रयत्नसे पूजाकी तैयारी करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४२॥ प्याऊ, नाटक-गृह तथा संगीत-शाला आदिसे सुशोभित वह आश्रमका स्थान स्वर्गप्रदेशके समान मनोहर हो गया ॥४३॥ यह वृत्तान्त सुन राजा दशरथका चतुर्थ पुत्र शत्रुघ्न महानुरङ्ग पर सवार हो सप्तर्षियोंके समीप गया ॥४४॥ मुनियोंकी परम भक्ति और पुत्रके अत्यधिक स्नेहसे उसकी माता सुप्रजा भी खजाना लेकर उसके पीछे आ पहुँची ॥४५॥

तदनन्तर भक्त हृदय एवं हर्षसे भरे शत्रुघ्ने नियमको पूर्ण करनेवाले मुनियोंको नमस्कार कर उनसे पारणा करनेकी प्रार्थना की ॥४६॥ तब उन मुनियोंमें जो मुख्य मुनि थे उन्होंने कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! जो आहार मुनियोंके लिए संकल्प कर बनाया जाता है उसे ग्रहण करनेके लिए मुनि प्रवृत्ति नहीं करते ॥४७॥ जो न स्वयं की गई है, न दूसरेसे कराई गई और न मनसे जिसकी अनुमोदना की गई है ऐसी भिक्षाको विधि पूर्वक ग्रहण करनेवाले योगियोंका तप पुष्ट होता है ॥४८॥ तदनन्तर शत्रुघ्ने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठो ! आप प्रार्थना करनेवालों पर अत्यधिक स्नेह रखते हैं अतः हमारे ऊपर यह प्रसन्नता करनेके योग्य हैं कि आप कुछ काल तक मेरी इस नगरीमें और ठहरिये जिससे कि इसमें रहनेवाली प्रजाको आनन्ददायी सुभिच्छकी प्राप्ति हो सके ॥४९-५०॥ आप लोगोंके आने पर यह नगरी उस तरह सब ओरसे समृद्ध हो गई है जिस तरह कि वर्षाके नष्ट हो जाने पर कमलिनी सब ओरसे समृद्ध हो जाती है—खिल उठती है ॥५१॥ इतना कहकर श्रद्धासे भरा शत्रुघ्न चिन्ता करने लगा कि मैं प्रसाद रहित हो विधि पूर्वक मुनियोंके लिए मन वाञ्छित आहार कब दूंगा ॥५२॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! शत्रुघ्नको नतमरतक देखकर उन उत्तम मुनिराजने उसके लिए यथायोग्य कालके प्रभावका निरूपण किया ॥५३॥ उन्होंने कहा कि जब अनुक्रमसे तीर्थकरोंका काल व्यतीत हो जायगा तब यहाँ धर्मकर्मसे रहित अत्यन्त भयंकर समय होगा ॥५४॥ दुष्ट पाखण्डी लोगोंके द्वारा यह परमोन्नत जैन शासन उस तरह तिरोहित हो जायगा जिस तरह कि धूलिके छोटे-छोटे कणोंके द्वारा सूर्यका बिम्ब तिरोहित हो जाता है ॥५५॥ उस

श्मशानसदृशा भ्रामाः प्रेतलोकोपमाः पुरः । विलष्टा जनपदाः कुत्स्या भविष्यन्ति दुरीहिताः ॥५६॥
 कुकर्मनिरतैः क्रूरैश्चौरैरिव निरन्तरम् । दुःपाषण्डैरयं लोको भविष्यति समाकुलः ॥५७॥
 महीतलं खलं द्रव्यपरिमुक्ताः कुटुम्बिनः । हिंसाक्लेशसहस्राणि भविष्यन्तीह सन्ततम् ॥५८॥
 पितरौ प्रति निःस्नेहाः पुत्रास्तौ च सुतान् प्रति । चौरा इव च राजानो भविष्यन्ति कलौ सति ॥५९॥
 सुखिनोऽपि नराः केचिन् मोहयन्तः परस्परम् । कथाभिर्दुर्गतीशाभी रंस्यन्ते पापमानसाः ॥६०॥
 नश्यन्त्यतिशयाः सर्वे त्रिदशागमनादयः । कषायबहुले काले शत्रुघ्न ! समुपागते ॥६१॥
 जातरूपधरान् इष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान् । सञ्जुगुप्सां करिष्यन्ति महामोहान्त्रिता जनाः ॥६२॥
 अप्रशस्ते प्रशस्तत्वं मन्यमानाः कुचेतसः । भयपक्षे पतिष्यन्ति पतङ्गा इव मानवाः ॥६३॥
 प्रशान्तहृदयान् साधून् निर्भर्त्स्यं विहस्येद्यताः । मूढा मूढेषु दास्यन्ति केचिदन्नं प्रथमतः ॥६४॥
 इत्यमेतं निराकृत्य प्राहूयान्यं समागतम् । यतिनो मोहिनो देयं दास्यन्त्यहितभावनाः ॥६५॥
 बीजं शिलातले न्यस्तं सिच्यमानं सदापि हि । अनर्थकं यथा दानं तथाशीलेषु गेहिनाम् ॥६६॥
 अवज्ञाय मुनीन् गेही गेहिने यः प्रयच्छति । त्यक्त्वा स चन्दनं मूढो गृह्णात्येव विभीतकम् ॥६७॥
 इति ज्ञात्वा समायातं कालं दुःषमताधमम् । विघ्नस्वात्महितं किञ्चित्स्थिरं कार्यं शुभोदयम् ॥६८॥
 नामग्रहणकोऽस्माकं भिक्षावृत्तिमवाससाम् । परिकल्पय तत्सारं तव द्रविणसम्पदः ॥६९॥
 आगमिष्यति काले सा श्रान्तानां त्यक्तवेरमनाम् । भविष्यत्याश्रयो राजन् स्वगृहाशयसम्मिता ॥७०॥

समय भ्राम श्मशानके समान, नगर यमलोकके समान और देश क्लेशसे युक्त निन्दित तथा दुष्ट चेष्टाओंके करनेवाले होंगे ॥५६॥ यह संसार चोरोंके समान कुकर्ममें निरत तथा क्रूर दुष्ट पाषण्डी लोगोंसे निरन्तर व्याप्त होगा ॥५७॥ यह पृथिवीतल दुष्ट तथा गृहस्थ निर्धन होंगे साथ ही यहाँ हिंसा सम्बन्धी हज़ारों दुःख निरन्तर प्राप्त होते रहेंगे ॥५८॥ पुत्र, माता-पिताके प्रति और माता-पिता पुत्रोंके प्रति स्नेह रहित होंगे तथा कलिकालके प्रकट होने पर राजा लोग चोरोंके समान धनके अपहर्ता होंगे ॥५९॥ कितने ही मनुष्य यद्यपि सुखी होंगे तथापि उनके मनमें पाप होगा और वे दुर्गतिको प्राप्त करानेमें समर्थ कथाओंसे परस्पर एक दूसरेको मोहित करते हुए क्रीड़ा करेंगे ॥६०॥ हे शत्रुघ्न ! कषाय बहुल समयके आने पर देवागमन आदि समस्त अतिशय नष्ट हो जावेंगे ॥६१॥ तीव्र मिथ्यात्वसे युक्त मनुष्य व्रत रूप गुणोंसे सहित एवं दिगम्बर मुद्राके धारक मुनियोंको देखकर ग्लानि करेंगे ॥६२॥ अप्रशस्तको प्रशस्त मानते हुए कितने ही दुर्हृदय लोग भयके पक्षमें उस तरह जा पड़ेंगे जिस तरह कि पतङ्गे अग्निमें जा पड़ते हैं ॥६३॥ हँसी करनेमें उद्यत कितने ही मूढ मनुष्य शान्त चित्त मुनियोंको तिरस्कृत कर मूढ मनुष्योंके लिए आहार देवेंगे ॥६४॥ इस प्रकार अनिष्ट भावनाको धारण करनेवाले गृहस्थ उत्तम मुनिका तिरस्कार कर तथा मोही मुनिको बुलाकर उसके लिए योग्य आहार आदि देंगे ॥६५॥ जिस प्रकार शिलातल पर रखा हुआ बीज यद्यपि सदा सींचा जाय तथापि निरर्थक होता है—उसमें फल नहीं लगता है उसी प्रकार शील रहित मनुष्योंके लिए दिया हुआ गृहस्थोंका दान भी निरर्थक होता है ॥६६॥ जो गृहस्थ मुनियोंकी अवज्ञाकर गृहस्थके लिए आहार आदि देता है वह मूर्ख चन्दनको छोड़कर बहेड़ा ग्रहण करता है ॥६७॥ इस प्रकार दुःषमताके कारण अधम कालको आया जान आत्माका हित करनेवाला कुल्ल शुभ तथा स्थायी कार्य कर ॥६८॥ तू नामी पुरुष है अतः निर्भ्रन्थ मुनियोंकी भिक्षावृत्ति देनेका निश्चय कर । यही तेरी धन-सम्पदाका सार है ॥६९॥ हे राजन् ! आगे आनेवाले कालमें थके हुए मुनियोंके लिए भिक्षा देना अपने गृहदानके समान एक बड़ा भारी आश्रय होगा

१. विहस्येद्यताः म० । २. प्राहूयान्यसमागतं म० । ३. स्थिरं कार्यं म० । ४. पुस्तके ६८ तः ७१ पर्यन्ताः श्लोका न सन्ति ।

सस्माद्दानमिदं दत्त्वा वत्स स्वमधुना भज । सागारशीलनियमं कुरुजन्मार्थसङ्गतम् ॥७१॥
जायतां मथुरालोकः सम्यग्धर्मपरायणः । दयावात्सल्यसम्पन्नो जिनशासनभाषितः ॥७२॥
स्थाप्यन्तां जिनबिम्बानि पूजितानि गृहे गृहे । अभिषेकाः प्रवर्त्यन्तां विधिना पादयतां प्रजा ॥७३॥
सप्तर्षिप्रतिमा दिक्षु चतसृष्वपि यत्नतः । नगर्यां कुरु शत्रुघ्न तेन शान्तिर्भविष्यति ॥७४॥
अद्यप्रभृति यद्गोहे बिम्बं जैनं न विद्यते । मारी भक्षयति यद्वाघ्री यथाऽनाथं कुरङ्गकम् ॥७५॥
यस्यांगुष्ठप्रमाणायपि जैनेन्द्री प्रतिमातना । गृहे तस्य न मारी स्यात्तार्क्ष्यभीता यथोरगी ॥७६॥
यथाऽऽज्ञापयस्वीत्युक्ताः शत्रुघ्नेन प्रमोदिना । समुत्पत्य नभो याताः सावयवः साधुवाञ्छिताः ॥७७॥
अथ निर्वाणधामानि परिसृत्य प्रदक्षिणम् । मुनयो जानकीगोहमवतेरुः शुभायनाः ॥७८॥
वहन्ती सम्मदं तुङ्गं श्रद्धादिगुणशालिनी । परमान्नेन तान् सीता विधियुक्तमपारयत् ॥७९॥
जानक्या भक्तितो दसमन्मं सर्वगुणान्वितम् । भुक्त्वा पाणितले दस्वाऽऽशीर्वादं मुनयो ययुः ॥८०॥
नगर्यां बहिरन्तश्च शत्रुघ्नः प्रतिमास्ततः । अतिष्ठिपज्जिनेन्द्राणां प्रतिमौरहितात्मनाम् ॥८१॥
सप्तर्षिप्रतिमाश्चापि काष्ठासु चतसृष्वपि । अस्थापयन्मनोज्ञाऽऽ सर्वैतिकृतवारणाः ॥८२॥
पृष्ठे त्रिविष्टपस्यैव पुरमन्यां न्यवेशयत् । मनोज्ञां सर्वतः स्फीतां सर्वोपद्रववर्जिताम् ॥८३॥
योजनत्रयविस्तारां सर्वतस्त्रिगुणां च यत् । अधिकां मण्डलत्वेन स्थितामुत्तमतेजसम् ॥८४॥
आपातालतलाद् भिन्नमूलाः पृथ्व्यो मनोहराः । परिष्ठां भाति सुमहार्सालवासगृहोपमा ॥८५॥

इसलिए हे वत्स ! तू यह दान देकर इस समय गृहस्थके शीलव्रतका नियम धारण कर तथा अपना जीवन सार्थक बना ॥७०-७१॥ मथुराके समस्त लोग समीचीन धर्मके धारण करनेमें तत्पर, दया और वात्सल्य भावसे सम्पन्न तथा जिन शासनकी भावनासे युक्त हों ॥७२॥ घर-घरमें जिन-प्रतिमाएँ स्थापित की जावें, उनकी पूजाएँ हों, अभिषेक हों और विधिपूर्वक प्रजाका पालन किया जाय ॥७३॥ हे शत्रुघ्न ! इस नगरीकी चारो दिशाओंमें सप्तर्षियोंकी प्रतिमाएँ स्थापित करो । उसीसे सब प्रकारकी शान्ति होगी ॥७४॥ आजसे लेकर जिस घरमें जिन-प्रतिमा नहीं होगी उस घरको मारी उस तरह खा जायगी जिस तरह कि व्याघ्री अनाथ मृगको खा जाती है ॥७५॥ जिसके घरमें अंगूठा प्रमाण भी जिन-प्रतिमा होगी उसके घरमें गरुड़से डरी हुई सर्पिणीके समान मारीका प्रवेश नहीं होगा ॥७६॥ तदनन्तर 'जैसी आप आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार हर्षसे युक्त सुमीवने कहा और उसके बाद उत्तम अभिप्रायको धारण करनेवाले वे सभी साधु आकाशमें उड़कर चले गये ॥७७॥

अथानन्तर निर्वाण क्षेत्रोंकी प्रदक्षिणा देकर शुभगतिको धारण करनेवाले वे मुनिराज सीता के घरमें उतरे ॥७८॥ सो अत्यधिक हर्षको धारण करनेवाली एवं श्रद्धा आदि गुणोंसे सुशोभित सीताने उन्हें विधि पूर्वक उत्तम अन्नसे पारणा कराई ॥७९॥ जानकीके द्वारा भक्ति पूर्वक दिये हुए सर्वगुणसम्पन्न अन्नको अपने हस्ततलमें ग्रहणकर तथा आशीर्वाद देकर वे मुनि चले गये ॥८०॥ तदनन्तर शत्रुघ्नेन नगरके भीतर और बाहर सर्वत्र उपमा रहित जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमाएँ स्थापित कराई ॥८१॥ और सुन्दर अवयवों की धारक तथा समस्त ईतियोंका निवारण करनेवाली सप्तर्षियोंकी प्रतिमाएँ भी चारों दिशाओंमें विराजमान कराई ॥८२॥ उसने एक दूसरी ही नगरीकी रचना कराई जो ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्गके ऊपर ही रची गई हो । वह सब ओरसे मनोहर थी, विस्तृत थी, सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित थी, तीन योजन विस्तार वाली थी, सब ओरसे त्रिगुण थी, विशाल थी, मण्डलाकारमें स्थित थी और उत्तम तेजकी धारक थी ॥८३-८४॥ जिनकी जड़ें पातालतक फूटी थीं ऐसी सुन्दर वहाँ की भूमियाँ थीं तथा जो बड़े-

१. प्रतिमा । २. -त्युक्त्वा म०, ज० । ३. पारणां कारयामास । ४. उपमारहितानाम् । ५. पुरी ज० ।

६. अधिकं म० । ७. परितो म० । ८. शाल म० ।

उद्यानान्यधिकां शोभां दधुः पुष्पफलाकुलाम् । वाप्यः पद्मोत्पलच्छा जाताः शकुनिनादिताः ॥८६॥
 कैलाससानुसङ्काशाः प्रासादाश्चारुलक्षणाः । विमानप्रतिमा रेजुः विलोचनमलिम्लुचाः ॥८७॥
 सुवर्णधान्यरत्नाढ्याः सम्मेदशिखरोपमाः । नरेन्द्रख्यातयः श्लाघ्या जाताः सर्वकुटुम्बिनः ॥८८॥
 राजानस्त्रिदशैस्तुल्या असमानविभूतयः । धर्मार्थकामसंसक्ताः साधुचेष्टापरायणाः ॥८९॥
 प्रयच्छन्निच्छया तेषामाज्ञा विज्ञानसङ्गतः । रराज पुरि शत्रुघ्नः सुराणां वरुणो यथा ॥९०॥

आर्यागीतिच्छन्दः

एवं मथुरापुर्यां निवेशमत्यद्भुतं च सन्तर्पणाम् ।
 श्रुत्वा कथयन्वापि प्राप्नोति जनश्रुतुष्टयं भद्रनरम् ॥९१॥
 साधुसमागमसक्ताः पुरुषाः सर्वमनीषितं सेवन्ते ।
 तस्मात् साधुसमागममाश्रित्य सदाश्रवेः समाश्रय दीप्ताः ॥९२॥

इत्यार्षे श्रीरविपेर्याचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मथुरापुरीनिवेशाऋषिदानगुणोपसर्गाहननामिधानं
 नाम द्विनवतितमं पर्व ॥९२॥

बड़े वृक्षोंके निवास गृहके समान जान पड़ती थीं ऐसी परिखा उसके चारों ओर सुशोभित ही रही थी ॥८५॥ वहाँके बाग-बगीचे फूलों और फलोंसे युक्त अत्यधिक शोभाको धारण कर रहे थे और कमल तथा कुमुदोंसे आच्छादित वहाँकी वापिकाएँ पक्षियोंके नादसे मुखरित हो रही थीं ॥८६॥ जो कैलासके शिखरोंके समान थे, सुन्दर-सुन्दर लक्ष्णोंसे युक्त थे, तथा नेत्रोंके चोर थे ऐसे वहाँके भवन विमानोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥८७॥ वहाँके सर्व कुटुम्बी सुवर्ण अनाज तथा रत्न आदिसे सम्पन्न थे, सम्मेद शिखरकी उपमा धारण करते थे, राजाओंके समान प्रसिद्धिसे युक्त तथा अत्यन्त प्रशंसनीय थे ॥८८॥ वहाँके राजा देवोंके समान अनुपम विभूतिके धारक थे, धर्म, अर्थ और काममें सदा आसक्त रहते थे तथा उत्तम चेष्टाओंके करनेमें निपुण थे ॥८९॥ इच्छानुसार उन राजाओंपर आज्ञा चलाता हुआ विशिष्ट ज्ञानी शत्रुघ्न मथुरा नगरीमें उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि देवोंपर आज्ञा चलाता हुआ वरुण सुशोभित होता है ॥९०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जो इस प्रकार मथुरापुरीमें सप्तर्षियोंके निवास और उनके आश्रयकारी प्रभावको सुनता अथवा कहता है वह शीघ्र ही चारों प्रकारके मङ्गलको प्राप्त होता है ॥९१॥ जो मनुष्य साधुओंके समागममें सदा तत्पर रहते हैं वे सर्व मनोरथोंको प्राप्त होते हैं इसीलिए हे सत्पुरुषो! साधुओंका समागमकर सदा सूर्यके समान देदीप्यमान होओ ॥९२॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविपेर्याचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मथुरापुरीमें सप्तर्षियोंके निवास, दान, गुण तथा उपसर्गके नष्ट होनेका वर्णन करनेवाला बानबेवों पर्व समाप्त हुआ ॥९२॥

त्रिनवतितमं पर्व

अथ रत्नपुरं नाम विजयार्द्धेऽस्ति दक्षिणम् । पुरं रत्नरथस्तत्र राजा विद्याधराधिपः ॥१॥
मनोरमेति तस्यास्ति दुहिता रूपशालिनी । पूर्णचन्द्राननाऽभिरयमहिपीकुञ्जिसम्भवा ॥२॥
समीच्य यौवनं तस्या नवं राजा सुचेतनः । वरान्वेषणशीमुष्या बभूव परमाकुलः ॥३॥
मन्त्रिभिः सह सङ्गम्य स चक्रे सम्प्रधारयाम् । कस्मै योग्याय यच्छ्यामः कुमारीमेतकामिति ॥४॥
पूर्वं दिनेषु गच्छसु राक्षि चिन्तावशाकृते । कदाचिन्नारदः प्रासस्ततः स मानमाप च ॥५॥
तस्मै विदितनिःशेषलोकचेष्टितबुद्धये । राजा प्रस्तुतमाचख्यौ सुखासीनाय सादरः ॥६॥
अवद्वारं जगौ राजन् विज्ञातो भवता न किम् । आता युगप्रधानस्य पुंसो लाङ्गललक्ष्मणः ॥७॥
विभ्रागः परमां लक्ष्मीं लक्ष्मणश्चासृज्जणः । चक्रानुभावविनतसमस्तप्रतिमानत्रः ॥८॥
तस्येयं सदृशी कन्या हृदयानन्ददायिनी । ज्योत्स्ना कुमुदखण्डस्य यथा परमसुन्दरी ॥९॥
एवं प्रभाषमाणेऽस्मिन् रत्नस्यन्दनसूनवः । क्रुद्धा हरिमनोवातवेराद्या मानशालिनः ॥१०॥
स्मृत्वा स्वजनवातोऽथ वैरं प्रत्यग्रमुन्नतम् । जगुः काळाम्निवर्हासाः परिस्फुरितविग्रहाः ॥११॥
अद्यैव व्यतिपास्याऽऽशु समाहूय दुरीहितः । अस्माभिर्यो विहन्तव्यस्तस्मै कन्या न दीयते ॥१२॥
इत्युक्ते राजपुत्रभ्रुविकारपरिचोदितैः । किङ्करोवैस्वद्वारः पादाकर्षणमापितः ॥१३॥
नभस्तलं समुपत्य ततः सुरमुनिदुर्गतम् । साकेतायां सुमित्राजमुपसृतो महादरः ॥१४॥
अस्य विस्तरतो वार्तां निवेद्य भुवनस्थिताम् । कन्यायाश्च विशेषेण व्यक्तक्रीतुकलक्षणः ॥१५॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण दिशामें रत्नपुर नामका नगर है । वहाँ विद्याधरोंका राजा रत्नरथ राज्य करता था ॥१॥ उसकी पूर्ण चन्द्रानना नामकी रानीके उदरसे उत्पन्न मनोरमा नामकी रूपवती पुत्री थी ॥२॥ पुत्रीका नव-यौवन देख विचारवान् राजा वरके अन्वेषणकी बुद्धिसे परम आकुल हुआ ॥३॥ 'यह कन्या किस योग्य वरके लिए देवें, इस प्रकार उसने मन्त्रियों के साथ मिलकर विचार किया ॥४॥ इस तरह राजाके चिन्ताकुल रहते हुए जब कितने ही दिन बीत गये तब किसी समय नारद आये और राजासे उन्होंने सम्मान प्राप्त किया ॥५॥ जिनकी बुद्धि समस्त लोककी चेष्टाको जाननेवाली थी ऐसे नारद जब सुखसे बैठ गये तब राजाने आदरके साथ उनसे प्रकृत बात कही ॥६॥ इसके उत्तरमें अवद्वार नामके धारक नारदने कहा कि हे राजन्! क्या आप इस युगके प्रधान पुरुष श्री रामके भाई लक्ष्मणको नहीं जानते? वह लक्ष्मण उत्कृष्ट लक्ष्मीको धारण करनेवाला है, सुन्दर लक्षणोंसे सहित है तथा चक्रके प्रभावसे उसने समस्त शत्रुओंको नतमस्तक कर दिया है ॥७-८॥ सो जिस प्रकार चन्द्रिका कुमुदवनको आनन्द देनेवाली है उसी प्रकार हृदयको आनन्द देनेवाली यह परम सुन्दरी कन्या उसके अनुरूप है ॥९॥ नारदके इस प्रकार कहने पर रत्नरथके हरिवेग, मनोवेग तथा वायुवेग आदि अभिमानी पुत्र-कुपित हो उठे ॥१०॥ आत्मीय जनोंके घातसे उत्पन्न अत्यधिक नूतन वैरका स्मरण कर वे प्रलय कालकी अग्निके समान प्रदीप्त हो उठे तथा उनके शरीर क्रोधसे काँपने लगे । उन्होंने कहा कि जिस दुष्टको आज ही जाकर तथा शीघ्र ही बुलाकर हमलोगोंको मारना चाहिए उसके लिए कन्या नहीं दी जाती है ॥११-१२॥ इतना कहने पर राजपुत्रोंकी भौंहोंके विकारसे प्रेरित हुए किङ्करोके समूहने नारदके पैर पकड़ कर खींचना चाहा परन्तु उसी समय देवर्षि नारद शीघ्र ही आकाश-तलमें उड़ गये और बड़े आदरके साथ अयोध्या नगरीमें लक्ष्मणके समीप जा पहुँचे ॥१३-१४॥ पहले तो नारदने विस्तरके साथ लक्ष्मणके लिए समस्त संसारकी वार्ता सुनाई और उसके बाद

कन्यामदर्शयश्चित्रे चित्रां हविचत्तहारिणीम् । त्रैलोक्यसुन्दरीशोभामेकीकृत्येव निर्मिताम् ॥१६॥
तां समालोक्य सौमित्रिः पुस्तनिष्कम्पलोचनः । अनन्यजस्य वीरोऽपि परिप्राप्तोऽतिवश्यताम् ॥१७॥
अचिन्तयच्च यद्येतच्छीरत्नं न लभे ततः । इदं मे निष्फलं राज्यं शून्यं जीवितमेव वा ॥१८॥
उवाच चादरं बिभ्रद् भगवन् गुणकौत्सनन् । कुर्वन् मम कुमारैस्तैः कथं वा त्वं खलीकृतः ॥१९॥
प्रचण्डत्वमिदं तेषां पापानां विद्धिपाम्यहम् । अलमीहितकार्याणां क्षुद्राणां निहतात्मनाम् ॥२०॥
वज्र स्त्रास्थ्यं रजः शुद्धं त्वं मूर्धानमाश्रितम् । पादस्तु शिरसि न्यस्तो मदीयेऽसौ महामुने ॥२१॥
हृद्युक्त्वाऽऽह्वाय संरब्धो विरावितल्लगोरवरम् । जगाद् लक्ष्मणो रत्नपुरं गम्यं त्वरान्वितम् ॥२२॥
तस्माद्देश्य पन्थानमित्युक्तः स रणोत्कटः । लेखैराह्वाय यत् सर्वान् तीव्राज्ञः खेचराधिपान् ॥२३॥
महेन्द्रविन्ध्यकिष्किन्धमलयादिपुराधिपाः । विमानाच्छ्लादितोऽऽकाशः साकेतामागतास्ततः ॥२४॥
वृत्तस्तैः सुमहासैन्यैर्लक्ष्मणो विजयोन्मुखः । लोकपालैर्यथा लेखो यथौ पद्मपुरःसरः ॥२५॥
नानाशस्त्रदलप्रस्तदिवाकरमरीचयः । प्राप्ता रत्नपुरं भूपाः सितच्छत्रोपशोभिताः ॥२६॥
ततः परबलं प्राप्तं ज्ञात्वा रत्नपुरो नृपः । साकं समस्तसामन्तैः सङ्ख्यबुज्युर्विनियवौ ॥२७॥
तेन निष्क्रान्तमात्रेण महारभसधारिणा^१ । विस्तीर्णदक्षिणं सैन्यं चणं प्रस्तमिवाभवत् ॥२८॥
चक्रक्रकचबाणासिकुन्तपाशगदादिभिः । बभूव गहनं तेषां युद्धमुद्धतयोद्धवम् ॥२९॥

मनोरमा कन्याकी वार्ता विशेष रूपसे बतलाई । उसी समय कौतुकके चिह्न प्रकट करते हुए नारदने चित्रपटमें अङ्कित वह अद्भुत कन्या दिखाई । वह कन्या नेत्र तथा हृदयको हरनेवाली थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो तीन लोककी सुन्दरियोंकी शोभाको एकत्रित कर ही बनाई गई हो ॥१६-१९॥ उस कन्याको देखकर जिसके नेत्र मृण्मय पुतलेके समान निश्चल हो गये थे ऐसा लक्ष्मण वीर होने पर भी कामके वशीभूत हो गया ॥१७॥ वह विचार करने लगा कि यदि यह क्षीरत्न मुझे नहीं प्राप्त होता है तो मेरा यह राज्य निष्फल है तथा यह जीवन भी सूना है ॥१८॥ आदरको धारण करते हुए लक्ष्मणने नारदसे कहा कि हे भगवन् ! मेरे गुणोंका निरूपण करते हुए आपको उन कुमारोंने दुःखी क्यों किया ? ॥१९॥ कार्यका विचार नहीं करनेवाले उन हृदयहीन पापी लुद्र पुरुषोंकी इस प्रचण्डताको मैं अभी हाल नष्ट करता हूँ ॥२०॥ हे महामुने ! उन कुमारोंने जो पादप्रहार किया है सो उसकी धूलि आपके मस्तकका आश्रय पाकर शुद्ध हो गई है और उस पादप्रहारको मैं समझता हूँ कि वह मेरे मस्तक पर ही किया गया है अतः आप स्वस्थताको प्राप्त हों ॥२१॥ इतना कहकर क्रोधसे भरे लक्ष्मणने विराधित नामक विद्याधरोंके राजाको बुलाकर कहा कि मुझे शीघ्र ही रत्नपुर पर चढ़ाई करनी है ॥२२॥ इसलिए मार्ग दिखाओ । इस प्रकार कहने पर कठिन आज्ञाको धारण करनेवाले उस रणवीर विराधितने पत्र लिखकर समस्त विद्याधर राजाओंको बुला लिया ॥२३॥

तदनन्तर महेन्द्र, विन्ध्य, किष्किन्ध और मलय आदि पर्वतोंपर बसे नगरोंके अधिपति, विमानोंके द्वारा आकाशको आच्छादित करते हुए अयोध्या आ पहुँचे ॥२४॥ बहुत भारी सेनासे सहित उन विद्याधर राजाओंके द्वारा विरा हुआ लक्ष्मण विजयके समुत्सव हो रामचन्द्रजीको आगे कर उस प्रकार चला जिस प्रकार कि लोकपालोंसे धिरा हुआ देव चलता है ॥२५॥ जिन्होंने नाना शस्त्रोंके समूहसे सूर्यकी किरणें आच्छादित कर ली थीं तथा जो सफेद छत्रोंसे सुशोभित थे ऐसे राजा रत्नपुर पहुँचे ॥२६॥ तदनन्तर परचक्रको आया जान, रत्नपुरका युद्धनिपुण राजा समस्त सामन्तोंके साथ बाहर निकला ॥२७॥ महावेगको धारण करनेवाले उस राजाने निकलते ही दक्षिणकी समस्त सेनाको चण भरमें प्रस्त जैसा कर लिया ॥२८॥ तदनन्तर चक्र, क्रकच, बाण, खड्ग, कुन्त, पाश, गदा आदि शस्त्रोंके द्वारा उन सबका उद्धण्डताके कारण गहन युद्ध हुआ ॥२९॥

१. कामस्य । २. शरशोत्कटः म० । ३. -राह्वय तत्सर्वान्-म० । ४. धारिणा म० ।

अप्सरःसंहतिर्योग्यनभोदेशव्यवस्थिता । सुमोचाद्भुतयुक्तेषु स्थानेषु कुसुमाञ्जलीः ॥३०॥
ततः परबलाम्भोधी सौमित्रिवृद्धवानलः । विजृम्भितुं समायुक्तो योधयादःपरिष्वयः ॥३१॥
रथा वरतुरङ्गाश्च नागाश्च मन्दतोयदाः । तृणत्रस्तस्य वेगेन दिशो दश समाश्रिताः ॥३२॥
युद्धक्रीडां कविब्रह्म शकशक्तिर्हलायुधः । किष्किन्धपार्थिवोऽन्यत्र परमः कपिलधमण ॥३३॥
अपरत्र प्रभाजालपरवीरो महाजवः । लाङ्गूलपाणिरुग्रप्रता विविधाद्भुतचेष्टितः ॥३४॥
एवमेतैर्महायोधैर्विजयार्द्धबलं महत् । शरत्प्रभातमेघाभं कापि^१ नीतं मरुत्समैः ॥३५॥
ततोऽधिपतिना साकं विजयार्द्धिभुवो नृपाः । स्वस्थानाभिमुखा नेशुः प्रक्षोणप्रघनेप्सिताः ॥३६॥
दृष्ट्वा पलायमानांस्तान् वीरान् रत्नरथात्मजान् । परमामर्षसम्पूर्णाकारदः कलहप्रियः ॥३७॥
कृत्वा कलकलं व्योम्नि कृततालमहास्वनः । जगाद् विस्फुरद्वात्रः स्मितास्यो विकचेक्षणः ॥३८॥
एते ते चपलाः क्रुद्धा दुश्चेष्टा मन्दबुद्धयः । पलायन्ते न संसोढा यैर्लक्ष्मणगुणोन्नतिः ॥३९॥
दुर्विनीतान् प्रसह्यैतान्तरं गुह्यैत मानवाः । पराभवं तदा कृत्वा काशुना मे पलाय्यते ॥४०॥
इत्युक्ते पृष्ठतस्तेषामुपात्तजयकीर्तयः । प्रतापपरमा धीराः प्रस्थिता ग्रहणोधताः ॥४१॥
प्रत्यासन्नेषु तेष्वामीत्तदा रत्नपुरं पुरम् । आसन्नपार्थ्वसंस्तम्भमहादाववनोपमम् ॥४२॥
तावत् सुकन्यका रत्नभूता तत्र मनोरमा । सखीभिरावृता दृष्टमात्रलोकमनोरमा ॥४३॥

आकाशमें योग्य स्थानपर स्थित अप्सराओंका समूह आश्चर्यसे युक्त स्थानोंपर पुष्पाञ्जलियाँ छोड़ रहे थे ॥३०॥ तत्पश्चात् जो योधा रूपी जलजन्तुओंका क्षय करनेवाला था ऐसा लक्ष्मणरूपी बड़वानलपर चक्ररूपी समुद्रके बीच अपना विस्तार करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३१॥ रथ, उत्तमोत्तम घोड़े, तथा मद् रूपी जलकी बहाने वाले हाथी, उसके वेगसे तृणके समान दशों दिशाओंमें भाग गये ॥३२॥ कहीं इन्द्रके समान शक्तिको धारण करनेवाले राम युद्ध-क्रीड़ा करते थे तो कहीं वानर रूप चिह्नसे उत्कृष्ट सुग्रीव युद्धकी क्रीड़ा कर रहे थे ॥३३॥ और किसी एक जगह प्रभाजालसे युक्त, महावेगशाली, उग्र हृदय एवं नाना प्रकारकी अद्भुत चेष्टाओंको करने वाला हनुमान् युद्धक्रीड़ाका अनुभव कर रहा था ॥३४॥ जिस प्रकार शरद्भृत्तुके प्रातःकालीन मेघ वायुके द्वारा कहीं ले जाये जाते हैं—तितर-बितर कर दिये जाते हैं उसी प्रकार इन महा-योद्धाओंके द्वारा विजयार्ध पर्वतकी बड़ी भारी सेना कहीं ले जाई गई थी—पराजित कर इधर-उधर खदेड़ दी गई थी ॥३५॥ तदनन्तर जिनके युद्धके मनोरथ नष्ट हो गये थे ऐसे विजयार्ध-पर्वतपरके राजा अपने अधिपति—स्वामीके साथ अपने-अपने स्थानोंकी ओर भाग गये ॥३६॥ तीव्र क्रोधसे भरे, रत्नरथके उन वीर पुत्रोंको भागते हुए देख कर जिन्होंने आकाशमें ताली पीटनेका बड़ा शब्द किया था, जिनका शरीर चञ्चल था, मुख हास्यसे युक्त था, तथा नेत्र खिल रहे थे ऐसे कलहप्रिय नारदने कल-कल शब्द कर कहा कि ॥३७-३८॥ अहो ! ये वे ही चपल, क्रोधी, दुष्ट चेष्टाके धारक तथा मन्दबुद्धिसे युक्त रत्नरथके पुत्र भागे जा रहे हैं जिन्होंने कि लक्ष्मणके गुणोंकी उन्नति सहन नहीं की थी ॥३९॥ अरे मानवो ! इन उड्ण्ड लोगोंको शीघ्र ही बलपूर्वक पकड़ो । उस समय मेरा अनादर कर अब कहीं भागना हो रहा है ? ॥४०॥ इतना कहनेपर जिन्होंने जीतका यश प्राप्त किया था तथा जो प्रतापसे श्रेष्ठ थे, ऐसे कितने ही धीर-वीर उन्हें पकड़नेके लिए उद्यत हो उनके पीछे दौड़े ॥४१॥ उस समय उन सबके निकटस्थ होनेपर रत्नपुर नगर उस वनके समान हो गया था जिसके कि समीप बहुत बड़ा दावानल लग रहा था ॥४२॥

अथानन्तर उसी समय, जो दृष्टिमें आये हुए मनुष्यमात्रके मनको आनन्दित करनेवाली थी, घबड़ाई हुई थी, घोड़ोंके रथपर आरूढ़ थी, तथा महाप्रेमके वशीभूत थी ऐसी रत्नस्वरूप

१. भङ्क्त्वा म० । २. गात्रस्मितास्यो म० ।

सम्भ्रान्ताश्वरुद्धा महाप्रेमवशीकृता । सौमित्रिसुपसम्पन्ना पौलोमीव विद्वीजसम् ॥४४॥
 तां प्रसादनसंयुक्तां प्रसादां प्राप्य लक्ष्मणः । प्रशान्तकलुषो जातो भृकुटीरहिताननः ॥४५॥
 ततो रत्नरथः साकं सुतैर्मनविवर्जितः । प्रीत्या निर्गत्य नगरादुपायनसमन्वितः ॥४६॥
 देशकालविधानज्ञो दृष्ट्वात्मपरपौरुषः । सङ्गत्य सुष्ठु तुष्टाव मृगनागारिकेतनौ ॥४७॥
 अन्तरेऽत्र समागत्य सुमहाजनमध्यगम् । नारदोऽहंपयद्गन्तरथं सस्मितभाषितैः ॥४८॥
 का वार्ता तेऽधुना रत्नरथ सुंशुरथोऽथ वा । केचित्कुशलमुत्तुङ्गभटगजितकारिणः ॥४९॥
 नूर्मं रत्नरथो न खं स हि गर्वमहाचलः^१ । नारायणांघ्रिसेवास्थो भवन् कोऽप्यपरो नृपः ॥५०॥
 कृत्वा कटकहाशब्दं कराहतकरः पुनः । जगौ भो स्थीयते कञ्चित्सुखं रत्नरथाङ्गजाः ॥५१॥
 सोऽयं नारायणो यस्य भयङ्गिस्तादृशं तदा । गदितं हृदयग्राहि स्वगृहोद्धतचेष्टितैः ॥५२॥
 एवं सत्यपि तैरुक्तं त्वयि नारद कोपिते । महापुरुषसम्पर्कः प्राप्तोऽस्माभिः सुदुर्लभः ॥५३॥
 इति नर्मसमेताभिः कथाभिः क्षणमात्रकम् । अवस्थाय पुरं सर्वे विविशुः परमर्द्धयः ॥५४॥

इन्द्रवज्रा

श्रीदामनामा रतितुल्यरूपा रामाय दत्ता सुमनोऽभिरामा ।
 रामामिमां प्राप्य परं स रेने मेरुप्रभावः कृतपाणियोगः ॥५५॥
 दत्ता तथा रत्नरथेन जाता स्वयं दशास्यक्षयकारणाय ।
 मनोरमार्थप्रतिपन्ननामा तयोश्च वृत्ता परिणीतिरुद्धा ॥५६॥

मनोरमा कन्या वहाँ लक्ष्मणके समीप उस प्रकार आई जिस प्रकार कि इन्द्राणी इन्द्रके पास जाती है ॥४३-४४॥ जो प्रसाद करनेवाले लोगोंसे सहित थी तथा जो स्वयं प्रसाद करानेके योग्य थी ऐसी उस कन्याको पाकर लक्ष्मणकी कलुषता शान्त हो गई तथा उसका मुख भृकुटियोंसे रहित हो गया ॥४५॥ तत्पश्चात् जिसका मान नष्ट हो गया था, जो देशकालकी विधिकी जाननेवाला था, जिसने अपना-पराया पौरुष देख लिया था और जो योग्य भेंटसे सहित था ऐसे राजा रत्नरथने प्रीतिपूर्वक पुत्रोंके साथ नगरसे बाहर निकल कर सिंह और गरुडको पताकाओंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणकी अच्छी तरह स्तुति की ॥४६-४७॥ इसी बीचमें नारदने आकर बहुत बड़ी भीड़के मध्यमें स्थित रत्नरथको मन्द हास्यपूर्ण वचनोंसे इस प्रकार लजित किया कि अहो ! अब तेरा क्या हाल है ? तू रत्नरथ था अथवा रजोरथ ? तू बहुत बड़े योद्धाओंके कारण गर्जना कर रहा था सो अब तेरी कुशल तो है ? ॥४८-४९॥ जान पड़ता है कि तू गर्वका महापर्वत स्वरूप वह रत्नरथ नहीं है किन्तु नारायणके चरणोंकी सेवामें स्थित रहनेवाला कोई दूसरा ही राजा है ॥५०॥ तदनन्तर कहकहा शब्द कर तथा एक हाथसे दूसरे हाथकी ताली पीटते हुए कहा कि अहो ! रत्नरथके पुत्रो ! सुखसे तो हो ? ॥५१॥ यह वही नारायण है कि जिसके विषयमें उस समय अपने घरमें ही उद्धत चेष्टा दिखानेवाले आप लोगोंने उस तरह हृदयको पकड़नेवाली बात कही थी ॥५२॥ इस प्रकार यह होने पर भी उन सबने कहा कि हे नारद ! तुम्हें कुपित किया उसीका यह फल है कि हमलोगोंको जिसका मिलना अत्यन्त दुर्लभ था ऐसा महापुरुषोंका संपर्क प्राप्त हुआ ॥५३॥ इस प्रकार विनोद पूर्ण कथाओंसे वहाँ क्षणभर ठहर कर सब लोगोंने बड़े वैभवके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥५४॥ उसी समय जो रतिके समान रूपकी धारक थी तथा देवोंकी भी आनन्दित करनेवाली थी ऐसी श्रीदामा नामकी कन्या रामके लिए दी गई । ऐसी स्त्रीको पाकर जिनका मेरुके समान प्रभाव था तथा जिन्होंने उसका पाणिग्रहण किया था ऐसे श्रीराम अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥५५॥ तदनन्तर राजा रत्नरथने रावणका क्षय करनेवाले लक्ष्मणके

१. इन्द्रम् । २. सारं म० । ३. केचित् म० । ४. महाबलः ज० । ५. दशास्यक्षयकारणाय म० ।

एवं प्रचण्डा अपि यान्ति १साम रत्नान्यनर्घाणि च संश्रयन्ते ।
पुण्यानुभावेन यतो जनानां ततः कुरुध्वं रविनिर्मलं तत् ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मनोरमालंभाभिधानं नाम त्रिनवतितमं पर्व ॥६३॥

लिए सार्थक नामवाली मनोरमा कन्या दी और उन दोनोंका उत्तम पाणिग्रहण हुआ ॥५६॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि यतश्च इस तरह मनुष्योंके पुण्य प्रभावसे अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी
शान्तिको प्राप्त हो जाते हैं और अमूल्य रत्न उन्हें प्राप्त होते रहते हैं इसलिए हे भठ्यजनो !
सूर्यके समान निर्मल पुण्यका संचय करो ॥५७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्यद्वारा कथित पद्मपुराणमें मनोरमाकी
प्राप्तिका कथन करनेवाला तेरानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६३॥

चतुर्णवतितमं पर्व

अन्योऽपि^१ दक्षिणश्रेण्यां विजयार्थस्य खेचराः । शस्त्रान्धकारिते संस्ये लक्ष्मणेन वशीकृताः ॥१॥
 अत्यन्तदुःसहः सन्तो महापन्नगसन्निभाः । शौर्यं च वेदविनिर्मुक्ता जाता रामानुलेविन्दः ॥२॥
 नामानि राजधानीनां तासां ख्यातानि कानिचित् । कीर्त्तयिष्यामि ते राजन् स्वःपुरीसमतेजसाम् ॥३॥
 पुरं रविनिभं नाम तथा वह्निप्रभं शुभम् । काञ्चनं मेघसंज्ञं च तथा च शिवमन्दिरम् ॥४॥
^२गन्धर्वगीतममृतं पुरं लक्ष्मीधरं तथा । किन्नरोद्गीतसंज्ञं च जीमूतशिखरं परम् ॥५॥
 मर्त्यानुगीतं चक्राह्वं विश्रुतं रथनूपुरम् । श्रीमद्बहुरवाभिरुच्यं चारुश्रीमलयभ्रुतिम् ॥६॥
 श्रीगृहं भास्कराभं च तथारिञ्जयसंज्ञकम् । ज्योतिःपुरं शशिच्छायं गान्धारमलयं घनम् ॥७॥
 सिंहस्थानं मनोज्ञं च भद्रं श्रीविजयस्वनम् । कान्तं यत्नपुरं रम्यं तिलकस्थानमेव च ॥८॥
 परमाण्येवमार्दानि पुराणि पुरुषोत्तम । परिक्रान्तानि भूरीणि लक्ष्मणेन महत्सना ॥९॥
 प्रसाद्य धरणीं सर्वां रत्नैः सप्तभिरन्वितः । नारायणपदं कृत्स्नं प्राप लक्ष्मणसुन्दरः ॥१०॥
 चक्रं छत्रं धनुः शक्तिर्गदा मणिरसिस्तथा । एतानि सप्त रत्नानि परिप्राप्तानि लक्ष्मणम् ॥११॥
 उवाच श्रेणिको भूपो भगवंस्वत्प्रसादतः । रामलक्ष्मणयोर्ज्ञातं माहात्म्यं विधिना मया ॥१२॥
 अधुना ज्ञातुमिच्छामि लवणाङ्कुशसम्भवम् । सौमित्रिपुत्रसम्भूतिं तथा तद्भवतुमर्हसि ॥१३॥
 ततो मुनिगणस्वामी जगदा परमस्वनम् । शृणु वक्ष्यामि ते राजन् कथावस्तु मनोषितम् ॥१४॥
 युगप्रधाननरयोः पद्मलक्ष्मणयोस्तयोः । निष्कण्टकमहाराज्यजातभोगोपयुक्तयोः ॥१५॥
 ब्रजस्थानानि पञ्चाश्र मासा वर्षयुगानि च । दोदुन्दकामराज्ञातसुमहासुखसक्तयोः ॥१६॥

अथानन्तर विजयार्थं पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें रत्नरथके सिवाय जो अन्य विद्याधर थे राक्षोंके अन्धकारसे युक्त युद्धमें लक्ष्मणने उन सबको भी वश कर लिया ॥१॥ जो विद्याधर पहले महानागके समान अत्यन्त दुःसह थे वे अब शूर-वीरता रूपी विषसे रहित हो रामके सेवक हो गये ॥२॥ हे राजन् ! अब मैं स्वर्गके समान तेजको धारण करने वाली उन नगरियोंके कुछ नाम तेरे लिए कहूँगा सो श्रवण कर ॥३॥ रविप्रभ, वह्निप्रभ, काञ्चन, मेघ, शिवमन्दिर, गन्धर्वगीत, अमृतपुर, लक्ष्मीधर, किन्नरोद्गीत, जीमूतशिखर, मर्त्यानुगीत, चक्रपुर, रथनूपुर, बहुरव, मलय, श्रीगृह, भास्कराभ, अरिञ्जय, ज्योतिःपुर, शशिच्छाय, गान्धार, मलय, सिंहपुर, श्रीविजयपुर, यत्नपुर और तिलकपुर । हे पुरुषोत्तम ! इन्हें आदि लेकर अनेक उत्तमोत्तम नगर उन महापुरुष लक्ष्मणने वशमें किये ॥४-६॥ इस प्रकार लक्ष्मणसुन्दर समस्त पृथिवीको वश कर सात रत्नोंसे सहित होता हुआ सम्पूर्ण नारायण पदको प्राप्त हुआ ॥१०॥ चक्र, छत्र, धनुष, शक्ति, गदा, मणि और खड्ग ये सात रत्न लक्ष्मणको प्राप्त हुए थे ॥११॥ [तथा हल, सुसल, गदा और रत्नमाला ये चार रत्न रामकी प्राप्त थे ।] तदनन्तर श्रेणिकने गौतम स्वामीसे कहा कि हे भगवन् ! मैंने आपके प्रसादसे विधिपूर्वक राम और लक्ष्मणका माहात्म्य जान लिया है अब लवणाङ्कुशकी उत्पत्ति तथा लक्ष्मणके पुत्रोंका जन्म जानना चाहता हूँ सो आप कहनेके योग्य हैं ॥१२-१३॥

तदनन्तर मुनिसंघके स्वामी श्री गौतम गणधरने उच्चस्वरमें कहा कि हे राजन् ! सुन, मैं तेरी इच्छित कथावस्तु कहता हूँ ॥१४॥ अथानन्तर युगके प्रधान पुरुष जो राम, लक्ष्मण थे वे निष्कण्टक महाराज्यसे उत्पन्न भोगोपभोगकी सामग्रीसे सहित थे तथा दोदुन्दक नामक देवके द्वारा अनुज्ञात महासुखमें आसक्त थे । इस तरह उनके दिन, पक्ष, मास, वर्ष और युग व्यतीत हो

१. अन्योऽपि म० । २. गान्धर्व म० । ३. श्रीगृहं म० ।

सुरकीभिः समानानां स्त्रीणां सत्कुलजन्मनाम् । सहस्राण्यवबोध्यानि दश सप्त च लक्ष्मणे ॥१७॥
 तासामष्टौ महादेव्यः कीर्तिश्रीरतिसज्जिभाः । गुणशीलकलावत्यः सौम्याः सुन्दरविभ्रमाः ॥१८॥
 तासां जगत्प्रसिद्धानि कीर्त्यमानानि भूपते । शृणु नामानि चारुणि यथावदनुपूर्वशः ॥१९॥
 राज्ञः श्रीद्रोणमेघस्य विशल्याख्या सुतादितः । ततो रूपवती ख्याता प्रतिरूपविवर्जिता ॥२०॥
 तृतीया वनमालेति वसन्तश्रीयुतेव सा । अन्या कल्याणमालाख्या नामाख्यातमहागुणा ॥२१॥
 पद्ममी रतिमालेति रतिमालेव रूपिणी । वृष्टी च जितपद्मेति जितपद्मा मुखश्रिया ॥२२॥
 अन्या भगवती नाम चरमा च मनोरमा । अग्रपत्न्य इमा अष्टातुक्ता गरुडलक्ष्मणः ॥२३॥
 दयिताष्टसहस्री तु पद्माभस्याभरीसमा । चतस्रश्च महादेव्यो जगत्प्रख्यातकीर्त्तयः ॥२४॥
 प्रथमा जानकी ख्याता द्वितीया च प्रभावती । ततो रतिनिभाऽभिल्या श्रीदामा च रमा स्मृता ॥२५॥
 पृतासां च समस्तानां मध्यस्था चारुलक्षणा । जानकी शोभतेऽयर्थं सतारेन्दुकला यथा ॥२६॥
 द्वे शते शतमर्दु च पुत्राणां तादर्यलक्ष्मणः । तेषां च कीर्त्तयिष्यामि शृणु नामानि कानिचित् ॥२७॥
 वृषभो धरणश्चन्द्रः शरभो मकरध्वजः । धारणो हरिनागश्च श्रीधरो मदनोऽद्युतः ॥२८॥
 तेषामष्टौ प्रधानाश्च कुमाराश्चुचेष्टिताः । अनुरक्ता गुणैर्वेषामनन्यमनसो जनाः ॥२९॥
 विशल्यासुन्दरीसूनुः प्रथमं श्रीधरः स्मृतः । असौ पुरि विनीतायां राजते दिवि चन्द्रवत् ॥३०॥
 ज्येष्ठो रूपवतीपुत्रः पृथिवीतिलकाभिधः । पृथिवीतलविल्यातः पृथ्वीं कान्तिं ससुद्वहन् ॥३१॥
 पुत्रः कल्याणमालाया बहुकल्याणभाजनम् । बभूव मङ्गलाभिल्यो मङ्गलैकक्रियोदितः ॥३२॥
 विमलप्रभनामाऽभूत् पद्मावत्यां शरीरजः । तनयोऽर्जुनवृत्ताख्यो वनमालासमुद्भवः ॥३३॥

गये ॥१५-१६॥ जो देवाङ्गनाओंके समान थीं तथा उत्तम कुलमें जिनका जन्म हुआ था ऐसी सत्तरह हजार स्त्रियाँ लक्ष्मणकी थीं ॥१७॥ उन स्त्रियोंमें कीर्त्ति, लक्ष्मी और रतिकी समानता प्राप्त करनेवाली गुणवती, शीलवती, कलावती, सौम्य और सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाली आठ महादेवियों थीं ॥१८॥ हे राजन् ! अब मैं यथा क्रमसे उन महादेवियोंके सुन्दर नाम कहता हूँ सो सुन ॥१९॥ सर्वप्रथम राज्ञा द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या, उसके अनन्तर उपमासे रहित रूपवती, फिर तीसरी वनमाला, जो कि वसन्तकी लक्ष्मीसे मानो सहित ही थी, जिसके नामसे ही महागुणोंकी सूचना मिल रही थी ऐसी चौथी कल्याणमाला, जो रतिमालाके समान रूपवती थी ऐसी पाँचवीं रतिमाला, जिसने अपने मुखसे कमलको जीत लिया था ऐसी छठवीं जितपद्मा, सातवीं भगवती और आठवीं मनोरमा ये लक्ष्मणकी आठ प्रमुख स्त्रियाँ थीं ॥२०-२३॥ रामचन्द्र जीको देवाङ्गनाओंके समान आठ हजार स्त्रियाँ थीं । उनमें जगत् प्रसिद्ध कीर्तिको धारण करनेवाली चार महादेवियों थीं ॥२४॥ प्रथम सीता, द्वितीय प्रभावती, तृतीय रतिनिभा और चतुर्थ श्रीदामा ये उन महादेवियोंके नाम हैं ॥२५॥ इन सब स्त्रियोंके मध्यमें स्थित सुन्दर लक्षणों वाली सीता, ताराओंके मध्यमें स्थित चन्द्रकलाके समान सुशोभित होती थी ॥२६॥ लक्ष्मणके अढ़ाई सौ पुत्र थे उनमेंसे कुल्लके नाम कहता हूँ सो सुन ॥२७॥ वृषभ, धरण, चन्द्र, शरभ, मकरध्वज, धारण, हरिनाग, श्रीधर, मदन और अच्युत ॥२८॥ जिनके गुणोंमें अनुरक्त हुए पुरुष अनन्यचित्त हो जाते थे ऐसे सुन्दर चेष्टाओंको धारण करने वाले आठ कुमार उन पुत्रोंमें प्रमुख थे ॥२९॥

उनमेंसे श्रीधर, विशल्या सुन्दरीका पुत्र था जो अयोध्यापुरीमें उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि आकाशमें चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥३०॥ रूपवतीके पुत्रका नाम पृथिवी-तिलक था जो उत्तम कान्तिको धारण करता हुआ पृथिवीतल पर अत्यन्त प्रसिद्ध था ॥३१॥ कल्याणमालाका पुत्र मङ्गल नामसे प्रसिद्ध था वह अनेक कल्याणोंका पात्र था तथा माङ्गलिक क्रियाओंके करनेमें सदा तत्पर रहता था ॥३२॥ पद्मावतीके विमलप्रभ नामका पुत्र हुआ था ।

अतिवीर्यस्य तनया श्रीकेशिनमसूत च । आत्मजो भगवत्याश्च सत्यकीर्तिः प्रकीर्तितः ॥३४॥
 सुपाश्वर्कीर्तिनामानं सुतं प्राप मनोरमा । सर्वे चैते महासखाः शस्त्रशास्त्रविशारदाः ॥३५॥
 नखमांसवदेतेषां भ्रातृणां संगतिर्दृढा । सर्वत्र शस्यते लोके समानोचितचेष्टिता ॥३६॥
 अन्योन्यहृदयासीनाः प्रेमनिर्भरचेतसः ॥ अष्टौ दिवाव वसवो रेभिरे स्वेप्सितं पुरि ॥३७॥
 पूर्वं जनितपुण्यानां प्राणिनां शुभचेतसाम् । आरभ्य जन्मतः सर्वं जायते सुमनोहरम् ॥३८॥

उपजातिवृत्तम्

एवं च काल्पन्येन कुमारकोटयः स्मृता नरेन्द्रप्रभवाश्चतस्रः ।

कोव्यर्द्धयुक्ताः पुरि तत्र शक्या ख्याता नितान्तं परया मनोज्ञाः ॥३९॥

आर्या

नानाजनपदनिरतं परिगतमुकुटोत्तमाङ्गकं नृपचक्रम् ।

षोडशसहस्रसंख्यं बलहरिचरणानुगं स्मृतं रवितेजः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीरविपेणाचार्यपोक्ते पद्मपुराणे रामलक्ष्मणविभूतिदर्शनीयानिधानं नाम
 चतुर्णवतितमं पर्व ॥६४॥

वनमालाने अर्जुनवृत्त नामक पुत्रको जन्म दिया था ॥३३॥ राजा अतिवीर्यकी पुत्रीने श्रीकेशी नामक पुत्र उत्पन्न किया था । भगवतीका पुत्र सत्यकीर्ति-इस नामसे प्रसिद्ध था ॥३४॥ और मनोरमाने सुपाश्वर्कीर्ति नामक पुत्र प्राप्त किया था । ये सभी कुमार महाशक्तिशाली तथा शस्त्र और शास्त्र दोनोंमें निपुण थे ॥३५॥ इन सब भाइयोंकी नख और मांसके समान सुदृढ संगति थी तथा इन सबकी समान एवं उचित चेष्टा लोकमें सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती थी ॥३६॥ सो परस्पर एक दूसरेके हृदयमें विद्यमान थे तथा जिनके चित्त प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे ये आठों कुमार स्वर्गमें आठ वसुओंके समान नगरमें अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥३७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिन्होंने पूर्व पर्यायमें पुण्य उत्पन्न किया है तथा जिनका चित्त शुभभाव रूप रहा है ऐसे प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ जन्मसे ही अत्यन्त मनोहर होती हैं इस प्रकार उस नगरीमें सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ राजकुमार थे जो उत्कृष्ट शक्तिसे प्रसिद्ध तथा अत्यन्त मनोहर थे ॥३८-३९॥ जो नाना देशोंमें निवास करते थे, जिनके मस्तक पर मुकुट बँधे हुए थे, तथा जिनका तेज सूर्यके समान था ऐसे सोलह हजार राजा राम और लक्ष्मणके चरणोंकी सेवा करते थे ॥४०॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणकी विभूतिकी दिखानेवाला चौरानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६४॥

पञ्चनवतितमं पर्व

एवं दिनेषु गच्छन्सु भोगसम्भारयोगिषु । धर्मार्थकामसम्बन्धनितान्तरतिकारिषु ॥१॥
 विमानाभेऽन्यदा सुप्ता भवने जानकी सुखम् । शयनीये शरन्मेघमालासस्मितमार्दवे ॥२॥
 अपश्यत् पश्चिमे यामे स्वप्नमभोजलोचना । दिव्यतूर्यनिनादैश्च मङ्गलैर्वोधमागता ॥३॥
 ततोऽतिविमले जाते प्रभाते संशयान्विता । कृतदेहस्थितिः कान्तमियाथ सुसखीवृता ॥४॥
 अपृच्छञ्च मया नाथ स्वप्नो योऽयं निरीक्षितः । अर्थं कथयितुं तस्य ^१लब्धवर्णं स्वमहंसि ॥५॥
 शरदिन्दुसमच्छायायै क्षुब्धसागरनिःस्वनौ । कैलासशिखराकारौ सर्वालङ्कारभूषितौ ॥६॥
 कान्तिमस्सितसदृङ्गौ प्रवरौ शरभोत्तमौ । प्रविष्टौ मे मुखं मन्ये विलसस्सितकेसरौ ॥७॥
 शिखरान् पुष्पकस्याथ सम्भ्रमेणोरुणान्विता । वातनुष्णा पताकेवापतितारिमि किल चितौ ॥८॥
 पञ्चनाभस्ततोऽवोचच्छ्वरभद्रयदर्शनात् । ^२प्रवरोर्वचिरेणैव पुत्रयुग्ममवाप्स्यसि ^३ ॥९॥
 पतनं पुष्पकस्याग्राहयिते न प्रशस्यते । अधवा शमदानस्थाः प्रयान्तुं प्रशमं ग्रहाः ॥१०॥
 वस्ततोऽथ परिप्रासस्सिलकामुक्तकङ्कटः । नीपनागेश्वरारूढः सहकारशारासनः ॥११॥
 पञ्चनाराचसंयुक्तः केसरापूरितेषुधिः । गीयमानोऽमलश्लोकैर्मधुघृतकद्रवकैः ॥१२॥
 कदम्बघनवातेन हारिणा निःश्वसन्निव । मखिलकाकुसुमोद्यौतैः शत्रूनन्यान् हसन्निव ॥१३॥

अथानन्तर इस प्रकार भोगोंके समूहसे युक्त तथा धर्म अर्थ और कामके सम्बन्धसे अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करनेवाले दिनोंके व्यतीत होने पर किसी दिन सीता विमान तुल्य भवनमें शरद् ऋतुकी मेघमालाके समान कोमल शय्या पर सुखसे सो रही थी कि उस कमललोचनाने रात्रिके पिछले प्रहरमें स्वप्न देखा और देखते ही दिव्य वादित्रोंके मङ्गलमय शब्दसे वह जागृत हो गई ॥१-३॥ तदनन्तर अत्यन्त निर्मल प्रभातके होने पर संशयको प्राप्त सीता, शरीर सम्बन्धी क्रियाएँ करके सखियों सहित पतिदे के पास गई ॥४॥ और पूछने लगी कि हे नाथ ! आज मैंने जो स्वप्न देखा है हे विद्वन् ! आप उसका फल कहनेके लिए योग्य हैं ॥५॥ मुझे ऐसा जान पड़ता है कि शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान जिनकी कान्ति थी, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान जिनका शब्द था, कैलाशके शिखरके समान जिनका आकार था, जो सब प्रकारके अलङ्कारोंसे अलङ्कृत थे, जिनकी उत्तम दाढ़े कान्तिमान् एवं सफेद थीं और जिनकी गरदनकी उत्तम जटाएँ सुशोभित हो रही थीं ऐसे अत्यन्त श्रेष्ठ दो अष्टापद मेरे मुखमें प्रविष्ट हुए हैं ॥६-७॥ यह देखनेके बाद दूसरे स्वप्नमें मैंने देखा है कि मैं वायुसे प्रेरित पताकाके समान अत्यधिक सम्भ्रमसे युक्त हो पुष्पक-विमानके शिखरसे गिरकर नीचे पृथिवीपर आ पड़ी हूँ ॥८॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे वरोरु ! अष्टापदांका युगल देखनेसे तू शीघ्र ही दो पुत्र प्राप्त करेगी ॥९॥ हे प्रिये ! यद्यपि पुष्पकविमानके अग्रभागसे गिरना अच्छा नहीं है तथापि चिन्ताकी बात नहीं है क्योंकि शान्तिकर्म तथा दान करनेसे पापग्रह शान्तिको प्राप्त हो जावेंगे ॥१०॥

अथानन्तर जो तिलकपुष्परूपी कवचको धारण किये हुए था । कदम्बरूपी गजराजपर आरूढ था, आम्ररूपी धनुष साथ लिये था, कमलरूपी बाणोंसे युक्त था, बकुल रूपी भरे हुए तरकसोंसे सहित था, निर्मल गुञ्जार करनेवाले भ्रमरोंके समूह जिसका सुयश गा रहे थे, जो कदम्बसे सुवासित सघन सुन्दर वायुसे मानो सांस ही ले रहा था, मालतीके फूलोंके प्रकाशसे जो मानो दूसरे शत्रुओंकी हँसी कर रहा था और कौकिलाओंके मधुर आलापसे जो मानो अपने

१. हे विद्वन् । 'लब्धवर्णो विचक्षणः' इत्यमरः । २. हे प्रवरोद + अचिरेण । ३. -मवाप्स्यति म० ।

कलपुंस्कोकिलालापैर्जलपत्रिभ्र निजोचितम् । विभ्रन्नरपतेर्लीलां लोकाकुलत्वकारिणीम् ॥१४॥
 अङ्कोटनखरो विभ्रहंष्ट्राङ्कुरवकामिकाम् । लोहिताशोकनयनश्रलन्पल्लवजिह्वकः ॥१५॥
 वसन्तकेसरी प्रासो विदेशजनमानसम् । नयमानः परं त्रासं सिंहकेसरकेसरः ॥१६॥
 रमणीयं स्वभावेन वसन्तेन विशेषतः । महेन्द्रोदयमुद्यानं जातं मन्दनसुन्दरम् ॥१७॥
 विचित्रकुसुमा वृत्ता विचित्रचलपल्लवा । मत्ता इव विवूर्णन्ते दक्षिणाणिलसङ्गताः ॥१८॥
 पद्मोत्पलादिसञ्जज्ञाः शकुन्तगणनादिताः । वाप्यो वरं विराजन्ते जनसेवितरोधसः ॥१९॥
 हंससारसचक्राङ्कुरराणां मनोहराः । स्वनाः कारण्डवानां च प्रवृत्ता रागिदुःसहाः ॥२०॥
 निपातोत्पतनैस्तेषां विमलं लुलितं जलम् । प्रमोदादिव संवृत्तं तरङ्गाढ्यं समाकुलम् ॥२१॥
 पद्मादिभिर्जलं व्याप्तं स्थलं कुरवकादिभिः । गगनं रजसा तेषां वसन्ते जृम्भिते सति ॥२२॥
 गुच्छगुल्मलतावृक्षाः प्रकारा बहुधा स्थिताः । वनस्पतेः परां शोभामुपजग्मुः समन्ततः ॥२३॥
 काले तस्मिन्नरेन्द्रस्थ जनकस्य शरीरजाम् । किञ्चिद् गर्भकृतभ्रान्तिकृशाभूतशरीरिकाम् ॥२४॥
 वाप्यं पृच्छति पद्माभः किं ते कान्ते मनोहरम् । सम्पादयाम्यहं ब्रूहि दोहकं किमसौदृशां ॥२५॥
 ततः संस्मित्य वैदेही जगाद कमलानना । नाथ चैत्यालयान्द्रष्टुं भूरीन् वाञ्छामि भूतले ॥२६॥
 श्रैलोक्यमङ्गलात्मभ्यः पद्मवर्णभ्य आदरान् । जिनेन्द्रप्रतिबिम्बेभ्यो नमस्कृतुं ममाशयः ॥२७॥
 हेमरत्नमयैः पुष्पैः पूजयामि जिनानिति । इयं मे महती श्रद्धा किमन्यदभिवाञ्छयते ॥२८॥

योग्य वार्तालाप ही कर रहा था ऐसा लोकमें आकुलता उत्पन्न करने वाली राजाकी शोभाको धारण करता हुआ वसन्तकाल आ पहुँचा ॥११-१४॥ अङ्कोट पुष्प ही जिसके नाखून थे, जो कुरवक रूपी दाढ़को धारण कर रहा था, लाल लाल अशोक ही जिसके नेत्र थे, चञ्चल किसलय ही जिसकी जिह्वा थी, जो परदेशी मनुष्यके मनको परम भय प्राप्त करा रहा था और बकुल पुष्प ही जिसकी गरदनके बाल थे ऐसा वसन्तरूपी सिंह आ पहुँचा ॥१५-१६॥ अयोध्याका महेन्द्रोदय उद्यान स्वभावसे ही सुन्दर था परन्तु उस समय वसन्तके कारण विशेष रूपसे नन्दनवनके समान सुन्दर हो गया था ॥१७॥ जिनमें रङ्ग-विरङ्गे फूल फूल रहे थे तथा जिनके नाता प्रकारके पल्लव हिल रहे थे, ऐसे वृक्ष दक्षिणके मलय समीरसे मिलकर मानो पागलकी तरह झूम रहे थे ॥१८॥ जो कमल तथा नील कमल आदिसे आच्छादित थीं, पक्षियोंके समूह जहाँ शब्द कर रहे थे, और जिनके तट मनुष्योंसे सेवित थे ऐसी वापिकाएँ अत्यधिक सुशोभित हो रही थीं ॥१९॥ रागी मनुष्योंके लिए जिनका सहना कठिन था ऐसे हंस, सारस, चक्रवा, कुरर और कारण्डव पक्षियोंके मनोहर शब्द होने लगे ॥२०॥ उन पक्षियोंके उत्पतन और विपतनसे क्षोभको प्राप्त हुआ निर्मल जल हर्षसे ही मानो तरङ्ग युक्त होता हुआ व्याकुल हो रहा था ॥२१॥ वसन्तका विस्तार होनेपर जल, कमल आदिसे, स्थल कुरवक आदिसे और आकाश उनकी परागसे व्याप्त हो गया था ॥२२॥ उस समय गुच्छे, गुल्म, लता तथा वृक्ष आदि जो वनस्पतिकी जातियाँ अनेक प्रकारसे स्थित थीं वे सब ओरसे परम शोभाको प्राप्त हो रही थीं ॥२३॥

उस समय गर्भके द्वारा की हुई थकावटसे जिसका शरीर कुछ-कुछ भ्रान्त हो रहा था ऐसी जनकनन्दिनीको देखकर रामने पूछा कि हे कान्ते ! तुझे क्या अच्छा लगता है ? सो कह । मैं अभी तेरी इच्छा पूर्ण करता हूँ तू ऐसी क्यों हो रही है ? ॥२४-२५॥ तब कमलमुखी सीताने मुसकरा कर कहा कि हे नाथ ! मैं पृथिवीतल पर स्थित अनेक चैत्यालयोंके दर्शन करना चाहती हूँ ॥२६॥ जिनका स्वरूप तीनों लोकोंके लिए मङ्गल रूप है ऐसी पद्मवर्णकी जिन-प्रतिमाओंको आदर पूर्वक नमस्कार करनेका मेरा भाव है ॥२७॥ सुवर्ण तथा रत्नमयी पुष्पोंसे जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करूँ यह मेरी बड़ी श्रद्धा है । इसके सिवाय और क्या इच्छा करूँ ? ॥२८॥

१. विवश म० । २. नीयमानः म० । ३. सप्तोत्पलादि-म० । ४. पृच्छति म० ।

एवमाकर्ण्य पद्माभः स्मेरवक्त्रः प्रमोदवान् । समादिशत् प्रतीहारीं तत्क्षणप्रगताङ्गिकाम् ॥२६॥
 अथि कल्याणि ! निक्षेपममात्यो गद्यतामिति । जिनालयेषु क्रियतामर्चना महर्तात्यलम् ॥३०॥
 महेन्द्रोदयमुद्यानं समेत्य सुमहादरम् । क्रियतां सर्वलोकेन सुशोभा जिनवेरमनाम् ॥३१॥
 तोरणैर्वैजयन्ताभिर्घण्टालम्बूपबुद्बुदैः । अर्धचन्द्रैर्विन्तानैश्च वस्त्रैश्च सुमनोहरैः ॥३२॥
 तथोपकरणैरन्यैः समस्तैरतिमुन्दरैः । लोको मद्यां समस्तायां करोतु जिनपूजनम् ॥३३॥
 निर्वाणधामचैत्यानि विभूयन्तां विशेषतः । महानन्दाः प्रवर्त्यन्तां सर्वसम्पत्तिसङ्गताः ॥३४॥
 कल्याणं दोहदं तेषु वैदेह्याः प्रतिपूजयन् । विहराम्यनया साकं महिमानं समेधयन् ॥३५॥
 आदिष्ट्या तथेत्यामपदे कृत्वाऽऽमसन्मिताम् । यथोक्तं गदितोऽमात्यस्तेनादिष्टाः स्वकिङ्कराः ॥३६॥
 व्यतिपत्य महोद्योगैस्ततस्तैः सम्मदान्वितैः । उपशोभां जिनेन्द्राणामालयेषु प्रवर्त्तिता ॥३७॥
 महाभारिगुहाद्वारगर्भारेषु मनोहराः । स्थापिताः पूर्णकलशाः सुहारादिविभूषिताः ॥३८॥
 मणिचित्रसमाकृष्टचित्ता^१ परमपट्टकाः । प्रसारिता विशालासु हेममण्डलभित्तिषु ॥३९॥
 अत्यन्तविमलाः शुद्धाः स्तम्भेषु मणिदर्पणाः । हारा गवाक्षवक्त्रेषु स्वच्छनिर्भरहारिणः ॥४०॥
 विचित्रा भक्तयो न्यस्ता रत्नचूर्णेन चारुणा । विभक्ताः पञ्चवर्णेन पादगोचरभूमिषु ॥४१॥
 न्यस्तानि शतपत्राणि सहस्रच्छदनानि च । देहलीकाण्डयुक्तानि कमलान्यपरत्र च ॥४२॥
 हस्तसम्पर्कयोगेषु स्थानेषु कृतमुज्ज्वलम् । किङ्किणीजालकं मत्तकामिनीसमनिःस्वनम् ॥४३॥
 पञ्चवर्णैर्विकाराङ्कैश्चामरैर्मण्डिदण्डकैः । संयुक्ताः पट्टलम्बूषाः स्वायत्ताङ्गाः प्रलम्बिताः ॥४४॥

यह सुनकर हर्षसे मुसकराते हुए रामने तत्काल ही नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाली द्वारपालिनी से कहा कि हे कल्याणि ! विलम्ब किये बिना ही मन्त्रीसे यह कहो कि जिनालयोंमें अच्छी तरह विशाल पूजा की जावे ॥२६-३०॥ सब लोग बहुत भारी आदरके साथ महेन्द्रोदय उद्यानमें जाकर जिन-मन्दिरोंकी शोभा करें ॥३१॥ तोरण, पताका, घंटा, लम्बूष, गोले, अर्धचन्द्र, चंदोवा, अत्यन्त मनोहर वस्त्र, तथा अत्यन्त सुन्दर अन्यान्य समस्त उपकरणोंके द्वारा लोग सम्पूर्ण पृथिवी पर जिन-पूजा करें ॥३२-३३॥ निर्वाण क्षेत्रोंके मन्दिर विशेष रूपसे विभूषित किये जावें तथा सर्व सम्पत्तिसे सहित महा आनन्द—बहुत भारी हर्षके कारण प्रवृत्त किये जावें ॥३४॥ उन सबमें पूजा करनेका जो सीताका दोहला है वह बहुत ही उत्तम है सो मैं पूजा करता हुआ तथा जिन शासन की महिमा बढ़ाता हुआ इसके साथ विहार करूंगा ॥३५॥ इस प्रकार आज्ञा पाकर द्वारपालिनीने अपने स्थान पर अपने ही समान किसी दूसरी स्त्रीको नियुक्त कर रामके कहे अनुसार मन्त्रीसे कह दिया और मन्त्रीने भी अपने सेवकोंके लिए तत्काल आज्ञा दे दी ॥३६॥

तदनन्तर महान् उद्योगी एवं हर्षसे सहित उन सेवकोंने शीघ्र ही जाकर जिन-मन्दिरोंमें सजावट कर दी ॥३७॥ महापर्वतकी गुफाओंके समान जो मन्दिरोंके विशाल द्वार थे उन पर उत्तम हार आदिसे अलंकृत पूर्ण कलशा स्थापित किये गये ॥३८॥ मन्दिरोंकी सुवर्णमयी लम्बी-चौड़ी दीवालोंने मणिमय चित्रोंसे चित्तको आकर्षित करनेवाले उत्तमोत्तम चित्रपट फैलाये गये ॥३९॥ खम्भोंके ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियोंके दर्पण लगाये गये और झरोखोंके अग्रभागमें स्वच्छ झरनेके समान मनोहर हार लटकाये गये ॥४०॥ मनुष्योंके जहाँ चरण पड़ते थे ऐसी भूमियोंमें पाँच वर्णके रत्नमय सुन्दर चूर्णोंसे नाना प्रकारके बेल-बूटे खींचे गये थे ॥४१॥ जिनमें सौ अथवा हजार कलिकाएँ थीं तथा जो लम्बी डंडीसे युक्त थे ऐसे कमल उन मन्दिरोंकी देहलियों पर तथा अन्य स्थानों पर रक्खे गये थे ॥४२॥ हाथसे पाने योग्य स्थानोंमें मत्त स्त्रीके समान शब्द करनेवाली उज्ज्वल छोटी-छोटी घंटियोंके समूह लगाये गये थे ॥४३॥ जिनकी मणिमय

१. उपशोभी म० । २. चित्राः म० । ३. 'देहल्याम्' इति पाठः सम्यक् प्रतिभाति । ४. पद- म० ।

मातृशान्त्यन्तचित्राणि प्रापितानि प्रसारणम् । सौरभाकृष्टभृङ्गाणि कृतान्युत्तमशिल्पिभिः ॥४५॥
 विशालातोयशालाभिः कलिरत्नाभिश्च नैकशः । तथा प्रेक्षकशालाभिः तदुद्यानमलङ्कृतम् ॥४६॥
 एवमत्यन्तचारीभिरत्युर्वीभिर्विभूतिभिः । महेन्द्रोदयमुद्यानं जातं नन्दनसुन्दरम् ॥४७॥

आर्याः लुन्दः

अथ भूत्यासुरपतिवत्सपुरजनपदसमन्वितो देवीभिः ।
 सर्वासात्यसमेतः पद्मः सीतान्वितो यथाबुद्यानम् ॥४८॥
 परमं गजमारूढः सीतायुक्तो रराज बाहं पद्मः ।
 ऐरावतपृष्ठगतः शच्या यथा दिव्यौकसां नाथः ॥४९॥
 नारायणोऽपि च यथा परमामृद्धिं समुद्रहन् यासि स्म ।
 शेषजनश्च सदाहं हृष्टः स्फीतो महान्नपानसमृद्धः ॥५०॥
 कदलीगृहमनोहरगृहेष्वतिमुक्तकमण्डपेषु च मनोज्ञेषु ।
 देव्यः स्थिता महद्दुर्था यथार्हमन्यो जनश्च सुखमासीनः ॥५१॥
 भवतीर्यं गजाद् रामः कामः कमलोत्पलसङ्कुले समुद्रोदारे ।
 सरसि सुखं विमलजले रेमे क्षीरोदसागरे शक्र इव ॥५२॥
 तस्मिन् सङ्कीर्ण्य चिरं कृत्वा पुष्पोच्चयं जलादुत्तीर्यं ।
 दिव्येनार्चनविधिना वैदेह्या सङ्गतो जिनानानर्चं ॥५३॥
 रामो मनोभिरामः काननलक्ष्मीसमाभिरुद्धस्त्रीभिः ।
 कृतपरिवरणो रेजे वसन्त इव मूर्तिमानुपेतः श्रीमान् ॥५४॥

हँडियाँ थीं ऐसे पाँचवर्णके कामदार चमरोंके साथ-साथ बड़ी-बड़ी हों डियाँ लटकई गई थीं ॥४४॥ जो सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकर्षित कर रही थीं तथा उत्तम कारीगरोंने जिन्हें निर्मित किया था ऐसी नाना प्रकारकी मालाएँ फैलाई गई थीं ॥४५॥ अनेकोंकी संख्यामें जगह-जगह बनाई गई विशाल वादनशालाओं और प्रेक्षकशालाओं—दर्शकगृहोंसे वह उद्यान अलंकृत किया गया था ॥४६॥ इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर विशाल विभूतियोंसे वह महेन्द्रोदय उद्यान नन्दनवनके समान सुन्दर हो गया था ॥४७॥

अथानन्तर नगरवासी तथा देशवासी लोगोंके साथ, स्त्रियोंके साथ, समस्त मन्त्रियोंके साथ, और सीताके साथ रामचन्द्रजी इन्द्रके समान बड़े वैभवसे उस उद्यानकी ओर चले ॥४८॥ सीताके साथ-साथ उत्तम हाथी पर बैठे हुए राम ठीक उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह इन्द्राणीके साथ ऐरावतके पृष्ठपर बैठा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है ॥४९॥ यथायोग्य ऋद्धिकी धारण करनेवाले लक्ष्मण तथा हर्षसे युक्त एवं अत्यधिक अन्न पानकी सामग्रीसे सहित शेष लोग भी अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार जा रहे थे ॥५०॥ वहाँ जाकर देवियाँ मनोहर कदली गृहोंमें तथा अतिमुक्तक लताके सुन्दर निकुञ्जोंमें महावैभवके साथ ठहर गईं तथा अन्य लोग भी यथा योग्य स्थानोंमें सुखसे बैठ गये ॥५१॥ हाथीसे उतर कर रामने कमलों तथा नील कमलोंसे व्याप्त एवं समुद्रके समान विशाल, निर्मल जलवाले सरोवरमें सुखपूर्वक उस तरह क्रीड़ा की जिस तरह कि क्षीरसागरमें इन्द्र करता है ॥५२॥ तदनन्तर सरोवरमें चिर काल तक क्रीड़ा कर, उन्होंने फूल तोड़े और जलसे बाहर निकल कर पूजाकी दिव्य सामग्रीसे सीताके साथ मिलकर जिनेन्द्र भगवानकी पूजा की ॥५३॥ वनलक्ष्मियोंके समान उत्तमोत्तम स्त्रियोंसे घिरे हुए मनोहारी राम उस समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो शरीरधारी श्रीमान् वसन्त ही आ पहुँचा हो ॥५४॥

१. मदान्न -म० । २. कामः कमलोत्पलसंकुले समुदारे म० । ३. कृतपरिवरणो म० ।

देवीभिरनुपमाभिः सोऽष्टसहस्रप्रमाणसङ्कसक्ताभिः ।
 रेजे निर्मलदेहस्ताराभिरिवावृतो ग्रहाणामधिपः ॥५५॥
 अमृताहारविलेपनशयनासनवासगन्धमाख्यादिभवम् ।
 शब्दरसरूपगन्धस्पर्शसुखं तत्र राम आपोदारम् ॥५६॥
 एवं जिनेन्द्रभवने प्रतिदिनपूजाविधानयोगरतस्य ।
 रामस्य रतिः परमा जाता रवितेजसः सुदारयुतस्य ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे जिनेन्द्रपूजादोहदाभिधानं नाम पञ्चनवतितमं पर्व ॥६५॥

आठ हजार प्रमाण अनुपम देवियोंसे घिरे हुए, निर्मल शरीरके धारक राम उस समय ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ उस उद्यानमें रामने अमृतमय आहार, विलेपन, शयन, आसन, निवास, गन्ध तथा माला आदिसे उत्पन्न होनेवाले शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श सम्बन्धी उत्तम सुख प्राप्त किया था ॥५६॥ इस प्रकार जिनेन्द्र मन्दिरमें प्रतिदिन पूजा-विधान करनेमें तत्पर सूर्यके समान तेजस्वी, उत्तम स्त्रियोंसे सहित रामको अत्यधिक प्रीति उत्पन्न हुई ॥५७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें जिनेन्द्र पूजारूप दोहलेका वर्णन करनेवाला पंचानवेवौ पर्व पूर्ण हुआ ॥६५॥

षण्णवतितमं पर्व

उद्यानेऽत्रस्थितस्यैवं राघवस्य सुचेतसः । तृषिता इव सम्प्रापुः प्रजा दर्शनकांक्षया ॥१॥
 श्रावितं प्रतिहारीभिः पारम्पर्यात् प्रजागमम् । विज्ञाय दक्षिणस्याच्छः स्पन्दं प्राप विदेहजा ॥२॥
 अचिन्तयद्भ किं न्वेतन्निवेदयति मे परम् । दुःखस्याऽऽगमनं नेत्रमधस्तात् स्पन्दनं भजत् ॥३॥
 पापेन विधिना दुःखं प्रापिता सागरान्तरे । दुष्टस्तेन न सन्तुष्टः किमन्यत् प्रापयिष्यति ॥४॥
 निर्मितानां स्वयं शश्वत् कर्मणामुचितं फलम् । भ्रुवं प्राणिभिरास्रव्यं न तच्छक्यं निवारणम् ॥५॥
 उपगुण्य प्रयत्नेन शीतांशुकमिवांशुमान् । पालयन्नपि नित्यं स्वं कर्मणां फलमश्नुते ॥६॥
 अगदच्च विचेतस्का देव्यो भूत श्रुतागमाः । सम्यग्बिचार्य मेऽधस्तात्नेत्रस्पन्दवजं फलम् ॥७॥
 तासामनुमती नाम देवी निश्चयकोविदा । जगाद् देवि को नाम विधिरन्योऽत्र दृश्यते ॥८॥
 यत् कर्म निर्मितं पूर्वं सिद्धं मलिनमेव वा । स कृतान्तो विधिश्चासौ दैवं तच्च तदीश्वरः ॥९॥
 कृतान्तेनाहमानीता व्यवस्थामेतिकामिति । पृथङ् निरूपणं तत्र जनस्याज्ञानसम्भवम् ॥१०॥
 अथातो गुणदोषज्ञा गुणमालेति कीर्त्तिता । जगाद् सान्त्वनीयुक्ता देवी देवनयाऽन्विताम् ॥११॥
 देवि स्वमेव देवस्य सर्वतोऽपि गरीयसी । तवैव च प्रसादेन जनस्यान्यस्य संयुता ॥१२॥
 ततोऽहं न प्रपश्यामि सुयुक्तेनापि चेतसा । यत्ने वास्यति दुःखस्य कारणत्वं सुचेष्टिते ॥१३॥

अथानन्तर जब इस प्रकार शुद्ध हृदयके धारक राम महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें अवस्थित थे तब उनके दर्शनकी आकांक्षासे प्रजा उनके समीप इस प्रकार पहुँची मानो क्यासी ही हो ॥१॥ 'प्रजाका आगमन हुआ है' यह समाचार परम्परासे प्रतिहारियोंने सीताको सुनाया, सो सीताने जिस समय इस समाचारको जाना उसी समय उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी ॥२॥ सीताने विचार किया कि अधोभागमें फड़कनेवाला नेत्र मेरे लिए किस भारी दुःखके आगमनकी सूचना दे रहा है ॥३॥ पापी विधाताने मुझे समुद्रके बीच दुःख प्राप्त कराया है सो जान पड़ता है कि वह दुष्ट उससे संतुष्ट नहीं हुआ, देखूँ अब वह और क्या प्राप्त कराता है ? ॥४॥ प्राणियोंने जो निरन्तर स्वयं कर्म उपाजित किये हैं उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है—उसका निवारण करना शक्य नहीं है ॥५॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि चन्द्रमाका पालन करता है परन्तु प्रयत्न पूर्वक अपने तेजसे उसे तिरोहित कर पालन करता है इसलिए वह निरन्तर अपने कर्मका फल भोगता है (?) व्याकुल होकर सीताने अन्य देवियोंसे कहा कि अहो देवियो ! तुमने तो आगमको सुना है इसलिए अच्छी तरह विचार कर कहो कि मेरे नेत्रके अधोभागके फड़कनेका क्या फल है ? ॥६-७॥ उन देवियोंके बीच निश्चय करनेमें निपुण जो अनुमती नामकी देवी थी वह बोली कि हे देवि ! इस संसारमें विधि नामका दूसरा कौन पदार्थ दिखाई देता है ? ॥८॥ पूर्व पर्यायमें जो अच्छा या बुरा कर्म किया है वही कृतान्त, विधि, दैव अथवा ईश्वर कहलाता है ॥९॥ भैं पृथग् रहनेवाले कृतान्तके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त कराई गई हैं, ऐसा जो मनुष्यका निरूपण करना है वह अज्ञानमूलक है ॥१०॥

तदनन्तर गुण दोषको जाननेवाली गुणमाला नामकी दूसरी देवीने सान्त्वना देनेमें उद्यत हो दुःखिनी सीतासे कहा कि हे देवि ! प्राणनाथको तुम्हीं सबसे अधिक प्रिय हो और तुम्हारे ही प्रसादसे दूसरे लोगोंको सुखका योग प्राप्त होता है ॥११-१२॥ इसलिए सावधान चित्तसे भी मैं

१. त्वेतन्नि-म० । २. दृष्टस्तेन म० । ३. शक्यं निवारणं म०, ज० । ४. देवी म० । २. सुखयोगः ।

अन्यास्तत्र जगुर्देव्यो देव्यत्र जनितेन किम् । वितर्केण विशालेन शान्तिकर्म विधीयताम् ॥१४॥
 अभिषेकैर्जिनेन्द्राणामत्युदारैश्च पूजनैः । दानैरिच्छाभिपूरैश्च क्रियतामशुभेरणम् ॥१५॥
 एवमुक्ता जगौ सीता देव्यः साधु समीरितम् । दानं पूजाऽभिषेकश्च तपश्चाशुभसूदनम् ॥१६॥
 विघ्नानां नाशनं दानं रिपूणां वैरनाशनम् । पुण्यस्य समुपादानं महतो यशसस्तथा ॥१७॥
 इत्युक्त्वा भद्रकलशं समाहाय जगाविति । किमिच्छदानमासूतेदीयतां प्रतिवासरम् ॥१८॥
 यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा द्रविणाधिकृतो ययौ । इयमप्यादरे तस्थौ जिनपूजादिगोचरे ॥१९॥
 ततो जिनेन्द्रगोहेषु तूर्यशब्दाः समुद्युः । शङ्खकोटिरबोन्मिश्राः प्रावड्घनरवोपमाः ॥२०॥
 जिनेन्द्रचरितन्यस्तचित्रपटाः प्रसारिताः । पयोधृतादिसम्पूर्णाः कलशाः समुपाहृताः ॥२१॥
 भूषिताङ्गो द्विपारुढः कञ्चुकी सितवस्त्रभृत् । कः केनार्थैः ययोध्यायां घोषणामददात् स्वयम् ॥२२॥
 एवं सुविधिना दानं महोरसाहमदीयत । विविधं नियमं देवी निजशक्त्या चकार च ॥२३॥
 प्रात्रत्यन्त महापूजा अभिषेकाः सुसम्पदाः । पापवस्तुनिवृत्तात्मा बभूव समधीर्जनः ॥२४॥
 इतिक्रियाप्रसक्त्या सीतायां शान्तचेतसि । आस्थानमण्डपे तस्थौ दर्शने शक्रवदबलः ॥२५॥
 प्रतीहारविनिर्मुक्तद्वाराः सम्भ्रान्तचेतसः । ततो जनपदाः सैहं धामेवास्थानमाश्रिताः ॥२६॥
 रत्नकाञ्चननिर्माणामदृष्टां जातुचित् पुनः । सभामालोक्य गम्भीरां प्रजानां चलितं मनः ॥२७॥

उस पदार्थको नहीं देखता जो हे सुचेष्टिते ! तुम्हारे दुःखका कारणपना प्राप्त कर सके ॥१२॥ उक्त दोके सिवाय जो वहाँ अन्य देवियाँ थीं उन्होंने कहा कि हे देवि ! इस विषयमें अत्यधिक तर्क-वितर्क करनेसे क्या लाभ है ? शान्तिकर्म करना चाहिए ॥१४॥ जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेक, अत्युदार पूजन और किमिच्छक दानके द्वारा अशुभ कर्मको दूर हटाना चाहिए ॥१५॥ इस प्रकार कहने पर सीताने कहा कि हे देवियो ! आप लोगोंने ठीक कहा है क्योंकि दान, पूजा, अभिषेक और तप अशुभ कर्मको नष्ट करनेवाला है ॥१६॥ दान विघ्नोंका नाश करनेवाला है, शत्रुओंका वैर दूर करनेवाला है, पुण्यका उपादान है तथा बहुत भारी यशका कारण है ॥१७॥ इतना कहकर सीताने भद्रकलश नामक कोषाध्यक्षको बुलाकर कहा कि प्रसूति पर्यन्त प्रतिदिन किमिच्छक दान दिया जावे ॥१८॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर उधर कोषाध्यक्ष चला गया और इधर यह सीता भी जिनपूजा आदि सम्बन्धी आदरमें निमग्न हो गई ॥१९॥

तदनन्तर जिन मन्दिरोंमें करोड़ों शङ्खोंके शब्दमें मिश्रित, एवं वर्षाकालिक मेघ गर्जनाकी उपमा धारण करनेवाले तुरही आदि वादित्रोंके शब्द उठने लगे ॥२०॥ जिनेन्द्र भगवान्के चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाले चित्रपट फैलाये गये और दूध, घृत आदिसे भरे हुए कलश बुलाये गये ॥२१॥ आभूषणोंसे आभूषित तथा श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाले कञ्चुकीने हाथी पर सवार हो अयोध्यामें स्वयं यह घोषणा दी कि कौन किस पदार्थकी इच्छा रखता है ? ॥२२॥ इस प्रकार विधि पूर्वक बड़े उत्साहसे दान दिया जाने लगा और देवी सीताने अपनी शक्तिके अनुसार नाना प्रकारके नियम ग्रहण किये ॥२३॥ उत्तम वैभवाके अनुरूप महापूजाएँ और अभिषेक किये गये तथा मनुष्य पापपूर्ण वस्तुसे निवृत्त हो शान्तचित्त हो गये ॥२४॥ इस प्रकार जब शान्त चित्तकी धारक सीता दान आदि क्रियाओंमें आसक्त थी तब रामचन्द्र इन्द्रके समान सभामण्डपमें आसीन थे ॥२५॥

तदनन्तर द्वारपालोंने जिन्हें द्वार छोड़ दिये थे तथा जिनके चित्त न्यग्र थे ऐसे देशवासी लोग सभा मण्डपमें उस तरह डरते-डरते पहुँचे जिस तरह कि मानो सिंहके स्थान पर ही जा रहे हों ॥२६॥ रत्न और सुवर्णसे जिसकी रचना हुई थी तथा जो पहले कभी देखनेमें नहीं आई

हृदयानन्दनं राममालोक्य नयनोत्सवम् । उल्लसन् मनसो नेमुः प्रबद्धाञ्जलयः प्रजाः ॥२८॥
 वीच्य कम्पितदेहास्ता मुहुः कम्पितमानसाः । पशो जगाद् भो भद्रा ब्रूतागमनकारणम् ॥२९॥
 विजयोऽथ सुराजिश्च मधुमान् वसुलो धरः । काश्यपः पिङ्गलः कालः क्षेमाद्याश्च महत्तराः ॥३०॥
 निश्चलाश्चरणन्यस्तलोचना गलितौजसः । न किञ्चिद्दुःखुराक्रान्ताः प्रभावेण महीपतेः ॥३१॥
 चिरादुत्सहते वक्तुं मतिर्यद्यपि कृच्छ्रतः । निःक्रामति तथाप्येषा वक्त्रागारात्त वाग्वधूः ॥३२॥
 गिरा सान्त्वनकारिण्या पद्मः पुनरभाषत । ब्रूत स्वागतिनो ब्रूत कैमर्थ्येन समागताः ॥३३॥
 इत्युक्त्वा अपि ते भूयः समस्तकरणोक्तिताः । तस्थुः पुस्त इव न्यस्ताः सुनिष्णातेन शिल्पिना ॥३४॥
 ह्रीपाशकण्ठबद्धास्ते किञ्चिच्चञ्चललोचनाः । अभङ्गा इव सारङ्गा जम्बुराकुलचेतसः ॥३५॥
 ततः प्राग्गदस्तेषामुवाच श्लिताक्षरम् । देवाभयप्रसादेन प्रसादः क्रियतामिति ॥३६॥
 ऊचे नरपतिर्भद्रा न किञ्चिद्भवतां भयम् । प्रकाशयत चित्तस्थं स्वस्थतामुपगच्छत ॥३७॥
 अवयं सकलं त्यक्त्वा साधिव्रतानीं भजाभ्यहम् । मिथीभूतं जलं त्यक्त्वा यथा हंसः स्तनोद्भवम् ॥३८॥
 अभयेऽपि ततो लब्धे कृच्छ्रप्रस्थापिताक्षरः । जगाद् मन्दनिःस्वानो विजयोऽत्रलिमस्तकः ॥३९॥
 विज्ञाप्यं श्रूयतां नाथ पद्मनाभ नरोत्तम । प्रजाधुनाऽखिला जाता मर्यादारहितात्मिका ॥४०॥
 स्वभावादेव लोकोऽयं महाकुटिलमानसः । प्रकटं प्राप्य दृष्टान्तं न किञ्चित्तस्य दुष्करम् ॥४१॥

थी ऐसी उस गम्भीर सभाको देखकर प्रजाके लोगोंका मन चञ्चल हो गया ॥२७॥ हृदयको आनन्दित करनेवाले और नेत्रोंको उत्सव देनेवाले श्रीरामको देखकर जिनके चित्त खिल उठे थे ऐसे प्रजाके लोगोंने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥२८॥ जिनके शरीर कम्पित थे तथा जिनका मन बार-बार काँप रहा था ऐसे प्रजाजनोंको देखकर रामने कहा कि अहो भद्रजनों ! अपने आगमनका कारण कहो ॥२९॥ अथानन्तर विजय, सुराजि, मधुमान्, वसुल, धर, काश्यप, पिङ्गल, काल और क्षेम आदि बड़े-बड़े पुरुष, राजा रामचन्द्रजीके प्रभावसे आक्रान्त हो कुछ भी नहीं कह सके। वे चरणोंमें नेत्र लगाकर निश्चल खड़े रहे और सबका ओज समाप्त हो गया ॥३०-३१॥ यद्यपि उनकी बुद्धि कुछ कहनेके लिए चिरकालसे उत्साहित थी तथापि उनकी वाणी रूपी वधू मुखरूपी घरसे बड़ी कठिनाईसे नहीं निकलती थी ॥३२॥

तदनन्तर रामने सान्त्वनना देने वाली वाणीसे पुनः कहा कि आप सबलोगोंका स्वागत है। कहिये आप सब किस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं ॥३३॥ इतना कहनेपर भी वे पुनः समस्त इंद्रियोंसे रहितके समान खड़े रहे। निश्चल खड़े हुए वे सब ऐसे जान पड़ते थे कि मानो किसी कुशल कारीगरने उन्हें मिट्टी आदिके खिलौनेके रूपमें रच कर निश्चित किया हो—वहाँ रख दिया हो ॥३४॥ जिनके कण्ठ लज्जा रूपी पाशासे बँधे हुए थे, जो मृगोंके बच्चोंके समान कुछ कुछ चञ्चल लोचनवाले थे तथा जिनके हृदय अत्यन्त आकुल हो रहे थे ऐसे वे प्रजाजन उल्लाससे रहित हो गये—म्लान मुख हो गये ॥३५॥

तदनन्तर उनमें जो मुखिया था वह जिस किसी तरह टूटे-फूटे अक्षरोंमें बोला कि हे देव ! अभय दान देकर प्रसन्नता कीजिये ॥३६॥ तब राजा रामचन्द्रने कहा कि हे भद्र पुरुषो ! आप लोगोंको कुछ भी भय नहीं है, हृदयमें स्थित बातको प्रकट करो और स्वरथताको प्राप्त होओ ॥३७॥ मैं इस समय समस्त पापका परित्याग कर उस तरह निर्दोष वस्तुको ग्रहण करता हूँ जिस प्रकार कि हंस मिले हुए जलको छोड़कर केवल दूधको ग्रहण करता है ॥३८॥ तदनन्तर अभय प्राप्त होनेपर भी जो बड़ी कठिनाईसे अक्षरोंको स्थिर कर सका था ऐसा विजय नामक पुरुष हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मन्द स्वरमें बोला कि हे नाथ ! हे राम ! हे नरोत्तम ! मैं जो निवेदन करना चाहता हूँ उसे सुनिये, इस समय समस्त प्रजा मर्यादासे रहित हो गई है ॥३९-४०॥ यह मनुष्य

परमं चापलं धत्ते निसर्गेण प्लवङ्गमः । किमङ्ग पुनरारुह्य चपलं यन्त्रपञ्जरम् ॥४२॥
 तरुण्यो रूपसम्पन्नाः पुंसामल्पबलात्मनाम् । हियन्ते बलिभिः क्षिप्ते पापचित्तैः प्रसह्य च ॥४३॥
 प्राप्तदुःखां प्रियां साध्वीं विरहात्यन्तदुःखितः । कश्चित् सहायमासाद्य पुनरानयते गृहम् ॥४४॥
 प्रलीनधर्ममर्यादां यावन्नश्यति नावानिः । उपायश्चिन्त्यतां तावत्प्रजानां हितकाम्यया ॥४५॥
 राजा मनुष्यलोकेऽस्मिन्नधुना त्वं यदा प्रजाः । न पासि विधिना नाशमिमा यान्ति तदा भ्रुवम् ॥४६॥
 नद्युद्यानसभाग्रामप्रपाध्वपुरवेशमसु । अचर्णवाद्मेकं ते मुक्त्वा नान्यास्ति सङ्ख्या ॥४७॥
 स तु दाशरथी रामः सर्वशास्त्रविशारदः । हृतां विद्याधरेशेन जानकीं पुनरानयन् ॥४८॥
 तत्र नूनं न दोषोऽस्ति कश्चिद्व्येवमाश्रिते । व्यवहारेऽपि विद्वांसः प्रमाणं जगतः परम् ॥४९॥
 किं च यादृशमुर्वीशः कर्मयोगं निषेवते । स एव सहतेऽस्माकमपि नाथानुवर्तिनाम् ॥५०॥
 एवं प्रदुष्टचित्तस्य वदमानस्य भूतले । निरङ्कुशस्य लोकस्य काकुत्स्थ कुरु निग्रहम् ॥५१॥
 एक एव हि दोषोऽयमभविष्यन्न चेत्ततः । व्यलम्बयिष्यदेतत्ते राज्यमाखण्डलेशताम् ॥५२॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य क्षणमेकमभून्ननुपः । विषादमुग्दरावातविचलद्भृदयो भृशम् ॥५३॥
 अचिन्तयच्च हा कष्टमिदमन्यत्समागतम् । यद्यशोऽम्बुजखण्डं मे दग्धुं लम्बोऽयशोऽनलः ॥५४॥
 यत्कृतं दुःसहं सोढं विरहव्यसनं मया । सा क्रिया कुलचन्द्रं मे प्रकरोति मल्लोमसम् ॥५५॥
 विनीतां यां समुद्दिश्य प्रवीराः कपिकेतवः । करोति मलिनां सीता सा मे गोत्रकुमुद्वतीम् ॥५६॥

स्वभावसे ही महाकुटिलचित्त है फिर यदि कोई दृष्टान्त प्रकट मिल जाता है तो फिर उसे कुछ भी कठिन नहीं रहता ॥४१॥ वानर स्वभावसे ही परम चञ्चलता धारण करता है फिर यदि चञ्चल यन्त्र रूपी पञ्जर पर आरूढ़ हो जावे तो कहना ही क्या है ॥४२॥ जिनके चित्तमें पाप समाया हुआ है ऐसे बलवान् मनुष्य अवसर पाकर निर्वल मनुष्योंकी तरुण स्त्रियोंको बलान् हरने लगे हैं ॥४३॥ कोई मनुष्य अपनी साध्वी प्रियाको पहले तो परित्यक्त कर अत्यन्त दुखी करता है फिर उसके विरहसे स्वयं अत्यन्त दुखी हो किसीकी सहायतासे उसे घर बुलवा लेता है ॥४४॥ इसलिए हे नाथ ! धर्मकी मर्यादा छूट जानेसे जबतक पृथ्वी नष्ट नहीं हो जाती है तब तक प्रजाके हितकी इच्छासे कुछ उपाय सोचा जाय ॥४५॥ आप इस समय मनुष्य लोकके राजा होकर भी यदि विधि पूर्वक प्रजाकी रक्षा नहीं करते हैं तो वह अवश्य ही नाशकी प्राप्त हो जायगी ॥४६॥ नदी, उपवन, सभा, ग्राम, प्याऊ, मार्ग, नगर तथा घरोंमें इस समय आपके इस एक अवर्णवादको छोड़कर और दूसरी चर्चा ही नहीं है कि राजा दशरथके पुत्र राम समस्त शास्त्रों में निपुण होकर भी विद्याधरोंके अधिपति रावणके द्वारा हत सीताको पुनः वापिस ले आये ॥४७-४८॥ यदि हम लोग भी ऐसे व्यवहारका आश्रय लें तो उसमें कुछ भी दोष नहीं है क्योंकि जगत्के लिए तो विद्वान् ही परम प्रमाण हैं । दूसरी बात यह है कि राजा जैसा काम करता है वैसा ही काम उसका अनुकरण करनेवाले हम लोगोंमें भी बलात् होने लगता है ॥४९-५०॥ इस प्रकार दुष्ट हृदय मनुष्य स्वच्छन्द होकर पृथिवी पर अपवाद कर रहे हैं सो हे काकुत्स्थ ! उनका निग्रह करो ॥५१॥ यदि आपके राज्यमें एक यही दोष नहीं होता तो यह राज्य इन्द्रके भी साम्राज्य को विलम्बित कर देता ॥५२॥ इस प्रकार उक्त निवेदनको सुनकर एक क्षणके लिए राम, विषाद रूपी मुद्गरकी चोटसे जिनका हृदय अत्यन्त विचलित हो रहा था ऐसे हो गये ॥५३॥ वे विचार करने लगे कि हाय हाय, यह बड़ा कष्ट आ पड़ा । जो मेरे यश रूपी कनकलवनको जलानेके लिए अपयशरूपी अग्नि लग गई ॥५४॥ जिसके द्वारा किया हुआ विरहका दुःसह दुःख मैंने सहन किया है वही क्रिया मेरे कुल रूपी चन्द्रमाको अत्यन्त मलिन कर रही है ॥५५॥ जिस विनयवती सीताको लक्ष्य कर वानरोंने वीरता दिखाई वही सीता मेरे गोत्ररूपी कुमुदिनीको मलिन

यदर्थमन्धिसुवीर्यं रिपुध्वंसि रणं कृतम् । करोति कुलध्वंसात् ॥५७॥
 युक्तं जनपदो वक्ति दुष्टपुंसि परालये । अवस्थिता कथं सीता लोकनिन्दा मयाहता ॥५८॥
 अपश्यन् क्षणमात्रं यां भवामि विरहाकुलः । अनुरक्तां त्यजाम्येतां दयितामधुना कथम् ॥५९॥
 ऋक्षुर्मानसयोर्वासं कृत्वा याऽवस्थिता मम । गुणधन्वीमदोषां तां कथं मुञ्चामि जानकीम् ॥६०॥
 अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम् । दोषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्भवति मन्मथः ॥६१॥
 धिक्स्त्रियं सर्वदोषाणांसाकरं तापकारणम् । विशुद्धकुलजातानां पुंसां पङ्कं सुदुस्त्यजम् ॥६२॥
 अभिहन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयात् । स्मृतीनां परमं भ्रंशं सत्यखलनखातिकाम् ॥६३॥
 विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम् । भस्मच्छन्नाग्निसङ्काशां दर्भसूचीसमानिकाम् ॥६४॥
 दृग्भात्ररमणीयां तां निर्मुक्तमिव पद्मगः । तस्मात्प्रजामि वैदेहीं महादुःखजिहासया ॥६५॥
 अशून्यं सर्वदा तीव्रस्नेहबन्धवशीकृतम् । यथा मे हृदयं मुख्यां विरहामि कथं तकाम् ॥६६॥
 यद्यप्यहं स्थिरस्वान्तस्तथाप्यासन्नवर्तिनी । अर्चिर्वन्मम वैदेही मनोविलयनक्षमा ॥६७॥
 मन्ये दूरस्थिताऽप्येषा चन्द्ररेखा कुमुदतीम् । यथा चालयितुं शक्ता धृतिं मम मनोहरा ॥६८॥
 इतो जनपरीवादश्चेत् स्नेहः सुदुस्त्यजः । अहोऽस्मि भयरागाभ्यां प्रक्षिसो गहनान्तरे ॥६९॥
 श्रेष्ठा सर्वप्रकारेण दिवौकोयोषितामपि^१ । कथं त्यजामि तां साध्वीं प्रीत्या यातामिवैकताम् ॥७०॥
 एतां यदि न मुञ्चामि साक्षाद्दुःकीर्त्तिमुदगताम् । कृपणो मत्समो मद्यां तदैतस्यां न विद्यते ॥७१॥

कर रही है ॥५६॥ जिसके लिए मैंने समुद्र उतर कर शत्रुओंका संहार करनेवाला युद्ध किया था वही जानकी मेरे कुलरूपी दर्पणको मलिन कर रही है ॥५७॥ देशके लोग ठीक ही तो कहते हैं कि जिस घरका पुरुष दुष्ट है, ऐसे पराये घरमें स्थित लोक निन्दा सीताको मैं क्यों ले आया ? ॥५८॥ जिसे मैं क्षणमात्र भी नहीं देखता तो विरहाकुल हो जाता हूँ इस अनुरागसे भरी प्रिय दयिताको इस समय कैसे छोड़ दूँ ? ॥५९॥ जो मेरे चक्षु और मनमें निवास कर अवस्थित है उस गुणोंकी भाण्डार एवं निर्दोष सीताका परित्याग कैसे कर दूँ ? ॥६०॥ अथवा उन स्त्रियोंके चित्तकी चेष्टा को कौन जानता है जिनमें दोषोंका कारण काम साक्षात् निवास करता है ॥६१॥ जो समस्त दोषोंकी खान है । संतापका कारण है तथा निर्मलकुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके लिए कठिनाईसे छोड़ने योग्य पङ्क स्वरूप है उस स्त्रीके लिए धिक्कार है ॥६२॥ यह स्त्री समस्त बलोंको नष्ट करने वाली है, रागका आश्रय है, स्मृतियोंके नाशका परम कारण है, सत्यव्रतके खलित होनेके लिए खाई रूप है, मोक्ष सुखके लिए विघ्न स्वरूप है, ज्ञानकी उत्पत्तिको नष्ट करने वाली है, भस्मसे आच्छादित अग्निके समान है, डाभकी अनीके तुल्य है अथवा देखने मात्रमें रमणीय है । इस-लिए जिस प्रकार साँप काँचुलीको छोड़ देता है उसी प्रकार मैं महादुःखको छोड़नेकी इच्छासे सीताको छोड़ता हूँ ॥६३-६५॥ उत्कट स्नेह रूपा बन्धनसे वशीभूत हुआ मेरा हृदय सदा जिससे अशून्य रहता है उस मुख्य सीताको कैसे छोड़ दूँ ? ॥६६॥ यद्यपि मैं दृढ चित्त हूँ तथापि समीप में रहने वाली सीता ज्वालाके समान मेरे मनको विलीन करनेमें समर्थ है ॥६७॥ मैं मानता हूँ कि जिस प्रकार चन्द्रमाकी रेखा दूरवर्तिनी होकर भी कुमुदिनीको विचलित करनेमें समर्थ है उसी प्रकार यह सुन्दरी सीता भी मेरे धैर्यको विचलित करनेमें समर्थ है ॥६८॥ इस ओर लोक-निन्दा है और दूसरी ओर कठिनाईसे छूटने योग्य स्नेह है । अहो ! मुझे भय और रागने सघन वनके बीचमें ला पटका है ॥६९॥ जो देवाङ्गनाओंमें भी सब प्रकारसे श्रेष्ठ है तथा जो प्रीतिके कारण मानो एकताको प्राप्त है उस साध्वी सीताको कैसे छोड़ दूँ ॥७०॥ अथवा उठी हुई साक्षात् अपकीर्तिके समान इसे यदि नहीं छोड़ता हूँ तो पृथिवी पर इसके विषयमें मेरे समान दूसरा

वसन्ततिलकावृत्तम्

स्नेहापवादभयसङ्गतमानसस्य व्यामिश्रतीव्ररसवेगवशीकृतस्य ।
रामस्य गाढपरितापसमाकुलस्य कालस्तदा निरुपमः स बभूव कृच्छ्रः ॥७२॥

वंशस्थवृत्तम्

विरुद्धपूर्वोत्तरमाकुलं परं ^४विसन्धिसातेतरवेदनान्वितम् ।
अभूदिदं केसरिकेतुचिन्तनं निदावमध्याह्नरवेः सुदुःसहम् ॥७३॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यमोक्षे पद्मपुराणे जनपरीवादचिन्तामिधानं नाम षण्णवतितमं पर्व ॥६६॥

कृपण नहीं होगा ॥७१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनका मन स्नेह अपवाद और भयसे संगत था, जो मिश्रित तीव्र रसके वेगसे वशीभूत थे, तथा जो अत्यधिक संतापसे व्याकुल थे ऐसे रामका वह समय उन्हें अनुपम दुःख स्वरूप हुआ था ॥७२॥ जिसमें पूर्वापर विरोध पड़ता था जो अत्यन्त आकुलता रूप था, जो स्थिर अभिप्रायसे रहित था और दुःखके अनुभवसे सहित था ऐसा यह रामका चिन्तन उन्हें प्रौढमन्त्रु सम्बन्धी मध्याह्नके सूर्यसे भी अधिक अत्यन्त दुःसह था ॥७३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लोकनिन्दाकी चिन्ताका उल्लेख करनेवाला छियानत्रेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६६॥

सप्तमवतितमं पर्व

ततः कथमपि न्यस्य चिन्तामेकत्र वस्तुनि । आज्ञापयत् प्रतीहारं लक्ष्मणाकारणं प्रातः ॥१॥
 प्रतीहारवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सम्भ्रमान्वितः । तुरङ्गं चलमारुह्य कृत्येक्षामतमानसः ॥२॥
 रामस्यासन्नतां प्राप्य प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । आसीनो भूतले रम्ये तस्पादनिहितेक्षणः ॥३॥
 स्वयमुत्थाप्य तं पद्मो विनयानतविग्रहम् । परमाश्रयताभाजं चक्रेऽर्धासनसङ्गतम् ॥४॥
 शत्रुघ्नाग्रेसराः भूपाश्रन्दोदरं सुतादयः । तथाऽविशन् कृतानुज्ञा आसीनाश्च यथोचितम् ॥५॥
 पुरोहितः पुरः श्रेष्ठी मन्त्रिणोऽन्ये च सज्जनाः । यथायोग्यं समासीनाः कुतूहलसमन्विताः ॥६॥
 ततः क्षणमिव स्थित्वा बलदेवो यथाक्रमम् । लक्ष्मणाय परीवाद्सनुपत्तिं न्यवेदयत् ॥७॥
 तदाकर्ण्य सुमित्राजो रोपलोहितलोचनः । सन्नदधुमादिशन् योधनिदं च पुनरभ्यधात् ॥८॥
 अद्य गच्छाम्यहं शीघ्रमन्तं दुर्जनैवारिधेः । करोमि धरणीं मिथ्यावाक्यजिह्वातिरोहिताम् ॥९॥
 उपमानविनिर्मुक्तशीलसम्भारधारिणीम् । द्विपन्ति गुणगम्भीरां सीतां ये तावन्नये क्षयम् ॥१०॥
 ततो दुरोचितं प्राशं हरिं क्रोधवशोऽकृतम् । संधुन्वत्संसदं वाक्यैरिमैरशमयन्नपुः ॥११॥
 सौम्यर्षभकृतीपम्यैः सदचैर्भरतस्य च । महीसागरपर्यन्ता पालितेयं नरोत्तमैः ॥१२॥
 इत्त्वाकुवंशतिलका आदिः यशसादयः । आसन्नेपां रणे पृष्ठं दृष्टं नेन्द्रारिवारिभिः ॥१३॥
 तेषां यशःप्रदानेन कौमुदीपदशोभिना । अलङ्कृतमिदं लोकत्रितयं रहितान्तरम् ॥१४॥

अथानन्तर किसी तरह एक वस्तुमें चिन्ताको स्थिर कर श्रीरामने लक्ष्मणको बुलानेके लिए द्वारपालको आज्ञा दी ॥१॥ कार्योंके देखनेमें जिनका मन लग रहा था ऐसे लक्ष्मण, द्वारपालके वचन सुन हड़थड़ाहटके साथ चञ्चल घोड़े पर सवार हो श्रीरामके निकट पहुँचे और हाथ जोड़ नमस्कार कर उनके चरणोंमें दृष्टि लगाये हुए मनोहर पृथिवी पर बैठ गये ॥२-३॥ जिनका शरीर विनयसे नम्रीभूत था तथा जो परम आज्ञाकारी थे ऐसे लक्ष्मणको स्वयं उठाकर रामने अर्धासन पर बैठाया ॥४॥ जिनमें शत्रुघ्न प्रधान था ऐसे विराधित आदि राजा भी आज्ञा लेकर भीतर प्रविष्ट हुए और सब यथायोग्य स्थानों पर बैठ गये ॥५॥ पुरोहित, नगरसेठ, मन्त्री तथा अन्य सज्जन कुतूहलसे युक्त हो यथायोग्य स्थान पर बैठ गये ॥६॥

तदनन्तर क्षण भर ठहर कर रामने यथाक्रमसे लक्ष्मणके लिए अपवाद उत्पन्न होनेका समाचार सुनाया ॥७॥ सो उसे सुनकर लक्ष्मणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये । उन्होंने उसी समय योद्धाओंको तैयार होनेका आदेश दिया तथा स्वयं कहा कि मैं आज दुर्जन रूपी समुद्रके अन्तको प्राप्त होता हूँ और मिथ्यावादी लोगोंकी जिह्वाओंसे पृथिवीको आच्छादित करता हूँ ॥८-९॥ अनुपम शीलके समूहको धारण करनेवाली एवं गुणोंसे गम्भीर सीताके प्रति जो द्वेष करते हैं मैं उन्हें आज क्षयको प्राप्त कराता हूँ ॥१०॥ तदनन्तर जो क्रोधके वशाभूत हो दुर्दर्शनीय अवस्थाको प्राप्त हुए थे तथा जिन्होंने सभाको क्षोभ युक्त कर दिया था ऐसे लक्ष्मणको रामने इन वचनोंसे शान्त किया कि हे सौम्य ! यह समुद्रान्त पृथिवी भगवान् ऋषभदेव तथा भरत चक्रवर्ती जैसे उत्तमोत्तम पुरुषोंके द्वारा चिरकालसे पालित है ॥११-१२॥ अर्ककीर्ति आदि राजा इत्त्वाकुवंशके तिलक थे । जिस प्रकार कोई चन्द्रमाकी पीठ नहीं देख सकता उसी प्रकार इनकी पीठ भी युद्धमें शत्रु नहीं देख सके थे ॥१३॥ चाँदनी रूपी पटके समान सुशोभित उनके यशके समूहसे ये तीनों

१. परमाश्रयता-म० । २. चन्द्रोदय म० । ३. मन्तदुर्जन-म० । ४. जिह्वातिरोहिताम् म० ।

कथं तद्वागमात्रस्य कृते पापस्य भङ्गिनः । वहस्त्रिरर्थकं प्राणान् विदधामि मलीमसम् ॥१५॥
 अकीर्तिः परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता । कीर्तिरल्पापि देवानामपि नाथैः प्रयुज्यते ॥१६॥
 भोगैः किं परमोदारैरपि प्रसूयवत्सलैः । कीर्त्युद्यानं प्ररूढं यद्दृष्टतेऽकीर्तिवह्निना ॥१७॥
 तद्धैतच्छशाशखाणां वध्यं नावर्णभाषितम् । देव्यामस्मद्गृहस्थायां सत्यामपि सुचेतसि ॥१८॥
 पश्याम्भोजवनानन्दकारिणस्तिग्मतेजसः । अस्तं यातस्य को रात्रौ सत्यामस्ति निवर्त्तकः ॥१९॥
 अपवाद्दरजोभिर्मे महाविस्तारगामिभिः । छायायाः क्रियते हानं मा भूदेतद्वारणम् ॥२०॥
 शशाङ्कविमलं गोत्रमकीर्त्तिघनलेखया । मारुपत्प्राप्य मां भ्रातस्त्रियहं यत्नतत्परः ॥२१॥
 शुष्केन्धनमहाकूटे सलिलाप्लाववजितः । मानवद्विष्ट यथा वह्निरयशो भुवने कृतम् ॥२२॥
 कुलं महार्हमेतन्मे प्रकाशममलोज्ज्वलम् । यावत्कलङ्क्यते नाऽरं तावदौपायिकं कुरु ॥२३॥
 अपि त्यजामि वैदेहीं निर्दोषां शीलशालिनीम् । प्रमादयामि नो कीर्तिं लोकतौख्यहतात्मकः ॥२४॥
 ततो जगाद् सौमित्रिभ्रातृस्नेहपरायणः । राज्ञञ्च खलु वैदेह्यां विधातुं शोकमर्हामि ॥२५॥
 लोकापवादमात्रेण कथं त्यजसि जानकीम् । स्थितां सर्वसतीमूर्ध्नि सर्वाकारमनिन्दिताम् ॥२६॥
 असत्त्वं वक्तुं दुर्लोकः प्राणिनां शीलधारिणाम् । न हि तद्ब्रचनात्तेषां परमार्थत्वमश्नुते ॥२७॥
 गृह्यमाणोऽतिकृष्णोऽपि विषदूषितलोचनैः । सितत्वं परमार्थेन न विमुञ्चति चन्द्रमाः ॥२८॥
 आत्मा शीलसम्पन्नस्य जन्तोर्ब्रजति साक्षिताम् । परमार्थाय पर्याप्तं वस्तुतत्त्वं न बाह्यतः ॥२९॥

लोक निरन्तर सुशोभित हैं ॥१४॥ निष्प्रयोजन प्राणोंको धारण करता हुआ मैं, पापी एवं भङ्गुर स्नेहके लिए उस कुलको मलिन कैसे कर दूँ ? ॥१५॥ अल्प भी अकीर्ति उपेक्षा करने पर वृद्धिको प्राप्त हो जाती है और थोड़ी भी कीर्ति इन्द्रोंके द्वारा भी प्रयोगमें लाई जाती है—गाई जाती है ॥१६॥ जब कि अकीर्ति रूपी अग्निके द्वारा हरा-भरा कीर्तिरूपी उद्यान जल रहा है तब इन नश्वर विशाल भोगोंसे क्या प्रयोजन सिद्ध होनेवाला है ? ॥१७॥ मैं जानता हूँ कि देवी सीता, सती और शुद्ध हृदयवाली नारी है पर जब तक वह हमारे घरमें स्थित रहती है तब तक यह अवर्णवाद शस्त्र और शास्त्रोंके द्वारा दूर नहीं किया जा सकता ॥१८॥ देखो, कमल बनको आनन्दित करनेवाला सूर्य रात्रि होते ही अस्त हो जाता है सो उसे रोकनेवाला कौन है ? ॥१९॥ महाविस्तारको प्राप्त होनेवाली अपवाद रूपी रजसे मेरी कान्तिका हास किया जा रहा है सो यह अनिवारित न रहे—इसकी रुकावट होना चाहिए ॥२०॥ हे भाई ! चन्द्रमाके समान निर्मल कुक्ष मुझे पाकर अकीर्ति रूपी मेघकी रेखासे आवृत न हो जाय इसीलिए मैं यत्न कर रहा हूँ ॥२१॥ जिस प्रकार सूखे ईन्धनके समूहमें जलके प्रवाहसे रहित अग्नि बढ़ती जाती है उस प्रकार उत्पन्न हुआ यह अपयश संसारमें बढ़ता न रहे ॥२२॥ मेरा यह महायोग्य, प्रकाशमान, अत्यन्त निर्मल एवं उज्ज्वल कुल जबतक कलङ्कित नहीं होता है तब तक शीघ्र ही इसका उपाय करो ॥२३॥ जो जनताके सुखके लिए अपने आपको अर्पित कर सकता है ऐसा मैं निर्दोष एवं शीलसे सुशोभित सीताको छोड़ सकता हूँ परन्तु कीर्तिको नष्ट नहीं होने दूँगा ॥२४॥

तदनन्तर भाईके स्नेहमें तत्पर लक्ष्मणने कहा कि हे राजन् ! सीताके विषयमें शोक नहीं करना चाहिए ॥२५॥ समस्त सतियोंके मस्तक पर स्थित एवं सर्व प्रकारसे अनिन्दित सीताको आप मात्र लोकापवादके भयसे क्यों छोड़ रहे हैं ? ॥२६॥ दुष्ट मनुष्य शीलवान् मनुष्योंकी बुराई कहें पर उनके कहनेसे उनकी परमार्थता नष्ट नहीं हो जाती ॥२७॥ जिनके नेत्र विषसे दूषित हो रहे हैं ऐसे मनुष्य यद्यपि चन्द्रमाको अत्यन्त काला देखने हैं पर यथार्थमें चन्द्रमा शुक्लता नहीं छोड़ देता है ॥२८॥ शीलसम्पन्न प्राणीकी आत्मा साक्षिताको प्राप्त होती है अर्थात् वह स्वयं ही

१. यानस्य म० । २. भूदातपवारणम् म० । ३. वक्ति म० । ४. वस्तुत्वं म० ।

नो पृथग्जनवादेन संक्षोभं यान्ति कोविदाः । न शुनो भषणादन्ती वैलक्ष्यं विपद्यते ॥३०॥
 विचित्रस्यास्य लोकस्य तरङ्गसमचेष्टिनः । परदोषकथासक्तेर्निग्रहं स्वो वि ॥३१॥
 शिलामुत्पाद्य शीतांशुं जिघांसुर्मोहवत्सलः । स्वयमेव नरो नाशमसन्दिग्धं ॥३२॥
 अभ्याख्यानपरो दुष्टस्तथा परगुणासहः । नियतिं दुर्गतिं जन्तुर्दुःकर्मा प्रतिपद्य ॥३३॥
 बलदेवस्ततोऽनोचद्यथा वदसि लक्ष्मण । सत्यमेवमिदं बुद्धिर्मध्यस्था तव शोभना ॥३४॥
 किन्तु लोकविरुद्धानि त्यजतः शुद्धिशालिनः । न दोषो दृश्यते कश्चिद्गुणश्रैकान्तसम्भवः ॥३५॥
 सौख्यं जगति किं तस्य का वाऽऽशा जीवितं प्रति । दिशो यस्यायशोदावज्वालालीढाः समन्ततः ॥३६॥
 किमनर्थकृतार्थेन सविषेणौषधेन किम् । किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीमताः ॥३७॥
 चारित्रेण न तेनार्थो येन नात्मा हितोद्भवः । ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचरः ॥३८॥
 प्रशस्तं जन्म नो तस्य यस्य कीर्त्तिवधूं वराम् । बली हरति दुर्वादस्ततस्तु मरणं वरम् ॥३९॥
 आस्तां जनपरीवादो दोषोऽप्यतिग्रहान्मम । परपुंसा हता सीता यत्पुनर्गृहमाहता ॥४०॥
 रत्नसो भवनोद्याने चकार वसतिं चिरम् । अभ्यर्थिता च दूतीभिर्वदमानाभिरोपितम् ॥४१॥
 दृष्टा च दुष्टया दृष्ट्या समीपावनिवर्तिना । असकृद्वात्सेन्द्रेण भाषिता च यथेप्सितम् ॥४२॥
 एवंविधां तर्का सीतां गृहमानयता मया । कथं न लजितं किंवा दुष्करं मूढचेतसाम् ॥४३॥

अपनी वास्तविकताको कहती है । यथार्थमें वस्तुका वास्तविक भाव ही उसकी यथार्थताके लिए पर्याप्त है बाह्यरूप नहीं ॥२६॥ साधारण मनुष्यके कहनेसे विद्वज्जन क्षोभको प्राप्त नहीं होते क्योंकि कुत्ताके भोंकनेसे हाथी लज्जाको प्राप्त नहीं होता ॥३०॥ तरङ्गके समान चेष्टाको धारण करनेवाला यह विचित्र लोक दूसरेके दोष कहनेमें आसक्त है सो इसका निग्रह स्वयं इनकी आत्मा करेगी ॥३१॥ जो मूर्ख मनुष्य शिला उखाड़ कर चन्द्रमाको नष्ट करना चाहता है वह निःसन्देह स्वयं ही नाशको प्राप्त होता है ॥३२॥ चुगली करनेमें तत्पर एवं दूसरेके गुणोंको सहन नहीं करनेवाला दुष्कर्मा दुष्ट मनुष्य निश्चित ही दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥३३॥

तदनन्तर बलदेवने कहा कि लक्ष्मण ! तुम जैसा कह रहे हो सत्य वैसा ही है और तुम्हारी मध्यस्थ बुद्धि भी शोभाका स्थान है ॥३४॥ परन्तु लोक विरुद्ध कार्यका परित्याग करनेवाले शुद्धिशाली मनुष्यका कोई दोष दिखाई नहीं देता अपितु उसके विरुद्ध गुण ही एकान्त रूपसे संभव मालूम होता है ॥३५॥ उस मनुष्यको संसारमें क्या सुख हो सकता है ? अथवा जीवनके प्रति उसे क्या आशा हो सकती है जिसकी दिशाएँ सब ओरसे निन्दारूपी दावानलकी ज्वालाओंसे व्याप्त हैं ॥३६॥ अनर्थको उत्पन्न करनेवाले अर्थसे क्या प्रयोजन है ? विष सहित औषधिसे क्या लाभ है ? और उस पराक्रमसे भी क्या मतलब है जिससे भयमें पड़े प्राणियोंकी रक्षा नहीं होती ? ॥३७॥ उस चारित्रसे प्रयोजन नहीं है जिससे आत्मा अपना हित करनेमें उद्यत नहीं होता और उस ज्ञानसे क्या लाभ जिससे अध्यात्मका ज्ञान नहीं होता ॥३८॥ उस मनुष्यका जन्म अच्छा नहीं कहा जा सकता जिसकी कीर्तिरूपी उत्तम वधूको अपयशरूपी बलवान् हर ले जाता है । अरे ! इसकी अपेक्षा तो उसका मरना ही अच्छा है ॥३९॥ लोकापवाद जाने दो, मेरा भी तो यह बड़ा भारी दोष है जो मैं पर पुरुषके द्वारा हरी हुई सीताको फिरसे घर ले आया ॥४०॥ सीताने राक्षसके गृहोद्यानमें चिर काल तक निवास किया, कुत्सित वचन बोलनेवाली दूतियोंने उससे अभिलषित पदार्थकी याचना की, समीपकी भूमिमें वर्तमान रावणने उसे कई बार दुष्ट दृष्टिसे देखा तथा इच्छानुसार उससे वार्तालाप किया । ऐसी उस सीताको घर लाते

१. भाषणादन्ती म०, ज०, ख० भषणं श्वरवः । २. श्वो म., ख. । ३. विधास्यते ख० । ४. -रिद्धितम् म० । ५. भविता म० ।

कृतान्तवक्त्रसेनानीः शब्दतामाविलम्बितम् । सीता गर्भद्वितीया मे गृहादथैव नीयताम् ॥४४॥
 एवमुक्तेऽञ्जलिं बद्धा सौमित्रिः प्रणतात्मकः । जगाद देव नो युक्तं त्यक्तुं जनकसम्भवाम् ॥४५॥
 सुमार्दवाङ्घ्रिकमला तन्वी सुभ्या सुखैषिता । एकाकिनी यथा यातु क वैदेही खिलेन वा ॥४६॥
 गर्भभारसमाक्रान्ता परमं खेदमाश्रित्वा । राजपुत्री त्वया त्यक्ता संश्रयं कं प्रपद्यते ॥४७॥
 वलिपुष्पादिकं दष्टं लोकेन तु जिनाथेऽङ्गम् । कल्पयते भक्तियुक्तेन को दोषः परदर्शने ॥४८॥
 प्रसीद नाथ निर्दोषामसूर्यमपश्यकोमलाम् । माऽऽद्यात्मीमैथिलीं वीर भवदपितमानसाम् ॥४९॥
 ततोऽत्यन्तदृढीभूतविरागः क्रोधभारभाक् । काकुत्स्थः प्रवरोऽत्रोचदप्रसन्नमुखोऽनुजम् ॥५०॥
 लक्ष्मीधर न वक्तव्यं त्वया किञ्चिदतः परम् । सयैतन्निश्चितं कृत्यमवश्यं साध्वसाधु वा ॥५१॥
 निर्मानुष्ये वने त्यक्ता सहायपरिवर्जिता । जीवतु श्रियतां वाऽपि सीताऽऽस्मीयेन कर्मणा ॥५२॥
 क्षणमप्यत्र मे देशे मा शिष्टनगरेऽपि वा । कुत एव गृहे सीता मलवद्वैनकारिणी ॥५३॥
 चतुरश्रमथाऽऽरुह्य रथं सैन्यसमावृतः । जय नन्देति शब्देन वन्दिभिः परिपूजितः ॥५४॥
 समुच्छ्रितसितच्छत्रश्रापी कवचकुण्डली । कृतान्तवक्त्रसेनानीरीशितुः प्रस्थितोऽन्तिकम् ॥५५॥
 तं तथाविधमायान्तं दृष्ट्वा नगरयोषिताम् । कथा बहुविकल्पाऽऽसीद् वितर्कागतचेतसाम् ॥५६॥

हुए मैंने लज्जाका अनुभव क्यों नहीं किया ? अथवा मूर्ख मनुष्योंके लिए क्या कठिन है ? ॥४१-४३॥ कृतान्तवक्त्र सेनापतिको शीघ्र ही बुलाया जाय और अकेली गर्भिणी सीता आज ही मेरे घरसे ले जाई जाय ॥४४॥

इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने हाथ जोड़ कर विनम्र भावसे कहा कि हे देव ! सीताको छोड़ना उचित नहीं है ॥४५॥ जिसके चरण कमल अत्यन्त कोमल हैं, जो कुशाङ्गी है, भोली है और सुख पूर्वक जिसका लालन-पालन हुआ है ऐसी अकेली सीता उपद्रवपूर्ण मार्गसे कहाँ जायगी ? ॥४६॥ जो गर्भके भारसे आक्रान्त है ऐसी सीता तुम्हारे द्वारा त्यक्त होने पर अत्यन्त खेदको प्राप्त होती हुई किसकी शरणमें जायगी ? ॥४७॥ रावणने सीताको देखा यह कोई अपराध नहीं है क्योंकि दूसरेके द्वारा देखे हुए वलि पुष्प आदिकको क्या भक्तजन जिनेन्द्रदेवके लिए अर्पित नहीं करते ? अर्थात् करते हैं अतः दूसरेके देखनेमें क्या दोष है ? ॥४८॥ हे नाथ ! हे वीर ! प्रसन्न होओ कि जो निर्दोष है, जिसने कभी सूर्य भी नहीं देखा है जो अत्यन्त कोमल है, तथा आपके लिए जिसने अपना हृदय अर्पित कर दिया है ऐसी सीताको मत छोड़ो ॥४९॥

तदनन्तर जिनका विद्वेष अत्यन्त दृढ़ हो गया था, जो क्रोधके भारको प्राप्त थे, और जिनका मुख अप्रसन्न था ऐसे रामने छोटे भाई—लक्ष्मणसे कहा कि हे लक्ष्मीधर ! अब तुम्हें इसके आगे कुछ भी नहीं कहना चाहिए । मैंने जो निश्चय कर लिया है वह अवश्य किया जायगा चाहे उचित हो चाहे अनुचित ॥५०-५१॥ निर्जन वनमें सीता अकेली छोड़ी जायगी । वहाँ वह अपने कर्मसे जीवित रहे अथवा मरे ॥५२॥ दोषकी वृद्धि करनेवाली सीता भी मेरे इस देशमें अथवा किसी उत्तम सम्बन्धीके नगरमें अथवा किसी घरमें क्षण भरके लिए निवास न करे ॥५३॥

अथानन्तर जो चार घोड़ों वाले रथ पर सवार होकर जा रहा था, सेनासे घिरा था, वन्दीजन 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके द्वारा जिसकी पूजा कर रहे थे, जिसके शिर पर सफेद छत्र लगा हुआ था, जो धनुषको धारण कर रहा था तथा कवच और कुण्डलोंसे युक्त था ऐसा कृतान्तवक्त्र सेनापति स्वामीके समीप चला ॥५४-५५॥ उसे उस प्रकार आता देख, जिनके चित्त तर्क वितर्कमें लग रहे थे ऐसी नगरकी स्त्रियोंमें अनेक प्रकारकी चर्चा होने लगी ॥५६॥

किमिदं हेतुना केन त्वरावानेष लक्ष्यते । कं प्रत्येष सुसंरम्भः किन्तु कस्य भविष्यति ॥५७॥
 शस्त्रान्धकारमध्यस्थो निदाघार्कसमद्युतिः । मातः कृतान्तवक्त्रोऽयं कृतान्त हृद भीषणः ॥५८॥
 एवमादिकथासक्तनगरीयोषिर्दाक्षितः । अन्तिकं रामदेवस्य सेनानीः समुपागमत् ॥५९॥
 प्रणिपत्य ततो नाथं शिरसा धरणीस्पृशा । जगाद देव देव्याश्चामिति सङ्गतपाणिकः ॥६०॥
 पद्मनाभो जगौ गच्छ सीतामपनय द्रुतम् । मार्गे जिनेन्द्रसन्नि दर्शयन् कृतदोहदाम् ॥६१॥
 सम्भेद्गिरिजैनेन्द्रनिर्वाणानिकल्पितान् । प्रदर्श्य चैत्यसङ्घातानाशापूरणपण्डितान् ॥६२॥
 अटनीं सिंहनादाऽऽप्यर्थां नीत्वा जनविवर्जिताम् । अवस्थाप्यैतिकीं सौम्य त्वरितं पुनरावज ॥६३॥
 यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा वितर्कपरिवर्जितः । जानकीं समुपागम्य सेनानीरित्यभाषत ॥६४॥
 उत्तिष्ठ रथमारोह देवि कुर्वभिवान्छितम् । प्रपश्य चैत्यगोहानि भजाशंसाफलोदयम् ॥६५॥
 हृति प्रसाद्यमाना सा सेनान्या मधुरस्वनम् । प्रभोदमानहृदया रथमूलमुपागता ॥६६॥
 जगाद च चतुर्भेदः सङ्घो जयतु सन्ततम् । जैनो जयतु पद्माभः साधुवृत्तैकतत्परः ॥६७॥
 प्रमादापतितं किञ्चिदसुन्दरविचेष्टितम् । मृष्यन्तु सकलं देवा जिनालयनिवासिनः ॥६८॥
 मनसा कान्तसक्तेन सकलं च सर्वाजनम् । न्यवर्तयन्निगधैवमस्थन्तोत्सुकमानसा ॥६९॥
 सुखं तिष्ठत सत्सख्यो नमस्कृत्य जिनालयान् । एषाऽऽहमावजाभ्येव कृत्या नोत्सुकता परा ॥७०॥

यह क्या है ? यह किस कारण उतावला दिखाई देता है ? किसके प्रति यह कुपित है ? आज किसका क्या होनेवाला है ? हे मातः ! जो शस्त्रोंके अन्धकारके मध्यमें स्थित है तथा जो ग्रीष्म ऋतुके सूर्यके समान तेजसे युक्त है ऐसा यह कृतान्तवक्त्र यमराजके समान भयंकर है ॥५७-५८॥ इत्यादि कथामें आसक्त नगरकी स्त्रियाँ जिसे देख रही थीं ऐसा सेनापति श्रीरामके समीप आया ॥५९॥

तदनन्तर उसने पृथिवीका स्पर्श करनेवाले शिरसे स्वामीको प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए यह कहा कि हे देव ! मुझे आज्ञा दीजिए ॥६०॥ रामने कहा कि जाओ, सीताको शीघ्र ही छोड़ आओ । उसने जिनमन्दिरोंके दर्शन करनेका दोहला प्रकट किया था इसलिए मार्गमें जो जिनमन्दिर मिलें उनके दर्शन कराते जाना । तीर्थकरोंकी निर्वाणभूमि सम्भेदाचल पर निर्मित, एवं आशाओंके पूर्ण करनेमें निपुण जो प्रतिमाओंके समूह हैं उनके भी उसे दर्शन कराते जाना । इस प्रकार दर्शन करानेके बाद इसे सिंहनाद नामकी निर्जन अटवीमें ले जाकर तथा वहाँ ठहरा कर हे सौम्य ! तुम शीघ्र ही वापिस आ जाओ ॥६१-६३॥

तदनन्तर बिना किसी तर्क वितर्कके 'जो आज्ञा' यह कह कर सेनापति सीताके पास गया और इस प्रकार बोला कि हे देवि ! उठो, रथ पर सवार होओ, इच्छित कार्य कर, जिनमन्दिरोंके दर्शन करो और इच्छानुकूल फलका अभ्युदय प्राप्त करो ॥६४-६५॥ इस प्रकार सेनापति जिसे मधुर शब्दों द्वारा प्रसन्न कर रहा था तथा जिसका हृदय अत्यन्त हर्षित हो रहा था ऐसी सीता रथके समीप आई ॥६६॥ रथके समीप आकर उसने कहा कि सदा चतुर्विध संघकी जय हो तथा उत्तम आचारके पालन करनेमें एकनिष्ठ जिनभक्त रामचन्द्र भी सदा जयवन्त रहें ॥६७॥ यदि हमसे प्रमाद वश कोई असुन्दर चेष्टा हो गई है तो जिनालयमें निवास करने वाले देव मेरे उस समस्त अपराधको क्षमा करें ॥६८॥ अत्यन्त उत्सुक हृदयको धारण करनेवाली सीताने पतिमें लगे हुए हृदयसे समस्त सखीजनोंको यह कह कर लौटा दिया कि हे उत्तम सखियों ! तुम लोग सुखसे रहो । मैं जिनालयोंको नमस्कार कर अभी आती हूँ, अधिक उत्कण्ठा

एवं तदुक्तिः पत्युरनादेशाच्च योषितः । शेषा विहरणे बुद्धिं न चक्रुश्चारुभाषिताः ॥७१॥
 ततः सिद्धान्नमस्कृत्य प्रमोदं परमं श्रिता । प्रसन्नवदना सीता रथमारोहदुःखलम् ॥७२॥
 सा तं रथं समारूढा रत्नकाञ्चनकल्पितम् । रजे सुरवधूर्यद्विमानं रत्नमालिनी ॥७३॥
 रथः कृतान्तवक्त्रेण चोदितो वरवाजियुक् । ययौ भरतनिर्मुक्तो नाराच इव वेगवान् ॥७४॥
 शुक्लद्रुमसमारूढो वायसोऽत्यन्तमाकुलः । रराट विरसं ध्रुवक्षसकृत्पञ्चमस्तकम् ॥७५॥
 सुमहाशोकसन्तप्ता धृतमुक्तशिरोरुहा । रुरोदाभिमुखं नारी कुर्वती परिदेवनम् ॥७६॥
 पश्यन्त्यप्येवमादीनि दुर्निमित्तानि जानकी । ब्रजत्येव जिनासक्तमानसा स्थिरनिश्चया ॥७७॥
 महीभृच्छिखरभ्रकन्दरावनगह्वरम् । निमेषेण समुह्वल्य योजनं यात्यसौ रथः ॥७८॥
 ताभ्यवेगाश्वसंयुक्तः सितकेतुविराजितः । आदित्यरथसङ्काशो रथो यात्यनिवारितः ॥७९॥
 रामशक्रप्रियारूढो मनोरथजवो रथः । कृतान्तमातलिङ्गिप्रनुक्ताश्वः शोभतेतराम् ॥८०॥
 तत्रापाश्रयसंयुक्ततनुः सुपरमासना । याति सीता सुखं क्षीर्णो पश्यन्ती विविधामिति ॥८१॥
 क्वचिद्ग्रामे पुरेऽरण्ये सरासि कमलादिभिः । कुसुमैरतिरम्याणि तथाऽदृश्यन्त सोऽसुकम् ॥८२॥
 क्वचिद्वनपटञ्जन्नभोरात्रितमः समम् । दुरालभ्यपृथग्भावं विशालं वृक्षगह्वरम् ॥८३॥
 श्युतपुष्पफला तन्वी विपत्रा विरलां हिपा । अटवी क्वचिदच्छाया विधवा कुलजा यथा ॥८४॥

करना योग्य है ॥६६-७०॥ इस प्रकार सीताके कहनेसे तथा पतिका आदेश नहीं होनेसे सुन्दर भाषण करनेवाली अन्य स्त्रियोंने उसके साथ जानेकी इच्छा नहीं की थी ॥७१॥

तदनन्तर परम प्रमोदको प्राप्त, प्रसन्नमुखी सीता, सिद्धोंकी नमस्कार कर उज्ज्वल रथ पर आरूढ़ हो गई ॥७२॥ रत्न तथा सुवर्ण निर्मित रथ पर आरूढ़ हुई सीता उस समय इस तरह सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि विमान पर आरूढ़ हुई रत्नमालासे अलंकृत देवाङ्गना सुशोभित होती है ॥७३॥ कृतान्तवक्त्र सेनापतिके द्वारा प्रेरित, उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ वह रथ भरत चक्रवर्तीके द्वारा छोड़े हुए बाणके समान बड़े वेगसे जा रहा था ॥७४॥ उस समय सूखे वृक्ष पर अत्यन्त व्याकुल कौआ, पङ्क तथा मस्तकको बार-बार कँगना हुआ विरस शब्द कर रहा था ॥७५॥ जो महाशोकसे संतप्त थी, जिसने अपने बाल कम्पित कर छोड़ दिये थे, तथा जो विलाप कर रही थी ऐसी एक स्त्री सामने आकर रोने लगी ॥७६॥ यद्यपि सीता इन सब अशक्तियोंको देख रही थी तथापि जिनेन्द्र भगवानमें आसक्त चित्त होनेके कारण वह दृढ़ निश्चयके साथ आगे चली जा रही थी ॥७७॥ पर्वतोंके शिखर, गड्ढे, गुफाएँ और वन इन सब से ऊँची नीची भूमिको उल्लंघन कर वह रथ निमेष मात्रमें एक योजन आगे बढ़ जाता था ॥७८॥ जिसमें गरुड़के समान वेगशाली घोड़े जुते थे, जो सफेद पताकाओंसे सुशोभित तथा जो कान्तिमें सूर्यके रथके समान था ऐसा वह रथ बिना किसी रोक-टोकके आगे बढ़ता जाता था ॥७९॥ जिस पर रामरूपी इन्द्रकी प्रिया—इन्द्राणी आरूढ़ थी, जिसका वेग मनोरथके समान तीव्र था, और जिसके घोड़े कृतान्तवक्त्ररूपी मातलिके द्वारा प्रेरित थे ऐसा वह रथ अत्यधिक शोभित हो रहा था ॥८०॥ वहाँ जो तकियाके सहारे उत्तम आसनसे बैठी थी ऐसी सीता नाना प्रकारकी भूमिको इस प्रकार देखती हुई जा रही थी ॥८१॥ वह कहीं गाँवमें, कहीं नगरमें और कहीं जंगलमें कमल आदिके फूलोंसे अत्यन्त मनोहर तालाबोंको बड़ी उत्सुकतासे देखती जाती थी ॥८२॥ वह कहीं वृक्षोंकी उस विशाल भुरमुटकी देखती जाती थी जहाँ मेघ रूपी पटसे आच्छादित आकाशवाली रात्रिके समान सघन अन्धकार था और जिसका पृथक्पना बड़ी कठिनाईसे दिखाई पड़ता था ॥८३॥ कहीं जिसके फल फूल और पत्ते गिर गये थे, जो कृशा थी

सहकारसमासका क्वचित् सुन्दरमाधवी । वेश्येव चपलासक्तमशोकमभिलष्यति ॥८५॥
 महापादपसङ्घातः क्वचिद्वात्रविनाशितः । न भाति हृदयं साथोः खलवान्याहृतं यथा ॥८६॥
 सुपल्लवलताजालैः क्वचित् मन्दानिलेरितैः । नृत्यं वसन्तपत्नीव वनराजी निषेवते ॥८७॥
 क्वचित् पुलिन्दसङ्घातमहाकलकलारत्रैः । उद्भ्रान्तविहगा दूरं गता सारङ्गसंहतिः ॥८८॥
 क्वचिदुन्नतशैलाग्रं पश्यन्ती चोर्ध्वमस्तका । विचित्रधातुनिर्माणैर्नयैः कौतुकान्वितैः ॥८९॥
 क्वचिदच्छाल्पनीराभिः सरिङ्गिः प्रोषितप्रिया । नारीत्राश्रुप्रपूर्णात्ता भाति सन्तापशोभिता ॥९०॥
 नानाशकुन्तनादेन जल्पतीव मनोहरम् । करोतीव क्वचिर्द्विधनिर्करादृहसं मुदा ॥९१॥
 मकरन्दतिलुब्धाभिर्भृङ्गीभिर्मन्दमन्थरम् । क्वचित् संस्तूयमानेव शोभते नमिता फलैः ॥९२॥
 सत्पल्लवमहाशालैर्वृचैर्वायुविधूमितैः । उपचारप्रसक्तेव पुष्पवृष्टिं विमुञ्चते ॥९३॥
 एवमादिक्रियासक्तामटवीं श्वापदाकुलाम् । पश्यन्ती याति वैदेही पद्माभावेक्षिमानसा ॥९४॥
 तावच्च मधुरं श्रुत्वा स्वनमस्यन्तमांसलम् । दध्यौ किन्वेव रामस्य दुन्दुभिध्वनिशायतः ॥९५॥
 इति प्रतर्कमापन्ना दृष्ट्वा भागीरथीमसौ । एतद्घोषप्रतिस्नानं जानात्यन्यदिशि श्रुतम् ॥९६॥
 अन्तर्नक्रभ्रप्राहमकरादिविद्युत्प्रिताम् । उद्धतोर्मिसमासङ्गात् क्वचित्कम्पितपङ्कजाम् ॥९७॥
 समूलोन्मूलितोत्तुङ्गरोधोगतमहीरुहाम् । विदारितमहाशैलग्रावसङ्घातरंहसम् ॥९८॥

जिसकी जड़े विरलीं विरलीं थी, तथा जो छाया (पक्षमें कान्ति) से रहित थी ऐसी कुलीन विधवाके समान अटवीको देखती जाती थी ॥८५॥ उसने देखा कि कहीं आन्नवृक्षसे लिपटी सुन्दर माधवी लता, चपल वेश्याके समान निकटवर्ती अशोक वृक्षपर अभिलाषा कर रही है ॥८६॥ उसने देखा कि कहीं दावानलसे नाशको प्राप्त हुए बड़े बड़े वृक्षोंका समूह दुर्जनके वाक्योंसे ताड़ित साधुके हृदयके समान सुशोभित नहीं हो रहा है ॥८६॥ कहीं उसने देखा कि मन्द मन्द वायुसे हिलते हुए उत्तम पल्लवों वाली लताओंके समूहसे वनराजी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो वसन्तकी पत्नी नृत्य ही कर रही हो ॥८७॥ कहीं उसने देखा कि भीलोंके समूहकी तीव्र कल-कल ध्वनिसे जिसने पक्षियोंको उड़ा दिया है ऐसी हरिणोंकी श्रेणी बहुत दूर आगे निकल गई है ॥८८॥ वह कहीं विचित्र धातुओंसे निर्मित, कौतुकपूर्ण नेत्रोंसे, मस्तक ऊपर उठा पर्वतकी ऊँची चोटीको देख रही थी ॥८९॥ कहीं उसने देखा कि स्वच्छ तथा अल्प जल वाली नदियोंसे यह अटवी उस संतापवती विरहिणी स्त्रीके समान जान पड़ती है कि जिसका पति परदेश गया है और जिसके नेत्र आसुओंसे परिपूर्ण हैं ॥९०॥ यह अटवी कहीं तो ऐसी जान पड़ती है मानो नाना पक्षियोंके शब्दके बहाने मनोहर वार्तालाप ही कर रही हो और कहीं उज्ज्वल निर्भरों से युक्त होनेके कारण ऐसी विदित होती है मानो हर्षसे अट्टहास ही कर रही हो ॥९१॥ कहीं मकरन्दकी लोभी भ्रमरियोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो मदसे मन्थर ध्वनिमें भ्रमरियाँ उसकी स्तुति ही कर रही हों और फलोंके भारसे वह संकोचवशा नम्र हुई जा रही हों ॥९२॥ कहीं उसने देखा कि वायुसे हिलते हुए उत्तमोत्तम पल्लवों और महाशाखाओंसे युक्त वृक्षोंके द्वारा यह अटवी विनय प्रदर्शित करनेमें संलग्नकी तरह पुष्पवृष्टि छोड़ रही है ॥९३॥ जिसका मन रामकी अपेक्षा कर रहा था ऐसी सीता उपर्युक्त क्रियाओंमें आसक्त एवं वन्य पशुओंसे युक्त अटवीको देखती हुई आगे जा रही थी ॥९४॥

तदनन्तर उसी समय अत्यन्त पुष्ट मधुर शब्द सुनकर वह विचार करने लगी कि क्या यह रामके दुन्दुभिका विशाल शब्द है ? ॥९५॥ इस प्रकारका तर्क कर तथा आगे गङ्गा नदीको देखकर उसने जान लिया कि यह अन्य दिशामें सुनाई देनेवाला इसीका शब्द है ॥९६॥ उसने देखा कि यह गङ्गानदी कहीं तो भीतर क्रीड़ा करनेवाले नाके, मच्छ तथा मकर आदिसे विघटित है, कहीं उठती हुई बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके संसर्गसे इसमें कमल कम्पित हो रहे हैं ॥९७॥ कहीं इसने

समुद्रकोडपर्यस्तां सगरात्मजनिर्मिताम् । आरसातलगम्भोरां पुलिनैः शोभितां सितैः ॥६६॥
 फेननालासमासक्तविशालावर्त्तभैरवाम् । प्रान्तावस्थितसस्वानशकुन्तगणराजिताम् ॥१००॥
 अश्वारूते तां समुत्तीर्णाः पवनोपमरंहसः । सम्यक्त्वसारयोगेन संसृतिं साधवो यथा ॥१०१॥
 ततो मेरुवदक्षोभयचित्तोऽपि सततं भवन् । सेनामीः परमं प्राप विषादं सदयस्तदा ॥१०२॥
 किञ्चिद्रक्तमशक्ताः महादुःखसमाहतः । नियन्तुमङ्गमः स्थातुं प्रबलायातवाष्पकः ॥१०३॥
 विष्टय स्यन्दनं लग्नः कर्त्तुं क्रन्दनमुत्कटम् । निषाय मस्तके हस्तौ खस्ताङ्गो विगतद्युतिः ॥१०४॥
 ततो जगाद् वैदेही प्रभ्रष्टहृदया सती । कृतान्तवक्त्र कस्मारवं विरोषोदं सुदुःखिवत् ॥१०५॥
 प्रस्तावेऽयन्तहर्षस्य विषादयसि मामपि । विजनेऽस्मिन् महारण्ये कस्मादाश्रितरोदनः ॥१०६॥
 स्वारायादेशस्य कृत्यत्वाद्दुःख्यत्वाज्जियोगतः । कथञ्चिद्दोदनं कृत्वा यथावत्स न्यवेदयन् ॥१०७॥
 विषादप्रसङ्गसदृशं शुभे दुर्जनभाषितम् । श्रुत्वा देवेन दुःकीर्तिः^१ परमं भयमीयुषा ॥१०८॥
 सन्त्यज्य दुस्त्यजं स्नेहं दोहद्वानां नियोगतः । त्यक्तसि^२ देवि रामेण श्रमणेन रतिर्यथा ॥१०९॥
 स्वामिन्यस्ति प्रकारोऽसौ नैव येन स विष्णुना । अनुनीतस्तवार्थेन न तथाप्यस्यजद् ग्रहम् ॥११०॥
 तस्मिन् स्वामिनि नीरागे शरणं तेऽस्ति न क्वचित् । धर्मसम्बन्धमुक्ताया जीवे सौख्यस्थितेरिव ॥१११॥

किनारे पर स्थित ऊँचे-ऊँचे वृत्तोंको जड़से उखाड़ डाला है, कहीं इसके वेगने बड़े-बड़े पर्वतोंकी चट्टानोंके समूहको विदारित कर दिया है ॥६६॥ यह समुद्रकी गोदमें फैली है, राजा सगरके पुत्रों द्वारा निर्मित है, रसातल तक गहरी है, सफेद पुलिनोंसे शोभित है ॥६६॥ फेनके समूहसे सहित बड़ी-बड़ी भँवरोंसे भयंकर है, और समीपमें स्थित पत्तियोंके समूहसे सुशोभित है ॥१००॥ पवनके समान वेगशाली वे घोड़े उस गङ्गानदीको उस तरह पार कर गये जिस तरह कि साधु सम्यग्दर्शनके सार पूर्ण योगसे संसारको पार कर जाते हैं ॥१०१॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्र सेनापति यद्यपि मेरुके समान सदा निश्चल चिन्त रहता था तथापि उस समय वह दया सहित होता हुआ परम विषादको प्राप्त हो गया ॥१०२॥ कुछ भी कहनेके लिए जिसकी आत्मा अशक्त थी, जो महादुःखसे ताड़ित हो रहा था, तथा जिसके बलात् आँसू निकल रहे थे ऐसा कृतान्तवक्त्र अपने आप पर नियन्त्रण करने तथा खड़े होनेके लिए असमर्थ हो गया ॥१०३॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर ढीला पड़ गया था और जिसकी कान्ति नष्ट हो गई थी ऐसा सेनापति रथ खड़ा कर और मस्तक पर दोनों हाथ रखकर जोर-जोरसे रुदन करने लगा ॥१०४॥ तत्पश्चात् जिसका हृदय टूट रहा था ऐसी सती सीताने कहा कि हे कृतान्तवक्त्र ! तू अत्यन्त दुःखी मनुष्यके समान इस तरह क्यों रो रहा है ? ॥१०५॥ तू इस अत्यधिक हर्षके अवसरमें मुझे भी विषाद युक्त कर रहा है । बता तो सही कि तू इस निर्जन महावनमें क्यों रो रहा है ॥१०६॥ स्वामीका आदेश पालन करना चाहिए अथवा अपने नियोगके अनुसार यथार्थ बात अवश्य कहना चाहिए इन दो कारणोंसे जिस किसी तरह रोना रोक कर उसने यथार्थ बातका निरूपण किया ॥१०७॥ उसने कहा कि हे शुभे ! विष अग्नि अथवा शस्त्रके समान दुर्जनोंका कथन सुनकर जो अपकीर्तिसे अत्यधिक भयभीत हो गये थे ऐसे श्रीरामने दुःखसे छूटने योग्य स्नेह छोड़कर दोहल्लोंके बहाने हे देवि ! तुम्हें उस तरह छोड़ दिया है जिस तरह कि मुनि रतिको छोड़ देते हैं ॥१०८-१०९॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि ऐसा कोई प्रकार नहीं रहा जिससे कि लक्ष्मणने आपके विषयमें उन्हें समझाया नहीं हो तथापि उन्होंने अपनी हठ नहीं छोड़ी ॥११०॥ जिस प्रकार धर्मके सम्बन्धसे रहित जीवकी सुखस्थितिको कहीं शरण नहीं प्राप्त होता उसी प्रकार

१. सम्यक् संसारयोगेन (?) म० । २. दुःकीर्तिः म० । ३. देव म० ।

न सवित्री न च भ्राता न च बान्धवसंहतिः । आश्रयस्तेऽधुना देवि मृगाकुलमिदं वनम् ॥११२॥
 ततस्तद्वचनं श्रुत्वा वज्रणेवाभिताडिता । हृदये दुःखसम्भारव्यासा मोहमुपागता ॥११३॥
 संज्ञां प्राप्य च कृच्छ्रेण स्थलितोद्गतवर्णगीः । जरादापृच्छनं कर्तुं सकृन्मे नाथमीक्ष्य ॥११४॥
 सोऽबोचहेवि दूरं सा नगरी रहिताऽधुना । कुतः पश्यसि पद्माभं परमं चण्डशासनम् ॥११५॥
 ततोऽश्रुजलधाराभिः क्षालयन्त्यास्यपङ्कजम् । तथापि निर्भरस्नेहरसाक्रान्ता जगाविदम् ॥११६॥
 सेनापते त्वया वाच्यो रामो महूचनादिदम् । यथा मत्यागजः कार्यो न विषादस्त्वया प्रभो ॥११७॥
 अवलम्ब्य परं धैर्यं महापुरुष सर्वथा । सदा रक्ष प्रजां सम्यक्पितेव न्यायवत्सलः ॥११८॥
 परिप्राप्तकलापारं नृपमाह्लादकारणम् । शरच्चन्द्रमसं यद्वदिच्छन्ति सततं प्रजाः ॥११९॥
 संसाराद् दुःखनिर्घोरान्मुख्यन्ते येन देहिनः । भव्यास्तदर्शनं सम्यगाराधयितुमर्हसि ॥१२०॥
 साम्राज्यादपि पद्माभ तदेव बहु मन्यते । नश्यत्येव पुना राज्यं दर्शनं स्थिरसौख्यदम् ॥१२१॥
 तदभयजुगुप्सातो भीतेन पुरुषोत्तम । न कथञ्चित्त्वया त्याज्यं नितान्तं तद्धि दुर्लभम् ॥१२२॥
 रत्नं पाणितलं प्राप्तं परिभ्रष्टं महोदधौ । उपायेन पुनः केन सङ्गतिं प्रतिपद्यते ॥१२३॥
 क्षिप्त्वामृतफलं कूपे महाऽऽपत्तिभयङ्करे । परं प्रपद्यते दुःखं पश्चात्तापहतः शिशुः ॥१२४॥
 यस्य यत्सदृशं तस्य प्रवदत्वनिवारितः । को ह्यस्य जगतः कर्तुं शक्नोति मुखबन्धनम् ॥१२५॥

उन स्वामीके निःस्नेह होने पर आपके लिए कहीं कोई शरण नहीं जान पड़ता ॥१११॥ हे देवि !
 तेरे लिए न माता शरण है, न भाई शरण है, और न कुटुम्बीजनोका समूह ही शरण है । इस
 समय तो तेरे लिए मृगोंसे व्याप्त यह वन ही शरण है ॥११२॥

तदनन्तर सीता उसके वचन सुन हृदयमें वज्रसे ताड़ितके समान अत्यधिक दुःखसे व्याप्त
 होती हुई मोहको प्राप्त हो गई ॥११३॥ बड़ी कठिनाईसे चेतना प्राप्त कर उसने लड़खड़ाते अक्षरों
 वाली वाणीमें कहा कि कुल्ल पूछनेके लिए मुझे एक बार स्वामीके दर्शन करा दो ॥११४॥ इसके
 उत्तरमें कृतान्तवक्त्रने कहा कि हे देवि ! इस समय तो वह नगरी बहुत दूर रह गई है अतः
 अत्यधिक कठोर आज्ञा देनेवाले स्वामी-रामको किस प्रकार देख सकती हो ? ॥११५॥ तदनन्तर
 सीता यद्यपि अश्रुजलकी धारामें मुखकमलका प्रक्षालन कर रही थी तथापि अत्यधिक स्नेह रूपी
 रससे आक्रान्त हो उसने यह कहा कि ॥११६॥ हे सेनापते ! तुम मेरी ओरसे रामसे यह कहना
 कि हे प्रभो ! आपको मेरे त्यागसे उत्पन्न हुआ विषाद नहीं करना चाहिए ॥११७॥ हे महापुरुष !
 परम धैर्यका अवलम्बन कर सदा पिताके समान न्यायवत्सल हो प्रजाकी अच्छी तरह रक्षा करना
 ॥११८॥ क्योंकि जिस प्रकार प्रजा पूर्ण कलाओंको प्राप्त करनेवाले शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी सदा
 इच्छा करती है—उसे चाहती है उसी प्रकार कलाओंके पारको प्राप्त करनेवाले एवं आह्लादके
 कारण भूत राजाकी प्रजा सदा इच्छा करती है—उसे चाहती है ॥११९॥ जिस सम्यग्दर्शनके
 द्वारा भव्य जीव दुःखोंसे भयंकर संसारसे छूट जाते हैं उस सम्यग्दर्शनकी अच्छी तरह आरा-
 धना करनेके योग्य हो ॥१२०॥ हे राम ! साम्राज्यकी अपेक्षा वह सम्यग्दर्शन ही अधिक माना
 जाता है क्योंकि साम्राज्य तो नष्ट हो जाता है परन्तु सम्यग्दर्शन स्थिर सुखको देनेवाला है
 ॥१२१॥ हे पुरुषोत्तम ! अभव्योंके द्वारा की हुई जुगुप्सासे भयभीत होकर तुम्हें वह सम्यग्दर्शन
 किसी भी तरह नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि वह अत्यन्त दुर्लभ है ॥१२२॥ हथेलीमें आया रत्न
 यदि महासागरमें गिर जाता है तो फिर वह किस उपायसे प्राप्त हो सकता है ? ॥१२३॥ अमृत-
 फलको महा आपत्तिसे भयंकर कुँएमें फेंककर पश्चात्तापसे पीड़ित बालक परम दुःखको प्राप्त होता
 है ॥१२४॥ जिसके अनुरूप जो होता है वह उसे बिना किसी प्रतिबन्धके कहता ही है क्योंकि

शृण्वताऽपि स्वया तत्तत्स्वार्थनाशनकारणम् । पडेनेव न कर्तव्यं हृदये गुणभूषण ॥१२६॥
 तीव्राज्ञोऽपि यथाभूतो जगदर्थवभासनात् । विकारमनु न प्राप्नो भवादित्य इव प्रियः ॥१२७॥
 भजस्व प्रस्खलं दानैः प्रीतियोनैर्निजं जनम् । परं च शीलयोगेन मित्रं सज्जावसेवनैः ॥१२८॥
 यथोपपन्नमन्त्रेण समेतमतिथिं गृहम् । साधून् समस्तभावेन प्रणामाभ्यर्चनादिभिः ॥१२९॥
 ज्ञान्या क्रोधं मृदुत्वेन मानं निर्विपर्यस्थितम् । मायामार्जवयोगेन धृत्या लोभं तनूकुरु ॥१३०॥
 सर्वशास्त्रप्रवीणस्य नोपदेशस्तव क्षमः । चापलं हृदयस्येदं त्वत्प्रोमग्रहयोगिनः ॥१३१॥
 कृतं वश्यतया किञ्चित् परिहासेन वा पुनः । मयाऽविनयमीश खं समस्तं चन्तुमर्हसि ॥१३२॥
 एतावदर्शनं नूनं भवता सह मे प्रभो । पुनः पुनरतो वचिन् चन्तव्यं साध्वसाधु वा ॥१३३॥
 इत्युक्त्वा पूर्वमेवासाववर्तीर्णा रथोदरात् । पपात धरणीपृष्ठे तृणोपलसमाकुले ॥१३४॥
 धरण्यां पतिता तस्यां मूच्छूर्निश्चेतनीकृता । रराज जानकी यद्भक्तं पर्यस्ता रत्नसंहतिः ॥१३५॥
 नष्टचेष्टां तकां दृष्ट्वा सेनानीरतिदुःखितः । अचिन्तयदियं प्राणान् दुष्करं धारयिष्यति ॥१३६॥
 अरण्येऽत्र महाभीष्मे व्यालसङ्घातसङ्कुले । विदधाति न धीरोऽपि प्रत्याशां जीवितं प्रति ॥१३७॥
 मृगार्त्तामेतिकां त्यक्त्वा विपिनेऽस्मिन्नमुत्तमे । स्थानं न तत् प्रपरयामि यत्र मां शान्तिरेष्यति ॥१३८॥
 इतो निर्दयताऽप्रुप्रा स्वाम्याज्ञा निश्चिताऽन्यतः । अहो दुःखमहावर्त्तमभ्यं प्राप्नोऽस्मि पापकः ॥१३९॥

इस संसारका मुख बन्धन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१२५॥ हे गुणभूषण ! यद्यपि आत्म-
 हितकी नष्ट करनेवाली अनेक बातें आप श्रवण करेंगे तथापि प्रहिल (पागल) के समान उन्हें
 हृदयमें नहीं धारण करना—विचार पूर्वक ही कार्य करना ॥१२६॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि अत्यन्त
 तेजस्वी रहता है तथापि संसारके समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेसे यथाभूत है एवं कभी
 विकारको प्राप्त नहीं होता इसलिए लोगोंको प्रिय है उसी प्रकार यद्यपि आप तीव्र शासनसे युक्त
 हो तथापि जगत्के समस्त पदार्थोंको ठीक-ठीक जाननेके कारण यथाभूत यथार्थ रूप रहना एवं
 कभी विकारको प्राप्त नहीं होनेसे सूर्यके समान सबको प्रिय रहना ॥१२७॥ दुष्ट मनुष्यको कुल्ल
 देकर वश करना, आत्मीय जनोंको प्रेम दिखाकर अनुकूल रखना, शत्रुको उत्तमशील अर्थात्
 निर्दोष आचरणसे वश करना और मित्रको सद्भाव पूर्वक की गई सेवाओंसे अनुकूल रखना ॥१२८॥
 क्षमासे क्रोधको, मार्दवसे चाहे जहाँ होनेवाले मानको, मार्जवसे मायाको और धैर्यसे लोभको
 कुश करना ॥१२९-१३०॥ हे नाथ ! आप तो समस्त शास्त्रोंमें प्रवीण हो अतः आपको उपदेश
 देना योग्य नहीं है, यह जो मैंने कहा है वह आपके प्रेम रूपी ग्रहसे संयोग रखनेवाले मेरे हृदय-
 की चपलता है ॥१३१॥ हे स्वामिन ! आपके वशीभूत होनेसे अथवा परिहासके कारण यदि मैंने
 कुल्ल अविनय किया हो तो उस सबको क्षमा कीजिये ॥१३२॥ हे प्रभो ! जान पड़ता है कि आपके
 साथ मेरा दर्शन इतना ही था इसलिए बार-बार कह रही हूँ कि मेरी प्रवृत्ति उचित हो अथवा
 अनुचित सब क्षमा करने योग्य है ॥१३३॥ ओ रथके मध्यसे पहले ही उतर चुकी थी ऐसी सीता
 इस प्रकार कहकर तृण तथा पत्थरोंसे व्याप्त पृथिवी पर गिर पड़ी ॥१३४॥ उस पृथिवी पर पड़ी,
 मूच्छूर्त्तासे निश्चल सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो रत्नोंका समूह ही बिखर गया हो ॥१३५॥
 चेष्टा हीन सीताको देखकर सेनापतिने अत्यन्त दुःखी हो इस प्रकार विचार किया कि यह प्राणोंको
 बड़ी कठिनाईसे धारण कर सकेगी ॥१३६॥ हिंसक जीवोंके समूहसे भरे हुए इस महा भवंकर
 वनमें धीर वीर मनुष्य भी जीवित रहनेकी आशा नहीं रख सकता ॥१३७॥ इस विकट वनमें
 इस मृगनयनीको छोड़कर मैं वह स्थान नहीं देखता जहाँ मुझे शान्ति प्राप्त हो सकेगी ॥१३८॥
 इस ओर अत्यन्त भयंकर निर्दयता है और उस ओर स्वामीकी सुदृढ आज्ञा है । अहो ! मैं पापी

१. पडेनेव ग्रहिलेनेव । पडः ग्रहिलः इति श्री० हि० । एडेनेव म० । २. -मतनु म०, ग०, ख० ।

३. प्रस्खलं म० । ४. निर्विषया स्थितम् म० ।

धिग् भृत्यतां जगन्निन्धां यत् किञ्चन विधायिनीम् । पराग्रत्तीकृतात्मानं क्षुद्रमानवसेविताम् ॥१४०॥
 यन्त्रचेष्टितमुपस्थ दुःखैकनिहितात्मनः । भृत्यस्य जीविताद्दूरं वरं कुक्कुरजीवितम् ॥१४१॥
 नरेन्द्रशक्तिवश्यः स निन्द्यनामा पिशाचवत् । विदधाति न किं भृत्यः किं वा न परिभाषते ॥१४२॥
 चित्रत्वापसमानस्य निःकृत्यगुणधारिणः । निन्द्यनम्रशरीरस्य निन्द्यं भृत्यस्य जीवितम् ॥१४३॥
 सङ्कारकृतस्येव परचाञ्चिर्वृत्तचेतसः । निर्मात्यवाहिनो धिग्धिरभृत्यताम्नोऽसुधारणम् ॥१४४॥
 परचात् कृतगुरुत्वस्य तोषार्थमपि नामिनः । तुलायन्त्रसमानस्य धिग्भृत्यस्याऽसुधारणम् ॥१४५॥
 उग्रत्या त्रपया दीप्तया वज्रितस्य निजेच्छया । मा स्म भूजन्म भृत्यस्य पुस्तकमेसमात्मनः ॥१४६॥
 विमानस्यापि मुक्तस्य गत्या गुरुतया समम् । अधस्ताद्गच्छतो नित्यं धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥१४७॥
 निःसत्वस्य महामांसविक्रयं कुर्वतः सदा । निर्मादस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥१४८॥
 भृत्यताकर्णणीयेन कर्मणाऽस्मि वशीकृतः । एतां यत्न विमुञ्चामि प्रस्तावेऽप्यत्र दारुणे ॥१४९॥
 इति विमृश्य सन्नयज्य सीतां धर्मधियं यथा । अयोध्याऽभिमुखोऽयासीत्सेनानीः सत्रपात्मकः ॥१५०॥
 इतराऽपि परिभाससंज्ञा परमदुःखिता । यूथभ्रष्टेव सारङ्गी बालाऽक्रन्दं समाश्रिता ॥१५१॥

दुःख रूपी महाआवर्तके बीच आ पड़ा हूँ ॥१३६॥ जिसमें इच्छाके विरुद्ध चाहे जो करना पड़ता है, आत्मा परतन्त्र हो जाती है, और लुद्र मनुष्य ही जिसकी सेवा करते हैं ऐसी लोकनिन्द्य दासवृत्तिको धिक्कार है ॥१४०॥ जो यन्त्रकी चेष्टाओंके समान है तथा जिसकी आत्मा निरन्तर दुःख ही उठाती है ऐसे सेवकके जीवनकी अपेक्षा कुक्कुरका जीवन बहुत अच्छा है ॥१४१॥ जो नरेन्द्र अर्थात् राजा (पक्षमें मान्त्रिक) की शक्तिके आधीन है तथा निन्द्य नामका धारक है ऐसा सेवक पिशाचके समान क्या नहीं करता है ? और क्या नहीं बोलता है ? ॥१४२॥ जो चित्र लिखित धनुषके समान है, जो कार्य रहित गुण अर्थात् डोरी (पक्षमें ज्ञानादि) से सहित है तथा जिसका शरीर निरन्तर नम्र रहता है ऐसे भृत्यका जीवन निन्द्य जीवन है ॥१४३॥ सेवक कचड़ा घरके समान है । जिस प्रकार लोग कचड़ा घरमें कचड़ा डालकर पीछे उससे अपना चित्त दूर हटा लेते हैं उसी प्रकार लोग सेवकसे काम लेकर पीछे उससे चित्त हटा लेते हैं—उसके गौरवको भूल जाते हैं, जिस प्रकार कचड़ाघर निर्मात्य अर्थात् उपभुक्त वस्तुओंको धारण करता है उसी प्रकार सेवक भी स्वामीकी उपभुक्त वस्तुओंको धारण करता है । इस प्रकार सेवक नामको धारण करनेवाले मनुष्यके जीवित रहनेको बार-बार धिक्कार है ॥१४४॥ जो अपने गौरवको पीछे कर देता है तथा पानी प्राप्त करनेके लिए भी जिसे झुकना पड़ता है इस प्रकार तुला यन्त्रकी तुल्यताको धारण करनेवाले भृत्यका जीवित रहना धिक्कार पूर्ण है ॥१४५॥ जो उन्नति, लज्जा, दीप्ति और स्वयं निजकी इच्छासे रहित है तथा जिसका स्वरूप मिट्टीके पुतलेके समान क्रियाहीन है ऐसे सेवकका जीवन किसीको प्राप्त न हो ॥१४६॥ जो विमान अर्थात् व्योमयान (पक्षमें मान रहित) होकर भी गतिसे रहित है तथा जो गुरुताके साथ-साथ निरन्तर नीचे जाता है ऐसे भृत्यके जीवनको धिक्कार है ॥१४७॥ जो स्वयं शक्तिसे रहित है, अपना मांस भी बेचता है, सदा मदसे शून्य है और परतन्त्र है ऐसे भृत्यके जीवनको धिक्कार है ॥१४८॥ जिसके उदयमें भृत्यता करनी पड़ती है ऐसे कर्मसे मैं त्रिवश हो रहा हूँ इसीलिए तो इस दारुण अवसरके समय भी इस भृत्यताको नहीं छोड़ रहा हूँ ॥१४९॥ इस प्रकार विचार कर धर्म बुद्धिके समान सीताको छोड़कर सेनापति लज्जित होता हुआ अयोध्याके सम्मुख चला गया ॥१५०॥

तदनन्तर इधर जिसे चेतना प्राप्त हुई थी ऐसी सीता अत्यन्त दुःखी होती हुई यूथसे

१. राजा मन्त्रवादी च । २. सत्कार म० । संतार व० । संकारः कचारा इति श्रीदत्त शि० । ३. येन म०, क०, ख०, ज० ।

रुदस्याः करुणं तस्याः पुष्पमोक्षापदेशतः । वनस्पतिसमूहेन नूनं रुदितमेव तत् ॥१५२॥
 निसर्गारमगायेन स्वरेण परिदेवनम् । ततोऽसौ कर्तुं मारुत्या महाशोकवशीकृता ॥१५३॥
 हा पद्मेक्षण हा पद्म हा नरोत्तम हा प्रभो । यच्छ प्रतिवचो देव कुरु साधारणं मम ॥१५४॥
 सततं साधुचेष्टस्य सद्गुणस्य सचेतसः । न तेऽस्ति दोषगन्धोऽपि महापुरुषतायुजः ॥१५५॥
 पुरा स्वयंकृतस्येदं प्राप्तं मे कर्मणः फलम् । अवश्यं परिभोक्तव्यं व्यसनं परमोत्कटम् ॥१५६॥
 किं करोतु प्रियोऽपत्यो जनकः पुरुषोत्तमः । किं वा बान्धवलोको मे स्वकर्मण्युदयस्थिते ॥१५७॥
 नूनं जन्मनि पूर्वस्मिन्नसत्पुण्यमुपाजितम् । मन्दभाग्याजनेऽरण्ये दुखं प्रःसाऽस्मि यत्परम् ॥१५८॥
 अवर्णवचनं नूनं मया गोष्ठीष्वनुष्ठितम् । यस्योदयेन सम्प्राप्तमिदं व्यसनमीदृशम् ॥१५९॥
 गुरोः समक्षमादाय नूनमन्यत्र जन्मनि । व्रतं मया पुनर्भग्नं यस्येदं फलमीदृशम् ॥१६०॥
 अथवा परपैत्र्याः कश्चित् विषफलोपमैः । निर्भस्सितो भवेऽन्यस्मिन् जातं यद्दुःखमीदृशम् ॥१६१॥
 अन्यत्र जनने मन्ये पद्मखण्डस्थितं मया । चक्राह्युगलं भिन्नं स्वामिना रहितास्मि यत् ॥१६२॥
 किं वा सरसि पद्मादिभूषिते रचितालयम् । पुरुषाणामुदारारणां गतिलीलाविलम्बकम् ॥१६३॥
 जल्पितेन वरक्षाणां सौन्दर्येण कृतोपमम् । सौमित्रिसौधसच्छायां पद्मारुणमुखकमम् ॥१६४॥
 वियोजितं भवेऽन्यस्मिन्हंसयुग्मं कुचेष्टया । प्राप्ताऽस्मि वासनं घोरं येनेदत्तं हताशिका ॥१६५॥
 गुञ्जाफलाङ्कवर्णाक्षमन्योन्यापितंभानसम् । कृष्णागुरुभवात्यन्तघनोद्यद्भूमधूसरम् ॥१६६॥

बिलुड़ी हरिणीके समान रोदन करने लगी ॥१५१॥ करुण रोदन करनेवाली सीताके दुःखसे दुःखी होकर वृत्तांके समूहने भी भानो पुष्प झोड़नेके बहाने हीरोदन किया था ॥१५२॥ तदनन्तर महा महा शोकसे वशीभूत सीता स्वभाव सुन्दर स्वरसे विलाप करने लगी ॥१५३॥ वह कहने लगी कि हे कमललोचन ! हा पद्म ! हा नरोत्तम ! हा प्रभो ! हा देव ! उत्तर देओ मुझे सान्त्वना करो ॥१५४॥ आप निरन्तर उत्तम चेष्टाके धारक हैं, सद्गुणोंसे सहित हैं, सहृदय हैं और महा-पुरुषतासे युक्त हैं । मेरे त्यागमें आपका लेश मात्र भी दोष नहीं है ॥१५५॥ मैंने पूर्व भवमें जो स्वयं कर्म किया था उसीका यह फल प्राप्त हुआ है अतः यह बहुत भारी दुःख मुझे अवश्य भोगना चाहिए ॥१५६॥ जब मेरा अपना किया कर्म उदयमें आ रहा है तब पति, पुत्र, पिता, नारायण अथवा अन्य परिवारके लोग क्या कर सकते हैं ॥१५७॥ निश्चित ही मैंने पूर्व भवमें पापका उपाजन किया होगा इसीलिए तो मैं अभागिनी निर्जन वनमें परम दुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥१५८॥ निश्चित ही मैंने गोष्ठियोंमें किसीका मिथ्या दोष कहा होगा जिसके उदयसे मुझे यह ऐसा संकट प्राप्त हुआ है ॥१५९॥ निश्चित ही मैंने अन्य जन्ममें गुरुके समक्ष व्रत लेकर भग्न किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥१६०॥ अथवा अन्य भवमें मैंने विष फलके समान कठोर वचनांसे किसीका तिरस्कार किया होगा इसीलिए मुझे ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है ॥१६१॥ जान पड़ता है कि मैंने अन्य जन्ममें कमलवनमें स्थित चक्रवा चक्रवीके युगलको अलग किया होगा इसीलिए तो मैं भर्तासे रहित हुई हूँ ॥१६२॥ अथवा जो कमल आदिसे विभूषित सरोवरमें निवास करता था, जो उत्तम पुरुषोंकी गमन सन्धन्धी लीलामें विलम्ब उत्पन्न करनेवाला था, जो अपने कल-कूजन और सौन्दर्यमें स्त्रियोंकी उपमा प्राप्त करता था, जो लक्ष्मणके महलके समान उत्तम कर्मांसे युक्त था, और जिसके मुख तथा चरण कमलके समान लाल थे ऐसे हंस-हंसियोंके युगलको मैंने पूर्वभवमें अपनी कुचेष्टासे जुदा-जुदा किया होगा इसीलिए तो मैं अभागिनी इस घोर निष्कासनको प्राप्त हुई हूँ—घरसे अलग की गई हूँ ॥१६३-१६४॥ अथवा गुंजाफलके अर्ध भाग के समान जिसके नेत्र थे, परस्पर एक दूसरेके लिए जिसने अपना हृदय सौंप रक्खा था, जो काला-

समारब्धसुखक्रीडं कण्ठस्थकलनिःस्वनम् । पारावतयुगं पापचेतसा स्यात्पृथक्कृतम् ॥१६७॥
 अस्थाने स्थापितं किं वा बद्धं मारितमेव वा । सम्भावनादिनिर्युक्तं दुःखमीदृगताऽस्मि यत् ॥१६८॥
 वसन्तसमये रम्ये किं वा कुसुमितांघ्रिये । परपुष्टयुगं भिन्नं यस्येदं फलमीदृशम् ॥१६९॥
 अथवा श्रमणाः चान्ता सद्वृत्ता निर्जितेन्द्रियाः । निर्दिता विदुषां वन्द्या दुःखं प्राप्ताऽस्मि यन्महत् १७०॥
 सदभृत्यपरिवारेण शासनानन्दकारिणा । कृतसेवा सदा ग्राहं स्थिता स्वर्गसमे गृहे ॥१७१॥
 साऽधुना चाणपुण्यौघा निर्वन्धुर्गहने वने । दुःखसागरनिर्मग्ना कथं तिष्ठामि पापिका ॥१७२॥
 नानारत्नकरोद्योते सत्प्रच्छदपटावृते । शयनीये महारम्ये सर्वोपकरणान्विते ॥१७३॥
 वंशत्रिसरिकावीणासङ्गीतमधुरस्वनैः । असेविषि सुखं निद्रां प्रत्यभुत्सि तथा च या ॥१७४॥
 अवशोदावनिर्दग्धा साऽहं सम्प्रति दुःखिनी । प्रधाना रामदेवस्य महिषी परिकीर्तिता ॥१७५॥
 तिष्ठाम्येकाकिनो कष्टे कान्तारे दुःकृतात्मिका । कोटककशदर्भोप्रप्रावौघाख्ये मर्हातले ॥१७६॥
 धियन्ते यद्यवाप्येयामवस्थामिदृशीं मयि । ततो वज्रविनिर्माणाः प्राणा नूनमिमे मके ३ ॥१७७॥
 अवस्थां च परां प्राप्य शतधा यज्ञ दीर्यसे । अहो हृदय नास्यन्यः सदृशस्तव साहसी ॥१७८॥
 किं करोमि क्व गच्छामि कं त्र्वामि कमाश्रये । कथं तिष्ठामि किं जातमिदं हा मातरीदृशम् ॥१७९॥
 हा पद्म सदगुणाम्भोषे हा नारायण भक्तक । हा तात किं न मां वेत्सि हा मातः किं न रक्षसि ॥१८०॥
 अहो विद्याधराधीश भ्रातः कुण्डलमण्डित । दुःखावर्तकृतभ्रान्तिरियं तिष्ठाम्यलक्षणा ॥१८१॥

गुरु चन्दनसे उत्पन्न हुए सघन धूमके समान धूसर वर्ण था, जो सुखसे क्रीडा कर रहा था, और कण्ठमें मनोहर अव्यक्त शब्द विद्यमान था ऐसे कबूतर-कबूतरियोंके युगलको मैंने पाप पूर्ण चित्त से जुदा जुवा किया होगा। अथवा अनुचित स्थानमें उसे रक्खा होगा अथवा बाँधा होगा अथवा मारा होगा, अथवा सन्मान—लालन-पालन आदिसे रहित किया होगा इसीलिए मैं ऐसे दुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥१६६-१६८॥ अथवा जब सब वृक्ष फूलोंसे युक्त हो जाते हैं ऐसे रमणीय वसन्तके समय कोकिल और कोकिलाओंके युगलको मैंने पृथक् पृथक् किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥१६९॥ अथवा मैंने लम्बाके धारक, सदाचारके पालक, इन्द्रियोंको जीतने वाले तथा विद्वानोंके द्वारा वन्दनीय मुनियोंकी निन्दा की होगी जिसके फलस्वरूप इस महादुःख को प्राप्त हुई हूँ ॥१७०॥ आज्ञा मिलते ही हर्षित होने वाले उत्तम भृत्योंके समूह जिसकी सदा सेवा करते थे ऐसी जो मैं पहले स्वर्ग तुल्य घरमें रहती थी वह मैं इस समय बन्धुजनसे रहित इस सघन वनमें कैसे रहूँगी ? मेरे पुण्यका समूह क्षय हो गया है, मैं दुःखोंके सागरमें डूब रही हूँ तथा मैं अत्यन्त पापिनी हूँ ॥१७१॥ जिस पर नाना रत्नोंकी किरणोंका प्रकाश फैल रहा था, जो उत्तर चादरसे आच्छादित था, महा रमणीय था तथा सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित था ऐसे उत्तम शयन पर सुखसे निद्राका सेवन करती थी तथा प्रातःकालके समय बाँसुरी, त्रिसरिका और वीणाके संगीतमय मधुर स्वरसे जागा करती थी ॥१७२-१७४॥ वहीं मैं अपयश रूपी दावानलसे जली दुःखिनी, श्री रामदेवकी प्रधान रानी पापिनी अकेली इस दुःकदायी वनके बीच क्रीडे, कठोर डाभ और तीक्ष्ण पत्थरोंके समूहसे युक्त पृथिवीतलमें कैसे रहूँगी ? ॥१७५-१७६॥ यदि ऐसी अवस्था पाकर भी ये प्राण मुझमें स्थित हैं तब तो कहना चाहिए कि मेरे प्राण वज्रसे निर्मित हैं ॥१७७॥ अहो हृदय ! ऐसी अवस्थाको पाकर भी जो तुम सौ टुकड़े नहीं हो जाते हो उससे जान पड़ता है कि तुम्हारे समान दूसरा साहसी नहीं है ॥१७८॥ क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ? किसका आश्रय लूँ ? कैसे ठहरूँ ? हाय मातः ! यह ऐसा क्यों हुआ ? ॥१७९॥ हे सदगुणोंके सागर राम ! हा भक्त लक्ष्मण ! हा पिता ! क्या तुम मुझे नहीं जानते हो ? हा मातः ! तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करती हो ? ॥१८०॥ अहो विद्याधरोंके अधीश भाई

१. कोकिलयुगलम् । २. निर्वन्धुप्रदशे । ३. मे मम ।

अपुण्यया मया साङ्गं पत्या परमसम्पदा । कष्टं मया जिनेन्द्राणां कृता सप्तसु नार्चना ॥१८२॥
 पुषं तस्यां समाक्रन्दं कुर्वन्मयां विह्वलात्मनि । राजा कुलिशजङ्घास्यस्तं वनान्तरमागतः ॥१८३॥
 पौण्डरीकपुरः स्वामी राजवन्ध्याथमागतः । प्रत्यागच्छन् महाभूतिगृहीतवरवारणः ॥१८४॥
 तस्य सैन्यशिरोजाताः प्लवमानाः पदातयः । नानाशस्त्रकराः कान्ताः शूरा बद्धासिधेनवः ॥१८५॥
 श्रुत्वा तद्बुद्धितस्वानं तथाप्यतिमनोहरम् । संशयानाः परित्रस्ताः पदं न परतो ददुः ॥१८६॥
 अश्वीयमपि संहृदं पुरोभागमवस्थितम् । साशङ्कैरकृतप्रेरं सादिभिः श्रुतनिःस्वनैः ॥१८७॥

उपजातिवृत्तम्

कुतोऽत्र भीमेऽतितरामरण्ये परासुताकारणभूरिसत्त्वे ।
 अयं निनादो रुदितस्य रम्यः क्षौणो नु चित्रं परमं किमेतत् ॥१८८॥

मालिनीवृत्तम्

मृगमहिषतरक्षुद्वीपिशार्दूललोले स्मरशरभसिंहे कोलदंष्ट्राकराले^१ ।
 सुविमलशशिरेखाहारिणी केयमस्मिन् हृदयहरणदक्षं कक्षमध्ये विरौति ॥१८९॥
 सुरवरवनितेयं किन्नु सौधर्मकत्तपादवनितलमुपेता पातिता वासवेन ।
 उत जनसुखगीतासा नु देवी विधात्री भुवननिधनहेतोरगता स्यात् कुतोऽपि ॥१९०॥
 इति जनितचित्तकं वज्रिताऽऽमीयचेष्टं प्रजवसरणयुक्तैर्मूलगैः पूर्यमाणम् ।
 प्रहतबहलतूरं^२ तन्महावर्त्तकल्पं स्थितमचलमुदारं सैनिकं विस्मयाख्यम् ॥१९१॥

कुण्डलमण्डित ! यह मैं कुलक्षणा दुःखरूपी आवर्तमें भ्रमण करती यहाँ पड़ी हूँ ॥१८९॥ खेद है कि मैं पापिनी पतिके साथ बड़े वैभवसे, पृथिवी पर जो जिनमन्दिर हैं उनमें जिनेन्द्र भगवान की पूजा नहीं कर सकी ॥१८९॥

अथानन्तर जष विह्वल चित्त सीता त्रिलाप कर रही थी तब एक वज्रजंघ नामक राजा उस वनके मध्य आया ॥१८३॥ वज्रजंघ पुण्डरीकपुरका स्वामी था, हाथी पकड़नेके लिए उस वनमें आया था और हाथी पकड़कर बड़े वैभवसे लौटकर वापिस आ रहा था ॥१८४॥ उसकी सेनाके अग्रभागमें जो सैनिक उल्ललते हुए जा रहे थे वे यद्यपि अपने हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र लिये थे, सुन्दर थे, शूरवीर थे और छुरियाँ बाँधे हुए थे तथापि सीताका वह अतिशय मनोहर रोदनका शब्द सुनकर वे संशयमें पड़ गये तथा इतने भयभीत हो गये कि एक डग भी आगे नहीं दे सके ॥१८५-१८६॥ सेनाके आगे चलने वाला जो घोड़ोंका समूह था वह भी रुक गया तथा उस रोदनका शब्द सुन आशङ्कसे युक्त घुड़सवार भी उसे प्रेरित नहीं कर सके ॥१८७॥ वे विचार करने लगे कि जहाँ मृत्युके कारणभूत अनेक प्राणी विद्यमान हैं ऐसे इस अत्यन्त भयंकर वनमें यह स्त्रीके रोनेका मनोहर शब्द हो रहा है सो यह बड़ी विचित्र क्या बात है ? ॥१८८॥ जो मृग, भैंसा, भेड़िया, चीता और तिटुआसे चञ्चल है जहाँ अष्टापद और सिंह घूम रहे हैं, तथा जो सुअरोंकी दाँड़ोंसे भयंकर है ऐसे इस वनके मध्यमें अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी रेखाके समान यह कौन हृदयके हरनेमें निपुण रो रही है ? ॥१८९॥ क्या यह सौधर्म स्वर्गसे इंद्रके द्वारा छोड़ी और पृथिवीतल पर आई हुई कोई इंद्राणी है अथवा मनुष्योंके सुख संगीतको नष्ट करने वाली एवं प्रलयके कारणको उत्पन्न करने वाली कोई देवी कहींसे आ पहुँची है ? ॥१९०॥ इस प्रकार जिसे तर्क उत्पन्न हो रहा था, जिसने अपनी चेष्टा छोड़ दी थी, वेगसे चलनेवाले मूल पुरुष जिसमें आकर इकट्ठे हो रहे थे, जिसमें अत्यधिक बाजे बज रहे थे, जो किसी बड़ी भँवरके समान जान पड़ती थी और जो आश्चर्यसे युक्त थी ऐसी वह विशाल सेना निश्चल खड़ी हो गई ॥१९१॥

१. मया भ०, व० । २. वज्रजङ्घनामा । ३. दंष्ट्रान्तराले म० । ४. देशं म० । ५. तूलं ल० ।

तुरगमकरवृन्दं प्रौढपादात्तमीनं विधृतवरकरेणुग्राहजालं सशब्दम् ।
रविकिरणविषक्तप्रस्फुरत्खड्गवाचिप्रतिभयमभवत्तत्सैन्यमम्भोधिकल्पम् ॥१६२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतानिर्वासनविप्रलापवज्रजङ्घमनाभिधानं नाम
सप्तनवतितमं पर्व ॥६७॥

घोड़ोंके समूह ही जिसमें मगर थे, तेजस्वी पैदल सैनिक ही जिसमें मीन थे, हाथियोंके समूह ही जिसमें ग्राह थे, जो प्रचण्ड शब्दसे युक्त था और सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे चमकती हुई तलवार रूपी तरङ्गोंसे जो भय उत्पन्न करनेवाली थी ऐसी वह सेना समुद्रके समान जान पड़ती थी ॥१६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा विरचित श्री पद्मपुराणमें सीताके निर्वासन,
विलाप और वज्रजङ्घके आगमनका वर्णन करनेवाला सप्तनववौ पर्व समाप्त हुआ ॥६७॥

अष्टनवतितमं पर्व

ततः पुरो महाविद्यानिरुद्धामिव जाह्नवीम् । चक्रीभूर्तां चभूं दृष्ट्वा वज्रजङ्घः करेणुगः ॥१॥
 प्रच्छासन्नपुरुषान् यूथमेवं कुतः स्थिताः । कुतः केन प्रतीवातो गमनस्य किमाकुलाः ॥२॥
 पारम्पर्येण ते यावत् पृच्छन्ति स्थितिकारणम् । तावत्किञ्चित्समासीदन् राजा शुभ्राव रोदनम् ॥३॥
 जगद् च समस्तेषु लक्ष्मणेषु कृतश्रमः । यस्या रुदितशब्दोऽयं श्रूयते सुमनोहरः ॥४॥
 विद्युद्गर्भहवा सत्या गर्भिण्याऽप्रतिरूपया । ध्रुवं पुरुषपद्मस्य भवितव्यं स्त्रियाऽनया ॥५॥
 एवमेतत्कुतो देव सन्देहोऽत्र त्वयोदिते । अनेकमद्भुतं कर्म भवता हि पुरेक्षितम् ॥६॥
 एवं तस्य सभृत्यस्य कथा यावत्प्रवर्तते । तावद्ग्रेसरा सीतासमीपं सत्स्विनो गताः ॥७॥
 प्रच्छुः पुरुषा देवि का त्वं निर्मानुषे वने । विरौपि करुणं शोकमसम्भाव्यमिदं श्रिता ॥८॥
 न दृश्यन्ते भवादृश्यो लोकेऽत्राकृतयः शुभाः । दिव्या किमसि किं वाऽन्या काचित् सृष्टिरनुत्तमा ॥९॥
 यदीदमीदृशं धत्से वपुरक्लिष्टमुत्तमम् । ततोऽयन्तं न बालद्वयं कोऽयं शोकस्तवापरः ॥१०॥
 वद् कल्याणि कथं चेदिदं नः कौतुकं परम् । दुःखान्तोऽपि च सत्येवं कदाचिदुपजायते ॥११॥
 ततस्तान् सुमहाशोकध्वान्तीकृतसमस्तदिक् । पुरुषान् सहसा दृष्ट्वा नानाशब्दकरोऽञ्जलान् ॥१२॥
 सीता त्राससमुत्पन्नप्रथुत्रेपथुसङ्कुला । दातुमाभरणान्येषां लोलनेत्रा समुद्यता ॥१३॥
 तत्त्वमूढास्ततो भीता जगदुः पुरुषाः पुनः । सन्त्रासं देवि शोकं च त्यज संश्रय धीरताम् ॥१४॥

अथानन्तर आगे महाविद्यासे रुकी गङ्गानदीके समान चक्राकार परिणत सेनाको देख, हाथी पर चढ़े हुए वज्रजङ्घने निकटवर्ती पुरुषोंसे पूछा कि तुमलोग इस तरह क्यों खड़े हो गये ? गमनमें किसने किस कारण रुकावट डाली ? और तुमलोग व्याकुल क्यों हो रहे हो ? ॥१-२॥ निकटवर्ती पुरुष जबतक परम्परासे सेनाके रुकनेका कारण पूछते हैं तबतक कुछ निकट बढ़कर राजाने श्वयं रोनेका शब्द सुना ॥३॥ समस्त लक्ष्मणोंमें जिसने श्रम किया था ऐसा राजा वज्रजङ्घ बोला कि जिस स्त्रीका यह अत्यन्त मनोहर रोनेका शब्द सुनाई पड़ रहा है वह बिजलीके मध्य-भागके समान कान्तिवाली, पतिव्रता तथा अनुपम गर्भिणी है । यही नहीं उसे निश्चय ही किसी श्रेष्ठ पुरुषकी स्त्री होना चाहिए ॥४-५॥ हे देव ! ऐसा ही है—आपके इस वधनमें संदेह कैसे हो सकता है ? क्योंकि आपने पहले अनेक आश्चर्यजनक कार्य देखे हैं ॥६॥ इस प्रकार सेवकों और राजा वज्रजङ्घके बीच जबतक यह वार्ता होती है तबतक आगे चलनेवाले कुछ साहसी पुरुष सीताके समीप जा पहुँचे ॥७॥ उन्होंने पूछा कि हे देवि ! इस निर्जन वनमें तुम कौन हो ? तथा असंभाव्य शोकको प्राप्त हो यह करुण विलाप क्यों कर रही हो ? ॥८॥ इस संसारमें आपके समान शुभ आकृतियाँ दिखाई नहीं देती । क्या तुम देवी हो ? अथवा कोई अन्य उत्तम सृष्टि हो ? ॥९॥ जब कि तुम इस प्रकारके क्लेश रहित उत्तम शरीरको धारण कर रही हो तब यह विलकुल ही नहीं जान पड़ता कि तुम्हें यह दूसरा दुःख क्या है ? ॥१०॥ हे कल्याणि ! यदि यह बात कहने योग्य है तो कहो, हमलोगोंको बड़ा कौतुक है । ऐसा होने पर कदाचित् दुःखका अन्त भी हो सकता है ॥११॥

तदनन्तर महाशोकके कारण जिसे समस्त दिशाएँ अन्धकार रूप हो गई थीं ऐसी सीता अचानक नाना शब्दोंकी किरणोंसे देदीप्यमान उन पुरुषोंको देखकर भयसे एक दम काँप उठी, उसके नेत्र चञ्चल हो गये और वह इन्हें आभूषण देनेके लिए उद्यत हो गई ॥१२-१३॥ तदनन्तर

१. निकटीभवन् । २. बालद्वयः म० ।

२८-३

किं वा विभूषणैरेभिस्तिष्ठन्तु त्वयि दक्षिणे । भावयोगं प्रपद्यस्व किमर्थमसि विह्वला ॥१५॥
 श्रीमानयं परिप्राप्तो वज्रजङ्घ इति क्षितौ । प्रसिद्धः सकलैर्युक्तो राजधर्मैर्नरोत्तमः ॥१६॥
 सम्यग्दर्शनरत्नं यः सादृश्यपरिवर्जितम् । अविनाशमनाधेयमहार्यं सारसौख्यदम् ॥१७॥
 शङ्कादिमलनिर्मुक्तं हेमपर्वतनिश्चलम् । हृदयेन समाधत्ते सचेता भूषणं परम् ॥१८॥
 सम्यग्दर्शनमीदृक्तं यस्य साधिवि विराजते । गुणास्तस्य कथं श्लाघ्ये वर्ण्यन्तामस्मदादिभिः ॥१९॥
 जिनशासनतत्त्वज्ञः शरणागतवत्सलः । परोपकारसंसक्तः करुणाद्रितमानसः ॥२०॥
 लब्धवर्णो विशुद्धात्मा निन्द्यकृत्यनिवृत्तधीः । पितेव रक्षिता लोके दाता भूतहिते रतः ॥२१॥
 दीनादीनां विशेषेण मातुरप्यनुपालकः । शुद्धकर्मकरः शत्रुमहोदरमहाशनिः ॥२२॥
 शस्त्रशास्त्रकृतभ्रान्तिरभ्रान्तिः शान्तिकर्मणि । जानात्यन्यकलत्रं च कूपं साजगरं यथा ॥२३॥
 धर्मं परमभासक्तो भवपातभयास्तदा । सत्यस्थापितसद्वाक्यो बाह्वं नियमितेन्द्रियः ॥२४॥
 अस्य देवि गुणान् वक्तुं योऽखिलानभिवान्छति । तरितुं स ध्रुवं वष्टिं गात्रमात्रेण सागरम् ॥२५॥
 यावद्देवा कथा तेषां वर्तते चित्तबन्धिनी । तावन्नृपः परिप्राप्तः किञ्चिद्भुतसङ्गतः ॥२६॥
 अवतीर्य करेणोश्च योग्यं विनयमुद्रहन् । निसर्गशुद्धया दृष्टया पश्यन्नेवसभाषत ॥२७॥
 अहो वज्रमयो नूनं पुरुषः सविचेतनः । यतस्त्यजन्निहारण्ये त्वां न दीर्घः सहस्रथा ॥२८॥
 ब्रूहि कारणमेतस्या अवस्थाया शुभाशये । विश्वस्ता भव मा भैवीर्गर्भायासं हि मा कृथाः ॥२९॥

यथार्थ वातके समझनेमें मूढ पुरुषोंने भयभीत होकर पुनः कहा कि हे देवि ! भय तथा शोक छोड़ो, धीरताका आश्रय लेओ ॥१४॥ हे सरले ! इन आभूषणोंसे हमें क्या प्रयोजन है ? ये तुम्हारे ही पास रहें । भाव योगको प्राप्त होओ अर्थात् हृदयको स्थिर करो और वताओ कि विह्वल क्यों हो ?—दुःखी क्यों हो रही हो ? ॥१५॥ जो समस्त राजधर्मसे सहित है तथा पृथिवी पर वज्रजङ्घ नामसे प्रसिद्ध है ऐसा यह श्रीमान् उत्तम पुरुष यहाँ आया है ॥१६॥ सावधान चित्तसे सहित यह वज्रजङ्घ सदा उस सम्यग्दर्शन रूपी रत्नको हृदयसे धारण करता है जो सादृश्यसे रहित है, अविनाशी है, अनावेय है, अहार्य है, श्रेष्ठ सुखको देनेवाला है, शङ्कादि दोषोंसे रहित है, सुमेरुके समान निश्चल है और उत्कृष्ट आभूषण स्वरूप है ॥१७-१८॥ हे साधिवि ! हे प्रशंसनीये ! जिसके ऐसा सम्यग्दर्शन सुशोभित है उसके गुणोंका हमारे जैसे पुरुष कैसे वर्णन कर सकते हैं ? ॥१९॥ वह जिन शासनके रहस्यको जाननेवाला है, शरणमें आये हुए लोगोंसे स्नेह करनेवाला है, परोपकारमें तत्पर है, दयासे आर्द्रचित्त है, विद्वान् है, विशुद्ध हृदय है, निन्द्य कार्योंसे निवृत्त बुद्धि है, पिताके समान रक्षक है, प्राणिहितमें तत्पर है, दीन-हीन आदिका तथा खास कर मातृ-जातिका रक्षक है, शुद्ध कार्यको करनेवाला है, शत्रुरूपी पर्वतको नष्ट करनेके लिए महावज्र है । शस्त्र और शास्त्रका अभ्यासी है, शान्ति कार्यमें थकावटसे रहित है, परस्त्रीको अजगर सहित कूपके समान जानता है, संसार-पातके भयसे धर्ममें सदा अत्यन्त आसक्त रहता है, सत्यवादी है और अच्छी तरह इन्द्रियोंको वश करनेवाला है ॥२०-२४॥ हे देवि ! जो इसके समस्त गुणोंको कहना चाहता है वह मानो मात्र शरीरसे समुद्रको तैरना चाहता है ॥२५॥ जबतक उन सबके बीच मनको बाँधनेवाली यह कथा चलती है तबतक कुछ आश्चर्यसे युक्त राजा वज्रजङ्घ भी वहाँ आ पहुँचा ॥२६॥ हस्तिनीसे उतर कर योग्य विनय धारण करते हुए राजा वज्रजङ्घने स्वभाव शुद्ध दृष्टिसे देखकर इस प्रकार कहा कि ॥२७॥ अहो ! जान पड़ता है कि वह पुरुष वज्रमय तथा चेतनाहीन है इसलिए इस वनमें तुम्हें छोड़ता हुआ वह हजार टुक नहीं हुआ है ॥२८॥ हे शुभाशये ! अपनी इस अवस्थाका कारण कहो, निश्चिन्त होओ, डरो मत तथा गर्भको कष्ट मत पहुँचाओ ॥२९॥

१. भाव योगं म० । २. मातृशा अनुपालकः म० । ३. कामयते । ४. सुविचेतनः म० ।

ततः कथयितुं कृच्छ्राद्विरताऽपि सती क्षणम् । पुना रुरोद शोकोरुचकंपीडितमानसा ॥३०॥
 सुहृस्ततोऽनुयुक्ता सा राज्ञा मधुरभाषिणा । धृत्वा मन्थुं जगौ क्लिष्टहंसगद्गदनिःस्वना ॥३१॥
 विज्ञातुं यदि ते वान्छा राजन् यच्च ततो मनः । कथा मे मन्दभाग्याया ह्यमत्यन्तदीर्घिका ॥३२॥
 सुता जनकराजस्य प्रभामण्डलसोदरा । स्तुषा दशरथस्याहं सीता पद्माभपत्निका ॥३३॥
 केकयावरदानेन भरताय निजं पदम् । दत्त्वाऽनरण्यपुत्रोऽसौ तपस्विपदमाश्रयत् ॥३४॥
 रामलक्ष्मणयोः साकं मया प्रस्थितमायतम् । जातं श्रुतं त्वया नूनं पुण्यचेष्टितसङ्गतम् ॥३५॥
 हृताऽस्मि राक्षसेन्द्रेण पत्युः सुग्रीवसङ्गमे । जाते भुक्तवती वार्त्ता सम्प्राप्त्यैकादशेऽहनि ॥३६॥
 आकाशगामिभिर्यानिहर्त्तार्यं मकरालयम् । जित्वा दशमुखं युद्धे पत्याऽस्मि पुनराहता ॥३७॥
 राज्यपङ्कं परित्यज्य भरतो भरतोपमः । श्रामण्यं परमाश्रित्य सिद्धिं धूतरजा वयौ ॥३८॥
 अपत्यशोकनिर्दग्धा प्रव्रज्यासौ च केकया । देवी कृत्वा तपः सम्यग्देवलोकमुपागता ॥३९॥
 महीतले विमर्यादो जनोऽयं दुष्टमानसः । प्रवीति परिव्रादं मे शङ्कया परिवर्जितः ॥४०॥
 रावणः परमः प्राज्ञो भूत्वाऽन्यस्त्रियमग्रहीत् । तामानीय पुना रामः सेवते धर्मशास्त्रवित् ॥४१॥
 यथा ह्यवस्थया राजा वर्त्तते दृढनिश्चयः । सैवाऽस्माकमपि क्षेमा नूनं दोषो न विद्यते ॥४२॥
 साऽहं गर्भान्विता जाता कृशाङ्गा वसुधातले । चिन्तयन्ती जिनेन्द्राणां करोम्यभ्यर्चनामिति ॥४३॥
 ततो भर्ता मया सार्द्धंमुष्टुक्तश्चैत्यवन्दने । जिनेन्द्रातिशयस्थानेष्वत्यन्तविभवान्वितः ॥४४॥
 अगदीत् प्रथमं सीते गत्वाऽष्टापदपर्वतम् । ऋपभं भुवनानन्दं प्रणस्यावः कृतार्चनौ ॥४५॥

तदनन्तर सती सीता यद्यपि कुछ कहनेके लिए क्षण भरको दुःखसे विरत हुई थी तथापि शोकरूपी विशाल चक्रसे हृदयके अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण वह पुनः रोने लगी ॥३०॥ तत्परचातु मधुर भाषण करनेवाले राजाने जब बार बार पूछा तब वह जिस किसी तरह शोकको रोककर दुःखी हंसके समान गद्गद वाणीसे बोली ॥३१॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यदि तुम्हें जाननेकी इच्छा है तो इस ओर मन लगाओ क्योंकि मुझ अभागिनीकी यह कथा अत्यन्त लम्बी है ॥३२॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहिन, दशरथकी पुत्रवधू और रामकी पत्नी सीता हूँ ॥३३॥ राजा दशरथ, केकयाके वरदानसे भरतके लिए अपना पद देकर तपस्वीके पदको प्राप्त हो गये ॥३४॥ फलस्वरूप राम लक्ष्मणको मेरे साथ वनको जाना पड़ा सो हे पुण्यचेष्टित ! जो कुछ हुआ वह सब तुमने सुना होगा ॥३५॥ राज्ञसंके अधिपति रावणने मेरा हरण किया, स्वामी रामका सुग्रीवके साथ समागम हुआ और ग्यारहवें दिन समाचार पाकर मैंने भोजन किया ॥३६॥ आकाशगामी वाहनसे समुद्र तैरकर तथा युद्धमें रावणको जीतकर मेरे पति मुझे पुनः वापिस ले आये ॥३७॥ भरत चक्रवर्तीके समान भरतने राज्यरूपी पङ्कका परित्याग कर परम दिग्म्बर अवस्था धारण कर ली और कर्मरूपी धूलिको उड़ाकर निर्वाणपद प्राप्त किया ॥३८॥ पुत्रके शोकसे दुखी केकया रानी दीक्षा लेकर तथा अच्छी तरह तपश्चरण कर स्वर्ग गई ॥३९॥ पृथिवीतल पर मर्यादाहीन दुष्ट हृदय मनुष्य निःशङ्क होकर मेरा अपवाद कहने लगे कि रावणने परम विद्वान् होकर परस्त्री ग्रहण की और धर्मशास्त्रके ज्ञाता राम उसे वापिस लाकर पुनः सेवन करने लगे ॥४०-४१॥ दृढ़ निश्चयको धारण करने वाला राजा जिस दशामें प्रवृत्ति करता है वही दशा हमलोगोंके लिए भी हितकारी है इसमें दोष नहीं है ॥४२॥ कृश शरीरको धारण करने वाली वह मैं जब गर्भवती हुई तब मैंने ऐसा विचार किया कि पृथिवी तल पर जितने जिनबिम्ब हैं उन सबकी मैं पूजा करूँ ॥४३॥ तदनन्तर अत्यधिक वैभवसे सहित स्वामी राम, जिनेन्द्र भगवान्के अतिशय स्थानोंमें जो जिनबिम्ब थे उनकी वन्दना करनेके लिए मेरे साथ उद्यत हुए ॥४४॥ उन्होंने कहा कि हे सीते ! सर्व प्रथम कैलास पर्वत पर जाकर जगत्को आनन्दित

अस्यां ततो विनीतायां जन्मभूमिप्रतिष्ठिता । प्रतिमा ऋषभादांनानां नमस्वावः सुसम्पदा ॥४६॥
 काम्पिल्ये विमलं नन्तु यास्यावो भावतस्ततः । धर्मं रत्नपुरे चैव धर्मसद्भावदेशिनम् ॥४७॥
 श्रावस्थां शम्भवं शुभ्रं चम्पायां वासुपूज्यकम् । पुष्पदन्तं च काकन्द्यां कौशाम्ब्यां पशतेजसम् ॥४८॥
 चन्द्राभं चन्द्रपुर्यां च शीतलं भद्रिकावनौ । मिथिलायां ततो मल्लिं नमस्कृत्य जिनेश्वरम् ॥ ४९॥
 वाराणस्यां सुपार्श्वं च श्रेयांसं सिंहनिःस्वने । शान्तिं कुन्थुमरे चैव पुरे हास्तनि नामनि ॥५०॥
 कुशाग्रनगरे देवि सर्वज्ञं मुनिसुव्रतम् । धर्मचक्रमिदं यस्य उवलम्ब्यापि सूड्ज्वलम् ॥५१॥
 ततोऽन्यान्यपि वैदेहि जिनातिशययोगतः । स्थानान्यतिपवित्राणि प्रथितान्यखिलेनसः ॥५२॥
 त्रिदशासुरगन्धर्वैः स्तुतानि प्रणतानि च । वन्दावहे समस्तानि तत्परायणमानसौ ॥५३॥
 पुष्पकाम्यं समारूढ विलङ्घ्य गगनं द्रुतम् । मया सह जिनानर्चं सुमेरुशिखरेष्वपि ॥५४॥
 भद्रशालवनोद्गतैस्तथा वन्दनसम्भवैः । पुष्पैः सौमनसीयैश्च जिनेन्द्रानर्चय प्रिये ॥५५॥
 कृत्रिमाकृत्रिमान्धर्म्मिन्श्रैत्यानभ्यर्च्य विश्वे । प्रवन्द्य चागमिष्यावः साकेतां दयिते पुनः ॥५६॥
 एकोऽपि हि नमस्कारो भावेन विहितोऽर्हतः । मोक्षयत्येनसो जन्तुं जन्मान्तरकृतादपि ॥५७॥
 ममापि परमा कान्ते तुष्टिर्मनसि वर्त्तते । चैत्यालयान् महापुण्यान् पश्यामीति त्वदाशया ॥५८॥
 काले पूर्णतमश्लक्ष्णे भूते निःकिञ्चने जने । जगत्ताराधिपेनेव येनेशेन^१ विराजितम् ॥५९॥
 प्रजानां पतिरेको यो ज्येष्ठश्चैलोक्यवन्दितः । भव्यानां भवभीरूणां मोक्षमार्गोपदेशकः ॥६०॥

करनेवाले श्री ऋषभ जिनेन्द्रकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करेंगे ॥४५॥ फिर इस अयोध्या नगरीमें जन्मभूमिमें प्रतिष्ठित जो ऋषभ आदि तीर्थकरोंकी प्रतिमाएँ हैं उन्हें उत्तम वैभवके साथ नमस्कार करेंगे ॥४६॥ फिर काम्पिल्य नगरमें श्री विमलनाथको भावपूर्वक नमस्कार करनेके लिए जावेंगे और उसके बाद रत्नपुर नगरमें धर्मके सद्भावका उपदेश देनेवाले श्रीधर्मनाथको नमस्कार करनेके लिए चलेंगे ॥४७॥ श्रावस्ती नगरीमें शंभवनाथको, चम्पापुरीमें वासुपूज्यको, काकन्दीमें पुष्पदन्तको, कौशाम्बीमें पद्मप्रभको, चन्द्रपुरीमें चन्द्रप्रभको, भद्रिकावनिमें शीतलनाथको, मिथिलामें मल्लि जिनेश्वरको, वाराणसीमें सुपार्श्वको, सिंहपुरीमें श्रेयान्सको, हास्तनापुरीमें शान्ति कुन्थु और अरनाथको और हे देवि ! उसके बाद कुशाग्रनगर-राजगृहीमें उन सर्वज्ञ मुनि सुव्रतनाथकी वन्दना करनेके लिए चलेंगे जिनका कि आज भी यह अत्यन्त उड्ज्वल धर्मचक्र देदीप्यमान हो रहा है ॥४८-५१॥ तदनन्तर हे वैदेहि ! जिनेन्द्र भगवान्के अतिशयोंके योगसे अत्यन्त पवित्र, सर्वत्र प्रसिद्ध देव असुर और गन्धर्वोंके द्वारा स्तुत एवं प्रणत जो अन्य स्थान हैं तत्पर चित्त होकर उन सबकी वन्दना करेंगे ॥५२-५३॥ तदनन्तर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो शीघ्र ही आकाशको उल्लंघ्य कर मेरे साथ सुमेरुके शिखरों पर विद्यमान जिन-प्रतिमाओंकी पूजा करना ॥५४॥ हे प्रिये ! भद्रशाल वन, वन्दन वन और सौमनस वनमें उत्पन्न पुष्पोंसे जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करना ॥५५॥ फिर हे दयिते ! इस लोकमें जो कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाएँ हैं उन सबकी वन्दना कर अयोध्या वापिस आवेंगे ॥५६॥ अर्हन्त भगवान्के लिए भाव-पूर्वक किया हुआ एक ही नमस्कार इस प्राणीको जन्मान्तरमें किये हुए पापसे छुड़ा देता है ॥५७॥ हे कान्ते ! तुम्हारी इच्छासे महापवित्र चैत्यालयोंके दर्शन कर लूँगा इस बातका मेरे मनमें भी परम संतोष है ॥५८॥ पहले जब यह काल अज्ञानान्धकारसे आच्छादित था तथा कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जानेसे मनुष्य एकदम अकिञ्चन हो गये थे तब जिन आदिनाथ भगवान्के द्वारा यह जगत् उस तरह सुशोभित हुआ था जिस तरहकी चन्द्रमासे सुशोभित होता है ॥५९॥ जो प्रजाके अद्वितीय स्वामी थे, ज्येष्ठ थे, तीन लोकके द्वारा वन्दित थे, संसारसे डरनेवाले भव्यजीवों-

१. "अखिलेनस" सर्वपुस्तकेष्वित्थमेव पाठोऽस्ति किन्तु तस्यार्थः स्पष्टो न भवति । २. येन सेना विराजितम् ज० ।

यस्याष्टगुणमैश्वर्यं नानातिशयशोभितम् । अजस्रपरमाश्रयं सुरासुरमनोहरम् ॥६१॥
जीवप्रभृतितत्त्वानि विशुद्धानि प्रदर्श्य यः । भव्यानां कृतकर्णव्यो निर्वाणं परमं गतः ॥६२॥
सर्वरत्नमयं दिव्यमालयं चक्रवर्तिना । निर्माप्य यस्य कैलासे प्रतिमा स्थापिता प्रभोः ॥६३॥
सा भास्करप्रतीकाशा पञ्चचापशतोच्छ्रिता । प्रतिमाप्रतिरूपस्य दिव्या यस्य विराजते ॥६४॥
यस्याद्यापि महापूजा गन्धर्वाभरकिन्नरैः । अप्सरोनागदैत्याद्यैः क्रियते यत्नतः सदा ॥६५॥
अनन्तः परमः सिद्धः शिवः सर्वगतोऽमलः । अर्हंस्त्रैलोक्यपूजार्हः यः स्वयम्भूः स्वयंप्रभुः ॥६६॥
तं कदा तु प्रभुं गत्वा कैलासे परमाचले । ऋषभं देवमभ्यर्च्य स्तोष्यामि सहितस्त्वया ॥६७॥
प्रस्थितस्य मया साकमेवं धृत्याऽतितुङ्गया । प्राप्ता जनपरीवादवात्ता दावाग्निदुःसहा ॥६८॥
चिन्तितं मे ततो भर्ता प्रेक्षापूर्वविधाधिना । लोकः स्वभाववक्रोऽयं नान्यथा याति वश्यताम् ॥६९॥
वरं प्रियजने त्वत्के मृत्युरप्यनुसेवितः । यशसो नोपवातोऽयं कल्पान्तमवस्थितः ॥७०॥
साहं जनपरीवादाद्विदुषा तेन विभ्यता । संत्यक्ता परमेऽरण्ये दोषेण परिवर्जिता ॥७१॥
विशुद्धकुलजातस्य क्षत्रियस्य सुचेतसः । विज्ञातसर्वशास्त्रस्य भवत्येवेदमीहितम् ॥७२॥
एवं निर्वाससम्बन्धं वृत्तान्तं स्वं निवेद्य सा । दीना रोदितुमारब्धा शोकञ्जलनतपिता ॥७३॥
तामभ्रजलपूर्णास्वां क्षितिरेणुसमुच्छ्रिताम् । दृष्ट्वा कुलिशजङ्घोऽपि लुप्तोभोत्तमसस्वभृत् ॥७४॥
ततो जनकराजस्य तनयामधिगम्य ताम् । समीपीभूय राजाऽसौ समाश्वासयदादतः ॥७५॥

के लिए मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले थे ॥६०॥ जिनका अष्ट प्रातिहार्य रूपी ऐश्वर्य नाना प्रकारके अतिशयोक्ते सुशोभित था, निरन्तर परम आश्रयसे युक्त था और सुरासुरोंके मनको हरनेवाला था ॥६१॥ जो भव्य जीवोंके लिए जीवादि निर्दोष तत्त्वोंका स्वरूप दिखाकर अन्तमें कृतकृत्य हो निर्वाण पदको प्राप्त हुए थे ॥६२॥ चक्रवर्ती भरतने कैलास पर्वत पर सर्वरत्नमय दिव्य मन्दिर बनवा कर उन भगवान्की जो प्रतिमा विराजमान कराई थी वह सूर्यके समान देदीप्यमान है, पाँच सौ धनुष ऊँची है, दिव्य है, तथा आज भी उसकी महापूजा गन्धर्व, देव, किन्नर, अप्सरा, नाग तथा दैत्य आदि सदा यत्नपूर्वक करने हैं ॥६३-६५ जो ऋषभदेव भगवान् अनन्त हैं—परम पारिणामिक भावकी अपेक्षा अन्त रहित हैं, परम हैं—अनन्त चतुष्टयरूप उत्कृष्ट लक्ष्मी से युक्त हैं, सिद्ध हैं—कृतकृत्य हैं, शिव हैं—आनन्दरूप हैं, ज्ञानकी अपेक्षा सर्वगत हैं, कर्ममलसे रहित होनेके कारण अमल हैं, प्रशस्तरूप होनेसे अर्हन्त हैं, त्रैलोक्यकी पूजाके योग्य हैं, स्वयंभू हैं और स्वयं प्रभु हैं। मैं उन भगवान् ऋषभदेवकी कैलास नामक उत्तम पर्वत पर जा कर तुम्हारे साथ कब पूजा करूँगा और कब स्तुति करूँगा ? ॥६६-६७॥ इस प्रकार निश्चय कर बहुत भारी धैर्यसे उन्होंने मेरे साथ प्रस्थान कर दिया था परन्तु बीचमें ही दावानलके समान दुःसह लोकापवादकी वार्ता आ गई ॥६८॥ तदनन्तर विचारपूर्वक कार्य करनेवाले मेरे स्वामीने विचार किया कि यह स्वभावसे कुटिल लोक अन्य प्रकारसे वश नहीं हो सकते ॥६९॥ इसलिए प्रिय जनका परित्याग करने पर यदि मृत्युका भी सेवन करना पड़े तो अच्छा है परन्तु कल्पान्त काल तक स्थिर रहनेवाला यह यशका उपघात श्रेष्ठ नहीं है ॥७०॥ इस तरह यद्यपि मैं निर्दोष हूँ तथापि लोकापवादसे डरनेवाले उन बुद्धिमान् स्वामीने मुझे इस बीहड़ वनमें छोड़वा दिया है ॥७१॥ सो जो विशुद्ध कुलमें उत्पन्न है, उत्तम हृदयका धारक है और सर्वशास्त्रोंका ज्ञाता है ऐसे क्षत्रियकी यह चेष्टा होती ही है ॥७२॥ इस तरह वह दीन सीता अपने निर्वाससे सम्बन्ध रखनेवाला अपना सब समाचार कह कर शोकाग्निसे संतप्त होती हुई पुनः रोने लगी ॥७३॥

तदनन्तर जिसका मुख आँसुओंके जलसे पूर्ण था तथा जो पृथिवीकी धूलिसे सेवित थी ऐसी उस सीताको देखकर उत्तम सस्वगुणका धारक राजा वज्रजङ्घ भी क्षोभको प्राप्त हो गया ॥७४॥ तत्पश्चात् उसे राजा जनककी पुत्री जान राजा वज्रजङ्घने पास जाकर बड़े आदरसे उसे

शोकं विरह मा रोदीर्जिनशासनभाविता । किमाप्तं कुरुषे ध्यानं देवि दुःखस्य वर्द्धनम् ॥७६॥
 किं न वैदेहि ते ज्ञाता लोकेऽत्र स्थितिरीदृशी । अनित्याशरणैकवान्यस्वादिप्रभाविनी ॥७७॥
 मिथ्यादृष्टिर्धूर्वद्वयच्छोचसि मुहुर्मुहुः । श्रुतार्थैवासि साधुभ्यः सततं चारुभावेन ॥७८॥
 ननु जीवेन किं दुःखं न प्राप्तं मूढचेतसा । भवभ्रमणसक्तेन मोहमार्गमजानता ॥७९॥
 संयोगा विप्रयोगाश्च भवसागरवर्तिना । क्लेशावर्त्तनिमग्नेन प्राप्ता जीवेन भूरिशः ॥८०॥
 खजलस्थलचारेण तिर्यग्योनिषु दुःसहम् । दुःखं जीवेन सम्प्राप्तं वर्षाशीतातपादिजम् ॥८१॥
 अपमानपरीवादविरहाक्रोशनादिजम् । मनुष्यत्वेऽपि किं नाम दुःखं जीवेन नाजितम् ॥८२॥
 कुरिसत्ताचारसम्भूतं ततोऽकृष्टद्विदृष्टिजम् । च्युतिजं च महादुःखं सम्प्राप्तं त्रिदशेष्वपि ॥८३॥
 नरकेषु तु यद्दुःखं तत्र कथं कथ्यतां शुभे । शीतौष्ण्यचारशस्त्रीघ्न्यालान्योन्यसमुज्ज्वम् ॥८४॥
 विप्रयोगाः समुत्कण्ठा व्याधयो दुःखमृत्यवः । शोकाश्रानन्तशः प्राप्ता भवे जीवेन मैथिलि ॥८५॥
 तिर्यगूक्च मधस्ताद्वा स्थानं तन्नास्ति विष्टपे । जीवेन यत्र न प्राप्ता जन्ममृत्युजरादयः ॥८६॥
 स्वकर्मवायुना शब्द आम्बता भवसागरे । मनुष्यत्वेऽपि जीवेन प्राप्ता स्त्रीतनुरीदृशी ॥८७॥
 कर्मभिस्तव युक्तायाः परिशेषैः शुभाशुभैः । अभिरामो गुणैः रामः पतिजातः शुभोदयः ॥८८॥
 पुण्योदयं समं तेन परिप्राप्य सुखोदयम् । अपुण्योदयतो दुःखं पुनः प्राप्ताऽसि दुःसहम् ॥८९॥
 छङ्गादीपेऽसि यत् प्राप्ता पत्या विद्याभृता हता । एकादशदिने भुक्तिं मुक्तिमान्यानुलेपना ॥९०॥

सान्त्वना दी थी ॥७५॥ साथ ही यह कहा कि हे देवि ! शोक छोड़, रो मत, तू जिन शासनकी अहिंमासे अवगत है । दुःखका बढ़ानेवाला जो आर्तध्यान है उसे क्यों करती है ? ॥७६॥ हे वैदेहि ! क्या तुझे ज्ञात नहीं है कि संसारकी स्थिति ऐसी ही अनित्य अशरण एकत्व और अन्यत्व आदि रूप है ॥७७॥ जिससे तू मिथ्यादृष्टि स्त्रीके समान बार-बार शोक कर रही है । हे सुन्दर-भावनावाली ! तूने तो निरन्तर साधुओंसे यथार्थ बातको सुना है ॥७८॥ निश्चयसे सम्यग्दर्शनको न जान कर संसार भ्रमण करनेमें आसक्त मूढ हृदय प्राणीने क्या-क्या दुःख नहीं प्राप्त किया है ? ॥७९॥ संसार रूपी सागरमें वर्तमान तथा क्लेश रूप भँवरमें निमग्न हुए इस जीवने अनेकों बार संयोग और वियोग प्राप्त किये हैं ॥८०॥ तिर्यक्च योनियोंमें इस जीवने खेचर जलचर और स्थलचर होकर वर्षा शीत और आतप आदिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख सदा है ॥८१॥ मनुष्य पर्यायमें भी अपमान निन्दा विरह और गाली आदिसे उत्पन्न होनेवाला कौन-सा महादुःख इस जीवने नहीं प्राप्त किया है ? ॥८२॥ देवोंमें भी हीन आचारसे उत्पन्न, बड़ी-चढ़ी उत्कृष्ट ऋद्धिके देखनेसे उत्पन्न एवं वहाँसे च्युत होनेके कारण उत्पन्न महादुःख प्राप्त हुआ है ॥८३॥ और हे शुभे ! नरकोंमें शीत, उष्ण, चार जल, शस्त्र समूह, दुष्ट जन्तु तथा परस्परके मारण ताडन आदिसे उत्पन्न जो दुःख इस जीवने प्राप्त किया है वह कैसे कहा जा सकता है ? ॥८४॥ हे मैथिलि ! इस जीवने संसारमें अनेकों बार वियोग, उत्कण्ठा, व्याधियाँ, दुःख पूर्ण मरण और शोक प्राप्त किये हैं ॥८५॥ इस संसारमें ऊर्ध्व मध्यम अधवा अधोभागमें वह स्थान नहीं है जहाँ इस जीवने जन्म मृत्यु तथा जरा आदिके दुःख प्राप्त नहीं किये हैं ॥८६॥ अपने कर्मरूपी वायुके द्वारा संसार-सागरमें निरन्तर भ्रमण करनेवाले इस जीवने मनुष्य पर्यायमें भी स्त्रीका ऐसा शरीर प्राप्त किया है ॥८७॥ शेष बचे हुए शुभाशुभ कर्मोंसे युक्त जो तू है सो तेरा गुणांसे सुन्दर तथा शुभ अभ्युदयसे युक्त राम पति हुआ है ॥८८॥ पुण्योदयके अनुसार उसके साथ सुखका अभ्युदय प्राप्त कर अब पापके उदयसे तू दुःसह दुःखको प्राप्त हुई है ॥८९॥ देख, रावणके द्वारा हरी जा कर तू छङ्गा पहुँची, वहाँ तूने माला तथा लेप आदि लगाना छोड़ दिया तथा ग्यारहवें दिन

१. एकादशे दिने भुक्ति मुक्तिमान्यानुलेपना म० ।

प्रतिपक्षे हते तस्मिन् प्रत्यानीता ततः सती । सम्प्राप्ताऽसि पुनः सौख्यं बलदेवप्रसादतः ॥११॥
 अशुभोदयतो भूयो गर्भाधानसमन्विता । विना दोषेण मुक्तासि परिवारोदरगणता ॥१२॥
 यः साधुकुसुमागारं प्रदीपयति दुर्गिरा । अत्यन्तदारुणः पापो वङ्किना दृष्टतामसी ॥१३॥
 परमा देवि धन्या त्वमहो सुशलाध्यचेष्टिता । चैत्यालयनमस्कारदोहदं यदसि श्रिता ॥१४॥
 अद्यापि पुण्यमस्त्येव तत्र सञ्जीलशालिनि । दृष्टासि यन्मयाऽरण्ये प्राप्तेन द्विपकारणम् ॥१५॥
 इन्द्रवंशप्रसूतस्य शुभैकचरितात्मनः । राज्ञो द्विरदवाहस्य सुबन्धुमहिषीभवः ॥१६॥
 सुतोऽहं वज्रजङ्घाख्यः पुण्डरीकपुराधिपः । त्वं मे धर्मविधानेन ज्यायसी गुणिनि स्वसा ॥१७॥
 पृष्टुत्तिष्ठोत्तमे यावः पुरं तामसमुत्सृज । राजपुत्रि कृतेऽप्यस्मिन् कार्यं किञ्चिन्न सिद्धयति ॥१८॥
 स्थितायास्तत्र ते पद्मः पश्चात्तापसमाकुलः । पुनरन्वेषणं साधिव करिष्यति न संशयः ॥१९॥
 परिभ्रष्टं प्रमादेन महार्घगुणमुज्ज्वलम् । रत्नं को न पुनर्विद्वानन्विष्यति महादरः ॥१००॥
 सान्त्वयमाना ततस्तेन धर्मसारकृतात्मना । धृतिं जगाम वैदेही परं प्राप्येव बान्धवम् ॥१०१॥
 प्रशशंस च तं स त्वं भ्राता मे परमः शुभः । यशस्वी सुमतिः सखी शूरः सज्जनवत्सलः ॥१०२॥

आर्या

अभिगतसम्यग्दृष्टिर्गृहीतपरमार्थबोधिपूतात्मा ।
 साधुरिव भावितात्मा व्रतगुणशीलार्थमुद्युक्तः ॥१०३॥
 चरितं सत्पुरुषस्य व्यपगतदोषं परोपकारनिर्युक्तम् ।
 स्रपयति कस्य न शोकं जिनमतनिरतप्रगाढचेतस्कस्य ॥१०४॥

श्रीरामके प्रसादसे पुनः सुखको प्राप्त हुई अब फिर गर्भवती हो पापोदयसे निन्दारूपी सर्पिके द्वारा डँसी गई है और विना दोषके ही यहाँ छोड़ी गई है ॥१०-१२॥ जो साधुरूपी फूलोंके महलको दुर्वचनके द्वारा जला देता है वह अत्यन्त कठिन पाप अग्निके द्वारा भस्मीभूत हो अर्थात् तेरा पापकर्म शीघ्र ही नाशको प्राप्त हो ॥१३॥ अहो देवि! तू परम धन्य है, और अत्यन्त प्रशंसनीय चेष्टाकी धारक है जो तू चैत्यालयोंकी वन्दनाके दोहलाको प्राप्त हुई है ॥१४॥ हे उत्तम-शीलशोभिते! आज भी तेरा पुण्य है ही जो हाथीके निमित्त वनमें आये हुए मैंने तुझे देख लिया ॥१५॥ मैं इन्द्रवंशमें उत्पन्न, एक शुभ आचारका ही पालन करनेवाले राजा द्विरदवाहकी सुबन्धु नामक रानीसे उत्पन्न हुआ वज्रजंघ नामका पुत्र हूँ; मैं पुण्डरीकनगरका स्वामी हूँ। हे गुणवति! तू धर्म विधिसे मेरी बड़ी बहिन है ॥१६-१७॥ हे उत्तमे, चलो उठो नगर चलें, शोक छोड़ो क्योंकि हे राजपुत्रि! इस शोकके करनेपर भी कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥१८॥ हे पतिव्रते! तुम वहाँ रहोगी तो पश्चात्तापसे आकुल होते हुए राम फिरसे तुम्हारी खोज करेंगे इसमें संशय नहीं है ॥१९॥ प्रमादसे गिरे, महामूल्य गुणोंके धारक उज्ज्वल रत्नको कौन विद्वान् बड़े आदरसे फिर नहीं चाहता है? अर्थात् सभी चाहते हैं ॥१००॥

तदनन्तर धर्मके रहस्यसे कुशल अर्थात् धर्मके मर्मको जाननेवाले उस वज्रजंघके द्वारा समझाई गई सीता इस प्रकार धैर्यको प्राप्त हुई मानो उसे भाई ही मिल गया हो ॥१०१॥ उसने वज्रजंघकी इस तरह प्रशंसा की कि हूँ तू मेरा वही भाई है, तू अत्यन्त शुभ है, यशस्वी है, बुद्धिमान् है, धैर्यशाली है, शूरवीर है, साधु-वत्सल है, सम्यग्दृष्टि है, परमार्थको समझनेवाला है, रत्नत्रयसे पवित्रात्मा है, साधुकी भौति आत्मचिन्तन करनेवाला है तथा व्रत गुण और शीलकी प्राप्तिके लिए निरन्तर तत्पर रहता है ॥१०२-१०३॥ निर्दोष एवं परोपकारमें तत्पर सत्पुरुषका चरित, किस जिनमतके प्रगाढ़ श्रद्धानीका शोक नहीं नष्ट करता? अर्थात् सभीका भोजन प्राप्त किया। फिर शत्रु रावणके मारे जाने पर वहाँसे पुनः वापिस लाई गई और बलदेव

नूनं पूर्वत्र भवे सहोदरस्त्वं च बभूवावितथप्रीतः ।

हरसि तमो मे येन स्फीतं रविवद्विशुद्धात्मा ॥१०५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतासमाश्वासनं नामाष्टनवतितमं पर्व ॥६८॥

करता है ॥१०४॥ निश्चित ही तू पूर्वभवमें मेरा यथार्थ प्रेम करनेवाला भाई रहा होगा इसीलिए तो तू सूर्यके समान निर्मल आत्माका धारक होता हुआ मेरे विस्तृत शोक रूपी अन्धकारको हरण कर रहा है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्यद्वारा विरचित पद्मपुराणमें सीताको सान्त्वना देनेका वर्णन करनेवाला अठानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६८॥

नवनवतितमं पर्व

अथ क्षणादुपानीतां सुस्वभमां भक्तिभासुराम् । विमानसदृशीं रम्यां सत्प्रमाणप्रतिष्ठिताम् ॥१॥
 वरदर्पणलम्बुषचन्द्रचामरहारिणीम् । हारखुद्वुदसंयुक्तां विचित्रांशुकशालिनीम् ॥२॥
 प्रसारितमहामाल्यां चित्रकर्मविराजिताम् । सुगन्धां समाकृष्टां शिविकां जनकामजा ॥३॥
 ऋद्धया परमया युक्ता महासैनिकमध्यगा । प्रतस्थे कर्मवैचित्र्यं चिन्तयन्ती सत्रिस्मया ॥४॥
 दिनैस्त्रिभिरतिक्रम्य तदरण्यं सुभीषणम् । पुण्डरीकसुराङ्गं सा प्रविष्टा साधुचेष्टिता ॥५॥
 समस्तसस्यसम्पत्तिस्तिरोहितमर्दातलम् । ग्रामैः कुक्कुटसम्पात्यैः पुराकारैर्विराजितम् ॥६॥
 पुरैर्नाकपुरच्छायैरासेचनकदर्शनम् । पश्यन्ती विषयं श्रीमदुद्यानादिविभूषितम् ॥७॥
 मान्ये भगवति श्लाघ्ये दर्शनेन वयं तव । विभूतकिस्त्रिषा जाता कृतार्था भवसङ्गिनः ॥८॥
 एवं महत्तरप्रष्टैः स्तुयमाना कुटुम्बिभिः । सोपायनैर्नृपच्छायैर्वन्द्यमाना च भूरिशः ॥९॥
 रचितार्षादिसन्मानैः पार्थिवैश्च सुरोत्तमैः । कृतप्रणाममस्त्युद्यं शस्यमाना पदे पदे ॥१०॥
 अनुक्रमेण सम्प्राप्य पौण्डरीकपुरान्तिकम् । मनोभिराममत्यन्तं पौरलोकनिषेवितम् ॥११॥
 वैदेह्यागमनं श्रुत्वा स्वाम्यादेशेन सत्वरम् । उपशोभा पुरे चक्रे परमाधिकृतैर्जनैः ॥१२॥
 परितो हितसंस्काराः रथ्याः सत्रिकचत्वरः । सुगन्धिभिर्जलैः सिक्ताः कृताः पुष्पतिरोहिताः ॥१३॥
 इन्द्रचापसमानानि तोरणान्मुच्छ्रितानि च । कलशाः स्थापिता द्वारे सम्पूर्णाः पल्लवाननाः ॥१४॥

अथानन्तर राजा वज्रजघने क्षण भरमें एक ऐसी पालकी बुलाई जिसमें उत्तम खम्भे लगे हुए थे, जो नाना प्रकारके बेल-बूटोंसे सुशोभित थी, विमानके समान थी, रमणीय थी, योग्य प्रमाणसे बनाई गई थी, उत्तम वर्णण, फन्दूस, तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल चमरोंसे मनोहर थी, हारके बुदबुदोंसे सहित थी, रङ्ग-विरङ्गे वस्त्रोंसे सुशोभित थी, जिस पर बड़ी-बड़ी मालाएँ फँसाकर लगाई गई थीं, जो चित्र रचनासे सुन्दर थी, और उत्तमोत्तम महोत्सवोंसे युक्त थी । ऐसी पालकी पर सवार हो सीताने प्रस्थान किया । उस समय सीता उत्कृष्ट सम्पदासे सहित थी, महा सैनिकोंके मध्य चल रही थी, कर्मोंकी विचित्रताका चिन्तन कर रही थी तथा आश्चर्यसे षकित थी ॥१-४॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली सीता, तीन दिनमें उस भयंकर अटवीको पारकर पुण्डरीक देशमें प्रविष्ट हुई ॥५॥ समस्त प्रकारकी धान्य सम्पदाओंसे जिसकी भूमि आच्छादित थी, तथा कुक्कुटसंपात्य अर्थात् निकट-निकट बसे हुए पुर और नगरोंसे जो सुशोभित था ॥६॥ स्वर्गपुरके समान कान्तिवाले नगरोंसे जो इतना अधिक सुन्दर था कि देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी, तथा जो बाग-बगीचे आदिसे विभूषित था ऐसे पुण्डरीक देशको देखती हुई वह आगे जा रही थी ॥७॥ हे मान्ये ! हे भगवति ! हे श्लाघ्ये ! तुम्हारे दर्शनसे हम संसारके प्राणी निष्पाप एवं कृतकृत्य हो गये ॥८॥ इस प्रकार राजाकी कान्तिको धारण करनेवाले गाँवके बड़े-बूढ़े लोग भेंट ले लेकर उसकी बार-बार वन्दना करते थे ॥९॥ अर्थ आदिके द्वारा सम्मान करनेवाले देव तुल्य राजा उसे प्रणामकर पद-पद पर उसकी अत्यधिक प्रशंसा करते जाते थे ॥१०॥ अनुक्रमसे वह अत्यन्त मनोहर तथा पुरवासी लोगोंसे सेवित पुण्डरीकपुरके समीप पहुँची ॥११॥ सीताका आगमन सुन स्वामीके आदेशसे अधिकारी लोगोंने शीघ्र ही नगरमें बहुत भारी सजावट की ॥१२॥ तिराहों और चौराहोंसे सहित बड़े-बड़े मार्ग सब ओरसे सजाये गये, सुगन्धित जलसे सींचे गये तथा फूलोंसे आच्छादित किये गये ॥१३॥ इन्द्रधनुषके समान रङ्ग-विरङ्गे

१. पुराकारैर्विराजितं म० । २. परितो धृत-ख० । परितः कृतसंस्काराः म० । ३. पल्लवानने म० ।

विलसद्भ्रजमालाङ्घ्र्यं समुद्रतशुभस्वरम् । कर्तुं नृत्तभिवाऽऽसक्तं नगरं ताम्रमोदवत् ॥१५॥
 गोपुरेण समं शालः समारूढमहाजनः । हर्षादिव परां वृद्धिं प्राप कोलाहलान्वितः ॥१६॥
 अन्तर्बहिश्च तत्स्थानं सीतादर्शनकाङ्क्षिभिः । जङ्गमत्वमिव प्राप्तं जनौघैः प्रचलात्मकैः ॥१७॥
 ततो विविधवादित्रनादेनाऽऽशाभिपूरिणा । शङ्खस्वनविमिश्रेण बन्दिनिःस्वानयोगिना ॥१८॥
 विस्मयव्याप्तचित्तेन पौरिण कृतवीक्षणम् । विवेश नगरं सीता लक्ष्मीरिव सुरालयम् ॥१९॥
 उद्यानेन परिक्षिप्तं दीर्घिकाकृतमण्डनम् । मेरुकूटसमाकारं बलदेवसमच्छविम् ॥२०॥
 वज्रजङ्घमुहान्तस्थं प्रासादमतिसुन्दरम् । पूज्यमाना नृपक्षीभिः प्रविष्टा जनकारमजा ॥२१॥
 विभ्रता परमं तोषं वज्रत्रङ्गेन सूरिणा । भ्रात्रा भामण्डलेनेव पूज्यमाना सुचेतसा ॥२२॥
 जय जीवाभिनन्देति वर्द्धस्वाऽऽज्ञापयेति च । ईशाने देवते पूज्ये स्वामिनीति च शब्दिता ॥२३॥
 आज्ञां प्रतीच्छता मूर्ध्ना सम्भ्रमं द्रवता परम् । प्रवद्धाङ्गलिना सार्द्धं परिवर्गेण चारुणा ॥२४॥
 अवसत्तत्र वैदेही समुद्भूतमनीषिता । कथाभिर्धर्मसक्ताभिः पद्मभूमिश्च सन्ततम् ॥२५॥
 प्राभृतं यावदायाति सामन्तेभ्यो महीपतेः । दत्तेन तेन वैदेही धर्मकार्यमसेवत ॥२६॥
 असावपि कृतान्तास्थस्तप्यमानमना भृशम् । स्थूरीपृष्ठान् परिश्रान्तान् खेदवाननुपालयन् ॥२७॥

तोरण खड़े किये गये, द्वारों पर जलसे भरे तथा मुखों पर पल्लवोंसे सुशोभित कलश रखे गये ॥१४॥ जो फहराती हुई ध्वजाओं और मालाओंसे सहित था, तथा जहाँ शुभ शब्द हो रहा था ऐसा वह नगर आनन्द-विभोर हो मानो नृत्य करनेके लिए ही तत्पर था ॥१५॥ गोपुरके साथ साथ जिसपर बहुत भारी लोग चढ़कर बैठे हुए थे ऐसा नगरका कोट इस प्रकार जान पड़ता था मानो हर्षके कारण कोलाहल करता हुआ परम वृद्धिको ही प्राप्त हो गया हो ॥१६॥ भीतः बाहर सब जगह सीताके दर्शनकी इच्छा करनेवाले चलते-फिरते जन-समूहसे उस नगरका प्रत्येक स्थान ऐसा जान पड़ता था मानो जंगमपत्ताको ही प्राप्त हो गया हो अर्थात् चलने-फिरने लगा हो ॥१७॥

तदनन्तर शङ्खोंके शब्दसे मिश्रित, एवं बन्दीजनोंके विरदगानसे मल्ल नाना प्रकारके बादियोंका शब्द जब दिग्दिगन्तकी व्याप्त कर रहा था तब सीताने नगरमें प्रवेश किया जिस तरह कि लक्ष्मी स्वर्गमें प्रवेश करती है । उस समय आश्चर्यसे जिनका चित्त व्याप्त हो रहा था ऐसे नगरवासी लोग सीताका बार-बार दर्शन कर रहे थे ॥१८-१९॥ तत्पश्चात् जो उद्यानसे घिरा हुआ था, वापिकाओंसे अलंकृत था, मेरुके शिखरके समान ऊँचा था और बलदेवकी कान्तिके समान सफेद था ऐसे वज्रजङ्घके घरके समीप स्थित अत्यन्त सुन्दर महलमें राजाकी स्त्रियोंसे पूजित होती हुई सीताने प्रवेश किया ॥२०-२१॥ वहाँ परम सन्तोषको धारण करनेवाला, बुद्धिमान एवं उत्तम हृदयका धारक राजा वज्रजङ्घ, भाई भामण्डलके समान जिसकी पूजा करता था ॥२२॥ 'हे ईशाने ! हे देवते ! हे पूज्ये ! हे स्वामिनि ! तुम्हारी जय हो, जीवित रहो, आनन्दित होओ, बढ़ती रहो और आज्ञा देओ, इस प्रकार जिसका निरन्तर विरदगान होता रहता था ॥२३॥ परम संभ्रमके धारक, हाथ जोड़, मस्तक भुका आज्ञा प्राप्त करनेके इच्छुक सुन्दर परिजन सदा जिसके साथ रहते थे, तथा इच्छा करते ही जिसके मनोरथ पूर्ण होते थे ऐसी सीता वहाँ निरन्तर धर्म सम्बन्धी तथा राम सम्बन्धी कथाएँ करती हुई निवास करती थी ॥२४-२५॥ राजा वज्रजङ्घके पास सामन्तों की ओरसे जितनी भेंट आती थी वह सब सीताके लिए दे देता था और उसीसे वह धर्मकार्यका सेवन करती थी ॥२६॥

अथानन्तर जिसका मन अत्यन्त सन्तप्त हो रहा था, जो अत्यधिक खेदसे युक्त था, जो

१. कृतान्तवक्त्रसेनापतिः ।

समन्तानृपलोकेन पूर्यमाणस्वरावता । जगाम रामदेवस्य समीपं विनताननः ॥२८॥
 अवर्षीच प्रभो ! सीता गर्भमात्रसहायिका । मया त्वद्वचनाद्गामे कान्तारे स्थापिता नृप ॥२९॥
 नानातिघोरनिःस्वानश्वपदौघनिषेविते । वेतालाकारदुःप्रेक्षदुमजालान्धकारिते ॥३०॥
 निसर्गद्वेषसंसक्तयुद्धवाग्रमहिषाधिके । निबद्धदुन्दुभिध्वाने मरुता कोटरभ्रिता ॥३१॥
 कन्दरोदरसमृच्छासिंहनादप्रतिध्वनौ । दारुक्रकचजस्वानर्भामसुसशयुस्वने ॥३२॥
 'तृष्यत्तरिक्षुविश्वस्तसारङ्गास्तपुस्तिके' । धातकीस्तवकालेहिशोणिताशङ्किसिंहके ॥३३॥
 कृतान्तस्यापि भीभारसमुद्भवनपण्डिते । अरण्ये देव त्वद्वाक्याद्देही रहिता मया ॥३४॥
 अश्रुदुर्दिनवक्त्राया दीपिताया महाशुचा । सन्देशं देव सीताया निबोध कथयाम्यहम् ॥३५॥
 स्वामाह मैथिली देवी यदीच्छस्यात्मने हितम् । जिनेन्द्रे मा सुचो भक्तिं यथा त्यक्ताऽहमीदृशी ॥३६॥
 स्नेहानुरागसंसक्तो मानी यो मां विमुञ्चति । नूनं जिनेऽप्यसौ भक्तिं परित्यजति पाथिवः ॥३७॥
 वाग्ध्वली यस्य यत् किञ्चित् परिवादं जनः खलुः । अविचार्यं वदत्येव तद्विचार्यं मनोपिणा ॥३८॥
 निर्दोषाया जनो दोषं न तथा मम भाषते । यथा सद्धर्मरत्नस्य सम्यग्बोधबहिःकृतः ॥३९॥
 को दोषो यदहं त्यक्ता भीषणे विजने वने । सम्यग्दर्शनसंशुद्धिं राम न त्यक्तुमर्हसि ॥४०॥

थके हुए घोड़ोंको विश्राम देनेवाला था और जिसे शीघ्रता करनेवाले राजाओंने सब ओरसे घेर लिया था ऐसा कृतान्तवक्त्र सेनापति, मुखको नीचा किये हुए श्रीरामदेवके समीप गया ॥२७-२८॥ और बोला कि हे प्रभो ! हे राजन् ! आपके कहनेसे मैं एक गर्भ ही जिसका सहायक था ऐसी सीताको भयंकर वनमें ठहरा आया हूँ ॥२९॥ हे देव ! आपके कहनेसे मैं सीताको उस वनमें छोड़ आया हूँ जो नाना प्रकारके अत्यन्त भयंकर शब्द करनेवाले वन्य पशुओंके समूहसे सेवित है, वेतालोंका आकार धारण करनेवाले दुर्दृश्य वृक्षोंके समूहसे जहाँ घोर अन्धकार व्याप्त है, जहाँ स्वाभाविक द्वेषसे निरन्तर युद्ध करनेवाले व्याघ्र और जंगली भैंसा अधिक हैं, जहाँ कोटरमें टकरानेवाली वायुसे निरन्तर दुन्दुभिका शब्द होता रहता है, जहाँ गुफाओंके भीतर सिंहोंके शब्दकी प्रतिध्वनि बढ़ती रहती है, जहाँ सोये हुए अजगरोंका शब्द लकड़ीपर चलनेवाली करोंतसे उत्पन्न शब्दके समान भयंकर है, जहाँ प्यासे भेड़ियोंके द्वारा हरिणोंके लटकते हुए पोते नष्ट कर डाले गये हैं । जहाँ रुधिरकी आशंका करनेवाले सिंह धातकी वृक्षके गुच्छोंको चाटते रहते हैं और जो यमराजके लिए भी भयका समूह उत्पन्न करनेमें निपुण है ॥३०-३४॥ हे देव ! जिसका मुख अश्रुओंकी वर्षासे दुर्दिनके समान हो रहा था तथा जो महाशोकसे अत्यन्त प्रञ्जलित थी ऐसा सीताका संदेश मैं कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ सीता देवीने आपसे कहा है कि यदि अपना हित चाहते हों तो जिस प्रकार मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार जिनेन्द्रदेवमें भक्तिको नहीं छोड़ना ॥३६॥ स्नेह तथा अनुरागसे युक्त जो मानी राजा मुझे छोड़ सकता है निश्चय ही वह जिनेन्द्रदेवमें भक्ति भी छोड़ सकता है ॥३७॥ वचन बलको धारण करनेवाला दुष्ट मनुष्य विना विचारे चाहे जिसके विषयमें चाहे जो निन्दाकी बात कह देता है परन्तु बुद्धिमान् मनुष्यको उसका विचार करना चाहिए ॥३८॥ साधारण मनुष्य मुझ निर्दोषके दोष उस प्रकार नहीं कहते जिस प्रकार कि सम्यग्ज्ञानसे रहित मनुष्य सद्धर्म रूपी रत्नके दोष कहते फिरते हैं । भावार्थ—दूसरेके कहनेसे जिस प्रकार आपने मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार सद्धर्म रूपी रत्नको नहीं छोड़ देना क्योंकि मेरी अपेक्षा सद्धर्म रूपी रत्नकी निन्दा करनेवाले अधिक हैं ॥३९॥ हे राम ! आपने मुझे भयंकर निर्जन वनमें छोड़ दिया है सो इसमें क्या दोष है ? परन्तु इस तरह

१. गर्भमात्रं सहायो यस्या सा । २. दारुकीचकनिःस्वान व० । ३. शयुरजगरः । ४. नृत्यत्तरिक्षु म० ।

५. पुत्रिके म०, ख० ।

एतदेकभवे दुःखं त्रियुक्तय मया सह । सम्यग्दर्शनहानी तु दुःख जन्मनि जन्मनि ॥४१॥
 नरस्य सुलभं लोके निधिर्वावाहनादिकम् । सम्यग्दर्शनरत्नं तु साम्राज्यादपि दुर्लभम् ॥४२॥
 राज्ये विधाय पापानि पतनं नरके ध्रुवम् । ऊर्ध्वं गमनमेकेन सम्यग्दर्शननेजसा ॥४३॥
 सम्यग्दर्शनरत्नेन यस्याऽपि कृतभूषणः । लोकद्वितीयमप्यस्य कृतार्थस्वमुपारनुते ॥४४॥
 सन्दिष्टमिति जानन्त्या स्नेहनिर्भरचित्तया । श्रुत्वा कस्य न वीरस्य जायते मतिरुत्तमा ॥४५॥
 स्वभावान्नीहका भीरुभीष्यमाणा सुभाहभिः । विभीषिकाभिहमाभिर्भीमाभिः पौंस्तिनोऽप्यलम् ॥४६॥
 भासुरोग्रमहाव्यालज्वालकालभयङ्करे । सामिशुकसरोमज्जच्छुःकुर्वन्मत्तवारणे ॥४७॥
 कर्कशुकण्टकाशिलष्टपुच्छार्त्तचमरावले । अर्लाकसलिलश्रद्धाढांकमानाकुलैणके ॥४८॥
 कपिकच्छूरजःसङ्गनितान्तचलमकंठे । प्रलम्बकेसरच्छन्नवक्त्रविक्रन्देदृक्के ॥४९॥
 तृष्णातुरगुक्रामलसदसनपल्लवे । गुह्याकोशीस्फुटाच्छोडताडनक्रुद्धभोगिनि ॥५०॥
 परुषानिलसञ्चारकरकन्दश्रिताङ्घ्रिषे । क्षणसम्भूतवानूलसमुद्धतरजोदले ॥५१॥
 महाजगरसञ्चारचूर्णितानेकपादपे । उद्धृत्तमत्तनागेन्द्रध्वस्तर्भीमासुयारिणि ॥५२॥
 वराहवाहिनीखातसरःक्रोडमुकर्कशे । कण्टकावटवल्मीककूटसङ्कटभूतले ॥५३॥
 शुकपुष्पद्रवोत्ताम्यद्वाग्यद्गर्तगर्मुति^१ । कुण्डलिलनिर्मुक्तसूचीशतकरालिते ॥५४॥

आप सम्यग्दर्शनको शुद्धताको छोड़नेके योग्य नहीं हैं ॥४०॥ क्योंकि मेरे साथ वियोगको प्राप्त हुए आपको इसी एक भयमें दुःख होगा परन्तु सम्यग्दर्शनके छूट जाने पर तो भय-भयमें दुःख होगा ॥४१॥ संसारमें मनुष्यको खजाना स्त्री तथा वाहन आदिका मिलना सुलभ है परन्तु सम्यग्दर्शन रूपी रत्न साम्राज्यसे भी कहीं अधिक दुर्लभ है ॥४२॥ राज्यमें पाप करनेसे मनुष्यका नियमसे नरकमें पतन होता है परन्तु उसी राज्यमें यदि सम्यग्दर्शन साथ रहता है तो एक उसीके तेजसे ऊर्ध्वगमन होता है—स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥४३॥ जिसकी आत्मा सम्यग्दर्शन रूपी रत्नसे अलंकृत है । उसके दोनों लोक कृतकृत्यताको प्राप्त होते हैं ॥४४॥ इस प्रकार स्नेह पूर्ण चित्तको धारण करनेवाली सीताने जो संदेश दिया है उसे सुनकर किस वीरके उत्तम बुद्धि उत्पन्न नहीं होती ? ॥४५॥ जो स्वभावसे ही भीरु है यदि उसे दूसरे भय उत्पन्न कराते हैं तो उसके भीरु होनेमें क्या आश्चर्य ? परन्तु उग्र एवं भयंकर विभीषिकाओंसे तो पुरुष भी भयभीत हो जाते हैं । भावार्थ—जो भयंकर विभीषिकाएँ स्वभाव-भीरु सीताको प्राप्त हैं वे पुरुषको भी प्राप्त न हों ॥४६॥

हे देव ! जो अत्यन्त देदीप्यमान—दुष्ट हिंसक जन्तुओंके समूहसे यमराजको भी भय उत्पन्न करनेवाला है, जहाँ अर्ध शुष्क तालाबकी दल-दलमें फँसे हाथी शूत्कार कर रहे हैं, जहाँ बेरीके काँटोंमें पूँछके उलझ जानेसे सुरा गायोंका समूह दुःखी हो रहा है, जहाँ मृगमरीचिमें जलकी श्रद्धासे दौड़नेवाले हरिणोंके समूह व्याकुल हो रहे हैं, जहाँ करेचकी रजके संगसे वानर अत्यन्त चञ्चल हो उठे हैं, जहाँ लम्बी-लम्बी जटाओंसे मुख ढँक जानेके कारण रीछ चिल्ला रहे हैं, जहाँ प्याससे पीड़ित भेड़ियोंके समूह अपनी जिह्वा रूपी पल्लवोंको बाहर निकाल रहे हैं, जहाँ गुमचीकी फलियोंके चटकने तथा उनके दाने ऊपर पड़नेसे साँप कुपित हो रहे हैं, जहाँ वृक्षांका आश्रय लेनेवाले जन्तु, तीव्र वायुके संचारसे 'कहीं वृक्ष टूट कर ऊपर न गिर पड़े, इस भयसे कर क्रन्दन कर रहे हैं, जहाँ क्षण एकमें उत्पन्न वधरूलेमें धूल और पत्तोंके समूह एकदम उड़ने लगते हैं, जहाँ बड़े-बड़े अजगरोंके संचारसे अनेक वृक्ष चूर चूर हो गये हैं, जहाँ उड़ण्ड मदीन्मत्त हाथियोंके द्वारा भयंकर प्राणी नष्ट कर दिये गये हैं, जो सूकरोंके समूहसे खोदे गये तालाबोंके मध्य भाग से कठोर है, जहाँका भूतल काँटे, गड्ढे, वयाठे और मिट्टीके टीलोंसे व्याप्त है, जहाँ फूलोंका रस

१. कन्दवृक्षके म० । २. ध्वनि -म० । ३. गर्भुत् भ्रमरः श्री० टि० । ४. कुण्डा सलिल -म० ।

एधंविधे महारण्ये रहिता देव जानकी । मन्ये न क्षणमप्येकं प्राणान् धारयितुं क्षमा ॥५५॥
 ततः सेनापतेर्वाक्यं श्रुत्वा रौद्रमरेरपि । विषादमगमद्रामस्तेनैव विदिताःसकम् ॥५६॥
 अचिन्तयत् किं न्वेतस्त्रलत्राक्यवशात्माना । मयका मूढचित्तेन कृतमत्यन्तनिन्दितम् ॥५७॥
 तादृशी राजपुत्री क्व क्व चेदं दुःखमीदृशम् । इति सन्नित्य यातोऽऽसौ मूच्छां मुकुलितेक्षणः ॥५८॥
 चिराच्च प्रतिकारेण प्राण्य संज्ञां सुदुःखितः । विप्रलापं परं चक्रे दयितागतमानसः ॥५९॥
 हा त्रिवर्णसरोजाश्चि हा विशुद्धगुणाम्बुधे । हा चवत्रजिततारेशे हा पद्मान्तरकोमले ॥६०॥
 अथि वैदेहि वैदेहि देहि देहि वचो द्रुतम् । जानास्येव हि मे चित्तं त्वदतेऽत्यन्तकातरम् ॥६१॥
 उपमानविनिर्मुक्तशीलधारिणिं हारिणि । हितप्रियसमालापे पापवजितमानसे ॥६२॥
 अपराधविनिर्मुक्ता निर्धुणेन मयोऽिभक्ता । प्रतिपन्नाऽसि कामाशां मम मानसवासिनि ॥६३॥
 महाप्रतिभयेऽरण्ये क्रूरश्वापदसङ्घटे । कथं तिष्ठसि सन्यक्ता देवि भोगविवर्जिता ॥६४॥
 मदासकषकोराश्चि लावण्यजलदीर्घिके । त्रपाविनयसम्पन्ने हा देवि क्व गतासि मे ॥६५॥
 निःश्वासाऽऽमोदजालेन बद्धान् ऋङ्कारसङ्गतान् । वारयन्ती कराब्जेन भ्रमरान् खेदमाप्स्यसि ॥६६॥
 क्व यास्यसि विचेतस्का यूथभ्रष्टा मृगी यथा । एकाकिनी वने भीमे चिन्तितेऽपि सुदुःसहे ॥६७॥
 अञ्जगर्भमृद् कान्तौ पादुकौ चारुलक्ष्मणौ । कथं तव सहिष्येते सङ्गं कर्कशया भुवा ॥६८॥

सूख जानेसे घामसे पीड़ित भौरे छटपटाते हुए इधर-उधर उड़ रहे हैं और जो क्रुपित सेहियोंके द्वारा छोड़े हुए काँटोंसे भयंकर है ऐसे महावनमें छोड़ी हुई सीता लक्ष्मण भी प्राण धारण करनेके लिए समर्थ नहीं है ऐसा मैं समझता हूँ ॥४७-४९॥

तदनन्तर जो शत्रुसे भी अधिक कठोर थे ऐसे सेनापतिके वचन सुनकर राम विषादको प्राप्त हुए और तनेसे ही उन्हें अपने आपका बोध हो गया—अपनी त्रुटि अनुभवमें आ गई ॥५६॥ वे विचार करने लगे कि मुझ मूर्ख हृदयने दुर्जनोंके वचनोंके वशीभूत हो यह अत्यन्त निन्दित कार्य क्यों कर डाला ? ॥५७॥ कहाँ वह वैसी राजपुत्री ? और कहाँ यह ऐसा दुःख ? इस प्रकार विचार कर राम नेत्र बन्द कर मूर्छित हो गये ॥५८॥ तदनन्तर जिनका हृदय स्त्रीमें लग रहा था ऐसे राम उपाय करनेसे चिरकाल बाद सचेत हो अत्यन्त दुखी होते हुए परम विलाप करने लगे ॥५९॥ वे कहने लगे कि हाय सीते ! तेरे नेत्र तीन रङ्गके कमलके समान हैं, तू निर्मल गुणों का सागर है, तूने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया है, तू कमलके भीतरी भागके समान कोमल है ॥६०॥ हे वैदेहि ! हे वैदेहि ! शीघ्र ही वचन देओ । यह तो तू जानती ही है कि मेरा हृदय तेरे बिना अत्यन्त कातर है ॥६१॥ तू अनुपम शीलको धारण करने वाली है, सुन्दरी है, तेरा वार्तालाप हितकारी तथा प्रिय है । तेरा मन पापसे रहित है ॥६२॥ तू अपराधसे रहित थी फिर भी निर्दय होकर मैंने तुम्हे छोड़ दिया । हे मेरे हृदयमें वास करने वाली ! तू किस दशा को प्राप्त हुई होगी ? ॥६३॥ हे देवि ! महाभयदायक एवं दुष्ट वन्य पशुओंसे भरे हुए वनमें छोड़ी गई तू भोगोंसे रहित हो किस प्रकार रहेगी ? ॥६४॥ तेरे नेत्र मदोन्मत्त चकोरके समान हैं, तू सौन्दर्य रूपी जलकी वापिका है, लज्जा और विनयसे सम्पन्न है । हाय मेरी देवि ! तू कहाँ गई ? ॥६५॥ हाय देवि ! श्वासोच्छ्वासकी सुगन्धिसे भ्रमर तेरे मुखके समीप इकट्ठे होकर भंकार करते होंगे उन्हें कर कमलसे दूर हटाती हुई तू अवश्य ही खेदको प्राप्त होगी ॥६६॥ जो विचार करने पर भी अत्यन्त दुःसह है ऐसे भयंकर वनमें भुण्डसे बिलुड़ी मृगीके समान तू अकेली शून्य हृदय हो कहाँ जायगी ? ॥६७॥ कमलके भीतरी भागके समान कोमल एवं सुन्दर लक्ष्णोंसे युक्त

कृत्याकृत्यविवेकेन सुदूरं मुक्तमानसैः । गृहीता किमसि म्लेच्छैः पत्नीं नीता ह्युभीषणाम् ॥६१॥
 पूर्वादिपि प्रिये दुःखादिदं दुःखमनुत्तमम् । प्राप्तासि साध्वि कान्तारे दारुणेन भयोद्विक्ता ॥७०॥
 रात्रौ तमसि निर्भये सुता खिलशरीरिका । वनरेणुपरीताङ्गा किमाक्रान्ताऽसि हस्तिना ॥७१॥
 गृध्रर्षभङ्गगोमायुशशोल्कसमाकुले । निर्माणे परमारण्ये ध्रियसे दुःखिता कथम् ॥७२॥
 दंष्ट्राकरालवक्त्रेण धृताङ्गेन महाक्षुधा । किं व्याघ्रेणोपनीताऽसि प्रियेऽत्रस्थामशब्दिताम् ॥७३॥
 किं वा विलोलजिह्वेन विलसत्केसरालिना । सिंहेनास्यथवा सत्त्वशाली को योषितीदृशः ॥७४॥
 उवालाकलापिनोत्तुङ्गपादपाभावकारिणा । दावेन किन्नु नीताऽसि देव्यवस्थामशोभनाम् ॥७५॥
 अथवा ज्योतिरोशस्य करैस्त्यन्तदुःसहैः । जन्तुधर्मं किमाप्ताऽसि ह्यायासर्पणविह्वला ॥७६॥
 नृशंसेऽपि मयि स्वान्तं कृत्वा शोभनशालिका । विदीर्णहृदया किन्नु मर्त्यधर्मसमाश्रिता ॥७७॥
 वातिरत्नजटिभ्यां मे सदृशः को नु साम्प्रतम् । प्रापयिष्यति सांताया वार्तां कुशलशंसिनीम् ॥७८॥
 हा प्रिये हा महाशीले हा मनस्विनि हा शुभे । क्व तिष्ठसि क्व याताऽसि किं करोषि न वेरिसि किम् ॥७९॥
 अहो कृतान्तवक्त्रासौ सत्यमेव त्वया प्रिया । त्यक्तातिदारुणेऽरण्ये कथमेवं करिष्यसि ॥८०॥
 ब्रूहि ब्रूहि न सा कान्ता त्यक्ता तव मयेतरम् । वक्त्रेणानेन चन्द्रेण चरतेवामृतोत्करम् ॥८१॥
 इत्युक्तोऽपत्रपाभारन्तवक्त्रो गतप्रभः । प्रतिपत्तिविनिर्मुक्तः सेनानीराकुलोऽभवत् ॥८२॥

तेरे पैर कठोर भूमिके साथ समागमको किस प्रकार सहन करेंगे ? ॥६८॥ अथवा जिनका मन, कृत्य और अकृत्यके विवेकसे बिलकुल ही रहित है ऐसे म्लेच्छ लोग तुम्हें पकड़ कर अत्यन्त भयंकर पक्षीमें ले गये होंगे ॥६९॥ हे प्रिये ! हे साध्वि ! मुझ दुष्टने तुम्हें वनमें छोड़ा है अतः अबकी बार पहले दुःखसे भी कहीं अधिक दुःखको प्राप्त हुई है ॥७०॥ अथवा तू खेदखिन्न एवं वनकी धूलीसे व्याप्त हो रात्रिके सघन अन्धकारमें सो रही होगी सो तुम्हें हाथीने दबा दिया होगा ॥७१॥ जो गीध रोद्ध भातू शृगाल खरगोश और उल्लुओंसे व्याप्त है तथा जहाँ मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता ऐसे बीहड़ वनमें दुखी होती हुई तू कैसे रहेगी ? ॥७२॥ अथवा हे प्रिये ! जिसका मुख दाढ़ीसे भयंकर है, अंगड़ाई लेनेसे जिसका शरीर कम्पित है तथा जो तीव्र भूखसे युक्त है ऐसे किसी व्याघ्रने तुम्हें शब्दागोचर अवस्थाको प्राप्त करा दिया है ? ॥७३॥ अथवा जिसकी जिह्वा लप-लपा रही है और जिसकी गरदनके बालोंका समूह सुशोभित है ऐसे किसी सिंहने तुम्हें शब्दातीत दशाको प्राप्त करा दिया है क्योंकि ऐसा कौन है जो स्त्रियोंके विषयमें शक्ति-शाली न हो ? ॥७४॥ अथवा हे देवि ! उवालाओंके समूहसे युक्त, तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंका अभाव करने वाले दावानलके द्वारा तू क्या अशोभन अवस्थाको प्राप्त कराई गई है ? ॥७५॥ अथवा तू ह्यायामें जाने के लिए असमर्थ रही होगी इसलिए क्या सूर्यकी अत्यन्त दुःसह किरणोंसे मरणको प्राप्त हो गई है ॥७६॥ अथवा तू प्रशस्त शीलकी धारक थी और मैं अत्यन्त क्रूर प्रकृतिका था । फिर भी तुने मुझमें अपना चित्त लगाया । क्या इसी असमञ्जसभावसे तेरा हृदय विदीर्ण हो गया होगा और तू मृत्युको प्राप्त हुई होगी ॥७७॥ हनुमान् और रत्नजटीके समान इस समय कौन है ? जो सीताकी कुशल वार्ता प्राप्त करा देगा ? ॥७८॥ हा प्रिये ! हा महाशीलवति ! हा मनस्विनि ! हा शुभे ! तू कहाँ है ? कहाँ चली गई ? क्या कर रही है । क्या कुल भी नहीं जानती ? ॥७९॥ अहो कृतान्तवक्त्र ! क्या सचमुच ही तुमने प्रियाको अत्यन्त भयानक वनमें छोड़ दिया है ? नहीं नहीं तुम ऐसा कैसे करोगे ? ॥८०॥ इस मुखचन्द्रसे अमृतके समूहको झराते हुएके समान तुम कदो-कदो कि मैंने तुम्हारी उस कान्ताको नहीं छोड़ा है ॥८१॥ इस प्रकार कहने पर लज्जाके भारसे जिसका मुख नीचा हो गया था, जिसकी प्रभा समाप्त हो गई थी, और जो स्वीकृतिसे रहित था ऐसा

१. के योषितीदृशी व० । किं योषितीदृशः म० ।

स्थिते निर्वचने तस्मिन् ध्यात्वा सीतां सुदुःखिताम् । पुनर्मूर्च्छां गतो रामः कृच्छ्रासंज्ञां च लम्बितः ॥८३॥
लक्ष्मणोऽत्रान्तरे प्राप्तो जगादान्तःशुचं स्पृशन् । आकुलोऽसि किमित्येवं देव धैर्यं समाश्रय ॥८४॥
फलं पूर्वाजितस्वेदं कर्मणः समुपामतम् । सकलस्यापि लोकस्य राजपुत्र्या न केवलम् ॥८५॥
प्राप्तव्यं येन यज्ञोके दुःखं कल्याणमेव वा । स तं स्वयमवाप्नोति कुतश्चिद्ध्यपदेशतः ॥८६॥
आकाशमपि नीतः सन् वनं वा श्वापदाकुलम् । मूर्धानं वा महीध्रस्य पुण्येन स्वेन रचयते ॥८७॥
देव सीतापरित्यागश्रवणाद्भरतावनौ । अकरोदास्पदं दुःखं प्राकृतीशमनःस्वपि ॥८८॥
प्रजानां दुःखतप्तानां विलीनानां समन्ततः । अश्रुधारापदेशेन हृदयं न्यंगलञ्चिव ॥८९॥
परिदेवनमेवं च चक्रेऽत्यन्तसमाकुलः । हिमाहतप्रभाम्भोजखण्डसम्मिमतवक्त्रकः ॥९०॥
हा दुष्टजनवाक्याग्निप्रदीपितशरीरिके । गुणसस्यसमुद्भूतिभूमिभूतसुभावने ॥९१॥
राजपुत्रि वव याताऽसि सुकुमाराङ्घ्रिपञ्चवे । शीलाद्विधरणक्षोणि सीते सौम्ये मनस्विनि ॥९२॥
खलवाक्यतुषारेण मातः पश्य समन्ततः । गुणराट् विसिनी दग्धा राजहंसनिषेविता ॥९३॥
सुभद्रासदृशी भद्रा सर्वावारविचक्षणा । सुखासिकेव लोकस्य मूर्त्ता कासि वरे गता ॥९४॥
मास्करेण विना का द्यौः का निशा शशिना विना । स्त्रीरत्नेन विना तेन साकेता वाऽपि कीदृशी ॥९५॥

सेनापति व्याकुल हो गया ॥८२॥ जब कृतान्तवक्त्र चुप खड़ा रहा तब अत्यन्त दुःखसे युक्त सीता का ध्यान कर राम पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये और बड़ी कठिनाईसे सचेत किये गये ॥८३॥

इसी बीचमें लक्ष्मणने आकर हृदयमें शोक धारण करनेवाले रामका स्पर्श करते हुए कहा कि हे देव ! इस तरह व्याकुल क्यों होते हो ? धैर्य धारण करो ॥८४॥ यह पूर्वोपार्जित कर्मका फल समस्त लोकको प्राप्त हुआ है न केवल राजपुत्रीको ही ॥८५॥ संसारमें जिसे जो दुःख अथवा सुख प्राप्त करना है वह उसे किसी निमित्तसे स्वयमेव प्राप्त करता है ॥८६॥ यह प्राणी चाहे आकाशमें ले जाया जाय, चाहे वन्य पशुओंसे व्याप्त वनमें ले जाया जाय और चाहे पर्वतकी चोटी पर ले जाया जाय सर्वत्र अपने पुण्यसे ही रक्षित होता है ॥८७॥ हे देव ! सीताके परित्यागका समाचार सुनकर इस भरतक्षेत्रकी समस्त वसुधामें साधारणसे साधारण मनुष्योंके भी मनमें दुःखने अपना स्थान कर लिया है ॥८८॥ दुःखसे संतप्त एवं सब ओरसे द्रवीभूत प्रजा-जनोंके हृदय अश्रुधाराके बहाने मानो गल-गलकर बह रहे हैं ॥८९॥ रामसे इतना कहकर अत्यन्त व्याकुल हो लक्ष्मण स्वयं विलाप करने लगे और उनका मुख हिमसे ताडित कमल-वनके समान निष्प्रभ हो गया ॥९०॥ वे कहने लगे कि हाय सीते ! तेरा शरीर दुष्टजनोंके वचन रूपी अग्निसे प्रज्वलित हो रहा है, तू गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए भूमि स्वरूप है तथा उत्तम भावनासे युक्त है ॥९१॥ हे राजपुत्रि ! तू कहाँ गई ? तेरे चरण-किसलय अत्यन्त सुकुमार थे ? तू शील रूपी पर्वतकी धारण करनेके लिए पृथिवी रूप थी, हे सीते ! तू बड़ी ही सौम्य और मनस्विनी थी ॥९२॥ हे मातः ! देख, दुष्ट मनुष्योंके वचनरूपी तुषारसे गुणोंसे सुशोभित तथा राजहंसोंसे निषेवित यह कमलिनी सब ओरसे दग्ध हो गई है । भावार्थ—यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा विसिनी शब्दसे सीताका उल्लेख किया गया है । जिस प्रकार कमलिनी गुण अर्थात् तन्तुओंसे सुशोभित होती है उसी प्रकार सीता भी गुण अर्थात् दया दाक्षिण्य आदि गुणोंसे सुशोभित थी और जिस प्रकार कमलिनी राजहंस पक्षियोंसे सेवित होती है उसी प्रकार सीता भी राजहंस अर्थात् राजशिरोमणि रामचन्द्रसे सेवित थी ॥९३॥ हे उत्तमे ! तू सुभद्राके समान भद्र और सर्व आचारके पालन करनेमें निपुण थी तथा समस्त लोककी मूर्तिधारिणी सुख स्थिति स्वरूप थी । तू कहाँ गई ? ॥९४॥ सूर्यके विना आकाश क्या ? और चन्द्रमाके विना रात्रि क्या ? उसी प्रकार उस स्त्रीरत्नके विना अयोध्या कैसी ? भावार्थ—जिस प्रकार सूर्यके विना आकाशकी और

वेणुबीणामृद्गङ्गादिनिःस्वानपरिवर्जिता । नगरी देव सञ्जाता करुणाक्रन्दपूरिता ॥६६॥
 रथ्यासुधानदेशेषु कान्तारेषु सरित्सु च । त्रिकचत्वरभागेषु भवनेष्वापणेषु च ॥६७॥
 सन्तताभिषतन्तीभिरश्रुधाराभिरुद्गतः । पङ्कः समस्तलोकस्य घनकालभवोपमः ॥६८॥
 वाष्पगद्गदया वाचा कृच्छ्रेण समुदाहरन् । गुणप्रसूनवर्षेण परोक्षामपि जानकीम् ॥६९॥
 पूजयत्यखिलो लोकस्तदेकगतमानसः । सा हि सर्वसतीमूर्ध्नि पदं चक्रे गुणोज्ज्वला ॥१००॥
 समुत्कण्ठापराधीनैः स्वयं देव्याऽनुपालितैः । ल्लेकैरपि परं दीनं रुदितं धूतविग्रहैः ॥१०१॥
 तदेवं गुणसम्बन्धसमस्तजनचेतसः । कृते कस्य न जानक्या वर्तते शुगनुत्तरा ॥१०२॥
 किन्तु कोविद् नोपायः पश्चात्तापो मनीषिते । इति सञ्चिन्त्य धीरस्वमवलम्बितुमर्हसि ॥१०३॥
 इति लक्ष्मणवाक्येन पद्मनाभः प्रसादितः । शोकं किञ्चित्परित्यज्य कर्तव्ये निदधे मनः ॥१०४॥
 प्रेतकर्मणि जानक्याः सादरं जनमादिशत् । द्वाग् भद्रकलशं चैव समाहाय जगविति ॥१०५॥
 समादिष्टोऽसि वैदेह्या पूर्वं भद्रं यथाविधम् । तेनैव विधिना दानं तामुद्दिश्य प्रदीयताम् ॥१०६॥
 यथाऽऽज्ञापयसीऽयुक्त्वा कोषाध्यक्षः सुमानसः । अर्थिनामोऽसितं द्रव्यं नवमासानशिश्रणत् ॥१०७॥
 सहस्रैरष्टभिः स्त्रीणां सेव्यमानोऽपि सन्ततम् । वैदेहीं मनसा रामो निमेषमपि नात्यजत् ॥१०८॥
 सीताशब्दमयस्तस्य समालापः सदाऽभवत् । सर्वं ददर्श वैदेहीं तद्गुणाकृष्टमानसः ॥१०९॥
 चित्तिरेणुपरीताङ्गी गिरिगङ्गारवत्तिनीम् । अपश्यजानकीं स्वप्ने नेत्राभ्युक्ततुर्दिनाम् ॥११०॥

चन्द्रमाके विना रात्रिकी शोभा नहीं है उसी प्रकार सीताके विना अयोध्याकी शोभा नहीं है ॥६६॥ हे देव ! समस्त नगरी बाँसुरी वीणा तथा मृद्गङ्गा आदिके शब्दसे रहित तथा करुण क्रन्दनसे पूर्ण हो रही है ॥६६॥ गलियोंमें, बागबगीचोंके प्रदेशोंमें, वनोंमें, नदियोंमें, तिराहों-चौराहोंमें, महलोंमें और बाजारोंमें निरन्तर निकलने वाली समस्त लोगोंकी अश्रुधाराओंसे वर्षा ऋतुके समान कोचड़ उत्पन्न हो गया है ॥६७-६८॥ यद्यपि जानकी परोक्ष हो गई है तथापि उसी एकमें जिसका मन लग रहा है ऐसा समस्त संसार अश्रुसे गद्गद वाणीके द्वारा बड़ी कठिनाईसे उच्चारण करता हुआ गुणरूप फूलोंकी वर्षासे उसकी पूजा करता है सो ठीक ही है क्योंकि गुणोंसे उज्ज्वल रहनेवाली उस जानकीने समस्त सती स्त्रियोंके मस्तक पर स्थान किया था अर्थात् समस्त सतियोंमें शिरोमणि थी ॥६९-१००॥ स्वयं सीतादेवीने जिनका पालन किया था तथा जो उसके अभावमें उत्कण्ठासे विवश हैं ऐसे शुक आदि चतुर पक्षी भी शरीरको कँपाते हुए अत्यन्त दीन रुदन करते रहते हैं ॥१०१॥ इस प्रकार समस्त मनुष्योंके चित्तके साथ जिसके गुणोंका संबन्ध था ऐसी जानकीके लिए किस मनुष्यको भारी शोक नहीं है ? ॥१०२॥ किन्तु हे विद्वन् ! पश्चात्ताप करना इच्छित वस्तुके प्राप्त करनेका उपाय नहीं है ऐसा विचार कर धैर्य धारण करना योग्य है ॥१०३॥ इस प्रकार लक्ष्मणके वचनसे प्रसन्न रामने कुछ शोक छोड़कर कर्तव्य—करने योग्य कार्यमें मन लगाया ॥१०४॥ उन्होंने जानकीके मरणोत्तर कार्यके विषयमें आदर सहित लोगोंको आदेश दिया तथा भद्रकलश नामक खजानचीको शीघ्र ही बुलाकर यह आदेश दिया कि हे भद्र ! सीताने तुझे पहले जिस विधिसे दान देनेका आदेश दिया था उसी विधिसे उसे लक्ष्य कर अब भी दान दिया जाय ॥१०५-१०६॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर शुद्ध हृदयको धारण करनेवाला कोषाध्यक्ष नौ मास तक याचकोंके लिए इच्छित दान देता रहा ॥१०७॥ यद्यपि आठ हजार स्त्रियाँ निरन्तर रामकी सेवा करती थीं तथापि राम पल भरके लिए भी मनसे सीताको नहीं छोड़ते थे ॥१०८॥ उनका सदा सीता शब्द रूप ही समालाप होता था अर्थात् वे सदा 'सीता-सीता' कहते रहते थे और उसके गुणोंसे आकृष्ट चित्त हो सबको सीता रूप ही देखते थे अर्थात् उन्हें सर्वत्र सीता-सीता ही दिखाई देती थी ॥१०९॥ पृथिवीकी धूलिसे जिसका शरीर व्याप्त है, जो पर्वतकी गुफामें वास कर रही है तथा अश्रुओंकी जो लगातार वर्षा कर रही

मनसा च सशल्येन गाढशोको विबुद्धवान् । अचिन्तयत्ससूकारो वाष्पाच्छ्लादितलोचनः ॥१११॥
कष्टं लोकान्तरस्थाऽपि सीता सुन्दरचेष्टिता । न विमुञ्चति मां साध्वी साधुबन्धा हितोद्यता ॥११२॥
स्वैरं स्वैरं ततः सीताशोके विरलतामिते । परिशिष्टवरस्त्रीभिः पद्मो घृतिमुपागमत् ॥११३॥
तौ शीरचक्रदिव्यास्त्रौ परमन्यायसङ्गती । प्रीत्याऽनन्तरया युक्तौ प्रशस्तगुणसागरौ ॥११४॥
पालयन्तौ महीं सम्यङ्निम्नगापतिमेखलाम् । सौवर्मेशानदेवेन्द्राग्नि रजगुरुत्कटम् ॥११५॥

आर्याच्छन्दः

तौ तत्र कोशलायां सुरलोकसमानमानवायां राजन् ।
परमान् प्राप्तौ भोगान् सुप्रभपुरुषोत्तमौ यथा पुरुषेन्द्रौ ॥११६॥
स्वकृतसुकर्मोदयतः सकलजनानन्ददानकोविदचरितौ ।
सुखसागरे निमग्नौ रविभावं ज्ञातकालमव्रतस्थान्ते ॥११७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामशोकामिधानं नाम नवनवतितमं पर्व ॥६६॥

है ऐसी सीताको वे स्वप्नमें देखते थे ॥११०॥ अत्यधिक शोकको धारण करनेवाले राम जब जागते थे तब सशल्य मनसे आंसुओंसे नेत्रोंको आच्छादित करते हुए सू-सू शब्दके साथ चिन्ता करने लगते थे कि अहो ! बड़े कष्टकी बात है कि सुन्दर चेष्टाको धारण करनेवाली सीता लोकान्तरमें स्थित होने पर भी मुझे नहीं छोड़ रही है । वह साध्वी पूर्व संस्कारसे सहित होनेके कारण अब भी मेरा हित करनेमें उद्यत है ॥१११-११२॥ तदनन्तर धीरे-धीरे सीताका शोक विरल होने पर राम अवशिष्ट स्त्रियोंसे धैर्यको प्राप्त हुए ॥११३॥ जो परम न्यायसे सहित थे, अविरल प्रीतिसे युक्त थे, प्रशस्त गुणोंके सागर थे, और समुद्रान्त पृथिवीका अच्छी तरह पालन करते थे ऐसे हल और चक्र नामक दिव्य अस्त्रको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण सौधर्मेन्द्रके समान अत्याधिक सुशोभित होते थे ॥११४-११५॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जहाँ देवोंके समान मनुष्य थे ऐसी उस अयोध्या नगरीमें उत्तम कान्तिको धारण करने वाले दोनों पुरुषोत्तम, इन्द्रोंके समान परम भोगोंको प्राप्त हुए थे ॥११६॥ अपने द्वारा किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे जिनका चरित समस्त मनुष्योंके लिए आनन्द देने वाला था, तथा जो सूर्यके समान कान्ति वाले थे ऐसे राम लक्ष्मण अज्ञात काल तक सुखसागरमें निमग्न रहे ॥११७॥

इसप्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा रचित पद्मपुराणमें रामके शोकका वर्णन करने वाला निन्यानवेवां पर्व समाप्त हुआ ॥६६॥

शतं पर्व

एवं तावदिदं जातमिदमन्यन्नरेश्वर । शृणु वष्यामि तं वृत्तं लवणाङ्कुशगोचरम् ॥१॥
 अथ सर्वप्रजापुण्यैर्गुहाताया इवामलैः । अधस्त पाण्डुतामहयष्टिर्जनकजन्मनः ॥२॥
 श्यामताममवष्टयचारुचुकचूलकैः । पथोधरघटौ पुत्रपानार्थमिव मुद्रितौ ॥३॥
 स्तन्यार्थमानने न्यस्ता दुर्यसिन्धुरिवायता । सुस्निग्धधवला दृष्टिर्माधुर्यमदधास्वरम् ॥४॥
 सर्वमङ्गलसंघातैर्गात्रयष्टिरध्रिष्ठिता । अमन्दायतकल्याणगौरवोद्भवनादिव ॥५॥
 मन्दं मन्दं प्रयच्छन्त्याः क्रमं निर्मलकुट्टिमे । प्रतिविम्बाम्बुजेन चमा पूर्वसेवामित्राकरोत् ॥६॥
 सूतिकाः लकृताकाञ्चा कपोलप्रतिविम्बिता । समलवयत लक्ष्मीर्वा शय्याऽपाश्रयपुत्रिका ॥७॥
 रात्रौ सोपेपयाताया व्यंशुके स्तनमण्डले । श्वेतच्छत्रमित्राधारि सङ्क्रान्तं शशिसण्डलम् ॥८॥
 वासवेश्मनि सुसाया अपि प्रचलवाहुकाः । चित्रचामरवारिण्यश्चामराणि व्यचूनयन् ॥९॥
 स्वप्ने पयाजिनापुत्रपुटवारिभिरादरात् । अभिषेको महानागौरकारि परिमण्डितैः ॥१०॥
 असकृन्नयनिःस्वानं व्रजन्त्याः प्रतिबुद्धताम् । सच्चन्द्रशालिकाशालभञ्जिका अपि चक्रिरे ॥११॥
 परिवारजनाह्वानेष्वदिशति ससम्भ्रमाः । अशरीरा त्रिनिश्चेहर्वावः परमकोमलाः ॥१२॥

अथानन्तर श्री गौतम स्वामी कहते हैं कि हे नरेश्वर ! इसप्रकार यह वृत्तान्त तो रहा अब दूसरा लवणाङ्कुशसे सम्बन्ध रखनेवाला वृत्तान्त कहता हूँ सो सुन ॥१॥ तदनन्तर जनकनन्दिनी-के कृश शरीरने धवलता धारण की, सो ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त प्रजाजनोंके निर्मल पुण्यने उसे ग्रहण किया था, इसलिए उसकी धवलतासे ही उसने धवलता धारण की ही ॥२॥ स्तनोंके सुन्दर चूचुक सम्बन्धी अप्रभाग श्यामवर्णसे युक्त हो गये, सो ऐसे जान पड़ते थे मानो पुत्रके पीनेके लिए स्तनरूपी घट मुहरबन्द करके ही रख दिये हों ॥३॥ उसकी स्नेहपूर्ण धवल दृष्टि उस प्रकार परम माधुर्यको धारण कर रही थी मानो दूधके लिए उसके मुख पर लम्बी-चौड़ी दूधकी नदी ही लाकर रख दी हो ॥४॥ उसकी शरीरयष्टि सब प्रकारके मङ्गलोंके समूहसे युक्त थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो अपरिमित एवं विशाल कल्याणोंका गौरव प्रकट करनेके लिए ही युक्त थी ॥५॥ जब सीता मणिमयी निर्मल फर्सपर धीरे-धीरे पैर रखती थी तब उनका प्रति-विम्ब नीचे पड़ता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो पृथिवी प्रतिरूपी कमलके द्वारा उसकी पहलेसे ही सेवा कर रही हो ॥६॥ प्रसूति कालमें जिसकी आकाञ्चा की जाती है ऐसी जो पुत्तलिका सीताकी शय्याके समीप रखी गई थी उसका प्रतिविम्ब सीताके कपोलमें पड़ता था उससे वह पुत्तलिका लक्ष्मीके समान दिखाई देती थी ॥७॥ रात्रिके समय सीता महलकी छत पर घली जाती थी, उस समय उसके वस्त्र रहित स्तनमण्डल पर जो चन्द्रविम्बका प्रतिविम्ब पड़ता था वह ऐसा जान पड़ता था मानो गर्भके ऊपर सफेद छत्र ही धारण किया गया हो ॥८॥ जिस समय वह निवास-गृहमें सोती थी उस समय भी चञ्चल भुजाओंसे युक्त एवं नाना प्रकारके चमर धारण करनेवाली स्त्रियाँ उसपर चमर ढोरती रहती थी ॥९॥ स्वप्नमें अलंकारोंसे अलंकृत बड़े-बड़े हाथी, कमलनीके पत्रपुटमें रखे हुए जलके द्वारा उसका आदरपूर्वक अभिषेक करते थे ॥१०॥ जब वह जागती थी तब बार-बार जय-जय शब्द होता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो महलके ऊर्ध्व भागमें सुशोभित पुत्तलियाँ ही जय-जय शब्द कर रही हों ॥११॥ जब वह परिवार-के लोगोंको बुलाती थी तब 'आज्ञा देओ' इस प्रकारके संभ्रम सहित शरीर रहित परम कोमल

१. सीतायाः । २. पुटं वारिभि -म० ।

क्रीडयाऽपि कृतं सेहे नाशाभङ्गं मनस्विनी । सुक्षिप्रेष्वपि कार्येषु भूरभ्राम्यत्सविभ्रमम् ॥१३॥
 यथेच्छं विद्यमानेऽपि मगिदर्वणसन्निधौ । मुखमुखातखड्गाग्रे जातं व्यसनमीक्षितुम् ॥१४॥
 समुत्सारितवीणाद्या नारीजनविरोधिनः । श्रोत्रधोरसुखायन्त कार्मुकध्वनयः परम् ॥१५॥
 चक्षुः पञ्जरसिंहेषु जगाम परमां रतिम् । ननाम कथमप्यङ्गमुत्तमं स्तम्भितं यथा ॥१६॥
 पूर्णेश्च नवमे मासि चन्द्रे श्रवणसङ्गते । श्रावणस्य दिने देवी पौर्णमास्यां सुमङ्गला ॥१७॥
 सर्वलक्षणसम्पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना । सुखं सुखकरात्मानमसूत सुतयुग्मकम् ॥१८॥
 नृतमय इवाभूवस्तयोर्द्विगतयोः प्रजाः । भेरीपटहनिःस्वाना जाताः शङ्खस्वनान्विताः ॥१९॥
 उन्मत्तमत्स्यलोकाभश्चारुसम्पत्समन्वितः । स्वस्वप्राप्त्या नरेन्द्रेण जनिः परमोत्सवः ॥२०॥
 अनङ्गलवणाभिरयामेकोऽमण्डयदेतयोः । मदनाङ्कुशनामान्यः सद्भूतार्थनिचोगतः ॥२१॥
 ततः क्रमेण तौ वृद्धि बालकौ ब्रजतस्तदा । जननीहृदयानन्दौ प्रवीरपुरुषाङ्कुरौ ॥२२॥
 रत्नार्थं सर्पकणा विन्यस्ता मस्तके तयोः । समुन्मिपप्रतापविनस्फुलिङ्गा इव रेजिरे ॥२३॥
 वधुर्गोचनापङ्कपञ्जरं परिवारितम् । समभिव्यज्यमानेन सहजेनेव तेजसा ॥२४॥
 विकटा हाडकावद्धवैयाघ्रनखपत्तिका । रेजे दर्पाङ्कुरालीव समुद्भेदमिता हृदि ॥२५॥
 आद्यं जल्पितमव्यक्तं सर्वलोकमनोहरम् । बभूव जन्मपुण्याहः सत्यग्रहणसन्निभम् ॥२६॥
 सुग्रस्मितानि रम्याणि कुसुमानीव सर्वतः । हृदयानि समार्कषन् कुलानीव मधुव्रताम् ॥२७॥

वचन अपने-आप उच्चरित होने लगते थे ॥१२॥ वह मनस्विनी क्रीडामें भी किये गये आज्ञा भङ्गकों नहीं सहन करती थी तथा अत्यधिक शीघ्रताके साथ किये हुए कार्योंमें भी विभ्रम पूर्वक भौंहें घुमाती थी ॥१३॥ यद्यपि समीपमें इच्छानुकूल मणियोंके दर्पण विद्यमान रहते थे तथापि उसे उभारी हुई तलवारके अग्रभागमें मुख देखनेका व्यसन पड़ गया था ॥१४॥ वीणा आदिसे दूर कर स्त्रीजनोंको नहीं रुचनेवाली धनुषकी टंकारका शब्द ही उसके कानोंमें सुख उत्पन्न करता था ॥१५॥ उसके नेत्र पिंजड़ोंमें बन्द सिंहोंके ऊपर परम प्रीतिको प्राप्त होते थे और मस्तक तो बड़ी कठिनाईसे नम्रीभूत होता मानो खड़ा ही हो गया हो ॥१६॥

तदनन्तर नवम महीना पूर्ण होने पर जब चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर था, तब श्रावण मास की पूर्णिमाके दिन, उत्तम मङ्गलाचारसे युक्त समस्त लक्षणोंसे परिपूर्ण एवं पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली सीताने सुखपूर्वक सुखदायक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१७-१८॥ उन दोनोंके उत्पन्न होने पर प्रजा नृत्यमयीके समान हो गई और शङ्खोंके शब्दोंके साथ भेरियों एवं नगाड़ोंके शब्द होने लगे ॥१९॥ यहिनकी प्रीतिसे राजाने ऐसा महान् उत्सव किया जो उन्मत्त मनुष्य लोकके समान था और सुन्दर सम्पत्तिसे सहित था ॥२०॥ उनमेंसे एकने अनङ्गलवण नामको अलंकृत किया और दूसरेने सार्थक भावसे मदनाङ्कुश नामको सुशोभित किया ॥२१॥

तदनन्तर माताके हृदयको आनन्द देनेवाले, प्रवीर पुरुषके अंकुर स्वरूप वे दोनों बालक क्रम-क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥२२॥ रत्नाके लिए उनके मस्तक पर जो सरसोंके दाने डाले गये थे वे देदीप्यमान प्रतापरूपी अग्निके तिलगोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२३॥ गोरोचना की पङ्कसे पीला पीला दिखने वाला उनका शरीर ऐसा जान पड़ता था मानो अच्छी तरहसे प्रकट होनेवाले स्वाभाविक तेजसे ही घिरा हो ॥२४॥ सुवर्णमालामें स्वचित व्याघ्र सम्बन्धी नखोंकी बड़ी-बड़ी पंक्ति उनके हृदय पर ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो दर्पके अंकुरोंका समूह ही हो ॥२५॥ सब लोगोंके मनको हरण करनेवाला जो उनका अव्यक्त प्रथम शब्द था वह उनके जन्म दिनकी पवित्रताके सत्यकारके समान जान पड़ता था अर्थात् उनका जन्म दिन पवित्र दिन है, यह सूचित कर रहा था ॥२६॥ जिस प्रकार पुष्प भ्रमरोंके समूहको आकर्षित करते हैं,

१. पुण्याह -म० । २. सत्यग्रहणं सत्यकारः श्री० टी० । ३. मधुव्रताम् म० ।

जननीशरिसेकोत्थविलासहसितैरिव । जातं दशनकैर्ध्वत्रपद्मकं लब्धमण्डनम् ॥२८॥
 धार्मीकराङ्गुलीलम्बो पञ्चषाणि पदानि तौ । एवंभूतौ प्रयच्छन्तौ मनः कस्य न जहतुः ॥२९॥
 पुत्रकौ तादृशौ वीथय चारुक्रोडनकारिणौ । शोकहेतुं विस्मराम समस्तं जनकामजा ॥३०॥
 वद्धमानौ च तौ कान्तौ निसर्गोदात्तविभ्रमौ । देहावस्थां परिप्राप्तौ विद्यासंग्रहणोचिताम् ॥३१॥
 ततस्तत्पुण्ययोगेन सिद्धार्थो नाम विश्रुतः । शुद्धात्मा क्षुल्लकः प्राप वज्रजङ्घस्य मन्दिरम् ॥३२॥
 सन्ध्यात्रयमबन्ध्यं यो महाविद्यापराक्रमः । मन्दरोरसि वन्दित्वा जिनानेति पदं क्षणम् ॥३३॥
 प्रशान्तवदनो धीरो लुञ्जरञ्जितमस्तकः । साधुभावनचेतस्को वस्त्रमात्रपरिग्रहः ॥३४॥
 उत्तमाणुव्रतो नानागुणशोभनभूषितः । जिनशासनतस्वज्जः कलाजलधिपारगः ॥३५॥
 अंशुकनोपवीतेन सितेन प्रचलात्मना । मृणालकाण्डजालेन नागेन्द्र इव मन्थरः ॥३६॥
 करञ्जजालिकां कक्षे कृत्वा प्रियसखीमिव । मनोज्ञममृतास्वादं धर्मवृद्धिरिति श्रुतम् ॥३७॥
 गृहे गृहे शनैर्भिन्नां पर्यटन् विधिसङ्गतः । गृहोत्तमं समासीदद्यत्र तिष्ठति जानकी ॥३८॥
 जिनशासनदेवीव सा मनोहरभावना । दृष्ट्वा क्षुल्लकसुतीर्थं सम्भ्रान्ता नवमालिकाम् ॥३९॥
 उपगत्य समापाय करवारिरहद्वयम् । इच्छाकारादिना सम्यक् समुद्य विधिकोविदा ॥४०॥
 विशिष्टेनाश्रयानेन समतर्पयदादरात् । जिनेन्द्रशासनाऽऽसक्तान् सा हि पश्यति बान्धवान् ॥४१॥
 निवर्तितान्यकत्तव्यः सविश्रब्धः सुखं स्थितः । पृष्टो जगाद् सीतायै स्ववार्ता भ्रमणादिकम् ॥४२॥

उसी प्रकार उनकी भोली भाली मनोहर मुसकाने सब ओरसे हृदयोंको आकर्षित करती थी ॥२७॥-
 माताके क्षीरके सिञ्चनसे उत्पन्न विलास हास्यके समान जो छोटे-छोटे दाँत थे उनसे उनका मुख-
 रूपी कमल अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥२८॥ धायके हाथकी अँगुली पकड़ कर पाँच छह
 ढग देनेवाले उन दोनों बालकोंने किसका मन हरण नहीं किया था ॥२९॥ इस प्रकार सुन्दर
 क्रीड़ा करनेवाले उन पुत्रोंको देखकर माता सीता शोकके समस्त कारण भूल गई ॥३०॥ इस
 तरह क्रम-क्रमसे बढ़ते तथा स्वभावसे उदार विभ्रमको धारण करते हुए वे दोनों सुन्दर बालक
 विद्या ग्रहणके योग्य शरीरकी अवस्थाको प्राप्त हुए ॥३१॥

तदनन्तर उनके पुण्य योगसे सिद्धार्थ नामक एक प्रसिद्ध शुद्ध हृदय क्षुल्लक, राजा
 वज्रजङ्घके घर आया ॥३२॥ वह क्षुल्लक महाविद्याओंके द्वारा इतना पराक्रमी था कि तीनों
 संध्याओंमें प्रतिदिन मेरुपर्वत पर विद्यमान जिन-प्रतिमाओंकी वन्दना कर क्षण भरमें अपने स्थान
 पर आ जाता था ॥३३॥ वह प्रशान्त मुख था, धीर वीर था, केशलुंच करनेसे उसका मस्तक
 सुशोभित था, उसका चित्त शुद्ध भावनाओंसे युक्त था, वह वस्त्र मात्र परिग्रहका धारक था,
 उत्तम अणुव्रती था, नानागुण रूपी अलंकारोंसे अलंकृत था, जिन शासनके रहस्यको जाननेवाला
 था, कलारूपी समुद्रका पारगामी था, धारण किये हुए सफेद चञ्चल वस्त्रसे ऐसा जान पड़ता
 था मानो मृणालोंके समूहसे वेष्टित मन्द मन्द चलनेवाला गजराज ही हो, जो पीछीको प्रिय सखी
 के समान बगलमें धारण कर अमृतके स्वादके समान मनोहर 'धर्मवृद्धि' शब्दका उच्चारण कर
 रहा था, और घर घरमें भिन्ना लेता हुआ धीरे-धीरे चल रहा था, इस तरह भ्रमण करता हुआ
 संयोगवश उस उत्तम घरमें पहुँचा, जहाँ सीता बैठी थी ॥३४-३८॥ जिनशासन देवीके समान
 मनोहर भावनाको धारण करनेवाली सीताने ज्योंही क्षुल्लकको देखा, त्योंही वह संभ्रमके साथ
 नौखण्डा महलसे उतर कर नीचे आ गई ॥३९॥ तथा पास जाकर और दोनों हाथ जोड़कर
 उसने इच्छाकार आदिके द्वारा उसकी अच्छी तरह पूजा की । तदनन्तर विधिके जाननेमें निपुण
 सीताने उसे आदर पूर्वक विशिष्ट अन्न पान देकर संतुष्ट किया, सो ठीक ही है क्योंकि वह जिन-
 शासनमें आसक्त पुरुषोंको अपना बन्धु समझती है ॥४०-४१॥ भोजनके बाद अन्य कार्य

महोपचारविनयप्रयोगहृतमानसः । क्षुल्लकः परितुष्टात्मा ददर्श लवणाङ्कुशौ ॥४३॥
 महानिमित्तमष्टाङ्गं ज्ञाता सुश्राविकामसौ । सम्भाषयितुमप्राप्तीद् वार्ता पुत्रकसङ्गताम् ॥४४॥
 तयावेदितवृत्तान्तो वाष्पदुर्दिननेत्रया । क्षणं शोकसमाक्रान्तः क्षुल्लको दुःखितोऽभवत् ॥४५॥
 उवाच च न देवि त्वं विधातुं शोकमर्हसि । यस्या देवकुमाराभौ प्रशस्तौ बालकाविभौ ॥४६॥
 अथ तेन जनप्रेमप्रवर्णाकृतचेतसा । अचिराच्छस्त्रशास्त्राणि प्राहितौ लवणाङ्कुशौ ॥४७॥
 ज्ञानविज्ञानसम्पन्नौ कलागुणविशारदौ । दिव्यास्त्रक्षेपसंहारविषयातिविचक्षणौ ॥४८॥
 विभ्रतुस्तौ परां लक्ष्मीं महापुण्यानुभावतः । ध्वस्तावरणसम्बन्धौ निधानकलशाविव ॥४९॥
 न हि कश्चिद्गुरोः खेदः शिष्ये शक्तिसमन्विते । सुखेनैव प्रदर्शयन्ते भावाः सूर्येण नेत्रिणे ॥५०॥
 भजतां संस्तवं पूर्वं गुणानामागमः सुखम् । खेदोऽवतरतां कोऽसौ हंसानां मानसं हृदम् ॥५१॥
 उपदेशं ददत्पात्रे गुरुर्याति कृतार्थताम् । अनर्थकः समुद्योतो रवेः कौशिकयोचरः ॥५२॥
 स्फुरद्यशःप्रतापश्यामाक्रान्तभुवनावध । अभिरामतुरालोकौ शीततिग्मकराविव ॥५३॥
 व्यक्ततेजोबलावग्निमारुताविव सङ्गतौ । शिलाहृदवपुःस्कन्धौ हिमविन्ध्याचलाविव ॥५४॥
 महावृषो यथा क्रान्तयुगसंयोजनोचितौ । धर्माश्रमाविवात्यन्तरमणीयौ सुखावहौ ॥५५॥

छोड़ वह क्षुल्लक निश्चित हो सुखसे बैठ गया । तदनन्तर पूछने पर उसने सीताके लिए अपने भ्रमण आदिकी वार्ता सुनाई ॥४२॥ अत्यधिक उपचार और विनयके प्रयोगसे जिसका मन हरा गया था, ऐसे क्षुल्लकने अत्यन्त संतुष्ट होकर लवणाङ्कुशको देखा ॥४३॥ अष्टाङ्ग महानिमित्तके ज्ञाता उस क्षुल्लकने वार्तालाप बढ़ानेके लिए श्राविकाके व्रत धारण करनेवाली सीतासे उसके पुत्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाली वार्ता पूछी ॥४४॥ तब नेत्रोंसे अश्रुकी वर्षा करती हुई सीताने क्षुल्लकके लिए सब समाचार सुनाया, जिसे सुनकर क्षुल्लक भी शोकाक्रान्त हो दुःखी हो गया ॥४५॥ उसने कहा भी कि हे देवि ! जिसके देवकुमारोंके समान ये दो बालक विद्यमान हैं ऐसी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए ॥४६॥

अथानन्तर अत्यधिक प्रेमसे जिसका हृदय वशीभूत था ऐसे उस क्षुल्लकने थोड़े ही समयमें लवणाङ्कुशको शस्त्र और शस्त्र विद्या ग्रहण करा दी ॥४७॥ वे पुत्र थोड़े ही समयमें ज्ञान-विज्ञानसे संपन्न, कलाओं और गुणोंमें विशारद तथा दिव्य शस्त्रोंके आह्वान एवं छोड़नेके विषयमें अत्यन्त निपुण हो गये ॥४८॥ महापुण्यके प्रभावसे वे दोनों, जिनके आवरणका सम्बन्ध नष्ट हो गया था, ऐसे खजानेके कलशोंके समान परम लक्ष्मीको धारण कर रहे थे ॥४९॥ यदि शिष्य शक्तिसे सहित है, तो उससे गुरुको कुछ भी खेद नहीं होता, क्योंकि सूर्यके द्वारा नेत्रवान् पुरुषके लिए समस्त पदार्थ सुखसे दिखा दिये जाते हैं ॥५०॥ पूर्व परिचयको धारण करनेवाले मनुष्योंकी गुणोंकी प्राप्ति सुखसे हो जाती है सो ठीक ही है क्योंकि मानस-सरोवरमें उतरनेवाले हंसोंकी क्या खेद होता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥५१॥ पात्रके लिए उपदेश देनेवाला गुरु कृतकृत्यताकी प्राप्त होता है । क्योंकि जिस प्रकार उल्लूके लिए किया हुआ सूर्यका प्रकाश व्यर्थ होता है, उसी प्रकार अपात्रके लिए दिया हुआ गुरुका उपदेश व्यर्थ होता है ॥५२॥

अथानन्तर बढ़ते हुए यश और प्रतापसे जिन्होंने लोकको व्याप्त कर रक्खा था ऐसे वे दोनों पुत्र चन्द्र और सूर्यके समान सुन्दर तथा तुरालोक हो गये अर्थात् वे चन्द्रमाके समान सुन्दर थे और सूर्यके समान उनकी ओर देखना भी कठिन था ॥५३॥ प्रकट तेज और बलके धारण करनेवाले वे दोनों पुत्र परस्पर मिले हुए अग्नि और पवनके समान जान पड़ते थे अथवा जिनके शरीरके कन्धे शिलाके समान टढ़ थे ऐसे वे दोनों भाई हिमाचल और विन्ध्याचलके समान दिखाई देते थे ॥५४॥ अथवा वे क्रान्त युग संयोजन अर्थात् सुन्दर जुवा धारण करनेके योग्य

पूर्वापरककुम्भागाविव लोकाल्लिखितौ । उदयास्तमयाधाने सर्वतेजस्विनां चमौ ॥५६॥
 अभ्यर्णान्वसरोधसङ्घटे कुक्कुटीरके । तेजसः परिनिन्दन्तौ ज्ञायामपि पराङ्मुखाम् ॥५७॥
 अपि पादनस्वस्थेन प्रतिबिम्बेन लज्जितौ । केशानामपि भङ्गेन प्राप्नुवन्तावशं परम् ॥५८॥
 चूडामणिगतेनापि च्चत्रेणानेन सत्रपौ । अपि दर्पणदृष्टेन प्रतिपुंसोपतापिनौ ॥५९॥
 अभ्योधरधृतेनाऽपि धनुषा कृतकोपनौ । अनानमङ्गिरालेख्यपाथिवैरपि खेदितौ ॥६०॥
 स्वस्वमण्डलसन्तोषसङ्गतस्य रवेरपि । अनादरेण परयन्तौ तेजसः प्रतिघातकम् ॥६१॥
 भिन्दन्तौ बलिनं वायुमप्यर्वाक्षितविग्रहम् । हिमवत्यपि सामपौ चमरीनालर्वाजिते ॥६२॥
 शङ्खैः सलिलनाथानामपि खेदितमानसौ । प्रचेतसमपीशानममृष्यन्तानुदन्वताम् ॥६३॥
 सङ्घत्रानपि निश्छायान् कुर्वाणौ धरणाक्षितः । मुखेन मधु सुञ्जन्तौ प्रसन्नौ सत्सुसेवितौ ॥६४॥
 दुष्टभूपालवंशानामप्यनासन्नवत्तिनाम् । कुर्वाणावृष्मणा ग्लानिं सम्प्राप्तसहजन्मना ॥६५॥
 शङ्खसंस्तवनश्याममुद्रहन्तौ करोदरम् । शेषराजप्रतापाग्निपरिनिर्वापणादिव ॥६६॥
 धारैः कामुङ्कनिःस्वानैर्योगिकाले समुदगतैः । आलपन्ताविवासनाभोगाः सकलदिव्यधूः ॥६७॥
 ईदृशो लवणस्तादृगीदृशस्तादृशोऽङ्कुशः । इत्यलं विकसङ्घद्वप्रानुर्भावौ शुभोदयौ ॥६८॥

(पक्षमें युगकी उत्तम व्यवस्था करनेमें निपुण) महावृषभोंके समान थे अथवा धर्माश्रमोंके समान रमणीय और सुखको धारण करनेवाले थे ॥५५॥ अथवा वे समस्त तेजस्वी मनुष्योंके उदय तथा अस्त करनेमें समर्थ थे, इसलिए लोग उन्हें पूर्व और पश्चिम दिशाओंके समान देखते थे ॥५६॥ यह विशाल पृथिवी, निकटवर्ती समुद्रसे घिरी होनेके कारण उन्हें छोटी-सी कुटियाके समान जान पड़ती थी और इस पृथिवी रूपी कुटियामें यदि उनकी ज्ञाया भी तेजसे विमुख जाती थी तो उसकी भी वे निन्दा करते थे ॥५७॥ पैरके नखोंमें पड़नेवाले प्रतिबिम्बसे भी वे लज्जित हो उठते थे और बालोंके भंगसे भी अत्यधिक दुःख प्राप्त करते थे ॥५८॥ चूडामणिमें प्रतिबिम्बित छत्रसे भी वे लज्जित हो जाते थे और दर्पणमें दिखनेवाले पुरुषके प्रतिबिम्बसे भी स्वीकृत उठते थे ॥५९॥ मेघके द्वारा धारण किये हुए धनुषसे भी उन्हें क्रोध उत्पन्न हो जाता था और नमस्कार नहीं करनेवाले चित्रलिखित राजाओंसे भी वे खेदखिन्न हो उठते थे ॥६०॥ अपने विशाल तेज की बात दूर रहे—अत्यन्त अल्प मण्डलमें सन्तोषको प्राप्त हुए सूर्यके भी तेजमें यदि कोई रुकावट डालता था तो वे उसे अनादरकी दृष्टिसे देखते थे ॥६१॥ जिसका शरीर दिखाई नहीं देता था ऐसी बलिष्ठ वायुको भी वे खण्डित कर देते थे तथा चमरी गायके बालोंसे बीजित हिमालयके ऊपर भी उनका क्रोध भड़क उठता था ॥६२॥ समुद्रोंमें भी जो शङ्ख पड़ रहे थे उन्हींसे उनके चित्त खिन्न हो जाते थे तथा समुद्रोंके अधिपति वरुणको भी वे सहन नहीं करते थे ॥६३॥ छत्रोंसे सहित राजाओंको भी वे निश्छाय अर्थात् ज्ञायासे रहित (पक्षमें कान्तिसे रहित) कर देते थे और सत्पुरुषोंके द्वारा सेवित होनेपर प्रसन्न हो मुखसे मधु छोड़ते थे अर्थात् उनसे मधुर वचन बोलते थे ॥६४॥ वे साथ-साथ उत्पन्न हुए प्रतापसे दूरवर्ती दुष्ट राजाओंके वंशको भी ग्लानि उत्पन्न कर रहे थे अर्थात् दूरवर्ती दुष्ट राजाओंको भी अपने प्रतापसे हानि पहुँचाते थे फिर निकटवर्ती दुष्ट राजाओंका तो कहना ही क्या है? ॥६५॥ निरन्तर शस्त्र धारण करने से उनके हस्ततल काले पड़ गये थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो शेष अन्य राजाओंके प्रताप रूप अग्निको बुझानेसे ही काले पड़ गये थे ॥६६॥ अभ्यासके समय उत्पन्न धनुषके गम्भीर शब्दोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो निकटवर्ती समस्त दिशांरूपी स्त्रियोंसे वार्तालाप ही कर रहे हों ॥६७॥ 'जैसा लवण है वैसा ही अङ्कुश है' इस प्रकार उन दोनोंके विषयमें

१. लक्षितौ म० २. नृपान्। ३. अभ्यासकाले 'योग्या गुणनिकाभ्यासः' इति कोषः। योग्यकाले म०।

नवयौवनसम्पन्नौ महासुन्दरचेष्टितौ । प्रकाशतां परिप्राप्तौ धरण्यां लवणाङ्कुशौ ॥६६॥
 अभिनन्द्यौ तमस्तस्य लोकस्योत्सुकताकरौ । पुण्येन घटितात्मानौ सुखकारणदर्शनौ ॥७०॥
 युवत्यास्य^१ कुमुद्रत्याः शरत्पूर्णेन्दुतां गतौ । वैदेहीहृदयानन्दमयजङ्गममन्दरौ ॥७१॥
 कुमारादिवसङ्गाशो पुण्डरीकनिभेक्षणां । द्वीपदेवकुमाराभौ श्रीवत्साङ्कितवत्सौ ॥७२॥
 अनन्तविक्रमाधारौ भवाभ्योषितं स्थितौ । परस्परमहाप्रेमबन्धनप्रवर्णाकृतौ ॥७३॥
 मनोहरणसंज्ञकौ धर्ममार्गस्थितावपि । वक्रतापरिनिर्मुक्तौ कोटिस्थितगुणावपि ॥७४॥
 विजित्य तेजसा भानुं स्थितौ कान्त्या निशाकरम् । ओजसा त्रिदशावीशं गाम्भीर्येण महोदधिम् ॥७५॥
 मेहं स्थिरत्वयोगेन क्षमाधर्मेण मेदिनीम् । शौर्येण मेघनिःस्वानं गत्या माहूतनन्दनम् ॥७६॥
 गृह्णायातामिषुं मुक्तमपि वेगाद्दूरतः । मकरग्राहनकाद्यैः कृतक्रोडौ महाजले ॥७७॥
 श्रमसौख्यमसम्प्राप्तौ मत्सरपि महाद्विषैः । भयादिव तनुच्छायात्^२ स्वलितार्ककरोत्करौ ॥७८॥
 धर्मतः सम्मितौ साधोरर्ककीर्तिश्च^३ सत्त्वतः । सम्यग्दर्शनतोऽगस्य दानार्च्छाविजयस्य च ॥७९॥
 अयोध्यावभिमानेन साहसान्मयुकैटभौ । महाहवसमुद्योगादिन्द्रजिन्मेघवाहनौ ॥८०॥
 गुरुशुभ्रणोद्युक्तौ जिनेश्वरकथारतौ । शत्रूणां जनितप्राप्तौ नाममाश्रुत्तेरपि ॥८१॥

लोगोंके मुखसे शब्द प्रकट होते थे तथा दोनों ही शुभ अभ्युदयसे सहित थे ॥६८॥ जो नव यौवनसे सम्पन्न थे और महासुन्दर चेष्टाओंके धारक थे, ऐसे लवण और अङ्कुश पृथिवीमें प्रसिद्धि को प्राप्त हुए ॥६९॥ वे दोनों समस्त लोगोंके द्वारा अभिनन्दन करनेके योग्य थे और सभी लोगोंकी उत्सुकताको बढ़ानेवाले थे । पुण्यसे उनके स्वरूपकी रचना हुई थी तथा उनका दर्शन सबके लिए सुखका कारण था ॥७०॥ युवती स्त्रियोंके मुखरूपी कुमुदिनीके विकासके लिए वे दोनों शरत् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमा थे और सीताके हृदय सम्बन्धी आनन्दके लिए मानो चलते फिरते सुमेरुही हों ॥७१॥ वे दोनों अन्य कुमारोंमें सूर्यके समान थे, सफेद कमलोंके समान उनके नेत्र थे । वे द्वीपकुमार नामक देवोंके समान थे तथा उनके वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्नसे अलंकृत थे ॥७२॥ अनन्त पराक्रमके आधार थे, संसार-समुद्रके तट पर स्थित थे, परस्पर महाप्रेमरूपी बन्धनसे बँधे थे ॥७३॥ वे धर्मके मार्गमें स्थित होकर भी मनके हरण करनेमें लीन थे—मनोहारी थे और कोटिस्थित गुणों अर्थात् धनुषके दोनों छोरों पर डोरीके स्थित होने पर भी वक्रता अर्थात् कुटिलतासे रहित थे (परिहार पक्षमें उनके गुण करोड़ोंकी संख्यामें स्थित थे तथा वे मायाचार रूपी कुटिलतासे रहित थे) ॥७४॥ वे तेजसे सूर्यको, कान्तिसे चन्द्रमाको, ओजसे इन्द्रको, गाम्भीर्यसे समुद्रको, स्थिरताके योगसे सुमेरुको, क्षमाधर्मसे पृथिवीको, शूर-वीरतासे जयकुमारको और गतिसे हनुमान्को, जीतकर स्थित थे ॥७५-७६॥ वे छोड़े हुए बाणको भी अपने वेगसे पास ही में पकड़ सकते थे तथा विशाल जलमें मगरमच्छ तथा नाके आदि जल जन्तुओंके साथ क्रीड़ा करते थे ॥७७॥ मदमाते महा-गजोंके साथ युद्ध कर भी वे श्रमसम्बन्धी सुखको प्राप्त नहीं होते थे तथा उनके शरीरकी प्रभासे भयभीत होकर ही मानो सूर्यकी किरणोंका समूह स्वलित हो गया था ॥७८॥ वे धर्मकी अपेक्षा साधुके समान, सत्त्व अर्थात् धैर्यकी अपेक्षा अर्ककीर्तिके समान, सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा पर्वतके समान और दानकी अपेक्षा श्री विजय बलभद्रके समान थे ॥७९॥ अभिमानसे अयोध्य थे अर्थात् उनके साथ कोई युद्ध नहीं कर सकता था, साहससे मयुकैटभ थे और महायुद्ध सम्बन्धी उद्योग से इन्द्रजित् तथा मेघवाहन थे ॥८०॥ वे गुरुओंकी सेवा करनेमें तत्पर रहते थे, जिनेन्द्रदेवकी कथा अर्थात् गुणगान करनेमें लीन रहते थे तथा नामके सुनने मात्रसे शत्रुओंको भय उत्पन्न

१. युवत्यास्याः म० । २. तरस्थितौ म० । ३. तनुच्छाया स्वलित -ज० । ४. अर्ककीर्तिश्च म० ।

शार्दूलविक्रीडितम्

एवं तौ गुणरत्नपर्वतवरौ विज्ञानपातालिनौ

लक्ष्मीश्रीद्युतिकीर्तिकान्तिनिलयौ चित्तद्विपेन्द्राङ्कुशौ ।

सौराज्यालयभारधारणदृढस्तम्भौ महीभास्करौ

संवृत्तौ लवणाङ्कुशौ नरवरौ चित्रैककर्माकरौ ॥८२॥

आर्यावृत्तम्

धारी प्रपौण्डनगरे रेमाते तौ यथेप्सितं नरनागौ ।

लज्जितरवितेजस्कौ हलधरनारायणौ यथायोग्यम् ॥८३॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लवणाङ्कुशोद्भवाभिधानं नाम शतसंख्यं पर्व ॥१००॥



करनेवाले थे ॥८१॥ इस प्रकार वे दोनों भाई लवण और अङ्कुश गुणरूपी रत्नोंके उत्तम पर्वत थे, विज्ञानके सागर थे, लक्ष्मी श्री द्युति कीर्ति और कान्तिके घर थे, मनरूपी राजराजके लिए अङ्कुश थे, सौराज्यरूपी घरका भार धारण करनेके लिए मजबूत खम्भे थे, पृथिवीके सूर्य थे, मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, आश्चर्यपूर्ण कार्योंकी खान थे ॥८२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा सूर्यके तेजको लज्जित करने वाले वे दोनों कुमार प्रपौण्ड नगरमें बलभद्र और नारायणके समान इच्छानुसार कीड़ा करते थे ॥८३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लवणाङ्कुश की उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला सौवां पर्व पूर्ण हुआ ॥१००॥



एकाधिकशतं पर्व

ततो दारक्रियायोग्यौ दृष्ट्वा तावतिसुन्दरौ । वज्रजङ्घो मतिं चक्रे कन्यान्वेषणतत्पराम् ॥१॥
लक्ष्मीदेव्याः समुत्पन्नां शशिचूलाभिधानकाम् । द्वात्रिंशत्कन्वकापुक्तामाद्यस्याकल्पयत्सुताम् ॥२॥
विवाहमङ्गलं द्रष्टुमुभयोर्युगपन्नृपः । अभिलष्यन् द्वितीयस्य कन्यां योग्यां समन्ततः ॥३॥
अपरथन्मनसा खेदं परिप्राप्त इवोत्तमाम् । सस्मार सहसा सद्यः कृतार्थत्वमिवाव्रजत् ॥४॥
पृथिवीनगरेशस्य राज्ञोऽस्ति प्रवराङ्गजा । शुद्धा कनकमालाख्याऽमृतवत्यङ्गसम्भवा ॥५॥
रजनीपतिलेखेव सर्वलोकमल्लिभुवा । श्रियं जयति या पश्यन्ती पद्मविवर्जिता ॥६॥
या साम्यं शशिचूलायाः समाश्रितवती शुभा । इति सञ्चिन्त्य तद्धेतोर्दूतं प्रेषितवान्नृपः ॥७॥
पृथिवीपुरमासाद्य स क्रमेण विचक्षणः । जयाद् कृतसम्मानो राजानं पृथुसंज्ञकम् ॥८॥
तावदेवेक्षितो दृष्ट्वा दूतो राजा विशुद्धया । कन्यायाचनसम्बन्धं यावद् गृह्णाति नो वचः ॥९॥
उवाच च न ते^२ दूत काचिदप्यस्ति दूषिता । यतो भवान् पराधीनः परवान्यानुवादकृत् ॥१०॥
निरुपमाणश्चलात्मानो बहुभङ्गसमाकुलाः । जलौघा इव नीयन्ते यथेष्टं हि भवद्विधाः ॥११॥
कर्तुं तथापि ते युक्तो निग्रहः पापभाषिणः । परेण प्रेरितं किञ्च यन्त्रं हन्तुं विहन्यते ॥१२॥
किञ्चित्कर्तुमशक्तस्य रजःपातसमात्मनः । अपाकरणमात्रेण मया ते दूत सक्ततम् ॥१३॥

अथानन्तर उन सुन्दरकुमारोंको विवाहके योग्य देख, राजा वज्रजंघने कन्याओंके खोजने में तत्पर बुद्धि की ॥१॥ सो प्रथम ही अपनी लक्ष्मी रानीसे उत्पन्न शशिचूला नामकी पुत्रीको अन्य बत्तीस कन्याओंके साथ लवणको देना निश्चित किया ॥२॥ राजा वज्रजङ्घ दोनों कन्याओंका विवाह मङ्गल एक साथ देखना चाहता था । इसलिए वह द्वितीय पुत्रके योग्य कन्याओंकी सब ओर खोज करता रहा ॥३॥ उत्तम कन्याको न देख एक दिन वह मनमें खेदको प्राप्त हुएके समान बैठा था कि अकस्मात् उसे शीघ्र ही स्मरण आया और उससे वह मानो कृतकृत्यताको ही प्राप्त हो गया ॥४॥ उसने स्मरण किया कि 'पृथिवी नगरके राजाकी अमृतवती रानीके गर्भसे उत्पन्न कनकमाला नामकी एक शुद्ध तथा श्रेष्ठ पुत्री है ॥५॥ वह चन्द्रमाकी रेखाके समान सब लोगोंको हरण करनेवाली है, लक्ष्मीको जीतती है और कमलोंसे रहित मानो कमलिनी ही है ॥६॥ वह शशिचूलाकी समानताको प्राप्त है तथा शुभ है' । इस प्रकार विचार कर उसके निमित्तसे राजा वज्रजंघने दूत भेजा ॥७॥ बुद्धिमान् दूतने क्रम-क्रमसे पृथिवीपुर पहुँच कर तथा सन्मान कर वहाँके राजा पृथुसे वार्तालाप किया ॥८॥ उसी समय राजा पृथुने विशुद्ध दृष्टिसे दूतकी ओर देखा और दूत जब तक कन्याकी याचनासे सम्बन्ध रखनेवाला वचन ग्रहण नहीं कर पाता है कि उसके पहले ही राजा पृथु बोल उठे कि रे दूत ! इसमें तेरा कुछ भी दोष नहीं है क्योंकि तू पराधीन है और परके वचनोंका अनुवाद करनेवाला है ॥९-१०॥ जो स्वयं ऊष्मा-आत्मगौरव (पक्षमें गरमी) से रहित हैं, जिनकी आत्मा चञ्चल है तथा जो बहुभंगों-अनेक अपमानों (पक्षमें अनेक तरंगों) से व्याप्त हैं इस तरह जलके प्रवाहके समान जो आप जैसे लोग हैं, वे इच्छानुसार चाहे जहाँ ले जाये जाते हैं ॥११॥ यद्यपि यह सब है तथापि तूने पापपूर्ण वचनोंका उच्चारण किया है, अतः तेरा निग्रह करना योग्य है क्योंकि दूसरेके द्वारा चलाया हुआ विघातक यन्त्र क्या नष्ट नहीं किया जाता ? ॥१२॥ हे दूत ! मैं जानता हूँ कि तू धूली पानके समान है, और कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है इसलिए यहाँसे हटा देना मात्र ही तेरा सत्कार (?) अर्थात्

१. पृथुसंज्ञकम् म० । २. वचनं दूतः म० । ३. केन म० ।

३१-३

कुलं शीलं धनं रूपं समानत्वं बलं वयः । देशो विद्यागमश्चेति यद्यप्युक्ता वरे गुणाः ॥१४॥
 तथापि तेषु सर्वेषु सन्तोऽभिजनमेककम् । वरिष्ठमनुरुध्यन्ते शेषेषु तु मनःसमम् ॥१५॥
 स च न ज्ञायते यस्य वरस्य प्रथमो गुणः । कथं प्रदीयते तस्मै कन्या मान्या समन्ततः ॥१६॥
 निरूप्य भावमाणाय तस्मै सुप्रतिकूलनम् । दातुं युक्तं कुमारीं न कुमारीं तु ददान्यहम् ॥१७॥
 हृत्केकान्तपरिध्वस्तवचनो निरुपायकः । दूतः श्रीवज्रजंवाय गत्वाऽवस्थां न्यवेदयत् ॥१८॥
 ततो गत्वार्धमध्वानं स्वयमेव प्रपन्नवान् । अथाचत महादूतवदनेन पृथुं पुनः ॥१९॥
 अलम्ब्याऽस्ती ततः कन्यां तथापि जनितादरः । पृथोर्ध्वसयितुं देशं क्रोधयुक्तः समुद्यतः ॥२०॥
 पृथुदेशावधेः पाता नाम्ना व्याघ्ररथो नृपः । वज्रजङ्घेन सङ्ग्रामे जित्वा बन्धनमाहतः ॥२१॥
 शात्वा व्याघ्ररथं बद्धं सामन्तं सुमहाबलम् । देशं विनाशयन्तं च वज्रजङ्घं समुद्यतम् ॥२२॥
 पृथुः सहायताहेतोः पोदनाधिपतिं नृपम् । मित्रमाह्वययाभास यावत्परमसैनिकम् ॥२३॥
 तावत्कुलिशजंघेन पौण्डरीकपुरं द्रुतम् । समाह्वययितुं पुत्रान् प्रहितो लेखवानरः ॥२४॥
 पितुराज्ञां समाकर्ण्य राजपुत्रास्त्वरात्स्विताः । भेरीशङ्खादिनिःस्वानं सन्नाहार्धमदापयन् ॥२५॥
 ततः कोलाहलस्तुक्को महान् संघोभकारणः । पौण्डरीकपुरे जातो घूर्णमानार्णवोपमः ॥२६॥
 तावदश्रुतपूर्वं तं श्रुत्वा सन्नाहनिःस्वनम् । किमेतदिति पार्वस्थानप्राष्टां लवणाङ्कुशौ ॥२७॥
 स्वनिमित्तं ततः श्रुत्वा वृत्तान्तं तत्समन्ततः । वैदेहीनन्दनौ गन्तुमुद्यतौ समरार्थिनौ ॥२८॥

निमह है ॥१३॥ यद्यपि कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्या गम ये जो वरके गुण कहे गये हैं तथापि उत्तम पुरुष उन सबमें एक कुलको ही श्रेष्ठ गुण मानते हैं— इसका होना आवश्यक समझते हैं, शेष गुणोंमें इच्छानुसार प्रवृत्ति है अर्थात् हों तो ठीक न हों तो ठीक ॥१४-१५॥ परन्तु वही कुल नामका प्रथम गुण जिस वरमें न हो उसे सब ओरसे माननीय कन्या कैसे दी जा सकती है ? ॥१६॥ सो इस तरह निर्लज्जतापूर्वक विरुद्ध वचन कहनेवाले उसके लिए कुमारी अर्थात् पुत्रीका देना तो युक्त नहीं है परन्तु कुमारी अर्थात् खोटा मरण मैं अवश्य देता हूँ ॥१७॥ इस प्रकार जिसके वचन सर्वथा उपेक्षित कर दिये गये थे ऐसे दूतने निरुपाय हो वापिस जाकर वज्रजङ्घके लिए सब समाचार कह सुनाया ॥१८॥

तदनन्तर यद्यपि राजा वज्रजङ्घने स्वयं आधे मार्ग तक जाकर किसी महादूतके द्वारा पृथुसे कन्याकी याचना की ॥१९॥ और उसके प्रति आदर व्यक्त किया तथापि वह कन्याको प्राप्त नहीं कर सका । फलस्वरूप वह क्रोधसे गेरित हो पृथुका देश उजाड़नेके लिए तत्पर हो गया ॥२०॥ राजा पृथुके देशकी सीमाका रत्नक एक व्याघ्ररथ नामका राजा था उसे वज्रजङ्घने संग्राममें जीत कर बन्धनमें डाल दिया ॥२१॥ महाबलवान् अथवा बड़ी भारी सेनासे सहित व्याघ्ररथ सामन्तको युद्धमें बद्ध तथा वज्रजङ्घको देश उजाड़नेके लिए उद्यत जानकर राजा पृथुने सहायताके निमित्त पोदनदेशके अधिपति अपने मित्र राजाको जो कि उत्कृष्ट सेनासे युक्त था जबतक बुलवाया तबतक वज्रजङ्घने भी अपने पुत्रोंको बुलानेके लिए शीघ्र ही एक पत्र सहित आदमी पौण्डरीकपुरको भेज दिया ॥२२-२४॥ पिताकी आज्ञा सुनकर राजपुत्रोंने शीघ्र ही युद्धके लिए भेरी तथा शङ्ख आदिके शब्द दिलवाये ॥२५॥

तदनन्तर पौण्डरीकपुरमें लहराते हुए समुद्रके समान क्षोभ उत्पन्न करनेवाला बहुत बड़ा कोलाहल उत्पन्न हुआ ॥२६॥ वह अश्रुतपूर्व युद्धकी तैयारीका शब्द सुन लवण और अङ्कुशने निकटवर्ती पुरुषोंसे पूछा कि यह क्या है ? ॥२७॥ तदनन्तर यह सब वृत्तान्त हमारे ही निमित्त से हो रहा है, यह सब ओरसे सुन युद्धकी इच्छा रखनेवाले सीताके दोनों पुत्र जानेके लिए

अतित्वरापरीतो तौ पराभृत्युज्जवासहौ । अपि नासहतां यानमभिव्यक्तमहाद्युती ॥२६॥
 तौ वारयितुमुद्युक्ता वज्रजङ्घस्य सूनवः । सर्वमन्तःपुरं चैव परिवर्गश्च यत्नतः ॥३०॥
 अपकर्णिततद्वाक्यौ जानकी वीच्य पुत्रकौ । जगाद् तनयस्नेहपरिद्वितमानसा ॥३१॥
 बालकौ नैष युद्धस्य भवतः समयः समः । न हि वत्सौ नियुज्येते महारथधुरामुखे ॥३२॥
 ऊचतुस्तौ त्वया मातः किमेतदिति भाषितम् । किमत्र वृद्धकैः कार्यं वीरभोग्या वसुन्धरा ॥३३॥
 कियता देहभारेण ज्वलनस्य प्रयोजनम् । दिधक्षतो महाकक्षं स्वभावेनेह कारणम् ॥३४॥
 एवमुन्नतवाक्यौ तौ तनयौ वीच्य जानकी । बाष्पं मिश्ररसोत्पन्नं नेत्रयोः किञ्चिदाश्रयत् ॥३५॥
 सुस्नातौ तौ कृताहारौ ततोऽलङ्कृतविग्रहौ । प्रणम्य प्रयतौ सिद्धान् वपुषा मनसा मिरा ॥३६॥
 प्रणिपत्य सवित्रौ च समस्तविधिपण्डितौ । उपयातावगारस्य बहिः सत्तममङ्गलैः ॥३७॥
 रथौ ततः समाह्वय परमौ जविवाजिनौ । सम्पूर्णौ विविधैरस्त्रैरुपरि प्रस्थितौ पृथोः ॥३८॥
 तौ महासैन्यसम्पन्नौ चापन्यस्तसहायकौ । सूर्येव सङ्गतिं प्राप्त्वा समुद्योगपराक्रमौ ॥३९॥
 परमोदारचेतस्का पुरुसङ्ग्रामकौतुकौ । पञ्चभिर्दिवसैः प्राप्तौ वज्रजङ्घं महोदयौ ॥४०॥
 ततः शशुबलं श्रुत्वा परमोद्योगमन्तिकम् । निरैन्महाबलान्तस्थः पृथिवीनगरात्पृथुः ॥४१॥
 आतरः सुहृदः पुत्रा मातुला मातुलाङ्गजाः । एकपात्रभुजोऽन्ये च परमप्रीतिसङ्गताः ॥४२॥

उद्यत हो गये ॥२८॥ जो अत्यन्त उतावलीसे सहित थे, जो पराभवकी उत्पत्तिको रंचमात्र भी सहन नहीं कर सकते थे और जिनका विशाल तेज प्रकट हो रहा था ऐसे उन दोनों वीरोंने बाह्यनका विलम्ब भी सहन नहीं किया था ॥२९॥ वज्रजङ्घके पुत्र, समस्त अन्तःपुर तथा परिकर के समस्त लोग उन्हें यत्नपूर्वक रोकनेके लिए उद्यत हुए परन्तु उन्होंने उनके वचन अनसुने कर दिये । तदनन्तर पुत्रनेहसे जिसका हृदय द्रवीभूत हो रहा था ऐसी सीताने उन्हें युद्धके लिए उद्यत देख कहा कि हे बालको ! यह तुम्हारा युद्धके योग्य समय नहीं है क्योंकि महारथकी धुराके आगे बछड़े नहीं जोते जाते ॥३०-३२॥ इसके उत्तरमें दोनों पुत्रोंने कहा कि हे मातः ! तुमने ऐसा क्यों कहा ? इसमें वृद्धजनकी क्या आवश्यकता है ? पृथिवी तो वीरभोग्या है ॥३३॥ महावनको जलानेवाली अग्निके लिए कितने बड़े शरीरसे प्रयोजन है ? अर्थात् अग्निका बड़ा शरीर होना अपेक्षित नहीं है, इस विषयमें तो उसे स्वभावसे ही प्रयोजन है ॥३४॥ इस प्रकारके वचनोंका उच्चारण करनेवाले पुत्रोंको देखकर सीताके नेत्रोंमें मिश्ररससे उत्पन्न आँसुओंने कुछ आश्रय लिया अर्थात् उसके नेत्रोंसे हर्ष और शोकके कारण कुछ-कुछ आँसू निकल आये ॥३५॥

तदनन्तर जिन्होंने अच्छी तरह स्नानकर आहार किया शरीरको अलंकारोंसे अलंकृत किया और मन, वचन, कायसे सिद्ध परमेशीको बड़ी सावधानीसे नमस्कार किया, ऐसे समस्त विधि-विधानके जाननेमें निपुण दोनों कुमार माताको नमस्कार कर उत्तम मङ्गलाचार पूर्वक घरसे बाहर निकले ॥३६-३७॥ तदनन्तर जिनमें वेगशाली घोड़े जुते थे और जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण थे ऐसे उत्तम रथोंपर सवार होकर दोनों भाइयोंने राजा पृथुके उपर प्रस्थान किया ॥३८॥ बड़ी भारी सेनासे सहित एवं धनुषभात्रको सहायक समझनेवाले दोनों कुमार ऐसे जान पड़ते थे मानो शरीरधारी उद्योग और पराक्रम ही हों ॥३९॥ जिनका हृदय अत्यन्त उदार था तथा जो संग्रामके बहुत भारी कौतुकसे युक्त थे ऐसे महाभ्युदयके धारक दोनों भाई छह दिनमें वज्रजङ्घके पास पहुँच गये ॥४०॥

तदनन्तर परमोद्योगी शत्रुकी सेनाको निकटवर्ती सुनकर बड़ी भारी सेनाके मध्यमें स्थित राजा पृथु अपने पृथिवीपुरसे बाहर निकला ॥४१॥ उसके भाई, मित्र, पुत्र, मामा, मामाके

सुहाङ्गा वङ्गमगधप्रभृतिशित्तिगोचराः । समन्तेन महीपालाः प्रस्थिताः सुमहाबलाः ॥४३॥
 रथाश्वनागपादाताः कटकैः समावृताः । वज्रजङ्घं प्रति क्रुद्धाः प्रययुस्ते सुतेजसः ॥४४॥
 रथेभनुरगस्थानं श्रुत्वा तूर्यस्वनान्वितम् । सामन्ता वज्रजङ्घीयाः सन्नद्धा योद्धुमुद्यताः ॥४५॥
 प्रत्यासन्नं समायाते सेनाऽस्यद्वितये ततः । परानाकं महोसाहौ प्रविष्टौ लवणाङ्कुशौ ॥४६॥
 अतिक्षिप्रपरावर्त्ती तावुदाररुषाविव । आरेभाते परिक्रीडां परसैन्यमहाहृदे ॥४७॥
 इतस्ततरच तौ दृष्टादृष्टौ विद्युत्तपोपमौ । दुरालचयत्वमापन्नौ परासोढपराक्रमौ ॥४८॥
 गृह्णन्तौ सन्दधानौ वा मुञ्चन्तौ वा शिलीमुखान् । नादृश्येतामदृश्यन्त केवलं निहताः परे ॥४९॥
 विभिन्नैः विशिखैः क्रूरैः पतितैः सह वाहनैः । महीतलं समाक्रान्तं कृतमत्यन्तदुर्गमम् ॥५०॥
 निमेषेण पराभग्नं सैन्यमुन्मत्तसन्निभम् । द्विपयूथं परिभ्रान्तं सिंहविद्यासितं यथा ॥५१॥
 ततोऽसौ क्षणमात्रेण पृथुराजस्य वाहिनी । लवणाङ्कुशसूर्येषुमयूखैः परिशोषिता ॥५२॥
 कुमारयोस्तयोश्चामन्तरेण भयार्दिताः । अर्कतूलसमूहाभा नष्टा शेषा यथा ककुप् ॥५३॥
 असहायो विपण्णात्मा पृथुर्भङ्गपथे स्थितः । अनुधाव्य कुमाराभ्यां सचापाभ्यामितीरितः ॥५४॥
 नरखेट पृथो व्यर्थं काद्यापिः प्रपलाय्यते । एतौ तावागतावावामज्ञातकुलशीलकौ ॥५५॥
 अज्ञातकुलशीलाभ्यामावाभ्यां त्वं ततोऽन्यथा । पलायनमिदं कुर्वन् कथं न त्रपसेऽधुना ॥५६॥
 ज्ञापयावोऽधुनात्मीये कुलशैले शिलीमुखैः । अवधानपरस्तिष्ठ बलाद्वा स्थाप्यसेऽथवा ॥५७॥

लड़के तथा एक वर्तनमें खानेवाले परमप्रीतिसे युक्त अन्य लोग एवं सुहृ, अङ्ग, वङ्ग, मगध आदि के महाबलवान् राजा उसके साथ चले ॥४२-४३॥ कटक-सेनासे घिरे हुए परम प्रतापी रथ, घोड़े, हाथी तथा पैदल सैनिक क्रुद्ध होकर वज्रजंघकी ओर बढ़े चले आ रहे थे ॥४४॥ रथ, हाथी और घोड़ोंके स्थानको तुरहीके शब्दसे युक्त सुनकर वज्रजंघके सामन्त भी युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४५॥ तदनन्तर जब दोनों सेनाओंके अग्रभाग अत्यन्त निकट आ पहुँचे तब अत्यधिक उत्साहको धारण करनेवाले लवण और अङ्कुश शत्रुकी सेनामें प्रविष्ट हुए ॥४६॥ अत्यधिक शीघ्रतासे घूमनेवाले वे दोनों कुमार, महाक्रोधको धारण करते हुएके समान शत्रुदलरूपी महासरोवरमें सब ओर क्रीड़ा करने लगे ॥४७॥ विजलीरूपी लताकी उपमाको धारण करनेवाले वे कुमार कभी यहाँ और कभी वहाँ दिखाई देते थे और फिर अदृश्य हो जाते थे । शत्रु जिनका पराक्रम नहीं सह सका था ऐसे वे दोनों वीर बड़ी कठिनाईसे दिखाई देते थे अर्थात् उनकी ओर आँख उठाकर देखना भी कठिन था ॥४८॥ बाणोंको प्रहण करते, डोरीपर चढ़ाते और छोड़ते हुए वे दोनों कुमार दिखाई नहीं देते थे, केवल मारे हुए शत्रु ही दिखाई देते थे ॥४९॥ तीक्ष्ण बाणों द्वारा घायल होकर गिरे हुए वाहनोसे व्याप्त हुआ पृथिवीतल अत्यन्त दुर्गम हो गया था ॥५०॥ शत्रुकी सेना पागलके समान निमेषमात्रमें पराभूत हो गई—तितर-वितर हो गई और हाथियोंका समूह सिंहसे डराये हुएके समान इधर-उधर दौड़ने लगा ॥५१॥ तदनन्तर पृथु राजा की सेनारूपी नदी, लवणाङ्कुरूपी सूर्यकी बाणरूपी किरणोंसे क्षणमात्रमें सुखा दी गई ॥५२॥ जो योद्धा शेष बचे थे वे भयसे पीड़ित हो अर्कतूलके समूहके समान उन कुमारोंकी इच्छाके बिना ही दिशाओंमें भाग गये ॥५३॥ असहाय एवं खेदखिन्न पृथु पराजयके मार्गमें स्थित हुआ अर्थात् भागने लगा तब धनुर्धारी कुमारोंने उसका पीछाकर उससे इस प्रकार कहा कि अरे नीच नरपृथु ! अब व्यर्थ कहाँ भागता है ? जिनके कुल और शीलका पता नहीं ऐसे ये हम दोनों आ गये ॥५४-५५॥ जिनका कुल और शील अज्ञात है ऐसे हम लोगोंसे भागता हुआ तू इस समय लज्जित क्यों नहीं होता है ? ॥५६॥ अब हम बाणोंके द्वारा अपने कुल और शीलका पता

इत्युक्ते विनिवृत्त्यासौ पृथुराह कृताञ्जलिः । अज्ञानजनितं दोषं वीरौ मे हन्तुमर्हथ ॥५८॥
 माहात्म्यं भवदीयं मे नाऽऽप्यतं मतिगोचरम् । भास्करीयं यथा तेजः कुमुदप्रचयोदरम् ॥५९॥
 ईदृगेव हि धीराणां कुलशीलनिवेदनम् । शस्यते न तु भारत्या तद्धि सन्देहसङ्गतम् ॥६०॥
 अरण्यदाहशक्तस्य पावकस्य न को जनः । ज्वलनादेव सम्भृतिं मूढोऽपि प्रतिपद्यते ॥६१॥
 भवन्ती परमौ धीरौ महाकुलसमुद्भवौ । अस्माकं स्वामिनीं प्राप्तीं यथेष्टसुखदायिनीं ॥६२॥
 एवं प्रशस्यमानौ तौ कुमारौ नतमस्तकौ । जातौ निर्वासिताशेषकोपी शान्तमनोमुखौ ॥६३॥
 वज्रजङ्घप्रधानेषु ततः प्राप्तेषु राजसु । ससात्तिकाऽभवत्प्रातिः पृथुना सह वीरयोः ॥६४॥
 प्रणाममात्रतः प्रीता आसन्ते मानशालिनः । नोन्मूलयन्ति नद्योषा वेतसान् प्रणतात्मकान् ॥६५॥
 ततस्तौ सुमहाभूत्या पृथुना पृथिवीपुरम् । प्रवेशितौ समस्तस्य जनस्यानन्दकारिणौ ॥६६॥
 मदनाङ्कुशवीरस्कं पृथुना परिकल्पिता । कन्या कनकमालाऽसौ महाविभवसङ्गता ॥६७॥
 अत्र नीत्वा निशामेकां करणायविचक्षणौ । निर्गतौ नगराज्जेतुं समस्तां पृथिवीमिमाम् ॥६८॥
 सुखाङ्गमगधैर्वङ्गैः पोदनशादिभिस्तथा । वृत्तौ लोकाक्षनगरं गन्तुमेतौ समुद्यतौ ॥६९॥
 आक्रामन्तौ सुखं तस्य सम्बद्धान् विषयान् बहून् । अभ्यर्णत्वं परिप्राप्तौ तौ महासाधनान्वितौ ॥७०॥
 कुबेरकान्तनामानं राजानं तत्र मानिनम् । समक्षोभयतौ नागं पक्षात्रिव गरुडमतः ॥७१॥

देते हैं, सावधान होकर खड़े हो जाओ अथवा बलात् खड़े किये जाते हो ॥५७॥ इस प्रकार कहने पर पृथुने लौटकर तथा हाथ जोड़कर कहा कि हे वीरौ ! मेरा अज्ञात जनित दोष क्षमा करनेके योग्य हो ॥५८॥ जिस प्रकार सूर्यका तेज कुमुद-समूहके मध्य नहीं आता उसी प्रकार आप लोगों का माहात्म्य मेरी बुद्धिमें नहीं आया ॥५९॥ धीर, वीर मनुष्योंका अपने कुल, शीलका परिचय देना ऐसा ही होता है । वचनों द्वारा जो परिचय दिया जाता है वह ठीक नहीं है क्योंकि उसमें सन्देह हो सकता है ॥६०॥ ऐसा कौन मूढ़ मनुष्य है जो जलने मात्रसे, वनके जलानेमें समर्थ अग्निकी उत्पत्तिकी नहीं जान लेता है ? । भावार्थ—अग्नि प्रज्वलित होती है इतने मात्रसे ही उसकी वनदाहक शक्तिका अस्तित्व मूल्यसे मूल्य व्यक्ति भी स्वीकृत कर लेता है ॥६१॥ आप दोनों परम धीर, महाकुलमें उत्पन्न एवं यथेष्ट सुख देनेवाले हमारे स्वामी हो ॥६२॥ इस प्रकार जिनकी प्रशंसाकी जा रही थी ऐसे दोनों कुमार नतमस्तक, शान्तचित्त तथा शान्त मुख हो गये और उनका सब क्रोध दूर हो गया ॥६३॥ तदनन्तर जब वज्रजंघ आदि प्रधान राजा आ गये तब उनकी साक्षी पूर्वक दोनों वीरोंकी पृथुके साथ मित्रता हो गई ॥६४॥ आचार्य कहते हैं कि मानशाली मनुष्य प्रणाममात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं, सो ठीक ही है क्योंकि नदियोंके प्रवाह नम्री-भूत वेतसके पौधोंको नहीं उखाड़ते ॥६५॥

तदनन्तर राजा पृथुने, सब लोगोंको आनन्द उत्पन्न करनेवाले दोनों वीरोंको बड़े वैभवके साथ नगरमें प्रविष्ट कराया ॥६६॥ वहाँ पृथुने महाविभवसे सहित अपनी कनकमाला कन्या वीर मदनाङ्कुशके लिए देना निश्चित किया ॥६७॥ तदनन्तर कार्य करनेमें निपुण दोनों वीर वहाँ एक रात्रि व्यतीतकर इस समस्त पृथिवीको जीतनेके लिए नगरसे बाहर निकल पड़े ॥६८॥ सुह्य, अङ्ग, मगध, वङ्ग तथा पोदनपुर आदिके राजाओंसे घिरे हुए दोनों कुमार कोकाक्षनगरको जानेके लिए उद्यत हुए ॥६९॥ बहुत बड़ी सेनासे सहित दोनों वीर उससे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक देशोंपर सुखसे आक्रमण करते हुए लोकाक्ष नगरके समीप पहुँचे ॥७०॥ वहाँ जिस प्रकार गरुडके पङ्क नागको क्षोभित करते हैं उसी प्रकार उन दोनोंने वहाँके कुबेरकान्त नामक अभि-

१. नगरीं जेतुं म० । २. कृतौ म० । ३. मेतैः ज० । ४. समवक्षोभतां म० ।

चतुरङ्गाकुले भीमे परमे समराङ्गणे । जित्वा कुबेरकान्तं तौ पूर्यमाणबलौ भृशम् ॥७२॥
 सहस्रैर्नरनाथानामावृत्तौ वश्यतां गतैः । कृच्छ्राधिगमने यानैर्लम्पाकविषयं गतौ ॥७३॥
 एककर्णं विनिर्जित्य राजानं तत्र पुष्कलम् । गतौ मार्गानुकूलत्वाद्भेन्द्रीं विजयस्थलीम् ॥७४॥
 तत्र भ्रातृशतं जित्वा समालोकनमाश्रतः । गतौ गङ्गां समुत्तीर्य कैलासस्योत्तरां दिशम् ॥७५॥
 तत्र नन्दनचारुणां देशानां कृतसङ्गमौ । पूज्यमानौ नरश्रेष्ठैर्नानोपायनपाणिभिः ॥७६॥
 भाषकुन्तलकालाम्बुनन्दिनन्दनसिंहलान् । शलभाननलांश्चौलान्भीमान् भूतरवादिकान् ॥७७॥
 नृपान् वश्यत्वमानीय सिन्धुः कूलं परं गतौ । परार्णवतटान्तस्थान् चक्रतुः प्रणतान्कृत्वा ॥७८॥
 पुरखेटमटम्बेन्द्रा विषयादीश्वराश्च ये । वशत्वे स्थापितास्ताभ्यां कांश्चित्तान् कीर्त्तयामि हे ॥७९॥
 एते जनपदाः केचिदार्यां म्लेच्छास्तथा परे । विद्यमानद्वयाः केचिद् विविधाचारसम्भवाः ॥८०॥
 भीरवो यवनाः कषाश्वारवस्त्रिजटा नटाः । शककेरलनेपाला मालवारुलशर्वराः ॥८१॥
 वृषाणवैद्यकाश्मीरा हिडिम्बावष्टवर्वराः । त्रिशिराः पारशैलाश्च गौशीलोशीनराण्डकाः ॥८२॥
 सूर्यारकाः सनर्ताश्च खशा विन्ध्याः शिखापदाः । मेखलाः शूरसेनाश्च बाह्लीकौलूककोसलाः ॥८३॥
 दरीगान्धारसौवीराः पुरीकौबेरकोहराः । अन्धकालकलिङ्गाद्या नानाभाषा पृथग्गुणाः ॥८४॥
 विचित्ररत्नवस्त्राद्या बहुपादपजातयः । नानाकरसमायुक्ता हेमादिवसुशाङ्गिणः ॥८५॥
 देशानामेवमादीनां स्वामिनः समराजिरे । जिताः केचिद्गताः केचित्प्रतापादेव वश्यताम् ॥८६॥
 ते महाविभैर्युक्ता देशभाजोऽनुरागिणः । लवणाङ्कुशयोरिच्छां कुर्वाणा बभ्रमुर्महीम् ॥८७॥

मानी राजाको क्षोभयुक्त किया ॥७१॥ तदनन्तर चतुरङ्ग सेनासे युक्त अत्यन्त भयंकर रणाङ्गण में कुबेरकान्तकी जीतकर वे आगे बढ़े, उस समय उनकी सेना अत्यधिक बढ़ती जाती थी ॥७२॥ वहाँसे चलकर आधीनताको प्राप्त हुए हजारों राजाओंसे घिरे हुए लम्पाक देशको गये वहाँ स्थलमार्गसे जाना कठिन था इसलिए नौकाओंके द्वारा जाना पड़ा ॥७३॥ वहाँ एककर्ण नामक राजाको अच्छी तरह जीतकर मार्गकी अनुकूलता होनेसे दोनों ही कुमार विजयस्थली गये ॥७४॥ वहाँ देखने मात्रसे ही सौ भाइयोंकी जीतकर तथा गङ्गा नदी उतरकर दोनों कैलास की ओर उत्तर दिशामें गये ॥७५॥ वहाँ उन्होंने नन्दनवनके समान सुन्दर-सुन्दर देशोंमें अच्छी तरह गमन किया तथा नाना प्रकारकी भेंट हाथमें लिये हुए उत्तम मनुष्योंने उनकी पूजा की ॥७६॥ तदनन्तर भाषकुन्तल, कालाम्बु, नन्दी, नन्दन, सिंहल, शलभ, अनल, चौल, भीम तथा भूतरव आदि देशोंके राजाओंको वशकर वे सिन्धुके दूसरे तटपर गये तथा वहाँ पश्चिम समुद्रके दूसरे तटपर स्थित राजाओंको नम्रीभूत किया ॥७७-७८॥ पुरखेट तथा मटम्ब आदिके स्वामी एवं अन्य जिन देशोंके अधिपतियोंको उन दोनों कुमारोंने वश किया था हे श्रेणिक ! मैं यहाँ तेरे लिए उनका कुछ वर्णन करता हूँ ॥७९॥ ये देश कुछ तो आर्य देश थे, कुछ म्लेच्छ देश थे, और कुछ नाना प्रकारके आचारसे युक्त दोनों प्रकारके थे ॥८०॥ भीरु, यवन, कन्न, चारु, त्रिजट, नट, शक, केरल, नेपाल, मालव, आरुल, शर्वर, वृषाण, वैद्य, काश्मीर, हिडिम्ब, अवष्ट, वर्वर, त्रिशिर, पारशैल, गौशील, उशीनर, सूर्यारक, सनर्त, खशा, विन्ध्य, शिखापद, मेखल, शूरसेन, बाह्लीक, उलूक, कोसल, दरी, गांधार, सौवीर, पुरी, कौबेर, कोहर, अन्ध, काल और कलिङ्ग इत्यादि अनेक देशोंके स्वामी रणाङ्गणमें जीते गये थे और कितने ही प्रतापसे ही आधीनताको प्राप्त हो गये थे । इन सब देशोंमें अलग-अलग नाना प्रकार की भाषाएँ थीं, पृथक्-पृथक् गुण थे, नाना प्रकार रत्न तथा वस्त्रादिका पहिराव था, वृद्धोंकी नाना जातियाँ थीं, अनेक प्रकारकी खानें थीं और सुवर्णादि धनसे सब सुशोभित थे ॥८१-८६॥ महावैभवसे युक्त तथा अनुरागसे सहित नाना देशोंके मनुष्य लवणाङ्कुशकी इच्छानुसार कार्य

प्रसाद्य पृथिवीमेतामथ तौ पुरुषोत्तमौ । नानाराजसहस्राणां महतामुपरि स्थितौ ॥८८॥
 रत्नवीं विषयान् सम्यङ् नानाचारुकथारतौ । पौण्डरीकपुरं (?) तेन प्रस्थितौ पुरुसम्मदौ ॥८९॥
 राट्टाद्यधिकृतैः पूजां प्राप्यमाणौ च भूयसीम् । समीपीभावतां प्राप्त्वा पुण्डरीकस्य पार्थिवैः ॥९०॥
 ततः सप्तमभूपृष्ठं प्रासादस्य समाश्रिता । वृता परमनारीभिः सुखासनपरिग्रहा ॥९१॥
 तरलच्छातजीमूतपरिधूसरमुत्थितम् । रजःपटलमद्राक्षीदप्राचीच्च सखीजनम् ॥९२॥
 किमिदं दृश्यते सख्यो दिगाक्रमणचञ्चलम् । ऊचुस्ता देवि सैन्यस्य रजश्चक्रमिदं भवेत् ॥९३॥
 तथा हि पश्य मध्येऽस्य ज्ञायते स्वच्छवारिणः । अर्धायं मकराणां वा प्लवमानकदम्बकम् ॥९४॥
 नूनं स्वामिनि सिद्धार्थो कुमारवागताविमौ । तथा ह्येतौ प्रदृश्येते तावेव भुवनोत्तमौ ॥९५॥
 आसीदेवं कथा यावत्सीतादेव्या मनोहरा । तावदग्रेसराः प्राप्ता नरा दृष्टनिवेदिनः ॥९६॥
 उपशोभा ततः पृथ्वी समस्ता नगरे कृता । लोकेनादरयुक्तेन विभ्रता तोषमुत्तमम् ॥९७॥
 प्राकारशिखरावल्पासुच्छ्रिता विमलध्वजाः । मार्गदेशाः कृता दिव्यतोरणासङ्गसुन्दराः ॥९८॥
 आगुत्वैः पूरितो राजमार्गः पुष्पैः सुगन्धिभिः । चाहवन्दनमालाभिः शोभमानः पदे पदे ॥९९॥
 स्थापिता द्वारदेशेषु कलशाः पद्मदाननाः । पद्मवस्त्रादिभिः शोभा कृता चापणवर्त्मनि ॥१००॥
 विद्याधरैः कृतं देवैराहोस्त्वित्पद्मया स्वयम् । पौण्डरीकपुरं जातमयोध्यासमदर्शनम् ॥१०१॥
 दृष्ट्वा सम्प्रविशन्तौ तौ महाविभ्रतसङ्गतौ । आसीन्नगरनारीणां लोको दुःशक्यवर्णनः ॥१०२॥

करते हुए पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥८७॥ इस प्रकार इस पृथिवीको प्रसन्न कर वे दोनों पुरुषोत्तम, अनेक हजार बड़े-बड़े राजाओंके ऊपर स्थित थे ॥८८॥ नाना प्रकारकी सुन्दर कथाओंमें तत्पर तथा अत्यधिक हर्षको धारण करनेवाले वे दोनों कुमार देशोंकी अच्छी तरह रक्षा करते हुए पौण्डरीकपुरकी ओर चले ॥८९॥ राष्ट्रोंके प्रथम अधिकारी राजाओंके द्वारा अत्यधिक सन्मानको प्राप्त कराये गये दोनों भाई क्रम-क्रमसे पौण्डरीकपुरकी समीपताको प्राप्त हुए ॥९०॥

तदनन्तर महलकी सातवीं भूमिपर सुखसे बैठी एवं उत्तम स्त्रियोंसे घिरी सीताने चञ्चल पतले मेघके समान धूसर वर्ण धूलिपटलको उठते देखा तथा सखीजनोंसे पूछा कि हे सखियो ! दिशाओंपर आक्रमण करनेमें चञ्चल अर्थात् सब ओर फैलनेवाली यह क्या वस्तु दिखाई देती है ? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि यह सेनाका धूलिपटल होना चाहिये ॥९१-९३॥ इसीलिए तो देखो स्वच्छ जलके समान इस धूलिपटलके बीचमें मगरमच्छोंके तैरते हुए समूहके समान घोड़ोंका समूह दिखाई दे रहा है ॥९४॥ हे स्वामिनि ! जान पड़ता है कि ये दोनों कुमार कृत-कृत्य होकर आये हैं, हों देखो, वे ही लोकोत्तम कुमार दिखाई दे रहे हैं ॥९५॥ इस तरह जब तक सीता देवीकी मनोहर कथा चल रही थी कि तब तक दृष्ट समाचारकी सूचना देनेवाले अग्रगामी पुरुष आ पहुँचे ॥९६॥ तदनन्तर उत्तम सन्तोषको धारण करनेवाले आदरयुक्त मनुष्यों ने नगरमें सब प्रकारकी विशाल शोभा की ॥९७॥ कोटके शिखरोंके ऊपर निर्मल ध्वजाएँ फहराई गईं, मार्ग दिव्यतोरणोंसे सुन्दर किये गये ॥९८॥ राजमार्ग घुटनों तक सुगन्धित फूलोंसे भरा गया एवं पद-पद पर सुन्दर बन्दनमालाओंसे युक्त किया गया ॥९९॥ द्वारों पर पल्लवोंसे युक्त कलश रक्खे गये और बाजारकी गलियोंमें रेशमी वस्त्रादिसे शोभा की गई ॥१००॥ उस समय पौण्डरीकपुर अयोध्याके समान दिखाई देता था, सो ऐसा जान पड़ता था मानो विद्याधरों ने, देवोंने अथवा लक्ष्मीने ही स्वयं उसकी वैसी रचना की हो ॥१०१॥ महा वैभवके साथ प्रवेश करते हुए उन दोनों कुमारोंको देखकर नगरकी स्त्रियोंमें जो चेष्टा हुई उसका वर्णन करना

आशासुप्तौ समालोक्य कृतकृत्याबुपागतौ । निममञ्जेव वैदेही^१ सिन्ध्यावमृतवारिणि ॥१०३॥

आर्या छन्दः

विरचितकरपुटकमलौ जननीमुपगम्य सादरौ परमम् ।
 नेमतुरवनतशिरसौ सैन्यरजोधूसरौ वीरौ ॥१०४॥
 तनयस्नेहप्रवणा पद्मप्रमदा सुतौ परिष्वज्य ।
 करतलकृतपरमर्शा शिरसि^२ निनिक्षोत्तमानन्दा ॥१०५॥
 जननीजनितं^३ तौ पुनरभिनन्द्य परं प्रसादमानन्त्या ।
 रविचन्द्राविव लोकव्यवहारकरौ स्थितौ योऽवम् ॥१०६॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे लवणाङ्कुशदिग्विजयकीर्त्तनं नामैकाधिकशतं पर्व ॥१०१॥

अशक्य है ॥१०२॥ कृतकृत्य होकर पास आये हुए पुत्रोंको देखकर सीता तो मानो अमृतके समुद्रमें ही डूब गई ॥१०३॥ तदनन्तर जिन्होंने कमलके समान अञ्जलि बाँध रखी थी, जो अत्यधिक आदरसे सहित थे, जिनके शिर झुके हुए थे तथा जो सेना की धूलिसे धूसर थे ऐसे दोनों वीरोंने पास आकर माताको नमस्कार किया ॥१०४॥ जो पुत्रोंके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें निपुण थी, हस्ततलसे जो उनका स्पर्श कर रही थी तथा जो उत्तम आनन्दसे युक्त थी ऐसी रामकी पत्नी-सीताने उनका मस्तक चूमा ॥१०५॥ तदनन्तर वे माताके द्वारा किये हुए परम प्रसादको पुनः पुनः नमस्कारके द्वारा स्वीकृत कर सूर्य चन्द्रमाके समान लोक व्यवहारको सम्पन्न करते हुए यथायोग्य सुखसे रहने लगे ॥१०६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्रीरविषेणाचार्य द्वारा रचित श्री पद्मपुराणमें लवणाङ्कुश की दिग्विजयका वर्णन करनेवाला एकसौ एकवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०॥

द्वयुत्तरशतं पर्व

एवं तौ परमैश्वर्यं प्राप्तवानुत्तममानवौ । स्थितावाज्ञां प्रयच्छन्तानुकृतानां महीभृताम् ॥१॥
 तदा कृतान्तवक्त्रं तु नारदः परिपृच्छवान् । जानकीत्यजभोदेशं दुःखां भ्राम्यन् गवेषकः ॥२॥
 दर्शनेऽवस्थितौ वीरौ प्राप ताभ्यां च पूजितः । आसनादिप्रदानेन गृहस्थमुनिवेषभृत् ॥३॥
 ततः सुखं समासीनः परमं तोषमुद्बहन् । अब्रवीत्तावद्वारः कृतस्तिग्धनिरीक्षणः ॥४॥
 रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीर्यादर्शा नरनाथयोः । तादृशां सर्वथा भूयादचिराद्भवतोरपि ॥५॥
 ततस्तावूचतुः कौ तौ भगवन् रामलक्ष्मणौ । कीदृग्गुणसमाचारौ कस्य वा कुलसम्भवौ ॥६॥
 ततो जगावद्वारः कृत्वा विस्मितमाननम् । स्थिरमूर्तिः क्षणं स्थित्वा भ्रमयन् करपल्लवम् ॥७॥
 भुजाभ्यामुत्क्षिपेन्मेरुं प्रतरन्निम्नगापतिम् । नरो न तद्गुणान् वक्तुं समर्थः कश्चिदेतयोः ॥८॥
 अनन्तेनाऽपि कालेन वदनैरन्तवर्जितैः । सकलोऽपि न लोकोऽयं तयोर्वक्तुं गुणान् ह्यमः ॥९॥
 इदं तद्गुणसम्प्रश्नप्रतीकारसमाकुलम् । हृदयं कम्पमानं मे पश्यतां जातकौतुकौ ॥१०॥
 तथापि भवतोर्वक्ष्यात् स्थूलोच्चयसमाश्रयात् । वदामि तद्गुणं किञ्चिच्छुणुतं पुण्यवर्द्धनम् ॥११॥
 अस्तीश्वरानुकुलव्योमसकलामलचन्द्रमाः । नाम्ना दशरथो राजा दुर्बुत्तेन्धनपावकः ॥१२॥
 अघ्नितिष्ठन् महातेजोमूर्त्तिरुत्तरकोसलम् । सवितेव प्रकाशत्वं धत्ते यः सर्वविष्टपे ॥१३॥
 पुरुषाद्गीन्द्रतो यस्माञ्जि.सृताः कीर्तिसिन्धवः । उदन्वत् सङ्गता वीध्रा ह्यादयन्त्यखिलं जगत् ॥१४॥
 तस्य राज्यमहाभारवहनक्षमचेष्टिताः । चत्वारौ गुणसम्पन्नास्तनया सुनया इव ॥१५॥

अथानन्तर परम ऐश्वर्यको प्राप्त हुए वे दोनों पुरुषोत्तम बड़े-बड़े राजाओंको आज्ञा प्रदान करते हुए स्थित थे॥१॥ उसी समय कृतान्तवक्त्र सेनापतिसे सीताके छोड़नेका स्थान पूछकर उसकी खोज करनेवाले दुखी नारद भ्रमण करते हुए वहाँ पहुँचे । सो दोनों ही वीर उनकी दृष्टिमें पड़े । गृहस्थमुनि अर्थात् लुल्लक्षका वेष धारण करनेवाले उन नारदजीका दोनों ही कुमारोंने आसनादि देकर सम्मान किया॥२-३॥ तदनन्तर सुखसे बैठे परम सन्तोषको धारण करते एवं स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए नारदने उन कुमारोंसे कहा कि राजा राम लक्ष्मणकी जैसी विभूति है सर्वथा वैसी ही विभूति शीघ्र ही आप दोनोंकी भी हो ॥४-५॥ इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि हे भगवन् ! वे राम लक्ष्मण कौन हैं ? कैसे उनके गुण और समाचार हैं तथा किस कुलमें उत्पन्न हुए हैं ? ॥६॥

तदनन्तर क्षणभरके लिए निश्चल शरीर बैठकर मुखको आश्चर्यसे चकित करते एवं करपल्लवको हिलाते हुए नारद बोले ॥७॥ कि मनुष्य भुजाओंसे मेरुको उठा सकता है और समुद्रको तैर सकता है परन्तु इन दोनोंके गुण कहनेके लिए कोई समर्थ नहीं है ॥८॥ यह सबका सब संसार, अनन्तकाल तक और अनन्त जिह्वाओंके द्वारा भी उनके गुण कहनेके लिए समर्थ नहीं है ॥९॥ आपने उनके गुणोंका प्रश्न किया सो इनके उत्तर स्वरूप प्रतिकारसे आकुल हुआ हमारा हृदय काँपने लगा है । आप कौतुकके साथ देखिये ॥१०॥ फिर भी आपलोगोंके कहनेसे स्थूलरूपमें उनके कुल पुण्यवर्धक गुण कहता हूँ सो सुनो ॥११॥

इक्ष्वाकुवंशरूपी आकाशके पूर्णचन्द्रमा तथा दुराचाररूपी ईन्धनके लिए अग्निस्वरूप एक दशरथ नामके राजा थे ॥१२॥ जो महातेजस्वरूप थे । उत्तर कोसल देशपर शासन करते थे तथा सूर्यके समान समस्त संसारमें प्रकाश करते थे ॥१३॥ जिस पुरुषरूपी पर्वतराजसे निकली और समुद्रमें गिरी हुई कीर्तिरूपी उज्ज्वल नदियाँ समस्त संसारको आनन्दित करती हैं ॥१४॥ राज्यका

१. विस्मितमानसम् म० । २. भ्रामयन् म० ।

३२-३

राम इत्यादितस्तेषामभिरामः समन्ततः । आद्यः सर्वश्रुतज्ञोऽपि विश्रुतः सर्वविष्टपे ॥१६॥
 लक्ष्मणेनानुजेनासौ सांतया च द्वितीयया । जनकस्य नरेन्द्रस्य सुतयाऽयन्नभक्तया ॥१७॥
 'जानकं पालयन् सत्यं कृत्वाऽयोध्यां वितानिकाम् । छद्मस्थः पर्यटन् क्षीर्णो प्राविच्छद्वण्डकं वनम् ॥१८॥
 स्थानं तत्र परं दुर्गं महाविद्याभृतामपि । सोऽध्यास्त खैणवृत्तान्तं जातं चन्द्रनखाभवम् ॥१९॥
 संग्रामे वेदितुं वार्तां पद्मोऽगादनुजस्य च । दशग्रीवेण वैदेही हता च द्रुवर्तिना ॥२०॥
 ततो महेन्द्रकिष्किन्धश्रीशैलमलयेश्वराः । नृपा विराधिताद्याश्च प्रधानाः कपिकेतवः ॥२१॥
 महासाधनसम्पन्ना महाविद्यापराक्रमाः । रामगुणानुरागेण पुण्येन च समाश्रिताः ॥२२॥
 लङ्केश्वरं रणे जित्वा वैदेही पुनराहृता । देवलोकपुरीतुल्या विनीता च कृता खरीः ॥२३॥
 तत्र तौ परमैश्वर्यसेवितौ पुरुषोत्तमौ । नागेन्द्रात्रिव मोदते सन्मुखं रामलक्ष्मणौ ॥२४॥
 रामो वा न कथं ज्ञातो यस्य लक्ष्मीधरोऽनुजः । चक्रं सुदर्शनं यस्य मोघतापरिवर्जितम् ॥२५॥
 एकैकं रचयते यस्य तदेकगतचेतसा । रत्नं देवसहस्रेण राजराजस्य कारणम् ॥२६॥
 सन्त्यक्ता जानकी येन प्रजानां हितकाम्यया । तस्य रामस्य लोकेऽस्मिन्नास्ति कश्चिद्देवकः ॥२७॥
 आस्तां तावदयं लोकः स्वर्गेऽयस्य गुणैः कृताः । मुखरा देवसङ्घातास्तत्परायणचेतसः ॥२८॥
 ततोऽङ्कुशो जगादासौ मुने रामेण जानकी । कस्य हेतोः परित्यक्ता वद वाञ्छामि वेदितुम् ॥२९॥
 ततः कथितनिःशेषवृत्तान्तमिदमभ्यधात् । तद्गुणाकृष्टचेतस्को देवर्षिः सास्त्रवीक्षणः ॥३०॥

महाभार उठानेमें जिनकी चेष्टाएँ समर्थ हैं तथा जो गुणोंसे सम्पन्न हैं ऐसे उनके सुनयके समान चार पुत्र हैं ॥१६॥ उन सब पुत्रोंमें राम प्रथम पुत्र है जो सब ओरसे सुन्दर हैं तथा सर्वशास्त्रों के ज्ञाता होनेपर भी जो समस्त संसारमें विभ्रम अर्थात् शास्त्रसे रहित (पक्षमें—प्रसिद्ध) हैं ॥१६॥ अपने छोटे भाई लक्ष्मण और स्त्री सीताके साथ जो कि राजा जनककी पुत्री थी तथा अत्यन्त भक्त थी, पिताके सत्यकी रक्षा कराते हुए अयोध्याको सूनीकर छद्मस्थवेषमें पृथिवीपर भ्रमण करने लगे तथा भ्रमण करते हुए दण्डकवनमें प्रविष्ट हुए ॥१७-१८॥ वहाँ महाविद्याधरोंके लिए भी अत्यन्त दुर्गम स्थानमें वे रहते थे और वहाँ चन्द्रनखा सम्बन्धी स्त्रीका वृत्तान्त हुआ अर्थात् चन्द्रनखाने अपना त्रियाचरित्र दिखाया ॥१९॥ उधर राम, छोटे भाईकी वार्ता जाननेके लिए युद्धमें गये उधर कपटवृत्ति रावणने सीताका हरण कर लिया ॥२०॥ तदनन्तर महेन्द्र, किष्किन्ध, श्रीशैल और मलयके अधिपति तथा विराधित आदि प्रधान-प्रधान वानरवंशी राजा जो कि महासाधनसे सम्पन्न और विद्यारूप महापराक्रमके धारक थे, रामके गुणोंके अनुरागसे अथवा अपने पुण्योदयसे इनके समीप आये और युद्धमें रावणको जीतकर सीताको वापिस ले आये । विद्याधरोंने अयोध्याको स्वर्गपुरीके समान कर दिया ॥२१-२३॥ परम ऐश्वर्यसे सेवित, पुरुषोंमें उत्तम श्रीराम लक्ष्मण वहाँ नागेन्द्रोंके समान एक दूसरेके सम्मुख आनन्दसे समय बिताते थे ॥२४॥ अथवा अभीतक आप दोनोंको उन रामका ज्ञान क्यों नहीं हुआ जिनका कि वह लक्ष्मण अनुज हैं, जिनके पास कभी व्यर्थ नहीं जाने वाला सुदर्शन चक्र विराजमान है ॥२५॥ इसके सिवाय जिसके पास ऐसे और भी रत्न हैं जिनकी एकाग्रचित्त होकर प्रत्येककी हजार-हजार देव रक्षा करते हैं तथा जो उसके राजाधिराजत्वके कारण हैं ॥२६॥ जिन्होंने प्रजाके हित की इच्छासे सीताका परित्याग कर दिया, इस संसारमें ऐसा कौन है जो रामकी नहीं जानता हो ॥२७॥ अथवा इस लोककी बात जाने दो इसके गुणोंसे स्वर्गमें भी देवोंके समूह शब्दायमान तथा तत्परचित्त हो रहे हैं ॥२८॥

तदनन्तर अङ्कुशने कहा कि हे मुने ! रामने सीता किस कारण छोड़ी सो कहो मैं जानना चाहता हूँ ॥२९॥ तत्पश्चात् सीताके गुणोंसे जिनका चित्त आकृष्ट हो रहा था तथा जिनके नेत्रोंमें

विशुद्धगोत्रचारित्रहृदया गुणशालिनी । अष्टयोषित्सहस्राणामग्रणीः सुविचक्षणा ॥३१॥
 सावित्रीं सह गायत्रीं श्रियं कीर्त्तिं धृतिं द्वियम् । पवित्रत्वेन निर्जित्य स्थिता जैनश्रुतेः समा ॥३२॥
 नूनं जन्मान्तरोपात्तपापकर्मानुभावतः । जनापवादमात्रेण त्यक्ताऽसौ विजने वने ॥३३॥
 दुर्लोकधर्मभानूक्तिर्दाधितिप्रतितापिता । प्रायेण विलयं प्राप्ता सती सा सुखवद्धिता ॥३४॥
 सुकुमाराः प्रपद्यन्ते दुःखमप्यनुकारणात्^१ । म्लान्ति मालतीमालाः प्रदीपालोकमात्रतः ॥३५॥
 अरण्ये किं पुनर्भीमे स्थालजालसमाकुले । वैदेही धारयेत् प्राणानसूर्यम्परयलोचना ॥३६॥
 जिह्वा दुष्टभुजङ्गीव सन्दूष्यानागसं जनम् । कथं न पापलोकस्य व्रजत्येवं निवर्त्तनम् ॥३७॥
 आर्जवादिगुणरत्नाध्यामयन्तविमलां सतीम् । अपोद्य तादृशीं लोको दुःखं प्रेत्येह चारनुते ॥३८॥
 अथवा स्वोचिते नित्यं कर्मण्याश्रितजागरे । किमत्र भाष्यतां कस्य संसारोऽत्र जुगुप्सितः ॥३९॥
 इत्युत्त्वा शोकभारेण समाक्रान्तमना मुनिः । न किञ्चिच्छत्रनुवन्वक्तुं मौनयोगमुपाश्रितः ॥४०॥
 अथाङ्कुशो विहस्योत्थे ब्रह्मन् कुलशोभनम् । कृतं रामेण वैदेहीं मुञ्चता भीषणे वने ॥४१॥
 अहो जनवादस्य निराकरणहेतवः । सन्ति तत्र किमित्येवं विद्धां किल चकार सः ॥४२॥
 अनङ्गलवणोऽवोचद्विनीता नगरी मुने । कियद्दूरं ततोऽवोचद्वद्वारगतिप्रियः ॥४३॥
 योजनानामयोध्या स्थादितः षष्ट्यधिकं शतम् । यस्यां स वर्तते रामः शशाङ्कविमलप्रियः ॥४४॥
 कुमारावूचतुर्थाव्रस्तं निर्जैतुं किमास्यते । महीकुटीरके ह्यस्मिन् कस्यान्यस्य प्रधानता ॥४५॥

आसूँ छलक आये थे ऐसे नारदने कथा पूरी करते हुए कहा ॥३०॥ कि उसका गोत्र, चारित्र तथा हृदय अत्यन्त शुद्ध है, वह गुणोंसे सुशोभित है, आठ हजार स्त्रियोंकी अग्रणी है, अतिशय पण्डिता है, अपनी पवित्रतासे सावित्री, गायत्री, श्री, कीर्ति, धृति और ह्री देवीको पराजितकर विद्यमान हैं तथा जिनवाणीके समान हैं ॥३१-३२॥ निश्चित ही जन्मान्तरमें उपार्जित पाप कर्मके प्रभावसे केवल लोकापवादके कारण उन्होंने उसे निर्जन वनमें छोड़ा है ॥३३॥ सुखसे वृद्धिको प्राप्त हुई वह सती दुर्जनरूपी सूर्यकी कटूक्तिरूपी किरणोंसे संतप्त होकर प्रायः नष्ट हो गई होगी ॥३४॥ क्योंकि सुकुमार प्राणी थोड़े ही कारणसे दुःखको प्राप्त हो जाते हैं जैसे कि मालतीकी माला दीपकके प्रकाशमात्रसे मुरझा जाती है ॥३५॥ जिसने अपने नेत्रोंसे कभी सूर्य नहीं देखा ऐसी सीता हिंसक जन्तुओंसे भरे हुए अर्थकर वनमें क्या जीवित रह सकती है ? ॥३६॥ पापी मनुष्यकी जिह्वा दुष्ट भुजङ्गीके समान निरपराध लोगोंको दूषित कर निवृत्त क्यों नहीं होती है ? ॥३७॥ आर्जवादि गुणोंसे प्रशंसनीय और अत्यन्त निर्मल सीता जैसी सतीका जो अपवाद करता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों ही जगह दुःखको प्राप्त होता है ॥३८॥ अथवा अपने द्वारा बंचित कर्म आश्रित प्राणीके नष्ट करनेके लिए जहाँ सदा जागरूक रहते हैं वहाँ किससे क्या कहा जाय ? इस विषयमें तो यह संसार ही निन्दाका पात्र है ॥३९॥ इतना कहकर जिनका मन शोकके भारसे आक्रान्त हो गया था ऐसे नारदमुनि आगे कुछ भी नहीं कह सके अतः चुप बैठ गये ॥४०॥

अथानन्तर अङ्कुशने हँस कर कहा कि हे ब्रह्मन् ! भयंकर वनमें सीताको छोड़ते हुए रामने कुलकी शोभाके अनुरूप कार्य नहीं किया ॥४१॥ लोकापवादके निराकरण करनेके अनेक उपाय हैं फिर उनके रहते हुए क्यों उन्होंने इस तरह सीताको विद्ध किया—घायल किया ॥४२॥ अनंगलवण नामक दूसरे कुमारने भी कहा कि हे मुने ! यहाँसे अयोध्या नगरी कितनी दूर है ? इसके उत्तरमें भ्रमणके प्रेमी नारदने कहा कि वह अयोध्या यहाँसे साठ योजन दूर है जिसमें चन्द्रमाके समान निर्मल प्रियाके स्वामी राम रहते हैं ॥४३-४४॥ यह सुन दोनों कुमारोंने कहा कि हम उन्हें

उच्यतेऽत्रजङ्घं च मामास्मिन्वसुधातले । सुहृत्सिन्धुकलिङ्गाद्या राजानः सर्वसाधनाः ॥४६॥
 आज्ञाप्यन्तां यथा क्षिप्रमयोध्यागमनं प्रति । सजीभवत सर्वेण रणयोग्येन वस्तुना ॥४७॥
 संलक्ष्यन्तां महानागा विमदा मदशालिनः । समुद्भूतमहाशब्दा वाजिनो वायुरंहसः ॥४८॥
 योधाः कटकविख्याताः समरादपलायिनः । निरीक्ष्यन्तां सुशस्त्राणि भाज्यतां कण्टकादिकम् ॥४९॥
 तूर्यनादा प्रदाप्यन्तां शङ्कनिःस्वानसङ्गताः । महाहवसमारम्भसम्भाषणविचक्षणः ॥५०॥
 एवमाज्ञाप्य सङ्ग्रामसमानन्दसमागतम् । आधाय मानसे धीरौ महासम्पदसङ्गतौ ॥५१॥
 शकाविव विनिश्चिन्त्य त्रिदशान् धरणीपतीन् । महाविभवसम्पन्नौ यथास्वं तस्थतुः सुखम् ॥५२॥
 ततस्तयोः समाकर्ण्य पद्मनाभाभिषेणनम् । उत्कण्ठां विभ्रती तुङ्गां रुरोद् जनकारमजा ॥५३॥
 ततः सीतासमीपस्थं सिद्धार्थो नारदं जगौ । इदमीदृक्कवयाऽऽरब्धं कथं कार्यमशोभनम् ॥५४॥
 सम्प्रोत्साहनशीलेन रणकौतुकिना परम् । स्वयेदं रचितं परथ कुटुम्बस्य विभेदनम् ॥५५॥
 स जगाद न जानामि वृत्तान्तमहमीदृशम् । यतः सङ्ग्रहं न्यस्तं पश्लक्ष्मणगोचरम् ॥५६॥
 एवं गतेऽपि मा भैर्वानेह किञ्चिदसुन्दरम् । भविष्यतीति जानामि स्वस्थतां नीयतां मनः ॥५७॥
 ततः समीपतां गत्वा तं कुमारावबोचताम् । अम्बेदं रुद्यते कस्माद्भद्रक्षेपविजितम् ॥५८॥
 प्रतिकूलं कृतं केन केन वा परिभाषितम् । दुर्मानसस्य कस्याद्य करोम्यसुवियोजनम् ॥५९॥
 अनौपथिकरः कोऽसौ क्रीडनं कुरुतेऽहिना । कोऽसौ ते मानवः शोकं करोति त्रिदशोऽपि वा ॥६०॥
 कस्यासि कुपिता मातर्जनस्य गलितायुषः । प्रसादः क्रियतामम्ब शोकहेतुनिवेदने ॥६१॥

जीतनेके लिए चलते हैं । इस पृथिवीरूपी कुटियामें किसी दूसरेकी प्रधानता कैसे रह सकती है ? ॥४५॥ उन्होंने वज्रजंघसे भी कहा कि हे माम ! इस वसुधा तल पर जो सुहृ, सिन्धु तथा कलिङ्ग आदि सर्वसाधनसम्पन्न राजा हैं उन्हें आज्ञा दी जाय कि आप लोग अयोध्याके प्रति चलनेके लिए रण के योग्य सब वस्तुएँ लेकर शीघ्र ही तैयार हो जावें ॥४६-४७॥ मद रहित तथा मदसहित बड़े-बड़े हाथी, महाशब्द करनेवाले तथा वायुके समान शीघ्रगामी घोड़े, सेनामें प्रसिद्ध तथा युद्धसे नहीं भागनेवाले योद्धा देखे जावें, उत्तम शस्त्रोंका निरीक्षण किया जाय, कवच आदि साफ किये जावें और महायुद्धके प्रारम्भकी खबर देनेमें निपुण तथा शङ्खके शब्दोंसे मिश्रित तुरहीके शब्द दिलाये जावें ॥४८-५०॥ इस प्रकार राजाओंको आज्ञा दे जो प्राप्त हुए युद्ध सम्बन्धी आनन्दको हृदयमें धारण कर अत्यधिक हर्षसे युक्त थे ऐसे धीर-वीर तथा महावैभवसे सम्पन्न दोनों कुमार उन इन्द्रोंके समान जो देवोंको आज्ञा देकर निश्चिन्त हो जाते हैं निश्चिन्त हो यथा योग्य सुखसे विद्यमान हुए ॥५१-५२॥

तदनन्तर उनकी रामके प्रति चढ़ाई सुन अत्यधिक उत्कण्ठाको धारण करती हुई सीता रौने लगी ॥५३॥ तत्पश्चात् सीताके समीप खड़े नारदसे सिद्धार्थने कहा कि तुमने यह ऐसा अशोभन कार्य क्यों प्रारम्भ किया ? ॥५४॥ रणके कौतुकी एवं रणका प्रोत्साहन देनेवाले तुमने देखो यह कुटुम्बका बड़ा भेद कर दिया है—वरमें बड़ी फूट डाल दी है ॥५५॥ नारदने कहा कि मैं इस वृत्तान्तको ऐसा थोड़े ही जानता था । मैंने तो केवल उनके सामने राम-लक्ष्मण सम्बन्धी चर्चा ही रक्खी थी ॥५६॥ किन्तु ऐसा होने पर भी डरो मत कुल्ल भी अशोभन कार्य नहीं होगा यह मैं जानता हूँ अतः मनको स्वस्थ करो ॥५७॥ तदनन्तर दोनों कुमार समीप जाकर सीतासे बोले कि हे अम्ब ! क्यों रो रही हो ? बिना किसी विलम्बके शीघ्र ही कहो ॥५८॥ किसने तुम्हारे विरुद्ध काम किया है अथवा किसने तुम्हारे विरुद्ध कुल्ल कहा है ? आज किस दुष्ट हृदयके प्राणोंका वियोग करूँ ? ॥५९॥ ओषधि जिसके हाथमें नहीं ऐसा वह कौन मनुष्य साँपके साथ क्रीड़ा करता है ? वह कौन मनुष्य अथवा देव है जो तुम्हें शोक उत्पन्न करता है ? ॥६०॥ हे मातः ! आज किस क्षीणायुष्क पर कुपित हुई हो ? हे अम्ब ! शोक

एवमुक्त्वा सर्ता देवी जगाद् विष्टलास्त्रहा । न कस्यचिदहं पुत्रौ कुपिता कमलेश्वरी ॥६२॥
 भवस्वितुर्मया ध्यातमद्य तेनाऽस्मि दुःखिता । रोदिमि प्रबलायातनयनोदकसन्ततिः ॥६३॥
 उक्तवत्यामिदं तस्यां तदा श्रेणिक वीरयोः । सिद्धार्थो न पिताऽस्माकमिति बुद्धिः समुद्रगता ॥६४॥
 ततस्ताबूचतुर्मातः कोऽस्माकं जनकः क्व वा । इति पृष्टाऽगदस्तीता स्ववृत्तान्तमशेषतः ॥६५॥
 स्वस्य सम्भवमाचख्यौ रामसम्भवमेव च । अरण्यागसनं चैव हृतिमागमनं तथा ॥६६॥
 यथा देवर्षिणा ख्यातं तच्च सर्वं सविस्तरम् । वृत्ततेऽद्यापि कः कालो वृत्तान्तस्य निगूहने ॥६७॥
 एतदुक्त्वा जगौ पुत्रौ भवतोर्गर्भजातयोः । किंवदन्तीभयेनाहं युष्मत्पित्रोऽङ्गिता वने ॥६८॥
 तत्र सिंहवास्थायामटव्यां कृतरोदना । वारणार्थं गतेनाहं वज्रजङ्घेन वीक्षिता ॥६९॥
 अनेन प्राप्सनागेन विनिवर्त्तनकारिणा । विशुद्धशीलरत्नेन श्रावकेण महात्मना ॥७०॥
 अहं स्वसेति सम्भाष्य करुणासक्तचेतसा । आनीतेदं निजं स्थानं पूजया चानुपालिता ॥७१॥
 तस्यास्य जनकस्येव भवने विभवान्विते । भवन्तौ सम्प्रसूताऽहं पद्मनाभशरीरजौ ॥७२॥
 तेनेयं पृथिवी वत्सी हिमवत्सागरावधिः । लक्ष्मणानुजयुक्तेन विहिता परिचारिका ॥७३॥
 महाऽऽह्वयेऽपुना जाते श्रोष्यामि किमशोभनम् । नाथस्य भवतोः किंवा किं वा देवरगोचरम् ॥७४॥
 अनेन ध्यानभारेण परिपीडितमानसा । अहं रोदिमि सत्पुत्रौ कुतोऽन्यदिह कारणम् ॥७५॥
 तच्छूत्वा परमं प्राप्तौ सम्मदं स्मितकारिणौ । विकासिवदनाम्भोजाबूचतुर्लवणाङ्कुशौ ॥७६॥

का कारण बतलानेकी प्रसन्नता करो ॥६१॥ इस प्रकार कहने पर सीता देवीने अश्रु धारण करते हुए कहा कि हे कमललोचन पुत्रो ! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ ॥६२॥ आज मुझे तुम्हारे पिताका स्मरण हो आया है इसीलिए दुःखी हो गई हूँ और इसीलिए बलात् अश्रु डालती हुई रो रही हूँ ॥६३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीताके इस प्रकार कहने पर उन दोनों वीरोंकी यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि सिद्धार्थ हमारा पिता नहीं है ॥६४॥ तत्पश्चात् उन दोनोंने पूछा कि हे मातः ! हमारा पिता कौन है ? कहाँ है ? इस प्रकार पूछने पर सीताने अपना सब वृत्तान्त कह दिया ॥६५॥ अपना जन्म, रामका जन्म, वनमें जाना, वहाँ हरण होना तथा पुनः वार्षिस आना आदि जैसा वृत्तान्त नारदने कहा था वैसा सब विस्तारसे कह सुनाया क्योंकि वृत्तान्तके छिपाने का अब कौन-सा अवसर है ? ॥६६-६७॥

यह कह कर सीताने कहा कि जब तुम दोनों गर्भमें थे तब लोकापवादके भयसे तुम्हारे पिताने मुझे वनमें छोड़ दिया था ॥६८॥ मैं उस सिंहरवा नामकी अटवीमें रो रही थी कि हाथी पकड़नेके लिए गये हुए वज्रजङ्घने मुझे देखा ॥६९॥ जो हाथी प्राप्त कर अटवीसे लौट रहा था, जो विशुद्ध शक्ति रूपी रत्नका धारक था, महात्मा था एवं दयालुचित्त था, ऐसा यह श्रावक वज्रजङ्घ मुझे बहिन कह इस स्थान पर ले आया और बड़े सन्मानके साथ उसने हमारा पालन किया ॥७०-७१॥ जो तुम्हारे पिताके ही समान है ऐसे इस वज्रजङ्घके वैभवशाली घरमें मैंने तुम दोनोंको जन्म दिया है । तुम दोनों श्रीरामके शरीरसे उत्पन्न हो ॥७२॥ हे वत्सी ! लक्ष्मण नामक छोटे भाईसे सहित उन श्रीरामने हिमालयसे लेकर समुद्रपर्यन्तकी इस समस्त पृथिवीको अपनी दासी बनाया है ॥७३॥ अब आज उनके साथ तुम्हारा महायुद्ध होनेवाला है सो मैं क्या पतिकी अमाङ्गलिक वार्ता सुनूँगी ? या तुम्हारी ? अथवा देवर की ? ॥७४॥ इसी ध्यानके कारण खिन्न चित्त होनेसे मैं रो रही हूँ । हे भले पुत्रो ! यहाँ और दूसरा कारण क्या हो सकता है ? ॥७५॥

यह सुनकर लवणाङ्कुश परम हर्षको प्राप्त हो आश्चर्य करने लगे, और उनके मुखकमल खिल उठे । उन्होंने कहा कि अहो ! वह सुधन्वा, लोकश्रेष्ठ, श्रीमान्, विशाल एवं उज्ज्वल कीर्तिके

अहो सोऽसौ पिताऽस्माकं सुधन्वा लोकपुङ्गवः । श्रीमान् विशालसर्कतिः कृतानेकमहाद्भुतः ॥७७॥
 विषादं मां गमः मातर्बने त्यक्ताहमित्यतः । भग्नां मानोन्नतिं पश्य रामलक्ष्मणयोर्दुःखम् ॥७८॥
 सीताश्रवाद्दलमलं विरोद्धुं गुरुणा सुतो । न वर्तत हृदं कर्तुं व्रजतां सौम्यचित्तताम् ॥७९॥
 महाधिनययोगेन समागत्य कृतानती । पितरं पश्यतं वत्सो मार्गोऽयं नयसङ्गतः ॥८०॥
 ऊचतुस्तौ रिपुस्थानप्राप्तं मातः कथं नु तम् । भ्रूवो गत्वा वचः क्लोबनावां ते तनयाविति ॥८१॥
 वरं मरणमावाभ्यां प्राप्तं सङ्ग्राममूर्च्छनि । न तु भावितमोहं प्रवीरजननिन्दितम् ॥८२॥
 स्थितायामथ वैदेह्यां जोषं चिन्तार्तचेतसि । अभिषेकादिकं कृत्यं भेजाते लवणाङ्कुशौ ॥८३॥
 श्रितमङ्गलसङ्घौ च कृतसिद्धनमस्कृतौ । प्रसान्तव्य मातरं किञ्चित् प्रणम्य च मुमङ्गलौ ॥८४॥
 भारुदौ द्विरदौ चन्द्रसूर्यौ वा नगमस्तकम् । प्रस्थितावभिसाकेतं लङ्कां वा रामलक्ष्मणौ ॥८५॥
 ततः सङ्गाहसङ्घेन ज्ञात्वा निर्गमनं तयोः । क्षिप्रं योधसहस्राणि निर्जयमुः पौण्डरीकतः ॥८६॥
 परस्परप्रतिस्पर्द्धासमुत्कषिप्तचेतसाम् । सैन्यं दर्शयतां राज्ञां संघट्टः परमोऽभवत् ॥८७॥
 स्वैरं योजनमात्रं तौ महाकटकसङ्गतौ । पालयन्तौ महीं सम्यङ् नौशस्योपशोभिताम् ॥८८॥
 अग्रतः मसृतोदारप्रतापी परमेश्वरौ । प्रयातौ विषयन्यस्तैः पूज्यमानौ नरेश्वरैः ॥८९॥
 महाकुठारहस्तानां तथा कुहालधारिणाम् । पुंसां दशसहस्राणि संप्रयांति तदग्रतः ॥९०॥
 क्षिन्दन्तः पादपादींस्तै जनयन्ति समन्ततः । उच्चावचनिर्मुक्तां महीं दर्पणसन्निभाम् ॥९१॥

धारक तथा अनेक महान् आश्चर्यके करनेवाले श्री राम हमारे पिता हैं ॥७६-७७॥ हे मातः !
 'मैं क्लममें छोड़ी गई हूँ' इस बातका विषाद मत करो । तुम शीघ्र ही राम-लक्ष्मणका अहंकार
 खण्डित देखो ॥७८॥ तब सीताने कहा कि हे पुत्रो ! पिताके साथ विरोध करना रहने दो । यह
 करना उचित नहीं है । तुम लोग शान्तचित्तताको प्राप्त करो ॥७९॥ हे वत्सो ! बड़ी विनयके साथ
 जाओ और नमस्कार कर पिताके दर्शन करो यही मार्ग न्यायसंगत है ॥८०॥

यह सुन लवणाङ्कुशने कहा कि वे हमारे शत्रुके स्थानको प्राप्त हैं अतः हे मातः ! हम लोग
 जाकर यह दीन वचन उनसे किस प्रकार कहें कि हम तुम्हारे लड़के हैं ॥८१॥ संप्रामके अग्रभाग
 में यदि हम लोगोंको मरण प्राप्त होता है तो अच्छा है परन्तु वीर मनुष्योंके द्वारा निन्दित ऐसा
 विचार रखना अच्छा नहीं है ॥८२॥ अधानन्तर जिसका चित्त चिन्तासे दुःखी हो रहा था ऐसी
 सीता चुप हो रही और लवणाङ्कुशने स्नान आदि कार्य सम्पन्न किये ॥८३॥ तत्पश्चात् जिन्होंने
 मङ्गलमय मुनिसंघकी सेवा की थी, सिद्ध भगवान्को नमस्कार किया था तथा माताको सान्त्वना
 देकर प्रणाम किया था ऐसे मङ्गलमय वेपको धारण करनेवाले दोनों कुमार दो हाथियों पर उस
 प्रकार आरूढ़ हुए जिस प्रकार कि चन्द्रमा और सूर्य पर्वतके शिखर पर आरूढ़ होते हैं । तदनन्तर
 दोनोंने अयोध्याकी ओर उस तरह प्रयाण किया जिस तरह कि राम-लक्ष्मणने लङ्काकी ओर
 किया था ॥८४-८५॥ तत्पश्चात् तैयारीके शब्दसे उन दोनोंका निर्गमन जानकर हजारों योधा
 शीघ्र ही पौण्डरीकपुरसे बाहर निकल पड़े ॥८६॥ परस्परकी प्रतिस्पर्द्धासे जिनका चित्त बढ़ रहा
 था ऐसे अपनी-अपनी सेनाएँ दिखलानेवाले राजाओंमें बड़ी धक्कम-धक्का हो रही थी ॥८७॥
 तदनन्तर जो एक योजन तक फैली हुई बड़ी भारी सेनासे सहित थे जो नाना प्रकारके
 धान्यसे सुशोभित पृथिवीका अच्छी तरह पालत करते थे, जिनका उत्कृष्ट प्रताप आगे-
 आगे चल रहा था और जो उन-उन देशोंमें स्थापित राजाओंके द्वारा पूजा प्राप्त कर रहे थे,
 ऐसे दोनों भाई प्रजाकी रक्षा करते हुए चले जा रहे थे ॥८८-८९॥ बड़े-बड़े कुल्हाड़े और
 कुदालें धारण करनेवाले दश हजार पुरुष उनके आगे-आगे चलते थे ॥९०॥ वे वृत्तों आदिको

१. सुधन्वी म० । २. त्यक्त्वाह-म० । ३. पश्यत म० । ४. प्रशान्त्य म० । ५. नाशस्योप-म० ।

महियोद्भमहोत्थाया कोशसंभारवाहिनः । प्रयान्ति प्रथमं^१ गन्त्री पत्तयश्च मृदुस्वनाः ॥६२॥
 ततः पदातिस्ङ्घाता युवसारङ्गविभ्रमाः । पश्चात्सुरङ्गवृन्दानि कुर्वन्त्युत्तमवसिगतम् ॥६३॥
 अथ काञ्चनकक्षाभिर्निर्नातानुकृतराजनाः । महाघण्टाकृतस्वानाः शङ्खचामरधारिणः ॥६४॥
 बुद्बुदादर्शलम्बूपचारुवेपा महोद्धताः । अयस्ताम्रसुवर्णादिबद्धशुभ्रमहारदाः ॥६५॥
 रत्नचामीकराद्यामकण्ठमालाविभूषिताः । चलत्पर्वतस्ङ्घाशा नानावर्णकसङ्गिनः ॥६६॥
 केचिन्निर्भरनिश्च्योतद्रूपा मुकुलितेक्षणाः । हृष्टा दानोद्भवाः केचिद्देगचण्डा घनोपमाः ॥६७॥
 अधिष्ठिताः सुसन्नाहैर्नानाशास्त्रविशारदैः । समुद्भूतमहाशब्दैः पुरुषैः पुरुदोहिभिः ॥६८॥
 स्वान्यसैन्यमुद्भूतनिनादज्ञानकोविदाः । सर्वशिक्षासुसम्पन्ना दन्तिनश्चारुविभ्रमाः ॥६९॥
 विभ्राणाः कवचं चारु पश्चाद्द्विन्यस्तखेटकाः । सादिनस्तत्र राजन्ते परमं कुन्तपाणयः ॥७०॥
 आश्ववृन्दखुराघातसमुद्भूतेन रेणुना । नभः पाण्डुरजीमूतचथैरिव^२ समन्ततम् ॥७१॥
 शस्त्रान्धकारपिहिता नानाविभ्रमकारिणः । अहंयवः समुद्भूताः प्रवर्तन्ते पदातयः ॥७२॥
 शयनासनताम्बूलगन्धमाल्यैर्मनोहरैः । न कश्चिद्दुःस्थितस्तत्र वस्त्राहारविलेपनैः ॥७३॥
 नियुक्ता राजवाक्येन सन्तताः पथि मानवाः । दिने दिने महादक्षा बद्धकक्षाः सुचेतसः ॥७४॥
 मधु शीघु घृतं वारि नानाञ्जं रसवत्परम् । परमाद्रसम्पन्नं प्रयच्छन्ति समन्ततः ॥७५॥

काटते हुए ऊँची-नीची भूमिको सब ओरसे दर्पणके समान करते जाते थे ॥६१॥ सबसे-पहले खजानेके भारको धारण करनेवाले भैसे ऊँट तथा बड़े-बड़े बैल जा रहे थे । फिर कोमल शब्द करते हुए गाड़ियोंके सेवक चल रहे थे । तदनन्तर तरुण हरिणके समान उछलनेवाले पैदल सैनिकोंके समूह और उनके बाद उत्तम चेष्टाएँ करनेवाले घोड़ोंके समूह जा रहे थे ॥६२-६३॥ उनके पश्चात् जो सुवर्णकी मालाओंसे अत्यधिक सुशोभित थे, जिनके गलेमें बाँधे हुए बड़े-बड़े घण्टा शब्द कर रहे थे, जो शङ्खों और चामरोंको धारण कर रहे थे, काँचके छोटे-छोटे गोले तथा दर्पण तथा फन्तूसों आदिसे जिनका वेष बहुत सुन्दर जान पड़ता था, जो महाउहण्ड थे, जिनकी सफेद रङ्गकी बड़ी-बड़ी खीसों लोहा तामा तथा सुवर्णादिसे जड़ी हुई थीं, जो रत्न तथा सुवर्णादिसे निर्मित कण्ठमालाओसे विभूषित थे, चलते-फिरते पर्वतोंके समान जान पड़ते थे, नाना रङ्गके चित्रामसे सहित थे, जिनमेंसे किन्हींके गण्डस्थलोंसे अत्यधिक मद् भ्रर रहा था, कोई नेत्र-बन्द कर रहे थे, कोई हर्षसे परिपूर्ण थे, किन्हींके मद्की उत्पत्ति होनेवाली थी, कोई वेगसे तीक्ष्ण थे और कोई मेघोंके समान थे, जो कवच आदिसे युक्त, नाना शास्त्रोंमें निपुण, महाशब्द करनेवाले और अत्यन्त तेजस्वी पुरुषोंसे अधिष्ठित थे, जो अपनी तथा परायी सेनामें उत्पन्न हुए शब्दके जाननेमें निपुण थे, सर्वप्रकारकी शिक्षासे सम्पन्न थे और सुन्दर चेष्टाको धारण करनेवाले थे ऐसे हाथी जा रहे थे ॥६४-६६॥ उनके पश्चात् जो सुन्दर कवच धारण कर रहे थे, जिन्होंने पीछेकी ओर ढाल टाँग रखी थी तथा भाले जिनके हाथोंमें थे ऐसे घुड़सवार सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ अश्वसमूहके खुराघातसे उठी धूलिसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो सफेद मेघोंके समूहसे ही व्याप्त हो गया हो ॥७१॥ उनके पश्चात् जो शस्त्रोंके अन्धकारसे आच्छादित थे, नाना प्रकारकी चेष्टाओंको करनेवाले थे, अहङ्कारी थे तथा उदात्त आचारसे युक्त थे ऐसे पदाति चल रहे थे ॥७२॥ उस विशाल सेनामें शयन, आसन, पान, गन्ध, माला तथा मनोहर वस्त्र, आहार और विलेपन आदिसे कोई दुःखी नहीं था अर्थात् सबके लिए उक्त पदार्थ सुलभ थे ॥७३॥ राजाकी आज्ञानुसार नियुक्त होकर जो मार्गमें सब जगह व्याप्त थे, अत्यन्त चतुर रण कार्य करनेके लिए जो सदा कमर कसे रखते थे और उत्तम हृदयसे युक्त थे ऐसे मनुष्य प्रति

१. मन्त्री म० । २. समन्ततः म० । ३. अहङ्कारयुक्ताः 'अहंशुभयोर्युस्' इति युष्मत्प्रत्ययः ।

नादशिं मलिनस्तत्र न दीनो न बुभुक्षितः । नृषितो न कुवन्नो वा जनो न च विचिन्तकः ॥१०६॥
 नानाभरणसम्पन्नाश्चरुवेषाः सुकान्तयः । पुरुषास्तत्र नार्यश्च रेजुः सैन्यमहार्णवे ॥१०७॥
 विभूत्या परया युक्तावेवं जनकजात्मजौ । साकेताविषयं प्राप्ताविन्द्राविव सुरास्पदम् ॥१०८॥
 यवपुण्ड्रेक्षुगोधूमप्रभृत्युत्तमसम्पदा । सस्येन शोभिता यत्र वसुधान्तरवर्जिता ॥१०९॥
 सरितो राजहंसौषैः सरांसि कमलोत्पलैः । पर्वता विविधैः पुष्पैर्गीतैरुद्यानभूमयः ॥११०॥
 नैचिकीमहिषीन्नातैर्महोत्तस्वरहारिभिः । गोपीभिर्मञ्जसक्ताभिर्यत्र भान्ति वनानि च ॥१११॥
 सीमान्तावस्थिता यत्र प्राप्ता नगरसक्तिभाः । त्रिविष्टपपुराभानि राजन्ते नगराणि च ॥११२॥
 स्वैरं तसुवसुञ्जानौ विषयं विषयप्रियम् । परेण तेजसा युक्तौ गच्छन्ती लवणाङ्कुशौ ॥११३॥
 दन्तिनां रणचण्डानां गण्डनिर्गतवारिणां । कर्दमत्वं समानीता सकलाः पथि पांसवः ॥११४॥
 भृशं पटुखुराघातैर्वाजिनां चञ्चलात्मनाम् । जर्जरत्वमिवानीता कोसलाविषयावनिः ॥११५॥
 ततः सन्ध्यासमासक्तघनौघेनेव सङ्गतम् । दूरे नभः समालक्ष्य जगद्गुल्लवणाङ्कुशौ ॥११६॥
 किमेतद्दृश्यते माम तुङ्गशोणमहाद्युतिं । वज्रजङ्घस्ततोऽवोत्पपरिज्ञाय चिरादिव ॥११७॥
 देवावेषा विनीतासौ दृश्यते नगरी परा । हेमप्राकारसङ्गता यस्याश्छायेयसुजता ॥११८॥
 अस्यां हलधरः श्रीमानास्तेऽसौ भवतोः पिता । यस्य नारायणो भ्राता शत्रुघ्नश्च महागुणः ॥११९॥
 शौर्यमानसमेताभिः कथामिरेतिसक्तयोः । सुखेन गच्छसोरासीदन्तराले तयोर्नदी ॥१२०॥

बड़े आदरके साथ सबके लिए मधु, स्वादिष्ट पेय, घी, पानी और नाना प्रकारके रसीले भोजन सब ओर प्रदान करते रहते थे ॥१०४-१०५॥ उस सेनामें न तो कोई मनुष्य मलिन दिखाई देता था, न दीन, न भूखा, न प्यासा, न कुत्सित वस्त्र धारण करनेवाला और न चिन्तातुर ही दिखाई पड़ता था ॥१०६॥ उस सेनारूपी महासागरमें नाना आभरणोंसे युक्त, उत्तम वेशसे सुसज्जित एवं उत्तम कान्तिसे युक्त पुरुष और स्त्रियाँ सुशोभित थीं ॥१०७॥ इस प्रकार परमविभूतिसे युक्त सीताके दोनों पुत्र उस तरह अयोध्याके उस देशमें पहुँचे जिस तरह कि इन्द्र देवोंके स्थानमें पहुँचते हैं ॥१०८॥ जौ, पौंडे, ईख तथा गेहूँ आदि उत्तमोत्तम धान्योंसे जहाँकी भूमि निरन्तर सुशोभित है ॥१०९॥ वहाँकी नदियाँ राजहंसोंके समूहोंसे, तालाब कमलों और कुत्रलयोंसे, पर्वत नाना प्रकारके पुष्पोंसे और बाग-बगीचोंकी भूमियाँ सुन्दर संगीतांसे सुशोभित हैं ॥११०॥ जहाँ के वन बड़े-बड़े बैलोंके शब्दोंसे, सुन्दर गायों और भैंसोंके समूहसे तथा मचानपर बैठी गोपालिकाओंसे सुशोभित हैं ॥१११॥ जहाँकी सीमाओंपर स्थित गाँव नगरोंके समान और नगर स्वर्गपुरीके समान सुशोभित हैं ॥११२॥ इस तरह पञ्चेन्द्रियके विषयोंसे प्रिय उस देशका इच्छानुसार उपभोग करते हुए, परमतेजके धारक लवणाङ्कुश आनन्दसे चले जाते थे ॥११३॥ रणके कारण तीव्र क्रोधको प्राप्त हुए हाथियोंके गण्डस्थलसे भरनेवाले जलसे मार्गकी समस्त धूलि कीचड़पने को प्राप्त हो गई थी ॥११४॥ चञ्चल धोड़ोंके तीक्ष्ण खुरावातसे उस कोमल देशको भूमि माने अत्यन्त जर्जर अवस्थाको प्राप्त हो गई थी ॥११५॥

तदनन्तर लवणाङ्कुश, दूरसे ही आकाशको सन्ध्याकालीन मेघोंके समूह सहित जैसा देखकर बोले कि हे माम ! जिसकी लाल-लाल विशाल कान्ति बहुत ऊँची उठ रही है ऐसा यह क्या दिखाई दे रहा है ? यह सुन वज्रजङ्घने बहुत देरतक पहिचाननेके बाद कहा कि हे देवो ! यह वह उत्कृष्ट अयोध्या नगरी दिखाई दे रही है जिसके सुवर्णमय कोटकी यह कान्ति इतना ऊँची उठ रही है ॥११६-११८॥ इस नगरीमें वह श्रीमान् बलभद्र रहते हैं जो कि तुम दोनोंके पिता हैं तथा नारायण और महागुणवान् शत्रुघ्न जिनके भाई हैं ॥११९॥ इस तरह शूर-वीरता

१. नैचिकी—म०, नैचिकी=धेनुः । २. वारिणां म० । ३. व्युतिः म० । ४. भवतः म० ।

५. रात्सक्तयोः म० ।

प्रवृत्तवेगमात्रेण नगरी ग्रहणैपिणोः । जाताऽसावन्तरे नृणा सिद्धिप्रस्थितयोदिव ॥१२१॥
 सैन्यमात्रासितं तत्र परिश्रमसमागतम् । सुरसैन्यमिवोदारमुपनन्दननिम्नगाम् ॥१२२॥
 अथ ध्रुत्वा परानीकं स्थितमासन्नगोचरे । किञ्चिद्विस्मयमापञ्चावृत्तुः पञ्चलपमणौ ॥१२३॥
 त्वरितं कः पुनर्मर्त्तुमयं वाञ्छति मानवः । युद्धापदेशमाश्रित्य यदेत्यन्तिकमावधोः ॥१२४॥
 ददौ नारायणश्चाज्ञां विराधितमर्हामृते । क्रियतां साधनं सज्जं युद्धाय क्षेपवर्जितम् ॥१२५॥
 वृपनामप्लवङ्गादिकेतनाः खेत्राधिपाः । क्रियन्तामुदितज्ञाना सम्प्राप्ते रणकर्माणि ॥१२६॥
 यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा विराधितखगेश्वरः । नृपान् किष्किन्धनाथाद्यान् समाह्वय समुद्यतः ॥१२७॥
 दूतदर्शनमात्रेण सर्वे ते खचरेश्वराः । अयोध्यानगरीं प्राप्ता महासाधनसङ्गताः ॥१२८॥
 अथात्यन्ताकुलात्मानौ तदा सिद्धार्थभारद्वौ । प्रभामण्डलराजाय गत्वा ज्ञापयतां द्रुतम् ॥१२९॥
 ध्रुत्वा स्वसुर्यथा वृत्तं वात्सल्यगुणयोगतः । बभूव परमं दुःखी प्रभामण्डलमण्डितः ॥१३०॥
 विषाद् विस्मयं हर्षं विभ्रान्श्च त्वरान्वितः । आरूढ्य मनसा तुल्यं विमानं पितृसङ्गतः ॥१३१॥
 समेतः सर्वसैन्येन किङ्कर्तव्यत्वविह्वलः । पौण्डरीकपुरं चैव प्रस्थितः स्नेहनिर्भरः ॥१३२॥
 प्रभामण्डलमायातं जनकं मातरं तथा । दृष्ट्वा सीता नवीभूतशोकोत्थाय त्वरान्विता ॥१३३॥
 विप्रलापं परिश्रव्य चक्रेऽस्रकृतदुर्दिना । निर्वासनादिकं दुःखं वेदयन्ती सुविह्वला ॥१३४॥
 सान्त्वयित्वाऽतिकृच्छ्रेण तां प्रभामण्डलो जगौ । देवि संशयमापन्नौ पुत्रौ ते साधु नो कृतम् ॥१३५॥

और गौरवसे सहित कथाओंसे जो अत्यन्त प्रसन्न थे ऐसे सुखसे जाते हुए उन दोनोंके बीच नदी आ पड़ी ॥१२०॥ जो अपने चालू वेगसे ही उस नगरीको ग्रहण करनेकी इच्छा रखते थे ऐसे उन दोनों वीरोंके बीच वह नदी उस प्रकार आ पड़ी जिसप्रकार कि मोक्षके लिए प्रस्थान करनेवालेके बीच नृणा आ पड़ती है ॥१२१॥ जिस प्रकार नन्दन, वनकी नदीके समीप देवोंकी विशाल सेना ठहराई जाती है उसी प्रकार उस नदीके समीप थकी माँदी सेना ठहरा दी गई ॥१२२॥

अथानन्तर शत्रुकी सेनाको निकटवर्ती स्थानमें स्थित सुन परम आश्चर्यको प्राप्त होते हुए राम लक्ष्मणने कहा कि ॥१२३॥ यह कौन मनुष्य शीघ्र ही मरना चाहता है जो युद्धका बहाना लेकर हम दोनोंके पास चला आ रहा है ॥१२४॥ लक्ष्मणने उसी समय राजा विराधितको आज्ञा दी कि बिना किसी विलम्बके युद्धके लिए सेना तैयार की जाय ॥१२५॥ रणका कार्य उपस्थित हुआ है इसलिए वृष, नाग तथा वानर आदिकी पताकाओंको धारण करने वाले विद्याधर राजाओंको सब समाचारका ज्ञान कराओ अर्थात् उनके पास सब समाचार भेजे जाय ॥१२६॥ 'जैसी आप आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कह कर राजा विराधित सुमीव आदि राजाओंको बुला कर युद्धके लिए उद्यत हो गया ॥१२७॥ दूतके देखते ही वे सब विद्याधर राजा बड़ी-बड़ी सेनाएं लेकर अयोध्या आ पहुँचे ॥१२८॥

अथानन्तर जिनकी आत्मा अत्यन्त आकुल हो रही थी ऐसे सिद्धार्थ और नारदने शीघ्र ही जा कर भामण्डलके लिए सब खबर दी ॥१२९॥ बहिन सीताका जो हाल हुआ था उसे सुन कर वात्सल्य गुणके कारण भामण्डल बहुत दुखी हुआ ॥१३०॥ तदनन्तर विषाद् विस्मय और हर्षको धारण करने वाला, शीघ्रतासे सहित एवं स्नेहसे भरा भामण्डल, किङ्कर्तव्यविमूढ हो पिता सहित मनके समान शीघ्रगामी विमान पर आरूढ़ हो सब सेनाके साथ पौण्डरीकपुरकी ओर चला ॥१३१-१३२॥ भामण्डल, पिता और माताको आया देख जिसका शोक नया ही गया था ऐसी सीता शीघ्रतासे उठ सबका आलिङ्गन कर आसुओंकी लगातार वर्षा करती हुई विलाप करने लगी । वह उस समय अपने परित्याग आदिके दुःखको बतलाती हुई विह्वल हो उठती थी ॥१३३-१३४॥ भामण्डलने उसे बड़ी कठिनाईसे सान्त्वना देकर कहा कि हे देवि ! तेरे पुत्र

हलचक्रयरी ताभ्यामुपेत्य क्षोभितौ यतः । सुराणामपि यौ वीरौ न जय्यौ पुरुषोत्तमौ ॥१३६॥
 कुमारयोस्तयोर्वावश्रमादो नोपजायते । मजामस्तावदेद्याशु चिन्तयामोऽभिरक्षणम् ॥१३७॥
 ततः स्नुषासमेताऽसौ भामण्डलविमानगा । प्रवृत्ता तनयौ तेन वज्रजङ्घलान्वितौ ॥१३८॥
 रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीं कोऽसौ वर्णयितुं क्षमः । इति श्रेणिक संक्षेपास्कीर्त्यमानमिदं शृणु ॥१३९॥
 रथाश्वगजपादात्महार्णवसमावृत्तौ । वहन्ताविव संरम्भं निर्गतौ रामलक्ष्मणौ ॥१४०॥
 भस्वयुक्तरथारूढः शत्रुघ्नश्च प्रतापवान् । हारराजितवक्त्रस्को निर्ययौ युद्धमातसः ॥१४१॥
 ततोऽभवत्कृतान्तास्यः सर्वसैन्यपुरःसरः । मानी हरिणकेशीव नाकौकःसैनिकाग्रणीः ॥१४२॥
 शरासनकृतच्छाद्यं चतुरङ्गं महाद्युति । अग्रमेयं बलं तस्य प्रतापपरिवारणम् ॥१४३॥
 सुरप्रासादसङ्काशो मध्यस्तम्भोऽन्तकध्वजः । शास्त्रवानीकदुःप्रेक्षो रेजे तस्य महारथः ॥१४४॥
 अनुमार्गं त्रिमूर्धोऽस्य ततो वह्निशिखो नृपः । सिंहविक्रमनामा च तथा दीर्घसुजश्रुतिः ॥१४५॥
 सिंहोदरः सुमेरुश्च बालिखिल्ये महाबलः । प्रचण्डो रौद्रभूतिश्च शरभः स्यन्दनः पृथुः ॥१४६॥
 कुलिशश्रवणश्चण्डो मारिदत्तो रणप्रियः । मृगोन्द्रवाहनाद्याश्च सामन्ता मत्तमानसाः ॥१४७॥
 सहस्रपद्मकेयता नानाशस्त्रान्धकारिणः । निर्जम्बुर्वन्दिनां वृन्दैरुद्गीतगुणकोटयः ॥१४८॥
 एवं कुमारकोट्योऽपि कुटिलानीकसङ्गताः । दृष्टप्रत्ययशस्त्राङ्गे क्षणविन्यस्तचक्षुषः ॥१४९॥
 युद्धानन्दकृतोत्साहा नाथभक्तिपरायणाः । महाबलारत्नरावयो निरीयुः कम्पितसमाः ॥१५०॥
 रथैः केचिन्नगैस्तुङ्गैर्द्विपैः केचिद्वचनोपमैः । महार्णवतरङ्गाभैस्तुरङ्गैरपरैः परैः ॥१५१॥

संशयको प्राप्त हुए है । उन्होंने यह अच्छा नहीं किया ॥१३५॥ उन्होंने जाकर उन बलभद्र और नारायणको क्षोभित किया है जो पुरुषोत्तम वीर देवोंके भी अजेय हैं ॥१३६॥ जब तक उन कुमारोंका प्रमाद नहीं होता है तब तक आओ शीघ्र ही चलें और रक्षाका उपाय सोचें ॥१३७॥ तदनन्तर पुत्र-बधुओं सहित सीता भामण्डलके विमानमें बैठ उस ओर चली जिस ओर कि वज्र-जङ्घ और सेनासे सहित दोनों पुत्र गये थे ॥१३८॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! राम लक्ष्मणकी पूर्ण लक्ष्मीका वर्णनके लिए कौन समर्थ है ? इसलिए संक्षेपसे ही यहाँ कहते हैं सो सुन ॥१३६॥ रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक रूप महासागरसे घिरे हुए राम लक्ष्मण क्रोधको धारण करते हुएके समान निकले ॥१४०॥ जो घोड़े जुते हुए रथ पर सवार था, जिसका वक्त्र स्थल हारसे सुशोभित था तथा जिसका मन युद्धमें लग रहा था ऐसा प्रतापी शत्रुघ्न भी निकल कर बाहर आया ॥१४१॥ जिस प्रकार हरिणकेशी देव सैनिकोंका अग्रणी होता है उसी प्रकार मानी कृतान्तवक्त्र सब सेनाका अग्रसर हुआ ॥१४२॥ जिसमें धनुषोंकी छाया हो रही थी तथा जो महा कान्तिसे युक्त थी ऐसी उसकी अपरिमित चतुरङ्गिणी सेना उसके प्रतापको बढ़ा रही थी ॥१४३॥ जिसमें बीचके स्वम्भा के ऊपर ध्वजा फहरा रही थी, तथा जो शत्रुओंकी सेनाके द्वारा दुर्निरीक्ष्य था ऐसा उसका बड़ा भारी रथ देवोंके महलके समान सुशोभित हो रहा था ॥१४४॥ कृतान्तवक्त्रके पीछे त्रिमूर्ध, फिर अग्निशिख, फिर सिंहविक्रम, फिर दीर्घबाहु, फिर सिंहोदर, सुमेरु, महाबलवान् बालिखिल्य, अत्यन्त क्रोधी रौद्रभूति, शरभ, स्यन्दन, क्रोधी वज्रकर्ण, युद्धका प्रेमी मारिदत्त, और मदीन्मत्त मनके धारक मृगोन्द्रवाहन आदि पाँच हजार सामन्त बाहर निकले । ये सभी सामन्त नाना शस्त्र रूपी अन्धकारको धारण करनेवाले थे तथा चारणोंके समूह उनके करोड़ों गुणोंका उद्गान कर रहे थे ॥१४५-१४८॥ इसी प्रकार जो कुटिल सेनाओंसे सहित थी, जिन्होंने विश्वासप्रद शस्त्र के ऊपर क्षण भरके लिए अपनी दृष्टि डाली था, युद्ध सन्बन्धी हर्षसे जिनका उत्साह बढ़ रहा था, जो स्वामीकी भक्तिमें तत्पर थी, महाबलवान् थी, शीघ्रतासे सहित थी और जिन्होंने पृथिवीको कम्पित कर दिया था ऐसी कुमारोंकी अनेक श्रेणियाँ भी बाहर निकली ॥१४९-१५०॥ नाना प्रकार

शिबिकाशिखरैः केचिद्युग्धैर्योन्यतरैः परे । निर्ययुर्बहुवादित्रबधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥१५२॥
 सकङ्कटशिरकाणाः क्रोधालिङ्गितचेतसः । पुरादृष्टसुविकान्तप्रसादपरसेवकाः ॥१५३॥
 ततः श्रुत्वा परानीकनिःस्वनं सम्भ्रमान्वितः । सङ्ग्रहातेति सैन्यं स्वं वज्रजङ्घः समादिशत् ॥१५४॥
 ततस्ते परसैन्यस्थ श्रुत्वा निःस्वनभावृताः । स्वयमेव सुसफदास्तस्यान्तिकमुपगमन् ॥१५५॥
 कालानलाप्रचण्डाङ्गवङ्गा नेपालवर्वराः । पौण्ड्रा मागधसौस्नाश्च पारशैलाः ससिंहलाः ॥१५६॥
 कालिङ्गाश्च राजानो रत्नमङ्गाद्या महाबलाः । एकादशसहस्राणि युक्ता ह्युत्तमतेजसा ॥१५७॥
 एवं तत्परमं सैन्यं परसैन्यकृताननम् । सकुट्टमुत्तमं प्राप्तं खलितं प्रचलायुधम् ॥१५८॥
 तयोः समागमो रौद्रो देवासुरकृताद्भुतः । बभूव सुमहाशब्दः क्षुब्धाकूपारधीरिव ॥१५९॥
 प्रहर प्रथमं क्षुद्र मुच्चाखं किमुपेदसे । प्रहन्तुं प्रथमं शखं न मे जातु प्रवर्तते ॥१६०॥
 प्रहृतं लघुना तेन विशदोऽभूद्रभुजो मम । प्रहरस्व वपुर्गाढं ददपीडितमुष्टिकः ॥१६१॥
 किञ्चिद् मज्ज पुरोभागं सन्नारो नास्ति सङ्गरे । सायकस्यैनमुजिम्भत्वा द्युरिकां वा समाश्रय ॥१६२॥
 किं वेपसे न हन्मि त्वां मुञ्च मार्गमयं परः । भटो युद्धमहाकण्डूचपलोऽप्रेऽवतिष्ठताम् ॥१६३॥
 किं वृथा गर्जसि क्षुद्र न वीर्यं वाचि तिष्ठति । अयं ते चेष्टितेनैव करोमि रणपूजनम् ॥१६४॥
 एवमाद्या महारावा भटानां शौर्यशालिनाम् । निश्चेरुरतिगम्भीरा वदनेभ्यः समन्ततः ॥१६५॥

के वादित्रोंसे जिन्होंने दिशाओंको बहिरा कर दिया था, जो कवच और टोपसे सहित थे, जिनके चित्त क्रोधसे व्याप्त थे, तथा जिनके सेवक पूर्व दृष्ट, परम पराक्रमी और प्रसन्नता प्राप्त करनेमें तत्पर थे ऐसे कितने ही लोग पर्वतोंके समान ऊँचे रथोंसे, कितने ही मेघोंके समान हाथियोंसे, कितने ही महासागरकी तरङ्गोंके समान घोड़ोंसे, कितने ही पालकीके शिखरोंसे और कितने ही अत्यन्त योग्य वृषभोंसे अर्थात् इन पर आरूढ हो बाहर निकले ॥१५१-१५३॥

तदनन्तर परकीय सेनाका शब्द सुनकर संभ्रमसे सहित वज्रजङ्घने अपनी सेनाको आदेश दिया कि तैयार होओ ॥१५४॥ तदनन्तर पर-सेनाका शब्द सुनकर कवच आदिसे आवृत सब सैनिक तैयार हो वज्रजङ्घके पास स्वयं आ गये ॥१५५॥ प्रलय कालकी अग्निके समान प्रचण्ड अङ्ग, बङ्ग, नेपाल, वर्वर, पौण्ड, मागध, सौस्न, पारशैल, सिंहक, कालिङ्गक तथा रत्नाङ्ग आदि महाबलवान् एवं उत्तमतेजसे युक्त ग्यारह हजार राजा युद्धके लिए तैयार हुए ॥१५६-१५७॥ इसप्रकार जिसने शत्रुसेनाकी ओर मुख किया था, तथा जिसमें शस्त्र चल रहे थे ऐसी वह चञ्चल उत्कृष्ट सेना उत्तम संघट्टको प्राप्त हुई अर्थात् दोनों सेनाओंमें तीव्र मुठभेड़ हुई ॥१५८॥ उन दोनों सेनाओंमें ऐसा भयंकर समागम हुआ जो पहले हुए देव और असुरोंके समागमसे भी कहीं आश्चर्यकारी था तथा क्षोभको प्राप्त हुए दो समुद्रोंके समागमके समान महाशब्द कर रहा था ॥१५९॥ 'अरे क्षुद्र ! पहले प्रहार कर, शस्त्र छोड़, क्यों उपेक्षा कर रहा है ? मेरा शस्त्र पहले प्रहार करनेके लिए कभी प्रयुक्त नहीं होता ॥१६०॥ अरे, उसने हलका प्रहार किये इससे मेरी भुजा स्वस्थ रही आई अर्थात् उसमें कुछ हुआ ही नहीं, जरा दृढ़ मुट्टी कसकर शरीरपर जोरदार प्रहार कर ॥१६१॥ कुछ सामने आ, युद्धमें वाणका संचार ठीक नहीं हो रहा है, अथवा फिर वाणको छोड़ छुरी उठा ॥१६२॥ क्यों काँप रहा है ? मैं तुम्हें नहीं मारता, मार्ग छोड़, युद्धकी महाखाजसे चपल यह दूसरा प्रबल योद्धा सामने खड़ा हो ॥१६३॥ अरे क्षुद्र ! व्यर्थ क्यों गरज रहा है ? वचनमें शक्ति नहीं रहती, यह मैं तेरी चेष्टासे ही रणकी पूजा करता हूँ' ॥१६४॥ इन्हें आदि लेकर, पराक्रमसे सुशोभित योद्धाओंके मुखोंसे सब ओर अत्यन्त गम्भीर महाशब्द निकल रहे

भूगोचरनरेन्द्राणां यथायातः समन्ततः । नभश्चरनरेन्द्राणां तथैवात्यन्तसङ्कुलः ॥१६६॥
 लवणाङ्कुशयोः पक्षे स्थितो जनकनन्दनः । वीरः पवनवेगश्च मृगाङ्को विद्युदुज्ज्वलः ॥१६७॥
 महापैन्यसमायुक्ता सुरलुन्दादयस्तथा । महाविद्याधरेशानां महारणविशारदाः ॥१६८॥
 लवणाङ्कुशसम्भृतिं श्रुतवानथ तस्वतः । अर्ध्रखेचरसामन्तसङ्कुट्टरलथतां नयन् ॥१६९॥
 यथा कर्तव्यविज्ञानप्रयोगात्यन्तकोविदः । वैदेहीसुतयोः पक्षं वायुपुत्रोऽन्यशिभिष्यन् ॥१७०॥
 लाङ्गलपाणिना तेन निर्यतां रामसैन्यतः । प्रभामण्डलवीरस्य चिन्तमानन्दवल्लभम् ॥१७१॥
 विमानशिखरारूढां ततः संदरय जानकीम् । औदासीन्यं ययुः सर्वं विहायश्चरपार्षिवाः ॥१७२॥
 कृताञ्जलिपुटाश्रैनां प्रणम्य परं पुराः । तस्थुरावृत्य बिभ्राणा विस्मयं परमोद्यतम् ॥१७३॥
 वित्रस्तहरिणीनेत्रा समुद्रपृष्ठतः पृष्ठः । वैदेही बलयोः सङ्गमालुलोके सवेपथुः ॥१७४॥
 क्षोभयन्तावथोदारं तस्मैन्यं प्रचलद्ध्वजम् । पद्मलक्ष्मीधरो तेन प्रवृत्तौ लवणाङ्कुशौ ॥१७५॥
 मृगानागारिसंलक्ष्यध्वजयोरनयोः पुरः । स्थितौ कुमारवारी तौ प्रतिपन्नमुखं श्रितौ ॥१७६॥
 आपातमात्रकेणैव रामदेवस्य सद्भवजम् । अनङ्गलवणश्चापं निचकर्त्त कृतायुधः ॥१७७॥
 विहस्य कार्मुकं यावत्सोऽन्यदादातुमुद्यतः । तामङ्गलवणवीरेण सरसा विरथीकृतः ॥१७८॥
 अथान्यं रथमारुह्य काकुत्स्थोऽलघुविक्रमः । अनङ्गलवणं क्रोधससर्पं भ्रुकुटीं बहन् ॥१७९॥
 घर्माकंदुर्निरीचयाक्षः समुत्त्थिसशरासनः । चमरासुरनाथस्य वज्रीवासौ गतोऽन्तिकम् ॥१८०॥

थे ॥१६५॥ जिसप्रकार भूमिगोचरी राजाओंकी ओरसे भयंकर शब्द आ रहा था उसी तरह विद्याधर राजाओंकी ओरसे भी अत्यन्त महान् शब्द आ रहा था ॥१६६॥ भामण्डल, वीर पवनवेग, विजलीके समान उज्ज्वल मृगाङ्क तथा महा विद्याधर राजाओंके प्रतिनिधि देवच्छन्द आदि जो कि बड़ी बड़ी सेनाओंसे युक्त तथा महायुद्धमें निपुण थे, लवणाङ्कुशके पक्षमें खड़े हुए ॥१६७-१६८॥

अथानन्तर जब कर्तव्यके ज्ञान और प्रयोगमें अत्यन्त निपुण हनूमानने लवणाङ्कुशकी वास्तविक उत्पत्ति सुनी तब वह विद्याधर राजाओंके संघट्टको शिथिल करता हुआ लवणाङ्कुशके पक्ष में आ गया ॥१६९-१७०॥ लाङ्गल नामक शस्त्रको हाथमें धारण कर रामकी सेनासे निकलते हुए हनूमानने भामण्डलका चित्त हर्षित कर दिया ॥१७१॥ तदनन्तर विमानके शिखरपर आरूढ जानकीको देखकर सब विद्याधर राजा उदासीनताको प्राप्त हो गये ॥१७२॥ और हाथ जोड़ बड़े आदरसे उसे प्रणाम कर अत्यधिक आश्चर्यको धारण करते हुए उसे घेरकर खड़े हो गये ॥१७३॥ सीताने जब दोनों सेनाओंकी सुठभेड़ देखी तब उसके नेत्र भयभीत हरिणीके समान चञ्चल हो गये, उसके शरीरमें रोमाञ्च निकल आये और कँपकँपी छूटने लगी ॥१७४॥

अथानन्तर चञ्चल ध्वजाओंसे युक्त उस विशालसेनाको क्षोभित करते हुए लवणाङ्कुश, जिस ओर राम लक्ष्मण थे उसी ओर बढ़े ॥१७५॥ इसतरह प्रतिपक्ष भावको प्राप्त हुए दोनों कुमार सिंह और गरुड़की ध्वजा धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणके सामने आ डटे ॥१७६॥ आते ही के साथ अनङ्गलवणने शस्त्र चलाकर रामदेवकी ध्वजा काट डाली और धनुष छेद दिया ॥१७७॥ हँसकर राम जब तक दूसरा धनुष लेनेके लिए उद्यत हुए तब तक वीर लवणने वेगसे उन्हें रथ रहित कर दिया ॥१७८॥ अथानन्तर प्रबल पराक्रमी राम, भौंह तानते हुए, दूसरे रथ पर सवार हो क्रोधवश अनङ्गलवणकी ओर चले ॥१७९॥ प्रीष्म कालके सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य नेत्रोंसे युक्त एवं धनुष उठाये हुए राम अनङ्गलवणके समीप उस प्रकार पहुँचे जिस प्रकार कि असुर कुमारोंके इन्द्र चमरेन्द्रके पास इन्द्र

स चापि जानकीसूनुदृष्ट्य सशरं धनुः । रणप्राघूर्णकं दातुं पद्मनाभमुपागमत् ॥१८१॥
 ततः परमभूद्युद्धं यज्ञस्य लवणस्य च । परस्परं समुकुत्तशस्त्रसङ्घातकर्कशम् ॥१८२॥
 महाहवो यथा जातः पद्मस्य लवणस्य च । अनुक्रमेण तेनैव लक्ष्मणस्याङ्कुशस्य च ॥१८३॥
 एवं द्वन्द्वमभूद्युद्धं स्वामिरागमुपेतुयाम् । सामन्तानामपि स्वस्ववीरशोभाभिलाषिणाम् ॥१८४॥
 अध्ववृन्दं क्वचित्सुक्लं तरङ्गकृतरङ्गणम् । निरुद्धं परचक्रेण घनं चक्रे रणाङ्गणम् ॥१८५॥
 क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं प्रतिपक्षं पुरःस्थितम् । निरीक्ष्य रणकण्डूलो निदधे मुखमन्यतः ॥१८६॥
 केचिन्नाथं समुत्सृज्य प्रविष्टाः परवाहिनीम् । स्वामिनाम समुच्चार्य निजधनुर्भिलक्षितम् ॥१८७॥
 अनाहतनराः केचिद्वर्षशौण्डा महाभटाः । प्रचरद्दानधारिणां करिणामरितामिताः ॥१८८॥
 दन्तशय्यां समाश्रित्य कश्चित्समददन्तिनः । रणनिद्रासुखं लेभे परमं भटसत्तमः ॥१८९॥
 कश्चिदभ्यायतोऽश्वस्य भग्नशस्त्रो महाभटः । अदत्त्वा पदवीं प्राणान् ददौ स करताडनम् ॥१९०॥
 प्रच्युतं प्रथमाघाताद्भटं कश्चिन्नृपान्वितः । भग्नन्तमपि नो भूयः प्रजहार महामनाः ॥१९१॥
 च्युतशस्त्रं क्वचिद्वीक्ष्य भटमच्युतमानसः । शस्त्रं दूरं परित्यज्य बाहुभ्यां योद्धुमुद्यतः ॥१९२॥
 दातारोऽपि प्रविश्याताः सदा समरवर्तिनः । प्राणानपि ददुर्वीरा न पुनः पृष्ठदर्शनम् ॥१९३॥
 असूक्तदर्मानिर्गन्तचक्रकृच्छ्रवलद्रथम् । तोत्रप्रतोदनोद्युक्तः त्वरितश्च न सारथिः ॥१९४॥
 क्रणदश्वसमुद्युद्धस्यन्दनोन्मुक्तर्चाकृतम् । तुरङ्गजवविचिसभटसीमन्तित्तविलम् ॥१९५॥

पहुँचता है ॥१८०॥ इधर सीतासुत अनङ्गलवण भी वाण सहित धनुष उठाकर रणकी भेंट देनेके लिए रामके समीप गये ॥१८१॥ तदनन्तर राम और लवणके बीच परस्पर कटे हुए शस्त्रोंके समूहसे कठिन परम युद्ध हुआ ॥१८२॥ इधर जिस प्रकार राम और लवणका महायुद्ध हो रहा था उधर उसी प्रकार लक्ष्मण और अङ्कुशका भी महायुद्ध हो रहा था ॥१८३॥ इसी प्रकार स्वामी के रागको प्राप्त तथा अपने अपने वीरोंकी शोभा दिखाने वाले सामन्तोंमें भी द्वन्द्व-युद्ध हो रहा था ॥१८४॥ कहीं परचक्रसे रुका और तरङ्गोंके समान चञ्चल ऊँचे घोड़ोंका समूह रणाङ्गणको सघन कर रहा था—वहाँकी भीड़ बढ़ा रहा था ॥१८५॥ कवच टूट गया था ऐसे सामने खड़े शत्रुको देख रणकी खाजसे युक्त योद्धा दूसरी ओर मुख कर रहा था ॥१८६॥ कितने ही योद्धा स्वामीको छोड़ शत्रुकी सेनामें घुस पड़े और अपने स्वामीका नाम ले कर जो भी दिखे उसे मारने लगे ॥१८७॥ तीत्र अहंकारसे भरे कितने ही महायोद्धा, मनुष्योंकी उपेक्षा कर मदसावी हाथियोंकी शत्रुताको प्राप्त हुए ॥१८८॥ कोई एक उत्तम योद्धा मदनोन्मत्त हाथीकी दन्तरूपी शय्या का आश्रय ले रणनिद्राके उत्तम सुखको प्राप्त हुआ अर्थात् हाथीके दाँतोंसे घायल हो कर कोई योद्धा मरणको प्राप्त हुआ ॥१८९॥ जिसका शस्त्र टूट गया था ऐसे किसी योद्धाने सामने आते हुए घोड़ेके लिए मार्ग तो नहीं दिया किन्तु हाथ ठोक कर प्राण दे दिये ॥१९०॥ कोई एक योधा प्रथम प्रहारमें ही गिर गया था इसलिए उसके बकने पर भी उदारचेता किसी महायोद्धाने लज्जित हो उस पर पुनः प्रहार नहीं किया ॥१९१॥ जिसका हृदय नहीं टूटा था ऐसा कोई योद्धा, सामनेके वीरको शस्त्र रहित देख, अपना भी शस्त्र फेंककर मात्र भुजाओंसे ही युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ था ॥१९२॥ कितने ही वीरोंने सदाके सुप्रसिद्ध दानो ही कर भी युद्ध क्षेत्रमें आकर अपने प्राण तो दे दिये थे पर पीठके दर्शन किसीको नहीं दिये ॥१९३॥ किसी सारथिका रथ रुधिरकी कीचड़में फँस जानेके कारण बड़ी कठिनाईसे चल रहा था इसलिए वह चाबुकसे ताड़ना देनेमें तत्पर होने पर भी शीघ्रताको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥१९४॥ इस प्रकार उन दोनों सेनाओं में वह महायुद्ध हुआ जिसमें कि शब्द करने वाले घोड़ोंके द्वारा खींचे गये रथ चीं चीं शब्द कर

निःकामदुःखिरोद्धारसहितोरुभटस्वनम् । वेगवच्छस्त्रसम्पातजातवह्निकणोत्करम् ॥१६६॥
 करिशूकृतसम्भूतसीकरासारजालकम् । करिदारितवत्तस्कभटसङ्कटभूतलम् ॥१६७॥
 पर्यस्तकरिसङ्कटद्वरणमार्गाकुलाद्यतम् । नाममेघपरिश्रयोतन्मुक्ताफलमहोपलम् ॥१६८॥
 मुक्तासारसमाघातविकटं कर्मरङ्गकम् । नागोच्छालितपुन्नागकृतखेचरसङ्गमम् ॥१६९॥
 शिरःक्रीतयशोरत्नं मूर्च्छाजनितविभ्रमम् । मरणप्राप्तनिर्वाणं बभूव रणमाकुलम् ॥२००॥

आर्याच्छन्दः

जीविततृष्णारहितं साधुस्वनजलधिलुब्धयौधेयम् ।
 समरं समरसमासीन्महति लधिष्ठे च वीराणाम् ॥२०१॥
 भक्तिः स्वामिनि परमा निष्कयदानं प्रचण्डरणकण्डूः ।
 रवितेजसां भटानां जग्मुः सङ्ग्रामहेतुत्वम् ॥२०२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे लवणाङ्कुशसमेतयुद्धाभिधानं द्रुचुत्तरशतं पर्व ॥१०२॥

रहे थे, जो घोड़ोंके वेगसे उड़े हुए सामन्त भटोंसे व्याप्त था ॥१६५॥ जिसमें महायोद्धाओंके शब्द निकलते हुए खूनके उद्गारसे सहित थे, जहाँ वेगशाली शस्त्रोंके पड़नेसे अग्निकणोंका समूह उत्पन्न हो रहा था ॥१६६॥ जहाँ हाथियोंके सूम् शब्दके साथ जलके छींटोंका समूह निकल रहा था, जहाँ हाथियोंके द्वारा विदीर्ण वृक्षस्थल वाले योद्धाओंसे भूतल व्याप्त था ॥१६७॥ जहाँ इधर-उधर पड़े हुए हाथियोंसे युद्धका मार्ग रुक जानेके कारण यातायातमें गड़बड़ी हो रही थी । जहाँ हाथी रूपी मेघोंसे मुक्ताफल रूपी महोपलों—बड़े बड़े ओलोंकी वर्षा हो रही थी, ॥१६८॥ जो मोतियोंकी वर्षाके समाघातसे विकट था, नाना प्रकारके कर्मोंकी रङ्गभूमि था, जहाँ हाथियों के द्वारा उखाड़ कर ऊपर उछाले हुए पुंनागके वृक्ष, विद्याधरोंका संगम कर रहे थे ॥१६९॥ जहाँ शिरोंके द्वारा यशरूपी रत्न खरीदा गया था, जहाँ मूर्च्छासे विश्राम प्राप्त होता था, और मरणसे जहाँ निर्वाण मिलता था ॥२००॥ इस प्रकार वीरोंकी चाहे बड़ी टुकड़ी हो चाहे छोटी, सबमें वह युद्ध हुआ कि जो जीवनकी तृष्णासे रहित था, जिसमें योद्धाओंके समूह धन्य धन्य शब्दरूपी समुद्रके लोभी थे तथा जो समरससे सहित था—किसी भी पक्षकी जय पराजयसे रहित था ॥२०१॥ स्वामीमें अटूट भक्ति, जीविका प्राप्तिका बदला चुकाना और रणकी तेज खाज यही सब सूर्यके समान तेजस्वी योद्धाओंके संग्रामके कारणपनेको प्राप्त हुए थे ॥२०२॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लवणाङ्कुश के युद्धका वर्णन करने वाला एक सौ दोवां पर्व समाप्त हुआ ॥१०२॥

त्र्युत्तरशतं पर्व

भक्तो भगधराजेन्द्र भवावहितमानसः । निवेदयामि युद्धं ते विशेषकृतवर्त्तनम् ॥१॥
 सव्येष्टा वज्रजङ्घोऽभूदनङ्गलवणाम्बुधेः । मदनांकुशनाथस्य पृथुः प्रथितविक्रमः ॥२॥
 सुमित्रातनुजातस्य चन्द्रोदरनुपात्मजः । कृतान्तवक्त्रतिग्मांशुः पद्मनाभमरुत्वतः ॥३॥
 वज्रावर्त्तं समुद्धृत्य धनुस्त्युद्धुरध्वनिः । पद्मनाभः कृतान्तास्थं जगौ गर्भीरभारतिः ॥४॥
 कृतान्तवक्त्र वेगेन रथं प्रथरि वाहय । मोघीभवत्तनूभारः किमेवमलसायते ॥५॥
 सोऽवोचद्देव बीहृस्व वाजिनो जर्जरीकृतान् । अमुना नरवीरेण सुनिशातैः शिलामुखैः ॥६॥
 भमी निद्रामिव प्राप्ता देहविद्राणकारिणीम् । दूरं विकारनिर्मुक्ता जाता गलितरंहसः ॥७॥
 नैते चातुशतान्युक्ता न हस्तसलताडिताः । वहन्त्यायतमङ्गं तु क्वणन्तः कुर्वते परम् ॥८॥
 शोणं शोणितधाराभिः कुवाणा धरणीतलम् । अनुरागमिवोदारं भवते दर्शयन्त्यमी ॥९॥
 इमौ च परय मे बाहू शरैः कङ्कटभेदिभिः । समुत्फुल्लकदम्बलम्बुणसान्धमुपागतौ ॥१०॥
 पद्मोऽवदन्ममाप्येवं कार्मुकं शिथिलायते । ज्ञायते कर्मनिर्मुक्तं चित्रार्पितशरासनम् ॥११॥
 एतन्मुशलरत्नं च कार्येण परिवर्जितम् । सूर्यावर्त्तगुरुभूतं दोर्दण्डमुपविध्यति ॥१२॥
 दुर्वारिपुनागेन्द्रसृजितां यच्च भूरिशः । गतं लाङ्गलरत्नं मे तदिदं विफलं स्थितम् ॥१३॥
 परपक्षपरिषोददृष्टाणां पञ्चरत्त्रिणाम् । भमोघानां महास्त्राणामीदृशी वर्त्तते गतिः ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे भगधराजेन्द्र ! सावधान चित्त होओ अब मैं तेरे लिए युद्धका विशेष वर्णन करता हूँ ॥१॥ अलङ्गलवण रूपी सागरका सारथि वज्रजङ्घ था, मदनांकुशका प्रसिद्ध पराक्रमी राजा पृथु, लक्ष्मणका चन्द्रोदरका पुत्र विराधित और राम रूपी इन्द्रका सारथि कृतान्तवक्त्र रूपी सूर्य था ॥२-३॥ विशाल गर्जना करने वाले रामने गर्भीर बाणी द्वारा वज्रावर्त नामक धनुष उठा कर कृतान्तवक्त्र सेनापतिसे कहा ॥४॥ कि हे कृतान्तवक्त्र ! शयुकी ओर शीघ्र ही रथ बढ़ाओ । इस तरह शरीरके भारको शिथिल करते हुए क्यों अलसा रहे हो ? ॥५॥ यह सुन कृतान्तवक्त्रने कहा कि हे देव ! इस नर वीरके द्वारा अत्यन्त तीक्ष्ण वाणोंसे जर्जर हुए इन घोड़ोंको देखो ॥६॥ वे शरीरको दूर करने वाली निद्राको ही मानो प्राप्त हो रहे हैं अथवा विकारसे निर्मुक्त हो वेग रहित हो रहे हैं ? ॥७॥ अब ये न तो सैकड़ों मीठे शब्द कहने पर और न हथेलियोंसे ताड़ित होने पर शरीरको लम्बा करते हैं—शीघ्रतासे चलते हैं किन्तु अत्यधिक शब्द करते हुए स्वयं ही लम्बा शरीर धारण कर रहे हैं ॥८॥ ये रुधिर की धारासे पृथिवीतलको लाल लाल कर रहे हैं सो मानों आपके लिए अपना महान् अनुराग ही दिखला रहे हों ॥९॥ और इधर देखो, ये मेरी भुजाएँ कवचको भेदन करने वाले वाणोंसे फूले हुए कदम्ब पुष्पोंकी मालाके सादृश्यको प्राप्त हो रही हैं ॥१०॥ यह सुन रामने भी कहा कि इसी तरह मेरा भी धनुष शिथिल हो रहा है और चित्रलिखित धनुषकी तरह क्रिया शून्य हो रहा है ॥११॥ यह मुशल रत्न कार्यसे रहित हो गया है और सूर्यावर्त धनुषके कारण भारी हुए भुजदण्ड को पीड़ा पहुँचा रहा है ॥१२॥ जो दुर्वार शत्रु रूपी हाथियोंकी वश करनेके लिए अनेकों बार अकुशपनेको प्राप्त हुआ था ऐसा यह मेरा हल रत्न निष्फल हो गया है ॥१३॥ शत्रुपक्षको नष्ट करने में समर्थ एवं अपने पक्षकी रक्षा करने वाले भमोघ महा शस्त्रोंकी भी ऐसी दशा हो रही है

१. सारथिः । २. द्वारं म० । ३. न्युक्त्वा म० । ४. कणताम् म० । ५. मङ्गं म० । ६. दक्षिणां म० । ७. मतिः मः ।

यथापराजिताजस्य वर्त्ततेऽनर्थकास्त्रता । तथा लक्ष्मीधरस्यापि मदनाङ्कुशगोचरे ॥१५॥
 विज्ञातजातिसम्बन्धौ सापेक्षौ लवणाङ्कुशौ । युयुवातेऽनपेक्षौ तु निर्ज्ञातौ रामलक्ष्मणौ ॥१६॥
 तथाप्यलं सद्विद्यास्रो विपादपरिवर्जितः । प्राप्तचक्रशरासारं मुमुचे लक्ष्मणोऽङ्कुशे ॥१७॥
 तद्भ्रदण्डैः शौर्वृष्टिं तामपाकिरदङ्कुशः । पद्मनाभत्रिनिर्मुक्तामनङ्गलवणो यथा ॥१८॥
 उपवसस्ततः पद्मं प्राप्तेन लवणोऽक्षिणोत् । मदनाङ्कुशवीरश्च लक्ष्मणं नैपुणान्वितः ॥१९॥
 लक्ष्मणं पूर्णमानाच्चिह्नद्वयं व्रीचय सम्भ्रमा । विराधितो रथं चक्रे प्रतीपं कोशलां प्रति ॥२०॥
 ततः संज्ञां परिप्राप्य रथं दृष्ट्वाऽन्यतः स्थितम् । जगाद लक्ष्मणः कोपकपिलीकृतलोचनः ॥२१॥
 भो विराधित सद्बुद्धे किमिदं भवता कृतम् । रथं निवर्त्तय क्षिप्रं रणे पृष्टं न दीयते ॥२२॥
 पुङ्खिरितदेहस्य स्थितस्याभिमुखं रिपोः । शूरस्य मरणं श्लाघ्यं नेदं कर्म जुगुप्सितम् ॥२३॥
 सुरमानुषमध्येऽस्मिन् परामर्थापदं श्रिताः । कथं भजन्ति कातर्यं स्थिताः पुरुषमूर्खनि ॥२४॥
 पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता लाङ्गललक्ष्मणः । नारायणः क्षितो ख्यातस्तस्येदं सदृशं कथम् ॥२५॥
 त्वरितं गदितेनैवं रथस्तेन निवर्त्तितः । पुनर्युद्धमभूद्घोरं प्रतीपागतसैनिकम् ॥२६॥
 लक्ष्मणेन ततः कोपात्सङ्ग्रामान्तचिकीर्षया । अमोघमुद्धृतं चक्रं देवासुरभयङ्करम् ॥२७॥

॥१४॥ इधर लवणाङ्कुशके विषयमें जिस प्रकार रामके शस्त्र निरर्थक हो रहे थे उधर उसी प्रकार मदनाङ्कुशके विषयमें लक्ष्मणके शस्त्र भी निरर्थक हो रहे थे ॥१५॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि इधर लवणाङ्कुशको तो राम लक्ष्मणके साथ अपने जाति सम्बन्धका ज्ञान था अतः वे उनको अपेक्षा रखते हुए युद्ध करते थे—अर्थात् उन्हें घातक चोट न लग जावे इसलिए बचा बचा कर युद्ध करते थे पर उधर राम लक्ष्मणको कुछ ज्ञान नहीं था इसलिए वे निरपेक्ष हो कर युद्ध कर रहे थे ॥१६॥ यद्यपि इस तरह लक्ष्मणके शस्त्र निरर्थक हो रहे थे तथापि वे दिव्यास्त्रसे सहित होनेके कारण विषादसे रहित थे । अबकी बार उन्होंने अङ्कुशके ऊपर भाले सामान्य चक्र तथा बाणोंकी जोरदार वर्षा की सो उसने वज्रदण्ड तथा बाणोंके द्वारा उस वर्षाको दूर कर दिया । इसी तरह अनांगलयणने भी रामके द्वारा छोड़ा अस्त्र-वृष्टिको दूर कर दिया था ॥१७-१८॥

तदनन्तर इधर लवणने वृक्षस्थलके समीप रामको प्राप्त नामा शस्त्रसे घायल किया और उधर चातुर्थसे युक्त वीर मदनाङ्कुशने भी लक्ष्मणके ऊपर प्रहार किया ॥१९॥ उसकी चोटसे जिसके नेत्र और हृदय घूमने लगे थे ऐसे लक्ष्मणको देख विराधितने घबड़ा कर रथ उलटा अयोध्याकी ओर फेर दिया ॥२०॥ तदनन्तर चेतना प्राप्त होने पर जब लक्ष्मणने रथको दूसरी ओर देखा तब लक्ष्मणने क्रोधसे लाल लाल नेत्र करते हुए कहा कि हे बुद्धिमन् ! विराधित ! तुमने यह क्या किया ? शीघ्र ही रथ लौटाओ । क्या तुम नहीं जानते कि युद्धमें पीठ नहीं दी जाती है ? ॥२१-२२॥ बाणोंसे जिसका शरीर व्याप्त है ऐसे शूर वीरका शत्रुके सन्मुख खड़े खड़े मर जाना अच्छा है पर यह घृणित कार्य अच्छा नहीं है ॥२३॥ जो मनुष्य, पुरुषोंके मस्तक पर स्थित हैं अर्थात् उनमें प्रधान हैं वे देवों और मनुष्योंके बीच परम आपत्तिको प्राप्त हो कर भी कातरताको कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? ॥२४॥ मैं दशरथका पुत्र, रामका भाई और पृथिवी पर नारायण नामसे प्रसिद्ध हूँ उसके लिए यह काम कैसे योग्य हो सकता है ? ॥२५॥ इस प्रकार कह कर लक्ष्मणने शीघ्र ही पुनः रथ लौटा दिया और पुनः जिसमें सैनिक लौट कर आये थे ऐसा भयंकर युद्ध हुआ ॥२६॥

तदनन्तर कोप वश लक्ष्मणने संग्रामका अन्त करनेकी इच्छासे देवों और असुरोंको भी

१. अपराजिताजस्य कौशलत्रापुत्रस्य । यथा पराजिता यस्य ज० । २. तामपाकरदंशुकः म० ।

ज्वालावलीपरीतं तद्दुःप्रेक्ष्यं पूषसज्जिभम् । नारायणेन दीप्तेन प्रहितं हन्तुमङ्कुशम् ॥२८॥
 अङ्कुशस्थान्तिकं गत्वा चक्रं विगलितप्रभम् । निवृत्त्य लक्ष्मणस्यैव पुनः पाणितलं गतम् ॥२९॥
 चिसं चिसं सुकोपेन लक्ष्मणेन खरावता । चक्रमन्तिकमस्यैव प्रविधाति पुनः पुनः ॥३०॥
 अथाङ्कुशकुमारेण विभ्रता विभ्रमं परम् । धनुर्दण्डः सुधीरेण भ्रामितो रणशालिना ॥३१॥
 तथाभूतं समालोक्य सर्वेषां रणमीयुषाम् । विस्मयव्यासचित्तानां शेषुषीयमजायत ॥३२॥
 अयं परमसत्त्वोऽसौ जातश्चक्रधरोऽधुना । भ्रमता यस्य चक्रेण संशये सर्वमाहितम् ॥३३॥
 किमिदं स्थिरनाहोस्विद् भ्रमणं समुपाश्रितम् । ननु न स्थिरमेतद्धि ध्रूयतेऽस्यातिगर्जितम् ॥३४॥
 अलीकं लक्षणैः ख्यातं नूनं कोटिशिलादिभिः । यतस्तदिहमुत्पन्नं चक्रमन्यस्य साम्प्रतम् ॥३५॥
 कथं वा मुनिवाक्यानामन्यथात्वं प्रजायते । किं भवन्ति वृथोक्तानि जिनेन्द्रस्यापि शासने ॥३६॥
 भ्रमितश्चापदण्डोऽयं चक्रमेतदिति स्वनः । समाकुलः समुत्तस्थौ वक्त्रेभ्योऽस्तमन्तीपिणाम् ॥३७॥
 तावल्लक्ष्मणवीरोऽपि परमं सत्त्वमुद्रहन् । जगाद नूनमेतौ तावुदितौ बलचक्रिणौ ॥३८॥
 इति व्रीडापरिष्वक्तं निष्क्रियं वीक्ष्य लक्ष्मणम् । समीपं तस्य सिद्धार्थो गत्वा नारदसम्मत्तः ॥३९॥
 जगौ नारायणो देव त्वमेवात्र कुतोऽन्यथा । जिनेन्द्रशासनोक्तं हि निष्कम्पं मन्दरादपि ॥४०॥
 जानक्यास्तनयावैतौ कुमारी लवणाङ्कुशौ । ययोर्गर्भस्थयोरासीदसौ त्रिरहिता वने ॥४१॥
 परिज्ञातमितः पश्चादापसद् दुःखसागरे । भवानिति न रत्नानामत्र जाता कृतार्थता ॥४२॥

भय उत्पन्न करने वाला अमोघ चक्ररत्न उठाया ॥२७॥ और ज्वालावलीसे व्याप्त, दुष्प्रेक्ष्य एवं सूर्यके सदृश वह चक्ररत्न क्रोधसे देदीप्यमान लक्ष्मणने अङ्कुशको मारनेके लिए चला दिया ॥२८॥ परन्तु वह चक्र अङ्कुशके समीप जा कर निष्प्रभ हो गया और लौट कर पुनः लक्ष्मणके ही हस्ततलमें आ गया ॥२९॥ तीव्र क्रोधके कारण वेगसे युक्त लक्ष्मणने कई बार वह चक्र अङ्कुशके समीप फेंका परन्तु वह बार बार लक्ष्मणके ही समीप लौट जाता था ॥३०॥

अथानन्तर परम विभ्रमको धारण करने वाले रणशाली, सुधीर अङ्कुश कुमारने अपने धनुष दण्डको उस तरह घुमाया कि उसे वैसा देख रणमें जितने लोग उपस्थित थे उन सबका चित्त आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा सबके यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि अब यह परम शक्तिशाली दूसरा चक्रधर नारायण उत्पन्न हुआ है जिसके कि घूमते हुए चक्रने सबको संशयमें डाल दिया है ॥३१-३३॥ क्या यह चक्र स्थिर है अथवा भ्रमणको प्राप्त है ? अत्यधिक गर्जना सुनाई पड़ रही है ॥३४॥ चक्ररत्न कोटिशिला आदि लक्षणोंसे प्रसिद्ध है सो यह मिथ्या जान पड़ता है क्योंकि इस समय यह चक्र यहाँ दूसरेको ही उत्पन्न हो गया है ॥३५॥ अथवा मुनियोंके वचनोंमें अन्यथापन कैसे हो सकता है ? क्या जिनेन्द्र भगवान्के भी शासनमें कही हुई बातें व्यर्थ होती हैं ? ॥३६॥ यद्यपि वह धनुष दण्ड घुमाया गया था तथापि जिनकी बुद्धि मारी गई थी ऐसे लोगों के सुखसे व्याकुलतासे भरा हुआ यही शब्द निकल रहा था कि यह चक्ररत्न है ॥३७॥ उसी समय परम शक्तिको धारण करनेवाले लक्ष्मणने भी कहा कि जान पड़ता है ये दोनों बलभद्र और नारायण उत्पन्न हुए ॥३८॥

अथानन्तर लक्ष्मणको लज्जित और निश्चेष्ट देख नारदकी संमतिसे सिद्धार्थ लक्ष्मणके पास जा कर बोला कि हे देव ! नारायण तो तुम्हीं हो, जिन शासनमें कही बात अन्यथा कैसे हो सकती है ? वह तो मेरु पर्वतसे भी कहीं अधिक निष्कम्प है ॥३९-४०॥ ये दोनों कुमार जानकीके लवणाङ्कुश नामक वे पुत्र हैं जिनके कि गर्भमें रहते हुए वह वनमें छोड़ दी गई थी ॥४१॥ मुझे यह ज्ञात है कि आप सीता-परित्यागके पश्चात् दुःख रूपी सागरमें गिर गये थे अर्थात् अपने

लवणाङ्कुशमाहात्म्यं ततो ज्ञात्वा समन्ततः । मुभोच कवचं शस्त्रं लक्ष्मणः शोककथितः ॥४३॥
 श्रुत्वा तमथ वृत्तान्तं विषादभरपीडितः । परित्यक्तवतुर्वर्मा घूर्णमाननिरीक्षणः ॥४४॥
 स्यन्दनात्तरसोत्तीर्णो दुःखस्मरणसङ्गतः । पर्यस्तचमातले पद्मो मूर्च्छामीलितलोचनः ॥४५॥
 चन्दनोदकसिक्तश्च स्पृष्टां सम्प्राप्य चेतनाम् । स्नेहाकुलमता यातः पुत्रयोरन्तिकं द्रुतम् ॥४६॥
 ततो रथात्समुत्तीर्य ती युक्तकरकुड्मली ! तातस्थानमतां पादौ शिरसा स्नेहसङ्गतौ ॥४७॥
 ततः पुत्रौ परिष्वज्य स्नेहद्रवितमानसः । विलापमकरोत्पद्मो वाष्पदुर्दिनिताननः ॥४८॥
 हा मया तनयौ कष्टं गर्भस्थौ मन्दबुद्धिना । निर्दोषी भीषणोऽरण्ये विमुक्तौ सह सीतया ॥४९॥
 हा वत्सो विपुलैः पुण्यैर्मयाऽपि कृतसम्भवौ । उदरस्थौ कथं प्राप्तौ व्यसनं परमं वने ॥५०॥
 हा सुतौ वज्रजङ्घोऽयं वने चेत्त्र नो भवेत् । पश्येयं वा तदा वज्रपूर्णचन्द्रमिमं कुतः ॥५१॥
 हा शावकात्रिमैरखैरमोघैर्निहतो न यत् । तत्सुरैः पालितौ यद्वा सुकृतैः परमोदर्यैः ॥५२॥
 हा वत्सो विशिखैर्विद्वौ पतितौ सङ्गुणक्षितौ । भवन्ती जानकी वाच्य किं कुर्यादिति वेदि न ॥५३॥
 निर्वासनकृतं दुःखमितरैरपि दुःसहम् । भवद्भवांसा सुपुत्राभ्यां स्थाजिता गुणशालिनी ॥५४॥
 भवतोरन्यथाभावं प्रतिपद्य सुजातयोः । वेदि जावेत् भुवं नेति जानकी शोकविह्वला ॥५५॥
 लक्ष्मणोऽपि सवाष्पाक्षः सम्भ्रान्तः शोकविह्वलः । स्नेहनिर्भरमालिङ्गद् विनयप्रणताविमौ ॥५६॥

सीता परित्यागका बहुत दुःख अनुभव किया था और आपके दुखी रहते रत्नोंकी सार्थकता नहीं थी ॥४२॥

तदनन्तर सिद्धार्थसे लवणाङ्कुशका माहात्म्य जान कर शोकसे कृश लक्ष्मणने कवच और शस्त्र छोड़ दिये ॥४३॥ अथानन्तर इस वृत्तान्तको सुन जो विषादके भारसे पीडित थे, जिन्होंने धनुष और कवच छोड़ दिये थे, जिनके नेत्र घूम रहे थे, जिन्हें पिछले दुःखका स्मरण हो आया था, जो बड़े वेगसे रथसे उतर पड़े थे तथा मूर्च्छाके कारण जिनके नेत्र निर्मालित हो गये थे ऐसे राम पृथिवीतल पर गिर पड़े ॥४४-४५॥ तदनन्तर चन्दन मिश्रित जलके सींचनेसे जब सचेत हुए तब स्नेहसे आकुल हृदय होते हुए शीघ्र ही पुत्रोंके समीप चले ॥४६॥

तदनन्तर स्नेहसे भरे हुए दोनों पुत्रोंने रथसे उतर कर हाथ जोड़ शिरसे पिताके चरणोंको नमस्कार किया ॥४७॥ तत्पश्चात् जिनका हृदय स्नेहसे द्रवीभूत हो गया था और जिनका सुख आंसुओंसे दुर्दिनके समान जान पड़ता था ऐसे राम दोनों पुत्रोंका आलिङ्गन कर विलाप करने लगे ॥४८॥ वे कहने लगे कि हाय पुत्रो ! जब तुम गर्भमें स्थित थे तभी मुझ मन्दबुद्धिने तुम दोनों निर्दोष बालकोंको सीताके साथ भीषण वनमें छोड़ दिया था ॥४९॥ हाय पुत्रो ! बड़े पुण्यके कारण मुझसे जन्म लेकर भी तुम दोनोंने उदरस्थ अवस्थामें वनमें परम दुःख कैसे प्राप्त किया ? ॥५०॥ हाय पुत्रो ! यदि उस समय उस वनमें यह वज्रजङ्घ नहीं होता तो तुम्हारा यह मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमा किस प्रकार देख पाता ? ॥५१॥ हाय पुत्रो ! जो तुम इन अमोघ शस्त्रोंसे नहीं हने गये हो सो जान पड़ता है कि देवोंने अथवा परम अभ्युदयसे युक्त पुण्यने तुम्हारी रक्षा की है ॥५२॥ हाय पुत्रो ! वाणोंसे विधे और युद्धभूमिमें पड़े तुम दोनोंको देखकर जानकी क्या करती यह मैं नहीं जानता ॥५३॥ निर्वासन-परित्यागका दुःख तो अन्य मनुष्योंको भी दुःसह होता है फिर आप जैसे सुपुत्रोंके द्वारा छोड़ी गुणशालिनी सीताकी क्या दशा होती ? ॥५४॥ आप दोनों पुत्रोंका मरण जान शोकसे विह्वल सीता निश्चित ही जीवित नहीं रहती ॥५५॥

जिनके नेत्र अश्रुओंसे पूर्ण थे, तथा जो सम्भ्रान्त हो शोकसे विह्वल हो रहे थे ऐसे लक्ष्मणने

शशुभनाद्या महीपालाः श्रुत्वा वृत्तान्तमोदशम् । तमुद्देशं गताः सर्वे प्राप्ताः प्रीतिमनुत्तमाम् ॥५७॥
 ततः समागमो जातः सेनयोर्द्वयोरपि । स्वामिनोः सङ्गमे जाते सुखविस्मयपूर्णयोः ॥५८॥
 सीताऽपि पुत्रमाहात्म्यं दृष्ट्वा सङ्गममेव च । पौण्डरीकं विमानेन प्रतीतहृदयाऽगमत् ॥५९॥
 भवतीर्यं ततो ज्योम्नः सम्भ्रमी जनकात्मजः । स्वस्त्रीयौ निर्त्रणौ पश्यन्नालिङ्ग सवाण्डकू ॥६०॥
 लाङ्गूलपाणिरभ्येवं प्राप्तः प्रीतिपरायणः । आलिङ्गति स्म तौ साधु जातमित्युच्चरन्सुदुः ॥६१॥
 श्रीविराधितसुग्रीवावेवं प्राप्ता सुसङ्गमम् । नृपा विभीषणाद्याश्च सुसम्भाषणतत्पराः ॥६२॥
 अथ भूम्योमचाराणां सुराणामिव सङ्कलः । जातः समागमोऽत्यन्तमहानन्दसमुद्भवः ॥६३॥
 परिप्राप्य परं कान्तं पथः पुत्रसमागमम् । बभार परमां लक्ष्मीं धृतिनिर्भरमानसः ॥६४॥
 मेने सुपुत्रलम्भं च भुवनत्रयराज्यतः । सुदूरमधिकं रम्यं भावं कमपि संश्रितः ॥६५॥
 विद्याधर्यः समानन्दं वनतुर्गनाङ्गणे । भूगोचरस्त्रियो भूमौ समुन्मत्तजगन्निभम् ॥६६॥
 परं कृतार्थमात्मानं मेने नारायणस्तथा । जितं च भुवनं कृत्स्नं प्रमोदोत्फुल्ललोचनः ॥६७॥
 सगरोऽहमिमी तौ मे वीरभीमभगीरथौ । इति बुद्ध्या कृतौपम्यो दधार परमद्युतिम् ॥६८॥
 पथः प्रीतिं परां विभ्रहृज्जङ्गमपूजयत् । भामण्डलसमस्त्वं मे सुचेता इति चावदत् ॥६९॥
 ततः पुरैव रम्यासौ पुनः स्वर्गलमा कृता । साकेता नगरी भूयः कृता परमसुन्दरी ॥७०॥
 रम्या या स्त्रीस्वभावेन कलाज्ञानविशेषतः । आचारमात्रतस्तस्या क्रियते भूषणादरः ॥७१॥

भी विनयसे नन्त्रीभूत दोनों पुत्रोंका बड़े स्नेहके साथ आलिङ्गन किया ॥५६॥ शशुभन आदि राजा भी इस वृत्तान्तको सुन उस स्थानपर गये और सभी उत्तम आनन्दको प्राप्त हुए ॥५७॥ तदनन्तर जब दोनों सेनाओंके स्वामी समागम होनेपर सुख और आश्चर्यसे पूर्ण हो गये तब दोनों सेनाओंका परस्पर समागम हुआ ॥५८॥ सीता भी पुत्रोंका माहात्म्य तथा समागम देख निश्चित हृदय हो विमान द्वारा पौण्डरीकपुर वापिस लौट गई ॥५९॥

तदनन्तर संभ्रमसे भरे भामण्डलने आकाशसे उतर कर घाव रहित दोनों भानेजोंको साश्रुदृष्टिसे देखते हुए उनका आलिङ्गन किया ॥६०॥ प्रीति प्रकट करनेमें तत्पर हनूमानने भी 'बहुत अच्छा हुआ' इस शब्दका बार-बार उच्चारण कर उन दोनोंका आलिङ्गन किया ॥६१॥ विराधित तथा सुग्रीव भी इसी तरह सत्समागमको प्राप्त हुए और विभीषण आदि राजा भी कुमारोंसे वार्तालाप करनेमें तत्पर हुए ॥६२॥

अथानन्तर देवोंके समान भूमिगोचरियों तथा विद्याधरोंका वह समागम अत्यधिक महान् आनन्दका कारण हुआ ॥६३॥ अत्यन्त सुन्दर पुत्रोंका समागम पाकर जिनका हृदय धैर्यसे भर गया था ऐसे रामने उत्कृष्ट लक्ष्मी धारण की ॥६४॥ किसी अनिर्वचनीय भावको प्राप्त हुए श्रीरामने उन सुपुत्रोंके लाभको तीनलोकके राज्यसे भी कहीं अधिक सुन्दर माना ॥६५॥ विद्याधरोंकी स्त्रियाँ बड़े हर्षके साथ आकाशरूपी आँगनमें और भूमिगोचरियोंकी स्त्रियाँ उन्मत्त संसारकी नाई पृथ्वीपर नृत्य कर रही थीं ॥६६॥ हर्षसे जिनके नेत्र फूल रहे थे ऐसे नारायणने अपने आपको कृतकृत्य माना और समस्त संसारको जीता हुआ समझा ॥६७॥ मैं सगर हूँ और ये दोनों वीर भीम तथा भगीरथ हैं इस प्रकार बुद्धिसे उपमाको करते हुए लक्ष्मण परम दीप्तिको धारण कर रहे थे ॥६८॥ परमप्रीतिको धारण करते हुए रामने वज्रजंघका खूब सम्मान किया और कहा कि सुन्दर हृदयसे युक्त तुम मेरे लिए भामण्डलके समान हो ॥६९॥

तदनन्तर वह अयोध्या नगरी स्वर्गके समान तो पहले ही की जा चुकी थी उस समय और भी अधिक सुन्दर की गई थी ॥७०॥ जो स्त्री कला और ज्ञानकी विशेषतासे स्वभावतः

ततो गजघटापृष्ठे स्थितं सूर्यसमप्रभम् । आरूढः पुष्पकं रामः सपुत्री भास्करो यथा ॥७२॥
 नारायणोऽपि तत्रैव स्थितो रेजे स्वलङ्कृतः । विद्युष्वोश्च महामेघः सुमेरोः शिखरे यथा ॥७३॥
 बाह्योद्यानानि चैथानि प्रकारं च ध्वजाकुलम् । पश्यन्तो विविधैर्यानेः प्रस्थितास्ते शनैः शनैः ॥७४॥
 त्रिप्रस्रुतद्विपार्श्वीयरथपादातसकुलाः । अभवन्निशिखाश्रापध्वजज्वान्धकारिताः ॥७५॥
 वरसीमन्तितनोवृन्दैर्गवाक्षः परिपूरिताः । महाकुनूहलाकीर्णैर्लवणाङ्कुशदर्शने ॥७६॥
 नयनान्जलिभिः पातुं सुन्दर्यो लवणाङ्कुशौ । प्रवृत्ताः न पुनः प्रापुस्तृप्तिमुत्तानमानसाः ॥७७॥
 तदेकगतचित्तानां पश्यन्तीनां सुयोपिताम् । महासङ्घटतो अष्टं न ज्ञातं हारकुण्डलम् ॥७८॥
 मातर्मनागितो वक्त्रं कुरु मे किञ्च कौतुकम् । आत्मम्भरित्वमेतत्ते कियद्विद्वज्जकौतुके ॥७९॥
 विनतं कुरु मूर्धानं सखि किञ्चित्प्रसादतः । उज्ज्वाऽसि किमित्येवं घमिमल्लकमितो नय ॥८०॥
 किमेव परमप्राणो तुदसि क्षिप्तमानसे । पुरः पश्यसि किं नेमां पीडितां भर्तृदारिकाम् ॥८१॥
 मनापवृत्ता तिष्ठ पतित्तास्मि गताऽसि किम् । निश्चेतनत्वमेवं त्वं किं कुमारं न वीक्षसे ॥८२॥
 हा मातः कां दृशो बोधिसिदि पश्यामि तेऽत्र किम् । इमां मे प्रेरिकां कस्मात्त्वं वारयसि दुर्बले ॥८३॥
 एतौ तावद्धर्षचन्द्रामललाटौ लवणाङ्कुशौ । यानेतौ रामदेवस्य कुमारौ पार्श्वयोः स्थितौ ॥८४॥
 अनङ्गलवणः कोऽत्र कतरो मदनाङ्कुशः । अहो परममेतौ हि तुल्याकारावुभावपि ॥८५॥
 महारजतरागात्कं वारवाणं दधाति यः । लवणोऽयं शुक्लव्यावस्त्रोऽसावङ्कुशो भवेत् ॥८६॥

सुन्दर है उसका आभूषण सम्बन्धी आदर पद्धति मात्रसे किया जाता है अर्थात् वह पद्धति मात्रसे आभूषण धारण करती है ॥७१॥ तदनन्तर जो गजघटाके पृष्ठ पर स्थित सूर्यके समान कान्तिसम्पन्न था ऐसे पुष्पक विमान पर राम अपने पुत्रीं सहित आरूढ हो सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥७२॥ जिस प्रकार विजलीसे सहित महामेघ, सुमेरुके शिखर पर आरूढ होता है उसी प्रकार उत्तम अलंकारोंसे सहित लक्ष्मण भी उसी पुष्पक विमान पर आरूढ हुए ॥७३॥ इस प्रकार वे सब नगरीके बाहरके उद्यान, मन्दिर और ध्वजाओंसे व्याप्त कोटको देखते हुए नानाप्रकारके वाहनोंसे धीरे-धीरे चले ॥७४॥ जिनके तीन स्थानोंसे मद भर रहा था ऐसे हार्थी, घोड़ोंके समूह, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे व्याप्त नगरके मार्ग, धनुष, ध्वजा और छत्रोंके द्वारा अम्धकार युक्त हो रहे थे ॥७५॥ महलोंके भरोखे, लवणाङ्कुशको देखनेके लिए महा कौतूहलसे युक्त उत्तम स्त्रियोंके समूहसे परिपूर्ण थे ॥७६॥ नयन रूपी अञ्जलियोंके द्वारा लवणाङ्कुशका पान करनेके लिए प्रवृत्त उदारहृदया स्त्रियाँ संतोषको प्राप्त नहीं हो रही थीं ॥७७॥ उन्हीं एकमें जिनका चित्त लग रहा था ऐसी देखने वाली स्त्रियोंके पारस्परिक धक्का धूसीके कारण हार और कुण्डल टूट कर गिर गये थे पर उन्हें पता भी नहीं चल सका था ॥७८॥ हे मातः ! जरा मुख यहाँसे दूर हटा, क्या मुझे कौतुक नहीं है ? हे अखण्डकौतुके ! तेरी यह स्वार्थपरता कितनी है ? ॥७९॥ हे सखि ! प्रसन्न होकर मस्तक कुछ नीचा कर लो, इतनी तनी क्यों खड़ी हो । यहाँसे चौटीको हटा लो ॥८०॥ हे प्राणहीने ! हे क्षिप्रहृदये ! इस तरह दूसरेको क्यों पीड़ित कर रही है ? क्या आगे इस पीड़ित लड़कीको नहीं देख रही है ? ॥८१॥ जरा हटकर खड़ी होओ, मैं गिर पड़ी हूँ, इस तरह तू क्या निश्चेतनताको प्राप्त हो रही है ? अरे कुमारको क्यों नहीं देखती है ? ॥८२॥ हाय मातः ! कैसी स्त्री है ? यदि मैं देखती हूँ तो तुम्हें इससे क्या प्रयोजन ? हे दुर्बले ! मेरी इस प्रेरणा देनेवालीको क्यों मना करती है ? ॥८३॥ जो ये दो कुमार श्रीरामके दोनों ओर बैठे हैं ये ही अर्धचन्द्रमाके समान ललाटको धारण करनेवाले लवण और अङ्कुश हैं ॥८४॥ इनमें अतंग लवण कौन है और मदनाङ्कुश कौन है ? अहो ! ये दोनों ही कुमार अत्यन्त सदृश आकारके धारक हैं ॥८५॥ जो यह महारजतके रंगसे रंगे—लालरंगके कवचको

१. त्रिप्रस्रुतद्विपार्श्वीयं रथपादात- म० । २. किन्तु म० । ३. तुदसि ज० । ४. वरं वाणं म० ।

अहो पुण्यवती सीता यस्याः सुतनयाविभो । अहो धन्यतमा सा स्त्री यानयो रमणी भवेत् ॥८७॥
 एवमाद्याः कथास्तत्र मनःश्रोत्रमल्लिखुवाः । प्रवृत्ताः परमस्त्रीणां तदेकगतचक्षुषाम् ॥८८॥
 कपोलमतिसङ्घट्टाकुण्डलोरगदंष्ट्रया । न विवेद तदा काचिद् विकृतं तद्गतात्मिका ॥८९॥
 अन्यनारीभुजोत्पीडात्कस्याश्चिरसकटाके । कञ्चुकेऽभ्युज्जतो रेजे स्तनांशः सघनेन्दुवत् ॥९०॥
 न विवेद च्युता काञ्ची काचिन्निकणिनीमपि । प्रत्यागमनकाले तु सन्दिता खलितःऽभवत् ॥९१॥
 धम्मिल्लमकरीदंष्ट्राकोटिस्काटितमंशुकम् । महत्तरिकया काचिदष्ट्रेपपरिभाषिता ॥९२॥
 विभ्रंशिमनसोऽन्यस्य वपुषि श्लथतां गते^१ । विस्त्रस्तबाहुलतिकावदनात्कटकोऽपतत् ॥९३॥
 कस्याश्चिदन्यवनिताकर्णाभरणसङ्गतः । विच्छिन्नपतितो हारः कुसुमाञ्जलितां गतः ॥९४॥
 बभूवुर्दृष्टयस्तासां निमेषपरिवर्जिताः । गतयोरपि कासाञ्चित्तयोर्दूरं तथा स्थिताः ॥९५॥

मालिनीवृत्तम्

इति वरभवनाङ्घ्रिखीलतामुक्तपुष्पप्रकरगलितधूलिधूसराकाशदेशाः ।
 परमविभवभाजो भूभुजो राघवाद्याः प्रविशिशुरतिरम्याः मन्दिरं मङ्गलाख्यम् ॥९६॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

अनभिसंहितमौहशमुत्तमं दयितजंतुसमागमनोत्सवम् ।
 भजति पुण्यरविप्रतिबोधितप्रवरमानसवारिरुहो जनः ॥९७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलवणांकुशसमागमामिधानं नाम शुकुतरशतं पर्व ॥१०३॥

धारण करता है वह लवण है और जो तीताके पङ्कके समान हरे रंगके वस्त्र पहने है वह अंकुश है ॥८६॥ अहो ! सीता बड़ी पुण्यवती है जिसके कि ये दोनों उत्तम पुत्र हैं । अहो ! वह स्त्री अत्यन्त धन्य है जो कि इनकी स्त्री होगी ॥८७॥ इस प्रकार उन्हीं एकमें जिनके नेत्र लग रहे थे ऐसी उत्तमोत्तम स्त्रियोंके बीच मन और कानोंकी हरण करनेवाली अनेक कथाएँ चल रही थीं ॥८८॥ उनमें जिसका चित्त लग रहा था ऐसी किसी स्त्रीने उस समय अत्यधिक धक्काधूर्मीके कारण कुण्डल रूपी साँपकी दाँढ़से विसान-चायल हुए अपने कपोलको नहीं जानती थी ॥८९॥ अन्य स्त्रीकी भुजाके उत्पीड़नसे वन्द चोलीके भीतर उठा हुआ किसीका स्तन मेघ सहित चन्द्रमाके सुशोभित हो रहा था ॥९०॥ किसी एक स्त्रीकी मेखना शब्द करती हुई नीचे गिर गई फिर भी उसे पता नहीं चला किन्तु लौटते समय उसी करधनीसे पैर फँस जानेके कारण वह गिर पड़ी ॥९१॥ किसी स्त्रीकी चोटीमें लगी मकरीकी दाँढ़से फटे हुए वस्त्रको देखकर कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री किसीसे कुल्ल कर रही थी ॥९२॥ जिसका मन ढीला हो रहा था ऐसे किसी दूसरे मनुष्यके शरीरके शिथिलताको प्राप्त करने पर उसकी नीचेकी ओर लटकती हुई बाहुरूपी लताके अग्रभागसे कड़ा नीचे गिर गया ॥९३॥ किसी एक स्त्रीके कर्णाभरणमें उलझा हुआ हार टूटकर गिर गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो फूलोंकी अञ्जलि ही बिखेर दी गई हो ॥९४॥ उन दोनों कुमारोंको देखकर किन्हीं स्त्रियोंके नेत्र निर्निमेष हो गये और उनके दूर चले जाने पर भी वैसे ही निर्निमेष रहे आये ॥९५॥ इस प्रकार उत्तमोत्तम भवनरूपी पर्वतों पर विद्यमान स्त्री रूपी लताओंके द्वारा छोड़े हुए फूलोंके समूहसे निकली धूलोसे जिन्होंने आकाशके प्रदेशोंको धूसर-वर्ण कर दिया था तथा जो परम वैभवको प्राप्त थे ऐसे श्रीराम आदि अत्यन्त सुन्दर राजाओंने मङ्गलसे परिपूर्ण महलमें प्रवेश किया ॥९६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि पुण्यरूपी सूर्यके द्वारा जिसका उत्तम मनरूपी कमल विकसित हुआ है ऐसा मनुष्य इस प्रकारके अचिन्तित तथा उत्तम प्रियजनोंके समागमसे उत्पन्न आनन्दको प्राप्त होता है ॥९७॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम तथा लवणांकुशके समागमका वर्णन करने वाला एक सौ तीसरा पर्व समाप्त हुआ ॥१०३॥

चतुरतरशतं पर्व

अथ विज्ञापितोऽन्यस्मिन्दिने हलधरो नृपः । मरुत्तन्दनसुग्रीवविभीषणपुरःसरैः ॥१॥
 नाथ प्रसीद विषयेऽन्यस्मिन्जनकदेहजा । दुःखमास्ते समानेतुं तामादेशो विधीयताम् ॥२॥
 निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च क्षणं किञ्चिद्विचिन्त्य च । ततो जगाद् पद्माभो बाष्पश्यामितद्विक्मुखः ॥३॥
 अनघं वेद्मि सीतायाः शीलमुत्तमचेतसः । प्राप्तायाः परिवादं तु पश्यामि वदनं कथम् ॥४॥
 समस्तं भूतले लोकं प्रत्याययतु जानकी । ततस्तया समं चासौ भवेदेव कुतोऽन्यथा ॥५॥
 एतस्मिन्भुवने तस्मान्नृपाः जनपदैः समम् । निमंभ्यतां परं प्रीत्या सकलाश्च नभश्चराः ॥६॥
 समक्षं शपथं तेषां कृत्वा सम्यग्विधानतः । निरवप्रभवं सीता शचीव प्रतिपद्यताम् ॥७॥
 एवमस्त्विति तैरेवं कृतं क्षेपविवर्जितम् । राजानः सर्वदेशेभ्यः सर्वदिग्भ्यः समाहूताः ॥८॥
 नानाजनपदा बालवृद्धयोपित्समन्विताः । अयोध्यानगरीं प्राप्ता महाकौतुकसंगताः ॥९॥
 असूर्यपश्यनार्योऽपि यत्राऽऽजग्मुः ससंभ्रमाः । ततः किं प्रकृतिस्थस्य जनस्यान्यस्य भण्यताम् ॥१०॥
 वर्षीर्यासोऽतिमात्रं ये बहुवृत्तान्तकोविदाः । राष्ट्रप्राग्महराः ख्यातास्ते चान्ये च समागताः ॥११॥
 तदा दिक्षु समस्तासु मार्गध्वं सर्वमेदिनीम् । नीता जनसमूहेन परसङ्घट्टमीथुषा ॥१२॥
 तुरगैः स्यन्दनैर्युग्मैः शिबिकाभिर्मतङ्गजैः । अन्यैश्च विविधैर्यानेलोकसम्पत्समागताः ॥१३॥
 आगच्छद्भिः खगैरुर्ध्वस्यश्च क्षितिगोचरैः । जगज्जंगमेवेति तदा समुपलक्ष्यते ॥१४॥

अथानन्तर किसी दिन हनूमान् सुग्रीव तथा विभीषण आदि प्रमुख राजाओंने श्री रामसे प्रार्थना की कि हे देव ! प्रसन्न होओ, सीता अन्य देशमें दुःखसे स्थित है इसलिए लानेकी आज्ञा की जाय ॥१-२॥ तब लम्बी और गरम श्वास ले तथा क्षण भर कुछ विचार कर भाषोंसे दिशाओं को मलिन करते हुए श्रीरामने कहा कि यद्यपि मैं उत्तम हृदयको धारण करने वाली सीताके शील को निर्दोष जानता हूँ तथापि वह यतश्च लोकापवादको प्राप्त है अतः उसका मुख किस प्रकार देखूँ ॥३-४॥ पहले सीता पृथिवीतल पर समस्त लोगोंको विश्वास उत्पन्न करावे उसके बाद ही उसके साथ हमारा निवास हो सकता है अन्य प्रकार नहीं ॥५॥ इसलिए इस संसारमें देशवासी लोगोंके साथ समस्त राजा तथा समस्त विद्याधर बड़े प्रेमसे निमन्त्रित किये जावें ॥६॥ उन सब के समक्ष अच्छी तरह शपथ कर सीता इन्द्राणीके समान निष्कलङ्क जन्मको प्राप्त हो ॥७॥ 'एवमस्तु'-'ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर उन्होंने विना किसी विलम्बके उक्त बात स्वीकृत की; फल स्वरूप नाना देशों और समस्त दिशाओंसे राजा लोग आ गये ॥८॥ बालक वृद्ध तथा स्त्रियोंसे सहित नाना देशोंके लोग महाकौतुकसे युक्त होते हुए अयोध्या नगरीको प्राप्त हुए ॥९॥ सूर्यको नहीं देखने वाली स्त्रियाँ भी जब संभ्रमसे सहित हो वहाँ आई थीं तब साधारण अन्य मनुष्यके विषयमें तो कहा ही क्या जावे ? ॥१०॥ अत्यन्त वृद्ध अनेक लोगोंका हाल जाननेमें निपुण जो राष्ट्रके श्रेष्ठ प्रसिद्ध पुरुष थे वे तथा अन्य सब लोग वहाँ एकत्रित हुए ॥११॥ उस समय परम भीड़को प्राप्त हुए जन समूहने समस्त दिशाओंमें समस्त पृथिवीको मार्ग रूपमें परिणत कर दिया था ॥१२॥ लोगोंके समूह घोड़े, रथ, बैल, पालकी तथा नाना प्रकारके अन्य वाहनोंके द्वारा वहाँ आये थे ॥१३॥ ऊपर विद्याधर आ रहे थे और नीचे भूमिगोचरी, इसलिए उन सबसे उस समय यह जगत् ऐसा जान पड़ता था मानो जंगम ही हो अर्थात् चलने फिरने वाला ही हो ॥१४॥

सुप्रपञ्चाः कृता मंचाः क्रीडापर्वतसुन्दराः । विशालाः परमाः शाला मण्डिता दूर्यमण्डपाः ॥१५॥
 अनेकपुरसम्पन्नाः प्रासादाः स्तम्भधारिताः । उदारजालकोपेता रचितोदारमण्डपाः ॥१६॥
 तेषु स्त्रियः समं स्त्रीभिः पुरुषाः पुरुषैः समम् । यथायोग्यं स्थिताः सर्वे शपथेक्षणकांसिम् ॥१७॥
 शयनासनताम्बूलभक्तमालयादिनाऽखिलम् । कृतमागन्तुलोकस्य सौस्थित्यं राजमानवैः ॥१८॥
 ततो रामसमादेशात्प्रभामण्डलसुन्दरः । लङ्केशो वायुपुत्रश्च किष्किन्धाधिपतिस्तथा ॥१९॥
 चन्द्रोदरसुतो रत्नजटी चेति महानृपाः । पौडरीकं पुरं याता बलिनो नभसा क्षणात् ॥२०॥
 ते विन्ध्यस्य बहिः सैन्यमन्तरङ्गजान्निवताः । विविशुर्जानकीस्थानं ज्ञापिताः सानुमोदनाः ॥२१॥
 विधाय जयशब्दं च प्रकीर्यं कुसुमाञ्जलिम् । पादयोः पाणियुग्माङ्गमस्तकेन प्रणम्य च ॥२२॥
 उपविष्टा महीपृष्ठे चारुकुट्टिमभासुरे । क्रमेण सङ्कथां चक्रुः पौरस्तया विनयानताः ॥२३॥
 सम्भाषिता सुगर्भीरा सीतास्तपिहितेक्षणा । आत्माभिनिन्दनाप्रार्थं जगद् परिमन्थरम् ॥२४॥
 असज्जनवचोदावदस्थान्यङ्गानि साम्प्रतम् । क्षीरोदधिजलेनापि न मे गच्छन्ति निर्वृतिम् ॥२५॥
 ततस्ते जगदुर्वै भगवत्यधुनोत्तमे । शोकं सौम्ये च मुञ्चस्व प्रकृतौ कुरु मानसम् ॥२६॥
 असुमान्विष्टपे कोऽसौ त्वयि यः परिवादकः । कोऽसौ चालयति क्षोणीं वह्नेः पिबति कः शिखाम् ॥२७॥
 सुमेरुमूर्तिमुख्येऽनुं साहसं कस्य विद्यते । जिह्वया लेढि मूढात्मा कोऽसौ चन्द्रार्कयोस्तनुम् ॥२८॥
 गुणरत्नमहीध्रं ते कोऽसौ चालयितुं वमः । न स्फुटयपवादेन कस्य जिह्वा सहस्रधा ॥२९॥
 अस्माभिः किङ्कराणां नियुक्ता भरतावनौ । परिवाद्गतौ देव्या दुष्टात्मा वध्यतामिति ॥३०॥

क्रीडा-पर्वतोंके समान लम्बे चौड़े मख तैयार किये गये, उत्तमोत्तम विशाल शालाएँ, कपड़ेके उत्तम तम्बू, तथा जिनकी अनेक गाँव समा जावें ऐसे खम्भों पर खड़े किये गये, बड़े बड़े भ्रूणोंसे युक्त तथा विशाल मण्डपोंसे सुरोभित महल बनवाये गये ॥१५-१६॥ उन सब स्थानोंमें स्त्रियाँ स्त्रियोंके साथ और पुरुष पुरुषोंके साथ, इस प्रकार शपथ देखनेके इच्छुक सब लोग यथायोग्य ठहर गये ॥१७॥ राजाधिकारी पुरुषोंने आगन्तुक मनुष्योंके लिए शयन आसन ताम्बूल भोजन तथा माला आदिके द्वारा सब प्रकारकी सुविधा पहुँचाई थी ॥१८॥

तदनन्तर रामकी आज्ञासे भामण्डल, विभीषण, हनूमान्, सुग्रीव, विराधित और रत्नजटी आदि बड़े बड़े बलवान् राजा क्षणभरमें आकाश मार्गसे पौण्डरीकपुर गये ॥१९-२०॥ वे सब, सेनाको बाहर ठहरा कर अन्तरङ्ग लोगोंके साथ सूचना देकर तथा अनुमति प्राप्त कर सीताके स्थानमें प्रविष्ट हुए ॥२१॥ प्रवेश करते ही उन्होंने सीतादेवीका जय जयकार किया, पुष्पाञ्जलि बिखेरी, हाथ जोड़ मस्तकसे लगा चरणोंमें प्रणाम किया, सुन्दर मणिमय फर्ससे सुरोभित पृथिवी पर बैठे और सामने बैठ विनयसे नम्रीभूत हो कमपूर्वक वार्तालाप किया ॥२२-२३॥ तदनन्तर संभाषण करनेके बाद अत्यन्त गम्भीर सीता, आंसुओंसे नेत्रोंको आच्छादित करती हुई अधिकांश आत्म निन्दा रूप वचन धीरे धीरे बोली ॥२४॥ उसने कहा कि दुर्जनोंके वचन रूपी दावानलसे जले हुए मेरे अङ्ग इस समय क्षीरसागरके जलसे भी शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥२५॥ तब उन्होंने कहा कि हे देवि ! हे भगवति ! हे उत्तमे ! हे सौम्ये ! इस समय शोक छोड़ो और मनको प्रकृतिस्थ करो ॥२६॥ संसारमें ऐसा कौन प्राणी है जो तुम्हारे विषयमें अपवाद करने वाला हो । वह कौन है जो पृथिवी चला सके और अग्निशिखाका पान कर सके ? ॥२७॥ सुमेरु पर्वतको उठानेका किसमें साहस है ? चन्द्रमा और सूर्यके शरीरको कौन मूर्ख जिह्वासे चाटता है ? ॥२८॥ तुम्हारे गुण रूपी पर्वतको चलानेके लिए कौन समर्थ है ? अपवादसे किसकी जिह्वा के हजार टुकड़े नहीं होते ? ॥२९॥ हम लोगोंने भरत क्षेत्रकी भूमिमें किंकरोंके समूह यह कह कर नियुक्त कर रक्खे हैं कि जो भी देवीकी निन्दा करनेमें तत्पर हो उसे मार डाला जाय ॥३०॥

१. वल्लनिर्मितमण्डपाः । २. आत्मभिनिन्दनप्रार्थं म० । ३. गच्छति म० ।

पृथिव्यां योऽतिर्नीचोऽपि सीतागुणकधारतः । विनीतस्य गृहे तस्य रत्नवृष्टिर्निपात्यताम् ॥३१॥
 अनुरागेण ते धान्यराशिषु क्षेत्रमानवाः । कुर्वन्ति स्थापनां सस्यसम्पत्प्रार्थनतःपरा ॥३२॥
 एतन्ने पुष्पकं देवि प्रेषितं रघुभानुना । प्रसीदारुह्यतामेतद्गर्भ्यतां कोशलां पुरीम् ॥३३॥
 पद्मः पुरं च देशश्च न शोभन्ते त्वया विना । यथा तरुगृहाकाशं लतादीपेन्दुमूर्तिभिः ॥३४॥
 मुखं मैथिलि पश्याद्य सद्यः पूर्णेन्दुरुत्प्रभोः । ननु पत्युर्वचः कार्यमवश्यं कोविदे त्वया ॥३५॥
 एवमुक्त्वा प्रधानस्त्रीशतोत्तमपरिच्छदा । महद्दर्श्यां पुष्पकारूढा तरसा नभसा ययौ ॥३६॥
 अथायोध्या पुरीं दृष्ट्वा भास्करं चास्तसङ्गतम् । सा महेन्द्रोदयोद्याने तिन्ये चिन्तातुरा निशाम् ॥३७॥
 यदुद्यानं सपद्यायास्तदासीं सुमनोहरम् । तदेतस्मृतपूर्वायास्तस्या जातमसाग्रतम् ॥३८॥
 सीताशुद्ध अनुरागाद्वा पद्मवन्धावधोदिते । प्रसाधितेऽखिले लोके किरणैः किङ्करैश्चि ॥३९॥
 शपथादेव दुर्वादे भीते ध्वान्ते क्षयं गते । समीपं पद्मनाभस्य प्रस्थिता जनकात्मजा ॥४०॥
 सा करेणुसमारूढा दौर्मनस्याहतप्रभा । भास्करालोकदृष्टेव सानुगाऽऽसीन्महौपधिः ॥४१॥
 तथाप्युत्तमनारीभिरावृता भद्रभावना । रेजे सा नितरां तन्वी ताराभिर्वा विधोः कला ॥४२॥
 ततः परिषदं पृथ्वीं गम्भीरां विनयस्थिताम् । बन्धमानेऽव्यमाना च धीरा रामाङ्गनाविशत् ॥४३॥
 विषादी विस्मयी हर्षी संक्षोभी जनसागरः । कर्द्धस्व जय नन्देति चकाराश्रेडितं स्वनम् ॥४४॥

और जो पृथिवीमें अत्यन्त नीच होने पर भी सीताकी गुण कथामें तत्पर हो उस विनीतके घरमें रत्नवर्षा की जाय ॥३१॥ हे देवि ! धान्य रूयी सम्पत्तिकी इच्छा करने वाले खेतके पुरुष अर्थात् कृषक लोग अनुराग वश धान्यकी राशियोंमें तुम्हारी स्थापना करते हैं ? भावार्थ—लोगोंका विश्वास है कि धान्य राशियोंमें सीताकी स्थापना करनेसे अधिक धान्य उत्पन्न होता है ॥३२॥ हे देवि ! रामचन्द्र जी ने तुम्हारे लिए यह पुष्पक विमान भेजा है सो प्रसन्न हो कर इस पर चढ़ा जाय और अयोध्याकी ओर चला जाय ॥३३॥ जिस प्रकार लताके बिना वृक्ष, दीपके बिना घर और चन्द्रमाके बिना आकाश सुशोभित नहीं होते उसी प्रकार तुम्हारे बिना राम, अयोध्या नगरी और देश सुशोभित नहीं होते ॥३४॥ हे मैथिलि ! आज शीघ्र ही स्वामीका पूर्णचन्द्रके समान मुख देखो । हे कोविदे ! तुम्हें पति वचन अवश्य स्वीकृत करना चाहिए ॥३५॥ इस प्रकार कहने पर सैकड़ों उत्तम स्त्रियोंके परिकरके साथ सीता पुष्पक विमान पर आरूढ हो गई और बड़े वैभव के साथ वेगसे आकाशमार्गसे चली ॥३६॥ अथानन्तर जब उसे अयोध्यानगरी दिखी उसी समय सूर्य अस्त हो गया अतः उसने चिन्तातुर हो महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें रात्रि व्यतीत की ॥३७॥ रामके साथ होने पर जो उद्यान पहले उसके लिए अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था वही उद्यान पिछली घटना स्मृत होने पर उसके लिए अयोभ्य जान पड़ता था ॥३८॥

अथानन्तर सीताकी शुद्धिके अनुरागसे ही मानों जब सूर्य उदित हो चुका, किङ्करोंके समान किरणोंसे जब समस्त संसार अलंकृत हो गया और शपथसे दुर्वादेके समान जब अन्धकार भयभीत हो क्षयको प्राप्त हो गया तब सीता रामके समीप चली ॥३९-४०॥ मनकी अशान्तिसे जिसकी प्रभा नष्ट हो गई थी ऐसी हस्तिनीपर चढ़ी सीता, सूर्यके प्रकाशसे आलोकित, पर्वतके शिखर पर स्थित महौषधिके समान यद्यपि निष्प्रभ थी तथापि उत्तम स्त्रियोंसे घिरी, उच्च भावनावाली दुबली पतली सीता, ताराओंसे घिरी चन्द्रमाकी कलाके समान अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४१-४२॥

तदनन्तर जिसे सब लोग बन्धना कर रहे थे तथा जिसकी सब स्तुति कर रहे थे ऐसी धीर वीरा सीताने विशाल, गम्भीर एवं विनयसे स्थित सभामें प्रवेश किया ॥४३॥ विषाद, विस्मय,

अहोरूपमहो धैर्यमहो सत्वमहो द्युतिः । अहो महानुभावत्वमहो गाम्भीर्यमुत्तमम् ॥४५॥
 अहोऽस्या धीतपङ्कजं समागमनसूचितम् । श्रीमज्जनकराजस्य सुतायाः सितकर्मणः ॥४६॥
 एवमुद्घृषिताङ्गानां नराणां सहयोपिताम् । वदनेभ्यो विनिश्चेरुर्वाचो व्यासदिगन्तराः ॥४७॥
 गगने खेचरो लोको धरण्यां धरणीचरः । उदात्तकौतुकस्तस्थी निमेपरहितेक्षणः ॥४८॥
 प्रजातसम्मदाः केचित्पुरुषाः प्रमदास्तथा । अभीष्टाञ्चकिरे रामं सङ्क्रन्दनमिवासराः ॥४९॥
 पार्श्वस्थौ वीषय रामस्य केचिच्च लवणांकुशौ । जगद्गुः सदशावस्य सुकुमाराविमाविति ॥५०॥
 लक्ष्मणं केचिद्धूमन्तं प्रतिपन्नयक्षमम् । शशुष्तसुन्दरं केचिदेके जनकनन्दनम् ॥५१॥
 स्यात्तं केचिद्धूमन्तं त्रिकूटाधिपतिं वरे । अन्ये विराधितं केचिक्किष्किधनगरेश्वरम् ॥५२॥
 केचिज्जनकराजस्य सुतं विस्मितचेतसः । वसतिः सा हि नेत्राणां क्षणमात्रान्यचारिणाम् ॥५३॥
 उपसृत्य ततो रामं दृष्ट्वा व्याकुलमानसा । त्रियोगसागरस्यान्तं प्राप्तं जानन्नयमन्यत ॥५४॥
 प्राप्तायाः पद्मभार्याया लक्ष्मणोऽर्धं ददौ ततः । प्रणामं चकिरे भूपाः सम्भ्रान्ता रामपार्श्वगाः ॥५५॥
 ततोऽभिमुखमायन्तीं वीक्ष्य तां रभसान्विताम् । राघवोऽणोभ्यसत्त्वोऽपि सकम्पहृदयोऽभवत् ॥५६॥
 अचिन्तयथश्च मुक्ताऽपि वने व्यालसमाकुले । मम लोचनचौरीयं कथं भूयः समागता ॥५७॥
 अहो विगतलज्जेयं महासत्वसमन्विता । यैवं निर्वास्यमानापि विरागं न प्रपद्यते ॥५८॥
 ततस्तद्विद्वितं ज्ञान्वा वितानीभूतमानसा । विरहो न मयोत्तीर्ण इति साऽभद्विपादिनी ॥५९॥

हर्ष और क्षोभसे सहित मनुष्योंका अपार सागर बार-बार यह शब्द कह रहा था कि वृद्धिको प्राप्त होओ, जयवन्त होओ और समृद्धिसे सम्पन्न होओ ॥४४॥ अहो ! उज्ज्वल कार्य करनेवाली श्रीमान् राजा जनककी पुत्री सीताका रूप धन्य है ? धैर्य धन्य है, पराक्रम धन्य है, उसकी कान्ति धन्य है, महानुभावता धन्य है, और समागमसे सूचित होनेवाली इसकी निष्कलंकता धन्य है ॥४५-४६॥ इस प्रकार उल्लसित शरीरोंको धारण करनेवाले मनुष्यों और स्त्रियोंके मुखोंसे दिग्दिगन्तको व्याप्त करनेवाले शब्द निकल रहे थे ॥४७॥ आकाशमें विद्याधर और पृथिवीमें भूमिगोचरी मनुष्य, अत्यधिक कौतुक और टिमकार रहित नेत्रोंसे युक्त थे ॥४८॥ अत्यधिक हर्षसे सम्पन्न कितनी ही स्त्रियाँ तथा कितने ही मनुष्य रामको टकटकी लभाये हुए उस प्रकार देख रहे थे जिस प्रकार कि देव इन्द्रको देखते हैं ॥४९॥ कितने ही लोग रामके समीपमें स्थित लवण और अंकुशको देखकर यह कह रहे थे कि अहो ! ये दोनों सुकुमार कुमार इनके ही सदृश हैं ॥५०॥ कितने ही लोग शत्रुका क्षय करनेमें समर्थ लक्ष्मणको, कितने ही शत्रुघ्नको, कितने ही भामण्डलको, कितने ही हनूमान्को, कितने ही विभीषणको, कितने ही विराधितको और कितने ही सुग्रीवको देख रहे थे ॥५१-५२॥ कितने ही आश्चर्यसे चकित होते हुए जनकसुता को देख रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि वह क्षण मात्रमें अन्यत्र विचरण करनेवाले नेत्रोंकी मानो वसति ही थी ॥५३॥ तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त आकुल हो रहा था ऐसी सीताके पास जाकर तथा रामको देख कर माना था कि अब वियोगरूपी सागरका अन्त आ गया है ॥५४॥ आई हुई सीताके लिए लक्ष्मणने अर्घ्य दिया तथा रामके समीप बैठे हुए राजाओंने हड़बड़ा कर उसे प्रणाम किया ॥५५॥

तदनन्तर वेगसे सामने आती हुई सीताको देख कर यद्यपि राम अक्षोभ्य पराक्रमके धारक थे तथापि उनका हृदय कांपने लगा ॥५६॥ वे विचार करने लगे कि मैंने तो इसे हिंसक जन्तुओंसे भरे वनमें छोड़ दिया था फिर मेरे नेत्रोंको चुगनेवाली यह यहाँ कैसे आ गई ? ॥५७॥ अहो ! यह बड़ो निर्लज्ज है तथा महाशक्तिसे सम्पन्न है जो इस तरह निकाली जाने पर भी विरागको प्राप्त नहीं होती ॥५८॥ तदनन्तर रामकी चेष्टा देख, शून्यहृदया सीता यह सोचकर विषाद करने

विरहोदन्वतः कूलं मे मनःपात्रमागतम् । नूनमेष्यति विध्वंसमिति चिन्ताकुलाऽभवत् ॥६०॥
 किङ्कर्तव्यविमूढा सा पादाकुष्ठेन सङ्गता । विलिखन्ती कितिं तस्थौ बलदेवसमीपगा ॥६१॥
 अग्रतोऽवस्थिता तस्य विरेजे जनकात्मजा । पुरन्दरपुरे^१ जाता लक्ष्मीरिव शरीरिणी ॥६२॥
 ततोऽभ्यघ्रायि रामेण सीते तिष्ठसि किं पुरः । अपसर्पं न शक्तोऽस्मि भवतोमभिवीक्षितुम् ॥६३॥
 मध्याह्ने दाधितिं सौरीमाशीविषमणेः शिखाम् । वरमुत्सहते चक्षुरीक्षितुं भवतीं तु नो ॥६४॥
 दशास्यभवने मासान् बहूनन्तः पुरावृताः । स्थिता यदाहता भूयः समस्तं किं ममोचितम् ॥६५॥
 ततो जगाद् वैदेही निष्ठुरो नास्ति त्वत्समः^२ । तिरस्करोषि मां येन सुविद्यां प्राकृतो यथा^३ ॥६६॥
 दोहलच्छ्रमना नीत्वा वनं कुटिलमानसः^४ । गर्भाधानसमेतां मे त्यक्तुं किं सहशं तव ॥६७॥
 असमाधिभृतिं प्राप्ता तत्र स्यामहकं यदि । ततः किं ते भवेत् सिद्धं मम दुर्गतिदायिनः ॥६८॥
 अतिस्वल्पोऽपि सद्भावो मद्यस्ति यदि वा कृपा । ज्ञान्यार्याणां ततः किं न नीत्वा वसतिमुज्जिता ॥६९॥
 अनाथानामब्रन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् । जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम् ॥७०॥
 एवं गतेऽपि पद्माम प्रसीद किमिहोरुणा । कथितेन प्रयच्छाऽऽज्ञामित्युक्त्वा दुःखिताऽरुदत् ॥७१॥
 रामो जगाद् जानामि देवि शीलं तवानघम् । मदनुव्रततां चोच्चैर्भावस्य च विशुद्धताम् ॥७२॥
 परिवादमिमं किन्तु प्राप्ताऽसि प्रकटं परम् । स्वभावकुटिलस्वान्तामेतां प्रत्यापय प्रजाम् ॥७३॥

लगी कि मैंने विरह रूपी सागर अभी पार नहीं कर पाया है ॥५६॥ विरह रूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मेरा मनरूपी जहाज निश्चित ही विध्वंसको प्राप्त हो जायगा—नष्ट हो जायगा ऐसी चिन्तासे वह व्याकुल हो उठी ॥६०॥ 'क्या करना चाहिए' इस विषयका विचार करनेमें मूढ़ सीता, पैरके अंगूठेसे भूमिको कुरेदती हुई रामके समीप खड़ी थी ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय रामके आगे खड़ी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो शरीरधारिणी स्वर्गकी लक्ष्मी ही हो अथवा इन्द्रके आगे मूर्तिमती लक्ष्मी ही खड़ी हो ॥६२॥

तदनन्तर रामने कहा कि सीते ! सामने क्यों खड़ी है ? दूर दूर, मैं तुम्हें देखनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६३॥ मेरे नेत्र मध्याह्नके समय सूर्यकी किरणको अथवा आशीविष-सर्पके मणिकी शिखाको देखनेके लिए अच्छी तरह उत्साहित हैं परन्तु तुम्हें देखनेके लिए नहीं ॥६४॥ तू रावणके भवनमें कई मास तक उसके अन्तःपुरसे आवृत्त होकर रही फिर भी मैं तुम्हें ले आया सो यह सब क्या मेरे लिए उचित था ? ॥६५॥

तदनन्तर सीताने कहा कि तुम्हारे समान निष्ठुर कोई दूसरा नहीं है । जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य उत्तम विद्याका तिरस्कार करता है उसी प्रकार तुम मेरा तिरस्कार कर रहे हो ॥६६॥ हे वक्रहृदय ! दोहलाके बहाने वनमें ले जाकर मुझ गर्भिणीको छोड़ना क्या तुम्हें उचित था ? ॥६७॥ यदि मैं वहाँ कुमरणको प्राप्त होती तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होता ? केवल मेरी ही दुर्गति होती ॥६८॥ यदि मेरे ऊपर आपका थोड़ा भी सद्भाव होता अथवा थोड़ी भी कृपा होती तो मुझे शान्तिपूर्वक आर्यिकाओंकी वसतिके पास ले जाकर क्यों नहीं छोड़ा ॥६९॥ यथार्थमें अनाथ, अब्रन्धु, दरिद्र तथा अत्यन्त दुःखी मनुष्योंका यह जिनशासन ही परम शरण है ॥७०॥ हे राम ! यहाँ अधिक कहनेसे क्या ? इस दशामें भी आप प्रसन्न हों और मुझे आज्ञा दें । इस प्रकार कह कर वह अत्यन्त दुःखी हो रोने लगी ॥७१॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे देवि ! मैं तुम्हारे निर्दोष शील, पातिव्रत्यधर्म एवं अभिप्रायकी उत्कृष्ट विशुद्धताको जानता हूँ किन्तु यतश्च तुम लोगोंके द्वारा इस प्रकट भारी अपवादको प्राप्त हुई हो अतः स्वभावसे ही कुटिलचित्तको धारण करनेवाली इस प्रजाको विश्वास दिलाओ । इसकी

एवमस्त्विति वैदेही जगौ सम्मदिनी ततः । दिव्यैः पञ्चभिरप्येषा लोकं प्रत्याययाम्यहम् ॥७४॥
 विषाणां विषमं नाथ कालकूटं पिबाम्यहम् । आशीविषोऽपि यं घ्रात्वा सद्यो गच्छति भस्मताम् ॥७५॥
 आरोहामि तुलां वह्निज्वालां रौद्रां विशामि वा । यो वा भवदभिप्रेतः समयस्तं करोम्यहम् ॥७६॥
 ऋणं विचिन्त्य पद्माभो जगौ वह्निं विशोऽयतः । जगौ सीता विशामाति महासम्मदधारिणी ॥७७॥
 प्रतिपन्नोऽनया मृत्युरित्यदीर्यत^१ नारदः । शोकोत्पीडैरपीड्यन्त श्रीशैलाद्या नरेश्वराः ॥७८॥
 पावकं प्रविविचन्तीं परिनिश्चिचय मातरम् ! चक्रतुस्तदतिं बुद्ध्यावामनोर्लवणाङ्कुरौ ॥७९॥
 महाप्रभावसम्पन्नः प्रहर्षं धारयंस्ततः । सिद्धार्थक्षुल्लकोऽवोचदुदृष्ट्य भुजमुन्नतम् ॥८०॥
 न सुरैरपि वैदेह्याः शीलव्रतमरोषतः । शक्यं कीर्त्तयितुं कैव कथा क्षुद्रशरीरिणाम् ॥८१॥
 पातालं प्रविशोऽग्नेरुः शुष्येयुर्मकरालयाः । न पद्मचलनं किञ्चित्सीताशीलव्रतस्य तु ॥८२॥
 इन्दुरर्कवमागच्छेदर्कः शीतांशुतां व्रजेत् । न तु सीतापरीवादः कथञ्चित्सत्यतां व्रजेत् ॥८३॥
 विद्याबलसमृद्धेन मया पञ्चसु मेरुषु । वन्दना जिनचन्द्राणां कृता शाश्वतधामसु ॥८४॥
 सा मे विफलतां यायात्पद्मनाभ सुदुर्लभा । विपत्तिर्विदंती सीतायाः शीलस्यास्ति मनावपि ॥८५॥
 भूरिवर्षसहस्राणि सचेलेन मया कृतम् । तपस्तेन^२ शपे नाहं यथेभौ तव पुत्रकौ ॥८६॥
 भीमज्वालावर्लीभङ्गं सर्वभङ्गं^३ तुनिष्ठुरम्^४ । मा विशेषदन्तं सीता तस्मात्पद्म विचक्षण ॥८७॥

शङ्का दूर करो ॥७२-७३॥ तब सीताने हर्षयुक्त हो 'एवमस्तु' कहते हुए कहा कि मैं पाँचों ही दिव्य शपथोंसे लोगोंको विश्वास दिलाती हूँ ॥७४॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मैं उस कालकूटको पी सकती हूँ जो विषाणोंमें सबसे अधिक विषम है तथा जिसे सूयंकर आशीविष सर्प भी तत्काल भस्मपनेको प्राप्त हो जाता है ॥७५॥ मैं तुलापर चढ़ सकती हूँ अथवा भयङ्कर अग्निकी ज्वालामें प्रवेश कर सकती हूँ अथवा जो भी शपथ आपकी अभीष्ट हो उसे कर सकती हूँ ॥७६॥ ऋणभर विचारकर रामने कहा कि अच्छा अग्निमें प्रवेश करो । इसके उत्तरमें सीताने बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि हाँ, प्रवेश करती हूँ ॥७७॥ 'इसने मृत्यु स्वीकृत कर ली' यह विचारकर नारद विदीर्ण हो गया और हनूमान् आदि राजा शोकके भारसे पीडित हो उठे ॥७८॥ 'माता अग्निमें प्रवेश करना चाहती है' यह निश्चयकर लवण और अङ्कुराने बुद्धिमें अपनी भी उसी गतिकी विचार कर लिया अर्थात् हम दोनों भी अग्निमें प्रवेश करेंगे ऐसा उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया ॥७९॥ तदनन्तर महाप्रभावसे सम्पन्न एवं बहुत भारी हर्षको धारण करनेवाले सिद्धार्थ क्षुल्लकने भुजा ऊपर उठाकर कहा कि सीताके शीलव्रतका देव भी पूर्णरूपसे वर्णन नहीं कर सकते फिर क्षुद्र प्राणियोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥८०-८१॥ हे राम ! मेरु पातालमें प्रवेश कर सकता है और समुद्र सूख सकते हैं परन्तु सीताके शीलव्रतमें कुछ चञ्चलता उत्पन्न नहीं की जा सकती ॥८२॥ चन्द्रमा सूर्यपनेको प्राप्त हो सकता है और सूर्य चन्द्रपनेको प्राप्त कर सकता है परन्तु सीताका अपवाद किसी भी तरह सत्यताको प्राप्त नहीं हो सकता ॥८२-८३॥ मैं विद्याबलसे समृद्ध हूँ और और मैंने पाँचों मेरु पर्वतोंपर स्थित शाश्वत-अकृत्रिम चैत्यालयोंमें जो जिन-प्रतिमाएँ हैं उनकी वन्दना की है । हे राम ! मैं जोर देकर कहता हूँ कि यदि सीताके शीलमें थोड़ी भी कमी है तो मेरी वह दुर्लभ वन्दना निष्फलताको प्राप्त हो जाय ॥८४-८५॥ मैंने बह्मखण्ड धारण कर कई हजार वर्ष तक तप किया सो यदि ये तुम्हारे पुत्र न हों तो मैं उस तपकी शपथ करता हूँ अर्थात् तपकी शपथपूर्वक कहता हूँ कि ये तुम्हारे ही पुत्र हैं ॥८६॥ इसलिए हे बुद्धिमन् राम ! जिसमें भयङ्कर ज्वालावली रूप लहरें उठ रही हैं तथा जो सबका संहार करनेवाली है ऐसी अग्निमें

१. रित्युदीर्यत म० । २. विपुलतां म० । ३. तपस्तेन म० । ४. ज्वालावली- म० ।

योमिन् वैद्याधरो लोको धरण्यां धरणीचरः । जगाद् साधु साधूकमिति मुक्तमहास्वयः ॥८८॥
 प्रसीद् देव पद्माभ प्रसीद् व्रज सौम्यताम् । नाथ मा राम मा राम कार्षीः पावकमानसम् ॥८९॥
 सती सीता सती सीता न सम्भाव्यमिहान्यथा । महापुरुषपरनीनां जायते न विकारिता ॥९०॥
 इति वाष्पभराद्वाचो गद्गदा जनसागरात् । संक्षुब्धाद्भिनिश्चेरुव्याससर्वदिगन्तराः ॥९१॥
 महाकोलाहलस्वानैः समं सर्वासुधारिणाम् । अत्यन्तशोकिनां स्थूला निपेतुर्वाष्पदिन्दवः ॥९२॥
 पद्मो जगाद् यद्येवं भवन्तः करुणापराः । ततः पुरा परिवादमभाषिष्वं कुतो जनाः ॥९३॥
 एवमाज्ञापयतीवमनपेक्षश्च किङ्करान् । आलम्ब्य परमं सत्त्वं विशुद्धिन्यस्तमानसः ॥९४॥
 पुरुषो द्वावधस्ताद्द्राक् खन्यतामन्न मेदिनी । शतानि त्रीणि हस्तानां चतुष्कोणा प्रमाणतः ॥९५॥
 विधायैवविधां वापीं सुशुष्कैः परिपूर्यताम् । इन्धनैः परमस्थूलैः कृष्णागरुकचन्दनैः ॥९६॥
 प्रचण्डबहलज्वालो ज्वाल्यतामाशुशुष्कणिः । साक्षान्मृत्युरिवोपात्तविग्रहो निर्विलम्बितम् ॥९७॥
 यथाऽऽज्ञापयतीत्युक्त्वा महाकुहालपाणिभिः । किङ्करैस्तत्कृतं सर्वं कृतान्तपुरुषोत्तमैः ॥९८॥
 यस्यामेवाथ वेलाया संवादः पद्मसीतयोः । क्रियते किङ्करैर्भीममनुष्ठानं च दाहनम् ॥९९॥
 तदनन्तरं शर्वथां ध्यानमुत्तममीयुषः । महेन्द्रोदयमेदिन्यां सर्वभूषणयोगिनः ॥१००॥
 उपसर्गो महानासीज्जनितः पूर्ववैरतः । अत्यन्तरीर्षराक्षसा विद्युद्बक्त्राभिधानया ॥१०१॥
 अगृह्णद्दथ सम्बन्धं श्रेणिको मुनिपुङ्गवम् । ततो गणधरोऽवोचररेन्द्र श्रूयतामिति ॥१०२॥

सीता प्रवेश नहीं करे ॥८८॥ लुल्लककी बात सुन आकाशमें विद्याधर और पृथ्वीपर भूमिगोचरी लोग 'अच्छा कहा-अच्छा कहा' इस प्रकारकी जोरदार आवाज लगाते हुए बोले कि 'हे देव प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, सौम्यताको प्राप्त होओ, हे नाथ ! हे राम ! हे राम ! मनमें अग्निका विचार मत करो ॥८८-८९॥ सीता सती है, सीता सती है, इस विषयमें अन्यथा सम्भावन नहीं हो सकती । महापुरुषोंकी पत्नियोंमें विकार नहीं होता ॥९०॥ इस प्रकार समस्त दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करनेवाले, तथा अश्रुओंके भारसे गद्गद अवस्थाको प्राप्त हुए शब्द, संक्षुब्ध जनसागरसे निकलकर सब ओर फैल रहे थे ॥९१॥ तीव्र शोकसे युक्त समस्त प्राणियोंके आंसुओंकी बड़ी-बड़ी बूँदें महान् कलकल शब्दोंके साथ-साथ निकलकर नीचे पड़ रही थीं ॥९२॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे मानवो ! यदि इस समय आप लोग इस तरह दया प्रकट करनेमें तत्पर हैं तो पहले आप लोगोंने अववाद क्यों कहा था ? ॥९३॥ इस प्रकार लोगोंके कथनकी अपेक्षा न कर जिन्होंने मात्र विशुद्धतामें मन लगाया था ऐसे रामने परम हृदताका आलम्बनकर किङ्करोंकी आज्ञा दी कि ॥९४॥ यहाँ शीघ्र ही दो पुरुष गहरी और तीन सौ हाथ चौड़ी चौकीन पृथ्वी प्रमाणके अनुसार खोदो और ऐसी वापी बनाकर उसे कालागुरु तथा चन्दनके सूखे और बड़े मोटे ईन्धन परिपूर्ण करो । तदनन्तर उसमें बिना किसी विलम्बके ऐसी अग्नि प्रज्वलित करो कि जिसमें अत्यन्त तीव्र ज्वालाएँ निकल रही हों तथा जो शरीरधारी साक्षान् मृत्युके समान जान पड़ती हो ॥९५-९७॥ तदनन्तर बड़े-बड़े कुदाले जिनके हाथमें थे तथा जो यमराजके सेवकोंसे भी कहीं अधिक थे ऐसे सेवकोंने 'जो आज्ञा' कहकर रामकी आज्ञानुसार सब काम कर दिया ॥९८॥

अथानन्तर जिस समय राम और सीताका पूर्वोक्त संवाद हुआ था तथा किङ्कर लोग जिस समय अग्नि प्रज्वालनका भयङ्कर कार्य कर रहे थे उसी समयसे लगी हुई रात्रिमें सर्वभूषण मुनिराज महेन्द्रोदय उद्यानकी भूमिमें उत्तम ध्यान कर रहे थे सो पूर्व वैरके कारण विद्युद्बक्त्रा नामकी राक्षसीने उनपर महान् उपसर्ग किया ॥९९-१०१ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे

१. गद्गदाजन- म० । २. एष श्लोकः म० पुस्तके नास्ति ।

विजयाङ्गोत्तरे वास्ये सर्वपूर्वत्र शोभिते । गुञ्जाभिधाननगरे राजाऽभूत् सिंहविक्रमः ॥१०३॥
 तस्य श्रीरित्यभूद्भार्या पुत्रः सकलभूषणः । अष्टौ शतानि तत्कान्ता अग्रा किरणमण्डला ॥१०४॥
 कदाचित्सा सपत्नीभिरुच्यमाना सुमानसा । चित्रे मैथुनिकं चक्रे देवो हेमशिखाभिधम् ॥१०५॥
 तं राजा सहसा वीच्य परमं कौपमागतः । पत्नीभिश्चोच्यमानश्च प्रसादं पुनरागमत् ॥१०६॥
 सम्मदेनान्यदा सुता साध्वी किरणमण्डला । मुहुर्हेमशिखाभिख्यां प्रमादात्समुपाददे ॥१०७॥
 श्रुत्वा तां सुतरां क्रुद्धो राजा वैराग्यमागतः । प्रमाज्जीत्साऽपि मृत्वाऽभू द्विसुदास्येति राक्षसी ॥१०८॥
 तस्य सा अमती भिक्षां कृत्वा श्रुदितबन्धनम् । मतङ्गजं परिक्रुद्धा प्रत्यूहनिरताऽभवत् ॥१०९॥
 गृहदाहं रजोवर्षमश्नोत्त्राभिमुखामगम् । कण्टकावृतमार्गत्वं तथा चक्रे दुर्गहिता ॥११०॥
 क्षिन्वाऽन्यदा गृहे सन्धिघेतं प्रतिमथा स्थितम् । स्थापयःस्थानने तस्य स चौर इति गृह्यते ॥१११॥
 मुच्यते च पराभूय परमार्थपराङ्मुखैः । महता जनवृन्देन स्वनता बद्धमण्डलः ॥११२॥
 कृतभिक्षस्य निघातः कदाचित्क्षिप्तदा स्त्रियः । हारं गलेऽस्य बध्नाति स चौर इति कथ्यते ॥११३॥
 अतिक्रमताः पापा एवमादीनुपद्रवान् । चक्रे सा तस्य निर्वेदरहिता सततं परान् ॥११४॥
 ततोऽस्य प्रतिमास्थस्य महेन्द्रोद्यानगोचरे । उपसर्गं परं चक्रे पूर्ववैराभुवन्धनः ॥११५॥
 वेतालैः करिभिः सिंहैर्वाग्रेःकर्महोरगैः । नानारूपैर्गुणैर्दिव्यनारादृशनलोज्ज्वैः ॥११६॥

इनके पूर्व वैरका सम्बन्ध पूछा सो गणधर भगवान् बोले कि हे नरेन्द्र ! सुनो ॥१०२॥ विजया-
 धर्पवर्तकी उत्तर श्रेणीमें सर्वत्र सुशोभित गुंजा नामक नगरमें एक सिंहविक्रमनामक राजा रहता
 था । उसकी रानीका नाम श्री धा और उन दोनोंका सकलभूषण नामका पुत्र था । सकलभूषणकी
 आठ सौ स्त्रियाँ थीं उनमें किरणमण्डला प्रधान स्त्री थी ॥१०३-१०४॥ शुद्धहृदयको धारण करने-
 वाली किरणमण्डलाने किसी समय सपत्नियोंके कहनेपर चित्रपटमें अपने मामाके पुत्र हेमशिख
 का रूप लिखा उसे देख राजा सहसा परम कौपका प्राप्त हुआ परन्तु अन्य पत्नियोंके कहनेपर वह
 पुनः प्रसन्नताको प्राप्त हो गया ॥१०५-१०६॥ पतिव्रता किरणमण्डला किसी समय हर्ष सहित
 अपने पतिके साथ सोई हुई थी सो सोते समय प्रमादके कारण उसने बार-बार हेमरथका नाम
 उच्चारण किया जिसे सुनकर राजा अत्यन्त क्रुपित हुआ और क्रुपित होकर उसने वैराग्य धारण
 कर लिया । उधर किरणमण्डला भी साध्वी हो गई और मरकर विद्युद्भवत्रा नामकी राक्षसी
 हुई ॥१०७-१०८॥ जब सकलभूषणमुनि भिक्षाके लिए भ्रमण करते थे तब वह दुष्ट राक्षसी क्रुपित
 हो अन्तर्गत करनेमें तत्पर हो जाती थी । कभी वह मत्त हाथीका बन्धन तोड़ देती थी, कभी
 घरमें आग लगा देती थी, कभी रजकी वर्षा करने लगती थी, कभी घोड़ा अथवा बैल बनकर
 उनके सामने आ जाती थी और कभी मार्गको कण्टकांसे आवृत कर देती थी ॥१०९-११०॥
 कभी प्रतिमायोगसे विराजमान मुनिराजको, घरमें सन्धि फोड़कर उसके आगे लाकर रख देती
 थी और वह कहकर पकड़ लेती थी कि यही चौर है तब हल्ला करते हुए लोगोंकी भीड़ उन्हें
 घेर लेती थी, कुछ परमार्थसे विमुख लोग उनका अनादर कर उसके बाद उन्हें छोड़ देते थे
 ॥१११-११२॥ कभी आहार कर जब बाहर निकलने लगते तब आहार देनेवाली स्त्रीका हार
 इनके गलेमें बाँध देती और कहने लगती कि यह चौर है ॥११३॥ इस प्रकार अत्यन्त क्रूर
 हृदयको धारण करनेवाली वह पापिनी राक्षसी निर्वेदसे रोहित हो सदा एकसे बढ़कर उपसर्ग
 करती रहती थी ॥११४॥ तदनन्तर यही मुनिराज महेन्द्रोदयनामा उद्यानमें प्रतिमा योगसे विराज-
 मान थे सो उस राक्षसीने पूर्व वैरके संस्कारसे उनपर परम उपसर्ग किया ॥११५॥ वह कभी
 वेताल बनकर कभी हाथी सिंह व्याघ्र तथा भयङ्कर सर्प होकर और कभी नानाप्रकारके गुणोंसे

उपद्रवैर्यदाऽमीभिः खलितं नास्य मानसम् । तदा तस्य मुनीन्द्रस्य ज्ञानं केवलमुद्गतम् ॥११७॥
 ततः केवलसम्भूतिमहिमाहितमानसाः । सुरासुराः समायाताः सुनाशीरपुरःक्षराः ॥११८॥
 स्तम्भेरमैर्भृगाधीशैः स्थूरीपृष्ठैः क्रमेलकैः । बालैर्यैरुहभिर्व्याघ्रैः शरभैः सुमरैः खगैः ॥११९॥
 विमानैः स्यन्दनैर्युगैर्यनैरन्यैश्च चारुभिः । ज्योतिःपथं समासाद्य महासम्पत्समन्विताः ॥१२०॥
 पवनोद्भूतसत्केशवस्त्रकेतनपङ्क्तयः । मौलिकुण्डलहारंशुसमुद्योतितपुष्करा ॥१२१॥
 अप्सरोमणसङ्कीर्णाः साक्रेताभिमुखाः सुराः । अवतेरुरलं हृष्टाः पश्यन्तो धरणीतलम् ॥१२२॥
 अवलोक्य ततः सीतावृत्तान्तं मेषकेतनः । शक्रं जगाद देवेन्द्र पश्येदमपि दुष्करम् ॥१२३॥
 सुराणामपि दुःस्पर्शो महाभयसमुद्भवः । सीताया उपसर्गोऽयं कथं नाथ प्रवृत्तते ॥१२४॥
 श्राविकायाः सुशीलायाः परमस्वच्छ देतसः । दुरीच्यः कथमेतस्या जायतेऽयमुपप्लवः ॥१२५॥
 आखण्डलस्ततोऽनोचदहं सकलभूषणम् । त्वरितं दन्दितुं यामि कर्त्तव्यं त्वमिहाश्रय ॥१२६॥
 अभिधायेति देवेन्द्रो महेन्द्रोदयसम्मुखम् । यथाधेपोऽपि मेपाङ्कः सीतास्थानमुपागमत् ॥१२७॥
 तत्र व्योमतलस्थोऽसौ विमानशिखरे स्थितः । सुमेरुशिखरच्छाये समुद्योतयते दिशाम् ॥१२८॥

आर्यागीतिच्छन्दः

रविरिव विराजमानः सर्वजनमनोहरं स पश्यति रामम् ॥१२९॥

इत्यार्षे श्रीरविप्रेषाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सकलभूषणदेवागमनाभिधानं नाम चतुरत्तरशतं पर्व ॥१०४॥

दिव्य स्त्रियोंका रूप दिखाकर उपसर्ग किया ॥११६॥ परन्तु जब इन उपसर्गोंसे इनका मन विचलित नहीं हुआ तब इन मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥११७॥

तदनन्तर केवलज्ञान उत्पन्न होनेकी महिमामें जिनका मन लग रहा था ऐसे इन्द्र आदि समस्त सुर असुर वहाँ आये ॥११८॥ हाथी, सिंह, घोड़े, ऊँट, गधे, बड़े-बड़े व्याघ्र, अष्टापद, सामर, पत्नी, विमान, रथ, बैल, तथा अन्य अन्य सुन्दर वाहनोंसे आकाशको आच्छादित कर सब लोग अयोध्याकी ओर आये । जिनके केश, वस्त्र तथा पताकाओंकी पङ्क्तियाँ वायुसे हिल रही थीं तथा जिनके मुकुट, कुण्डल और हारकी किरणोंसे आकाश प्रकाशमान हो रहा था ॥११८-१२१॥ जो अप्सराओंके समूहसे व्याप्त थे तथा जो अत्यन्त हर्षित हो पृथिवीतलको अच्छी तरह देख रहे थे ऐसे देव लोग नीचे उतरे ॥१२२॥ तदनन्तर सीताका वृत्तान्त देख मेषकेतु नामक देवने अपने इन्द्रसे कहा कि हे देवेन्द्र ! जरा इस अत्यन्त कठिन कार्यको भी देखो ॥१२३॥ हे नाथ ! देवोंको भी जिसका स्पर्श करना कठिन है तथा जो महाभयका कारण है ऐसा यह सीताका उपसर्ग क्यों हो रहा है ? सुशील एवं अत्यन्त स्वच्छ हृदयको धारण करनेवाली इस श्राविकाके ऊपर यह दुरीच्य उपद्रव क्यों हो रहा है ? ॥१२४-१२५॥ तदनन्तर इन्द्रने कहा कि मैं सकलभूषण केवलीकी वन्दना करनेके लिए शीघ्रतासे जा रहा हूँ इसलिए यहाँ जो कुछ करना योग्य हो वह तुम करो ॥१२६॥ इतना कहकर इन्द्र महेन्द्रोदय उद्यानके सन्मुख चला और यह मेषकेतु देव सीताके स्थान पर पहुँचा ॥१२७॥ वहाँ यह आकाशतलमें सुमेरुके शिखरके समान कान्तिसे युक्त दिशाओंको प्रकाशित करने लगा । विमानके शिखरपर स्थित हुआ ॥१२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस विमानकी शिखरपर सूर्यके समान सुशोभित होनेवाले उस मेषकेतु देवने वहाँसे सर्वजन मनोहारी रामको देखा ॥१२९॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध श्रीरविप्रेषाचार्य द्वारा कथित श्री पद्मपुराणमें सकलभूषणके केवलज्ञानोत्सवमें देवोंके आगमनका वर्णन करनेवाला एकसौचौथा पर्व समाप्त हुआ ॥१०४॥

१. 'समुद्योतयते दिशाम्' इति पाठः न पुस्तके एव विद्यते । अन्येषु पुस्तकेषु पाठो नास्ति । २. १२९ तमश्लोकस्य पूर्वार्धः पुस्तकचतुष्टयेऽपि नास्ति ।

पञ्चोत्तरशतं पर्व

तां निरीक्ष्य ततो वापीं तृणकाष्ठप्रपूरिताम् । समाकुलमना दध्याविति काकुस्थचन्द्रमाः ॥१॥
 कुतः पुनरिमां कान्तां पश्येयं गुणतूणिकाम् । महालावण्यसम्पन्नां धुतिशीलपरावृताम् ॥२॥
 विकसिमालर्तामालासुकुमारशरीरिका । जूनं यास्यति विध्वंसं स्पृष्टमात्रेव वह्निना ॥३॥
 अभविष्यदियं नो चेत्कुले जनकभूभृतः । परिवादमिमं नाप्स्यन्मरणं च हुताशने ॥४॥
 उपलभ्ये कुतः सौख्यं क्षणमप्यनया विना । वरं वासोऽनयाऽरण्ये न विना दिवि राजते ॥५॥
 महानिश्चिन्तचित्तेयमपि मर्त्तुं व्यवस्थिता । प्रविशन्ती कृतास्थाग्निं रोद्धुं लोकस्य लज्यते ॥६॥
 उन्मुक्तसुमहाशब्दः सिद्धार्थः क्षुल्लकोऽप्ययम् । तूष्णीं स्थितः किमु व्याजं करोम्येतन्नवर्त्तते ॥७॥
 अथ वा येन यादत्तं मरणं समुपाजितम् । नियमं स तदाऽऽप्नोति कस्तद्वारयितुं क्षमः ॥८॥
 तदाऽपह्रियमाणाया ऊर्ध्वं क्षारमहोदधेः । मदनुव्रतचित्ताया नेच्छत्येपेति कोपिना^१ ॥९॥
 लङ्काधिपतिना किं नालुप्तमस्याः शिरोऽसिना । येनाऽयमपरः प्रातः संशयोऽस्यन्तदुस्तरः ॥१०॥
 वरं हि मरणं श्लाघ्यं न वियोगः सुदुःसहः । श्रुतिस्मृतिहरोऽसौ हि परमः कोऽपि निन्दितः ॥११॥
 यावज्जीवं हि विरहस्तापं यच्छति चेतसः । मृतेति क्षिद्यते स्वैरं कथाकांक्षा च तद्गता ॥१२॥
 इति चिन्तातुरे तस्मिन् वाप्यां प्रज्वाल्यतेऽनलः । समुत्पन्नोरुकारुण्या रुरुदुर्नरयोषितः ॥१३॥

अथानन्तर तृण और काष्ठसे भरी उस वापीको देख श्रीराम व्याकुलचित्त होते हुए इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१॥ गुणोंकी पुञ्ज, महा सौन्दर्यसे सम्पन्न एवं कान्ति और शीलसे युक्त इस कान्ताको अब पुनः कैसे देख सकूँगा ॥२॥ खिली हुई मालतीकी मालाके समान सुकुमार शरीरको धारण करनेवाली यह कान्ता निश्चित ही अग्निके द्वारा स्पृष्ट होते ही नाशको प्राप्त हो जायगी ॥३॥ यदि यह राजा जनकके कुलमें उत्पन्न नहीं हुई होती तो इस लोकापवादको तथा अग्निमें मरणको प्राप्त नहीं होती ॥४॥ इसके विना मैं क्षण भरके लिए भी और किससे सुख प्राप्त कर सकूँगा ? इसके साथ वनमें निवास करना भी अच्छा है पर इसके विना स्वर्गमें रहना भी शोभा नहीं देता ॥५॥ यह भी महा निश्चिन्तहृदया है कि मरनेके लिए उद्यत हो गई ! अब हृदयके साथ अग्निमें प्रवेश करनेवाली है सो इसे कैसे रोका जाय ? लोगोंके समस्त रोकनेमें लज्जा उत्पन्न हो रही है ॥६॥ उस समय बड़े जोरसे हल्ला करनेवाला यह सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक भी चुप बैठे हैं, अतः इसे रोकनेमें क्या बहाना करूँ ? ॥७॥ अथवा जिसने जिस प्रकारके मरणका अर्जन किया है नियमसे वह उसी मरणको प्राप्त होता है उसे रोकनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥८॥ उस समय जब कि यह पतिव्रता लवण समुद्रके ऊपर हरकर ले जाई जा रही थी तब 'यह मुझे नहीं चाहती है' इस भावसे कुपित हो रावणने खड्गसे इसका शिर क्यो नहीं काट डाला ? जिससे कि यह इस अत्यन्त दुस्तर संशयको प्राप्त हुई है ॥९-१०॥ मर जाना अच्छा है परन्तु दुःसह वियोग अच्छा नहीं है क्योंकि श्रुति तथा स्मृतिको हरण करनेवाला वियोग कोई अत्यन्त निन्दित पदार्थ है ॥११॥ विरह तो जीवन-पर्यन्तके लिए चित्तका संपत्ता प्रदान करता रहता है और 'मर गई' यह सुन उस सम्बन्धी कथा और ईच्छा तत्काल छूट जाती है ॥१२॥ इस प्रकार रामके चिन्तातुर होनेपर वापीमें अग्नि जलाई जाने लगी । दयावती स्त्रियाँ रो उठीं ॥१३॥

ततोऽन्धकारितं व्योम धूमेन घनमुद्यता । अभूदकालसम्प्राप्तमावृत्मेघैरिवावृत्तम् ॥१४॥
 नृणांमकमिवोद्भूतं जगदन्यदिदं तदा । कोकिलाःमकमाहोस्विदाहो पारावताःमकम् ॥१५॥
 अशक्नुवन्निव द्रष्टुमुपसर्गं तथाविधम् । दयार्द्रहृदयः शीघ्रं भानुः क्वापि तिरोदधे ॥१६॥
 १जज्वालज्ज्वलनश्चोपः सर्वांशासु महाजयः । गव्यूतिपरिमाणाभिर्ज्वालाभिर्विकरालितः ॥१७॥
 किं निरन्तरतांवांशुसहस्रैश्चादितं नभः । २पातालकिशुकागौघाः सहसा किं समुत्थिताः ॥१८॥
 आहोस्विद्गगनं प्राप्तमुत्पातमयसन्ध्यया । हाटकामकमेकं तु प्रारब्धं भवितुं जगत् ॥१९॥
 सीतामिनीमपं किन्तु सञ्जातं भुवनं तदा । जिगोपया परो जातः किमु जहममन्दरः ॥२०॥
 ततः सीता समुत्थाय नितान्तस्थिरमानसा । कायोत्सर्गं क्षणं कृत्वा स्तुत्वा भावार्पितान् जिनान् ॥२१॥
 ऋषभादीन्मस्कृत्य धर्मतीर्थस्य देशकान् । सिद्धान् समस्तसाधून्श्च सुवतं च जिनेश्वरम् ॥२२॥
 यस्य संसेव्यते तीर्थं तदा सम्मदधातिभिः । परमैश्वर्यसंयुक्तैस्त्रिदशासुरमानवैः ॥२३॥
 सर्वप्राणिहिताऽऽचार्यचरणौ च मनःस्थितौ । प्रणम्योदारगर्भारा विनीता जानकी जगौ ॥२४॥
 कर्मणा मनसा वाचा रामं सुक्त्वा परं नरम् । समुद्रहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम ॥२५॥
 यद्येतदनुत्तं वचिं तदा भामेव पावकः । भस्मसाद्भावमप्राप्तमपि प्रापयसु जगत् ॥२६॥
 अथ पद्माक्षरं नान्यं मनसाऽपि वहाम्यहम् ! ततोऽयं ज्वलनो धाकीन्मा मां शुद्धिसमन्विताम् ॥२७॥

तदनन्तर अत्यधिक उठते हुए धूमसे आकाश अन्धकारयुक्त हो गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो असमयमें प्राप्त हुए वर्षाकालीन मेघोंसे ही व्याप्त हो गया हो ॥१४॥ उस समय जगत् ऐसा जान पड़ने लगा मानो भ्रमरोंसे युक्त, कोकिलाओंसे युक्त अथवा कबूतरोंसे युक्त दूसरा ही जगत् उत्पन्न हुआ है ॥१५॥ सूर्य आच्छादित हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो दयासे आर्द्र हृदय होनेके कारण उस प्रकारके उपसर्गको देखनेके लिए असमर्थ होता हुआ शीघ्र ही कहीं जा छिपा हो ॥१६॥ उस वापीमें ऐसी भयङ्कर अग्नि प्रज्वलित हुई कि समस्त दिशाओंमें जिसका महावेग फैल रहा था और जो कोंशों प्रमाण लम्बी-लम्बी ज्वालाओंसे विकराल थी ॥१७॥ उस समय उस अग्निको देख इस प्रकार संशय उत्पन्न होता था कि क्या एक साथ उदित हुए हजारों सूर्योंसे आकाश आच्छादित हो रहा है ? अथवा पाताललोकके पलाश वृक्षोंका समूह क्या सहसा ऊपर उठ आया है ? अथवा आकाशको क्या प्रलयकालीन सन्धाने घेर लिया है ? अथवा यह समस्त जगत् एक सुवर्णरूप होनेकी तैयारी कर रहा है अथवा समस्त संसार विजलीमय हो रहा है अथवा जीतनेकी इच्छासे क्या दूसरा चलता-फिरता मेरु ही उत्पन्न हुआ है ? ॥१८-२०॥

तदनन्तर जिसका मन अत्यन्त दृढ़ था ऐसी सीताने उठकर क्षणभरके लिए कायोत्सर्ग किया, भावनासे प्राप्त जिनेन्द्र भगवान्की स्तुति की, ऋषभादि तीर्थकरीको नमस्कार किया, सिद्ध परमेष्ठी, समस्त साधु और मुनिसुव्रत जिनेन्द्र, जिनके कि तीर्थकी उस समय हर्षके धारक एवं परम ऐश्वर्यसे युक्त देव असुर और मनुष्य सदा सेवा करते हैं और मनमें स्थित सर्वप्राणि हितैषी आचार्यके चरणयुगल इन सबको नमस्कार कर उदात्त गाम्भीर्य और जत्यधिक विनयसे युक्त सीताने कहा ॥२१-२४॥ कि मैंने रामको छोड़कर किसी अन्य मनुष्यको स्वप्नमें भी मन-वचन और कार्यसे धारण नहीं किया है यह मेरा सत्य है ॥२५॥ यदि मैं यह मिथ्या कह रही हूँ तो यह अग्नि दूर रहनेपर भी मुझे क्षण भरमें भस्मभावको प्राप्त करा दे—राखका ढेर बना दे ॥२६॥ और यदि मैंने रामके सिवाय किसी अन्य मनुष्यको मनसे भी धारण नहीं किया है तो विशुद्धिसे

दयां कुरु महासाधिव मुनिमानसनिर्मले । इति वाचो विनिश्चेरुर्वारिविह्वललोकतः ॥४२॥
 ततः सरसिरुद्धर्भकोमलं नखभावितम् । स्पृष्ट्वा वार्पावधूरुमिहस्तैः पद्मकमद्वयम् ॥४३॥
 प्रशान्तकलुषावर्त्ता त्यक्तर्भाषणनिस्वना । क्षणेन सौम्यतां प्राप्ता ततो लोकोऽभवत्सुखी ॥४४॥
 उत्पलैः कुमुदैः पद्मैः संछन्ना साऽभवत्क्षणात् । सौरभ्यस्त्रीवभृत्पौधसङ्गीतकमनोहरा ॥४५॥
 कौचानां चक्रवाकानां हंसानां च कदम्बकैः । तथा कादम्बकादीनां सुस्वनानां विराजिता ॥४६॥
 मणिकाञ्चनसोपादैर्वीचीसन्तानसङ्घिभिः । पुष्पैर्मरकतच्छायाकोमलैश्चातिसत्तटा ॥४७॥
 उत्तस्थावथ मध्येस्था विपुलं विमलं शुभम् । सहस्रच्छदनं पद्मविक्रचं विकटं मृदु ॥४८॥
 नानाभक्तिपरोतांगं रत्नोद्योतांशुकावृतम् । आसीत्सिंहासनं तस्य मध्ये तुह्येन्दुमण्डलम् ॥४९॥
 तत्रामरवरस्त्रीभिर्मा भैषोरिति सान्त्विता । सीताऽवस्थापिता रेजे श्रीरिवत्यद्भुतोदया ॥५०॥
 कुपुमाञ्जलिभिः सार्द्धं साधु साध्विति निःस्वनः । गगनस्थैः समुत्सृष्टमुष्टैर्देवकदम्बकैः ॥५१॥
 जुगुंजुर्मज्जवो गुंजा विनेदुः पटहाः पटु । नाद्यो ननन्दुरायातं चक्रणुः काहलाः कलम् ॥५२॥
 भ्रशब्दायन्त शङ्खौघा धीरं तूर्याणि दध्वनुः । ववणुर्विशदं वंशाः कांसतालानि चक्रणुः ॥५३॥
 वल्लिगता च्चेडितोद्घुष्टकुष्ठादिकरणोद्यताः । तुष्टा ननृतुरन्योन्यच्छिष्टा वैद्याधरा गणाः ॥५४॥
 श्रीमज्जनकराजस्य तनया परमोदया । श्रीमतो बलदेवस्य पत्नी विजयतेसराम् ॥५५॥

रक्षा करो, हे मान्ये ! हे लक्ष्मि ! हे सरस्वति ! हे महाकल्याणि ! हे धर्मसहिते ! हे सर्वप्राणि-
 हितैषिणि ! रक्षा करो ॥४१॥ हे महापतिव्रते ! हे मुनिमानसनिर्मले ! दया करो । इस प्रकार जलसे
 भयभीत मनुष्योंके मुखसे शब्द निकल रहे थे ॥४२॥

तदनन्तर वापीरूपी वधू, तरङ्गरूपी हाथोंके द्वारा कमलके मध्यभागके समान कोमल
 एवं नखोंसे सुशोभित रामके चरणयुगलका स्पर्शकर क्षणभरमें सौम्यदशाको प्राप्त हो गई ।
 उसकी मलिन भँवरें शान्त हो गई और उसका भयंकर शब्द छूट गया । इससे लोग भी सुखी
 हुए ॥४३-४४॥ वह वापी क्षण भरमें नील कमल, सफेद कमल तथा सामान्य कमलोंसे व्याप्त
 हो गई और सुगन्धिसे मदीन्मत्त भ्रमर समूहके संगीतसे मनोहर दिखने लगी ॥४५॥ सुन्दर
 शब्द करनेवाले कौञ्च, चक्रवाक, हंस तथा वदक आदि पक्षियोंके समूहसे सुशोभित हो गई ॥४६॥
 मणि तथा स्वर्ण निर्मित सीढ़ियों और लहरोंके बीचमें स्थित मरकतमणिकी कान्तिके समान
 कोमल पुष्पोंसे उसके किनारे अत्यन्त सुन्दर दिखने लगे ॥४७॥

अथानन्तर उस वापीके मध्यमें एक विशाल, विमल, शुभ, खिला हुआ तथा अत्यन्त कोमल
 सहस्र दल कमल प्रकट हुआ और उस कमलके मध्यमें एक ऐसा सिंहासन स्थित हुआ कि जिसका
 आकार नानाप्रकारके वेल-वूटोंसे व्याप्त था, जो रत्नोंके प्रकाश रूपी वस्त्रसे वेष्टित था, और
 कान्तिसे चन्द्रमण्डलके समान था ॥४८-४९॥ तदनन्तर 'डरो मत' इसप्रकार उत्तम देवियों जिसे
 सान्त्वना दे रही थीं ऐसी सीता सिंहासन पर बैठाई गई । उस समय आश्चर्यकारी अभ्युदयको
 धारण करनेवाली सीता लक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही थी ॥५०॥ आकाशमें स्थित देवोंके
 समूहने संतुष्ट होकर पुष्पाञ्जलियोंके साथ-साथ 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' यह शब्द छोड़े ॥५१॥
 गुंजा नामके मनोहर वादित्र गूँजने लगे, नगाड़े जोरदार शब्द करने लगे, नान्दी लोग अत्यधिक
 हर्षित हो उठे, काहल मधुर शब्द करने लगे, शङ्खोंके समूह बज उठे, तूर्य गम्भीर शब्द करने
 लगे, बौंसुरी स्पष्ट शब्द कर उठीं तथा काँसेकी भाँके मधुर शब्द करने लगीं ॥५२-५३॥ वल्लिगत,
 च्चेडित, उद्घुष्ट तथा क्रुष्ट आदिके करनेमें तत्पर, संतोपसे युक्त विद्याधरोंके समूह परस्पर एक
 दूसरेसे मिलकर नृत्य करने लगे ॥५४॥ सब ओरसे यही ध्वनि आकाश और पृथिवीके अन्त-

अहो चित्रमहो चित्रमहो शीलं सुनिर्मलम् । एवं स्वनः समुत्तस्थौ रोदसी प्राप्य सर्वतः ॥५६॥
ततोऽकृत्रिमसावित्रीस्नेहसम्पन्नमानसौ । तौत्वां ससम्भ्रमौ प्राप्तां जानकीं लवणाङ्कुशौ ॥५७॥
स्थितौ च पार्श्वयोः पद्मपुत्रप्रतिप्रभृद्भया । समाश्वस्य समाप्राप्तौ मस्तके प्रणताङ्गकौ ॥५८॥
जाम्बूनदमयीयष्टिमिव शुद्धां द्रुताशने । अत्युत्तमप्रभाचक्रपरिवारितविग्रहाम् ॥५९॥
मैथिलीं राघवो वीक्ष्य कमलालयवासिनीम् । महानुरागरक्तात्मा तदन्तिकमुपागमत् ॥६०॥
जगौ च देवि कल्याणि प्रसीदोत्तमपूजिते । शरत्सम्पूर्णचन्द्रास्ये महाद्भुतविचेष्टिते ॥६१॥
कदाचिदपि नो भूयः करिष्याम्याम^३ ईदृशम् । दुःखं वा ते ततोऽर्तातं दोषं मे साध्वि मर्षय ॥६२॥
योपिदृष्टसहस्राणामपि त्वं परमेश्वरी । स्थिता मूर्ध्नि द्रवस्स्वाज्ञां मय्यपि प्रभुतां कुरु ॥६३॥
अज्ञानप्रवर्णाभूतचेतसा मयकैदृशम् । किंवदन्तीभयात्पृष्टं कष्टं प्राप्ताऽसि यत्सति ॥६४॥
सकामनवनामेतां सखेचरजनां महाम् । समुद्रान्तां मया साकं यथेष्टं विचर प्रिये ॥६५॥
पूज्यमाना समस्तेन जगता परमादरम् । त्रिविष्टपसमान् भोगान् भावय स्वमर्हातले ॥६६॥
उद्यद्गास्करसङ्काशं पुष्पकं कामगत्वरम् । आरूढा मेरुसान्नि पश्य देवि समं मया ॥६७॥
तेषु तेषु प्रदेशेषु भवतीचिच्छादिषु । क्रियतां रमणं कान्ते मया वचनकारिणा ॥६८॥
विद्याधरवरच्छाभिः सुरच्छाभिरिवावृता । मनस्विनि भजैश्वर्यं सद्यः सिद्धमनीषिता ॥६९॥

रालको व्याप्त कर उठ रही थी कि श्रीमान् राजा जनककी पुत्री और श्रीमान् बलभद्र श्रीरामकी परम अभ्युदयवती पत्नीकी जय हो ॥५५॥ अहो बड़ा आश्चर्य है, बड़ा आश्चर्य है इसका शील अत्यन्त निर्मल है ॥५५-५६॥

तदनन्तर माताके अकृत्रिम स्नेहमें जिनके हृदय डूब रहे थे ऐसे लवण और अंकुश शीघ्रतासे जलको तैर कर सीताके पास पहुँच गये ॥५७॥ पुत्रोंकी प्रीतिसे बढ़ी हुई सीताने आशवासन देकर जिनके मस्तक पर सूँघा था तथा जिनका शरीर विनयसे नम्राभूत था ऐसे दोनों पुत्र उसके दोनों ओर खड़े हो गये ॥५८॥ अग्निमें शुद्ध हुई स्वर्णमय यष्टिके समान जिसका शरीर अत्यधिक प्रभाके समूहसे व्याप्त था तथा जो कमल रूपी गृहमें निवास कर रही थी ऐसी सीताको देख बहुत भारी अनुरागसे अनुरक्त चित्त होते हुए राम उसके पास गये ॥५९-६०॥ और बोले कि हे देवि ! प्रसन्न होओ, तुम कल्याणवती हो, उत्तम मनुष्योंके द्वारा पूजित हो, तुम्हारा मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान है, तथा तुम अत्यन्त अद्भुत चेष्टाकी करनेवाली हो ॥६१॥ अब ऐसा अपराध फिर कभी नहीं करूँगा अथवा अब तुम्हारा दुःख बीत चुका है । हे साध्वि ! मेरा दोष क्षमा करो ॥६२॥ तुम आठ हजार स्त्रियोंकी परमेश्वरी हो । उनके मस्तक पर विद्यमान हो, आज्ञा देओ और मेरे ऊपर भी अपनी प्रभुता करो ॥६३॥ हे सति ! जिसका चित्त अज्ञानके आर्धान था ऐसे मेरे द्वारा लोकापवादके भयसे दिया दुःख तुमने प्राप्त किया है ॥६४॥ हे प्रिये ! अब वन-अटवी सहित तथा विद्याधरोंसे युक्त इस समुद्रान्त पृथिवीमें मेरे साथ इच्छानुसार विचरण करो ॥६५॥ समस्त जगत्के द्वारा परम आदर पूर्वक पूजी गई तुम, अपने पृथिवी तल पर देवोंके समान भोगोंको भोगो ॥६६॥ हे देवि ! उदित होते हुए सूर्यके समान तथा इच्छानुसार गमन करनेवाले पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो तुम मेरे साथ सुमेरुके शिखरोंको देखो अर्थात् मेरे साथ सर्वत्र भ्रमण करो ॥६७॥ हे काम्ते ! जो जो स्थान तुम्हारे चित्तको हरण करने वाले हैं उन उन स्थानोंमें मुझ आज्ञाकारीके साथ यथेच्छ क्रीड़ा की जाय ॥६८॥ हे मनस्विनि ! देवाङ्गनाओंके समान विद्याधरोंकी उत्कृष्ट स्त्रियोंसे विरी रह कर तुम शीघ्र ही ऐश्वर्यका उपभोग करो । तुम्हारे

दोषास्त्रिमग्नकस्यापि विवेकरहितस्य मे । उपसन्नस्य सुरलाघ्ये प्रसीद् क्रोधमुत्सृज ॥७०॥
 ततो जगद् वैदेही राज्ञैवास्मि कस्यचित् । कुपिता किं विषादं त्वमीदृशं समुपागतः ॥७१॥
 न कश्चिदत्र ते दोषस्तीक्ष्णो जानपदो न च । स्वकर्मणा फलं दत्तमिदं मे परिपाकिता ॥७२॥
 बलदेव प्रसादात्ते भोगा भुक्ताः सुरोपमाः । अधुना तदहं कुर्वे जाये स्त्री न यतः पुनः ॥७३॥
 एतैर्विनाशिभिः क्षुद्रैरवसन्नैः सुदारुणैः । किं वा प्रयोजनं भोगैर्मूढमानवसेवितैः ॥७४॥
 योनिललाध्वसङ्क्रान्त्या खेदं प्राप्ताऽस्म्यनुत्तमम् । साहं दुःखक्षयाकांक्षा दीक्षां जैनेश्वरीं भजे ॥७५॥
 इत्युक्त्वाऽभिनवाशोकपल्लवोपमपाणिना । मूर्द्धजान् स्वयमुद्दृष्ट्य पन्नायाऽर्षवदस्पृहा ॥७६॥
 इन्द्रनीलद्युतिच्छायान् सुकुमारान् मनोहरान् । केशान्नीचय ययौ मोहं रामोऽपतच्च भूतले ॥७७॥
 यावदाश्वासनं तस्य प्रारब्धं चन्दनादिना । पृथ्वीमत्यार्यया तावदीक्षिता जनकान्तमजा ॥७८॥
 तन्नो दिव्यानुभावेन सा विधनपरिव्रजिता । संवृत्ता श्रमणा साध्वी वस्त्रमात्रपरिग्रहा ॥७९॥
 महायत्नपवित्राङ्गा महासंवेगसङ्गता । देवासुरसमायोगं ययौ चोद्यानमुत्तमम् ॥८०॥
 पद्मो मौक्तिकगोशीर्षतालवृन्तानिलादिभिः । सम्प्राप्तस्पर्शचैतन्यस्तद्विड्मन्यस्तनिरीक्षणः ॥८१॥
 अट्ट्या राघवः सीतां शून्याभूतदशांशकः । शोककोपकपायात्मा समास्रक्ष महागजम् ॥८२॥
 समुच्छ्रितसितच्छत्रामरोत्करवोजितः । नरेन्द्रैरिन्द्रवद्वैवर्धुतो हस्तितलाङ्गलः ॥८३॥
 प्रौढकोकनदच्छायः क्षणसंवृतलोचनः । उदात्तनिनदोऽवोचद्वबोऽपि निजभीतिदम् ॥८४॥

सब मनोरथ सिद्ध हुए हैं ॥६६॥ हे प्रशंसनीये ! मैं दोष रूपी सागरमें निमग्न हूँ तथा विवेकसे रहित हूँ । अब तुम्हारे समीप आया हूँ सो प्रसन्न होओ और क्रोधका परित्याग करो ॥७०॥

तदनन्तर सीताने कहा कि हे राजन् ! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ, तुम इस तरह विषाद को क्यों प्राप्त हो रहे हो ? ॥७१॥ इसमें न तुम्हारा दोष है न देशके अन्य लोगोंका । यह तो परिपाकमें आनेवाले अपने कर्मके द्वारा दिया हुआ फल है ॥७२॥ हे बलदेव ! मैंने तुम्हारे प्रसादसे देवोंके समान भोग भोगे हैं इसलिए उनकी इच्छा नहीं । अब तो वह काम करूँगी जिससे फिर स्त्री न होना पड़े ॥७३॥ इन विनाशी, क्षुद्र प्राप्त हुए आकुलतामय अत्यन्त कठोर एवं मूर्ख मनुष्यों के द्वारा सेवित इन भोगोंसे मुझे क्या प्रयोजन है ? ॥७४॥ लाखों योनियोंके मार्गमें श्रमण करती करती इस भारी दुःखको प्राप्त हुई हूँ । अब मैं दुःखोंका क्षय करनेकी इच्छासे जैनेश्वरी दीक्षा धारण करती हूँ ॥७५॥ यह कह उसने निःस्पृह हो अशोकके नवीन पल्लव तुल्य हाथसे स्वयं केश उखाड़ कर रामके लिए दे दिये ॥७६॥ इन्द्रनील मणिके समान कान्ति वाले अत्यन्त कोमल मनोहर केशोंको देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो पृथिवी पर गिर पड़े ॥७७॥ इधर जब तक चन्दन आदिके द्वारा रामको सचेत किया जाता है तब तक सीता पृथ्वीमति आर्यिकासे दीक्षित हो गई ॥७८॥

तदनन्तर देवकृत प्रभावसे जिसके सब चित्र दूर हो गये थे ऐसी पतिव्रता सीमा वस्त्रमात्र परिग्रहको धारण करने वाली आर्यिका हो गई ॥७९॥ महाव्रतोंके द्वारा जिसका शरीर पवित्र हो चुका था तथा जो महासंवेगको प्राप्त थी ऐसी सीता देव और असुरोंके समागमसे सहित उत्तम उद्यानमें चली गई ॥८०॥ इधर मोतियोंकी माला, गोशीर्षचन्दन तथा व्यजन आदिकी वायुसे जब रामकी मूर्च्छा दूर हुई तब वे उसी दिशाकी ओर देखने लगे परन्तु वहाँ सीताको न देख उन्हें दशां दिशाएँ शून्य दिखने लगीं । अन्तमें शोक और क्रोधके कारण कलुषित चित्त होते हुए महागज पर सवार हो चले ॥८१-८२॥ उस समय उनके शिर पर सफेद छत्र फहरा रहा था, चमरोंके समूह दौरे जा रहे थे, तथा वे स्वयं अनेक राजाओंसे घिरे हुए थे । इसलिए देवोंसे

प्रियस्य प्राणिनो मृत्युर्वरिष्ठो विरहस्तु न । इति पूर्वं प्रतिज्ञातं मया निश्चितचेतसा ॥८५॥
 यदि तत् किं वृथा देवैः प्रातिहार्यमिदं शठैः । वैदेह्या विहितं येन यथेदं समनुष्ठितम् ॥८६॥
 लुप्तकेशीमयीनां मे यदि नार्पयत द्रुतम् । अद्य देवानदेवान्बः करोमि च जगद्वियत् ॥८७॥
 कथं मे हियते पत्नी सुरैर्न्यायव्यवस्थितैः । पुरस्तिष्ठन्तु मे शस्त्रं गृह्णन्तु क्व नु ते गताः ॥८८॥
 पृवमादिकृताचेष्टो लक्ष्मणेन विनीतिना । सान्त्वयमानो बहूपायं प्राप्तः सुरसमागमम् ॥८९॥
 सर्वभूषणमैक्षिष्ट ततः श्रवणपुङ्गवम् । गाम्भीर्यधैर्यसम्पन्नं वरासनकृतस्थितिम् ॥९०॥
 ज्वलज्ज्वलनतो दीप्तिं बिभ्राणं परमद्विकम् । वहन्तं दहनं देहं कलुषस्योपसेदुषाम् ॥९१॥
 विबुधेष्वपि राजन्तं केवलज्ञानतेजसा । वीतजीमूतसङ्घातं भानुबिम्बसिबोदितम् ॥९२॥
 चक्षुःकुमुद्वर्तीकान्तं चन्द्रं वा वीतलान्छनम् । परेण परिवेषेण प्रवृत्तं देहतेजसा ॥९३॥
 तमालोक्य मुनिश्रेष्ठं सद्योगाद् भ्रष्टमानसम् । अवतीर्य च नागेन्द्राजगामास्य समीपताम् ॥९४॥
 विधाय चाञ्जलिं भक्त्या कृत्वा शान्तः प्रदक्षिणाम् । त्रिविधं गृहिणां नाथोऽनंसीजाधमवेरमनाम् ॥९५॥
 मुनीन्द्रदेहजच्छायास्तमितान्शुकिरीटकाः । वैलक्ष्यादिव चञ्चलिः कुण्डलैः श्लिष्टगण्डकाः ॥९६॥

आवृत्त इन्द्रके समान जान पड़ते थे, उन्होंने लाङ्गल नामक शस्त्र हाथमें ले रक्खा था, तरुण कोकनद—रक्त कमलके समान उनकी कान्ति थी और वे क्षण-क्षणमें लोचन बन्द कर लेते थे तदनन्तर उच्चरकरके धारक रामने ऐसे वचन कहे जो आत्मीयजनोंको भी भय देने वाले थे ॥८३-८४॥ उन्होंने कहा कि प्रिय प्राणीकी मृत्यु हो जाना श्रेष्ठ है परन्तु विरह नहीं; इसी लिए मैंने पहले दृढचित्त हो कर अग्नि-प्रवेशकी अनुमति दी थी ॥८५॥ जब यह बात थी तब फिर क्यों अधिवेकी देवोंने सीताका यह अतिशय किया जिससे कि उसने यह दीक्षाका उपक्रम किया ॥८६॥ हे देवो ! यद्यपि उसने केश उखाड़ लिये हैं तथापि तुम लोग यदि उस दशामें भी उसे मेरे लिए शीघ्र नहीं सौंप देते हो तो मैं आजसे तुम्हें अदेव कर दूँगा—देव नहीं रहने दूँगा और जगत्को आकाश बना दूँगा ॥८७॥ न्यायकी व्यवस्था करनेवाले देवों द्वारा मेरी पत्नी कैसे हरी जा सकती है ? वे मेरे सामने खड़े हों तथा शस्त्र ग्रहण करें, कहाँ गये वे सब ? ॥८८॥ इस प्रकार जो अनेक चेष्टाएँ कर रहे थे तथा विविध नीतिको जाननेवाले लक्ष्मण जिन्हें अनेक उपायोंसे सान्त्वना दे रहे थे ऐसे राम, जहाँ देवोंका समागम था ऐसे उद्यानमें पहुँचे ॥८९॥

तदनन्तर उन्होंने मुनियोंमें श्रेष्ठ उन सर्वभूषण केवलीको देखा कि जो गाम्भीर्य और धैर्यसे सम्पन्न थे, उत्तम सिंहासन पर विराजमान थे ॥९०॥ जलती हुई अग्निसे कहीं अधिक कान्तिको धारण कर रहे थे, परम ऋद्धियोंसे युक्त थे, शरणागत मनुष्योंके पापको जलानेवाले शरीरको धारण कर रहे थे ॥९१॥ जो केवलज्ञान रूपी तेजके द्वारा देवोंमें भी सुशोभित हो गहे थे, मेघोंके आवरणसे रहित उदित हुए सूर्य मण्डलके समान जान पड़ते थे, ॥९२॥ जो चक्षुरूपी कुमुदिनियोंके लिए प्रिय थे, अथवा कलङ्क रहित चन्द्रमाके समान थे, और मण्डलाकार परिणत अपने शरीरके उत्तम तेजसे आवृत्त थे ॥९३॥

तदनन्तर जो अभी-अभी ध्यानसे उन्मुक्त हुए थे तथा सर्व सुरासुर जिन्हें नमस्कार करते थे ऐसे उन मुनिश्रेष्ठको देखकर राम हाथीसे नीचे उतर कर उनके समीप गये ॥९४॥ तत्परचात् गृहस्थोंके स्वामी श्रीरामने शान्त हो भक्तिपूर्वक अञ्जलि जोड़ प्रदक्षिणा देकर उन मुनिराजको मन-वचन-कायसे नमस्कार किया ॥९५॥ अथानन्तर उन मुनिराजकी शरीर सम्बन्धी कान्तिके कारण जिनके मुकुट निष्प्रभ हो गये थे तथा लज्जाके कारण ही मानो चमकते हुए कुण्डलों द्वारा

१. एष श्लोकः म० पुस्तके नास्त्येव । २. सेदुषाम् म० । ३. विबुधेष्वपि म० । ४. वृत्तं देहस्य तेजसा म० । ५. मुनीनां नाथम् ।

भावापित्तनमस्काराः करकुड्मलमस्तकाः । मानवेन्द्रैः समं योग्यमुपविष्टाः सुरैरवराः ॥६७॥
 चतुर्भेदजुषो देवा नानालङ्कारधारिणः । अलच्यन्त मुनीन्द्रस्य रवेरिव मरीचयः ॥६८॥
 रराज राजराजोऽपि रामो नात्यन्तदूरगः । मुनेः सुमेरुकूटस्य पार्वे कक्षतर्ह्यथा ॥६९॥
 लक्ष्मीधरनरेन्द्रोऽपि मौलिकुण्डलराजितः । विद्युच्चानिव जीमूतः शुशुभेऽन्तिकपर्वतः ॥७०॥
 शत्रुघ्नोऽपि महाशत्रुभयदानविचक्षणः । द्वितीय इव भाति स्म कुबेरश्चारुदर्शनः ॥७१॥
 गुणसौभाग्यनूणीरौ वीरौ तौ च सुलक्ष्णौ । सूर्याचन्द्रमसौ धृद्रेजतुल्यवणाकुशौ ॥७२॥
 बाह्यालङ्कारमुक्ताऽपि वस्त्रमात्रपरिग्रहा । आर्या रराज वैदेही रविमूर्त्येव संयता ॥७३॥
 मनुष्यनाकवासेषु धर्मश्रवणकांसिषु । धरण्यामुपविष्टेषु ततो विनयशालिषु ॥७४॥
 धीरोऽभयनिनादाख्यो मुनिः शिष्यगणाग्रणीः । सन्देहतापशान्त्यर्थं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥७५॥
 विपुलं निपुणं शुद्धं तत्त्वार्थं मुनिबोधनम् । ततो जगाद योगीशः कर्मक्षयकरं वचः ॥७६॥
 रहस्यं तत्तद् । तेन विबुधानां महात्मनाम् । कथितं तत्समुद्रस्य कणमेकं वदाम्यहम् ॥७७॥
 प्रशस्तदर्शनज्ञाननन्दनं भव्यसम्मतम् । वस्तुतत्त्वमिदं तेन प्रोक्तं परमयोगिना ॥७८॥
 अमन्तालोकखान्तस्थो मृदङ्गद्वयसन्निभः । लोको व्यवस्थितोऽधस्तात्त्रिगूर्ध्वव्यवस्थितः ॥७९॥
 त्रैविध्येनामुना तस्य लथाता त्रिभुवनाभिधा । अग्रस्तान् मन्दरस्याद्रेर्विज्ञेयाः सप्तभूमयः ॥८०॥

जिनके कपोल आलिङ्गित थे, जिन्होंने भाव पूर्वक नमस्कार किया था, और जो हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये हुए थे ऐसे देवेन्द्र वहाँ नरेन्द्रके समान यथायोग्य बैठे थे ॥६६-६७॥ नाना अलंकारोंको धारण करनेवाले चारों प्रकारके देव, मुनिराजके समीप ऐसे दिखाई देते थे मानो सूर्यके समीप उसकी किरणें ही हों ॥६८॥ मुनिराजके निकट स्थित राजाधिराज राम भी ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सुमेरुके शिखरके समीप कल्प वृक्ष ही हो ॥६९॥ मुकुट और कुण्डलोसे सुशोभित लक्ष्मण भी, किसी पर्वतके समीप स्थित विजलीसे सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ महाशत्रुओंको भय देनेमें निपुण सुन्दर शत्रुघ्न भी द्वितीय कुबेरके समान सुशोभित हो रहा था ॥७१॥ गुण और सौभाग्यके तरकस तथा उत्तम लक्षणोंसे युक्त वे दोनों वीर लवण और अंकुश सूर्य और चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७२॥ वस्त्रमात्र परिग्रहको धारण करनेवाली आर्या सीता यद्यपि बाह्य अलंकारोंसे सहित थी तथापि वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो सूर्यकी मूर्तिसे ही सम्बद्ध हो ॥७३॥

तदनन्तर धर्मश्रवणके इच्छुक तथा विनयसे सुशोभित समस्त मनुष्य और देव जत्र यथायोग्य पृथिवी पर बैठ गये तत्र शिष्य समूहमें प्रधान, अभयनिनाद नामक, धीर वीर मुनिने सन्देह रूपी संतापको शान्त करनेके लिए सर्वभूषण मुनिराजसे पूछा ॥७४-७५॥ तदनन्तर मुनिराजने वह वचन कहे कि जो अत्यन्त क्रिस्तुत थे, चातुर्यपूर्ण थे, शुद्ध थे, तत्त्वार्थके प्रतिपादक थे, मुनियोंके प्रबोधक थे और कर्मोंका क्षय करनेवाले थे ॥७६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय उन योगिराजने विद्वानों तथा महात्माओंके लिए जो रहस्य कहा था वह समुद्रके समान भारी था । हे श्रेणिक ! मैं तो यहाँ उसका एक कण ही कहता हूँ ॥७७॥ उन परम योगीने जो वस्तुतत्त्वका निरूपण किया था वह प्रशस्त दर्शन और ज्ञानके धारक पुरुषोंके लिए आनन्द देनेवाला था तथा भव्य जीवोंको इष्ट था ॥७८॥

उन्होंने कहा कि यह लोक अनन्त अलोकाकाशके मध्यमें स्थित दो मृदङ्गोंके समान है, नीचे, बीचमें तथा ऊपरकी ओर स्थित है ॥७९॥ इस तरह तीन प्रकारसे स्थित होनेके कारण इस लोकको त्रिलोक अथवा त्रिविध कहते हैं । मेरु पर्वतके नीचे सात भूमियाँ हैं ॥८०॥

रत्नाभा प्रथमा तत्र यस्यां भवनजाः सुराः । पडधस्तात्ततः शोण्यो महाभयसमावहाः ॥१११॥
 शर्कराबालुकापङ्कधूमध्वान्ततमोनिभाः । सुमहादुःखदायिन्यो नित्यान्यध्वान्तसंकुलाः ॥११२॥
 तप्तायस्तलदुःस्पर्शमहाविषमदुर्गमाः । शीतोग्रवेदनाः काश्चिद्भूसा रुधिरकर्दमाः ॥११३॥
 श्वसर्पमनुजादीनां कुशितानां कलेवरैः । सन्मिश्रो घो भवेद्गन्धस्तादृशस्तत्र कीर्तितः ॥११४॥
 नानाप्रकारदुःखौघकारणानि समीहरन् । वाति तत्र महाशब्दः प्रचण्डोद्गण्डमारुतः ॥११५॥
 रसनस्पर्शनासका जीवास्तत्र कर्म कुर्वते । गरिष्ठा नरके येन पतन्त्यायसपिण्डवत् ॥११६॥
 हिंसाचितथचौर्यान्धस्त्रीसङ्गादनिवर्त्तनाः । नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरुकृताः ॥११७॥
 मनुष्यजन्म सम्प्राप्य सततं भोगसङ्गताः । जनाः प्रचण्डकर्माणो गच्छन्ति नरकावनिम् ॥११८॥
 विषाय कारयित्वा च पापं समनुमोद्य च । रौद्रार्त्तप्रवणा जीवा यान्ति नारकबीजताम् ॥११९॥
 वज्रोपमेषु कुड्मेषु त्रिःसन्धिकृतपूरणाः । नारकेनाग्निना पापा दहन्ते कृतविस्वराः ॥१२०॥
 ज्वलद्द्विचयाङ्गीता यान्ति वैतरणी नदीम् । शमेतलाम्बुकृताकांक्षास्तस्यां मुञ्चन्ति देहकम् ॥१२१॥
 ततो महोक्तचारदग्धदेहोर्भवेदनाः । मृगा इव परित्रस्ता असिपत्रवनं स्थिताः ॥१२२॥
 ज्ञायाप्रत्याशया यत्र सङ्गता दुष्कृतप्रियाः । प्राप्नुवन्त्यसिनाराचचक्रकुन्तादिदारणम् ॥१२३॥
 खरमारुतनिर्धूतैर्नरकागसमीरितैः । तीक्ष्णैरस्त्रसमूहैस्ते दार्यन्ते शरणोष्कृताः ॥१२४॥

उनमें पहली भूमि रत्नप्रभा है जिसके अन्धहुल भागको छोड़कर ऊपरके दो भागोंमें भवनवासा तथा व्यन्तर देव रहते हैं । उस रत्नप्रभाके नीचे महाभय उत्पन्न करनेवाली शर्करा प्रभा, बालुका-प्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा नामकी छह भूमियाँ और हैं जो अत्यन्त तीव्र दुःखको देनेवाली हैं तथा निरन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त रहती हैं ॥१११-११२॥ उनमेंसे कितनी ही भूमियाँ संतप्त लोहेके तलके समान दुःखदायी गरम स्पर्श होनेके कारण अत्यन्त विषम और दुर्गम हैं तथा कितनी ही शीतकी तीव्र वेदनासे युक्त हैं । उन भूमियोंमें चर्वा और रुधिरकी कीच मची रहती है ॥११३॥ जिनके शरीर सड़ गये हैं ऐसे अनेक कुत्ते, सर्प तथा मनुष्यादिकी जैसी मिश्रित गन्ध होती है वैसी ही उन भूमियोंकी बतलाई गई है ॥११४॥ वहाँ नानाप्रकारके दुःख-समूहके कारणोंको साथमें ले आनेवाली महाशब्द करती हुई प्रचण्ड वायु चलती है ॥११५॥ स्पर्शन तथा रसना इन्द्रियके वशीभूत जीव उस कर्मका सञ्चय करते हैं कि जिससे वे लोहेके पिण्डके समान भारी हो उन नरकोंमें पड़ते हैं ॥११६॥ हिंसा, भूठ, चोरी, परस्त्रीसंग तथा परिग्रहसे निवृत्त नहीं होनेवाले मनुष्य पापके भारसे बोझिल हो नरकोंमें उत्पन्न होते हैं ॥११७॥ जो मनुष्य-जन्म पाकर निरन्तर भोगोंमें आसक्त रहते हैं ऐसे प्रचण्डकर्मा मनुष्य नरकभूमिमें जाते हैं ॥११८॥ जो जीव स्वयं पाप करते हैं, दूसरेसे कराते हैं तथा अनुमोदन करते हैं, वे रौद्र तथा आर्त्तध्यानमें तत्पर रहनेवाले जीव नरकायुको प्राप्त होते हैं ॥११९॥ वज्रोपम दीबालोंमें ठूस-ठूस कर भरे हुए पापी जीव नरकोंकी अग्निसे जलाये जाते हैं और तब वे महाभयंकर शब्द करते हैं ॥१२०॥ जलती हुई अग्निके समूहसे भयभीत हो नारकी, शीतल जलकी इच्छा करते हुए वैतरणी नदीकी ओर जाते हैं और उसमें अपने शरीरको छोड़ते हैं अर्थात् गोता लगाते हैं ॥१२१॥ गोता लगाते ही अत्यन्त तीव्र चारके कारण उनके जले हुए शरीरमें भारी वेदना होती है । तदनन्तर मृगोंकी तरह भयभीत हो उस असिपत्रवनमें पहुँचते हैं ॥१२२॥ जहाँ कि पापी जीव ज्ञायाकी इच्छासे इकट्ठे होते हैं परन्तु ज्ञायाके बदले खड्ग, बाण, चक्र तथा भाले आदि शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न दशाको प्राप्त होते हैं ॥१२३॥ तीक्ष्ण वायुसे कम्पित नरकके वृत्तोंसे प्रेरित तीक्ष्ण अस्त्रोंके

छिन्नपाद्भुजस्कन्धकर्णवक्त्राक्षिनासिकाः । भिन्नतालुशिरःकुक्षिहृदया निपतन्ति ते ॥१२५॥
 कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते केचिदूर्ध्वीकृताङ्घ्रयः । यन्त्रैः केचिन्निपीडयन्ते बलिभिः परुषस्वनम् ॥१२६॥
 अरिभिः परमक्रोधैः केचिन् सुदृगरपीडिताः । कुर्वन्ते लोटनं भूमौ सुमहावेदनाकुलाः ॥१२७॥
 महानृष्णादिता दीना याचन्ते वारिविह्वलाः । ततः प्रदीयते तेषां त्रपुताभ्रादिविद्रुतम् ॥१२८॥
 स्फुल्लिङ्गोद्गमरौद्रं तं तत्रोद्गीक्य विकम्पिताः । परावर्तितचेतस्का वाष्पपूरितकण्ठकाः ॥१२९॥
 म्रुवते नास्ति वृष्णा मे भुञ्च मुञ्च व्रजाम्यहम् । अनिच्छतां ततस्तेषां तद्वलेन प्रदीयते ॥१३०॥
 विनिपात्य क्षितावेषां क्रन्दतां लोहदण्डकैः । विदार्यास्यं विषं रक्तं कलिलं च निर्धायते ॥१३१॥
 तत्तेषां प्रदहत्कण्ठं हृदयं स्फोटयद् भृशम् । जठरं प्राप्य निर्याति पुरांपराशिना समम् ॥१३२॥
 पश्चात्तापहताः पश्चान् पालकैर्नरकावनेः । स्मारयन्ते दुष्कृतं दीनाः कुशास्त्रपरिभाषितम् ॥१३३॥
 गुरुलोकं समुबलं च तदा वाक्पटुना सता । मांसं निर्दोषमित्युक्तं यत्ते तद् वक्वाधुना गतम् ॥१३४॥
 माङ्सेन बहुभेदेन मधुना च पुरा कृतम् । श्राद्धं गुणवदित्युक्तं यत्ते तद् वक्वाधुना गतम् ॥१३५॥
 इत्युक्त्वा वैक्रियैरन्यैराहत्याहृत्य निप्युरम् । कुर्वाणाः कृपणं चेष्टाः खाद्यन्ते स्वशरीरकम् ॥१३६॥
 स्वप्नदर्शननिःसारां स्मारयित्वा च राजताम् । तज्जातैरेव पीडयन्ते विरूढन्तो विडम्बनैः ॥१३७॥
 एवमादीनि दुःखानि जीवाः पापकृता नृप । निमेषमप्यविश्रान्ता लभन्ते नारकक्षितौ ॥१३८॥

समूहसे वे शरण रहित नारकी छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥१२४॥ जिनके पैर, भुजा, स्कन्ध, कर्ण, मुख, आँख और नाक आदि अवयव कट गये हैं तथा जिनके तालु, शिर, पेट और हृदय विदीर्ण हो गये हैं ऐसे लोग वहाँ गिरते रहते हैं ॥१२५॥ जिनके पैर ऊपरको उठे हुए हैं ऐसे कितने ही नारकी दूसरे बलवान् नारकियोंके द्वारा कुम्भीपाकमें पकाये जाते हैं और कितने ही कठोर शब्द करते हुए धानियोंमें पेल दिये जाते हैं ॥१२६॥ तीव्र क्रोधसे युक्त शत्रुओंने जिन्हें मुद्गरसे पीड़ित किया है ऐसे कितने ही नारकी अत्यन्त तीव्र वेदनासे व्याकुल हो पृथिवी पर लोट जाते हैं ॥१२७॥ तीव्र व्याससे पीड़ित दीन हीन नारकी विह्वल हो पानी माँगते हैं पर पानीके बदले उन्हें पिघला हुआ राँगा और तौँबा दिया जाता है ॥१२८॥ निकलते हुए तिलगोंसे भयंकर उस राँगा आदिके द्रवको देखकर वे व्याससे नारकी काँप उठते हैं, उनके चित्त फिर जाते हैं तथा कण्ठ आँसुओंसे भर जाते हैं ॥१२९॥ वे कहते हैं कि मुझे व्यास नहीं है, छोड़ो-छोड़ो मैं जाता हूँ पर नहीं चाहने पर भी उन्हें बलान् वह द्रव पिलाया जाता है ॥१३०॥ चिल्लाते हुए उन नारकियोंको पृथिवी पर गिराकर तथा लोहेके डंडेसे उनका मुख फाड़कर उसमें बलान् विष, रक्त तथा तौँबा आदिका द्रव डाला जाता है ॥१३१॥ वह द्रव उनके कण्ठको जलाता और हृदयको फोड़ता हुआ पेटमें पहुँचता है और मलकी राशिके साथ-साथ बाहर निकल जाता है ॥१३२॥ तदनन्तर जब वे पश्चात्तापसे दुःखी होते हैं तब उन दीन हीन नारकियोंको नरक भूमिके रक्षक मिथ्याशास्त्रों द्वारा कथित पापका स्मरण दिलाते हैं ॥१३३॥ वे कहते हैं कि उस समय तुमने बोलनेमें चतुर होनेके कारण गुरुजनोंका उल्लंघन कर 'मांस निर्दोष है' यह कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥१३४॥ 'नानाप्रकारके मांस और मदिराके द्वारा किया हुआ श्राद्ध अधिक फलदायी होता है, ऐसा जो तुमने पहले कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥१३५॥ यह कहकर उन्हें विक्रिया युक्त नारकी बड़ी निर्दयतासे मार-मारकर उन्हींका शरीर खिलते हैं तथा वे अत्यन्त दीन चेष्टाएँ करते हैं ॥१३६॥ 'राज्य-अवस्था स्वप्न-दर्शनके समान निःसार है' यह स्मरण दिलाकर उन्हींसे उत्पन्न हुए विडम्बनाकारी उन्हें पीड़ित करते हैं और वे करुणक्रन्दन करते हैं ॥१३७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पाप करनेवाले जीव नारकियोंकी भूमिमें

तस्मात्फलमधर्मस्य ज्ञात्वेदमतिदुःसहम् । प्रशान्तहृदयाः सन्तः सेवध्वं जिनशासनम् ॥१३६॥
 अनन्तरमधोवासा ज्ञाता भवनवासिनाम् । देवारण्यार्णवद्वीपास्तथा योग्याश्च भूमयः ॥१४०॥
 पृथिव्यापश्च तेजश्च मातरिश्वा वनस्पतिः । शेषास्त्रसाश्च जीवानां निकायाः षट् प्रकीर्त्तिताः ॥१४१॥
 धर्माधर्मवियत्कालजीवपुद्गलभेदतः । षोढा द्रव्यं समुद्दिष्टं सरहृत्स्थं जिनेश्वरैः ॥१४२॥
 सप्तभङ्गावचोमार्गः सम्यक्प्रतिपदं मतः । प्रमाणं सकलादेशो नयोऽव्यवसाधनम् ॥१४३॥
 एकद्वित्रिचतुःपञ्चद्वर्षाकेष्वविरोधतः । सर्वं जीवेषु विज्ञेयं प्रतिपन्नसमन्वितम् ॥१४४॥
 सूक्ष्मबादरभेदेन ज्ञेयास्ते च शरीरतः । पर्यासा इतरे चैव पुनस्ते परिकीर्त्तिताः ॥१४५॥
 भव्याभव्यादिभेदं च जीवद्रव्यमुदाहृतम् । संसारे तद्द्रव्योन्मुक्ताः सिद्धास्तु परिकीर्त्तिताः ॥१४६॥
 ज्ञेयदृश्यस्वभावेषु परिणामः स्वशक्तितः । उपयोगश्च तद्रूपं ज्ञानदर्शनतो द्विधा ॥१४७॥
 ज्ञानमष्टविधं ज्ञेयं चतुर्धा दर्शनं मतम् । संसारिणो विमुक्ताश्च ते सचित्तविचेतसः ॥१४८॥
 वनस्पतिपृथिव्याद्याः स्थावराः शेषकास्त्रसाः । पञ्चेन्द्रियाः श्रुतिघ्राणचक्षुस्त्वग्रसनान्विताः ॥१४९॥
 पोताण्डजजरायूनामुदितो^१ गर्भसम्भवः । देवानामुपपादस्तु नारकाणां च कीर्त्तितः ॥१५०॥
 सम्मूर्च्छनं समस्तानां शेषाणां जन्मकारणम् । योन्यस्तु विविधाः प्रोक्ताः महादुःखसमन्विताः ॥१५१॥

क्षणभरके लिए भी विश्राम लिये बिना पूर्वोक्त प्रकारके दुःख पाते रहते हैं ॥१३८॥ इसलिये हे शान्त हृदयके धारक सत्पुरुषो ! 'यह अधर्मका फल अत्यन्त दुःसह है' ऐसा जानकर जिन-शासनकी सेवा करो ॥१३६॥ अनन्तरवर्ती रत्नप्रभाभूमि भवनवासी देवोंकी निवास भूमि है यह पहले ज्ञात कर चुके हैं । इसके सिवाय देवारण्य वन, सागर तथा द्वीप आदि भी उनके निवासके योग्य स्थान हैं ॥१४०॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर और एक त्रस ये जीवोंके छह निकाय कहे गये हैं ॥१४१॥ धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गलके भेदसे द्रव्य छह प्रकारके हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने रहस्य सहित कहा है ॥१४२॥ प्रत्येक पदार्थका सप्तभङ्गी द्वारा निरूपण करनेका जो मार्ग है वह प्रशस्त मार्ग माना गया है । प्रमाण और नयके द्वारा पदार्थोंका कथन होता है । पदार्थके समस्त विरोधी धर्मोंका एक साथ वर्णन करना प्रमाण है और किसी एक धर्मका सिद्ध करना नय है ॥१४३॥ एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय जीवोंमें बिना किसी विरोधके सत्त्व-सत्ता-नामका गुण रहता है और यह अपने प्रतिपन्न-विरोधी तत्त्वसे सहित होता है ॥१४४॥ वे जीव शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म और बादरके भेदसे दो प्रकारके जानना चाहिए । उन्हीं जीवोंके फिर पर्याप्तक और अपर्याप्तककी अपेक्षा दो भेद और भी कहे गये हैं ॥१४५॥ जीवद्रव्यके भव्य अभव्य आदि भेद भी कहे गये हैं परन्तु यह सब भेद संसार अवस्थामें ही होते हैं, सिद्ध जीव इन सब भेदों रहित कहे गये हैं ॥१४६॥ ज्ञेय और दृश्य स्वभावोंमें जीवका जो अपनी शक्तिसे परिणमन होता है वह उपयोग कहलाता है, उपयोग ही जीवका स्वरूप है, यह उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदसे दो प्रकारका है ॥१४७॥ ज्ञानोपयोग मतिज्ञानादिके भेदसे आठ प्रकारका है, और दर्शनोपयोग चक्षुर्दर्शन आदिके भेदसे चार प्रकारका है । जीवके संसारी और मुक्तकी अपेक्षा दो भेद हैं तथा संसारी जीव संज्ञी और असंज्ञी भेदसे दो प्रकारके हैं ॥१४८॥ वनस्पतिकायिक तथा पृथिवीकायिक आदि स्थावर कहलाते हैं, शेष त्रस कहे जाते हैं । जो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पाँचों इन्द्रियोंसे सहित हैं वे पञ्चेन्द्रिय कहलाते हैं ॥१४९॥ पोतज, अण्डज तथा जरायुज जीवोंके गर्भजन्म कहा गया है तथा देवों और नारकियोंके उपपाद जन्म बतलाया गया है ॥१५०॥ शेष जीवोंकी उत्पत्तिका कारण सम्मूर्च्छन जन्म है । इस तरह गर्भ, उपपाद और सम्मूर्च्छनकी अपेक्षा जन्मके

औदारिकं शरीरं तु वैक्रियाऽऽहारके तथा । तैजसं कार्मणं चैव विद्धि सूक्ष्मं परं परम् ॥१५२॥
 असङ्ख्येयं प्रदेशेन गुणतोऽनन्तके परे । आदिसम्बन्धमुक्ते च चतुर्गामिककालता ॥१५३॥
 जम्बूद्वीपमुखा द्वीपा लवणाद्याश्च सागराः । प्रकीर्त्तिताः शुभा नाम संस्थानपरिवर्जिताः ॥१५४॥
 पूर्वोद् द्विगुणविष्कम्भाः पूर्वविक्षेपवर्तिनः । वलयाकृतयो मध्ये जम्बूद्वीपः प्रकीर्त्तितः ॥१५५॥
 मेरुनाभिरसौ वृत्तो लक्षयोजनमानभृत् । त्रिगुणं तत्परिक्षेपादधिकं परिकीर्त्तितम् ॥१५६॥
 पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेयाः कुलपर्वताः । हिमवांश्च महाज्ञेयो निषधो नील एव च ॥१५७॥
 रुक्मी च शिखरी चेति समुद्रजलसङ्गताः । वाम्यान्येभिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च ॥१५८॥
 भरताख्यमिदं क्षेत्रं ततो हैमवतं हरिः । विदेहो रम्यकाल्यं च हैरण्यवतमेव च ॥१५९॥
 ऐरावतं च विज्ञेयं गङ्गाद्याश्चापि निम्नगाः । प्रोक्तं द्विर्धातकीखण्डे पुष्करार्द्धे च पूर्वकम् ॥१६०॥
 आर्यां म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाचलतोऽपरे । विज्ञेयास्तत्प्रभेदाश्च संख्यान्परिवर्जिताः ॥१६१॥
 विदेहे कर्मणो भूमिभरतैरावते तथा । देवोत्तरकुरुभोगक्षेत्रं शेषाश्च भूमयः ॥१६२॥
 त्रिपल्लयान्तर्मुहूर्त्तं तु स्थिती नृणां परावरे । मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमुपेयुषाम् ॥१६३॥
 अष्टभेदजुषो वेद्या व्यन्तराः किन्नरादयः । तेषां क्रीडनकावासा यथाथोग्यमुदाहृताः ॥१६४॥

तीन भेद हैं परन्तु तीव्र दुःखोंसे सहित योनियाँ अनेक प्रकारकी कही गई हैं ॥१५१॥ औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं । ये शरीर आगे-आगे सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं ऐसा जानना चाहिए ॥१५२॥ औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर प्रदेशोंकी अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित हैं तथा तैजस और कार्मण ये दो शरीर उत्तरोत्तर अनन्त गुणित हैं । तैजस और कार्मण ये दो शरीर आदि सम्बन्धसे युक्त हैं अर्थात् जीवके साथ अनादि कालसे लगे हुए हैं और उपर्युक्त पाँच शरीरोंमेंसे एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं ॥१५३॥

मध्यम लोकमें जम्बूद्वीपको आदि लेकर शुभ नामवाले असंख्यात द्वीप और लवण समुद्रको आदि लेकर असंख्यात समुद्र कहे गये हैं ॥१५४॥ ये द्वीप-समुद्र पूर्वके द्वीप-समुद्रसे दूने विस्तार वाले हैं, पूर्व-पूर्वको घेरे हुए हैं तथा वलयके आकार हैं । सबके बीचमें जम्बूद्वीप कहा गया है ॥१५५॥ जम्बूद्वीप मेरु पर्वतरूपी नाभिसे सहित है, गोलाकार है तथा एक लाख योजन विस्तार वाला है, इसकी परिधि तिगुनीसे कुछ अधिक कही गई है ॥१५६॥ उस जम्बूद्वीपमें पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह कुलाचल हैं । ये सभी समुद्रके जलसे मिले हैं तथा इन्हींके द्वारा जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्रोंका विभाग हुआ है ॥१५७-१५८॥ यह भरत क्षेत्र है इसके आगे हैमवत, उसके आगे हरि, उसके आगे विदेह, उसके आगे रम्यक, उसके आगे हैरण्यवत और उसके आगे ऐरावत—ये सात क्षेत्र जम्बूद्वीपमें हैं । इसी जम्बूद्वीपमें गङ्गा, सिन्धु आदि चौदह नदियाँ हैं । धातकीखण्ड तथा पुष्करार्द्धमें जम्बूद्वीपसे दूनी-दूनी रचना है ॥१५९-१६०॥ मनुष्य, मानुषोत्तर पर्वतके इसी ओर रहते हैं, इनके आर्य और म्लेच्छकी अपेक्षा मूलमें दो भेद हैं तथा इनके उत्तर भेद असंख्यात हैं ॥१६१॥ देवकुरु, उत्तरकुरु रहित विदेह क्षेत्र, तथा भरत और ऐरावत इन तीन क्षेत्रोंमें कर्मभूमि है और देवकुरु, उत्तर कुरु तथा अन्य क्षेत्र भोगभूमिके क्षेत्र हैं ॥१६२॥ मनुष्योंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्लयकी और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी है । तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति मनुष्योंके समान तीन पल्लय और अन्तर्मुहूर्त्तकी है ॥१६३॥

व्यन्तर देवोंके किन्नर आदि आठ भेद जानना चाहिए । इन सबके क्रीड़ाके स्थान यथा-

ऊर्ध्वं व्यन्तरदेवानां ज्योतिषां चक्रमुज्ज्वलम् । मेरुप्रदक्षिणं नित्यङ्गतिश्चन्द्राकाराजकम् ॥१६५॥
 संख्येयानि सहस्राणि योजनानां व्यतीत्य च । तत ऊर्ध्वं महालोको विज्ञेयः कल्पवासिनाम् ॥१६६॥
 सौधर्माख्यस्तथैशानः कल्पस्तत्र प्रकीर्तितः । ज्ञेयः सानत्कुमारश्च तथा माहेन्द्रसंज्ञकः ॥१६७॥
 ब्रह्म ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्तितः । कापिष्ठश्च तथा शुक्रो महाशुक्राभिधस्तथा ॥१६८॥
 शतारोऽथ सहस्रारः कल्पश्चान्तशब्दितः । प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परावारणच्युतौ ॥१६९॥
 नव ग्रैवेयकास्ताभ्यामुपरिष्ठात्प्रकीर्तितः । अहमिन्द्रतथा येषु परमास्त्रिदशः स्थिताः ॥१७०॥
 विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽथापराजितः । सर्वार्थसिद्धिनामा च पञ्चैतेऽनुत्तराः स्मृताः ॥१७१॥
 अग्रे त्रिभुवनस्यास्य क्षेत्रमुत्तमभासुरम् । कर्मबन्धनमुक्तानां पदं ज्ञेयं महाद्भुतम् ॥१७२॥
 ईषत्प्राग्भारसंज्ञासौ पृथिवी शुभदर्शना । उत्तानधवलच्छत्रप्रतिरूपा शुभावहा ॥१७३॥
 सिद्धा यत्रावतिष्ठन्ते पुनर्भवविवर्जिताः । महासुखपरिप्राप्ताः स्वात्मशक्तिव्यवस्थिताः ॥१७४॥
 रामो जगाद् भगवन् तेषां विगतकर्मणाम् । संसारभावनिसुक्तं निर्दुःखं कीदृशं सुखम् ॥१७५॥
 उवाच केवली लोकत्रितयस्यास्य यत्सुखम् । व्याबाधभङ्गदुःपाकैर्दुःखमेव हि तन्मतम् ॥१७६॥
 कर्मणाऽष्टप्रकारेण परतन्त्रस्य सर्वदा । नास्य संसारिजीवस्य सुखं नाम मनागपि ॥१७७॥
 यथा सुवर्णपिण्डस्य वेष्टितस्यायसा भृशम् । आत्मीया नश्यति ह्याया तथा जीवस्य कर्मणा ॥१७८॥
 मृत्युजन्मजराव्याधिसहजैः सततं जनाः । मानसैश्च महादुःखैः पीड्यन्ते सुखमत्र किम् ॥१७९॥
 असिधारामधुस्वादसमं विषयजं सुखम् । दग्धे चन्दनवह्निष्यं चक्रिणां सविषाणवत् ॥१८०॥

योग्य कहे गये हैं ॥१६४॥ व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका निवास ऊपर मध्यलोकमें है । इनमें ज्योतिषी देवोंका चक्र देदीप्यमान कान्तिका धारक है, मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता हुआ निरन्तर चलता रहता है तथा सूर्य और चन्द्रमा उसके राजा हैं ॥१६५॥ ज्योतिश्चक्रके ऊपर संख्यात हजार योजन व्यतीत कर कल्पवासी देवोंका महालोक शुरू होता है यही ऊर्ध्वलोक कहलाता है ॥१६६॥ ऊर्ध्वलोकमें सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत और आरण, अच्युत ये आठ युगलोंमें सोलह स्वर्ग हैं ॥१६७-१६९॥ उनके ऊपर ग्रैवेयक कहे गये हैं जिनमें अहमिन्द्र रूपसे उत्कृष्ट देव स्थित हैं । (नव ग्रैवेयकके आगे नव अनुदिश हैं और उनके ऊपर) विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर विमान हैं ॥१७०-१७१॥ इस लोकत्रयके ऊपर उत्तम देदीप्यमान तथा महा आश्चर्यसे युक्त सिद्धक्षेत्र है जो कर्म बन्धनसे रहित जीवोंका स्थान जानना चाहिए ॥१७२॥ ऊपर ईषत्प्राग्भार नामकी वह शुभ पृथ्वी है, जो ऊपरकी ओर किये हुए धवलच्छत्रके आकार है, शुभरूप है, और जिसके ऊपर पुनर्भवसे रहित, महासुख सम्पन्न तथा स्वात्मशक्तिसे युक्त सिद्धपरमेष्ठी विराजमान रहते हैं ॥१७३-१७४॥

तदनन्तर इसी बीचमें रामने कहा कि हे भगवन् ! उन कर्मरहित जीवोंके संसार भावसे रहित तथा दुःखसे दूर कैसा सुख होता है ? ॥१७५॥ इसके उत्तरमें केवली भगवान्ने कहा कि इस तीन लोकका जो सुख है वह आकुलतारूप, विनाशात्मक तथा दुरन्त होबेके कारण दुःखरूप ही माना गया है ॥१७६॥ आठप्रकारके कर्मसे परतन्त्र इस संसारी जीवको कभी रञ्जमात्र भी सुख नहीं होता ॥१७७॥ जिस प्रकार लोहेसे वेष्टित सुवर्णपिण्डकी अपनी निजकी कान्ति नष्ट हो जाती है उसी प्रकार कर्मसे वेष्टित जीवकी अपनी निजकी कान्ति बिलकुलही नष्ट हो जाती है ॥१७८॥ इस संसारके प्राणी निरन्तर जन्म-जरा-मरण तथा बीमारी आदिके हजमों एवं मानसिक महादुखोंसे पीडित रहते हैं अतः यहाँ क्या सुख है ? ॥१७९॥ विषय-जन्यसुख खड्गधारा

ध्रुवं परमनात्राधसुपमानविवर्जितम् । आत्मस्वाभाविकं सौख्यं सिद्धानां परिकीर्तितम् ॥१८१॥
 सुप्तथा किं ध्वस्तनिद्राणां नारोगाणां किमौषधैः । सर्वज्ञानां कृतार्थानां किं दीपतपनादिना ॥१८२॥
 आयुधैः किमभीतानां निर्मुक्तानामरातिभिः । पश्यतां त्रिपुलं सर्वसिद्धार्थानां किमौहवा ॥१८३॥
 मह्यम् सुखतृप्तानां किं कुर्यं भोजनादिना । देवेन्द्रा अपि यत्सौख्यं वाञ्छन्ति सततोन्मुखाः ॥१८४॥
 नास्ति यद्यपि तत्रेव प्रतिमाऽस्य तथाऽपि ते । वदामि प्रतिबोधार्थं सिद्धात्मसुखगोचरे ॥१८५॥
 सचक्रवर्तिनो मर्त्याः सेन्द्रा यच्च सुराः सुखम् । कालेनान्तत्रिमुक्तेन सेवन्ते भवहेतुजम् ॥१८६॥
 अनन्तपुरणस्यापि भागस्य तदकर्मणाम् । सुखस्य तुल्यतां नैति सिद्धानामादृशं सुखम् ॥१८७॥
 जनेभ्यः सुखिनो भूपाः भूषेभ्यश्चक्रवर्तिनः । चक्रिभ्यो व्यन्तरास्तेभ्यः सुखिनो ज्योतिषाऽमराः ॥१८८॥
 ज्योतिर्भ्यो भवनावासास्तेभ्यः कल्पभुवः क्रमात् । ततो प्रैवेयकावासास्ततोऽनुत्तरवासिनः ॥१८९॥
 अनन्तानन्तगुणतस्तेभ्यः सिद्धिपदस्थिताः । सुखं नापरमुत्कृष्टं विद्यते सिद्धसौख्यतः ॥१९०॥
 अनन्तं दर्शनं ज्ञानं वीर्यं च सुखमेव च । आत्मनः स्वमिदं रूपं तच्च सिद्धेषु विद्यते ॥१९१॥
 संसारिणस्तु तान्येव कर्मोपशमभेदतः । वैचित्र्यवन्ति जायन्ते बाह्यवस्तुनिमित्ततः ॥१९२॥
 शब्दादिप्रभवं सौख्यं शक्तितं व्याधिकीलकैः । नवव्रणभवे तत्र सुखाशा मोहहेतुका ॥१९३॥
 गत्याभातिविमुक्तानां प्रर्क्षणक्लेशसम्पदाम् । लोकशेखरभूतानां सिद्धानामसमं सुखम् ॥१९४॥

पर लोको हुए मधुके स्वादके समान है, स्वर्गका सुख जले हुए घावपर चन्दनके लेपके समान है और चक्रवर्तीका सुख विषमिश्रित अन्नके समान है ॥१८०॥ किन्तु सिद्ध भगवानका जो सुख है वह नित्य है, उत्कृष्ट है, आवाधासे रहित है, अनुपम है, और आत्मस्वभावसे उत्पन्न है ॥१८१॥ जिनकी निद्रा नष्ट हो चुकी है उन्हें शयनसे क्या ? नीरोग मनुष्योंको औषधिसे क्या ? सर्वज्ञ तथा कृतकृत्य मनुष्योंको दीपक तथा सूर्य आदिसे क्या ? शत्रुओंसे रहित निर्भीक मनुष्योंके लिए आयुधोंसे क्या ? देखते-देखते जिनके पूर्ण रूपमें सब मनोरथ सिद्ध हो गये हैं ऐसे मनुष्योंको चेष्टासे क्या ? और आत्मसम्बन्धी महा सुखसे संतुष्ट मनुष्योंको भोजनादिसे क्या प्रयोजन है ? इन्द्र लोग भी सिद्धोंके जिस सुखकी सदा उन्मुख रहकर इच्छा करते रहते हैं । यद्यपि यथार्थमें उस सुखकी उपमा नहीं है तथापि तुम्हें समझानेके लिए सिद्धोंके उस आत्मसुखके विषयमें कुछ कहता हूँ ॥१८२-१८३॥ चक्रवर्ती सहित समस्त मनुष्य और इन्द्र सहित समस्त देव अनन्त कालमें जिस सांसारिक सुखका उपभोग करते हैं वह कर्म रहित सिद्ध भगवानके अनन्तवें सुखकी भी सदृशताको प्राप्त नहीं होता । ऐसा सिद्धोंका सुख है ॥१८६-१८७॥ साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा राजा सुखी हैं, राजाओंकी अपेक्षा चक्रवर्ती सुखी हैं, चक्रवर्तियोंकी अपेक्षा व्यन्तर देव सुखी हैं, व्यन्तर देवोंकी अपेक्षा ज्योतिष देव सुखी हैं ॥१८८॥ ज्योतिष देवोंकी अपेक्षा भवनवासी देव सुखी हैं, भवनवासियोंकी अपेक्षा कल्पवासी देव सुखी हैं, कल्पवासी देवोंकी अपेक्षा प्रैवेयक वासी सुखी हैं, प्रैवेयकवासियोंकी अपेक्षा अनुत्तरवासी सुखी हैं ॥१८९॥ और अनुत्तरवासियोंसे अनन्तानन्त गुणित सुखी सिद्ध जीव हैं । सिद्ध जीवोंके सुखसे उत्कृष्ट दूसरा सुख नहीं है ॥१९०॥ अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुख यह चतुष्टय आत्माका निज स्वरूप है और वह सिद्धोंमें विद्यमान है ॥१९१॥ परन्तु संसारी जीवोंके वे ही ज्ञान दर्शन आदि कर्मोंके उपशममें भेद होनेसे तथा बाह्य वस्तुओंके निमित्तसे अनेक प्रकारके होते हैं ॥१९२॥ शब्द आदि इन्द्रियोंके विषयोंसे होनेवाला सुख व्याधिरूपी कीलोंके द्वारा शल्य युक्त है इसलिए शरीरसे होनेवाले सुखमें सुखकी आशा करना मोहजनित आशा है ॥१९३॥ जो गमनागमनसे विमुक्त हैं, जिनके समस्त क्लेश नष्ट हो चुके हैं एवं जो लोकके मुकुट स्वरूप हैं अर्थात् लोकाग्रमें विद्यमान

यदीयं दर्शनं ज्ञानं लोकालोकप्रकाशकम् । क्षुद्रद्रव्यप्रकाशेन नैव ते भानुना समाः ॥१३५॥
 करस्थामलकज्ञानसर्वभागोऽप्युष्कलम् । छद्मस्थपुरुषोत्पन्नं सिद्धज्ञानस्य नो समम् ॥१३६॥
 समं त्रिकालभेदेषु सर्वभावेषु केवली । ज्ञानदर्शनयुक्तात्मा नेतरः सोऽपि सर्वथा ॥१३७॥
 ज्ञानदर्शनभेदोऽयं यथा सिद्धेतरात्मनाम् । सुखेऽपि दृश्यतां तद्वत्तथा वीर्येऽपि दृश्यताम् ॥१३८॥
 दर्शनज्ञानसौख्यानि सकलत्वेन तत्त्वतः । सिद्धानां केवली वेत्ति शेषेष्वौपमिकं वचः ॥१३९॥
 अभव्यात्मभिरप्राप्यमिदं जैनेन्द्रमास्पदम् । अत्यन्तमपि यत्नाद्यैः कायसंकलेशकारिभिः ॥२००॥
 अनाद्रिकालसम्बद्धां विरहेण विवर्जिताम् । अविद्यागेहिनीं ते हि शब्दाश्लिष्य शेरते ॥२०१॥
 विमुक्तिवनिताऽऽश्लेषसमुत्कण्ठापरायणाः । भव्यास्तु दिवसान् कृच्छ्रं प्रेरयन्ति तपःस्थिताः ॥२०२॥
 सिद्धिशक्तिविनिमुक्ता अभव्याः परिकीर्तिताः । भविष्यत्सिद्धयो जीवा भव्यशब्दमुपाश्रिताः ॥२०३॥
 जिनेन्द्रशासनाद्व्यशसासने रघुनन्दन । न सर्वयत्नयोगेऽपि विद्यते कर्मणां ह्ययः ॥२०४॥
 यत्कर्म ऋपयत्यज्ञो भूरिभिर्भवकोटिभिः । ज्ञानी मुहूर्तयोगेन त्रिगुस्तदपोहयेत् ॥२०५॥
 प्रतीतो जगतोऽप्येतत्परमात्मा निरञ्जनः । दृश्यते परमार्थेन यथा प्रज्ञाणकर्मभिः ॥२०६॥
 गृहीतं बहुभिर्विद्वि लोकमार्गमसारकम् । परमार्थपरिप्राप्यै गृहाण जिनशासनम् ॥२०७॥
 एवं रघूत्तमः श्रुत्वा वचः साकलभूषणम् । प्रणिपत्य जगौ नाथ तारयाऽस्माञ्जवाविति ॥२०८॥

हैं उन सिद्धोंका सुख अपनी समानता नहीं रखता ॥१३५॥ जिनका दर्शन और ज्ञान लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला है, वे छुद्र द्रव्योंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके समान नहीं कहे जा सकते ॥१३६॥ जो हाथ पर स्थित आँवलेके सर्वभागोंके जाननेमें असमर्थ है ऐसा छद्मस्थ पुरुषोंका ज्ञान सिद्धोंके समान नहीं है ॥१३६॥ त्रिकाल सम्बन्धी समस्त पदार्थोंके विषयमें एक केवली ही ज्ञान दर्शनसे सम्पन्न होता है, अन्य नहीं ॥१३७॥ सिद्ध और संसारी जीवोंमें जिस प्रकार यह ज्ञान दर्शनका भेद है उसी प्रकार उनके सुख और वीर्यमें भी यह भेद समझना चाहिए ॥१३८॥ यथार्थमें सिद्धोंके दर्शन, ज्ञान और सुखको सम्पूर्ण रूपसे केवली ही जानते हैं अन्य लोगोंके वचन तो उपमा रूप ही होते हैं ॥१३९॥ यह जिनेन्द्र भगवान्का स्थान—सिद्धपद, अभव्य जीवोंको अप्राप्य है, भले हो वे अनेक यत्नोंसे सहित हों तथा अत्यधिक काय-क्लेश करनेवाले हों ॥२००॥ इसका कारण भी यह है कि वे अनादि कालसे सम्बद्ध तथा विरहसे रहित अविद्यारूपी गृहिणीका निरन्तर आलिङ्गन कर शयन करते रहते हैं ॥२०१॥ इनके विपरीत मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिङ्गन करनेमें जिनकी उत्कण्ठा बढ़ रही है ऐसे भव्य जीव तपश्चरणमें स्थित होकर बड़ी कठिनाईसे दिन व्यतीत करते हैं अर्थात् वे जिस किसी तरह संसारका समय बिताकर मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं ॥२०२॥ जो मुक्ति प्राप्त करनेकी शक्तिसे रहित हैं वे अभव्य कहलाते हैं और जिन्हें मुक्ति प्राप्त होगी वे भव्य कहे जाते हैं ॥२०३॥ सर्वभूषण केवली कहते हैं कि हे रघुनन्दन ! जिनेन्द्रशासनको छोड़कर अन्यत्र सर्व प्रकारका यत्न होने पर भी कर्मोंका क्षय नहीं होता है ॥२०४॥ अज्ञानी जीव जिस कर्मको अनेक करोड़ों भवोंमें क्षीण कर पाता है उसे तीन गुप्तियोंका धारक ज्ञानी मनुष्य एक मुहूर्तमें ही क्षण कर देता है ॥२०५॥ यह बात संसारमें भी प्रसिद्ध है कि यथार्थमें निरञ्जन—निष्कलङ्क परमात्माका दर्शन वही कर पाते हैं जिनके कि कर्म क्षीण हो गये हैं ॥२०६॥ यह सारहीन संसारका मार्ग तो अनेक लोगोंने पकड़ रक्खा है पर इससे परमार्थकी प्राप्ति नहीं, अतः परमार्थकी प्राप्तिके लिए एक जिनशासनको ही ग्रहण करो ॥२०७॥ इस प्रकार सकलभूषणके वचन सुनकर श्रीरामने प्रणाम कर कहा कि हे नाथ ! इस संसार-सागरसे पार

भगवन्नधमा मध्या उत्तमाश्वासुधारिणः । भव्याः केन विमुच्यन्ते विधिना भववास्तः ॥२०६॥
 उवाच भगवान् सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितम् । मोक्षवर्त्म समुद्दिष्टमिदं जैनेन्द्रशासने ॥२१०॥
 तत्त्वश्रद्धानमेतस्मिन् सम्यग्दर्शनमुच्यते । चेतनाचेतनं तत्त्वमनन्तगुणपर्ययम् ॥२११॥
 निसर्गाधिगमद्वाराद्भक्त्या तत्त्वमुपाददत् । सम्यग्दृष्टिरिति प्रोक्तो जीवो जिनमते रतः ॥२१२॥
 शङ्का काङ्क्षा चिक्त्सिा च परशासनसंस्तवः । प्रत्यक्षोदारदोषाद्या एते सम्यक्त्वकूषणाः ॥२१३॥
 स्वैर्यं जिनवारागारे रमणं भावना पराः । शङ्कादिरहितस्वं च सम्यग्दर्शनशोधनम् ॥२१४॥
 सर्वज्ञशासनोक्तं विधिना ज्ञानपूर्वकम् । क्रियते यदसाध्येन सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१५॥
 गोपायितहृषीकवं वचोमानस्यन्त्रणम् । विद्यते यत्र निष्पापं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१६॥
 अहिंसा यत्र भूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च । क्रियते न्याययोगेषु सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१७॥
 मनःश्रोत्रपरिह्लादं सिग्धं मधुरमर्थवत् । शिवं यत्र वचः सत्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१८॥
 अदत्तग्रहणे यत्र निवृत्तिः क्रियते त्रिधा । दत्तं च गृह्यते न्याय्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१९॥
 सुराणामपि सम्पूज्यं दुर्धरं महतामपि । ब्रह्मचर्यं शुभं यत्र सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२०॥
 शिवमार्गमहाविघ्नमूच्छ्रात्यजनपूर्वकः । परिग्रहपरित्यागः सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२१॥
 परपीडाविनिर्मुक्तं दानं श्रद्धादिसङ्गतम् । दीयते यस्मिन्नुत्तमैः सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२२॥

लगामो ॥२०८॥ उन्हेंने यह भी पूछा कि हे भगवन् ! जघन्य मध्यम तथा उत्तमके भेदसे भव्य जीव तीन प्रकारके हैं सो ये संसार-वाससे किसी विधिसे छूटते हैं ? ॥२०९॥

तत्र सर्वभूषण भगवान्ने कहा कि जैनेन्द्र शासन—जैनधर्ममें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इनकी एकता ही को मोक्षका मार्ग बताया है ॥२१०॥ इनमेंसे तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। अनन्त गुण और अनन्त पर्यायोंको धारण करनेवाला तत्त्व चेतन, अचेतनके भेदसे दो प्रकारका है ॥२११॥ स्वभाव अथवा परोपदेशके द्वारा भक्तिपूर्वक जो तत्त्वको ग्रहण करता है वह जिनमतका श्रद्धालु सम्यग्दृष्टि जीव कहा गया है ॥२१२॥ शङ्का काङ्क्षा, विचिक्त्सिा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्योंमें दोषादि लगाना—उनकी निन्द्य करना ये सम्यग्दर्शनके पाँच अतिचार हैं ॥२१३॥ परिणामोंकी स्थिरता रखना, जिनायतन आदि धर्म क्षेत्रोंमें रमण करना—स्वभावसे उनका अच्छा लगाना, उत्तम भावनाएँ भाना तथा शङ्कादि दोषोंसे रहित होना ये सब सम्यग्दर्शनको शुद्ध रखनेके उपाय हैं ॥२१४॥ सर्वज्ञके शासनमें कही हुई विधिके अनुसार सम्यग्ज्ञान पूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्यके द्वारा जो आचरण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२१५॥ जिसमें इन्द्रियोंका वशीकरण और वचन तथा मनका नियन्त्रण होता है वही निष्पाप—निर्दोष सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२१६॥ जिसमें न्यायपूर्ण चर्चा करनेवाले त्रस स्थावर जीवोंपर अहिंसा की जाती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१७॥ जिसमें मन और कानोंको आनन्दित करनेवाले, स्नेहपूर्ण, मधुर, सार्थक और कल्याणकारी वचन कहे जाते हैं उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१८॥ जिसमें अदत्तवस्तुके ग्रहणमें मन, वचन, कायसे निवृत्ति की जाती है तथा न्यायपूर्ण दी हुई वस्तु ग्रहण की जाती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१९॥ जहाँ देवोंके भी पूज्य और महापुरुषोंके भी कठिनतासे धारण करने योग्य शुभ ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२२०॥ जिसमें मोक्षमार्गमें महाविघ्नकारी मूच्छ्रातिके त्यागपूर्वक परिग्रहका त्याग किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२१॥ जिसमें मुनियोंके लिए परपीडासे रहित तथा श्रद्धा आदि गुणोंसे सहित दान दिया जाता है उसे

विनयो नियमः शीलं ज्ञानं दानं दया दमः । ध्यानं च यत्र मोक्षार्थं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२३॥
 पतद्गुणसमायुक्तं जिनेन्द्रवचनोदितम् । श्रेयः सम्प्राप्तये सेव्यं चारित्रं परमोदयम् ॥२२४॥
 शक्यं करोत्यशक्ये तु श्रद्धावान् स्वस्य निन्दकः । सम्यक्त्वसहितो जन्तुः शक्तश्चारित्रसङ्गतः ॥२२५॥
 यत्र त्वेते न विद्यन्ते समीचीना महागुणाः । तत्र नास्ति सुचारित्रं न च संसारनिर्गमः ॥२२६॥
 दयादमक्षमा यत्र न विद्यन्ते न संवरः । न ज्ञानं न परित्यागस्तत्र धर्मो न विद्यते ॥२२७॥
 हिंसावितथचौर्यस्त्रीसमारम्भसमाश्रयः । क्रियते यत्र धर्मार्थं तत्र धर्मो न विद्यते ॥२२८॥
 दीक्षासुपेत्य यः पापे मूढचेताः प्रवर्तते । आरम्भणोऽस्य चारित्रं विमुक्तिर्वा न विद्यते ॥२२९॥
 यण्णां जीवनिकायानां क्रियते यत्र पीडनम् । धर्मव्याजेन सौख्यार्थं न तेन शिवमाप्स्यते ॥२३०॥
 वधताडनबन्धाङ्गदोहनादिविधायिनः । ग्रामक्षेत्रादिसक्तस्य प्रवज्या का हतात्मनः ॥२३१॥
 क्रयविक्रयसक्तस्य पक्तियाचनकारिणः । सहिरण्यस्य का मुक्तिर्दीक्षितस्य दुरात्मनः ॥२३२॥
 मर्दनस्नानसंस्कारमालयधूपानुलेपनम् । सेवन्ते दुर्विदग्धा ये दीक्षितास्ते न मोक्षगाः ॥२३३॥
 हिंसां द्रोपविनिर्मुक्तां वदन्तः स्वमनीषया । शास्त्रं वेषं च वृत्तं च दूषयन्ति समूढकाः ॥२३४॥
 एकरात्रं वसन् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् । नित्यमूर्द्धभुजस्तिष्ठन् मासे मासे च पारयन् ॥२३५॥
 मृगैः सनमरण्यान्यां शयानो विचरन्नपि । कुर्वन्नपि भृगोः पातं मौनवान्निःपरिग्रहः ॥२३६॥
 मिथ्यादर्शनदुष्टात्मा कुलिङ्गो बीजवर्जितः । पद्भ्यामगम्यदेशं वा नैवाप्नोति शिवालयम् ॥२३७॥

सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२२॥ जिसमें विनय, नियम, शील, ज्ञान, दया, दम और मोक्षके लिए ध्यान धारण किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२३॥ इस प्रकार इन गुणोंसे सहित, जिन शासनमें कथित, परम अभ्युदयका कारण जो सम्यक्चारित्र है, कल्याण प्राप्तिके लिए उसका सेवन करना चाहिए ॥२२४॥ सम्यग्दृष्टि जीव शक्य कार्यको करता है और अशक्य कार्यको श्रद्धा रखता है परन्तु जो शक्त अर्थात् समर्थ होता है वह चारित्र धारण करता है ॥२२५॥ जिसमें पूर्वोक्त समीचीन महागुण नहीं हैं उसमें सम्यक्चारित्र नहीं है, और न उसका संसारसे निकलना होता है ॥२२६॥ जिसमें दया, दम, क्षमा नहीं हैं, संवर नहीं है, ज्ञान नहीं है, और परित्याग नहीं है उसमें धर्म नहीं रहता ॥२२७॥ जिसमें धर्मके लिए हिंसा, मूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहका आश्रय किया जाता है वहाँ धर्म नहीं है ॥२२८॥ जो मूर्ख हृदय दीक्षा लेकर पापमें प्रवृत्ति करता है उस आरम्भिके न चारित्र है और न उसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥२२९॥ जिसमें धर्मके बहाने सुख प्राप्त करनेके लिए छह कायके जीवोंकी पीडा की जाती है उस धर्मसे कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती ॥२३०॥ जो मारना, ताडना, बाँधना, आँकना तथा दोहना आदि कार्य करता है तथा गाँव, खेत आदिमें आसक्त रहता है उस अनात्मज्ञका दीक्षा लेना क्या है ? ॥२३१॥ जो वस्तुओंके खरीदने और बेचनेमें आसक्त है, स्वयं भोजनादि पकाता है अथवा दूसरेसे याचना करता है, और स्वर्णादि परिग्रह साथ रखता है, ऐसे आत्महीन दीक्षित मनुष्यको क्या मुक्ति प्राप्त होगी ? ॥२३२॥ जो अविवेकी मनुष्य दीक्षित होकर मर्दन, स्नान, संस्कार, माला, धूप तथा विलेपन आदिका सेवन करते हैं वे मोक्षगामी नहीं हैं—उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं होता ॥२३३॥ जो अपनी बुद्धिसे हिंसाको निर्दोष कहते हुए शास्त्र वेष तथा चारित्रमें दोष लगाते हैं वे मूढतासे सहित हैं—मिथ्यादृष्टि हैं ॥२३४॥ जो गाँवमें एक रात और नगरमें पाँच रात रहता है, निरन्तर ऊपरकी ओर भुजा उठाये रहता है, महीने-महीनेमें एक बार भोजन करता है, मृगोंके साथ अटवीमें शयन करता है, उन्हींके साथ विचरण करता है, भृगुपात भी करता है, मौनसे रहता है, और परिग्रहका त्याग करता है, वह मिथ्या दर्शनसे दूषित होनेके कारण कुलिङ्गी है तथा मोक्षके कारण जो सम्यग्दर्शनादि उनसे रहित है । ऐसा जीव पैरोंसे चलकर किसी अगम्य-

अग्निवारिप्रवेशादिपापं धर्मधिया श्रयन् । प्रयाति दुर्गतिं जीवो मूढः स्वहितवत्सर्म्नि ॥२३८॥
 रौद्रार्तध्यानसक्तस्य सकामस्य कुकर्मणः । उपायविपरीतस्य जायते निन्दिता गतिः ॥२३९॥
 मिथ्यादर्शनयुक्तोऽपि यो दद्यात्साध्वसाधुषु । धर्मबुद्धिरसौ पुण्यं बध्नाति विपुलोदयम् ॥२४०॥
 भुञ्जानोऽपि फलं तस्य धर्मस्यासौ त्रिविष्टपे । लक्ष्मणागदलेनाऽपि सम्यग्दष्टेर्न समितः ॥२४१॥
 सग्नदर्शनमुत्तुङ्गं सुश्लाघ्याः संवहन्ति ये । देवलोकप्रधानास्ते भवन्ति नियमप्रियाः ॥२४२॥
 क्लेशिवाऽपि महायत्नं मिथ्यादृष्टिः कुलिङ्गकः । देवकिङ्करभावेन फलं हीनमवारनुते ॥२४३॥
 ससाष्टसु नृदेवत्वभवसङ्क्रान्तिः सौख्यभाक् । श्रमणत्वं समाश्रित्य सम्यग्दृष्टिर्विमुच्यते ॥२४४॥
 वीतरागैः समस्तजैरिमं मार्गं प्रदर्शितम् । जन्तुविषयमूढात्मा प्रतिपत्तुं न वाञ्छति ॥२४५॥
 आशापाशैर्दृढं बद्धा मोहेनाभिष्टिता भृशम् । तृष्णागारं समानीताः पापहिंजरीरवाहिनः ॥२४६॥
 रसनं स्पर्शनं प्राप्य दुःखसौख्याभिमानीनः । वराका विविधा जीवाः क्लिरयन्ते शरणोन्मिताः ॥२४७॥
 विभेति मृत्युतो नास्य ततो मोक्षः प्रजायते । काङ्क्षत्यनारतं सौख्यं न च लाभोऽस्य सिद्ध्यति ॥२४८॥
 इत्ययं भौतिकाभाभ्यां विकलाभ्यां वशीकृतः । केवलं तापमायाति चेतनो निरुपायकः ॥२४९॥
 आशया नित्यमाविष्टो भोगान् भोक्तुं समाहते । न करोति धृतिं धर्मं काञ्चने मशको यथा ॥२५०॥

स्थान अथवा मोक्षको प्राप्त नहीं कर सकता ॥२३५-२३७॥ जो धर्म बुद्धिसे अग्निप्रवेश तथा जलप्रवेश आदि पाप करता है वह आत्महितके मार्गमें मूढ है और दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥२३८॥ जो रौद्र और आर्तध्यानमें आसक्त है, कामपर जिसने विजय प्राप्त नहीं की है, जो खोटे काम करता है तथा उपायसे विपरीत प्रवृत्ति करता है उसकी निन्दित गति—कुगति होती है ॥२३९॥ जो मनुष्य मिथ्यादर्शनसे युक्त होकर भी धर्म बुद्धिसे साधु और असाधुके लिए दान देता है वह विपुल अभ्युदयको देनेवाले पुण्य कर्मका बन्ध करता है ॥२४०॥ यद्यपि ऐसा जीव स्वर्गमें उस धर्मका फल भोगता है तथापि वह सम्यग्दृष्टिको प्राप्त होनेवाले फलके लाखमेंसे एक भागके भी बराबर नहीं है ॥२४१॥ जो मनुष्य उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन धारण करते हैं तथा चारित्र्यसे प्रेम रखते हैं वे इस लोकमें भी प्रशंसनीय होते हैं और मरनेके बाद देवलोकमें प्रधान होते हैं ॥२४२॥ मिथ्यादृष्टि कुलिङ्गी मनुष्य, बड़े प्रयत्नसे क्लेश उठाकर भी देवोंका किङ्कर बन चुक्य फलको प्राप्त होता है । भावार्थ—मिथ्यादृष्टि कुलिङ्गी मनुष्य यद्यपि तपश्चरणके अनेक क्लेश उठाता है तथापि वह उसके फलस्वरूप स्वर्गमें उत्तम पद प्राप्त नहीं कर पाता किन्तु देवोंका किङ्कर होकर हीन फल प्राप्त कर पाता है ॥२४३॥ सम्यग्दृष्टि मनुष्य, सात आठ भवोंमें मनुष्य और देव पर्यायमें परिश्रमणसे उत्पन्न हुए सुखको भोगता हुआ अन्तमें मुनिदीक्षा धारणकर मुक्त हो जाता है ॥२४४॥ वीतराग सर्वज्ञ देवके द्वारा दिखाये हुए इस मार्गको, विषयी मनुष्य प्राप्त नहीं करना चाहता ॥२४५॥ जो आशारूपी पाशसे मजबूत बँधे हैं, मोहसे अत्यधिक आक्रान्त हैं, तृष्णारूपी धर्ममें लाकर डाले गये हैं, पापरूपी जञ्जीरको धारण कर रहे हैं तथा स्पर्श और रसको पाकर जो दुःखको ही सुख मान बैठे हैं इस तरह नाना प्रकारके शरण रहित बेचारे दीन प्राणी निरन्तर क्लेश उठाते रहते हैं ॥२४६-२४७॥ यह प्राणी मृत्युसे डरता है पर उससे छुटकारा नहीं हो पाता । इसी प्रकार निरन्तर सुख चाहता है पर उसकी प्राप्ति नहीं हो पाती ॥२४८॥ इस प्रकार निष्फल भय और कामसे वश हुआ यह प्राणी निरुपाय हो मात्र संतापको प्राप्त होता रहता है ॥२४९॥ निरन्तर आशासे घिरा हुआ यह प्राणी भोग भोगनेकी चेष्टा करता है परन्तु जिस प्रकार मच्छर स्वर्णमें संतोष नहीं करता उसी

१. पापशृङ्खलावाहिनः । २. विभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः । तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः । बृहत्स्वयम्भुस्तोत्रे ।

सङ्कलेशवहितसो बह्वारम्भक्रियोद्यतः । न कञ्चिदर्थमाप्नोति हीयते वास्य सङ्गतम् ॥२५१॥
 असौ पुराकृतात्पादाद्राप्यायार्थं मनोगतम् । प्रत्युताऽनर्थमाप्नोति महान्तमतिदुर्जरम् ॥२५२॥
 इदं कृतमिदं कुर्वं करिष्येऽहं सुनिश्चितम् । मर्ताहं वस्वदः पापान्मृत्युं यान्तीति चिन्तकाः ॥२५३॥
 न हि प्रतीक्षते मृत्युरसुभाजां कृताकृतम् । समाक्रामत्यकाण्डेऽसौ मृगकं केसरी यथा ॥२५४॥
 अहिते हितमित्याशा सुदुःखे सुखसम्मतिः । अनित्ये शाश्वताकृतं शरणाशा भयावहे ॥२५५॥
 हिते सुखे परित्राणे ध्रुवे च विपरीतधीः । अहो कुट्टित्तानामन्यथैव व्यवस्थितिः ॥२५६॥
 भार्यावारीप्रविष्टः सन् मनुष्यो वनवारणः । विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो बन्धं समरनुते ॥२५७॥
 कुटुम्बसुमहापङ्के विस्तरे मोहसागरे । मनोऽवसीदति स्फूर्जन्दुर्बलो गवली यथा ॥२५८॥
 मोक्षो निगडबद्धस्य भवेदन्धाश्च कूपतः । निबद्धः स्नेहपाशैस्तु ततः कृच्छ्रेण मुच्यते ॥२५९॥
 बोधिं मनुष्यलोकेऽपि जैनेन्द्रो सुष्ठु दुर्लभाम् । प्राप्नुमर्हत्यभयस्तु नैव मार्गं जिनेन्द्रितम् ॥२६०॥
 धनकर्मकलङ्काका अभव्या नित्यमेव हि । संसारचक्रमारूढा भ्राम्यन्ति क्लेशवाहिताः ॥२६१॥
 ततः कृत्वाजलिं मूर्ध्नि जगाद रघुनन्दनः । किमस्मि भगवन् भव्यो मुच्ये कस्मादुपायतः ॥२६२॥
 शवनोमि पृथिवीमेतां त्यक्तुं सान्तःपुरामहम् । लक्ष्मीधरस्य सुकृतं न शवनोभयेकमुज्जितम् ॥२६३॥
 स्नेहोर्मिषु वन्द्यखण्डेषु तरन्तं लग्नतोऽज्जितम् । अवलम्बनदानेन मां त्रायस्व मुनीश्वर ॥२६४॥

प्रकार यह प्राणी धर्ममें धैर्य धारण नहीं करता ॥२५०॥ संक्लेशरूपी अग्निसे संतप्त हुआ यह प्राणी बहुत प्रकारके आरम्भ करनेमें तत्पर रहता है परन्तु किसी भी प्रयोजनको प्राप्त नहीं अपितु इसके पासका जो सुख है वह भी चला जाता है ॥२५१॥ यह जीव पूर्वकृत पापके कारण मनोभिलषित पदार्थको प्राप्त नहीं होता किन्तु अत्यन्त दुर्जर बहुत भारी अनर्थको प्राप्त होता है ॥२५२॥ 'मैं यह कर चुका, यह करता हूँ और यह आगे करूँगा।' इस प्रकार मनुष्य निश्चय कर लेता है पर कभी मरुंगा भी इस बातका कोई विचार नहीं करते ॥२५३॥ मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि प्राणी, कौन काम कर चुके और कौन काम नहीं कर पाये। वह तो जिस प्रकार सिंह मृग पर आक्रमण करता है उसी प्रकार असमयमें भी आक्रमण कर बैठती है ॥२५४॥ अहो! मिथ्या दृष्टि मनुष्य, अहितको हित, दुःखको सुख, अनित्यको नित्य, भयदायकको शरणदायक, हितको अहित, सुखको दुःख, रक्षकको अरक्षक और ध्रुवको अध्रुव समझते हैं। इस प्रकार कहना पड़ता है कि मिथ्यादृष्टि मनुष्योंकी व्यवस्था अन्य प्रकार ही है ॥२५५-२५६॥ यह मनुष्य रूपी जङ्गली हाथी, भार्या रूपी बन्धनमें पड़कर बन्धको प्राप्त होता है अथवा यह मनुष्य रूपी मत्स्य विषय रूपी मांसमें आसक्त हो बन्धका अनुभव करता है ॥२५७॥ कुटुम्बरूपी बहुत कीचड़से युक्त एवं लम्बे-चौड़े मोहरूपी महासागरमें फँसा हुआ यह प्राणी दुबले-पतले भँसेके समान छटपटाता हुआ दुःखी हो रहा है ॥२५८॥ वेड़ियोंसे बँधे हुए मनुष्यका अन्धे कुँएसे छुटकारा हो सकता है परन्तु स्नेह रूपी पाशसे बँधा प्राणी उससे बड़ी कठिनाईसे छूट पाता है ॥२५९॥ जिसका पाना मनुष्यलोकमें भी अत्यन्त दुर्लभ है ऐसी जिनेन्द्र प्रतिपादित बोधिको प्राप्त करनेके लिए अभव्य प्राणी योग्य नहीं है। इसी प्रकार जिनेन्द्र कथित रत्नत्रय मार्गको भी प्राप्त करनेके लिए अभव्य समर्थ नहीं हैं ॥२६०॥ तीव्र कर्म मल कलंकसे युक्त रहनेवाले अभव्य जीव, निरन्तर संसाररूपी चक्रपर आरूढ हो क्लेश उठाते हुए घूमते रहते हैं ॥२६१॥

तदनन्तर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर रामने कहा कि हे भगवन्! क्या मैं भव्य हूँ? और किस उपायसे मुक्त होऊँगा? ॥२६२॥ मैं अन्तःपुरसे सहित इस पृथिवीकी छोड़नेके लिए समर्थ हूँ, परन्तु एक लक्ष्मणका उपकार छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥२६३॥ मैं विना किसी

१. -त्यभव्यास्तु म० ।
 ३८-३

उवाच भगवान् राम न शोकं कर्तुं मर्हसि । ऐश्वर्यं बलदेवस्य भोक्तव्यं भवता ध्रुवम् ॥२६५॥
राज्यलक्ष्मीं परिप्राप्य दिवीव त्रिदशाधिपः । जैनेश्वरं व्रतं प्राप्य कैवल्यमयमेष्यसि ॥२६६॥

आर्याच्छन्दः

श्रुत्वा केवलिभाषितमुत्तमहर्षप्रजातपुलको रामः ।
विकसितनयनः श्रीमान् प्रसन्नवदनो बभूव धृत्या युक्तः ॥२६७॥
विज्ञाय चरमदेहं दाशरथिं विस्मिताः सुरासुरमनुजाः ।
केवलिरविणोद्धोतितमत्यन्तप्रीतिमानसः समशंसन् ॥२६८॥

इत्यार्षे श्रीरविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणो रामधर्मश्रवणामिधानं नाम पञ्चोत्तरशतं पर्व ॥१०५॥

आधारके स्नेहरूपी सागरकी तरङ्गोंमें तैर रहा हूँ, सो हे मुनीन्द्र ! अवलम्बन देकर मेरी रक्षा करो ॥२६४॥ तदनन्तर भगवान् सर्वभूषण केवलीने कहा कि हे राम ! तुम शोक करनेके योग्य नहीं हो । आपको बलदेवका वैभव अवश्य भोगना चाहिए । जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गकी राज्यलक्ष्मीको प्राप्त होता है उसी प्रकार यहाँकी राज्यलक्ष्मीको पाकर तुम अन्तमें जिनेश्वर दीक्षाको धारण करोगे तथा केवलज्ञानमय मोक्षधामको प्राप्त होओगे ॥२६५-२६६॥ इस प्रकार केवली भगवान् का उपदेश सुनकर जिन्हें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च निकल आये थे, जिनके नेत्र विकसित थे, जो श्रीमान् थे एवं प्रसन्नमुख थे ऐसे श्रीराम धैर्य—सुख संतोषसे युक्त हुए ॥२६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि वहाँ जो भी सुर-असुर और मनुष्य थे वे रामको चरम शरीरी जानकर आश्चर्यसे चकित हो गये तथा अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो केवलीरूपी सूर्यके द्वारा प्रकाशित वस्तुतत्त्वकी प्रशंसा करने लगे ॥२६८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रामके धर्म-
श्रवणका वर्णन करनेवाला एकसौ पाँचवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०५॥

षडुत्तरशतं पर्व

वृषभः खेचराणां तद्भक्तिभूषो विभीषणः । निर्भीषणमहाभूषं वृषभं व्योमवाससाम् ॥१॥
 पाण्डियुग्ममहाभोजभूपितोत्तमदेहभृत् । स नमस्कृत्य पप्रच्छ धीमान् सकलभूषणम् ॥२॥
 भगवन् पद्मनाभेन किमनेन भवान्तरे । सुकृतं येन माहात्म्यं प्रतिपन्नोऽयमोदयम् ॥३॥
 अस्य पत्नी सती सीता दण्डकारण्यवर्तिनः । केनानुबन्धदोषेण रावणेन तदा हता ॥४॥
 धर्मार्थकामलोक्षेषु शास्त्राणि सकलं विदन् । कृत्याकृत्यविवेकज्ञो धर्मधर्मविचक्षणः ॥५॥
 प्रधानगुणसम्पन्नो भूत्वा मोहवशं गतः । पतङ्गत्वमितः कस्मात्परस्त्रीलोभपावके ॥६॥
 भ्रातृपत्न्यातिसक्तेन भूत्वा वनविचारिणा । लक्ष्मीधरेण संग्रामे स कथं भुवि मूर्च्छितः ॥७॥
 स तादृग्बलवानासीद्विद्याधरमहेश्वरः । कृतानेकाद्भुतः प्राप्तः कथं मरणमोदयम् ॥८॥
 भय केवलीनो वाणी जगाद बहुजन्मगम् । संसारे परमं वैरमेतेनाऽऽसीत्सहानयोः ॥९॥
 इह जन्मवृत्तिद्वीपे भरते क्षेत्रनामनि । नगरे नयदत्ताख्यो वाणिजोऽभूत्समस्वकः ॥१०॥
 सुनन्दा गोहिनी तस्य धनदत्तः शरीरजः । द्वितीयो वसुदत्तस्तसुहृद्यज्ञबलिद्विजः ॥११॥
 वणिक्सागरदत्ताख्यस्तत्रैव नगरेऽपरः । पत्नी रत्नप्रभा तस्य गुणवायुदितात्मजा ॥१२॥
 रूपयौवनलावण्यकान्तिसद्विभ्रमात्मिका । अनुजो गुणवाक्त्रामा तस्या आसीत्सुचेतसः ॥१३॥

अथानन्तर जो विद्याधरोंमें प्रधान था, रामकी भक्ति ही जिसका आभूषण थी, और जो हस्तयुगलरूपी महाकमलोंसे सुशोभित मस्तकको धारण कर रहा था ऐसे बुद्धिमान् विभीषणने निर्भय तेजरूपी आभूषणसे सहित एवं निर्ग्रन्थ मुनियोंमें प्रधान उन सकलभूषण केवलीको नमस्कार कर पूछा कि ॥१-२॥ हे भगवन् ! इन रामने भवान्तरमें ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जिसके फलस्वरूप ये इस प्रकारके माहात्म्यको प्राप्त हुए हैं ॥३॥ जब ये दण्डकवनमें रह गये थे तब इनकी पतिव्रता पत्नी सीताको किस संस्कार दोषसे रावणने हरा था ॥४॥ रावण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षविषयक समस्त शास्त्रोंका अच्छा जानकार था, कृत्य-अकृत्यके विवेकको जानता था और धर्म-अधर्मके विषयमें पण्डित था । इस प्रकार यद्यपि वह प्रधान गुणोंसे सम्पन्न था तथापि मोहके वशीभूत हो वह किस कारण परस्त्रीके लोभरूपी अग्निमें पतङ्गपनेको प्राप्त हुआ था ? ॥५-६॥ भाईके पक्षमें अत्यन्त आसक्त लक्ष्मणने वनचारी होकर संग्राममें उसे कैसे मार दिया ॥७॥ रावण वैसा बलवान्, विद्याधरोंका राजा और अनेक अद्भुत कार्योंका कर्ता होकर भी इस प्रकारके मरणको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥८॥

तदनन्तर केवली भगवान्की वाणीने कहा कि इस संसारमें राम-लक्ष्मणका रावणके साथ अनेक जन्मसे उत्कट वैर चला आता था ॥९॥ जो इस प्रकार है—इस जन्मवृत्तिपके भरतक्षेत्रमें एकक्षेत्र नामका नगर था उसमें नयदत्त नामका एक वणिक् रहता था जो कि साधारण धनका स्वामी था । उसकी सुनन्दा नामकी स्त्रीसे एक धनदत्त नामका पुत्र था जो कि रामका जीव था, दूसरा वसुदत्तनामका पुत्र था जो कि लक्ष्मणका जीव था । एक यज्ञवलिनामका ब्राह्मण वसुदेवका मित्र था सो तुम—विभीषणका जीव था ॥१०-११॥ उसी नगरमें एक सागरदत्त नामक दूसरा वणिक् रहता था, उसकी स्त्रीका नाम रत्नप्रभा था और दोनोंके एक गुणवती नामकी पुत्री थी जो कि सीताकी जीव थी ॥१२॥ वह गुणवती, रूप, यौवन, लावण्य, कान्ति और उत्तम विभ्रमसे युक्त थी । सुन्दर चित्तको धारण करनेवाली उस गुणवतीका एक गुणवान् नामका छोटा भाई था

१. महाभूषं म० । २. कृतानेकाद्भुतं म० । ३. ससारो ख ।

पित्राकृतं परिज्ञाय प्रीतेन कुलकांक्षिणा । दत्ता प्रौढकुमारी सा धनदत्ताथ सुरिणा ॥१४॥
 श्रीकान्त इति विख्यातो वणिक्पुत्रोऽपरो धनी । स तां सन्ततमाकांक्षद् पस्तनितमानसः ॥१५॥
 वित्तस्याल्पतयावज्ञां धनदत्ते विधाय च । श्रीकान्तायोद्यतां दातुं माता तां क्षुद्रमानसा ॥१६॥
 विचेष्टितमिदं ज्ञात्वा वसुदत्तः प्रियाग्रजः । यज्ञवलयुपदेशेन श्रीकान्तं हन्तुमुद्यतः ॥१७॥
 मण्डलाग्रं समुद्यम्य रात्रौ तमसि गह्वरे । निःशब्दपदविन्यासो नीलवस्त्रावगुण्ठितः ॥१८॥
 श्रीकान्तं भवनोद्याने प्रमादिनमवस्थितम् । गत्वा प्राहरदेवोऽपि श्रीकान्तेनासिना हतः ॥१९॥
 एवमन्योन्यघातेन मृत्युं तौ समुपागतौ । विन्ध्यपादमहारण्ये समुद्भूतौ कुरङ्गकौ ॥२०॥
 दुर्जनैर्धनदत्ताय कुमारी वारिता सतः । क्रुध्यन्ति ते हि निर्व्याजादुपदेशे तु किं पुनः ॥२१॥
 तेन दुःस्युना भ्रातुः कुमार्यपगमेन च । धनदत्तो गृहाद्दुःखी देशानभ्रमदाकुलः ॥२२॥
 धनदत्तापरिप्राप्तया साऽपि बाला सुदुःखिता । अनिष्टान्यवरा गोहे नियुक्तान्प्रदाविधौ ॥२३॥
 मिथ्यादृष्टिस्वभावेन द्वेषे दृष्ट्वा निरम्बरम् । साऽसूयते समाक्रोशत्यपि निर्भर्त्सयत्यपि ॥२४॥
 जिनशासनमेकान्ताञ्च श्रद्धत्तेऽतिदुर्जना । मिथ्यादर्शनसक्तास्मा कर्मबन्धानुरूपतः ॥२५॥
 ततः कालावसानेन सार्तध्यानपरायणा । जाता तत्र मृगी यत्र वससस्तौ कुरङ्गकौ ॥२६॥
 पूर्वानुबन्धदोषेण तस्या एव कृते पुनः । मृगावन्धोन्यमुद्वृत्तौ हत्वा शूकरतां गतौ ॥२७॥

जो कि भामण्डलका जीव था ॥१३॥ जब गुणवती युवावस्थाको प्राप्त हुई तब पिताका अभिप्राय जानकर कुलकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् गुणवान्ने प्रसन्न होकर उसे नयदत्तके पुत्र धनदत्तके लिए देना निश्चित कर दिया ॥१४॥ उसी नगरीमें एक श्रीकान्त नामका दूसरा वणिक पुत्र था जो अत्यन्त धनाढ्य था तथा गुणवतीके रूपसे अपहृतचित्त होनेके कारण निरन्तर उसकी इच्छा करता था । यह श्रीकान्त रावणका जीव था ॥१५॥ गुणवतीकी माता क्षुद्र हृदयवाली थी, इसलिए वह धनकी अल्पताके कारण धनदत्तके ऊपर अवज्ञाका भाव रख श्रीकान्तको गुणवती देनेके लिए उद्यत हो गई । तदनन्तर धनदत्तका छोटा भाई वसुदत्त यह चेष्टा जान यज्ञवलिंके उपदेशसे श्रीकान्तको मारनेके लिए उद्यत हुआ ॥१६-१७॥ एक दिन वह रात्रिके सघन अन्धकारमें तलवार उठा चुपके-चुपके पद रखता हुआ नीलवस्त्रसे अवगुण्ठित हो श्रीकान्तके घर गया सो वह घरके उद्यानमें प्रमादसहित बैठा था जिससे वसुदत्तने जाकर उसपर प्रहार किया । बदलेमें श्रीकान्तने भी उसपर तलवारसे प्रहार किया ॥१८-१९॥ इस तरह परस्परके घातसे दोनों मरे और मरकर विन्ध्याचलकी महाअटवीमें मृग हुए ॥२०॥ दुर्जन मनुष्योंने धनदत्तके लिए कुमारीका लेना मना कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि दुर्जन किसी कारणके बिना ही क्रोध करते हैं फिर उपदेश मिलनेपर तो कहना ही क्या है ? ॥२१॥ भाईके कुमरण और कुमारीके नहीं मिलनेसे धनदत्त बहुत दुःखी हुआ जिससे वह घरसे निकलकर आकुल होता हुआ अनेक देशोंमें भ्रमण करता रहा ॥२२॥ इधर जिसे दूसरा वर इष्ट नहीं था ऐसी गुणवती धनदत्तकी प्राप्ति नहीं होनेसे बहुत दुःखी हुई । वह अपने घरमें अन्न देनेके कार्यमें नियुक्त की गई अर्थात् घरमें सबके लिए भोजन परोसनेका काम उसे सौंपा गया ॥२३॥ वह अपने मिथ्यादृष्टि स्वभावके कारण निर्ग्रन्थ मुनिको देखकर उनसे सदा द्वेष करती थी, उनके प्रति ईर्ष्या रखती थी, उन्हें गाली देती थी तथा उनका तिरस्कार भी करती थी ॥२४॥ कर्मबन्धके अनुरूप जिसकी आत्मा सदा मिथ्यादर्शनमें आसक्त रहती थी ऐसी वह अतिदुष्टा जिनशासनका बिलकुल ही श्रद्धान नहीं करती थी ॥२५॥

तदनन्तर आयु समाप्त होने पर आर्त्तध्यानसे मर कर वह उसी अटवीमें मृगी हुई जिसमें कि वे श्रीकान्त और वसुदत्तके जीव मृग हुए थे ॥२६॥ पूर्व संस्कारके दोषसे उसी मृगीके लिए

१. श्रीकान्तायोद्यतो दान्तुं भ्रान्तां तां क्षुद्रमानसः म० । २. नियुक्तान्तप्रदा-म० ।

द्विरदौ महिषौ गावौ प्लवगौ द्वीपिनौ वृकौ । हरु च तौ समुत्पन्नावन्योन्यं च हतस्तथा ॥२८॥
जले स्थले च भूयोऽपि वैरानुसरणोद्यतौ । भ्राम्यतः पापकर्माणौ त्रियमाणौ तथाविधम् ॥२९॥
परमं दुःखितः सोऽपि धनदत्तोऽध्वखेदितः । अन्यदाऽस्तङ्गते भानौ श्रमणाश्रममागमत् ॥३०॥
तत्र साधूनभाषिष्ट तृषितोऽप्युदकं मम । प्रयच्छत सुखिनस्य यूयं हि सुकृतप्रियाः ॥३१॥
तत्रैकश्रमणोऽवोचन् मधुरं परिसान्त्वयन् । रात्रावप्यमृतं युक्तं न पातुं किं पुनर्जलम् ॥३२॥
चक्षुर्व्यापारनिर्मुक्ते काले पापैकदारुणे । अदृष्टसूक्ष्मजन्त्वाढ्ये मार्शावस्व विभास्करे ॥३३॥
आतुरेणाऽपि भोक्तव्यं त्रिकाले भद्रं न त्वया । मापत व्यसनोदारसलिले भवसागरे ॥३४॥
उपशान्तस्ततः पुण्यकथाभिः सोऽल्पशक्तिकः । अणुवतधरो जानो दयालिङ्गितमानसः ॥३५॥
कालधर्मं च सम्प्राप्य सौधर्मं समुरोऽभवत् । मौलिकुण्डलकेयूरहारमुद्राङ्गदोऽज्ज्वलः ॥३६॥
पूर्वपुण्योदयात्तत्र सुरस्त्रीसुखलालितः । महाप्सरःपरिवारो मोदते वज्रपाणिवत् ॥३७॥
तत्रच्युतः समुत्पन्नः पुरश्रेष्ठमहापुरे । धारिण्यां श्रेष्ठिनो मेरोर्जैनात् पद्मरुचिः सुतः ॥३८॥
तत्रैव च पुरे नाम्ना छत्रच्छाद्यो नरेश्वरः । महिषीगुणमञ्जूषा श्रीदत्ता तस्य भामिनी ॥३९॥
आगच्छन्नन्यदा गोष्ठं गत्वा तुरगवृष्टतः । अपश्यद् भुवि पर्यस्तं मैरवो^१ जीर्णकं वृषम् ॥४०॥

दोनों फिर लड़े और परस्पर एक दूसरेको मार कर शूकर अवस्थाको प्राप्त हुए ॥२७॥ तदनन्तर वे दोनों हाथी, भैंसा, बैल, बानर, चीता, भेड़िया और कृष्ण मृग हुए तथा सभी पर्यायोंमें एक दूसरेको मार कर मरे ॥२८॥ पाप कार्यमें तत्पर रहने वाले वे दोनों जलमें, स्थलमें जहाँ भी उत्पन्न होते थे वहीं वैरका अनुसरण करनेमें तत्पर रहते थे और उसी प्रकार परस्पर एक दूसरे को मार कर मरते थे ॥२९॥

अथानन्तर मार्गके खेदसे थका अत्यन्त दुःखी धनदत्त, एक दिन सूर्यास्त होजाने पर मुनियों के आश्रममें पहुँचा ॥३०॥ वह प्यासा था इसलिए उसने मुनियोंसे कहा कि मैं बहुत दुःखी होरहा हूँ अतः मुझे पानी दीजिए आप लोग पुण्य करना अच्छा समझते हैं ॥३१॥ उनमेंसे एक मुनिने सान्त्वना देते हुए मधुर शब्द कहे कि रात्रिमें अमृत पीना भी उचित नहीं है फिर पानीकी तो बात ही क्या है ? ॥३२॥ हे वत्स ! जब नेत्र अपना व्यापार छोड़ देते हैं, जो पापकी प्रवृत्ति होने से अत्यन्त दारुण है, जो नहीं दिखनेवाले सूक्ष्म जन्तुओंसे सहित है, तथा जब सूर्यका अभाव हो जाता है ऐसे समय भोजन मत कर ॥३३॥ हे भद्र ! तुझे दुःखी होने पर भी असमयमें नहीं खाना चाहिए । तू दुःखरूपी गम्भीर पानीसे भरे हुए संसार-सागरमें मत पड़ ॥३४॥ तदनन्तर मुनिराजकी पुण्य कथासे वह शान्त हो गया, उसका चित्त दयासे आलिङ्गित हो उठा और इनके फलस्वरूप वह अणुवतका धारी हो गया । यतश्च वह अल्पशक्तिका धारक था इसलिए महाव्रती नहीं बन सका ॥३५॥ तदनन्तर आयुका अन्त आनेपर मरणको प्राप्त हो वह सौधर्य स्वर्गमें मुकुट, कुण्डल, बाजूबन्द, हार, मुद्रा और अनन्तसे सुशोभित उत्तम देव हुआ ॥३६॥ वहाँ वह पूर्व-पुण्योदयके कारण देवाङ्गनाओंके सुखसे लालित था, अप्सराओंक बड़े भारी परिवारसे सहित था तथा इन्द्रके समान आनन्दसे समय व्यतीत करता था ॥३७॥

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर महापुर नामक श्रेष्ठ नगरमें जैनधर्मके श्रद्धालु मेरु नामक सेठकी धारिणी नामक स्त्रीसे पद्मरुचि नामक पुत्र हुआ ॥३८॥ उसी नगरमें एक छत्रच्छाय नामका राजा रहता था । उसकी श्रीदत्ता नामकी स्त्री थी जो कि रानीके गुणोंकी मानो पिटारी ही थी ॥३९॥ किसी एक दिन पद्मरुचि घोड़े पर चढ़ा अपने गोकुलकी ओर आ रहा था, सो मार्गमें

१. विभाकरे म० । २. तुद्यङ्गदो-ख०, ज०, क० । ३. मेरुपुत्रः = पद्मरुचिः ।

सुगन्धिवस्त्रमालयोऽसाववर्तार्य तुरङ्गतः । आदरेण तमुत्तारणं दद्यान्नातानुरं गतः ॥४१॥
 दीयमाने जपे तेन कर्णे पञ्चनमस्कृतेः । श्रवणनुत्तरशरीरो स शरीराञ्जिरितस्ततः ॥४२॥
 श्रीदत्तायां च सञ्ज्ञे तनुदुःकर्मजालकः । छत्रच्छायोऽभवत्तोपी दुर्लभे पुत्रजन्मनि ॥४३॥
 उदारः नगरे शोभा जनिता द्रव्यसम्पदा । समुत्सवो महान् जातो वादित्रवधिरिकृतः ॥४४॥
 ततः कर्मानुभावेन पूर्वजन्मसमस्मरन् । गोदुःखं दारुणं तच्च बाहशीतातपादिजम् ॥४५॥
 श्रुतिं पाञ्चनमस्कारीं चेतसा च सदा बहन् । बाललीलाप्रसक्तोऽपि महासुभगविभ्रमः ॥४६॥
 कदाचिद् विहरन् प्रासः स तां वृषभृत्तितिम् । पर्यङ्गासीत् प्रदेशोश्च पूर्वमाचरितान् स्वयम् ॥४७॥
 वृषभध्वजनामासौ कुमारो वृषभूमिकाम् । अवर्तार्य गजात् स्वैरमपश्यद् दुःखिताशयः ॥४८॥
 बुधं समाधिरत्नस्य दातारं श्लाघ्यचेष्टितम् । अपश्यन् दर्शने तस्य दध्यौ चौपयिकं ततः ॥४९॥
 अथ कैलासशृङ्गाभं कारयित्वा जिनालयम् । चरितानि पुराणानि पट्टकादिष्वलेखयत् ॥५०॥
 द्वारदेशे च तस्यैव पटं स्वभवचित्रितम् । पुरुषैः पालने न्यस्तैरधिष्ठितमतिष्ठितम् ॥५१॥
 वन्दारुश्चैत्यभवनं तत् पद्मरुचिरागमत् । अपश्यच्च प्रहृष्टात्मा तच्चित्रं विरमितस्ततः ॥५२॥

उसने पृथिवी पर पड़ा एक बूढ़ा बैल देखा ॥४०॥ सुगन्धित वस्त्र तथा माला आदिको धारण करनेवाला पद्मरुचि घोड़ेसे उतर कर दयालु होता हुआ आदरपूर्वक उस बैलके पास गया ॥४१॥ पद्मरुचिने उसके कानमें पञ्चनमस्कार मन्त्रका जाप सुनाया । सो जब पद्मरुचि उसके कानमें पञ्चनमस्कार मन्त्रका जप दे रहा था तभी उस मन्त्रको सुनती हुई बैलकी आत्मा उस शरीरसे बाहर निकल गई अर्थात् नमस्कार मन्त्र सुनते-सुनते उसके प्राण निकल गये ॥४२॥ मन्त्रके प्रभावसे जिसके कर्माँका जाल कुछ कम हो गया था ऐसा वह पद्मरुचि, उसी नगरके राजा छत्रच्छायकी श्रीदत्ता नामकी रानीके पुत्र हुआ । यतश्च छत्रच्छायके पुत्र नहीं था इसलिए वह उसके उत्पन्न होनेपर बहुत संतुष्ट हुआ ॥४३॥ नगरमें बहुत भारी संपदा खर्च कर अत्यधिक शोभा की गई तथा बाजोंसे जो बहरा हो रहा था ऐसा महान् उत्सव किया गया ॥४४॥

तदनन्तर कर्माँके संस्कारसे उसे अपने पूर्व जन्मका स्मरण हो गया । बैलपर्यायमें बोभा दोना, शीत तथा आतप आदिसे उत्पन्न दारुण दुःख उसने भोगे थे तथा जो उसे पञ्चनमस्कार मन्त्र श्रवण करनेका अवसर मिला था वह सब उसकी स्मृतिपटलमें भूलने लगा । महासुन्दर चेष्टाओंको धारण करता हुआ वह, जब बालकालीन क्रीड़ाओंमें आसक्त रहता था तब भी मनमें पञ्चनमस्कार मन्त्रके श्रवणका सदा ध्यान रखता था ॥४५-४६॥ किसी एक दिन वह विहार करता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ उस बैलका मरण हुआ था । उसने एक-एक कर अपने घूमनेके सब स्थानोंको पहिचान लिया ॥४७॥

तदनन्तर वृषभध्वज नामको धारण करनेवाला वह राजकुमार हार्थीसे उतर कर दुःखित चित्त होता हुआ इच्छानुसार बहुत देर तक बैलके मरनेकी उस भूमिको देखता रहा ॥४८॥ समाधि मरण रूपी रत्नके दाता तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित उस बुद्धिमान पद्मरुचिको जब वह नहीं देख सका तब उसने उसके देखनेके लिए योग्य उपायका विचार किया ॥४९॥ अथानन्तर उसने उसी स्थान पर कैलासके शिखरके समान एक जिनमन्दिर बनवाया, उसमें चित्रपट आदि पर महापुरुषोंके चरित तथा पुराण लिखवाये ॥५०॥ उसी मन्दिरके द्वारपर उसने अपने पूर्वभवके चित्रसे चित्रित एक चित्रपट लगवा दिया तथा उसकी परीक्षा करनेके लिए चतुर मनुष्य उसके समीप खड़े कर दिये ॥५१॥

तदनन्तर वन्दनाकी इच्छा करता हुआ पद्मरुचि एक दिन उस मन्दिरमें आया और

तन्निबद्धेक्षणी यावदसौ तच्चित्रमीक्षते । वृषभ्वजस्य पुरुषैस्तावत् संवादितं श्रुतम् ॥५३॥
 ततो महर्द्धिसम्पन्नः समारुह्य द्विपोत्तमम् । इष्टसङ्गमनाकांक्षी राजपुत्रः समागमत् ॥५४॥
 अवतीर्य च नागेन्द्राद्विश्वजिनमन्दिरम् । परयन्तं च तदासक्तं धारणेयं निरैक्षत् ॥५५॥
 नेत्राऽऽस्यहस्तसम्भारसूचितोत्तुङ्गविस्मयम् । अनंसीत् पादयोरेनं परिज्ञाय वृषभ्वजः ॥५६॥
 गोदुःखमरणं तस्मै धारिणीसूनुरभवत् । राजपुत्रोऽगदीत् सोऽहमिति विस्तारिलोचनः ॥५७॥
 सम्भ्रमेण च सम्पूज्य गुरुं शिष्यवरो यथा । तृष्टः पद्गरुचिं राजतनयः समुदाहरन् ॥५८॥
 मृत्युव्यसनसम्बद्धे काले तस्मिन् भवान् मम । प्रियवन्धुरिव प्राप्तः समाधेः प्रापकोऽभवत् ॥५९॥
 समाध्यमृतपाथेयं त्वया दत्तं दयालुना । स परयं तृप्तिस्वप्नतः सम्प्राप्तोऽहमिमं भवम् ॥६०॥
 नैव तत् कुरुते माता न पिता न सहोदरः । न वान्धवा न गीर्वाणाः प्रियं यन्मे त्वया कृतम् ॥६१॥
 नेक्षे पञ्चनमस्कारश्रुतिदानविनिष्कयम् । तथापि मे परा भक्तिः त्वयि कारयतीरितम् ॥६२॥
 आज्ञां प्रयच्छ मे नाथ ब्रूहि किं करवाणि ते । आज्ञादानेन मां भक्तं भजस्व पुरुषोत्तम ॥६३॥
 गृहाण सकलं राज्यमहं ते दासरूपकः । नियुज्यतामयं देहः कर्मण्यभिसमीहिते ॥६४॥
 एवमादिसुसम्भाषं तयोः प्रेमाभवत् परम् । सम्यक्त्वं चैव राज्यं च सम्प्रयोगश्च सन्ततः ॥६५॥
 २अस्थिमज्जानुरक्तौ तौ ३सागरव्रतसङ्गतौ । जिनविम्बानि चैन्यानि भुव्यतिष्ठिपतां स्थिरी ॥६६॥

हर्षित चित्त होता हुआ उस चित्रको देखने लगा । तदनन्तर आश्चर्यचकित हो उसी चित्रपर नेत्र गड़ा कर ज्यों ही वह उसे देखता है कि वृषभध्वज राजकुमारके सेवकोंने उसे उसका समाचार सुना दिया ॥५२-५३॥ तदनन्तर विशाल सम्पदासे सहित राजपुत्र, इष्टके समागमकी इच्छा करता हुआ उत्तम हाथी पर सवार हो वहाँ आया ॥५४॥ हाथीसे उतर कर उसने जिनमन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ बड़ी तल्लीनताके साथ उस चित्रपटको देखते हुए धारिणिसुत—पद्गरुचिको देखा ॥५५॥ जिसके नेत्र, मुख तथा हाथोंके सञ्चारसे अत्यधिक आश्चर्य सूचित हो रहा था ऐसे उस पद्गरुचिको पहिचान कर वृषभध्वजने उसके चरणोंमें नमस्कार किया ॥५६॥ पद्गरुचिने उसके लिए बैलके दुःखपूर्ण मरणका समाचार कहा जिसे सुन कर उत्फुल्ल लोचनोंको धारण करनेवाला राजपुत्र बोला कि वह बैल मैं ही हूँ ॥५७॥ जिस प्रकार उत्तम शिष्य गुरुकी पूजा कर सन्तुष्ट होता है उसी प्रकार वृषभध्वज राजकुमार भी शीघ्रतासे पद्गरुचिकी पूजा कर सन्तुष्ट हुआ । पूजाके बाद राजपुत्रने पद्गरुचिसे कहा कि मृत्युके संकटसे परिपूर्ण उस कालमें आप मेरे प्रियवन्धुके समान समाधि प्राप्त करानेके लिए आये थे ॥५८-५९॥ उस समय तुमने दयालु होकर जो समाधिरूपी अमृतका सम्बल मेरे लिए दिया था देखो, उसीसे तृप्त होकर मैं इस भवको प्राप्त हुआ हूँ ॥६०॥ तुमने जो मेरा भला किया है वह न माता करती है, न पिता करता है, न सगा भाई करता है, न परिवारके अन्य लोग करते हैं और न देव ही करते हैं ॥६१॥ तुमने जो मुझे पञ्चनमस्कार मन्त्र श्रवणका दान दिया था उसका मूल्य यद्यपि मैं नहीं देखता तथापि आपमें जो मेरी परम भक्ति है वही यह चेष्टा करा रही है ॥६२॥ हे नाथ ! मुझे आज्ञा दो मैं आपका क्या करूँ ? हे पुरुषोत्तम ! आज्ञा देकर मुझ भक्तको अनुगृहीत करो ॥६३॥ तुम यह समस्त राज्य ले लो, मैं तुम्हारा दास रहूँगा । अभिलषित कार्यमें इस शरीरको नियुक्त कीजिए ॥६४॥ इत्यादि उत्तम शब्दोंके साथ-साथ उन दोनोंमें परम प्रेम होगया, दोनोंको ही सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई, वह राज्य दोनोंका सम्मिलित राज्य हुआ और दोनोंका संयोग चिर संयोग होगया ॥६५॥ जिनका अनुराग ऊपर ही ऊपर न रहकर हड़ी तथा मज्जा तक पहुँच गया था ऐसे वे दोनों श्रावकके व्रतसे सहित हुए । स्थिर चित्तके धारण करनेवाले उन दोनोंने पृथिवी

१. धारिण्याः पुत्रं पद्गरुचिम् । २. अस्थिमज्जानुरक्तौ म० । ३. सागरव्रत म० ।

स्तूपैश्च ध्रुवलाभोजमुकुलप्रतिमामितैः । समपादयतां क्षीणो शतशः कृत्स्नभूषणम् ॥६७॥
 ततः समाधिमारुध्य मरणे वृषभध्वजः । त्रिदशोऽभवदीशाने पुण्यकर्मफलानुभूः ॥६८॥
 सुरस्त्रीनयनाभोजविकासिनयनद्युतिः । तथाऽक्रीडन् परिध्यातसम्पन्नसकलेप्सितः ॥६९॥
 काले पद्मरुचिः प्राप्य समाधिमरणं तथा । ईशान एव गोर्वाणः कान्तो वैमानिकोऽभवत् ॥७०॥
 च्युत्वापरविदेहे तु विजयाचलमस्तके । नन्द्यावर्त्तपुरेशस्य राज्ञो नन्दीश्वरश्रुतेः ॥७१॥
 उत्पन्नः कनकाभायां नयनानन्दसंज्ञकः । खेचरेन्द्रश्रियं तत्र बुभुजे परमायताम् ॥७२॥
 ततः श्रामण्यमस्थाय कृत्वा सुविकटं तपः । कालधर्मं समासाद्य माहेन्द्रं कल्पमाश्रयत् ॥७३॥
 मनोज्ञपञ्चविषयद्वारं परमसुन्दरम् । परिप्राप सुखं तत्र पुण्यवल्लीमहाफलम् ॥७४॥
 च्युतस्ततो गिरेर्मैरोभागे पूर्वदिशि स्थिते । क्षेमायां पुरि सञ्जातः श्रीचन्द्र इति विश्रुतः ॥७५॥
 माता पद्मावती तस्य पिता विपुलवाहनः । तत्र स्वर्गोपभुक्तस्य निःस्यन्दं कर्मणोऽभजत् ॥७६॥
 तस्य पुण्यानुभावेन कोशो विषयसाधनम् । दिने दिने परं वृद्धिमसेवत समन्ततः ॥७७॥
 ग्रामस्थानीयसम्पन्नां पृथिवीं विविधाकराम् । प्रियामिव महाप्रीत्या श्रीचन्द्रः समपालयत् ॥७८॥
 हावभावमनोज्ञभिर्नारीभिस्तत्र लालितः । पर्यरंसीत् सुरस्त्रीभिः सुरेन्द्र इव सङ्गतः ॥७९॥
 संवत्सरसहस्राणि सुभूरीणि षणोपमम् । तस्य दोदुन्दुकस्येव महैश्वर्ययुजोऽगमन् ॥८०॥
 गुप्तिवतसमित्युद्यः सङ्गेन महतावृतः । समाधिगुप्तयोगीन्द्रः पुरं तदन्यदागमत् ॥८१॥

पर अनेक जिनमन्दिर और जिनविम्ब बनवाये ॥६६॥ सफेद कमलकी बौद्धियोंके समान स्तूपोंसे सैकड़ों बार पृथिवीको अलंकृत किया ॥६७॥

तदनन्तर मरणके समय समाधिकी आराधना कर वृषभध्वज ईशान स्वर्गमें पुण्य कर्मका फल भोगनेवाला देव हुआ ॥६८॥ उस देवके नयनोंकी कान्ति देवाङ्गनाओंके नयनकमलोंको विकसित करनेवाली थी, तथा क्रीड़ा करते समय ध्यान करते ही उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते थे ॥६९॥ इधर पद्मरुचि भी आयुके अन्तमें समधिमरण प्राप्तकर ईशान स्वर्गमें ही सुन्दर वैमानिक देव हुआ ॥७०॥ तदनन्तर पद्मरुचिका जीव वहाँसे चय कर पश्चिम विदेह क्षेत्रके विजयार्ध पर्वत पर नन्द्यावर्त्त नगरके राजा नन्दीश्वरकी कनकाभा रानीसे नयनानन्द नामका पुत्र हुआ । वहाँ उसने चिरकाल तक विद्याधर राजाकी विशाल लक्ष्मीका उपभोग किया ॥७१-७२॥ तदनन्तर मुनि-दीक्षा ले अत्यन्त विकट तप किया और अन्तमें समाधिमरण प्राप्त कर माहेन्द्र स्वर्ग प्राप्त किया ॥७३॥ वहाँ उसने पुण्यरूपी लताके महाफलके समान पञ्चेन्द्रियोंके विषय द्वारसे अत्यन्त सुन्दर मनोहर सुख प्राप्त किया ॥७४॥

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर मेरु पर्वतके पश्चिम दिग्भागमें स्थित क्षेमपुरी नगरीमें श्रीचन्द्र नामका प्रसिद्ध राजपुत्र हुआ ॥७५॥ वहाँ उसकी माताका नाम पद्मावती और पिताका नाम विपुलवाहन था । वह वहाँ स्वर्गमें भोगे हुए कर्मका जो निःस्यन्द शेष रहा था उसीका भानो उपभोग करता था ॥७६॥ उसके पुण्य प्रभावसे उसका खजाना, देश तथा सैन्य बल सब ओरसे प्रतिदिन परम वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥७७॥ वह श्रीचन्द्र, एक ग्रामके स्थानापन्न, नानाखानोंसे सहित विशाल पृथिवीका प्रियाके समान महाप्रीतिसे पालन करता था ॥७८॥ वहाँ वह हाव-भावसे मनोज्ञ स्त्रियोंके द्वारा लालित होता हुआ देवाङ्गनाओंसे सहित देवेन्द्रके समान क्रीड़ा करता था ॥७९॥ दोदुन्दुक देवके समान महान् ऐश्वर्यको प्राप्त हुए उस श्रीचन्द्रके कई हजार वर्ष एक क्षणके समान व्यतीत हो गये ॥८०॥

अथानन्तर किसी समय व्रत समिति और गुप्तिसे श्रेष्ठ एवं बहुत भारी संघसे आवृत

उद्यानेऽवस्थितस्यास्य तत्र ज्ञात्वा जनोऽखिलः । वन्दनामगमत् कर्तुं सम्मदालापतत्परः^१ ॥८२॥
 स्तुवतोऽस्य परं भक्त्या नादं वनकुलोपमम् । कर्णमादाय संश्रुत्य श्रीचन्द्रोऽपृच्छदन्तिकान् ॥८३॥
 कस्यैव श्रूयते नादो महासागरसम्मितः । अजानद्भिः समादिष्टैस्तैरमौत्यः कृतोऽन्तिकः ॥८४॥
 ज्ञायतां कस्य नादोऽयमिति राज्ञा स भाषितः । गत्वा ज्ञात्वा परावृत्य मुनिं प्राप्तमवेदयत् ॥८५॥
 ततो विकचराजोवराजमाननिरीक्षणः । सखीकः सम्मदोद्भूतपुलकः प्रस्थितो नृपः ॥८६॥
 प्रसन्नमुखतारेशं निरीष्य मुनिपुङ्गवम् । सम्भ्रमी शिरसा नत्वा न्यसीदद्विनयाद्भुवि ॥८७॥
 भव्याभोजप्रधानस्य मुनिभास्करदर्शने । तस्यासीदात्मसंवेद्यः कोऽपि प्रेममहाभरः ॥८८॥
 ततः परमगम्भीरः सर्वश्रुतिविशारदः । अदाजनमहौघाय मुनिस्तरवोपदेशनम् ॥८९॥
 अनगारं सहागारं धर्मं^३ द्विविधमब्रवीत् । अनेकभेदसंयुक्तं संसारोत्तारणावहम् ॥९०॥
 कर्णं चरणं द्रव्यं प्रथमं च सभेदकम् । अनुयोगमुखं^४ योगी जगाद वदतां वरः ॥९१॥
 आक्षेपणीं पराक्षेपकारिणीमकरोत् कथाम् । ततो निक्षेपणीं तत्त्वमतनिक्षेपकोविदाम् ॥९२॥
 संवेजनीं च संसारभयप्रचयशोधनीम् । निर्वेदनीं तथा पुण्यां भोगवैराग्यकारिणीम् ॥९३॥
 सन्धावतोऽस्य संसारे कर्मयोगेन देहिनः । कुच्छ्रेण महता प्राप्तिर्मुक्तिमार्गस्य जायते ॥९४॥

समाधिगुप्त नामक मुनिराज उस नगरमें आये ॥८१॥ 'मुनिराज आकर उद्यानमें टहरे हैं।' यह जानकर मुनिकी वन्दना करनेके लिए नगरके सब लोग हर्षपूर्वक वात-चीत करते हुए उद्यानमें गये ॥८२॥ भक्तिपूर्वक स्तुति करनेवाले जनसमूहका मेघमण्डलके समान जो भारी शब्द हो रहा था उसे कान लगाकर श्रीचन्द्रने सुना और निकटवर्ती लोगोंसे पूछा कि यह महासागरके समान किसका शब्द सुनाई दे रहा है ? जिन लोगोंसे राजाने पूछा था वे उस शब्दका कारण नहीं जानते थे इसलिए उन्होंने मन्त्रीको राजाके निकट कर दिया ॥८३-८४॥ तब राजाने मन्त्रीसे कहा कि मालूम करो यह किसका शब्द है ? इसके उत्तरमें मन्त्रीने जाकर तथा सब समाचार जानकर वापिस आ निवेदन किया कि उद्यानमें मुनिराज आये हैं ॥८५॥

तदनन्तर जिसके नेत्र खिले हुए कमलके समान सुशोभित हो रहे थे तथा जिसके हर्षके रोमाञ्च उठ आये थे ऐसा राजा श्रीचन्द्र अपनी स्त्रीके साथ मुनिवन्दनाके लिए चला ॥८६॥ वहाँ प्रसन्न मुखचन्द्रके धारक मुनिराजके दर्शन कर राजाने शीघ्रतासे शिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया और उसके बाद वह विनयपूर्वक पृथिवी पर बैठ गया ॥८७॥ भव्यरूपी कमलोंमें प्रधान राजा श्रीचन्द्रको मुनिरूपी सूर्यके दर्शन होनेपर अपने आप अनुभवमें आने योग्य कोई अद्भुत महाप्रेम उत्पन्न हुआ ॥८८॥ तत्पश्चान् परमगम्भीर और सर्वशास्त्रोंके विशारद मुनिराजने उस अपार जनसमूहके लिए तत्त्वोंका उपदेश दिया ॥८९॥ उन्होंने कहा कि अवान्तर अनेक भेदोंसे सहित तथा संसार सागरसे तारने वाला धर्म, अनगार और सागरके भेदसे दो प्रकारका है ॥९०॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिराजने अनुयोग द्वारसे वर्णन करते हुए कहा कि अनुयोगके १ प्रथमानुयोग २ करणानुयोग ३ चरणानुयोग और ४ द्रव्यानुयोगके भेदसे चार भेद हैं ॥९१॥ तदनन्तर उन्होंने अन्य मत-मतान्तरोंकी आलोचना करनेवाली आक्षेपणी कथा की । फिर स्वकीय तत्त्वका निरूपण करनेमें निपुण निक्षेपणी कथा की । तदनन्तर संसारसे भय उत्पन्न करनेवाली संवेजनी कथा की और उसके बाद भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न करनेवाली पुण्यवर्धक निर्वेदनी कथा की ॥९२-९३॥ उन्होंने कहा कि कर्मयोगसे संसारमें दौड़ लगानेवाले इस प्राणीको मोक्षमार्गकी प्राप्ति बड़े कष्टसे

१. सम्मदं तोषतत्परः म० । २. तैरमा कृत्यतोऽन्तिकः व०, -रमात्यकृतोऽन्तिकः ख०, ज० ।
 ३. विविध-म० । ४. मुखं म० ।

सन्ध्याबुद्बुदकेनोर्मिविद्युदिन्द्रधनुःसमः । भङ्गुरत्वेन लोकोऽयं न किञ्चिदिह सारकम् ॥६५॥
 नरके दुःखमेकान्तादेति तिर्यक्षु वाऽसुमान् । मनुष्यत्रिदशानां च सुखेनैवैष तृप्यति ॥६६॥
 माहेन्द्रभोगसम्पन्निर्यो न तृप्तिमुपागतः । स कथं क्षुद्रकैस्तृप्तिं प्रजेन्मनुजभोगकैः ॥६७॥
 कथञ्चिद् दुर्लभं लब्ध्वा निधानमधनो यथा । नरत्वं मुह्यति व्यर्थं विषयास्वादलोभतः ॥६८॥
 काग्नेः शुष्केन्धनैस्तृप्तिः काम्बुधेरापगाजलैः । विषयास्वादसौख्यैः का तृप्तिरस्य शरीरिणः ॥६९॥
 मज्जन्निव जले खिन्नो विषयामिषमोहितः । दक्षोऽपि मन्दतामेति तमोऽन्धीकृतमानसः ॥१००॥
 दिवा तपति तिम्रांशुर्मदनस्तु दिवानिशम् । समस्ति चारणं भानोर्मदनस्य न विद्यते ॥१०१॥
 जन्ममृत्युजरादुःखं संसारे स्मृतिभीतिदम् । अरहद्दृष्टीयन्त्रसन्ततं कर्मसम्भवम् ॥१०२॥
 अजङ्गमं यथाऽन्येन यन्त्रं कृतपरिभ्रमम् । शरीरमधुवं पूति तथा स्नेहोऽत्र मोहतः ॥१०३॥
 जलबुद्बुदनिःसारं ज्ञात्वा मनुजसम्भवम् । निर्विण्णाः कुलजा मार्गं प्रपद्यन्ते जिनोदितम् ॥१०४॥
 उत्साहकवचच्छुभ्रा निश्चयाश्वस्यसादिनः । ध्यानखड्गधरा धीराः प्रस्थिताः सुगतिं प्रति ॥१०५॥
 अन्यच्छरीरमन्योऽहमिति सञ्चिन्त्य निश्चिताः । तथा शरीरके स्नेहं धर्मं कुरुत मानवाः ॥१०६॥
 सुखदुःखादप्यस्तुत्याः स्वजनेतरयोः समाः । रागद्वेषविनिर्मुक्ताः श्रमणाः पुरुषोत्तमाः ॥१०७॥
 तैरियं परमोदारा धवलध्यानतेजसा । कृत्स्ना कर्माटवीं दग्धा दुःखरवापदसङ्कुला ॥१०८॥

होती है ॥६४॥ यह संसार विनाशी होनेके कारण सन्ध्या, बबूले, फेन, तरङ्ग, बिजली और इन्द्र-धनुषके समान है । इसमें कुछ भी सार नहीं है ॥६५॥ यह प्राणी नरक अथवा तिर्यञ्चगतिमें एकान्त रूपसे दुःख ही प्राप्त करता है और मनुष्य तथा देवोंके सुखमें यह तृप्त नहीं होता है ॥६६॥ जो इन्द्र सम्बन्धी भोग-सम्पदाओंसे तृप्त नहीं हुआ वह मनुष्योंके बुद्ध भोगोंसे कैसे तृप्त हो सकता है ? ॥६७॥ जिस प्रकार निर्धन मनुष्य किसी तरह दुर्लभ खजाना पाकर यदि प्रमाद करता है तो उसका वह खजाना व्यर्थ चला जाता है । इसी प्रकार यह प्राणी किसी तरह दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर विषय स्वादके लोभमें पड़ यदि प्रमाद करता है तो उसकी मनुष्य-पर्याय व्यर्थ चली जाती है ॥६८॥ सूखे ईन्धनसे अग्नि की तृप्ति क्या है ? नदियोंके जलसे समुद्रकी तृप्ति क्या है ? और विषयोंके आस्वाद-सम्बन्धी सुखसे संसारी प्राणीकी तृप्ति क्या है ? ॥६९॥ जलमें डूबते हुए खिन्न मनुष्यके समान विषय रूपी आमिषसे मोहित हुआ चतुर मनुष्य भी मोहान्धीकृत चित्त होकर मन्दताको प्राप्त हो जाता है ॥१००॥ सूर्य तो दिनमें ही तपता है पर काम रात दिन तपता रहता है । सूर्यका आवरण तो है पर कामका आवरण नहीं है ॥१०१॥ संसारमें अरहटकी घटीके समान निरन्तर कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला जो जन्म, जरा और मृत्यु सम्बन्धी दुःख है वह स्मरण आते ही भय देने वाला है ॥१०२॥ जिस प्रकार अजंगम यन्त्र जंगम प्राणीके द्वारा घुमाया जाता है उसी प्रकार यह अनित्य तथा बीभत्स शरीर भी चेतन द्वारा घुमाया जाता है । इस शरीरमें जो स्नेह है वह मोहके कारण ही है ॥१०३॥ यह मनुष्य जन्म पानीके बबूलेके समान निःसार है ऐसा जानकर कुलीन मनुष्य विरक्त हो जिन-प्रतिपादित मार्गको प्राप्त होते हैं ॥१०४॥ जो उत्साह रूपी कवचसे आच्छादित हैं, निश्चय रूपी घोड़ेपर सवार हैं और ध्यानरूपी खड्गको धारण करनेवाले हैं ऐसे धीर वीर मनुष्य सुगतिके प्रति प्रस्थान करते हैं ॥१०५॥ हे मानवो ! शरीर जुदा है और मैं जुदा हूँ ऐसा विचार कर निश्चय करो तथा शरीरमें स्नेह छोड़कर धर्म करो ॥१०६॥ जिन्हें सुख-दुःखादि समान हैं, जो स्वजन और परजनोंमें समान हैं तथा राग-द्वेष आदिसे रहित हैं ऐसे मुनि ही पुरुषोत्तम हैं ॥१०७॥ उन्हीं

१. 'अजङ्गमं अजङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम् । बीभत्सु पूति अपि तापकं च स्नेहो वृथाचेति हितं त्वमाख्यः' ॥ बृहत्सव्यंभूस्तोत्रे समन्तभद्रस्य ।

निशम्येति मुनेरुक्तं श्रीचन्द्रो बोधिमाश्रितः । पराचीनत्वमागच्छन् विषयास्वादसौख्यतः ॥१०६॥
 धृतिकान्ताय पुत्राय दत्त्वा राज्यं महामनाः । समाधिगुप्तनाथस्य पार्श्वे श्रामण्यमग्रहीत् ॥११०॥
 सम्यग्भावनाया युक्तसौयोगीं शुद्धिमादधन् । ससमित्यान्वितो गुप्तया रागद्वेषपराङ्मुखः ॥१११॥
 रत्नत्रयमहाभूषः शान्त्यादिगुणसङ्गतः । जिनशासनसम्पूर्णः श्रमणः सुसमाहितः ॥११२॥
 पञ्चोदारव्रताधारः सत्त्वानामनुपालकः । सप्तमीस्थाननिर्मुक्तो धृत्वा परमयान्वितः ॥११३॥
 सुविहारपरः सोढा परीषद्दणान् मुनिः । षष्ठाष्टमार्द्धमासादिकृतसंशुद्धपारणः ॥११४॥
 ध्यानस्वाध्याययुक्तात्मा निर्ममोऽतिजितेन्द्रियः । निर्निदानकृतिः शान्तः परः शासनवत्सलः ॥११५॥
 प्रासुकाचारकुशलः सङ्गानुग्रहतत्परः । बालाप्रकोटिमात्रेऽपि स्पृहामुक्तः परिग्रहे ॥११६॥
 अस्नानमलसाध्वङ्गो निराबन्धो निरम्बरः । एकरात्रस्थितिर्ग्रामे नगरे पञ्चरात्रभाक् ॥११७॥
 कन्दरापुलिनोद्याने प्रशस्तावाससङ्गमः । न्युत्सृष्टाङ्गः स्थिरो मौनी विद्वान् सम्यक्तपोरतः ॥११८॥
 एवमादिगुणः कृत्वा जर्जरं कर्मपञ्जरम् । श्रीचन्द्रः कालमासाद्य ब्रह्मलोकाधिपोऽभवत् ॥११९॥
 निवासे परमे तत्र श्रीकीर्तियुक्तिकान्तिभाक् । चूडामणिकृतालोको भुवनत्रयविश्रुतः ॥१२०॥
 क्रद्धया परमया क्रोडसमनुष्यानजन्मना । अहमिन्द्रसुरो यद्गदासीद् भरतभूपतिः ॥१२१॥
 नन्दनादिषु देवेन्द्राः सौधर्माद्याः सुसम्पदः । तिष्ठत्युदीक्षमाणास्तं तदुत्कण्ठापरायणः ॥१२२॥

मुनियोंने अपने शुक्ल ध्यान रूपी नेत्रके द्वारा दुःख रूपी वन्य पशुओंसे व्याप्त इस अत्यन्त विशाल समस्त कर्मरूपी अटवीको भस्म किया है ॥१०८॥ इस प्रकार मुनिराजका उपदेश सुन कर श्रीचन्द्र विषयास्वाद-सम्बन्धी सुखसे पराङ्मुख हो रत्नत्रयको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ फल-स्वरूप उस उदारचेताने धृतिकान्त नामक पुत्रके लिए राज्य देकर समाधिगुप्त मुनिराजके समीप मुनिदीक्षा धारण कर ली ॥११०॥ अब वे श्रीचन्द्रमुनि समीचीन भावनासे सहित थे, त्रियोग सम्बन्धी शुद्धिको धारण करते थे, समितियों और गुप्तियोंसे सहित थे तथा राग-द्वेषसे विमुख थे ॥१११॥ रत्नत्रय रूपी उत्तम अलंकारोंसे युक्त थे, क्षमा आदि गुणोंसे सहित थे, जिन-शासन से ओत-प्रोत थे, श्रमण थे और उत्तम संप्राधानसे युक्त थे ॥११२॥ पञ्च महाव्रतोंके धारक थे, प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले थे, सात भयोंसे निर्मुक्त थे तथा उत्तम धैर्यसे सहित थे ॥११३॥ ईर्यासमितिपूर्वक उत्तम विहार करनेमें तत्पर थे, परीषद्दणोंके समूहको सहन करने वाले थे, मुनि थे, तथा बेला, तेल और पक्षोपवासादि करनेके बाद पारणा करते थे ॥११४॥ ध्यान और स्वाध्यायमें निरन्तर लीन रहते थे; ममता रहित थे, इन्द्रियोंको तीव्रतासे जीतने वाले थे, उनके कार्य निदान अर्थात् आगामी भोगाकांक्षासे रहित होते थे, वे परम शान्त थे और जिन शासनके परम मनेही थे ॥११५॥ अहिंसक आचरण करनेमें कुशल थे, मुनिसंघपर अनुग्रह करनेमें तत्पर थे, और बालकी अनीमात्र परिग्रहमें भी इच्छासे रहित थे ॥११६॥ स्नानके अभावमें उनका शरीर मलसे सुरोभित था, वे आसक्तिये रहित थे, दिग्म्बर थे, गाँवमें एक रात्रि और नगरमें पाँच रात्रि तक ही ठहरते थे ॥११७॥ पर्वतकी गुफाओं, नदियोंके तट अथवा बाग-बगीचोंमें ही उनका उत्तम निवास होता था, उन्होंने शरीरसे ममता छोड़ दी थी, वे स्थिर थे, मौनी थे, विद्वान् थे और सम्यक् तपमें तत्पर थे ॥११८॥ इत्यादि गुणोंसे सहित श्रीचन्द्रमुनि कामरूपी पञ्जरको जर्जर—जीर्ण-शीर्णकर तथा समाधिभरण प्राप्तकर ब्रह्मस्वर्गके इन्द्र हुए ॥११९॥

वहाँ वे उत्तम विमानमें श्री, कीर्ति, द्युति और कान्तिको प्राप्त थे, चूडामणिके द्वारा प्रकाश करनेवाले थे, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थे ॥१२०॥ यद्यपि ध्यान करते ही उत्पन्न होनेवाली परम ऋद्धिसे क्रोड़ा करते थे तथापि अहमिन्द्रदेवके समान अथवा भरत चक्रवर्तीके समान निर्लिप्त ही रहते थे ॥१२१॥ नन्दन वन आदि स्थानोंमें उत्तम सम्पदाओंसे युक्त सौधर्म आदि इन्द्र जब

मणिहेमात्मके कान्ते मुक्ताजालविराजिते । रमते स्म विमानेऽसौ दिव्यस्त्रीनयनोत्सवः ॥१२३॥
 या श्रीश्रद्धचरस्यास्य न वा वाचस्पतेरपि । संवत्सरशतेनाऽपि शक्या वक्तुं विभीषण ॥१२४॥
 अनर्घ्यं परमं रत्नं रहस्यमुपमोञ्जितम् । त्रैलोक्यप्रकटं मूढा न विदुर्जिनशासनम् ॥१२५॥
 मुनिधर्मजिनेन्द्राणां माहात्म्यमुपलभ्य सत् । मिथ्याभिमानसंमूढा धर्मं प्रति पराङ्मुखाः ॥१२६॥
 इदलोकमुखस्यार्थं शिशुर्यः कुमते रतः । तदसौ कुरुते स्वस्य ध्यायन्नपि न यद्द्विवः ॥१२७॥
 कर्मबन्धस्य चित्रत्वान्न सर्वो बोधिभारजनः । केचिन्नन्धाऽपि मुञ्चन्ति पुनरन्यव्यपेक्षया ॥१२८॥
 बहुकुत्सितलोकेन गृहीते बहुदोषके । मारंभ्वं निन्दते धर्मं कुरुष्वं चित्स्वबन्धुताम् ॥१२९॥
 जिनशासनतोऽन्यत्र दुःखमुक्तिर्न विद्यते । तस्मादनन्यचेतस्का जिनमर्चयताऽनिशम् ॥१३०॥
 त्रिदशत्वान्मनुष्यत्वं सुरत्वं मानुषत्वतः । एवं मनोहरं प्राप्सो धनदत्तो निवेदितः ॥१३१॥
 वच्याम्यतः समासेन वसुदत्तादिसंस्तुतिम् । कर्मणां चित्रतायोगात् चित्रत्वमनुब्रिञ्चतीम् ॥१३२॥
 पुरे मृणालकुण्डाख्यो प्रतापी यशसोऽञ्ज्वलः । राजा विजयसेनाख्ये रत्नचूलाख्य भामिनी ॥१३३॥
 वज्रकम्बुः सुतस्तस्य हेमवत्यस्य भामिनी । शम्भुनामा तयोः पुत्रः प्रख्यातो धरणीतले ॥१३४॥
 पुरोधः परमस्तस्य श्रीभूतिस्तत्त्वदर्शनः । तस्य पत्नीगुणैर्युक्ता पत्नी नाशना सरस्वती ॥१३५॥
 भासीद्गुणवती याऽसौ तिर्यग्योनिषु सा चिरम् । आन्वा कर्मानुभावेन सम्यग्धर्मविवर्जिता ॥१३६॥

उनकी ओर देखते थे तब उन जैसा वैभव प्राप्त करनेके लिए उत्कण्ठित हो जाते थे ॥१२२॥ देवाङ्गनाओंके नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले वे ब्रह्मेन्द्र, मणि तथा सुवर्णसे निर्मित एवं मोतियोंकी जालीसे सुशोभित सुन्दर विमानमें रमण करते थे ॥१२३॥ श्रीसकलभूषण केवली कहते हैं कि हे विभीषण ! श्रीचन्द्रके जीव ब्रह्मेन्द्रकी जो विभूति थी उसे बृहस्पति भी सौ वर्षमें भी नहीं कह सकता ॥१२४॥ जिनशासन अमूल्य रत्न है, अनुपम रहस्य है तथा तीनों लोकोंमें प्रकट है परन्तु मोही जीव इसे नहीं जानते ॥१२५॥ मुनिधर्म तथा जिनेन्द्रदेवके उत्तम माहात्म्य को जानकर भी मिथ्या अभिमानमें चूर रहनेवाले मनुष्य धर्मसे विमुख रहते हैं ॥१२६॥ जो बालक अर्थात् अज्ञानी इस लोकसम्बन्धी सुखके लिए मिथ्यामतमें प्रीति करता है वह अपना ध्यान रखता हुआ भी उसका वह अहित करता है जिसे शत्रु भी नहीं करते ॥१२७॥ कर्मबन्धकी विचित्रता होनेसे सभी लोग रत्नत्रयके धारक नहीं हो जाते । कितने ही लोग उसे प्राप्त कर भी दूसरेके चक्रमें पड़कर पुनः छोड़ देते हैं ॥१२८॥ हे भव्यजनो ! अनेक खोटे मनुष्यों के द्वारा गृहीत एवं बहुत दोषोंसे सहित निन्दित धर्ममें रमण मत करो । अपने चित् स्वरूपके साथ बन्धुताका काम करो ॥१२९॥ जिनशासनको छोड़कर अन्यत्र दुःखसे मुक्ति नहीं है इसलिए हे भव्यजनो ! अनन्यचित्त हो निरन्तर जिनभगवान्की अर्चा करो ॥१३०॥ इस प्रकार देवसे उत्तम मनुष्य पर्याय और मनुष्यसे उत्तम देवपर्यायकी प्राप्त करनेवाले धनदत्ताका वर्णन किया ॥१३१॥ अब संक्षेपसे कर्मोंकी विचित्रताके कारण विविधरूपताको धारण करनेवाले, वसुदत्तादिके भ्रमणका वर्णन करता हूँ ॥१३२॥

अथानन्तर मृणालकुण्डनामक नगरमें प्रतापवान् तथा यशसे उञ्ज्वल विजयसेन नामका राजा रहता था । रत्नचूला उसकी स्त्री थी ॥१३३॥ उन दोनोंके वज्रकम्बु नामका पुत्र था और हेमवती उसकी स्त्री थी । उन दोनोंके पृथिवीतलपर प्रसिद्ध शम्भु नामका पुत्र था ॥१३४॥ उसके श्रीभूति नामका परमतत्त्वदर्शी पुरोहित था और उसकी स्त्रीके योग्य गुणोंसे सहित सरस्वती नामकी स्त्री थी ॥१३५॥ पहले जिस गुणवतीका उल्लेख कर आये हैं वह समीचीन धर्मसे रहित

१. श्रीचन्द्रचरस्यास्य म० । २. रागं मा कुरुत । मारंभ्वं म० । ३. चित्स्वबन्धुना म०, ख०, ज० । ४. मनोहरप्राप्तो म० । ५. मृणालकुण्डाख्यो म० ।

मोहेन निन्दनैः स्वैर्नैर्निन्दनैरभिगूहनैः । स्त्रीत्वमुत्तमदुःखात्कं भजमाना^१ पुनः पुनः ॥१३७॥
 साधुस्ववर्णवादेन दुरवस्थास्त्रीकृता । परिप्राप्ता करेणुवमासीन्मन्दाकिनीतटे ॥१३८॥
 सुमहापङ्कनिर्ममा परायत्तस्थिराङ्गिका । विमुक्तमन्दस्कारा सुकुलीकृतलोचना ॥१३९॥
 सुमूर्धन्ती समालोक्य खेचरेण कृपावता । तरङ्गवेगनाम्नासौ कर्णेजपसुराहता ॥१४०॥
 ततस्तनुकषायत्वात्तल्लेत्रगुणतोऽपि च । प्रत्याख्यानान्ध तद्दत्ताच्छ्रीभूतेः सा सुताऽभवत् ॥१४१॥
 भिक्षार्थिनं मुनिं रोहं प्रविष्टमवलोक्य सा । उपहासत्ततः पित्रा शामिता श्राविकाऽभवत् ॥१४२॥
 तस्याः परमरूपायाः सुकन्यायाः कृतेऽवनी । उत्कण्ठिता महीपालाः शम्भुस्तेषु विशेषतः ॥१४३॥
 मिथ्यादृष्टिः कुबेरेण समो भवति यद्यपि । तथाऽपि नास्मै देयेयं प्रतिज्ञेति पुरोधसः ॥१४४॥
 ततः प्रकुपितेनासौ शम्भुना शयितो निशि । द्विसितः सुरतां प्राप्सो जिनधर्मप्रसादतः ॥१४५॥
 ततो वेदवतीमेनां प्रत्यक्षां देवतामिव । अनिच्छन्तीं प्रभुत्वेन बलादुद्धोद्धुमुद्यतः ॥१४६॥
 मनसा कामतप्तेन तामालिङ्ग्योपचुम्ब्य च । विस्फुरन्तीं रतिं साक्षान्मैथुनेनोपचकमे ॥१४७॥
 ततः प्रकुपितात्यन्तं चण्डा वह्निशिखेव सा । विरक्तहृदया बाला वेपमानशरीरिका ॥१४८॥
 आत्मनः शीलनाशेन वधेन जनकस्य च । विभ्राणा परमं दुःखं प्राह लोहितलोचना ॥१४९॥
 व्यापाद्य पितरं पाप कामिताऽस्मि बलेन यत् । ^३भवद्द्वयार्थमुत्पत्स्ये ततोऽहं पुरुषधम ॥१५०॥

हो कर्मोंके प्रभावसे तिर्यञ्च योनिमें चिरकाल तक भ्रमण करती रही ॥१३६॥ वह मोह, निन्दा, स्त्री सम्बन्धी निदान तथा अपवाद आदिके कारण बार-बार तीव्र दुःखसे युक्त स्त्रीपर्यायको प्राप्त करती रही ॥१३७॥ तदनन्तर साधुओंका अवर्णवाद् करनेके कारण वह दुःखमयी अवस्थासे दुखी होती हुई गङ्गा नदीके तटपर हृदिनी हुई ॥१३८॥ वहाँ वह बहुत भारी कीचड़में फँस गई जिससे उसका शरीर एकदम पराधीन होकर अचल हो गया । वह धीरे-धीरे सू-सू शब्द छोड़ने लगी तथा नेत्र बन्दकर मरणसन्न अवस्थाको प्राप्त हुई ॥१३९॥ तदनन्तर उसे मरती देख करङ्गवेग नामक दयालु विद्याधरने उसे कानमें नमस्कार मन्त्रका जाप सुनाया ॥१४०॥ उस मन्त्र के प्रभावसे उसकी कषाय मन्द पड़ गई, उसने उसी स्थानका क्षेत्र संन्यास धारण किया तथा उक्त विद्याधरने उसे प्रत्याख्यान-संयम दिया । इन सब कारणोंके मिलनेसे वह श्रीभूतिनामक पुरोहितके वेदवती नामकी पुत्री हुई ॥१४१॥ एक बार भिक्षाके लिए घरमें प्रविष्ट मुनिको देखकर उसने उनकी हँसी की तब पिताने उसे समझाया जिससे वह श्राविका हो गई ॥१४२॥ वेदवती परम सुन्दरी कन्या थी अतः उसे प्राप्त करनेके लिए पृथिवीतलके राजा अत्यन्त उत्कण्ठित थे और उनमें शम्भु विशेष रूपसे उत्कण्ठित था ॥१४३॥ पुरोहितकी यह प्रतिज्ञा थी कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि पुरुष सम्पत्तिमें कुबेरके समान हो तथापि उसके लिए यह कन्या नहीं दूँगा ॥१४४॥ इस प्रतिज्ञासे शम्भु बहुत कुपित हुआ और उसने रात्रिमें सोते हुए पुरोहितको मार डाला । पुरोहित मरकर जिनधर्मके प्रसादसे देव हुआ ॥१४५॥

तदनन्तर जो साक्षात् देवताके समान जान पड़ती थी ऐसी इस वेदवतीको उसकी इच्छान रहनेपर भी शम्भु अपने अधिकारसे बलात् विवाहनेके लिए उद्यत हुआ ॥१४६॥ साक्षात् रतिके समान शोभायमान उस वेदवतीका शम्भुने कामके द्वारा संतप्त मनसे आलिङ्गन किया । चुम्बन किया और उसके साथ बलात् मैथुन किया ॥१४७॥ तदनन्तर जो अत्यन्त कुपित थी, अग्निशिखाके समान तीक्ष्ण थी, जिसका हृदय विरक्त था, शरीर कौंप रहा था, जो अपने शील के नाश और पिताके वधसे तीव्र दुःख धारण कर रही थी—तथा जिसके नेत्र लाल-लाल थे ऐसी उस वेदवतीने शम्भुसे कहा कि अरे पापी ! नीच पुरुष ! तूने पिताको मारकर बलात् मेरे

परलोकगतस्यापि पितुर्नाहं मनोरथम् । लुम्पामि तेन दुर्दृष्टिकामनान्मरणं वरम् ॥१५१॥
हरिकान्तार्थिकायाश्च पार्थं गत्वा ससम्भ्रमम् । प्रव्रज्य साऽकरोद्बाला तपः परमदुष्करम् ॥१५२॥
लुम्बनोत्थितसंरूपमूर्द्धजा मांसवर्जिता । प्रकटास्थिसिराजाला तपसा शुष्कदेहिका ॥१५३॥
कालधर्मं परिप्राप्य ब्रह्मलोकमुपागता । पुण्योदयसमानीतं सुरसौख्यमसेवत ॥१५४॥
तया विरहितः शम्भुर्लघुत्वं भुवने गतः । विबन्धुभृत्यलक्ष्मीको प्रापदुन्मत्तनां कुर्वाः ॥१५५॥
मिथ्याभिमानसम्भूदो जिनवाक्यात्पराङ्मुखः । हसति भ्रमणान् दृष्ट्वा दुरुक्ते च प्रवर्त्तते ॥१५६॥
मधुमांससुराहारः पापानुमननोद्यतः । तिर्यङ्नरकवासेषु सुदुःखेष्वभ्रमच्चिरम् ॥१५७॥
अथोपशमनात्किञ्चिक्र्मणः क्रुशकारिणः । कुशध्वजस्य विप्रस्य सावित्र्यां तनयोऽभवत् ॥१५८॥
प्रभासकुन्दनामासौ प्राप्य बोधिं सुदुर्लभाम् । पार्थे विचित्रसेनस्य मुनेर्दीक्षामसेवत ॥१५९॥
विमुक्तरेतिकन्दर्पगर्वसंरम्भमत्सरः । निर्विकारस्तपश्चक्रे दद्यावात्तिजितेन्द्रियः ॥१६०॥
षष्ठाष्टमाद्धर्मात्सादिनिराहारः स्पृहोऽज्झितः । यत्रास्तमितनिलयो वसन् शून्यवनादिषु ॥१६१॥
गुणशीलसुसम्पन्नः परीपहसहः परः । आतापनरतो ग्रीष्मे पिनद्धमलकञ्जुकः ॥१६२॥
वर्षासु मेघमुक्ताभिरद्भिः विलसस्तरोरवः । प्रालेयपटसंबोतो हेमन्ते पुलिनस्थितः ॥१६३॥
एवमादिक्रियायुक्तः सोऽन्यदा सिद्धमन्दिरम् । सम्मेदं वन्दितुं यातः स्मृतमप्यधनाशनम् ॥१६४॥

साथ काम सेवन किया है, इसलिए मैं तेरे बंधके लिए ही आगामी पर्यायमें उत्पन्न होऊँगी । यद्यपि मेरे पिता परलोक चले गये हैं तथापि मैं उनकी इच्छा नष्ट नहीं करूँगी । मिथ्यादृष्टि पुरुषको चाहनेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है ॥१४८-१५१॥

तदनन्तर उस बालाने शीघ्र ही हरिकान्ता नामक आर्थिकाके पास जाकर दीक्षा ले अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया ॥१५२॥ लोंच करनेके बाद उसके शिरपर रूखे बाल निकल आये थे, तपके कारण उसका शरीर ऐसा सूख गया था मानो मांस उसमें है ही नहीं और हड्डी तथा नसोंका समूह स्पष्ट दिखाई देने लगा था ॥१५३॥ आयुके अन्तमें मरण कर वह ब्रह्मस्वर्ग गई । वहाँ पुण्योदयसे प्राप्त हुए देवोंके सुखका उपभोग करने लगी ॥१५४॥ वेदवतीसे रहित शम्भु, संसारमें एकदम हीनताकी प्राप्त हो गया, उसके भाई-बन्धु, दासी-दास तथा लक्ष्मी आदि सब छूट गये और वह दुर्बुद्धि उन्मत्त अवस्थाको प्राप्त हो गया ॥१५५॥ वह मूठ-मूठके अभिमानमें चूर हो रहा था तथा जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंसे पराङ्मुख रहता था । वह मुनियोंको देख उनकी हँसी उड़ाता तथा उनके प्रति दुष्ट वचन कहता था ॥१५६॥ इस प्रकार मधु मांस और मदिरा ही जिसका आहार था तथा जो पापकी अनुमोदना करनेमें उद्यत रहता था ऐसा शम्भु तीव्र दुःख देनेवाले नरक और तिर्यञ्चगतिमें चिरकाल तक भ्रमण करता रहा ॥१५७॥

अथानन्तर दुःखदायी पाप कर्मका कुञ्ज उपशम होनेसे वह कुशध्वज ब्राह्मणकी सावित्री नामक स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१५८॥ प्रभासकुन्द उसका नाम था । फिर अत्यन्त दुर्लभ रत्नत्रयको पाकर उसने विचित्रसेन मुनिके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥१५९॥ जिसने रति काम, गर्व, क्रोध तथा मत्सरको छोड़ दिया था, जो दयालु था तथा इन्द्रियोंको जीतनेवाला था ऐसे उस प्रभासकुन्दने निर्विकार होकर तपश्चरण किया ॥१६०॥ वह दो दिन, तीन दिन तथा एक पक्ष आदिके उपवास करता था, उसकी सब प्रकारकी इच्छाएँ छूट गई थीं, जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह शून्य वन आदिमें ठहर जाता था ॥१६१॥ गुण और शीलसे सम्पन्न था, परीपहोंको सहन करनेवाला था, ग्रीष्मऋतुमें आतापनयोग धारण करनेमें तत्पर रहता था, मलरूपी कञ्चुक से सहित था, वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे मेघोंके द्वारा छोड़े हुए जलसे भीगीता रहता था और हेमन्तऋतुमें बर्फरूपी वस्त्रसे आवृत होकर नदियोंके तटपर स्थित रहता था, इत्यादि क्रियाओंसे युक्त हुआ वह प्रभासकुन्द किसी समय उस सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरको वन्दना करनेके लिए गया

कनकप्रभसंज्ञस्य तत्र विद्याभृतां विभोः । विभूतिं गगने वीक्ष्य प्रशान्तोऽपि न्यदानयत् ॥१६५॥
 अलं विभवमुक्तेन तावन्मुक्तिपदेन मे । ईदृगैश्वर्यमाप्नोमि तपोमाहात्म्यमस्ति चेत् ॥१६६॥
 अहो पश्यत मूढत्वं जनितं पापकर्मभिः । रत्नं त्रैलोक्यमूल्यं यद्विक्रीतं शाकमुष्टिना ॥१६७॥
 भवन्त्युद्भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये । धियः कर्माद्भुभावेन केन किं क्रियतामिह ॥१६८॥
 निदानदूषिताःमासी कृत्वातिविकटं तपः । सनत्कुमारमारुहत्तत्र भोगानसेवत ॥१६९॥
 च्युतः पुण्यावशेषेण भोगस्मरणमानसः । रत्नश्रवःसुतो जातो कैकस्यां रावणाभिधः ॥१७०॥
 लङ्कायां च महैश्वर्यं प्राप्नो दुर्लभितक्रियम् । कृतानेकमहाश्रयं प्रतापाक्रान्तविष्टपम् ॥१७१॥
 असौ तु ब्रह्मलोकेशो दशसागरसमिमतम् । स्थिरत्वा कालं च्युतो जातो रामो दशरथात्मजः ॥१७२॥
 तस्यापराजितासूनोः पूर्वपुण्यावशेषतः । भूत्या रूपेण वीर्येण समो जगति दुर्लभः ॥१७३॥
 धनदत्तोऽभवद्योऽसौ सोऽयं पद्मो मनोहरः । यशसा चन्द्रक्रान्तेन समाविष्टव्यविष्टपः ॥१७४॥
 वसुदत्तोऽभवद्यश्च श्रीभूतिश्च द्विजः क्रमात् । जातो नारायणः सोऽयं सौमित्रिः श्रीलतातरुः ॥१७५॥
 श्रीक्रान्तः क्रमयोगेन योऽसौ शम्भुत्वमागतः । अभूत्प्रभासकुन्दश्च सञ्जातः स दशाननः ॥१७६॥
 येनेह भरतक्षेत्रे खण्डत्रयमखण्डितम् । अङ्गुलान्तरविन्यस्तमिव वश्यत्वमाहृतम् ॥१७७॥
 आसीद् गुणवती या तु श्रीभूतेश्च सुता क्रमात् । सेयं जनकराजस्य सीतेति तनयाऽजनि ॥१७८॥

जो कि स्मृतिमें आते ही पापका नाश करनेवाला था ॥१६२-१६४॥ यद्यपि वह शान्त था तथापि उसने वहाँ आकाशमें कनकप्रभ नामक विद्याधरकी विभूति देख निदान किया कि मुझे वैभवसे रहित मुक्तिपदकी आवश्यकता नहीं है । यदि मेरे तपमें कुछ माहात्म्य है तो मैं ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करूँ ॥१६५-१६६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो पापकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मूर्खता तो देखो कि उसने त्रिलोकी मूल्य रत्नको शाककी एक मुट्टीमें बँच दिया ॥१६७॥ अथवा ठीक है क्योंकि कर्मोंके प्रभावसे अभ्युदयके समय मनुष्यके सद्बुद्धि उत्पन्न होती है और विपरीत समय में सद्बुद्धि नष्ट हो जाती है । इस संसारमें कौन क्या कर सकता है ? ॥१६८॥

तदनन्तर जिसकी आत्मा निदानसे दूषित हो चुकी थी ऐसा प्रभासकुन्द, अत्यन्त विकट तप कर सनत्कुमार स्वर्गमें आरूढ़ हुआ और वहाँ भोगोंका उपभोग करने लगा ॥१६९॥ तत्पश्चात् भोगोंके स्मरण करनेमें जिसका मन लग रहा था ऐसा वह देव अवशिष्ट पुण्यके प्रभाव वश वहाँसे च्युत हो लङ्का नगरीमें राजा रत्नश्रवा और उनकी रानी कैकसीके रावण नामका पुत्र हुआ । वहाँ वह निदानके अनुसार उस महान् ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ जिसकी क्रियाएँ अत्यन्त विलासपूर्ण थीं, जिसमें बड़े-बड़े आश्चर्यके काम किये गये थे तथा जिसने प्रतापसे समस्त लोकको व्याप्त कर रक्खा था ॥१७०-१७१॥

तदनन्तर श्रीचन्द्रका जीव, जो ब्रह्मलोकमें इन्द्र हुआ था वहाँ दश सागर प्रमाण काल तक रह कर च्युत हो दशरथका पुत्र राम हुआ । उसकी माताका नाम अपराजिता था । पूर्व पुण्यके अवशिष्ट रहनेसे इस संसारमें विभूति, रूप और पराक्रमसे रामकी तुलना करनेवाला पुरुष दुर्लभ था ॥१७२-१७३॥ पहले जो धनदत्त था वही चन्द्रमाके समान यशसे संसारको व्याप्त करने वाला मनोहर राम हुआ है ॥१७४॥ पहले जो वसुदत्त था फिर श्रीभूति ब्राह्मण हुआ वही क्रमसे लक्ष्मीरूपी लताके आधारके लिए वृक्षस्वरूप नारायण पदका धारी यह लक्ष्मण हुआ है ॥१७५॥ पहले जो श्रीक्रान्त था वही क्रम-क्रमसे शम्भु हुआ फिर प्रभासकुन्द हुआ और अब रावण हुआ था ॥१७६॥ वह रावण कि जिसने भरतक्षेत्रके सम्पूर्ण तीन खण्ड अंगुलियोंके बीचमें दबे हुएके समान अपने वश कर लिये थे ॥१७७॥ जो पहले गुणवती थी फिर क्रमसे श्रीभूति

जाता च बलदेवस्य पत्नी विनयशालिनी । शीलकोशी सुरेशस्य शचीव सुविचेष्टिता ॥१७६॥
 योऽसौ गुणवतीभ्राता गुणवानभवत्तदा । सोऽयं भामण्डलो जातः सुहृद्ब्रह्मललषमणः ॥१८०॥
 यत्रामृतवतीदेवी ब्रह्मलोकनिवासिनी । च्यवतेऽद्येति तत्रैव काले कुण्डलमण्डितः ॥१८१॥
 विदेहायास्तयोर्गर्भे समुत्पन्नः समागमः । तद्भ्रातृयुगलं जातमनघं सुमनोहरम् ॥१८२॥
 योऽसौ यज्ञवलिर्विप्रः स त्वं जातो विभीषणः । असौ वृषभकेतुस्तु सुग्रीवोऽयं कपिध्वजः ॥१८३॥
 स पते पूर्वया प्रीत्या तथा पुण्यानुभावतः । यूयं रक्तात्मका जाता रामस्याकिलष्टकर्मणः ॥१८४॥
 पूर्वमाजननं बालैर्यदपृच्छद् विभीषणः । केवली च समाचख्यौ शृणु ते श्रेणिकाधुना ॥१८५॥
 रत्नरत्यादिदुःखौघे संसारे चतुरन्तके । वृन्दारण्यस्थले जन्तुरेकः कृष्णमृगोऽभवत् ॥१८६॥
 साधुस्वाध्यायनिःस्वानं श्रुत्वायुर्विलये मृगः । ऐरावते दितिस्थाने प्राप नृत्वमनिन्दितम् ॥१८७॥
 सम्यग्दृष्टिः पिताऽस्व्यासीद् विहीताख्यः सुचेष्टितः । माता शिवमतिः पुत्रो मेघदत्तस्तयोरयम् ॥१८८॥
 अणुव्रतधरः सोऽयं जिनपूजासमुद्यतः । वन्दारुः कृतसत्कालः कल्पमैशानमाश्रयत् ॥१८९॥
 च्युत्वा जन्ममतिं द्वापे विदेहे पूर्वभूमिके । पुरोऽस्ति विजयावत्याः समीपे सततोत्सवः ॥१९०॥
 सुग्रामः पत्तनाकारो नामतो मत्तकोकिलः । कान्तशोकः प्रभुस्तत्र तस्य रत्नाकिनी प्रिया ॥१९१॥
 तयोः सुप्रभनामाऽभूत्तनयश्चारुदर्शनः । बहुबन्धुजनाकीर्णः शुभैकचरितप्रियः ॥१९२॥
 संसारे दुर्लभां प्राप्य बोधिं जिनमतानुगाम् । अग्रहीत् संयमं पार्श्वे संयतस्य महामुनेः ॥१९३॥

पुरोहितकी बेदवती पुत्री हुई थी वही अब क्रमसे राजा जनक की सीता नामकी पुत्री हुई है ॥१७८॥ यह सीता बलदेव—रामकी विनयवती पत्नी है, शीलका खजाना है तथा इन्द्रकी इन्द्राणीके समान सुन्दर चेष्टाओंको धारण करने वाली है ॥१७९॥ उस समय जो गुणवतीका भाई गुणवान था वही यह रामका परममित्र भामण्डल हुआ है ॥१८०॥ ब्रह्मलोकमें निवास करने वाली गुणवतीका जीव अमृतमती देवी जिस समय च्युत हुई थी उसी समय कुण्डलमण्डित भी च्युत हुआ था सो इन दोनोंका जनककी रानी विदेहाके गर्भमें समागम हुआ । यह बहिन-भाईका जोड़ा अत्यन्त मनोहर तथा निर्दोष था ॥१८१-१८२॥ जो पहले यज्ञवलि ब्राह्मण था वह तू विभीषण हुआ है और जो वृषभकेतु था वह यह वानरकी ध्वजासे युक्त सुग्रीव हुआ है ॥१८३॥ इस प्रकार तुम सभी पूर्व प्रीतिसे तथा पुण्यके प्रभावसे पुण्यकर्मा रामके साथ प्रीति रखने वाले हुए हो ॥१८४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद विभीषणने सकल-भूषण केवलीसे बालिके पूर्वभव पूछे सो केवलीने जो निरूपण किया उसे मैं कहता हूँ सो सुन ॥१८५॥

राग, द्वेष आदि दुःखोंके समूहसे भरे हुए इस चतुर्गति रूप संसारमें वृन्दावनके बीच एक कृष्णमृग रहता था ॥१८६॥ आयुके अन्तके समय वह मृग मुनियोंके स्वाध्याय का शब्द सुन ऐरावत क्षेत्रके दितिनामा नगरमें उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुआ ॥१८७॥ वहाँ सम्यग्दृष्टि तथा उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला विहीत नामका पुरुष इसका पिता था और शिवमति इसकी माता थी । उन दोनोंके यह मेघदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥१८८॥ मेघदत्त अणुव्रतका धारी था, जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेमें सदा उद्यत रहता था और जिन-चैत्यालयोंकी वन्दना करने वाला था । आयुके अन्तमें समाधिमरण कर वह ऐशान स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥१८९॥ जन्मूर्द्धापके पूर्व विदेह क्षेत्रमें विजयावती नगरीके समीप एक मत्तकोकिल नामका उत्तम ग्राम है जिसमें निरन्तर षत्सव होता रहता है तथा जो नगरके समान सुन्दर है । उस ग्रामका स्वामी कान्तशोक था तथा रत्नाकिनी उसकी स्त्री थी । मेघदत्तका जीव ऐशान स्वर्गसे च्युत होकर उन्हीं दोनोंके सुप्रभ नामका सुन्दर पुत्र हुआ । यह सुप्रभ अनेक बन्धुजनोंसे सहित था तथा शुभ आचार ही उसे प्रिय था ॥१९०-१९२॥ उसने संसारमें दुर्लभ जिनमतानुगामी रत्नत्रयको पाकर संयतनामा महामुनिके

अतपच्च तपस्तीव्रं यथाविधि महाशयः । संवत्सरसहस्राणि बहूनि सुमहामनाः ॥१६४॥
 नानालब्धिवसमेतोऽपि यो न गर्वमुपागतः । संयोगजेषु भावेषु तप्याज ममतां च यः ॥१६५॥
 विकपायसितध्यानसिद्धः स्यात्स महामुनिः । पर्याप्तं केवलं नायुरतः सर्वार्थसिद्धिमैत्र् ॥१६६॥
 त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुस्तत्र भुक्त्वा महासुखम् । वालिनाम्नाऽजनिष्टासौ प्रतापी खेत्राधिपः ॥१६७॥
 द्रव्यदर्शनराज्यं यः प्राप किष्किन्धभूवरे । आता यस्यैव सुग्रीवो महागुणसमन्वितः ॥१६८॥
 विरोधमतिरूढोऽपि लङ्काधिपतिना समम् । विन्यस्यात्र श्रियं जीवदयार्थं दासितोऽभवत् ॥१६९॥
 दशाननेन गर्वेण सामर्थ्येन समुद्धृतः । पादाङ्गुष्ठेन कैलासस्याजितो येन साधुना ॥२००॥
 निर्दह्य स भवारण्यं परमध्यानतेजसा । त्रिलोकाग्रं समारूढः प्राप्तो जीवनिजस्थितिम् ॥२०१॥
 परस्परसनेकत्र भवेऽन्योन्यवधः कृतः । श्रीकान्तवसुदत्ताभ्यां महावैरानुबन्धतः ॥२०२॥
 पूर्वं वेदवतीकाले सम्बन्धप्राप्तिना परम् । रावणेन हता सीता तथा कर्मानुभावतः ॥२०३॥
 श्रीभूतिर्वेदविद्विप्रः सम्यग्दृष्टिरनुत्तमः । हिंसितो वेदवत्यर्थे शम्भुना कामिना यतः ॥२०४॥
 श्रीभूतिः स्वर्गमारूढ्य प्रतिष्ठनगरे च्युतः । भूत्वा पुनर्वसुः शोकात्सनिदानतपोऽन्वितः ॥२०५॥
 सनत्कुमारमारूढ्य च्युत्वा दशरथात्मजः । भूत्वा रामानुजस्ताम्रस्नेहो लक्ष्मणचक्रधृत् ॥२०६॥
 शम्भुपूर्वं ततः शत्रुमवधीन्पूर्ववैरतः । दशाननमयं वीरः सुमित्राजो निकाचितात् ॥२०७॥
 आतुर्वियोगजं दुःखं यदाऽऽसीत्सह सीतया । निमित्तमात्रमासीत्सदृशवक्त्रस्य संक्षये ॥२०८॥

पास जिन-दीक्षा धारण कर ली ॥१६३॥ इस प्रकार उदार अभिप्राय और विशाल हृदयको धारण करनेवाले सुप्रभ मुनिने कई हजार वर्ष तक विधिपूर्वक कठिन तपश्चरण किया ॥१६४॥ वे सुप्रभ मुनि नाना ऋद्धियोंसे सहित होनेपर भी गर्वको प्राप्त नहीं हुए थे तथा संयोगजन्य भावोंमें उन्होंने सब ममता छोड़ दी थी ॥१६५॥ तदनन्तर जिन्हें कषायकी उपशम अवस्थामें होनेवाला शुक्ल-ध्यानका प्रथम भेद प्रकट हुआ था ऐसे वे महामुनि सिद्ध अवस्थाको अवश्य प्राप्त होते परन्तु आयु अधिक नहीं थी इसलिए उसी उपशान्त दशामें मरणकर सर्वार्थसिद्धि गये ॥१६६॥ वहाँ तैत्तिस सागर तक महासुख भोगकर वे वालिनामके प्रतापी विद्याधरोंके राजा हुए ॥१६७॥ जिन्होंने किष्किन्ध पर्यंत पर विविध सामग्रोंसे युक्त राज्य प्राप्त किया था, महागुणवान् सुग्रीव जिनका भाई है । लंकाधिपति रावणके साथ विरोध होने पर भी जो इस सुग्रीवके ऊपर राज्य-लक्ष्मी छोड़ जीवदयाके अर्थ दीक्षित हो गये थे, तथा गर्व वश रावणके द्वारा उठाये हुए कैलास को जिन्होंने साधु अवस्थामें अपनी सामर्थ्यसे केवल पैरका अंगूठा दबा कर छुड़वा दिया था । वही वालि मुनि उत्कृष्ट ध्यानके तेजसे संसार रूपी वनको भस्म कर तीन लोकके अग्रभाग पर आरूढ़ हो आत्माके निज स्वरूपमें स्थितिको प्राप्त हुए हैं ॥१६८-२०१॥

श्रीकान्त और वसुदत्तने महावैरके कारण अनेक भवोंमें परस्पर एक दूसरेका वध किया है ॥२०२॥ पहले वेदवतीकी पर्यायमें रावणका जीव सीताके साथ सम्बन्ध करना चाहता था उसी संस्कारसे उसने रावणकी पर्यायमें सीताका हरण किया ॥२०३॥ जब रावण शम्भु था तब उसने कामी होकर वेदवतीकी प्राप्तिके लिए वेदोंके जाननेवाले, उत्तम सम्यग्दृष्टि श्रीभूति ब्राह्मण की हत्या की थी ॥२०४॥ वह श्रीभूति स्वर्ग गया वहाँसे च्युत होकर प्रतिष्ठ नगरमें पुनर्वसु विद्याधर हुआ सो शोकवश निदान सहित तपकर सानत्कुमार स्वर्गमें उत्पन्न हुआ । तदनन्तर वहाँ से च्युत हो दशरथका पुत्र तथा रामका छोटा भाई परम स्नेही लक्ष्मण नामका चक्रधर हुआ ॥२०५-२०६॥ इस वीर लक्ष्मणने, नहीं छूटनेवाले पूर्व वैरके कारण ही शम्भुका जीव जो दशानन हुआ था उसे मारा है ॥२०७॥ यतश्च पूर्वभवमें सीताके जीवको रावणके जीवके द्वारा भाईके वियोगका दुःख उठाना पड़ा था इसलिए सीता रावणके क्षयमें निमित्त हुई है ॥२०८॥

१. विलोकाग्रं म० । २. दशाननमयं म० ।

अकूपारं समुत्तियं धरणीधारिणा सता । हिसितो हिंसकः पूर्वं लक्ष्मणेन दशाननः ॥२०६॥
 राजसीश्रीशपाचन्द्रं तं निहत्य दशाननम् । सौमित्रिणा समाक्रान्ता पृथिवीयं ससागरा ॥२१०॥
 क्वासौ तथाविधः शूरः क्व चेयं गतिरीदृशी । माहात्म्यं कर्मणामेतदसम्भाव्यमवाप्यते ॥२११॥
 वध्यघातकयोरेवं जायते व्यस्ययः पुनः । संसारभावसकानां जन्तूनां स्थितिरीदृशी ॥२१२॥
 क्व नाके परमा भोगाः क्व दुःखं नरके पुनः । विपरीतमहोऽन्यन्तं कर्मणां दुर्विचेष्टितम् ॥२१३॥
 परमात्ममहाकूटं धादृशं विषदूषितम् । तपस्तादृशमेवोपनिदानकृतनन्दनम् ॥२१४॥
 ह्यं शाकं द्रुमं क्षित्वा कोद्ववाणां वृत्तिः कृता । अमृतद्रवसेकेन पोषितो विषपादपः ॥२१५॥
 सूत्रार्थं चूर्णिता सेयं परमा रत्नसंहतिः । गोशीर्षं चन्दनं दध्यमङ्गारहितचेतसा ॥२१६॥
 जीवलोकेऽवला नाम सर्वदोषमहाखनिः । किं नाम न कृते तस्याः क्रियते कर्म कुत्सितम् ॥२१७॥
 प्रत्यावृत्त्य कृतं कर्म फलमर्पयति ध्रुवम् । तत्कसुं मन्यथा केन शक्यते भुवनत्रये ॥२१८॥
 कृत्वापि सङ्गतिं धर्मे यद्भजन्तीदृशीं गतिम् । उच्यतामितरेषां किं तत्र निर्धर्मचेतसाम् ॥२१९॥
 श्रामण्यसङ्गतस्यापि साध्यमत्सरसेविनः । कृत्वाऽभ्युपगतपो नास्ति शिवं संज्वलनस्पृशः ॥२२०॥
 न शमो न तपो यस्य मिथ्यादृष्टेर्न संयमः । संसारोत्तरणे तस्य क उपायो दुरात्मनः ॥२२१॥
 हियन्ते वायुना यत्र गजेन्द्रा मदशालिनः । पूर्वमेव हतास्तत्र शशकाः स्थलवर्तिनः ॥२२२॥
 एवं परमदुःखानां ज्ञात्वा कारणमीदृशम् । मा काष्टं वैरसम्बन्धं जनाः स्वहितकाङ्क्षिणः ॥२२३॥

लक्ष्मणने भूमिगोचरी होनेपर भी समुद्रको पारकर पूर्व पर्यायमें अपना घात करनेवाले रावणको मारा है ॥२०६॥ राक्षसोंकी लक्ष्मीरूपी रात्रिको सुशोभित करनेके लिए चन्द्रमा स्वरूप रावणको मारकर लक्ष्मणने इस सागर सहित समस्त पृथिवीपर अपना अधिकार किया है ॥२१०॥ सकल भूषण केवली कहते हैं कि कहीं तो वैसा शूर वीर और कहीं ऐसी गति ? यह कर्मोंका ही माहात्म्य है कि असम्भव वस्तु भी प्राप्त हो जाती है ॥२११॥ इस प्रकार वध्य और घातक जीवोंमें पुनः-पुनः बदली होती रहती है अर्थात् पहली पर्यायमें जो वध्य होता है वह आगामी पर्यायमें उसका घातक होता है और पहली पर्यायमें जो घातक होता है वह आगामी पर्यायमें वध्य होता है । संसारी जीवोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२१२॥ कहीं तो स्वर्गमें उत्तम भोग और कहीं नरकमें तीव्र दुःख ? अहो ! कर्मोंकी बड़ी विपरीत चेष्टा है ॥२१३॥ जिस प्रकार परम स्वादिष्ट अन्नकी महाराशि विषसे दूषित हो जाती है, उसी प्रकार परम उत्कृष्ट तप भी निदानसे दूषित हो जाता है ॥२१४॥ निदान अर्थात् भोगार्कात्ताके लिए तपको दूषित करना ऐसा है जैसा कि कल्पवृक्ष काटकर कोदोंके खेतकी बाड़ी लगाना अथवा अमृत सींचकर विषवृक्षको बढ़ाना अथवा सूतके लिए उत्तम मणियोंकी मालाका चूर्ण करना अथवा अंगारके लिए गोशीर्ष चन्दनका जलाना ॥२१५-२१६॥ संसारमें स्त्री समस्त दोषोंकी महाखान है । ऐसा कौन निन्दित कार्य है जो उसके लिए नहीं किया जाता हो ? ॥२१७॥ किया हुआ कर्म लौटकर अवश्य फल देता है उसे भुवनत्रयमें अन्यथा करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२१८॥ जब धर्म धारण करनेवाले मनुष्य भी इस गतिको प्राप्त होते हैं तब धर्महीन मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥२१९॥ जो मुनिपद धारण करके भी साध्यपदार्थोंके विषयमें मत्सर भाव रखते हैं ऐसे संज्वलन कषायके धारक मुनियोंकी उग्र तपश्चरण करने पर भी शिव अर्थात् मोक्ष अथवा वास्तविक कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती ॥२२०॥ जिस मिथ्यादृष्टिके न शम अर्थात् शान्ति है, न तप है और न संयम है उस दुरात्मा के पास संसार-सागरसे उतरनेका उपाय क्या है ? ॥२२१॥ जहाँ वायुके द्वारा मदनोन्मत् हाथी हरण किये जाते हैं वहाँ स्थलमें रहनेवाले खरगोश तो पहले ही हरे जाते हैं ॥२२२॥ इस प्रकार

भारत्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी । सीतायाः पर्यत 'प्राप्सो दुर्वादः शब्दमाश्रतः ॥२२७॥
 प्राप्सो मण्डलिको नाम तमायातः सुदर्शनः । मुनिमुद्यानमायातं वन्दित्वा तं गता जनाः ॥२२५॥
 सुदर्शनां स्थितां तत्र स्वसारं सद्ब्रह्मो ब्रुवन् । ईक्षितो वेदवत्याऽसौ सत्यां श्रमणया तथा ॥२२६॥
 ततो ब्रामीणलोकाय सम्यग्दर्शनसत्परा । जराद् पश्यतेदृशं^१ श्रमणं ब्रूथ सुन्दरम् ॥२२७॥
 मया सुबोधिता साकं स्थितो रहसि वीक्षितः । ततः कैश्चित् प्रतीतं तत्र तु कैश्चिच्चरणैः ॥२२८॥
 अनादरो मुनेर्लोकैः कृतश्रावग्रहोऽमुना । वेदवत्या मुखं 'शूनं देवताया नियोगतः ॥२२९॥
 'अपुण्यया मथाऽलीकं बोधितं भवतामिति^२ । तथा प्रत्यायितो लोक इत्याद्यत्र कथा स्मृता ॥२३०॥
 एवं सद्ब्रह्मानुद्युगलं निन्दितं यत्तदानया । अवर्णवादमीदृशं प्राप्तेयं वितथं ततः ॥२३१॥
 इष्टः सत्योऽपि दोषो न वाच्यो जिनमतश्रिता । उच्यमानोऽपि चान्येन वार्यः सर्वप्रयत्नतः ॥२३२॥
 ब्रुवाणो लोकविद्वेषकरणं शासनाश्रितम् । प्रतिपद्य चिरं दुःखं संसारमवगाहते ॥२३३॥
 सम्यग्दर्शनरक्षस्य गुणोऽन्यन्तमयं महान् । यदोषस्य कृतस्यापि प्रयत्नादुपगूहनम् ॥२३४॥
 अज्ञानान्मत्सररद्वापि दोषं वितथमेव तु । प्रकाशयन्नोऽन्यन्तं जिनमार्गाद्बहिः स्थितः ॥२३५॥
 इति श्रुत्वा मुनीन्द्रस्य भाषितं परमाद्भुतम् । सुरासुरमनुष्यास्ते विस्मयं परमं गताः ॥२३६॥

परम दुःखोंका ऐसा कारण जानकर हे आत्महितके इच्छुक भव्य जनो ! किसीके साथ बैरका सम्बन्ध मत रक्खो ॥२२३॥

जिससे पापबन्ध हो ऐसा एक शब्द भी नहीं बोलना चाहिए । देखो, शब्द मात्रसे सीता को कैसा अपवाद प्राप्त हुआ ? ॥२२४॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि जब सीता वेदवतीकी पर्यायमें थी तब एक मण्डलिक नामका भ्राम था । उस भ्राममें एक सुदर्शन नामक मुनि आये । मुनिको उद्यानमें आया देख लोग उनकी वन्दनाके लिए गये । वन्दना कर जब सब लोग चले गये तब उनके पास एक सुदर्शना नामकी आर्यिका जो कि मुनिकी बहिन थी बैठी रही और मुनि उसे सद्ब्रह्म कहते रहे । वेदवतीने उस उत्तम साध्वी—आर्यिकाके साथ मुनिको देखा । तदनन्तर अपने आपको सम्यग्दृष्टि बतानेमें तत्पर वेदवतीने गाँवके लोगोंसे कहा कि हाँ, आप लोग ऐसे साधुके अवश्य दर्शन करो और उन्हें अच्छा बतलाओ । मैंने उन साधुको एकान्तमें एक सुन्दर स्त्रीके साथ बैठा देखा है । वेदवतीकी यह बात किन्हींने मानी और जो चिचेकी थे ऐसे किन्हीं लोगोंने नहीं मानी ॥२२५-२२८॥ इस प्रकरणसे लोगोंने मुनिका अनादर किया । तथा मुनिने यह प्रतिज्ञा ली कि जब तक यह अपवाद दूर न होगा तबतक आहारके लिए नहीं निकलूँगा । इस अपवादसे वेदवतीका मुख फूल गया तब उसने नगरदेवताकी प्रेरणा पा मुनिसे कहा कि मुझ पापिनीने आपके विषयमें मूठ कहा है । इस तरह मुनिसे क्षमा कराकर उसने अन्य लोगोंको भी विश्वास दिलाया । इस प्रकार वेदवतीकी पर्यायमें सीताने उन बहिन-भाईके युगलकी मूठी निन्दा की थी इसलिए इस पर्यायमें यह इस प्रकारके मिथ्या अपवादको प्राप्त हुई है ॥२२६-२३१॥ यदि यथार्थ दोष भी देखा हो तो जिनमतके अवलम्बीको नहीं कहना चाहिए और कोई दूसरा कहता भी हो तो उसे सब प्रकारसे रोकना चाहिए ॥२३२॥ फिर लोकमें विद्वेष फैलानेवाले शासन सम्बन्धी दोषको जो कहता है वह दुःख पाकर चिरकाल तक संसारमें भटकता रहता है ॥२३३॥ किये हुए दोषको भी प्रयत्नपूर्वक छिपाना यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्नका बड़ा भारी गुण है ॥२३४॥ अज्ञान अथवा मत्सर भावसे भी जो किसीके मिथ्या दोष को प्रकाशित करता है वह मनुष्य जिनमार्गसे बिलकुल ही बाहर स्थित है ॥२३५॥ इस प्रकार सकलभूषण केवलीका अत्यधिक आश्चर्यसे भरा हुआ उपदेश सुनकर समस्त सुर असुर और

१. प्राप्ता म० । २. -मायान्तं म० । ३. श्रवणया म० । ४. -तेदृशं म० । ५. सूतं म० ।
 ६. अपुण्ययामा म० । ७. भगवानिति म० ।

शाखा सुदुर्जरं वैरं सौमित्रैः रावणस्य च । महादुःखभयोपेतं निर्मत्सरमभूत्सदः ॥२३७॥
 मुनयः शक्तिता जाता देवाश्चिन्तां परां गताः । राजानः प्रापुरद्वेगं प्रतिबुद्धाश्च केचन ॥२३८॥
 विमुक्तगर्वसम्भाराः परिशान्ताः प्रवादिनः । अपि सम्यक्त्वमायाता भासन्त्ये कर्मकर्मणाः ॥२३९॥
 कर्मद्वैरात्म्यैःसम्भारणमात्रकमूर्च्छिता । समारवसत्सभा हा ही धिक् चित्रमिति वादिनी ॥२४०॥
 कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । मनुष्यासुरगीर्वाणाः प्रशशंसुर्विभीषणम् ॥२४१॥
 भवत्समाश्रयाद्भद्रं श्रुतमस्माभिरुत्तमम् । चरितं बोधनं पुण्यं मुनिपादप्रसादतः ॥२४२॥
 ततो नरेन्द्रदेवेन्द्रमुनान्द्राः सम्मदोक्ताः । सर्वज्ञं तुष्टुवुः सर्वे परिवर्गोत्तमन्विताः ॥२४३॥
 त्रैलोक्यं भगवन्नेतरवया सकलभूषण । भूषितं तेन नामेदं तव युक्तं सहार्थकम् ॥२४४॥
 तिरस्कृत्य श्रियं सर्वां ज्ञानदर्शनवर्तिनी । केवलश्रीरियं भाति तव दूरीकृतोपमा ॥२४५॥
 अनाथमध्रुवं दीनं जन्ममृत्युवशीकृतम् । क्लिरयतेऽदो जगत्प्राप्तं स्वं पदं जैनसुत्तमम् ॥२४६॥

शार्दूलचिकीडितम्

नानाव्याधिरावियोगमरणप्रोज्ज्वलितदुःखं परं ।

प्राप्तानां मृगयुप्रवेजितमृगप्रातोपमावर्तिनाम् ।

कृच्छ्रोसर्जनदारुणाशुभमहाकर्मविरुद्धात्मना-

मस्माकं कृतकार्यं यच्छु निवटं कर्मक्षयं केवलम् ॥२४७॥

मनुष्य परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥२३६॥ लक्ष्मण और रावणके सुहृद् वैरको जानकर समस्त सभा महादुःख और भयसे सिहर उठी तथा निर्वैर हो गई । अर्थात् सभाके सब लोगोंने वैरभाव छोड़ दिया ॥२३७॥ मुनि संसारसे भयभीत हो गये, देवलोग परम चिन्ताको प्राप्त हुए, राजा उद्वेगको प्राप्त हुए और कितने ही लोग प्रतिबुद्ध हो गये ॥२३८॥ अपनी वक्तृत्व-शक्तिका अभिमान रखनेवाले कितने ही लोग अहंकारका भार छोड़ शान्त हो गये । जो कर्मोदयसे कठिन थे अर्थात् चारित्रमोहके तीव्रोदयसे जो चारित्र धारण करनेके लिए असमर्थ थे उन्होंने केवल सम्यग्दर्शन प्राप्त किया ॥२३९॥ कर्मोकी दुष्टताके भारसे जो क्षणभरके लिए मूर्च्छित हो गई थी ऐसी सभा 'हा हा, धिक् चित्रम्' आदि शब्द कहती हुई साँसें भरने लगी ॥२४०॥ मनुष्य, असुर और देव हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मुनिराजको प्रणामकर विभीषणकी प्रशंसा करने लगे कि हे भद्र ! आपके आश्रयसे ही मुनिराजके चरणोंका प्रसाद प्राप्त हुआ है और उससे हमलोग इस उत्तम ज्ञानवर्धक पुण्य चरितको सुन सके हैं ॥२४१-२४२॥

तदनन्तर हर्षसे भरे एवं अपने-अपने परिकरसे सहित समस्त नरेन्द्र सुरेन्द्र और मुनीन्द्र सर्वज्ञदेवकी स्तुति करने लगे ॥२४३॥ कि हे सकलभूषण ! भगवन् ! आपके द्वारा ये तीनों लोक भूषित हुए हैं इसलिए आपका यह 'सकलभूषण' नाम सार्थक है ॥२४४॥ ज्ञान और दर्शनमें वर्तमान तथा उपमासे रहित आपकी यह केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी संसारकी अन्य समस्त लक्ष्मियों का तिरस्कार कर अत्यधिक सुशोभित हो रही है ॥२४५॥ अनाथ, अध्रुव, दीन तथा जन्म जरा मृत्युके वशीभूत हुआ यह संसार अनादि कालसे क्लेश उठा रहा है पर आज आपके प्रसादसे जिनप्रदर्शित उत्तम आत्मपदको प्राप्त हुआ है ॥२४६॥ हे केवलम् ! हे कृतकृत्य ! जो नाना प्रकारके रोग, बुद्धापा; वियोग तथा मरणसे उत्पन्न होनेवाले परम दुःखको प्राप्त हैं, जो शिकारीके द्वारा डराये हुए मृगसमूहकी उपमाको प्राप्त हैं तथा कठिनाईसे छूटनेयोग्य दारुण एवं अशुभ महाकर्मोंसे जिनकी आत्मा अवरुद्ध है—घिरी हुई हैं ऐसे हम लोगोंके लिए शीघ्र ही कर्मोंका क्षय

१. चिन्तान्तरं ज० । २. दूरात्म म० । दूरात्म्य ज० । ३. मनुष्यसुस्वीर्वाणाः म० ।

नष्टानां विषयान्धकारगहने संसारवासे भव

त्वं दीपः शिवलब्धिकांशमहातृष्णेदितानां सरः ।

वह्निः कर्मसमूहकचदहने व्यग्रीभवक्षेतसां

नानादुःखमहातुषारपतनव्याकम्पितानां रविः ॥२४८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते श्रीपद्मचरिते सपरिवर्गरामदेवपूर्वभवाभिधानं

नाम षडुत्तरशतं पर्व ॥१०६॥



प्रदान कीजिए ॥२४७॥ हे नाथ ! विषयरूपी अन्धकारसे व्याप्त संसार-वासमें भूले हुए प्राणियोंके आप दीपक हो, मोक्षप्राप्तिकी इच्छारूप तीव्र प्याससे पीड़ित मनुष्योंके लिए सरोवर हो, कर्म-समूहरूपी वनको जलानेके लिए अग्नि हो, तथा व्याकुलचित्त एवं नाना दुःखरूपी महातुषारके पड़नेसे कम्पित पुरुषोंके लिए सूर्य हो ॥२४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें परिवर्ग सहित रामदेव के पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला एक सौ छठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०६॥



सप्तोत्तरशतं पर्व

ततः श्रुत्वा महादुःखं भवसंसृत्तिसम्भवम् । कृतान्तवदनोऽवोचत्पद्मं दीक्षाभिकारुचया ॥१॥
 मिथ्यापथपरिभ्रान्त्या संसारेऽस्मिन्ननादिके । खिन्नोऽहमधुनेच्छामि श्रामण्यं समुपासितुम् ॥२॥
 पद्मानाभस्ततोऽवोचदुःसूय ज्ञेहमुत्तमम् । अत्यन्तदुर्धरां चर्यां कथं धारयसीदशी ॥३॥
 कथं सहिष्यसे तीव्रान् शीतोष्णादीन् परीषहान् । महाकण्ठकतुल्यानि वाक्यानि च दुरात्मनाम् ॥४॥
 अज्ञातक्लेशसम्पर्कः कमलकोटकोमलः । कथं भूमितलेऽरण्ये निशां^३ व्यालिनि नेष्यसि ॥५॥
 प्रकटास्थिसिराजालः पद्ममासाद्युपोषितः । कथं परगृहे भिक्षां भोष्यसे पाणिभाजने ॥६॥
 नासहिष्ठं द्विषां सैन्यं यो मातङ्गवटाकुलम् । नीचात्परिभवं स ख्वं कथं वा विसहिष्यसे ॥७॥
 कृतान्तास्यस्ततोऽवोचद् यस्वस्नेहरसायनम् । परित्यक्तुमहं सोदुस्तस्यान्यत्किमसह्यकम् ॥८॥
 यावन्न मृत्युवज्रेण देहस्तम्भो निपात्यते । तावद्विच्छामि निर्गन्तुं दुःखान्धात्रवसङ्कटात् ॥९॥
 धारयन्ति न निर्यातं वद्विज्वालाकुलालयात् । दयावन्तो यथा तद्दुःखस्तसाद्भवादि ॥१०॥
 वियोगः सुचिरेणापि जायते यद्भवद्विधैः । ततो निन्दितसंसारः को न वेत्यात्मनो हितम् ॥११॥
 अवश्यं त्वद्वियोगेन दुःखं भावि सुदुःसहम् । मा भूयुनरपीदृशमिति मे मतिरुद्यता ॥१२॥

अथानन्तर भव-भ्रमणसे उत्पन्न महादुःखको सुनकर कृतान्तवक्त्र सेनापतिने दीक्षा लेने की इच्छासे रामसे कहा कि मिथ्यामार्गमें भटक जानेके कारण मैं इस अनादि संसारमें खेद-खिन्न हो रहा हूँ अतः अब मुनिपद धारण करनेकी इच्छा करता हूँ ॥१-२॥ तब रामने कहा कि उत्तम स्नेह छोड़कर इस अत्यन्त दुर्धरचर्याको किस प्रकार धारण करोगे ? ॥३॥ शीत उष्ण आदिके तीव्र परीषह तथा महाकण्ठकीके समान दुर्जन मनुष्योंके वचन किस प्रकार सहोगे ? ॥४॥ जिसने कभी क्लेशका सम्पर्क जाना नहीं तथा जो कमलके मध्यभागके समान कोमल है ऐसे तुम हिसक जन्तुओंसे भरे हुए वनमें पृथिवी तलपर रात्रि किस तरह बिताओगे ? ॥५॥ जिसकी हड्डियों तथा नसोंका जाल स्पष्ट दिख रहा है तथा जिसने एक पक्ष, एक मास आदिका उपवास किया है ऐसे तुम परगृहमें हस्तरूपी पात्रमें भिक्षा-भोजन कैसे ग्रहण करोगे ? ॥६॥ जिसने हाथियोंके समूहसे व्याप्त शत्रुओंकी सेना कभी सहन नहीं की है ऐसे तुम नीचजनोंसे प्राप्त पराभवको किस प्रकार सहन करोगे ? ॥७॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्रने कहा कि जो आपके स्नेहरूपी रसायनको छोड़नेके लिए समर्थ है उसके लिए अन्य क्या असह्य है ? ॥८॥ जब तक मृत्युरूपी वज्रके द्वारा शरीर रूपी स्तम्भ नहीं गिरा दिया जाता है तब तक मैं दुःखसे अन्धे इस संसाररूपी संकटसे बाहर निकल जाना चाहता हूँ ॥९॥ अग्निकी ज्वालाओंसे प्रवलित घरसे निकलते हुए मनुष्योंको जिस प्रकार दयालु मनुष्य रोककर उसी घरमें नहीं रखते हैं उसी प्रकार दुःखसे संतप्त संसारसे निकले हुए प्राणीको दयालु मनुष्य उसी संसारमें नहीं रखते हैं ॥१०॥ जब कि अभी नहीं तो बहुत समय बाद भी आप जैसे महान् पुरुषोंके साथ वियोग होगा ही तब संसारको बुरा समझनेवाला कौन पुरुष आत्माके हित को नहीं समझेगा ? ॥११॥ यह ठीक है कि आपके वियोगसे होनेवाला दुःख अवश्य ही अत्यन्त असह्य है फिर भी ऐसा दुःख पुनः प्राप्त न हो इसीलिए मेरी यह बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥१२॥

१. कृतान्तवक्त्रः सेनापतिः । २. सीदशम् म० । ३. दुष्टसत्त्वयुक्ते ।

नियम्याश्रुणि कृच्छ्रेण व्याकुलो राघवोऽवदत् । मत्सुह्यां श्रियमुजिभक्त्वा धन्यस्त्वं सद्मत्तोऽमृतः ॥१३॥
 एतेन जन्मना नो चेखं निर्वाणमपेष्यसि । ततो बोध्योऽस्मि देवेन स्वया सङ्कटमागतः ॥१४॥
 यद्येकमपि किञ्चिन्मे जानास्युपकृतं ततः । नेदं विस्मरणीयं ते भद्रैवं कुरु सङ्गरम् ॥१५॥
 यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य च यथाविधि । उपसृत्योरुसंवेगः सेनानीः सर्वभूषणम् ॥१६॥
 प्रणम्य सकलं स्थक्त्वा बाह्यान्तरपरिमृद्म् । सौम्यवक्त्रः सुविक्रान्तो निष्क्रान्तः कान्तचेष्टितः ॥१७॥
 एवमाद्या महाराजा वैराग्यं परमं गताः । महासंवेगसम्पन्ना नैर्ग्रन्थ्यं व्रतमाश्रिताः ॥१८॥
 केचिच्छ्रावकतां प्राप्ताः सम्यग्दर्शनतां परे । सुदिव्यैवं सभा साऽभाद्रकप्रयविभूषणा ॥१९॥
 प्रयाति नगतो नाथे ततः सकलभूषणे । प्रणम्य भक्तितो याता यथायातं सुरासुराः ॥२०॥
 पशोपमेक्षणः पशो नत्वा सकलभूषणम् । अनुक्रमेण साधुंश्च मुक्तिसाधनतरपरान् ॥२१॥
 उपागमद्विनीताऽस्मा सीतां विमलतेजसम्^२ । घृताहुत्या समुद्भूतां स्फीतां वद्विशिखामिव ॥२२॥
 चान्याऽऽर्यागणसम्यग्स्थां स्फुरत्स्वकिरणोत्कराम् । सुभ्रूयुगां ध्रुवामन्यामिव^३ तारां गणावृताम् ॥२३॥
 सद्बृत्तात्यन्तनिभृतां त्यक्तस्रग्गन्धभूषणाम् । घृत्तिकीर्त्तिरतिश्रीहीपरिवारां तथापि ताम् ॥२४॥
 मृदुचारसितश्लक्ष्णप्रलम्बाग्रधारिणीम् । मन्दानिलचल्लफेनपटां पुण्यनक्षीमिव ॥२५॥
^४विकासिकाशसङ्घातविशदां शरदं यथा । कौमुद्वतीमिव ज्योत्स्नां कुमुदाकरहासिनीम् ॥२६॥

तदनन्तर व्यग्र हुए रामने बड़ी कठिनाईसे आँसू रोककर कहा कि मेरे समान लक्ष्मीको छोड़कर जो तुम उत्तम व्रत धारण करनेके लिए उन्मुख हुए हो अतः तुम धन्य हो ॥१३॥ इस जन्मसे यदि तुम निर्वाणको प्राप्त न हो सको और देव होओ तो संकटमें पड़ा हुआ मैं तुम्हारे द्वारा सम्बोधने योग्य हूँ ॥१४॥ हे भद्र ! यदि मेरे द्वारा किया हुआ एक भी उपकार तुम मानवै हो तो यह बात भूलना नहीं । ऐसी प्रतिज्ञा करो ॥१५॥ 'जैसी आप आज्ञा कर रहे हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कहकर तथा विधिपूर्वक प्रणामकर उत्कट वैराग्यसे भरा सेनापति सर्वभूषण केवलीके पास गया और प्रणाम कर तथा बाह्याभ्यन्तर सर्व प्रकारका परिग्रह छोड़ सौम्यवक्त्र हो गया । अब वह आत्महितके विषयमें तीव्र पराक्रमी हो गया, गृह जंजालसे निकल चुका तथा सुन्दर चेष्टाका धारक हो गया ॥१६-१७॥ इस प्रकार परम वैराग्यको प्राप्त एवं महासंवेगसे सम्पन्न कितने ही महाराजाओंने निर्ग्रन्थ व्रत धारण किया—जिन-दीक्षा ली ॥१८॥ कितने ही लोग श्रावक हुए और कितने ही लोग सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुए । इस प्रकार हर्षित ही रत्नत्रयरूपी आभूषणोंसे विभूषित वह सभा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥१९॥

अथानन्तर जब सकलभूषण स्वामी उस पर्वतसे विहार कर गये तब भक्तिपूर्वक प्रणाम कर सुर और असुर यथास्थान चले गये ॥२०॥ कमललोचन राम सकलभूषण केवली तथा मुक्तिके सिद्ध करनेमें तत्पर साधुओंको यथाक्रमसे प्रणामकर विनीत भावसे उस सीताके पास गये जो कि निर्मल तेजको धारण कर रही थी तथा घीकी आहुतिसे उत्पन्न अग्निकी शिखाके समान देदीप्यमान थी ॥२१-२२॥ वह चान्तिपूर्वक आर्यिकाओंके समूहके मध्यमें स्थित थी, उसकी स्वयंकी किरणोंका समूह देदीप्यमान हो रहा था, वह उत्तम शान्त भौंहोंसे युक्त थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो समूहसे आवृत दूसरी ही ध्रुवतारा हो ॥२३॥ जो सम्यक्चारित्रिके धारण करनेमें अत्यन्त हृद थी, जिसने माला, गन्ध तथा आभूषण छोड़ दिये थे, फिर भी जो घृति, कीर्ति, रति, श्री और लज्जारूप परिवारसे युक्त थी । जो कोमल सफेद चिकने एवं लम्बे वस्त्रको धारण कर रही थी, अतएव मन्द-मन्द वायुसे जिसके फेनका समूह मिल रहा था ऐसी पुण्यकी नदीके समान जान पड़ती थी अथवा खिले हुए काशके फूलोंके समूहसे विशद शरद ऋतुके

१. नामतो म० । २. विमलतेजसाम् म० । ३. तारागणावृताम् म० । ४. विकासिकाशसंकाशां म० ।

महाविरागसः साक्षादिव प्रव्रजितां श्रियम् । वपुष्मतीमिव प्राप्तां जिनशासनदेवताम् ॥२७॥
 एवंविधां समालोक्य सम्भ्रमभ्रष्टमानसः । कल्पद्रुम इवाकम्पो बलदेवः क्षणं स्थितः ॥२८॥
 प्रकृतिस्थिरनेत्रप्रप्राप्तवेतां विचिन्तयन् । शरत्पयोदमालानां समीप इव पर्वतः ॥२९॥
 इयं सा मञ्जुआरन्धरतिप्रवरसारिका । विलोचनकुमुद्व्याश्रन्दलेखा स्वभावतः ॥३०॥
 मधुकाऽप्यगमन्प्राप्तं या पयोदरवादपि । अरण्ये सा कथं भीमे न भेष्यति तपस्विनी ॥३१॥
 नितम्बगुरुतायोगललितालसगामिनी । तपसा विलयं नूनं प्रयास्यति सुकोमला ॥३२॥
 क्रोदं वपुः क्व जैनेन्द्रं तपः परमदुष्करम् । पद्मिन्यां क इवाऽऽयासो हिमस्य तरुदाहिनः ॥३३॥
 अन्नं यथेप्सितं भुक्तं यथा परमनोहरम् । यथालाभं कथं भिक्षां सैषा समधियास्यति ॥३४॥
 वीणावेणुमृदङ्गैर्षां कृतमङ्गलनिःस्वनाम् । निद्राऽसेवत सत्तल्पे कल्पकल्पालयस्थिताम् ॥३५॥
 दर्शयत्यचित्ते सेव्यं वने मृगरवाकुले । कथं भयानकीं भीरुः प्रेरयिष्यति शर्वरीम् ॥३६॥
 किं मयोपचितं पश्य मोहसङ्गतचेतसा । पृथग्जनपरीवादाद्धारिता प्राणवल्लभा ॥३७॥
 अनुकूला प्रिया साध्वी सर्वविष्टपसुन्दरी । प्रियंवदा सुखक्षोणी कुतोऽन्या प्रमदेदृशा ॥३८॥
 एवं चिन्ताभराकान्तचित्तः परमदुःखितः । वेपिताः माऽभवत्पद्मश्रुत्पद्माकरोपमः ॥३९॥
 ततः केवलिनो वाक्यं संस्थस्य विष्टतामकः । कृच्छ्रसंस्तम्भितौस्तुक्यो बभूव विगतज्वरः ॥४०॥

समान मालूम होती थी अथवा कुमुदोंके समूहको विकसित करनेवाली कार्निकी पूर्णिमाकी चाँदनीके समान विदित होती थी, अथवा जो महाविरागसे ऐसी जान पड़ती थी मानो दीक्षाको प्राप्त हुई साक्षात् लक्ष्मी ही हो, अथवा शरीरको धारण करनेवाली साक्षात् जिनशासनकी देवी ही हो ॥२४-२७॥ ऐसी उस सीताको देखे संभ्रमसे जिनका हृदय टूट गया था ऐसे राम क्षण भर कल्पवृक्षके समान निश्चल खड़े रहे ॥२८॥ स्वभावसे निश्चल नेत्र और भृकुटियोंकी प्राप्ति होने पर इस साध्वी सीताका ध्यान करते हुए राम ऐसे जान पड़ते थे मानो शरद् ऋतुकी मेघमालाके समीप कोई पर्वत ही खड़ा हो ॥२९॥ सीताको देख-देखकर राम विचार कर रहे थे कि यह मेरी भुजाओं रूपी पिंजरेके भीतर विद्यमान उत्तम सेना है अथवा मेरे नेत्ररूपी कुमुदिनीके लिए स्वभावतः चन्द्रमाकी कला है ॥३०॥ जो मेरे साथ रहनेपर भी मेघके शब्दसे भी भयको प्राप्त हो जाती थी वह बेचारी तपस्विनी भयंकर वनमें किस प्रकार भयभीत नहीं होगी ? ॥३१॥ विलम्बकी गुरुताके कारण जो सुन्दर एवं अलसाई हुई चाल चलती थी वह सुकोमल सीता तप के द्वारा निश्चित ही नाशको प्राप्त हो जायगी ॥३२॥ कहीं यह शरीर और कहीं जैनेन्द्रका कठोर तप ? जो हिम वृक्षको जला देता है उसे कमलिनीके जलानेमें क्या परिश्रम है ? ॥३३॥ जिसने पहले इच्छानुसार परम मनोहर अन्न खाया है, वह अब जिस किसी तरह प्राप्त हुई भिक्षाको कैसे ग्रहण करेगा ? ॥३४॥ वीणा, बाँसुरी तथा मृदङ्गके माङ्गलिक शब्दोंसे युक्त तथा स्वर्गलोकके सदृश उत्तम भवनमें स्थित जिस सीताकी निद्रा, उत्तम शय्यापर सेवा करती थी वही कातर सीता अब ढाभकी अनियोंसे व्याप्त एवं मृगोंके शब्दसे व्याप्त वनमें भयानक रात्रिको किस तरह बितावेगी ? ॥३५-३६॥ देखो, चित्त मोहसे युक्त है ऐसे मैंने क्या किया ? न कुछ साधारण मनुष्योंकी निन्दा से प्रेरित हो प्राणवल्लभा छोड़ दी ॥३७॥ जो अनुकूल है, प्रिय है, पतिव्रता है, सर्व संसारकी अद्वितीय सुन्दरी है, प्रिय वचन बोलनेवाली है, और सुखकी भूमि है ऐसी दूसरी स्त्री कहीं है ? ॥३८॥ इस तरह चिन्ताके भारसे जिनका चित्त व्याप्त था, जो अत्यन्त दुखी थे, तथा जिनकी आत्मा काँप रही थी ऐसे राम चञ्चल कमलाकरके समान हो गये ॥३९॥ तदनन्तर केवलीके वचनोंका स्मरण कर जिन्होंने उमड़ते हुए आँसू रोके थे तथा जो बड़ी कठिनाईसे अपनी उत्सुकता

१. परं मनोहरं म० । २. स्वर्गतुल्यभवनस्थिताम् ।

अथ स्वाभाविकीं दृष्टिं विभ्राणः सहस्रभ्रमः । अधिगम्य सतीं सीतां भक्तिच्छेहान्वितोऽनमत् ॥४१॥
 नारायणोऽपि सौम्याः प्रणम्य रचिताञ्जलिः । अभ्यनन्दयदार्यां तां पद्मनाभमनुश्रुवन् ॥४२॥
 धन्या भगवति त्वं नो वन्द्या जाता सुचेष्टिता । शीलाचलेश्वरं या त्वं क्षितियद्गहसेऽधुना ॥४३॥
 जिनवागमृतं लब्धं परमं प्रथमं त्वया । निरुक्तं येन संसारसमुद्रं प्रतरिष्यसि ॥४४॥
 अपरासामपि स्त्रीणां सतीनां चारुचेतसाम् । इयमेव गतिर्भूयाहो क्वद्वितपशंसिता ॥४५॥
 आत्मा कुलद्वयं लोकस्वया सर्वं प्रसाधितम् । एवंविधं क्रियायोगं भजन्या साधुचित्तया ॥४६॥
 ह्यन्तव्यं यत्कृतं किञ्चित्सुनये साध्वसाधु वा । संसारभावसक्तानां स्वलितं च पदे पदे ॥४७॥
 त्वयैवविधया शान्ते जिनशासनसक्त्या । परमानन्दितं चित्तं विषाद्यपि मनस्विनि ॥४८॥
 अभिनन्द्येति वैदेहीं प्रहृष्टमनसाविध । प्रयातौ नगरीं कृत्वा पुरस्तात्त्रवणाङ्गुशौ ॥४९॥
 विद्याधरमहीपालाः प्रमोदं परमं गताः । विस्मयाकम्पिता भूत्या परया ययुरप्रतः ॥५०॥
 मध्ये राजसहस्राणां वर्तमानौ मनोहरौ । पुरं विविशतुर्वीराविन्द्राविव सुरादृतौ ॥५१॥
 देव्यस्तदप्रतो नानाधानारूढा विचेतसः । प्रययुः परिवारेण यथाविधि समाश्रिता ॥५२॥
 प्रविशन्तं बलं बोध्य नार्यः प्रासादमूर्द्धगाः । विचित्ररससम्पन्नमभाषन्त परस्परम् ॥५३॥
 अयं श्रीबलदेवोऽसौ मानौ शुद्धिपरायणः । अनुकूला प्रिया येन हारिता सुविपश्रिता ॥५४॥
 जगौ काञ्चिःप्रवीराणां विशुद्धकुलजन्मनाम् । नराणां स्थितिरेवैव कृतमेतेन सुन्दरम् ॥५५॥

को रोक सके थे ऐसे श्रीराम किसी तरह पीड़ा रहित हुए ॥४०॥ अथानन्तर स्वाभाविक दृष्टिको धारण करते हुए रामने सम्भ्रमके साथ सती सीताके पास जाकर भक्ति और स्नेहके साथ उसे नमस्कार किया ॥४१॥ रामके साथ ही साथ सौम्यहृदय लक्ष्मणने भी हाथ जोड़ प्रणामकर आर्या सीताका अभिनन्दन किया ॥४२॥ और कहा कि हे भगवति ! तुम धन्य हो, उत्तम चेष्टा की धारक हो और यतश्च इस समय पृथिवीके समान शीलरूपी सुमेरुको धारण कर रही हो अतः हम सबकी वन्दनीय हो ॥४३॥ जिसके द्वारा तुम संसार-समुद्रको चुपचाप पार करोगी वह श्रेष्ठ जिनवचन रूपी अमृत सर्व प्रथम तुमने ही प्राप्त किया है ॥४४॥ हम चाहते हैं कि सुन्दर चित्तकी धारक अन्य पतिव्रता स्त्रियोंकी भी दोनों लोकोंमें प्रशंसनीय यही गति हो ॥४५॥ इस प्रकारके क्रियायोगको प्राप्त करनेवाली एवं उत्तम चित्तकी धारक तुमने अपनी आत्मा दोनों कुल तथा लोक सब कुल वशमें किया है ॥४६॥ हे सुनये ! हमने जो कुल साधु अथवा असाधु-अच्छा या बुरा कर्म किया है वह क्षमा करने योग्य है क्योंकि संसार दशामें आसक्त मनुष्योंसे भूळ पद-पदपर होती है ॥४७॥ हे शान्ते ! हे मनस्विनि ! इस तरह जिन-शासनमें आसक्त रहनेवाली तुमने मेरे विषाद युक्त चित्तको भी अत्यन्त आनन्दित कर दिया है ॥४८॥ इस प्रकार सीताकी प्रशंसा कर प्रसन्न चित्तकी तरह राम तथा लक्ष्मण, लवण और अंकुशको आगे कर नगरीकी ओर चले ॥४९॥ परम हर्षको प्राप्त हुए विद्याधर राजा विस्मयाकम्पित होते हुए बड़े वैभवसे आगे-आगे जा रहे थे ॥५०॥ हजारों राजाओंके मध्यमें वर्तमान दोनों मनोहर वीरोंने, देवोंसे घिरे हुए इन्द्रोंके समान नगरमें प्रवेश किया ॥५१॥ उनके आगे नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़, बैचैन एवं अपने-अपने परिकरसे विधिपूर्वक सेवित रानियाँ जा रही थीं ॥५२॥ रामको प्रवेश करते देख महलके शिखरों पर आरूढ़ स्त्रियाँ, विचित्र रससे युक्त परस्पर वार्तालाप कर रही थीं ॥५३॥ कोई कह रही थी कि ये राम बड़े मानी तथा शुद्धिमें तत्पर हैं कि जिन्होंने विद्वान् होकर भी अपनी अनुकूल प्रिया हरा दी है—झोड़ दी है ॥५४॥ कोई कह रही थी कि विशुद्ध कुलमें जन्म लेनेवाले वीर मनुष्यों

एवं सति विशुद्धात्मा प्रव्रज्यां समुपागता । कस्य नो जानकी जाता मनसः सौख्यकारिणी ॥५६॥
 अन्योचे सखि परयेमं वैदेह्या पद्ममुज्जितम् । उयोःस्नया शशिनं मुक्तं दीप्या विरहितं रविम् ॥५७॥
 अन्योचे किं पराशक्तकान्तिरस्य करिष्यति । स्वयमेवातिकान्तस्य बलदेवस्य धीमतः ॥५८॥
 काचिदूचे त्वया सीते किं कृतं पुरुषोत्तमम् । ईदृशं नाथमुज्जिक्त्वा वज्रदारुणचित्तया ॥५९॥
 जगावन्त्या परं सीता धन्या चित्तवती सती । यथार्था या गृहानर्थाभिः सृता स्वहितोद्यता ॥६०॥
 काचिदूचे कथं धीरौ स्वयमी सुकुमारकौ । रहितौ मानसानन्दौ सुभक्तौ सुकुमारकौ ॥६१॥
 कदाचिच्चलति प्रेम न्यस्तं भर्त्सरि योषिताम् । स्वस्तन्यकृतपोषेषु जातेषु न तु जातुचित् ॥६२॥
 अन्योचे परमावेर्ता पुरुषौ पुण्यपोषणौ । किमत्र कुरुते माता स्वकर्मनिरते जने ॥६३॥
 एवमादिकृतालापाः पद्मवीक्षणतत्पराः । न तृप्तियोगमासेदुर्मधुकर्म इव खिपः ॥६४॥
 केचिच्छ्रमणमैश्वर्यं जगदुश्च नरोत्तमाः । सोऽयं नारायणः श्रीमान्प्रभावाक्रान्तविष्टपः ॥६५॥
 चक्रपाणिरथं राजा लक्ष्मीपतिरनुत्तमः । साक्षादरातिदाराणां वैश्वव्यव्रतविग्रहः ॥६६॥

आर्याजातिः

एवं प्रशस्यमानौ नमस्वमानौ च पौरलोकसमूहैः ।

स्वभवनमनुप्रविष्टौ स्वयंप्रभं वरविमानमिव देवेन्द्रौ ॥६७॥

की यही रीति है । इन्होंने जो किया है वह ठीक किया है ॥५५॥ इस प्रकारकी घटनासे निष्कलङ्क हो दीक्षा धारण करनेवाली जानकी किसके मनके लिए सुख उत्पन्न करनेवाली नहीं है ? ॥५६॥ कोई कह रही थी कि हे सखि ! सीतासे रहित इन रामको देखो । ये चाँदनीसे रहित चन्द्रमा और दीप्तिसे रहित सूर्यके समान जान पड़ते हैं ॥५७॥ कोई कह रही थी कि बुद्धिमान् राम स्वयं ही अत्यन्त सुन्दर हैं, दूसरेके आधीन होनेवाली कान्ति इनका क्या करेगी ? ॥५८॥ कोई कह रही थी कि हे सीते ! ऐसे पुरुषोत्तम पतिको छोड़कर तूने क्या किया ? यथार्थमें तू वज्रके समान कठोर चित्तवाली है ॥५९॥ कोई कह रही थी कि सीता परमधन्य, विवेकवती, पतिव्रता एवं यथार्थ स्त्री है जो कि आत्महितमें तत्पर हो घरके अनर्थसे निकल गई—दूर हो गई ॥६०॥ कोई कह रही थी कि हे सीते ! तेरे द्वारा ये दोनों सुकुमार, मनको आनन्द देनेवाले तथा अत्यन्त भक्त पुत्र कैसे छोड़े गये ? ॥६१॥ कदाचित् भर्तापर स्थित स्त्रियोंका प्रेम विचलित हो जाता है परन्तु अपने दूधसे पुष्ट किये हुए पुत्रोंपर कभी विचलित नहीं होता ॥६२॥ कोई कह रही थी कि दोनों कुमार पुण्यसे पोषण प्राप्त करनेवाले परमोत्तम पुरुष हैं । यहाँ माता क्या करती है ? जब कि सब लोग अपने-अपने कर्ममें निरत हैं अर्थात् कर्मानुसार फल प्राप्त करते हैं ॥६३॥ इस प्रकार वार्तालाप करनेवाली तथा पद्म अर्थात् राम (पद्ममें कमल) के देखनेमें तत्पर स्त्रियाँ भ्रमरियोंके समान तृप्तिको प्राप्त नहीं हुई ॥६४॥ कितने ही उत्तम मनुष्य लक्ष्मणको देखकर कह रहे थे कि यह वह नारायण है कि जो अद्भुत लक्ष्मीसे सहित है, अपने प्रभावसे जिसने संसारको आक्रान्त कर रक्खा है, जो हाथमें चक्ररत्नको धारण करनेवाला है, देदीप्यमान है, लक्ष्मीपति है, सर्वोत्तम है और शत्रु स्त्रियोंका मानो साक्षात् शरीरधारी वैधव्य व्रत ही है ॥६५-६६॥ इस प्रकार नगरवासी लोगोंके समूह प्रशंसा कर जिन्हें नमस्कार कर रहे थे ऐसे राम और लक्ष्मण अपने भवनमें उस तरह प्रविष्ट हुए जिस तरह कि दो इन्द्र स्वयं विमानमें प्रविष्ट होते हैं ॥६७॥

अनुष्टुप्

एतत् पद्मस्य चरितं यो निबोधति संततम् ।
अपापो लभते लक्ष्मीं स भाति च परं रवेः ॥६८॥

इत्यार्षे श्रीपद्मचरिते श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते प्रव्रजितसीताभिधानं नाम सप्तोत्तरशतं पर्व ॥१०७॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य रामके इस चरितको निरन्तर जानता है—अच्छी तरह इसका अध्ययन करता है वह निष्पाप हो लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा सूर्यसे भी अधिक शोभायमान होता है ॥६८॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित श्री पद्मपुराणमें सीताकी दीक्षा का वर्णन करनेवाला एक सौ सातवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०७॥

अष्टोत्तरशतं पर्व

पद्मस्य चरितं राजा श्रुत्वा दुरितदारणम् । निर्मुक्तसंशयात्मानं व्यशोचदिति चेतसा ॥१॥
 निरस्तः सीतया दूरं स्नेहबन्धः स तादृशः । सहिष्यते महाचर्या सुकुमारा कथं नु सा ॥२॥
 परम धाम्ना मृगाद्यौ तौ मात्रा विरहमाहृतौ । सर्वद्विद्युतिसम्पन्नौ कुमारौ लवणाङ्कुशौ ॥३॥
 तातावशेषतां प्राप्नुौ कथं मानुवियोगजम् । दुःखं तौ विसहिष्येते निरन्तरसुखैधितौ ॥४॥
 महीजसामुदारार्णां विषमं जायते तदा । तत्र शेषेषु काऽवस्था ध्यात्वेत्यूचे गणाधिपम् ॥५॥
 सर्वज्ञेन ततो वृष्टं जगत्प्रत्ययमागतम् । इन्द्रभूतिर्जगौ तस्मै चरितं लवणाङ्कुशम् ॥६॥
 अभूच्च पुरि काकन्ध्यामधिपो रतिवर्द्धनः । पत्नी सुदर्शना तस्य पुत्रौ प्रियहितङ्करौ ॥७॥
 अमात्यः सर्वगुणाल्यो राज्यलक्ष्मीधुरन्धरः । ज्ञेयः प्रभोः प्रतिस्पर्द्धी वधोपायपरायणः ॥८॥
 अमात्यवनिता रक्ता राजानं विजयावली । शनैरबोधयद्गत्वा परया कार्यं समीहितम् ॥९॥
 बहिरप्रत्ययं राजा श्रितः प्रत्ययमान्तरम् । अभिज्ञानं ततोऽनोचदेतस्मै विजयावली ॥१०॥
 कलहं सदसि श्रोऽसौ समुत्कोपयिता तव । परस्त्रीविरतो राजा बुद्धयैव पुनरग्रहात् ॥११॥
 अग्रवीच कथं मेऽसौ परं भक्तोऽपभाषते । विजयावलि सम्भाव्यं कदाचिदपि नेदशम् ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिक रामका पापापहारी चरित सुनकर अपने आपको संशययुक्त मानता हुआ मनमें इस प्रकार विचार करने लगा कि यद्यपि सीताने दूरतक बढ़ा हुआ उस प्रकारका स्नेहबन्धन तोड़ दिया है फिर भी सुकुमार शरीरकी धारक सीता महाचर्याकी किस प्रकार कर सकेगी ? ॥१-२॥ देखो, विधाताने मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले, सर्व-श्रद्धि और कान्तिसे सम्पन्न दोनों लवणाङ्कुश कुमारोंको माताका विरह प्राप्त करा दिया । अब पिता ही उनके शेष रह गये सो निरन्तर सुखसे वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों कुमार माताके वियोग-जन्य-दुखको किस प्रकार सहन करेंगे ? ॥३-४॥ जब महाप्रतापी बड़े-बड़े पुरुषोंकी भी ऐसी विषम दशा होती है तब अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या है ? ऐसा विचार कर श्रेणिक राजाने गौतम गणधरसे कहा कि सर्वज्ञदेवने जगत्का जो स्वरूप देखा है उसका मुझे प्रत्यय है— श्रद्धान है । तदनन्तर इन्द्रभूति गणधर, श्रेणिकके लिए लवणाङ्कुशका चरित कहने लगे ॥५-६॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! काकन्दी नगरीमें राजा रतिवर्द्धन रहता था । उसकी स्त्रीका नाम सुदर्शन था और उन दोनोंके प्रियङ्कर नामक दो पुत्र थे ॥७॥ राजाका एक सर्वगुण नामका मन्त्री था जो यद्यपि राज्यलक्ष्मीका भार धारण करनेवाला था तथापि वह राजाके साथ भीतर ही भीतर स्पर्धा रखता था और उसके मारनेके उपाय जुटानेमें तत्पर रहता था ॥८॥ मन्त्रीकी स्त्री विजयावली राजामें अनुरक्त थी इसलिए उसने धीरेसे जाकर राजाको मन्त्रीकी सब चेष्टा बतला दी ॥९॥ राजाने बाह्यमें तो विजयावलीकी बातका विश्वास नहीं किया किन्तु अन्तरङ्गमें उसका विश्वास कर लिया । तदनन्तर विजयावलीने राजाके लिए उसका चिह्न भी बतलाया ॥१०॥ उसने कहा कि मन्त्री कल सभामें आपकी कलहको बढ़ावेगा अर्थात् आपके प्रति बक-भक्त करेगा । परस्त्री विरत राजाने इस बातको बुद्धिसे ही पुनः ग्रहण किया अर्थात् अन्तरङ्गमें तो इसका विश्वास किया बाह्यमें नहीं ॥११॥ बाह्यमें राजाने कहा कि हे विजयावलि ! वह तो मेरा

ततोऽन्यत्र दिने चिह्नं भावं ज्ञात्वा महीपतिः । चमानिवारणेनैव प्रैरयद्दुरितागमम् ॥१३॥
 राजा कोशति मामेष इत्युक्त्वा प्रतिपत्तितः । सामन्तानभिनत्सर्वानमात्यः पापमानसः ॥१४॥
 राजवासगृहं रात्रौ ततोऽमात्यो महेन्धनैः । अर्थापयन्महोशस्तु प्रमादरहितः सदा ॥१५॥
 प्राकारपुटगुह्येन प्रदेशेन सुरङ्गया । भार्या पुत्रौ पुरस्कृत्य निःससार शनैः सुधीः ॥१६॥
 यातश्च कशिपुं तेन काशीपुर्यां महीपतिम् । न्यायशीलं स्वसामन्तमुग्रवंशधुरन्धरम् ॥१७॥
 राज्यस्थः सर्वगुप्तोऽथ दूतं सम्प्राहिणोदयथा । कशिपो मां नमस्येति ततोऽस्त्री प्रत्यभाषत ॥१८॥
 स्वामिघातकृतो हन्ता दुःखदुर्गतिभाक् खलः । एवंविधो न नाम्नाऽपि कीर्त्यते सेव्यते कथम् ॥१९॥
 सद्योपित्तनयो दग्धो येनेशो रतिवर्द्धनः । स्वामिस्त्रीबालघातं तं न स्मर्तुं मयि वर्त्तते ॥२०॥
 पापस्यास्य शिरश्छिन्त्वा सर्वलोकस्य पश्यतः । नन्वद्यैव करिष्यामि रतिवर्द्धननिष्कयम् ॥२१॥
 एवं तं दूतमत्यस्य दूरं वाक्यमपास्य सः । अभूद्वो दुर्मतं यद्व्यस्थितः कर्त्तव्यवस्तुनि ॥२२॥
 स्वामिभक्तिपरस्यास्य कशिपोर्बलशालिनः । अभूदक्षिं प्रगन्तव्यममात्थं प्रति सर्वदा ॥२३॥
 सर्वगुप्तो महासैन्यसमेतः सह पार्थिवैः । दूतप्रचोदितः प्राप चक्रवर्तीव मानवान् ॥२४॥
 काशिदेशं तु विस्तीर्णं प्रविष्टः सागरोपमः । सन्धानं कशिपुर्नैच्छद्योद्ध्वयमिति निश्चितः ॥२५॥
 रतिवर्द्धनराजेन प्रेषितः कशिपुं प्रति । दण्डपाणिर्युवा प्राप्तः प्रविष्टश्च निशागमे ॥२६॥

परम भक्त है वह ऐसा विरुद्ध भाषण कैसे कर सकता है ? तुमने जो कहा है वह तो किसी तरह सम्भव नहीं है ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन राजाने उक्त चिह्न जानकर अर्थात् कलहका अवसर जान चमारूप शस्त्रके द्वारा उस अनिष्टको टाल दिया ॥१३॥ 'यह राजा मेरे प्रति क्रोध रखता है—अपशब्द कहता है' ऐसा कहकर पापी मन्त्रीने सब सामन्तोंको भीतर ही भीतर फोड़ लिया ॥१४॥ तदनन्तर किसी दिन उसने रात्रिके समय राजाके निवासगृहको बहुत भारी ईधनसे प्रज्वलित कर दिया परन्तु राजा सदा सावधान रहता था ॥१५॥ इसलिए वह बुद्धिमान्, स्त्री और दोनों पुत्रोंको लेकर प्राकार-पुटसे सुगुप्त प्रदेशमें होता हुआ सुरङ्गसे धीरे-धीरेसे बाहर निकल गया ॥१६॥ उस मार्गसे निकलकर वह काशीपुरीके राजा कशिपुके पास गया । राजा कशिपु न्याय-शील, उग्रवंशका प्रधान एवं उसका सामन्त था ॥१७॥ तदनन्तर जब सर्वगुप्त मन्त्री राज्यगद्दी पर बैठा तब उसने दूत द्वारा सन्देश भेजा कि हे कशिपो ! मुझे नमस्कार करो । इसके उत्तरमें कशिपुने कहा ॥१८॥ वह स्वामीका घात करनेवाला दुष्ट दुःखपूर्ण दुर्गतिको प्राप्त होगा । ऐसे दुष्टका तो नाम भी नहीं लिया जाता फिर सेवा कैसे की जावे ॥१९॥ जिसने स्त्री और पुत्रों सहित अपने स्वामी रतिवर्द्धनको जला दिया उस स्वामी, स्त्री और बालघातीका तो स्मरण करना भी योग्य नहीं है ॥२०॥ इस पापीका सब लोगोंके देखते-देखते शिर काटकर आज ही रतिवर्द्धनका बदला चुकाऊंगा, यह निश्चय समझो ॥२१॥ इस तरह, जिस प्रकार विवेकी मनुष्य मिथ्यामतको दूर हटा देता है उसी प्रकार उस दूतको दूर हटाकर तथा उसकी बात काटकर वह करने योग्य कार्यमें तत्पर हो गया ॥२२॥ तदनन्तर स्वामि-भक्तिमें तत्पर इस बलशाली कशिपु की दृष्टि, सदा चढ़ाई करनेके योग्य मन्त्रीके प्रति लगी रहती थी ॥२३॥

तदनन्तर दूतसे प्रेरित, चक्रवर्तीके समान मानी, सर्वगुप्त मन्त्री बड़ी भारी सेना लेकर अनेक राजाओंके साथ आ पहुँचा ॥२४॥ यद्यपि समुद्रके समान विशाल सर्वगुप्त, लम्बे चौड़े काशी देशमें प्रविष्ट हो चुका था तथापि कशिपुने सन्धि करनेकी इच्छा नहीं की किन्तु युद्ध करना चाहिए इसी निश्चयपर वह दृढ़ रहा आया ॥२५॥ उसी दिन रात्रिका प्रारम्भ होते ही

१. कृत स्वामिघातो येन सः स्वामिघातकृतः 'वाहिताम्बादिषु' इति कान्तस्य परनिपातः । स्वामिघात-कृतं हन्ता म०, च०, ज० ।

जगौ च वर्द्धसे दिष्टया देवेनो रतिवर्द्धनः । कासौ कासाविति स्फूर्तः तुष्टः कशिपुरभ्यधात् ॥२७॥
 उद्याने स्थित इत्युक्ते सुतरां प्रमदान्वितः । निर्ययावर्षपाद्येन सोऽन्तःपुरपुरःसरः ॥२८॥
 जयरथजेराजेन्द्रो रतिवर्द्धन इत्यभूत् । उत्सवो दर्शने तस्य कशिपोर्दानमानतः ॥२९॥
 संयुगे सर्वगुप्तस्य जीवतो ग्रहणं ततः । रतिवर्द्धनराजस्य काकन्धां राज्यसङ्गमः ॥३०॥
 विज्ञाय ते हि जीवन्तं स्वामिनं रतिवर्द्धनम् । सामन्ताः सङ्गता मुक्त्वा सर्वगुप्तं रणान्तरे ॥३१॥
 पुनर्जन्मोत्सवश्चक्रे रतिवर्द्धनभृश्रुतः । महद्भिर्दानसन्मानैर्देवतानां च पूजनैः ॥३२॥
 नीतः प्रत्यन्तवासिखं मृततुल्यममात्यकः । दर्शनेनोज्झितः पापः सर्वलोकविगर्हितः ॥३३॥
 कशिपुः काशिराजोऽस्ती वाराणस्यां महाद्युतिः । रेमे परमया लक्ष्या लोकपाल इवापरः ॥३४॥
 अथ भोगविनिविण्णः कदाचिद्रतिवर्द्धनः । श्रमणखं भदन्तस्य सुभानोरन्तिकेऽप्रहीत् ॥३५॥
 आसीत्तथा क्रुतो भेदः सर्वगुप्तेन निश्चितः । ततो विद्वेष्यतां प्राप्ता परमं तस्य भामिनी ॥३६॥
 नाहं जाता नरेन्द्रस्य न पत्युरिति शोकिनी । अकामतपसा जाता राक्षसी विजयावली ॥३७॥
 उपसर्गं तयोदारे क्रियमाणेतिवैरतः । सुध्याने कैवलं राज्यं सम्प्राप्तो रतिवर्द्धनः ॥३८॥
 भ्रामण्यं विमलं कृत्वा प्रियङ्करहितङ्करौ । प्रैवेयकस्थितिं प्राप्तौ चतुर्थंभवतः परम् ॥३९॥
 शामल्यां दामदेवस्य तत्रैव पुरि नन्दनौ । वसुदेवसुदेवाख्यौ गुण्यावस्थामितौ द्विजौ ॥४०॥

रतिवर्द्धन राजाके द्वारा कशिपुके प्रति भेजा हुआ एक युवा दण्ड हाथमें लिये वहाँ आया और बोला कि हे देव ! आप भाग्यसे बढ रहे हैं क्योंकि राजा रतिवर्द्धन यहाँ विद्यमान हैं । इसके उत्तरमें हर्षसे फूले हुए कशिपुने सन्तुष्ट होकर कहा कि वे कहाँ हैं ? वे कहाँ हैं ? २६-२७॥ 'उद्यानमें स्थित है' इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त हर्षसे युक्त कशिपु अन्तःपुरके साथ अर्ध तथा पादोदक साथ ले निकला ॥२८॥ 'जो किसीके द्वारा जीता न जाय ऐसा राजाधिराज रतिवर्द्धन जयवन्त हैं' यह सोचकर उसके दर्शन होनेपर कशिपुने दान-सन्मान आदिसे बड़ा उत्सव किया ॥२९॥ तदनन्तर युद्धमें सर्वगुप्त जीवित पकड़ा गया और राजा रतिवर्द्धनको राज्यकी प्राप्ति हुई ॥३०॥ जो सामन्त पहले सर्वगुप्तसे आ मिले थे वे स्वामी रतिवर्द्धनको जीवित जानकर रणके बीचमें ही सर्वगुप्तको छोड़ उसके पास आ गये थे ॥३१॥ बड़े-बड़े दान सन्मान देवताओंका पूजन आदिसे रतिवर्द्धन राजाका फिरसे जन्मोत्सव किया गया ॥३२॥ और सर्वगुप्त मन्त्री चाण्डालके समान नगरके बाहर बसाया गया, वह मृतकके समान निस्तेज हो गया, उस पापीकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता था तथा सर्वलोकमें वह निन्दित हुआ ॥३३॥ महाकान्तिको धारण करनेवाला काशीका राजा कशिपु वाराणसीमें उत्कृष्ट लक्ष्मीसे ऐसी क्रीड़ा करता था मानो दूसरा लोकपाल ही हो ॥३४॥

अथानन्तर किसी समय राजा रतिवर्द्धनने भोगोंसे विरक्त हो सुभानु नामक मुनिराजके समीप जिनदीक्षा धारण कर ली ॥३५॥ सर्वगुप्तने निश्चय कर लिया कि यह सब भेद उसकी स्त्री विजयावलीका किया हुआ है इससे वह परम विद्वेष्यताको प्राप्त हुई अर्थात् मन्त्रीने अपनी स्त्रीसे अधिक द्वेष किया ॥३६॥ विजयावलीने देखा कि मैं न तो राजाकी हो सकी और न पतिकी हो रही इसीलिए शोकयुक्त हो अकाम तप कर वह राक्षसी हुई ॥३७॥ तीव्र वैरके कारण उसने रतिवर्द्धन मुनिके ऊपर घोर उपसर्ग किया परन्तु वे उत्तम ध्यानमें लीन हो केवलज्ञान रूपी राज्यको प्राप्त हुए ॥३८॥

राजा रतिवर्द्धनके पुत्र प्रियङ्कर और हितङ्कर निर्मल मुनिपद धारण कर प्रैवेयकमें उत्पन्न हुए । इस भवसे पूर्व चतुर्थ भवमें वे शामली नामक नगरमें दामदेव नामक ब्राह्मणके वसुदेव

विश्वप्रियङ्गुनामानौ ज्ञेये सुवर्निते तयोः । आसीद्गृहस्थभावश्च शंसनीयो मनीषिणाम् ॥४१॥
 साधौ श्रीतिलकामिह्ये दानं दत्त्वा सुभावनौ । त्रिपत्यभोगितां प्राप्तौ सखीकावुत्तरे कुरौ ॥४२॥
 साधुसद्दानवृत्तोत्थमहाफलसमुद्भवम् । भुक्त्वा भोगं परं तत्र प्राप्तावीशानवासिताम् ॥४३॥
 भुक्तभोगौ ततश्च्युत्वा बोधिलक्ष्मीसमन्वितौ । स्त्रीणदुर्गतिकर्माणीं जातौ प्रियहितङ्करो ॥४४॥
 चतुष्कर्ममयारण्यं शुक्लध्यानेन बह्विना । निर्दह्य निर्वृत्तिं प्राप्सौ मुनीन्द्रो रतिवर्धनः ॥४५॥
 कथितौ यौ समासेन वीरौ प्रियहितङ्करो । प्रैवेयकाच्युतावेतौ भव्यौ तौ लवणाङ्कुशौ ॥४६॥
 राजन् सुदर्शना देवी तनयात्यन्तवत्सला । भर्तृपुत्रवियोगार्ता स्त्रीस्वभावानुभावनः ॥४७॥
 निदानशृङ्खलाबद्धा आग्मन्ती दुःखसङ्कटम् । कृच्छ्रं स्त्रीत्वं विनिर्जित्य भुक्त्वा विविधयोनिषु ॥४८॥
 अयं क्रमेण सम्पन्नो मनुष्यः पुण्यचोदितः । सिद्धार्थो धर्मसक्तात्मा विद्याविधिविशारदः ॥४९॥
 तत्पूर्वस्नेहसंसक्तौ बालकौ लवणाङ्कुशौ । अनेन संस्कृतौ जातौ त्रिदशैरपि दुर्जयौ ॥५०॥

उपजातिवृत्तम्

एवं विदित्वा सुलभौ नितान्तं जीवस्य लोके पितरौ सदैव ।
 कर्तव्यमेतद्दुविषां प्रयत्नाद्विमुच्यते येन शरीरदुःखात् ॥५१॥
 विमुच्य सर्वं भववृद्धिहेतुं कर्मोरुदुःखप्रभवं जगुःसम् ।
 कृत्वा तपो जैनमतोपदिष्टं रदि तिरस्कृत्य शिवं प्रयात ॥५२॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे रविषेणाचार्यप्रोक्ते लवणाङ्कुशपूर्वभवामिधानं नामाष्टोत्तरशतं पर्व ॥१०८॥

और सुदेव नामके गुणो पुत्र थे ॥३६-४०॥ विश्वा और प्रियङ्गु नामकी उनकी स्त्रियों थीं जिनके कारण उनका गृहस्थ पद विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय था ॥४१॥ श्रीतिलक नामक मुनि-राजके लिए उत्तम भावोंसे दान देकर वे स्त्री सहित उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमिमें तीन पत्यकी आयुको प्राप्त हुए ॥४२॥ वहाँ साधु-दान रूपी वृत्तसे उत्पन्न महाफलसे प्राप्त हुए उत्तम भोग भोग कर वे ऐशान स्वर्गमें निवासको प्राप्त हुए ॥४३॥ तदनन्तर जो आत्मज्ञान रूपी लक्ष्मी से सहित थे, तथा जिनके दुर्गतिदायक कर्म क्षीण हो गये थे ऐसे दोनों देव, वहाँसे भोग भोग कर च्युत हुए तथा पूर्वोक्त राजा रतिवर्धनके प्रियङ्कर और हितङ्कर नामक पुत्र हुए ॥४४॥

रतिवर्धन मुनिराज शुक्ल ध्यान रूपी अग्निके द्वारा अघातिया कर्म रूपी वनको जला कर निर्वाणको प्राप्त हुए ॥४५॥ संक्षेपसे जिन प्रियङ्कर और हितङ्कर वीरोंका वर्णन किया गया है वे प्रैवेयकसे ही च्युत हो भव्य लवण और अंकुश हुए ॥४६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! काकन्दीके राजा रतिवर्धनकी जो पुत्रोंसे अत्यन्त स्नेह करनेवाली सुदर्शना नामकी रानी थी वह पति और पुत्रोंके वियोगसे पीड़ित हो स्त्रीस्वभावके कारण निदानबन्ध रूपी साँकलसे बद्ध होती हुई दुःख रूपी सङ्कटमें घूमती रही और नाना योनियोंमें स्त्री पर्यायका उपभोग कर तथा बड़ी कठिनाईसे उसे जीत कर क्रमसे मनुष्य हुई । उसमें भी पुण्यसे प्रेरित धार्मिक तथा विद्याओंकी विधिमें निपुण सिद्धार्थ नामक लुल्लक हुई ॥४७-४९॥ उनमें पूर्व स्नेह होनेके कारण इस लुल्लकने लवण और अंकुश कुमारोंका विद्याओंसे इस प्रकार संस्कृत--सुशोभित किया जिससे कि वे देवोंके द्वारा भी दुर्जय हो गये ॥५०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार 'संसारमें प्राणीको माता-पिता सदा सुलभ हैं' ऐसा जान कर विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक ऐसा काम करना चाहिए कि जिससे वे शरीर सम्बन्धी दुःखसे छूट जावें ॥५१॥ संसार वृद्धिके कारण, विशाल दुःखोंके जनक एवं निन्दित समस्त कर्मको छोड़ कर हे भव्यजनो ! जैनमतमें कहा हुआ तप कर तथा सूर्यको तिरस्कृत कर मोक्षकी ओर प्रयाण करो ॥५२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मपुराणमें लवणाङ्कुशके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला एक सौ आठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०८॥

नवोत्तरशतं पर्व

पतिपुत्रान् परित्यज्य विष्टपस्यातचेष्टिता । निष्क्रान्ता कुर्वते सीता यत्तद्वक्ष्यामि ते शृणु ॥१॥
तस्मिन् विहरते काले श्रीमान् सकलभूषणः । दिव्यज्ञानेन यो लोकमलोकं चावबुध्यते ॥२॥
अयोध्या सकला येन गृहाश्रमविधौ कृता । सुधूरया सुस्थितिं प्राप्ता सद्धर्मप्रतिलम्बिता ॥३॥
प्रजा च सकला तस्य वाक्ये भगवतः स्थिता । रेजे साम्राज्ययुक्तेन राज्ञेव कृतपालना ॥४॥
सद्धर्मोत्सवसन्तानस्तत्र काले महोदयः । सुप्रबोधतमो लोकः साधुपूजनतत्परः ॥५॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तर्तार्थं भवनाशनम् । विराजतेतरां यद्दरमल्लिजिनान्तरम् ॥६॥
अपि या त्रिदशस्त्रीणामतिशेते मनोज्ञताम् । तपसा शोषिता साऽभूरसीता दग्धेव माधवी ॥७॥
महासंवेगसम्पन्ना दुर्भावपरिवर्जिता । अत्यन्तनिन्दितं स्त्रीत्वं चिन्तयन्ती सती सदा ॥८॥
संसक्तभूरजोवस्त्रबद्धोरस्कशिरोरुहा । अस्नानस्वेदसञ्जातमलकञ्जुकधारिणी ॥९॥
अष्टमाहूर्तु कालादिकृतशस्त्रोक्तपारणा । शीलव्रतगुणासक्ता रत्यरग्यपवर्जिता ॥१०॥
अध्यात्मनियतात्यन्तं शान्ता स्वान्तवशात्मिका । तपोऽधिकुर्वतेऽव्युग्रं जनान्तरसुदुःसहम् ॥११॥
मांसवर्जितसर्वाङ्गा व्यक्तस्थिस्नायुपञ्जरा । पार्थिवद्रव्यनिर्मुक्ता 'पौस्तीव' प्रतियातना ॥१२॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिसकी चेष्टाएँ समस्त संसारमें प्रसिद्धि पा चुकी थीं ऐसी सीता पति तथा पुत्रका परित्याग कर तथा दीक्षित हो जो कुल करती थी वह तेरे लिए कहता हूँ सो सुन ॥ १ ॥ उस समय यहाँ उन श्रीमान् सकलभूषण केवलीका विहार हो रहा था जो कि दिव्यज्ञानके द्वारा लोक अलोकको जानते थे ॥ २ ॥ जिन्होंने समस्त अयोध्याको गृहाश्रमका पालन करनेमें निपुण, संतोषसे उत्तम अवस्थाको प्राप्त एवं समीचीन धर्मसे सुशोभित किया था ॥ ३ ॥ उन भगवान्के वचनमें स्थित समस्त प्रजा ऐसी सुशोभित होती थी मानो साम्राज्यसे युक्त राजा ही उसका पालन कर रहा हो ॥ ४ ॥ उस समयके मनुष्य समीचीन धर्मके उत्सव करनेवाले, महाभ्युदयसे सम्पन्न, सम्यग् ज्ञानसे युक्त एवं साधुओंकी पूजा करनेमें तत्पर रहते थे ॥५॥ मुनिसुव्रत भगवान्का वह संसारापहारी तीर्थ उस तरह अत्यधिक सुशोभित हो रहा था जिस तरह कि अरनाथ और महिलनाथ जिनेन्द्रका अन्तर काल सुशोभित होता था ॥६॥

तदनन्तर जो सीता देवाङ्गनाओंकी भी सुन्दरताको जीतती थी वह तपसे सूखकर ऐसी हो गई जैसी जली हुई माधवी लता हो ॥७॥ वह सदा महासंवेगसे सहित तथा छोटे भावोंसे दूर रहती थी तथा स्त्री पर्यायको सदा अत्यन्त निन्दनीय समझती रहती थी ॥८॥ पृथिवीकी धूलिसे मलिन वस्त्रसे जिसका वस्त्रःस्थल तथा शिरके बाल सदा आच्छादित रहते थे, जो स्नानके अभावमें पसीनासे उत्पन्न मैल रूपी कञ्जकको धारण कर रही थी, जो चार दिन, एक पत्र तथा ऋतुकाल आदिके बाद शास्त्रोक्त विधिसे पारणा करती थी, शीलव्रत और मूलगुणोंके पालन करनेमें तत्पर रहती थी, राग-द्वेषसे रहित थी, अध्यात्मके चिन्तनमें तत्पर रहती थी, अत्यन्त शान्त थी, जिसने अपने आपको अपने मनके अधीन कर रक्खा था, जो अन्य मनुष्योंके लिए दुःसह, अत्यन्त कठिन तप करती थी, जिसका समस्त शरीर मांससे रहित था, जिसकी हड्डी और आँतोंका पञ्जर प्रकट दिख रहा था, जो पार्थिव तत्त्वसे रहित लकड़ी आदिसे बनी प्रतिमा

१. पुस्तनिर्मिता । २. प्रतिमेव ।

अत्रलीनकगण्डान्ता सम्बद्धा केवलं त्वचा । उत्कटभ्रूतटा शुष्का नदीव नितरामभात् ॥१३॥
युगमानमहीपृष्ठन्यस्तसौम्यनिरीक्षण । तपःकारणदेहार्थं भिन्नां चक्रे यथाविधि ॥१४॥
अन्यथास्वमिवानीता तपसा साधुचेष्टिता । नाऽऽभीयपरकीयेन जनेनाऽऽशयि गोचरे ॥१५॥
दृष्ट्वा तामेव कुर्वन्ति तस्या एव सदा कथाम् । न च प्रत्यभिजानन्ति तदा तामार्थिकां जनाः ॥१६॥
एवं द्वाषष्टिवर्षाणि तपः कृत्वा समुन्नतम् । त्रयस्त्रिंशद्दिनं कृत्वा परमाराधनाविधिम् ॥१७॥
उच्छिष्टं संस्तरं यद्वत्परिणय्य शरीरकम् । आरणाच्युतमारुह्य प्रतीन्द्रत्वमुपागमत् ॥१८॥
माहात्म्यं परयतेदृष्टं धर्मस्य जिनशासने । जन्तुः स्त्रीत्वं यदुञ्जित्वा पुमान् जातः सुरप्रभुः ॥१९॥
तत्र कल्पे मणिच्छायासमुद्योतितपुष्करे । काञ्चनादिमहाद्रव्यविचित्रपरमाद्भुते ॥२०॥
सुमेरुशिखराकारे विमाने परिवारिणि । परमैश्वर्यसम्पन्ना सप्तप्राप्ता त्रिदशेन्द्रताम् ॥२१॥
देवीशतसहस्राणां नयनानां समाश्रयः । तारागणपरीवारः शशाङ्क इव राजते ॥२२॥
इत्यन्यानि च साधूनि चरितानि नरेश्वरः । पापवातीनि शुश्राव पुराणानि गणेश्वरात् ॥२३॥
राजोचे कस्तदा नाथो देवानामारणाच्युते । बभौ यस्य प्रतिस्पर्द्धी सीतेन्द्रोऽपि तपोबलान् ॥२४॥
मधुरित्याह भगवान् भ्राता यस्य स कैटभः । येन भुक्तं महैश्वर्यं द्वाविंशत्यब्धिसम्मितम् ॥२५॥
चतुःषष्टिसहस्रेषु किञ्चिदग्रेष्वनुक्रमात् । वर्षाणां समतीतेषु सुकृतस्यावशेषतः ॥२६॥

के समान जान पड़ती थी, जिसके कपोल भीतर घुस गये थे, जो केवल त्वचासे आच्छादित थी, जिसका भ्रूकुटितल ऊँचा उठा हुआ था तथा उससे जो सूखी नदीके समान जान पड़ती थी । युग प्रमाण पृथिवी पर जो अपनी सौम्यदृष्टि रखकर चलती थी, जो तपके कारण शरीरकी रक्षाके लिए विधिपूर्वक भिन्ना ग्रहण करती थी, जो उत्तम चेष्टासे युक्त थी, तथा तपके द्वारा उस प्रकार अन्यथाभावको प्राप्त हो गई थी कि विहारके समय उसे अपने पराये लोग भी नहीं पहिचान पाते थे ॥१६-१५॥ ऐसी उस सीताको देखकर लोग सदा उसीकी कथा करते रहते थे । जो लोग उसे एक बार देखकर पुनः देखते थे वे उसे 'यह वही है' इस प्रकार नहीं पहिचान पाते थे ॥१६॥ इस प्रकार बासठ वर्ष तक उत्कृष्ट तप कर तथा तैतीस दिनकी उत्तम सल्लेखना धारणकर उपभुक्त विस्तरके समान शरीरको छोड़कर वह आरण-अच्युत युगलमें आरूढ़ हो प्रतीन्द्र पदको प्राप्त हुई ॥१७-१८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो ! जिन-शासनमें धर्मका ऐसा माहात्म्य देखो कि यह जीव स्त्री पर्यायको छोड़ देवोंका स्वामी पुरुष हो गया ॥१६॥

जहाँ मणियोंकी कान्तिसे आकाश देदीप्यमान हो रहा था तथा जो सुवर्णादि महाद्रव्योंके कारण विचित्र एवं परम आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला था ऐसे उस अच्युत स्वर्गमें वह अपने परिवारसे युक्त सुमेरुके शिखरके समान विमानमें परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न प्रतीन्द्र पदको प्राप्त हुई ॥२०-२१॥ वहाँ लाखों देवियोंके नेत्रोंका आधारभूत वह प्रतीन्द्र, तारागणोंके परिवारसे युक्त चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥२२॥ इस प्रकार राजा श्रेणिकने श्रीगौतम गणधरके मुखारविन्दसे अन्य उत्तमोत्तम चरित्र तथा पापोंको नष्ट करनेवाले अनेक पुराण सुने ॥२३॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने कहा कि उस समय आरणाच्युत कल्पमें देवोंका ऐसा कौन अधिपति अर्थात् इन्द्र सुशोभित था कि सीतेन्द्र भी तपोबलसे जिसका प्रतिस्पर्द्धी था ॥२४॥ इसके उत्तरमें गणधर भगवान्ने कहा कि उस समय वह मधुका जीव आरणाच्युत स्वर्गका इन्द्र था, जिसका भाई कैटभ था तथा जिसने बाईस सागर तक इन्द्रके महान् ऐश्वर्यका उपभोग किया था ॥२५॥ अनुक्रमसे कुछ अधिक चौंसठ हजार वर्ष बीत जानेपर अवशिष्ट पुण्यके प्रभावसे वे मधु

१. अन्यथामिवानीता म० [अन्यथास्वमिवानीता] इति पाठः सम्यक् प्रतिभाति । अन्यथामिव सा नीता ज० ।

इह प्रद्युम्नशाम्बौ तौ यावेतौ मधुकैटभौ । द्वारिकायां समुत्पन्नौ पुत्रौ कृष्णस्य भारते ॥२७॥
 पष्टिवर्षसहस्राणि चत्वारि च ततः परम् । रामायणस्य विज्ञेयमन्तरं भारतस्य च ॥२८॥
 अरिष्टनेमिनाथस्य तीर्थे नाकादिह च्युतः । मधुर्बभूव रुक्मिण्यां वासुदेवस्य नन्दनः ॥२९॥
 मगधाधिपतिः प्राह नाथ वागमृतस्य ते । अतृप्तिमुपगच्छामि धनस्येव धनेश्वरः ॥३०॥
 तावन्मगधोः सुरेन्द्रस्य चरितं विनिगद्यताम् । भगवन् श्रोतुमिच्छामि प्रसादः क्रियतां मम ॥३१॥
 कैटभस्य च तज्जातुस्त्वधानपरायण । गणेन्द्र चरितं ब्रूहि सर्वं हि विदितं तव ॥३२॥
 आसीदन्वभवे तेन किं कृतं प्रकृतं भवेत् । कथं वा त्रिजगच्छ्रेष्ठा लब्धा बोधिः सुदुर्लभा ॥३३॥
 क्रमवृत्तिरियं वाणी तावकी धीश्च मामिका । उत्सुकं च परं चित्तमहो युक्तमनुकमात् ॥३४॥
 गण्याह मगधाभिल्ये देशेऽस्मिन्सर्वसस्यके । चातुर्वर्ष्यप्रमुदिते धर्मकामार्थसंयुते ॥३५॥
 चारुचैत्यालयाकर्णे पुरग्रामाकराऽऽचिते । नद्युद्यानमहारम्ये साधुसङ्घसमाकुले ॥३६॥
 राजा नित्योदितो नाम तत्र कालेऽभवन्महान् । शालिग्रामोऽस्ति तत्रैव देशे ग्रामः पुरोपमः ॥३७॥
 ब्राह्मणः सोमदेवोऽत्र भार्या तस्याग्निलेख्यभूत् । विज्ञेयौ तनयौ तस्या बह्निमारुतभूतिकौ ॥३८॥
 षट्कर्मविधिसम्पन्नौ वेदशास्त्रविशारदौ । अस्मत्तः कोऽपरोऽस्तांति नित्यं पण्डितमभिनी ॥३९॥
 अभिमानमहादाहसञ्जातोद्धतविभ्रमौ । भोग एव सदा सेव्य इति धर्मपराङ्मुखौ ॥४०॥

और कैटभके जीव भरतक्षेत्रकी द्वारिका नगरीमें महाराज श्रीकृष्णके प्रद्युम्न तथा शाम्ब नामके पुत्र हुए ॥२६-२७॥ इस तरह रामायण और महाभारतका अन्तर कुछ अधिक चौंसठ हजार वर्ष जानना चाहिए ॥२८॥ अरिष्टनेमि तीर्थकरके तीर्थमें मधुका जीव स्वर्गसे च्युत होकर इसी भरत क्षेत्रमें श्रीकृष्णकी रुक्मिणी नामक स्त्रीसे प्रद्युम्न नामका पुत्र हुआ ॥२९॥ यह सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामीसे कहा कि हे नाथ ! जिस प्रकार धनवान् मनुष्य धनके विषयमें तृप्तिको प्राप्त नहीं होता है उसी प्रकार मैं भी आपके वचन रूपी अमृतके विषयमें तृप्तिको प्राप्त नहीं हो रहा हूँ ॥३०॥ हे भगवन् ! आप मुझे अच्युतेन्द्र मधुका पूरा चरित्र कहिए मैं सुननेकी इच्छा करता हूँ, मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३१॥ इसी प्रकार हे ध्यानमें तत्पर गणराज ! मधुके भाई कैटभका भी पूर्ण चरित कहिए क्योंकि आपको वह अच्छी तरह विदित है ॥३२॥ उसने पूर्वभवमें कौन सा उत्तम कार्य किया था तथा तीनों जगत्में श्रेष्ठ अतिशय दुर्लभ रत्नत्रयकी प्राप्ति उसे किस प्रकार हुई थी ? ॥३३॥ हे भगवन् ! आपकी यह वाणी क्रम-क्रमसे प्रकट होती है, और मेरी बुद्धि भी क्रम-क्रमसे पदार्थको ग्रहण करती है तथा मेरा चित्त भी अनुक्रमसे अत्यन्त उत्सुक हो रहा है इस तरह सब प्रकरण उचित ही जान पड़ता है ॥३४॥

तदनन्तर गौतम गणधर कहने लगे कि जो सर्व प्रकारके धान्यसे सम्पन्न है, जहाँ चारों वर्णके लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं, जो धर्म, अर्थ और कामसे सहित है, सुन्दर-सुन्दर चैत्यालयोंसे युक्त है, पुर ग्राम तथा खानों आदिसे व्याप्त है, नदियों और वाग-वगीचोंसे अत्यन्त सुन्दर है, मुनियोंके संघसे युक्त है ऐसे इस मगध नामक देशमें उस समय नित्योदित नामका बड़ा राजा था । उसी देशमें नगरकी समता करनेवाला एक शालिग्राम नामका गाँव था ॥३५-३७॥ उस ग्राममें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण था । अग्निला उसकी स्त्री थी और उन दोनोंके अग्निभूति तथा वायुभूति नामके दो पुत्र थे ॥३८॥ वे दोनों ही पुत्र सन्ध्या-वन्दनादि षट् कर्मोंकी विधिमें निपुण, वेद-शास्त्रके पारङ्गत, और 'हमसे बढ़ कर दूसरा कौन है' इस प्रकार पाण्डित्यके अभिमानमें चूर थे ॥३९॥ अभिमान रूपी महादाहके कारण जिन्हें अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हुआ था ऐसे वे दोनों भाई 'सदा भोग ही सेवन करने योग्य है' यह सोच कर धर्मसे विमुख रहते थे ॥४०॥

कस्यचित्स्वयं कालस्य विहरन् पृथिवीमिमाम् । बहुभिः साधुभिर्गुप्तः सम्प्रक्षो नन्दिवर्द्धनः ॥४१॥
 मुनिः स चावधिज्ञानात्मस्तं जगदीक्षते । अध्युवास बहिर्ग्राममुद्यानं साधुसम्मतम् ॥४२॥
 ततश्चागमनं श्रुत्वा श्रमणानां महात्मनाम् । शालिग्रामजने भूत्या सर्वं पुत्र विन्दित्वैवौ ॥४३॥
 अपृच्छतां ततो वह्निवायुभूती विलोक्य तम् । क्वार्यं जनपदो याति सुसङ्कोर्णः परस्परम् ॥४४॥
 ताभ्यां कथितमन्येन मुनिः प्राक्षो निरम्बरः । तस्यैव वन्दनां कर्तुं भविलः प्रस्त्रितो जनः ॥४५॥
 अग्निभूतिस्ततः क्रुद्धः सह भ्रात्रा विनिर्गतः । विवादे श्रमणान्सर्वान् जयामीति बचोऽवदत् ॥४६॥
 उपगम्य च साधूनां मुनीन्द्रं मध्यवर्त्तिनम् । अपश्यद्ग्रहतराणां मध्ये चन्द्रत्रिवेदितम् ॥४७॥
 प्रधानसंघतेनैतो प्रोक्तौ सात्यजिना ततः । एवमागच्छतां विप्रौ किञ्चिद्विधुनत् गुरौ ॥४८॥
 उवाच प्रहसन्नग्निर्भवद्भिः किं प्रयोजनम् । जगादागतघोरत्र दोषो नास्तीति संघतः ॥४९॥
 द्विजेनैकेन च प्रोक्तमेतान् श्रमणपुङ्गवान् । वादे जेतुमुपायातौ दूरे किमधुना स्थितौ ॥५०॥
 एवमस्त्विति सामर्थौ मुनीन्द्रस्य पुरः स्थितौ । ऊचतुश्च समुद्यदौ किं वेत्सोति पुनः पुनः ॥५१॥
 सावधिर्भगवानाह भवन्तावागतौ कुतः । ऊचतुस्तौ न ते ज्ञातौ शालिग्रामात्किमागतौ ॥५२॥
 मुनिराहावगच्छामि शालिग्रामादुपागतौ । अनादिजन्मकान्तारे भ्रमन्तावागतौ कुतः ॥५३॥
 तौ समूचतुरन्योऽपि को वेत्सोति ततो मुनिः । जगाद् शृणुतां विप्रावधुना कथयाम्यहम् ॥५४॥

अथानन्तर किसी समय अनेक साधुओंके साथ इस पृथ्वी पर विहार करते हुए नन्दि-
 वर्द्धन नामक मुनिराज उस शालिग्राममें आये ॥४१॥ वे मुनि अवधि-ज्ञानसे समस्त जगत्को
 देखते थे तथा आकर गाँवके बाहर मुनियोंके योग्य उद्यानमें ठहर गये ॥४२॥ तदनन्तर उत्कृष्ट
 आत्माके धारक मुनियोंका आगमन सुन शालिग्रामके सब लोग वैभवके साथ बाहर निकले ॥४३॥
 तत्पश्चात् अग्निभूति और वायुभूतिने उन नगरवासी लोगोंको जाते देख किसीसे पूछा कि ये गाँवके
 लोग परस्पर एक दूसरेसे मिल कर समुदाय रूपमें कहाँ जा रहे हैं ? ॥४४॥ तब उसने उन दोनों
 से कहा कि एक निर्बल दिग्म्बर मुनि आये हुए हैं उन्हींकी वन्दना करनेके लिए वे सब लोग जा
 रहे हैं ॥४५॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा अग्निभूति, भाईके साथ निकल कर बाहर आया और कहने
 लगा कि मैं समस्त मुनियोंको वादमें अभी जीतता हूँ ॥४६॥ तत्पश्चात् पास जाकर उसने ताराओं
 के बीचमें उदित चन्द्रमा के समान मुनियोंके बीचमें बैठे हुए उनके स्वामी नन्दिवर्द्धन मुनिको
 देखा ॥४७॥ तदनन्तर सात्यकि नामक प्रधान मुनिने उनसे कहा कि हे विप्रो ! आओ और गुरु
 से कुछ पूछो ! ॥४८॥ तब अग्निभूतिने हँसते हुए कहा कि हमें आप लोगोंसे क्या प्रयोजन है ?
 इसके उत्तरमें मुनिने कहा कि यदि आप लोग यहाँ आ गये हैं तो इसमें दोष नहीं है ॥४९॥
 उसी समय एक ब्राह्मणने कहा कि ये दोनों इन मुनियोंको वादमें जीतनेके लिए आये हैं इस
 समय दूर क्यों बैठे हैं ॥५०॥ तदनन्तर 'अच्छा ऐसा ही सही' इस प्रकार कहते हुए क्रोधसे
 युक्त दोनों ब्राह्मण, मुनिराजके सामने बैठ गये और बड़े अहंकारमें चूर होकर बार-बार कहने
 लगे कि बोल क्या जानता है ? बोल क्या जानता है ? ॥५१॥ तदनन्तर अवधिज्ञानी मुनिराज
 ने कहा कि आप दोनों कहाँ से आ रहे हैं ? इसके उत्तरमें विप्र-पुत्र बोले कि क्या तुम्हें यह भी
 ज्ञाव नहीं है कि हम दोनों शालिग्रामसे आये हैं ॥५२॥ तदनन्तर मुनिराजने कहा कि आप
 शालिग्रामसे आये हैं यह तो मैं जानता हूँ मेरे पूछनेका अभिप्राय यह है कि इस अनादि संसार-
 रूपी वनमें घूमते हुए आप इस समय किस पर्यायसे आये हैं ? ॥५३॥ तब उन्होंने कहा कि
 इसे क्या और भी कोई जानता है या मैं ही जानूँ । तत्पश्चात् मुनिराजने कहा कि अच्छा विप्रो !
 सुनो मैं कहता हूँ ॥५४॥

प्रामस्यैतस्य सीमान्ते वनस्थत्वयामुभौ समम् । अन्योन्यानुरतावास्तां शृगालौ विकृताननौ ॥५५॥
 आसीदत्रैव च प्रामे चिरवासः कृषीबलः । ख्यातः प्रामरको नाम गतोऽसौ क्षेत्रमन्यदा ॥५६॥
 पुनरेमांति सज्जिन्य भानावस्ताभिलाषिणि । त्वक्तोपकरणं क्षेत्रे सङ्गतः क्षुधितो गृहम् ॥५७॥
 तावदङ्गनशैलाभाः प्लावयन्तो मर्हीतलम् । अकस्मादुन्नता मेघा ववधुर्नक्तवासरम् ॥५८॥
 प्रशान्ता सप्तरात्रेण रात्रौ तमसि नीषणे । जम्बुकौ तौ चिनिष्कान्तौ गहनाददितौ क्षुधा ॥५९॥
 अथोपकरणं विलम्बं कर्दमोपलसङ्गतम् । तत्ताभ्यां भञ्जितं सर्वं प्राप्तौ चोदरवेदनाम् ॥६०॥
 अकामनिर्जरायुक्तौ वर्षानिलसमाहृतौ । ततः कालं गतौ जातौ सोमदेवस्य नन्दनौ ॥६१॥
 स च प्रामरकः प्राप्तोऽन्वेषकोऽपरयदेतकौ । निर्जीवौ जम्बुकौ तेन गृहीत्वा जनितौ इतौ ॥६२॥
 अचिरेण मृतश्रासौ सुतस्यैवाभवत्सुतः । जातिस्मरत्वमासाद्य मूकोभूय व्यवस्थितः ॥६३॥
 पुत्रं पितुरिति ज्ञात्वेत्याहरामि कथं त्वहम् । स्तुषां च मातुरित्यस्माद्धेतोर्मौनमुपाश्रितः ॥६४॥
 यदि न प्रत्ययः सत्यक् तत्तिष्ठत्यसावयम् । मध्ये स्वजनवर्गस्य द्विजो मां द्रष्टुमागतः ॥६५॥
 आहूय गुरुणा चोक्तः स त्वं प्रामरकस्तथा । आसीस्त्वमधुना जातस्तोकस्यैव शरीरजः ॥६६॥
 संसारस्य स्वभावोऽयं रङ्गमध्ये यथा नटः । राजा भूत्वा भवेद्भृत्यः प्रेष्यश्च प्रभुतां व्रजेत् ॥६७॥
 एवं पिताऽपि लोकत्वमेति लोकश्च तातताम् । माता परनीत्वमायाति पत्नी चायाति मातृताम् ॥६८॥

इस गाँवकी सीमाके पास वनकी भूमिमें दो शृगाल साथ-साथ रहते थे । वे दोनों ही परस्पर एक दूसरेसे अधिक प्रेम रखते थे तथा दोनों ही विकृत मुखके धारक थे ॥५५॥ इसी गाँवमें एक प्रामरक नामका पुराना किसान रहता था । वह एक दिन अपने खेतपर गया । जब सूर्यास्तका समय आया तब वह भूखसे पीड़ित होकर घर गया और अभी वापिस आता हूँ यह सोचकर अपने उपकरण खेतमें ही छोड़ आया ॥५६-५७॥ वह घर आया नहीं कि इतनेमें अकरमात् उठे तथा अज्जनगिरिके समान काले बादल पृथिवीतलको ढुबाते हुए रात-दिन बरसने लगे । वे मेघ सात दिनमें शान्त हुए अर्थात् सात दिन तक झड़ी लगी रही । ऊपर जिन दो शृगालोंका उल्लेख कर आये हैं वे भूखसे पीड़ित हो रात्रिके घनघोर अन्धकारमें वनसे बाहर निकले ॥५८-५९॥

अथानन्तर वर्षासे भीगे और कीचड़ तथा पत्थरोंमें पड़े वे सब उपकरण जिन्हें कि किसान छोड़ आया था दोनों शृगालोंने खा लिये । खाते हीके साथ उनके उदरमें भारी पीड़ा उठी । अन्तमें वर्षा और वायुसे पीड़ित दोनों शृगाल अकामनिर्जराकर मरे और सोमदेव ब्राह्मणके पुत्र हुए ॥६०-६१॥ तदनन्तर वह प्रामरक किसान अपने उपकरण हँदता हुआ खेतमें पहुँचा तो वहाँ उसने इन मरे हुए दोनों शृगालोंको देखा । किसान उन मृतक शृगालोंको लेकर घर गया और वहाँ उसने उनकी मशकें बनाई ॥६२॥ वह प्रामरक भी जरूरी ही मर गया और मरकर अपने ही पुत्रके पुत्र हुआ । उस पुत्रको जाति-स्मरण हो गया जिससे वह गूँगा बनकर रहने लगा ॥६३॥ 'मैं अपने पूर्वभवके पुत्रको पिताके स्थानमें समझ कर कैसे बोलूँ तथा पूर्वभवकी पुत्र-बधूको माताके स्थानमें जानकर कैसे बोलूँ' यह विचार कर ही वह मौनको प्राप्त हुआ है ॥६४॥ यदि तुम्हें इस बातका ठीक ठीक विश्वास नहीं है तो वह ब्राह्मण मेरे दर्शन करनेके लिए यहाँ आया है तथा अपने परिवारके बीचमें बैठा है ॥६५॥ मुनिराजने उसे बुलाकर कहा कि तू वही प्रामरक किसान है और इस समय अपने पुत्रका ही पुत्र हुआ है ॥६६॥ यह संसारका स्वभाव है । जिस प्रकार रङ्गभूमिके मध्य नट राजा होकर दास बन जाता है और दास प्रभुताको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार पिता भी पुत्रपनेको प्राप्त हो जाता है, और पुत्र पितृ पर्यायको प्राप्त

उद्दाटनघटीयन्त्रसदृशोऽस्मिन् भवत्तमनि । 'उपर्यधरतां यान्ति जीवाः कर्मवशां गताः ॥६६॥
 इति ज्ञात्वा भवावस्थां नितान्तं वत्स निन्दिताम् । अधुना मूकतां मुञ्च कुरु वाचां क्रियां सर्तीम् ॥७०॥
 इत्युक्तः परमं हृष्ट उत्थाय विगतज्वरः । उद्भूतघनरोमाञ्चः प्रोत्कुञ्जयनाननः ॥७१॥
 गृहीत इव भूतेन परिभ्रम्य प्रदक्षिणाम् । निपपातोत्तमाङ्गेन क्षिप्रमूलतरुर्था ॥७२॥
 उवाच विस्मितश्रोत्रैस्त्वं सर्वज्ञपराक्रमः । इहस्थः सर्वलोकस्य सकलां परयसि स्थितिम् ॥७३॥
 संसारसागरे घोरे कष्टमेवं निमज्जतः । सत्वानुकम्पया बोधिस्त्वया मे नाथ दर्शिता ॥७४॥
 मनोगतं मम ज्ञातं भवता दिव्यबुद्धिना । इत्युक्त्वा जगृहे दीक्षां सास्त्रान् संयज्य बान्धवान् ॥७५॥
 तस्य प्रामरकस्यैतच्छ्रुत्वोपाख्यानमीदृशम् । संवृत्ता बहवो लोके भ्रमणाः श्रावकास्तथा ॥७६॥
 गत्वा च ते इती इष्टे सर्वलोकेन तद्गृहे । ततः कलकलो जातो विस्मयश्च समन्ततः ॥७७॥
 अधोपहसितौ राजंस्तौ जनेन द्विजातिकौ । इमौ तौ पशुमांसादौ जम्बुकौ द्विजतां गतौ ॥७८॥
 एताभ्यां ब्रह्मतावादे विमूढाभ्यां सुखार्थिनी । प्रजेयं मुषिता सर्वां सक्ताभ्यां पशुहिंसने ॥७९॥
 अमी तपोधनाः शुद्धाः भ्रमणा ब्राह्मणाधिकाः । ब्राह्मणा इति विख्याता हिंसामुक्तिव्रतश्रिताः ॥८०॥
 महाव्रतशिखाटोपाः क्षान्तिवज्रोपवीतिनः । ध्यानाग्निहोत्रिणः शान्ता मुक्तिसाधनतत्परः ॥८१॥
 सविरम्भप्रवृत्ता ये नित्यमब्रह्मचारिणः । द्विजाः स्म इति भाषन्ते क्रियया न पुनर्द्विजाः ॥८२॥

हो जाता है । माता पत्नी हो जाती है और पत्नी माता बन जाती है ॥६७-६८॥ यह संसार अरहटके घटीयन्त्रके समान है इसमें जीव कर्मके वशीभूत हो ऊपर-नीची अवस्थाको प्राप्त होता रहता है ॥६६॥ इसलिए हे वत्स ! संसार दशाको अत्यन्त निन्दित जानकर इस समय गूंगापन छोड़ और वचनोंको उत्तम क्रिया कर अर्थात् प्रशस्त वचन बोल ॥७०॥

मुनिराजके इतना कहते ही वह अत्यन्त हर्षित होता हुआ उठा, वह ऐसा प्रसन्न हुआ मानो उसका ज्वर उतर गया हो, उसके शरीरमें सघन रोमाञ्च निकल आये, तथा उसके नेत्र और मुख हर्षसे फूल उठे ॥७१॥ भूतसे आक्रान्त हुएके समान उसने मुनिकी प्रदक्षिणाएँ दीं । तदनन्तर कटे वृक्षके समान मस्तकके बल उनके चरणोंमें गिर पड़ा ॥७२॥ उसने आश्चर्य चकित हो जोरसे कहा कि हे भगवन्, आप सर्वज्ञ हैं । यहाँ बैठे-बैठे ही आप समस्त लोककी सम्पूर्ण स्थितिको देखते रहते हैं ॥७३॥ मैं इस भयंकर संसार-सागरमें डूब रहा था सो आपने प्राण्यनुकम्पासे हे नाथ ! मेरे लिए रत्नत्रय रूप बोधिका दर्शन कराया है ॥७४॥ आप दिव्यबुद्धि हैं अतः आपने मेरा मनोगत भाव जान लिया । इस प्रकार कहकर उस प्रामरकके जीव ब्राह्मणने रोते हुए भाई-बान्धवोंको छोड़कर दीक्षा धारण कर ली ॥७५॥ प्रामरकका यह ऐसा व्याख्यान सुन बहुतसे लोग मुनि तथा श्रावक हो गये ॥७६॥ सब लोगोंने उसके घर जाकर पूर्वोक्त शृगालोंके शरीरसे बनी मशकें देखीं जिससे सब ओर कलकल तथा आश्चर्य छा गया ॥७७॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! लोगोंने यह कहकर उन ब्राह्मणोंकी बहुत हँसी की कि ये वे ही पशुओंका मांस खानेवाले शृगाल ब्राह्मण पर्यायको प्राप्त हुए हैं ॥७८॥ 'सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है' इस प्रकारके ब्रह्माद्वैतवादमें मूढ़ एवं पशुओंकी हिंसामें आसक्त रहनेवाले इन दोनों ब्राह्मणोंने सुखकी इच्छुक समस्त प्रजाको लूट डाला है ॥७९॥ तपरूपी धनसे युक्त ये शुद्ध मुनि ब्राह्मणोंसे अधिक श्रेष्ठ हैं क्योंकि यथार्थमें ब्राह्मण वे ही कहलाते हैं जो अहिंसा व्रतको धारण करते हैं ॥८०॥ जो महाव्रत रूपी लम्बी चोटी धारण करते हैं, जो भ्रमारूपी यज्ञोपवीतसे सहित हैं, जो ध्यानरूपी अग्निमें होम करनेवाले हैं, शान्त हैं तथा मुक्तिके सिद्ध करनेमें तत्पर हैं वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं ॥८१॥ इसके विपरीत जो सब प्रकारके आरम्भमें

यथा केचिन्नरा लोके सिंहदेवाग्निनामकाः । तथामी विरतेर्भ्रष्टाः ब्राह्मणा नामधारकाः ॥८३॥
 अमी सुश्रमणा धन्या ब्राह्मणाः परमार्थतः । ऋषयः संयता धीराः ज्ञान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥८४॥
 भद्रन्तास्वस्तकसन्देहा भगवन्तः सतापसाः । मुनयो यतयो वीरा लोकोत्तरगुणस्थिताः ॥८५॥
 परिग्रजन्ति ये मुक्तिं भवहेतौ परिग्रहे । ते परिव्राजका ज्ञेया निर्ग्रन्था एव निस्तमाः ॥८६॥
 तपसा क्षपयन्ति स्वं क्षीणरागाः क्षमान्विताः । क्षिण्वन्ति च यतः पापं क्षपणास्तेन कीर्षिताः ॥८७॥
 यमिनो वीतरागाश्च निर्मुक्ताङ्गा निरम्बराः । योगिनो ध्यानिनो वन्द्या ज्ञानिनो निःस्पृहा बुधाः ॥८८॥
 निर्वाणं साधयन्तीति साधवः परिकीर्षिताः । आचार्या यत्सदाचारं चरन्त्याचारयन्ति च ॥८९॥
 अनगरगुणोपेता निष्कवः शुद्धभिक्षया । श्रमणाः सितकर्माणः परमश्रमवर्तिनः ॥९०॥
 इति साधुस्तुतिं श्रुत्वा तथा निन्दनमात्मनः । रहःस्थितौ विलक्षौ च विमानौ विगतप्रभौ ॥९१॥
 गते च सवितर्यस्तं प्रकाशनसुदुःखितौ । अन्विष्यन्तौ गतौ स्थानं यत्रासौ भगवान् स्थितः ॥९२॥
 निःसङ्गः सङ्गमुत्सृज्य वनैकान्तेऽतिगह्वरे । करङ्कैः सङ्कटेऽप्यन्तं विविचचित्तिकाचिते ॥९३॥
 ३ऋष्याच्छ्रापदनादाढ्ये पिशाचभुजगाकुले । सूचीभेदतमरङ्गक्षे महावीरभस्वदर्शने ॥९४॥
 एवंविधे श्मशानेऽसौ निर्जन्तुनि शिलातले । पापाभ्यामोक्षितस्ताभ्यां प्रतिमास्थानमास्थितः ॥९५॥

प्रवृत्त हैं तथा जो निरन्तर कुशीलमें लीन रहते हैं वे केवल यह कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं परन्तु क्रियासे ब्राह्मण नहीं हैं ॥८२॥ जिस प्रकार कितने ही लोग सिंह, देव अथवा अग्नि नामके धारक हैं वसी प्रकार व्रतसे भ्रष्ट रहनेवाले ये लोग भी ब्राह्मण नामके धारक हैं इनमें वास्तविक ब्राह्मणत्व कुछ भी नहीं है ॥८३॥ जो ऋषि, संयत, धीर, ज्ञान्त, दान्त और जितेन्द्रिय हैं ऐसे ये मुनि ही धन्य हैं तथा वास्तविक ब्राह्मण हैं ॥८४॥ जो भद्रपरिणामी है, संदेहसे रहित हैं, ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, अनेक तपस्वियोंसे सहित हैं, यति हैं और वीर हैं ऐसे मुनि ही लोकोत्तर गुणोंके धारण करनेवाले हैं ॥८५॥ जो परिग्रहको संसारका कारण समझ उसे छोड़ मुक्तिको प्राप्त करते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं सो यथार्थमें मोहरहित निर्ग्रन्थ मुनि ही परिव्राजक हैं ऐसा जानना चाहिए ॥८६॥ चूँकि ये मुनि क्षीणराग तथा क्षमासे सहित होकर तपके द्वारा अपने आपको कृश करते हैं, पापको नष्ट करते हैं इसलिए क्षपण कहे गये हैं ॥८७॥ ये सब यमी, वीतराग, निर्मुक्तशरीर, निरम्बर, योगी, ध्यानी, ज्ञानी, निःस्पृह और बुध हैं अतः ये ही वन्दना करने योग्य हैं ॥८८॥ चूँकि ये निर्वाणको सिद्ध करते हैं इसलिए साधु कहलाते हैं, और उत्तम आचारका स्वयं आचरण करते हैं तथा दूसरोंको भी आचरण कराते हैं इसलिए आचार्य कहे जाते हैं ॥८९॥ ये गृहत्यागीके गुणोंसे सहित हैं तथा शुद्ध भिक्षासे भोजन करते हैं इसलिए भिक्षुक कहलाते हैं और उज्ज्वल कार्य करनेवाले हैं, अथवा कर्मोंका नष्ट करनेवाले हैं तथा परम निर्दोष श्रममें वर्तमान हैं इसलिए श्रमण कहे जाते हैं ॥९०॥ इस प्रकार साधुओंकी स्तुति और अपनी निन्दा सुनकर वे अहंकारी विप्रपुत्र लज्जित, अपमानित तथा निष्प्रभ हो एकान्तमें जा बैठे ॥९१॥

अथानन्तर जो अपने शृगालादि पूर्व भवोंके उल्लेखसे अत्यन्त दुखी थे ऐसे दोनों पुत्र सूर्यके अस्त होनेपर खोज करते हुए उस स्थानपर पहुँचे जहाँ कि वे भगवान् नन्दिवर्धन मुनीन्द्र विराजमान थे ॥९२॥ वे मुनीन्द्र संघ छोड़, निःस्पृह हो वनके एकान्त भागमें स्थित उस श्मशान प्रदेशमें विद्यमान थे कि जो अत्यधिक गर्तोसे युक्त था, नरकङ्कालोंसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारकी चिताओंसे व्याप्त था, मांसभोजी वन्य पशुओंके शब्दसे व्याप्त था, पिशाच और सर्पोंसे आकीर्ण था, सुईके द्वारा भेदने योग्य--गाढ अन्धकारसे आच्छादित था, और जिसका देखना तीव्र घृणा उत्पन्न करनेवाला था । ऐसे श्मशानमें जीव-जन्तु रहित शिलातलपर प्रतिमायोगसे विराज-

आकृष्टखड्गहस्तौ च क्रुद्धौ जगदतुः समम् । जीवं रक्षतु ते लोकः क्व यासि श्रमणाधुना ॥६६॥
 पृथिव्यां ब्राह्मणाः श्रेष्ठा वयं प्रत्यक्षदेवताः । निर्लज्जस्त्वं महादोषो जम्बुका इति भाषसे ॥६७॥
 ततोऽत्यन्तप्रचण्डौ तौ दुष्टौ रक्तकलोचनौ । जातमौ कृपाविनिर्मुक्तौ सुवक्षेण निरीक्षितौ ॥६८॥
 सुमनाश्चिन्तयामास परस्य निर्दोषमीदृशम् । हन्तुमभ्युद्यतौ साधुं मुक्ताङ्गं ध्यानतत्परम् ॥६९॥
 ततः संस्थानमास्थाय तौ चोदगिरतामसी । यत्नेन च तद्ग्रेण स्तरिभतौ निश्चलौ स्थितौ ॥१००॥
 विकर्म कर्तुं मिच्छन्तावुपसर्गं महामुनेः । प्रतीहाराविव क्रूरी तस्थतुः पार्श्वयोरिमौ ॥१०१॥
 ततः सुविमले काले जाते जातादजबान्धवे । संहृत्य सन्मुनिर्योगं निःसृत्यैकान्ततः स्थितः ॥१०२॥
 सङ्गश्चतुर्विधः सर्वः शालिग्रामजनस्तथा । प्रासः परमयोगीशमिति विस्मयवान् जगौ १०३॥
 कावेतावांशौ पापी धिक्कष्टं कर्तुं मीहितौ अग्निवायू दुराचारावेतौ तावातवायिनौ ॥१०४॥
 तौ चाचिन्तयतामुच्चैः प्रभावोऽयं महामुनेः । आवां येन बलोद्भूतौ स्तरिभतौ स्थावरीकृतौ ॥१०५॥
 अनयाऽवस्थया मुक्तौ जीविष्यामो वयं यदा । तदा सम्प्रतिपत्स्यामो दर्शनं मौनिसत्तमम् ॥१०६॥
 अत्रान्तरे परिप्रासः सोमदेवः ससंभ्रमः । भार्ययाऽग्निलया साकं प्रसादयति तं मुनिम् ॥१०७॥
 भूयो भूयः प्रणामेन बहुभिश्च प्रियोदितैः । दम्पती चक्रतुश्चाटुं पादमर्दनतत्परौ ॥१०८॥

मान उन मुनिराजको उन दोनों पापियोंने देखा ॥६३-६५॥ उन्हें देखते ही जिन्होंने तलवार खींचकर हाथमें ले ली थी तथा जो अत्यन्त कुपित हो रहे थे ऐसे उन ब्राह्मणोंने एक साथ कहा कि लोग आकर तेरे प्राणोंकी रक्षा करें । अरे श्रमण ! अब तू कहाँ जायगा ? ॥६६॥ हम ब्राह्मण पृथिवीमें श्रेष्ठ हैं तथा प्रत्यक्ष देवता स्वरूप हैं और तू महादोषोंसे भरा निर्लज्ज है फिर भी हम लोगोंको तू 'शृगाल थे' ऐसा कहता है ॥६७॥

तदनन्तर जो अत्यन्त तीव्र बोधसे युक्त थे, दुष्ट थे, लाल-लाल नेत्रोंके धारक थे, विना विचारे काम करनेवाले थे और दयासे रहित थे ऐसे उन दोनों ब्राह्मणोंको यत्नसे देखा ॥६८॥ उन्हें देखकर वह देव विचार करने लगा कि अहो ! देखो; ये ऐसे निर्दोष, शरीरसे निःस्पृह और ध्यानमें तत्पर मुनिको मारनेके लिए उद्यत हैं ॥६९॥ तदनन्तर तलवार चलानेके आसनसे खड़े होकर उन्होंने अपनी-अपनी तलवार ऊपर उठाई नहीं कि यक्षने उन्हें कील दिया जिससे वे मुनिराजके आगे उसी मुद्रामें निश्चल खड़े रह गये ॥१००॥ महामुनिके विरुद्ध उपसर्ग करनेकी इच्छा रखनेवाले वे दोनों दुष्ट उनकी दोनों ओर इस प्रकार खड़े थे मानो उनके अंगरक्षक ही हों ॥१०१॥

तदनन्तर निर्मल प्रातःकालके समय सूर्योदय होनेपर वे मुनिराज योग समाप्त कर एकान्त स्थानसे निकल बाहर मैदानमें बैठे ॥१०२॥ उसी समय चतुर्विध संघ तथा शालिग्रामवासी लोग उन योगिराजके पास आये सो यह दृश्य देख आश्चर्यचकित हो बोले कि अरे ! ये कौन पापी हैं ? हाय हाय कष्ट पहुँचानेके लिए उद्यत इन पापियोंको धिक्कार है । अरे ये उपद्रव करनेवाले तो वे ही आततायी अग्निभूति और वायुभूति हैं ॥१०३-१०४॥ अग्निभूति और वायुभूति भी विचार करने लगे कि अहो ! महामुनिका यह कैसा उत्कृष्ट प्रभाव है कि जिन्होंने बलका दर्प रखनेवाले हम लोगोंको कीलकर स्थावर बना दिया ॥१०५॥ इस अवस्थासे छुटकारा होनेपर यदि हम जीवित रहेंगे तो इन उत्तम मुनिराजके दर्शन अवश्य करेंगे ॥१०६॥ इसी बीचमें घबड़ाया हुआ सोमदेव अपनी अग्निला स्त्रीके साथ वहाँ आ पहुँचा और उन मुनिराजको प्रसन्न करने लगा ॥१०७॥ पैर दबानेमें तत्पर दोनों ही स्त्री पुरुष, बार-बार प्रणाम करके तथा अनेक

जीवतां देव दुःपुत्रावेतौ नः कोपमुत्सृज । सम्प्रेष्यवान्धवा नाथ वयमाज्ञाकरास्तव ॥१०६॥
 संयतो वक्ति कः कोपः साधूनां यद्ब्रवीष्यद्ः । वयं सर्वस्य सदयाः सममित्रारिवान्धवाः ॥११०॥
 प्राह यत्तोऽतिरक्ताक्षो बृहद्रथभोरनिस्वनः । माऽभ्याख्यानं गुरोरस्य जनमध्ये प्रदातकम् ॥१११॥
 साधुर्वाच्य जुगुप्सन्ते सद्योऽनर्थं प्रयान्ति ते । न पश्यन्त्यात्मनो दोष्टवं दोषं कुर्वन्ति साधुषु ॥११२॥
 यथाऽऽदर्शतले कश्चिदात्मानमवलोकयन् । यादृशं कुरुते वक्त्रं तादृशं पश्यति ध्रुवम् ॥११३॥
 तद्वत्साधुं समालोक्य प्रस्थानादिक्रियोद्यतः । यादृशं कुरुते भावं तादृचं लभते फलम् ॥११४॥
 प्ररोदनं प्रहासेन कलहं परुषोक्तिः । वधेन मरणं प्रोक्तं विद्वेषेण च पातकम् ॥११५॥
 इति साधोर्नियुक्तेन परिनिन्द्येन वस्तुना । फलेन तादृशेनैव कर्त्ता योगमुपारुते ॥११६॥
 एतौ स्वोपचितैर्दोषैः प्रेर्यमाणौ स्वकर्मभिः । तत्र पुत्रौ मया विप्र स्तम्भितौ न हि साधुना ॥११७॥
 वेदाभिमाननिर्दग्धावेतौ बृहद्वचनापकौ । त्रियेतां धिक्क्रियाचारौ संयतस्यात्तितायिनौ ॥११८॥
 इति जल्पन्तमत्युग्रं यत् प्रतिघर्भाषणम् । प्रसादयति साधुं च विप्रः प्राञ्जलिमस्तकः ॥११९॥
 उद्धर्त्वाबाहुः परिक्रोशन्निन्दयन्ताडयन्पुरः । ससमग्निलया विप्रो विप्रकीर्णामकोऽभवत् ॥१२०॥

मीठे वचन कहकर उनकी सेवा करने लगे ॥१०८॥ उन्होंने कहा कि हे देव ! ये मेरे दुष्ट पुत्र जीवित रहें, क्रोध छोड़िए, हे नाथ ! हम सब भाई-बान्धवों सहित आपके आज्ञा-कारि हैं ॥१०६॥

इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि मुनियोंको क्या क्रोध है ? जो तुम यह कह रहे हो, हम तो सबके ऊपर दयासहित हैं तथा मित्र शत्रु भाई बान्धव आदि सब हमारे लिए समान हैं ॥११०॥ तदनन्तर जिसके नेत्र अत्यन्त लाल थे ऐसा यक्ष अत्यधिक गम्भीर स्वरमें बोला कि यह कार्य इन गुरु महाराजका है ऐसा जनसमूहके बीच नहीं कहना चाहिए ॥१११॥ क्योंकि जो मनुष्य साधुओंको देखकर उनके प्रति घृणा करते हैं वे शीघ्र ही अनर्थको प्राप्त होते हैं । दुष्ट मनुष्य अपनी दुष्टता तो देखते नहीं और साधुओंपर दोष लगाते हैं ॥११२॥ जिस प्रकार दर्पणमें अपने आपको देखता हुआ कोई मनुष्य मुखको जैसा करता है उसे अवश्य ही वैसा देखता है ॥११३॥ उसी प्रकार साधुको देखकर सामने जाना, खड़े होना आदि क्रियाओंके करनेमें उद्यत मनुष्य जैसा भाव करता है वैसा ही फल पाता है ॥११४॥ जो मुनिकी हँसी करता है वह उसके बदले रोना प्राप्त करता है । जो उनके प्रति कठोर शब्द कहता है वह उसके बदले कलह प्राप्त करता है, जो मुनिको मारता है वह उसके बदले मरणको प्राप्त होता है जो उनके प्रति विद्वेष करता है वह उसके बदले पाप प्राप्त करता है ॥११५॥ इस प्रकार साधुके विषयमें किये हुए निन्दनीय कार्यसे उसका करनेवाला वैसा ही कार्यके साथ समागम प्राप्त करता है ॥११६॥ हे विप्र ! तेरे ये पुत्र अपने ही द्वारा संचित दोष और अपने ही द्वारा कृत कर्मोंसे प्रेरित होते हुए मेरे द्वारा कीले गये हैं साधु महाराजके द्वारा नहीं ॥११७॥ जो वेदके अभिमानसे जल रहे हैं, अत्यन्त कठिन हैं, निन्दनीय क्रियाका आचरण करनेवाले हैं तथा संयमी साधुकी हिंसा करनेवाले हैं ऐसे तेरे ये पुत्र मृत्युको प्राप्त हों इसमें क्या हानि है ? ॥११८॥ हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये हुए ब्राह्मण, इस प्रकार कहते हुए, तीव्र, क्रोध युक्त तथा शत्रु भयदायी यक्ष और मुनिराज—दोनोंको प्रसन्न करने लगा ॥११९॥ जिसने अपनी मुञ्जा ऊपर उठाकर रक्खी थी, जो अत्यधिक चिल्लाता था, अपनी तथा अपने पुत्रोंकी निन्दा करता था, और अपनी छाती पीट रहा था ऐसा विप्र अग्निलाके साथ अत्यन्त पीड़ित हो रहा था ॥१२०॥

१. कुटिलौ श्री० टि० । २. शत्रुभयंकरम् । ३. विप्रकीर्णः पीडितः श्री० टि० ।

गुरुराह ततः कान्त हे यत्त कमलेक्षण । मृष्यतामनयोर्दोषो मोहप्रजडचित्तयोः ॥१२१॥
 जिनशासनवात्सल्यं कृतं सुकृतिना स्वया । नैतं प्राणिवधं भद्रं मदर्थं कर्तुं महसि ॥१२२॥
 यथाऽऽज्ञापयतीत्युक्त्वा गुह्यकेन विसर्जितौ । आश्वस्योपसृतौ भक्त्या पादमूलं गुरोस्ततः ॥१२३॥
 नम्रौ प्रदक्षिणां कृत्वा शिरःस्थकरकुड्मली । सायर्वायां महाचर्यां प्रहीतुं शक्तिवर्जितौ ॥१२४॥
 अणुव्रतानि गृह्णीतां सम्यग्दर्शनभूवितौ । अमूढौ श्रावकौ जातौ गृहधर्मसुखे रतौ ॥१२५॥
 पितरावनयोः सम्यक्श्रद्धयाऽपरिकीर्तितौ । कालं गतौ विना र्धर्माङ्गमितौ भवसागरे ॥१२६॥
 तौ तु सम्यक्तसन्देहौ जिनशासनभावितौ । हिंसाद्यं लौकिकं कार्यं वर्जयन्तौ विषं यथा ॥१२७॥
 कालं कृत्वा समुत्पन्नौ सौधर्मं विबुधोत्तमौ । सर्वेन्द्रियमनोह्लादं यत्र दिव्यं महत्सुखम् ॥१२८॥
 एथायोध्यां समुद्रस्य धारिण्याः कृत्तिसम्भवौ । नन्दनौ नयनानन्दी श्रेष्ठिनस्तौ बभूवतुः ॥१२९॥
 पूर्णकाञ्चनभद्राख्यौ भ्रातरावेव तौ सुखम् । पुनः श्रावकधर्मेण गतौ सौधर्मदेवताम् ॥१३०॥
 अयोध्यानगरीन्द्रस्य हेमनाभस्य भामिनी । नाञ्जाऽमरावती तस्यां समुत्पन्नौ दिवश्च्युतौ ॥१३१॥
 जगतीह प्रविश्याती संज्ञया मधुकैटभौ । अजय्यौ भ्रातरौ चारु कृतान्तसमविभ्रमौ ॥१३२॥
 ताभ्यामिभ्यं समाक्रान्ता मही सामन्तसङ्घा । स्थापिता स्वतशो राजन् प्रज्ञाभ्यां शैमुषी यथा ॥१३३॥
 नेच्छ्याज्ञां नरेन्द्रैको भीमो नाम महाबलः । शैलान्तः पुरमाश्रित्य चमरो नन्दनं यथा ॥१३४॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे कमललोचन ! सुन्दर ! यत्त ! जिनका चित्त मोहसे अत्यन्त जड़ हो रहा है ऐसे इन दोनोंका दोष क्षमा कर दिया जाय ॥१२१॥ तुम्हें पुण्यात्माने जिन-शासनके साथ वात्सल्य दिखलाया यह ठीक है किन्तु हे भद्र ! मेरे निमित्त यह प्राणिवध करना उचित नहीं है ॥१२२॥ तत्पश्चान् 'जैसी आप आज्ञा करें' यह कहकर यत्तने दोनों विप्र-पुत्रोंको छोड़ दिया । तदनन्तर दोनों ही विप्र-पुत्र समाधान होकर भक्तिपूर्वक गुरुके चरण-मूलमें पहुँचे ॥१२३॥ और दोनोंने ही हाथ जोड़ मस्तकसे लगा प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया तथा साधु दीक्षा प्रदान करनेकी प्रार्थना की । परन्तु साधु-सम्बन्धी कठिन चर्याको ग्रहण करनेके लिए उन्हें शक्तिरहित देख मुनिराजने कहा कि तुम दोनों सम्यग्दर्शनसे विभूषित होकर अणुव्रत ग्रहण करो ! आज्ञानुसार वे गृहस्थ धर्मके सुखमें लीन विवेकी श्रावक हो गये ॥१२४-१२५॥ इनके माता-पिता समोचीन श्रद्धासे रहित थे इसलिए मरकर धर्मके विना संसार सागरमें भ्रमण करते रहे ॥१२६॥ परन्तु अग्निभूति और वायुभूति संदेह छोड़ जिनशासनकी भावनासे ओत-प्रोत हो गये थे, तथा हिंसादिक लौकिक कार्य उन्होंने विषके समान छोड़ दिये थे इसलिए वे मरकर उस सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुए जहाँ कि समस्त इन्द्रियों और मनको आह्लादित करनेवाला दिव्य महान् सुख उपलब्ध था ॥१२७-१२८॥

तदनन्तर वे दोनों अयोध्या आकर वहाँके समुद्र सेठकी धारिणी नामक स्त्रीके उदरसे नेत्रोंको आनन्द देनेवाले पुत्र हुए ॥१२९॥ पूर्णभद्र और काञ्चनभद्र उनके नाम थे । ये दोनों भाई सुखसे समय व्यतीत करते थे । तदनन्तर पुनः श्रावक धर्म धारणकर उसके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुए ॥१३०॥ अबकी बार वे दोनों, स्वर्गसे च्युत हो अयोध्या नगरीके राजा हेमनाभ और उनकी रानी अमरावतीके इस संसारमें मधु, कैटभ नामसे प्रसिद्ध पुत्र हुए । ये दोनों भाई अजेय, सुन्दर तथा यमराजके समान विभ्रमको धारण करनेवाले थे ॥१३१-१३२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिस प्रकार विद्वान् लोग अपनी बुद्धको अपने आधीन कर लेते हैं उसी प्रकार इन दोनोंने सामन्तोंसे भरी हुई इस पृथिवीको आक्रमण कर अपने आधीन कर लिया था ॥१३३॥ किन्तु एक भीम नामका महाबलवान् राजा उनकी आज्ञा नहीं मानता था । जिस

वीरसेनेन लेखश्च प्रेषितस्तस्य भूपतेः । उद्धासितानि धामानि पृथिव्यां भीमवह्निना ॥१३५॥
 ततो मधु जग्नं क्रुद्धो भीमकस्योपरि द्रुतम् । ययौ सर्वबलौघेन युक्तो योधैः समन्ततः ॥१३६॥
 क्रमान्तमार्गवशात्प्राप्तो न्यग्रोधनगरं च तत् । वीरसेनो नृपो यत्र प्रीतियुक्तो विवेश च ॥१३७॥
 चन्द्राभा चन्द्रकान्तास्या वीरसेनस्य मामिनी । देवी निरीक्षिता तेन मधुना जगदिन्दुना ॥१३८॥
 अनया सह संवासो वरं विन्ध्यवनान्तरे । चन्द्राभया विना भूतं न राज्यं सार्वभूमिकम् ॥१३९॥
 इति सञ्चिन्तयन् राजा भीमं निजित्य संयुगे । आस्थापयद्दशे शत्रून्नन्यांश्च तत्कृताशयः ॥१४०॥
 अयोध्यां पुनरागत्य सपत्नीकाक्षराधिपान् । आहूय विपुलैर्दानैर्विसर्जयति मानितान् ॥१४१॥
 आहूतो वीरसेनोऽपि सह पत्न्या ययौ द्रुतम् । अयोध्यावहिरुद्याने मध्येऽस्थात्सरयूतटे ॥१४२॥
 देव्या सह समाहूतः प्रविष्टो भवनं मधोः । उदारदानसन्मानो वीरसेनो विसर्जितः ॥१४३॥
 अद्यापि मन्यते नेयमिति रुद्धा मनोहरा । चन्द्राभा नरचन्द्रेण प्रेषितान्तःपुरं ततः ॥१४४॥
 महादेव्यभिषेकेण प्रापिता चाभिषेचनम् । आरूढा सर्वदेवीनामुपरिस्थितमास्पदम् ॥१४५॥
 श्रियेव स तथा साकं निमग्नः सुखसागरे । स्वं सुरेन्द्रसमं मेने भोगान्धोक्तमानसः ॥१४६॥

प्रकार चमरेन्द्र नन्दन चनको पाकर प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार वह पहाड़ी दुर्गका आश्रय कर प्रफुल्लित था ॥१३४॥ राजा मधुके एक भक्त सामन्त वीरसेनेने उसके पास इस आशयका पत्र भी भेजा कि हे नाथ ! इधर भीमरूपी अग्निने पृथिवीके समस्त घर उजाड़ कर दिये हैं ॥१३५॥

तदनन्तर उसी जग्न क्रोधको प्राप्त हुआ राजा मधु, अपनी सब सेनाओंके समूह तथा योधाओंसे परिवृत हो राजा भीमके प्रति चले पड़ा ॥१३६॥ क्रम-क्रमसे चलता हुआ वह मार्ग-वश उस न्यग्रोध नगरमें पहुँचा जहाँ कि उसका भक्त वीरसेन रहता था । राजा मधुने बड़े प्रेमके साथ उसमें प्रवेश किया ॥१३७॥ वहाँ जाकर जगत्के चन्द्र स्वरूप राजा मधुने वीरसेनकी चन्द्राभा नामकी चन्द्रमुखी भार्या देखी । उसे देखकर वह विचार करने लगा कि इसके साथ विन्ध्याचलके वनमें निवास करना अच्छा है । इस चन्द्राभाके विना मेरा राज्य सार्वभूमिक नहीं है—अपूर्ण है ॥१३८-१३९॥ ऐसा विचार करता हुआ राजा उस समय आगे चला गया और युद्धमें भीमको जीतकर अन्य शत्रुओंको भी उसने वश किया । परन्तु यह सब करते हुए भी उसका मन उसी चन्द्राभामें लगा रहा ॥१४०॥ फलस्वरूप उसने अयोध्या आकर राजाओंको अपनी-अपनी पत्नियोंके सहित बुलाया और उन्हें बहुत भारी भेंट देकर सम्मानके साथ विदा कर दिया ॥१४१॥ राजा वीरसेनकी भी बुलाया सो वह अपनी पत्नीके साथ शीघ्र ही गया और अयोध्याके बाहर बगीचेमें सरयू नदीके तटपर ठहर गया ॥१४२॥ तदनन्तर सन्मानके साथ बुलाये जानेपर उसने अपनी रानीके साथ मधुके भवनमें प्रवेश किया । कुछ समय बाद उसने विशेष भेंटके द्वारा सन्मान कर वीरसेनको तो विदा कर दिया और चन्द्राभाको अपने अन्तःपुरमें भेज दिया परन्तु भोला वीरसेन अब भी यह नहीं जान पाया कि हमारी सुन्दरी प्रिया यहाँ रोक ली गई है ॥१४३-१४४॥

तदनन्तर महादेवीके अभिषेक द्वारा, अभिषेकको प्राप्त हुई चन्द्राभा सब देवियोंके ऊपर स्थानको प्राप्त हुई । भावार्थ—सब देवियोंमें प्रधान देवी बन गई ॥१४५॥ भोगोंसे जिसका मन अन्धा हो रहा था ऐसा राजा मधु, लक्ष्मीके समान उस चन्द्राभाके साथ सुखरूपी सागरमें निमग्न होता हुआ अपने आपको इन्द्रके समान मानने लगा ॥१४६॥

वीरसेननृपः सोऽयं विज्ञाय विहृतां प्रियाम् । उन्मत्तत्वं परिप्राप्तो रतिं कापि न विन्दते ॥१४७॥
 मण्डवस्याभवच्छिष्यस्तापसोऽसौ जलप्रियः । मूर्धं विस्मापयंल्लोकं तपः पञ्चाग्निकं श्रितः ॥१४८॥
 अन्यदा मधुराजेन्द्रो धर्मासनमुपागतः । करोति मन्त्रिभिः सार्द्धं व्यवहारविचारणम् ॥१४९॥
 भूपालाचारसम्पन्नं सत्यं सम्मदसङ्गतम् । प्रविष्टोऽन्तःपुरं धीरस्तपनेऽस्ताभिलाषुके ॥१५०॥
 खिन्ना तं प्राह चन्द्राभा किमित्यद्य चिरायितम् । वयं क्षुद्वर्दिता नाथ दुःखं वेलाभिमां स्थिताः ॥१५१॥
 सोऽबोचद्व्यवहारोऽयमरालः पारदारिकः । ज्ञेत्तुं न शक्यते यस्मात्तस्मादद्य चिरायितम् ॥१५२॥
 विहस्योवाच चन्द्राभा को दोषोऽन्यप्रियारतौ । परभार्या प्रिया यस्य तं पूजय यथेप्सितम् ॥१५३॥
 तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा क्रुद्धो मधुविभुर्जगौ । ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न संशयः ॥१५४॥
 दण्ड्याः पञ्चकदण्डेन निर्वास्याः पुरुषाधमाः । स्पृशन्तोऽभ्यवलामन्यां भाषयन्तोऽपि दुर्मताः ॥१५५॥
 सन्मूढाः परदारेषु ये पापादनिवर्त्तिनः । अधः प्रपतनं येषां ते पूज्याः कथमार्दशाः ॥१५६॥
 देवी पुनरुवाचेदं सहसा कमलेक्षणा । अहो धर्मपरो जातु भवान् भूपालनोद्यतः ॥१५७॥
 महान् यद्येष दोषोऽस्ति परदारैर्पिणां नृणाम् । एतं निग्रहसुर्वीश न करोषि किमारमनः ॥१५८॥
 प्रथमस्तु भवानेव परदाराभिगामिनाम् । कोऽन्येषां क्रियते दोषो यथा राजा तथा प्रजाः ॥१५९॥
 स्वयमेव नृपो यत्र नृशंसः पारदारिकः । तत्र किं व्यवहारेण कारणं स्वस्थतां प्रज ॥१६०॥

इधर राजा वीरसेनको जब पता चला कि हमारी प्रिया हरी गई है तो वह पागल हो गया और किसी भी स्थानमें रतिको प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् उसे कहीं भी अच्छा नहीं लगा ॥१४७॥ अन्तमें मूर्ख मनुष्योंको आनन्द देनेवाला राजा वीरसेन किसी मण्डवनामक तापसका शिष्य हो गया और मूर्ख मनुष्योंको आश्चर्यमें डालता हुआ पञ्चाग्नितप तपने लगा ॥१४८॥

किसी एक दिन राजा मधु धर्मासनपर बैठकर मन्त्रियोंके साथ राज्यकार्यका विचार कर रहा था । सो ठीक ही है क्योंकि राजाओंके आचारसे सम्पन्न सत्य ही हर्षदायक होता है । उस दिन राज्यकार्यमें व्यस्त रहनेके कारण धीरवीर राजा अन्तःपुरमें तब पहुँचा जब कि सूर्य अस्त होनेके सन्मुख था ॥१४९-१५०॥ खेदखिन्न चन्द्राभाने राजासे कहा कि नाथ ! आज इतनी देर क्यों की ? हमलोग भूखसे अबतक पीडित रहे ॥१५१॥ राजाने कहा कि यतश्च यह परस्त्री सम्बन्धी व्यवहार (मुकहमा) देहा व्यवहार था अतः बीचमें नहीं छोड़ा जा सकता था इसीलिए आज देर हुई है ॥१५२॥ तब चन्द्राभाने हँसकर कहा कि परस्त्रीसे प्रेम करनेमें दोष ही क्या है ? जिसे परस्त्री प्यारी है उसकी तो इच्छानुसार पूजा करनी चाहिए ॥१५३॥ उसके उक्त वचन सुन राजा मधुने क्रुद्ध होकर कहा कि जो दुष्ट परस्त्री-लम्पट हैं वे अवश्य ही दण्ड देनेके योग्य हैं इसमें संशय नहीं है ॥१५४॥ जो परस्त्रीका स्पर्श करते हैं अथवा उससे वार्तालाप करते हैं ऐसे दुष्ट नीच पुरुष भी पाँच प्रकारके दण्डसे दण्डित करने योग्य हैं तथा देशसे निकालनेके योग्य हैं फिर जो पापसे निवृत्त नहीं होनेवाले परस्त्रियोंमें अत्यन्त मोहित हैं अर्थात् परस्त्रीका सेवन करते हैं उनका तो अधःपात—नरक जाना निश्चित ही है ऐसे लोग पूजा करने योग्य कैसे हो सकते हैं ? ॥१५५-१५६॥ तदनन्तर कमललोचना देवी चन्द्राभाने बीचमें ही बात काटते हुए कहा कि अहो ! आप बड़े धर्मात्मा हैं ? तथा पृथिवीका पालन करनेमें उद्यत हैं ॥१५७॥ यदि परदाराभिलाषी मनुष्योंका यह बड़ा भारी दोष माना जाता है तो हे राजन् ! अपने आपके लिए भी आप यह दण्ड क्यों नहीं देते ? ॥१५८॥ परस्त्रीगामियोंमें प्रथम तो आप ही हैं फिर दूसरोंको दोष क्यों दिया जाता है क्योंकि यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है ॥१५९॥ जहाँ राजा स्वयं क्रूर एवं परस्त्रीगामी है वहाँ व्यवहार-अभियोग

येन बीजाः प्ररोहन्ति जगत्सो यच्च जीवनम् । जातस्ततो जलाद्बहिः किमिहापरमुच्यताम् ॥१६१॥
 उपलभ्येदशं वाक्यं प्रतिरुद्धोऽभवन्मधुः । एवमेवेति तां देवीं पुनः पुनरभाषत ॥१६२॥
 तथाप्यैश्वर्यपाशेन वेष्टितो दुःसुखोदधेः । भोगसर्ववर्त्तनी येन कर्मणा नावमुच्यते ॥१६३॥
 द्वावीयसि गते काले सुप्रबोधसुखान्विते । सिंहपादाद्द्वयः साधुः प्राप्तोऽयोध्यां महागुणः ॥१६४॥
 सहस्राश्रवणे कान्ते मुनीन्द्रं समवस्थितम् । श्रुत्वा मधुः समायासीत्सपत्नीकः सहानुगः ॥१६५॥
 गुरुं प्रणम्य विधिना संविरच धरणीतले । धर्मं संश्रुत्य जैनेन्द्रं भोगेभ्यो विरतोऽभवत् ॥१६६॥
 राजपुत्री महागोत्रा रूपेणाप्रतिमा भुवि । अत्याहोदधिराज्यं च ज्ञात्वा दुर्गतिवेदनान् ॥१६७॥
 विदित्वैश्वर्यमानायायं मुनीभूतः स कैटभः । महाचर्यासमाक्लिष्टो विजहार महीं मधुः ॥१६८॥
 ररच्च माधवीं क्षोणीं राज्यं च कुलवर्द्धनः । सर्वस्य नयनानन्दः स्वजनस्य परस्य च ॥१६९॥

वंशस्थवृत्तम्

मधुः सुघोरं परमं तपश्चरन्महामनाः वर्षशतानि भूरिशः ।
 विधाय कालं विधिनाऽऽरणाच्युते जगाम देवेन्द्रपदं रणच्युतः ॥१७०॥

उपजातिः

अयं प्रभावो जिनशासनस्य यदिन्द्रतापीदशपूर्ववृत्तैः ।
 को विस्मयो वा त्रिदशेश्वरस्त्वे प्रयान्ति यन्मोक्षपुरं प्रयत्नात् ॥१७१॥

देखनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? सर्वप्रथम आप स्वस्थताको प्राप्त होइए ॥१६०॥ जिससे अङ्गुलीकी उत्पत्ति होती है तथा जो जगत्का जीवनस्वरूप है उस जलसे भी यदि अग्नि उत्पन्न होती है तब फिर और क्या कहा जाय ? ॥१६१॥ इस प्रकारके वचन सुनकर राजा मधु निरुत्तर हो गया और 'इसी प्रकार है' यह वचन बार-बार चन्द्राभासे कहने लगा ॥१६२॥ इतना सब हुआ फिर भी ऐश्वर्यरूपी पाशसे वेष्टित हुआ वह दुःखरूपी सागरसे निकल नहीं सका सो ठीक है क्योंकि भोगोंमें आसक्त मनुष्य कर्मसे छूटता नहीं है ॥१६३॥

अथानन्तर सम्यक्प्रबोध और सुखसे सहित बहुत भारी समय बीत जानेके बाद एक बार महागुणोंके धारक सिंहपादनामक मुनि अयोध्या आये ॥१६४॥ और वहाँके अत्यन्त सुन्दर सहस्राभ वनमें ठहर गये । यह सुन अपनी पत्नी तथा अनुचरोंसे सहित राजा मधु उनके पास गया ॥१६५॥ वहाँ विधिपूर्वक गुरुको प्रणामकर वह पृथिवीतलपर बैठ गया तथा जैनेन्द्र प्रतिपादित धर्म श्रवणकर भोगोंसे विरक्त हो गया ॥१६६॥ जो उच्च कुलीन थी तथा सौन्दर्यके कारण जो पृथ्वीपर अपनी सानी नहीं रखती थी ऐसी राजपुत्री तथा विशाल राज्यको उसने दुर्गतिकी वेदना जान तत्काल छोड़ दिया ॥१६७॥ उधर मधुका भाई कैटभ भी ऐश्वर्यको चञ्चल जानकर मुनि हो गया । तदनन्तर मुनिव्रतरूपी महाचर्यासे क्लेशका अनुभव करता हुआ मधु पृथ्वीपर विहार करने लगा ॥१६८॥ स्वजन और परजन-सभीके नेत्रोंको आनन्द देनेवाला कुलवर्द्धन राजा मधुकी विशाल पृथ्वी और राज्यका पालन करने लगा ॥१६९॥ महामनस्वी मधुमुनि सैकड़ों वर्षों तक अत्यन्त कठिन एवं उत्कृष्ट तपश्चरण करते रहे । अन्तमें विधिपूर्वक मरणकर रणसे रहित आरणाच्युत स्वर्गमें इन्द्रपदको प्राप्त हुए ॥१७०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो ! जिनशासनका प्रभाव आश्चर्यकारी है क्योंकि जिनका पूर्वजीवन ऐसा निन्दनीय रहा उन लोगोंने भी इन्द्रपद प्राप्त कर लिया । अथवा इन्द्रपद प्राप्त कर लेनेमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि प्रयत्न

अनुष्टुप्

मधोरिन्द्रस्य संभूतिरेषा ते कथिता मया । सीता यस्य प्रतिस्पर्द्धी संभूतः पाकशासनः ॥१७२॥

वंशस्थवृत्तम्

अतः परं चित्तहरं मनीषिणां कुमारवाराष्टकचेष्टितं परम् ।

वदामि पापस्य विनाशकारणं कुरु श्रुतौ श्रेणिक भूभृतां रवे ॥१७३॥

इत्यार्षेः श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मधुपाख्यानं नाम नवोत्तरशतं पर्व ॥१०६॥



करनेसे तो मोक्षनगर तक पहुँच जाते हैं ॥१७१॥ हे श्रेणिक ! मैंने तेरे लिए उस मधु इन्द्रकी उत्पत्ति कही जिसकी कि प्रतिस्पर्धा करनेवाली सीता प्रतीन्द्र हुई है ॥१७२॥ हे राजाओंके सूर्य ! श्रेणिक महाराज ! अब मैं इसके आगे विद्वानोंके चित्तको हरनेवाला, आठ वीर कुमारोंका वह चरित्र कहता हूँ कि जो पापका नाश करनेवाला है, उसे तू श्रवण कर ॥१७३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मधुका वर्यान करनेवाला एक सौ नौवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥१०६॥



दशाधिकशतं पर्व

काञ्चनस्थाननाथस्य तनये रूपगविते । द्वे काञ्चनरथस्याऽऽस्तां ययोर्माता शतहृदा ॥१॥
तयोः स्वयंवरार्थेन समस्तान् भूजभक्षरान् । आह्वाययत्पिता प्रीत्या लेखवाहैर्महाजवैः ॥२॥
दत्तो विज्ञापितो लेखो विनीतापतये^१ तथा । स्वयंवरविधानं मे दुहितुश्चिन्त्यतामिति ॥३॥
ततस्ती रामलक्ष्मीशौ समुत्पन्नकुतूहलौ । ऋद्धया परमया युक्तान् सर्वान् प्राहिणुतां सुतान् ॥४॥
ततः कुमारधीरास्ते कृत्वाऽग्ने लवणाङ्कुशौ । प्रययुः काञ्चनस्थानं सुप्रेमाणः परस्परम् ॥५॥
विमानशतमारूढा विद्याधरगणावृताः । श्रिया देवकुमाराभा वियन्मार्गं समागताः ॥६॥
आपूर्यमाणससैन्याः पश्यन्तो दूरगां महीम् । काञ्चनस्थानन्दनस्याऽऽयुः पुटभेदनसुत्तमम् ॥७॥
यथाहं द्वे अपि श्रेण्यौ निविष्टे तत्र रेजतुः । सदसीव सुधर्मायां नानालङ्कारभूषिते ॥८॥
समस्तविभवोपेता नरेन्द्रास्तत्र रेजिरे । विचित्रकृतसञ्ज्ञेष्टास्त्रिदशा इव नन्दने ॥९॥
तत्र कन्ये दिनेऽन्यस्मिन्प्रशस्ते कृतमङ्गले । निर्जग्मतुर्निजावासाद्भ्रौं लक्ष्म्याविव सद्गुणे ॥१०॥
देशतः कुलतो विद्याधेष्टितामभ्येतः । ताभ्यामकथयत्सर्वान् कञ्चुकी जगतोपतीन् ॥११॥
प्लवङ्गहरिशार्दूलवृषणागादिकेतनान् । विद्याधरान् सुकन्ये ते आलोकेतां शनैः क्रमात् ॥१२॥
दृष्ट्वा निश्चिष्य ते प्राप्ता वैलक्ष्यं^३ विहितत्विषः । इश्यमानाः समारूढास्तुलां सन्देहविग्रहाम् ॥१३॥

अथानन्तर काञ्चनस्थान नामक नगरके राजा काञ्चनरथकी दो पुत्रियाँ थीं जो सौन्दर्यके गर्वसे गर्वित थीं तथा जिनकी माताका नाम शतहृदा था ॥१॥ उन दोनों कन्याओंके स्वयंवरके लिए उनके पिताने महावेगशाली पत्रवाहक दूत भेजकर समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंको बुलवाया ॥२॥ एक पत्र इस आशयका अयोध्याके राजाके पास भी भेजा गया कि मेरी पुत्रीका स्वयंवर है अतः विचारकर कुमारोंको भेजिए ॥३॥ तदनन्तर जिन्हें कुतूहल उत्पन्न हुआ था ऐसे राम और लक्ष्मणने परम सम्पदासे युक्त अपने सब कुमार वहाँ भेजे ॥४॥ तत्पश्चात् परस्पर प्रेमसे भरे हुए, वे सब कुमार, लवण और अंकुशको आगेकर काञ्चनस्थानकी ओर चले ॥५॥ सैकड़ों विमानोंमें बैठे, विद्याधरोंके समूहसे आवृत एवं लक्ष्मीसे देवकुमारोंके समान दिखनेवाले वे सब कुमार आकाश-मार्गसे जा रहे थे ॥६॥ जिनकी सेना उत्तरोत्तर बढ़ रही थी तथा जो दूर छूटी पृथिवीको देखते जाते थे ऐसे सब कुमार काञ्चनरथके उत्तम नगरमें पहुँचे ॥७॥ वहाँ देव-सभाके समान सुशोभित सभामें नाना अलंकारोंसे भूषित यथायोग्य स्थापित विद्याधरों और भूमिगोचरियोंकी दोनों श्रेणियाँ सुशोभित हो रहीं थीं ॥८॥ समस्त वैभवोंसे सहित राजा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हुए उन श्रेणियोंमें उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह कि नन्दन वनमें देव सुशोभित होते हैं ॥९॥

वहाँ दूसरे दिन जिनका मङ्गलाचार किया गया था तथा जो उत्तम गुणोंको धारण करने वाली थी ऐसी दोनों कन्याएँ ही और लक्ष्मीके समान अपने निवास-स्थानसे बाहर निकली ॥१०॥ स्वयंवर-सभामें जो राजा आये थे कंचुकीने उन सबका देश, कुल, धन, चेष्टा तथा नामकी अपेक्षा दोनों कन्याओंके लिए वर्णन किया ॥११॥ ये सब वातर, सिंह, शार्दूल, वृषभ तथा नाग आदिकी पताकाओंसे सहित विद्याधर बैठे हैं । हे उत्तम कन्याओ ! इन्हें तुम क्रम क्रम से देखो ॥१२॥ उन कन्याओंको देखकर जो लज्जाको प्राप्त हो रहे थे तथा जिनकी कान्ति फीकी

१. अयोध्यापतये । २. ऋशीलक्ष्म्याविव म० । ३. विहितत्विषः म० ।

दृश्यन्ते ये तु ते स्वस्य सज्जयन्तो विभूषणम् । नाज्ञासिषुः क्रियाः कृत्यास्तिष्ठाम इति चञ्चलाः ॥१४॥
 प्रवरिष्यति कं त्वेषा रूपगर्वज्वराकुला । मन्येऽस्माकमिति प्राप्ताश्चिन्तां ते चलमानसाः ॥१५॥
 गृहीते किं विजिष्यैते सुरासुरजगद्द्वयम् । पताके कामदेवेन लोकोन्मादनकारणे ॥१६॥
 अथोत्तमकुमार्यौ ते निरीक्ष्य लवणाङ्कुशौ । विद्धे मग्मधवाणेन निश्चलत्वमुपागते ॥१७॥
 महादृष्ट्याऽनुरागेण बद्धयातिमनोहरः । अनङ्गलवणोऽप्राहि मन्दाकिन्याऽप्रकन्यया ॥१८॥
 शशाङ्गवक्त्रया चारुभाग्यया वरकन्यया । शशाङ्गभाग्यया युक्तो जगृहे मदनाङ्कुशः ॥१९॥
 ततो हलहलारावस्तस्मिन् सैन्ये समुत्थितः । जयोत्कृष्टहरिस्वानसहितः परमाकुलः ॥२०॥
 मन्ये व्यपाटयन् व्योम हरितो वा समन्ततः । उड्डीयमानैर्लोकस्य मनोभिः परमत्रपैः ॥२१॥
 अहो सदृशसम्बन्धो दृष्टोऽस्माभिरयं परः । गृहीतो यत्सुकन्याभ्यामेतौ पद्माभनन्दनौ ॥२२॥
 गम्भीरं भुवनराख्यातमुदारं लवणं गता । मन्दाकिनी यदेतं हि नापूर्णं कृतमेतया ॥२३॥
 जेतुं सर्वजगत्कान्तिं चन्द्रभाग्या समुद्यता । अकरोत्स्वाधु यद्योग्यं मदनाङ्कुशमग्रहीत् ॥२४॥
 इति तत्र विनिश्चरुः सज्जनानां गिरः पराः । सतां हि साधुसम्बन्धाच्चित्तमानन्दमीयते ॥२५॥
 विशल्यादिमहादेवीनन्दनाश्चास्वेतसः । अष्टौ कुमारवीरस्ते प्रख्याता वसवो यथा ॥२६॥
 शतैरर्द्धतृतीयैर्वा भ्रातॄणां प्रीतिमानसैः । युक्तास्तारागणान्तस्था प्रहा इव विरेजिरे ॥२७॥

पढ़ गई थी ऐसे राजकुमार उन कन्याओंके द्वारा देखे जाकर संशयकी तराजूपर आरूढ़ हो रहे थे ॥१३॥ जो राजकुमार उन कन्याओंके द्वारा देखे जाते थे वे अपने आभूषणोंको सजाते हुए करने योग्य क्रियाओंको भूल जाते थे तथा हम कहाँ बैठे हैं यह भूल चञ्चल हो उठते थे ॥१४॥ सौन्दर्यरूपी गर्वके ज्वरसे आकुल यह कन्या हम लोगोंमेंसे किसे वरेगी इस चिन्ताको प्राप्त हुए राजकुमार चञ्चलचित्त हो रहे थे ॥१५॥ वे उन कन्याओंको देखकर विचार करने लगते थे कि क्या देव और दानवोंके दोनों जगत्को जीतकर कामदेवके द्वारा ग्रहण की हुई, लोगोंके उन्मादकी कारणभूत ये दो पताकाएँ ही हैं ॥१६॥

अथानन्तर वे दोनों कुमारियाँ लवणाङ्कुशको देख कामवाणसे विद्ध हो निश्चल खड़ी हो गयीं ॥१७॥ उन दोनों कन्याओंमें मन्दाकिनी नामकी जो बड़ी कन्या थी उसने अनुरागपूर्ण महादृष्टिसे अनङ्गलवणको ग्रहण किया ॥१८॥ और चन्द्रमुखी तथा सुन्दर भाग्यसे युक्त चन्द्र-भाग्या नामकी दूसरी उत्तम कन्याने अपने योग्य मदनाङ्कुशको ग्रहण किया ॥१९॥ तदनन्तर उस सेनामें जयध्वनिसे उत्कृष्ट सिंहादासे सहित हलहलका तीव्र शब्द उठा ॥२०॥ ऐसा जान पड़ता था कि तीव्र लज्जासे भरे हुए लोगोंके जो मन सब ओर उड़े जा रहे थे उनसे मानों आकाश अथवा दिशाएँ ही फटी जा रही थीं ॥२१॥ उस कोलाहलके बीच समझदार मनुष्य कह रहे थे कि अहो ! हम लोगोंने यह योग्य उत्कृष्ट सम्बन्ध देख लिया जो इन कन्याओंने रामके इन पुत्रोंको ग्रहण किया है ॥२२॥ मन्दाकिनी अर्थात् गङ्गानदी, गम्भीर तथा संसारप्रसिद्ध, लवणसमुद्रके पास गयी है सो इस लवण अर्थात् अतंग लवणके पास जाती हुई इस मन्दाकिनी नामा कन्याने भी कुछ अपूर्ण अयोग्य काम नहीं किया है ॥२३॥ और सर्व जगत्की कान्तिकी जीतनेके लिए उद्यत इस चन्द्रभाग्याने जो मदनाङ्कुशको ग्रहण किया है सो अत्यन्त योग्य कार्य किया है ॥२४॥ इस प्रकार उस सभामें सज्जनोंकी उत्तम वाणी सर्वत्र फैल रही थी सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम सम्बन्धसे सज्जनोंका चित्त आनन्दको प्राप्त होता ही है ॥२५॥ लक्ष्मणकी विशल्या आदि आठ महादेवियोंके जो आठ वीर कुमार, सुन्दर चित्तके धारक, आठ वसुओंके समान सर्वत्र प्रसिद्ध थे वे प्रीतिसे भरे हुए अपने अढ़ाई सौ भाइयोंसे इस प्रकार सुरोभित हो रहे थे मानो तारागणोंके मध्यमें स्थित ग्रह ही हों ॥२६-२७॥

बलवन्तः समुद्रवृत्तास्तेऽन्ये लक्ष्मणनन्दनाः । क्रोधादुत्पतितुं शक्ता वैदेहीनन्दनी यतः ॥२८॥
 ततोऽष्टभिः सुकन्याभिः स्तदभ्रातृबलमुद्धतम् । मन्त्रैरिव शमं नीतं भुजङ्गमकुलं चलम् ॥२९॥
 प्रशान्तिं भ्रातरो यात तदभ्रातृभ्यां समं ननु । किमाभ्यां क्रियते कार्यं कन्याभ्यामधुना शुभाः ॥३०॥
 स्वभावाद्गनिता जिह्वा विशेषादन्यचेतसः । ततः सुहृदयस्तासामर्थे को विकृतिं भजेत् ॥३१॥
 अपि निजितदेवीभ्यामेताभ्यां नास्ति कारणम् । अस्माकं चेत्प्रियं कर्तुं निवर्तध्वमितो मनः ॥३२॥
 एवमष्टकुमाराणां वचनैः प्रमहैरिव । तुरङ्गमबलं वृन्दं भ्रातृणां स्थापितं वशी ॥३३॥
 वृत्तौ यत्र सुकन्याभ्यां वैदेहीतनुसम्भवौ । प्रदेशे तत्र संवृत्तस्तुमुलस्तूर्यनिस्वनः ॥३४॥
 वंशाः सकाहलाः शङ्खा भग्मोभेर्यः सक्कर्कराः । मनःश्रोत्रहरं नेटुर्व्याप्तदूरदिगन्तराः ॥३५॥
 स्वार्थवरीं समालोक्य विभूतिं लक्ष्मणात्मजाः । शुशुभुर्वीच्य देवैर्द्रामिव क्षुद्रध्वजः सुराः ॥३६॥
 नारायणस्य पुत्राः स्मो घुक्तिकान्तिपरिच्छदाः । नवयौवनसम्पन्नाः सुसहाया बलीकटाः ॥३७॥
 गुणेन केन हीनाः स्म यदेकमपि नो जनम् । परिश्रय्य वृत्तावेतौ कन्याभ्यां जानकोसुतौ ॥३८॥
 अथवा विस्मयः कोऽत्र किमर्पादं जगद्गतम् । कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्रं यच्चराचरम् ॥३९॥
 प्रागेव यद्वाप्तव्यं येन यत्र यथा यतः । तत्परिषाप्यतेऽवश्यं तेन तत्र तथा ततः ॥४०॥

वहाँ उन आठके सिवाय बलवान् तथा उत्कट चेष्टाके धारक जो लक्ष्मणके अन्य पुत्र थे वे क्रोधवश लक्षण और अंकुशकी ओर झपटनेके लिए तत्पर हो गये परन्तु उन सुन्दर कन्याओंको लक्ष्यकर उद्धत चेष्टा दिखानेवाली भाइयोंकी उस सेनाको पूर्वोक्त आठ प्रमुख वीरोंने उस प्रकार शान्त कर दिया जिस प्रकारकी मन्त्र चञ्चल सर्पोंके समूहको शान्त कर देते हैं ॥२८-२९॥ उन आठ भाइयोंने अन्य भाइयोंको समझाते हुए कहा कि 'भाइयो ! तुम सब उन दोनों भाइयोंके साथ शान्तिको प्राप्त होओ । हे भद्र जनो ! अब इन दोनों कन्याओंसे क्या कार्य किया जाना है ? कियौ स्वभावसे ही कुटिल हैं फिर जिनका चित्त दूसरे पुरुषमें लग रहा है उनका तो कहना ही क्या है ? इसलिए ऐसा कौन उत्तम हृदयका धारक है जो उनके लिए विकारको प्राप्त हो । भले ही इन कन्याओंने देवियोंकी जीत लिया हो फिर भी इनसे हम लोगोंको क्या प्रयोजन है ? इसलिए यदि अपना कल्याण करना चाहते हो तो इनकी ओरसे मनको लौटाओ' ॥३०-३२॥ इस तरह उन आठ कुमारोंके वचनोंसे भाइयोंका वह समूह उस प्रकार वशीभूत हो गया जिस प्रकार कि लगामोंसे घोड़ोंका समूह वशीभूत हो जाता है ॥३३॥ जिस स्थानमें उन उत्तम कन्याओंके द्वारा सीताके पुत्र वरे गये थे वहाँ बाजोंका तुमुलशब्द होने लगा ॥३४॥ बहुत दूर तक दिग्-दिगन्तकी व्याप्त करनेवाले, बाँसुरी, काहला, शंख, भंभा, भेरी तथा कर्कर आदि बाजे मन और कानोंको हरण करने वाले मनोहर शब्द करने लगे ॥३५॥ जिस प्रकार इन्द्रकी विभूति देख लुट्ट अद्विके धारक देव शोकको प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार स्वयंवरकी विभूति देख लक्ष्मणके पुत्र क्षोभको प्राप्त हो गये ॥३६॥ वे सोचने लगे कि हम नारायणके पुत्र हैं, दीप्ति और कान्तिसे युक्त हैं, नवयौवनसे सम्पन्न हैं, उत्तम सहायकोंसे युक्त हैं तथा बलसे प्रचण्ड हैं ॥३७॥ हम लोग किस गुणमें हीन हैं कि जिससे हम लोगोंमेंसे किसी एकको भी इन कन्याओंने नहीं वरा किन्तु उसके विपरीत हम सबको छोड़ जानकीके पुत्रोंकी वरा ॥३८॥ अथवा इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जगत्की ऐसी ही विचित्र चेष्टा है, कर्मोंकी विचित्रताके योगसे यह चराचर विश्व विचित्र ही जान पड़ता है ॥३९॥ जिसे जहाँ जिस प्रकार जिस कारणसे जो वस्तु पहले ही प्राप्त करने योग्य होती है उसे वहाँ उसी प्रकार उसी कारणसे वही वस्तु अवश्य प्राप्त होती है ॥४०॥

१. ततोऽष्टभिः म० । २. सुकन्याभिः म० ज० । ३. भुजङ्गमकुलं बलम् ज० । ४. सुहृदयः व०, क० । ५. निवर्तध्व- । ६. प्रमहैरपि म० । ७. तुरङ्गचञ्चलं म० । ८. यत्तु म० । ९. शुशुभु- म० ।

पूर्वं लक्ष्मणपुत्राणां वृन्दे प्रारब्धशोचने । ऊचे रूपवतीपुत्रः प्रहस्य गतविस्मयः ॥४१॥
 स्त्रीमात्रस्य कृते कस्मादेवं शोचत सक्तराः । चेष्टितादिति वो हास्यं परमं समजायत ॥४२॥
 किमाभ्यां निवृत्तेर्दूती लब्धा जैनेश्वरी द्युतिः । अबुधा इव यद्वयर्थं संशोचत पुनः पुनः ॥४३॥
 रम्भास्तम्भसमानानां निःसाराणां इतात्मनाम् । कामानां वशगाः शोकं हास्यं नो कर्तुं महर्थ ॥४४॥
 सर्वे शरीरिणः कर्मवशो वृत्तिमुपाश्रिताः । न तत्कुरुष्व किं येन तत्कर्म परिणश्यति ॥४५॥
 गहने भयकान्तारे प्रणष्टाः प्राणधारिणः । ईदृश्रिं यान्ति दुःखानि निरस्यत ततस्तकम् ॥४६॥
 भ्रातरः कर्मभूरेषा जनकस्य प्रसादतः । द्यौरिहावधृतास्माभिर्मोहवेष्टितबुद्धिभिः ॥४७॥
 अङ्कस्थेन पितृर्वात्ये वाच्यमानं पुरा मया । पुस्तके क्षृतमत्यन्तं सुस्वरं वस्तु सुन्दरम् ॥४८॥
 भवानां किल सर्वेषां दुर्लभो मानुषो भवः । प्राप्य तं स्वहितं यो न कुरुते स तु वञ्चितः ॥४९॥
 ऐश्वर्यं पात्रदानेन तपसा लभते दिवम् । ज्ञानेन च शिवं जीवो दुःखदां गतिमंहसा ॥५०॥
 पुनर्जन्म ध्रुवं ज्ञात्वा तपः कुर्मो न चेद् वयम् । अवाप्तव्या ततो भूयो दुर्गतिर्दुःखसङ्घाता ॥५१॥
 एवं कुमारवीरास्ते प्रतिबोधमुपागताः । संसारसागराऽसातावेदनाऽऽवर्तन्तीतिगाः ॥५२॥
 स्वरितं पितरं गत्वा प्रणम्य विनयस्थिताः । प्राहुर्मधुरमत्यर्थं रचिताञ्जलिकुण्डमलाः ॥५३॥
 तात नः शृणु विज्ञातं न विद्वन् कर्तुं महंसि । दीक्षासुपेतमिच्छामो व्रज तत्राऽनुकूलताम् ॥५४॥
 विद्युदाकालिकं ह्येतज्जगत्सारविवर्जितम् । विलोक्यो दीयतेऽस्माकमत्यन्तं परमं भयम् ॥५५॥
 कथञ्चिदधुना प्राप्ता बोधिरस्माभिरुत्तमा । यथा नौभूतया पारं प्रयास्यामो भवोदधेः ॥५६॥

इस प्रकार जब लक्ष्मणके पुत्र शोक करने लगे तब जिसका आश्चर्य नष्ट हो गया था ऐसे रूपवतीके पुत्रने हँसकर कहा कि अरे भले पुरुषो ! स्त्री मात्रके लिए इस तरह क्यों शोक कर रहे हो ? तुम लोगोंकी इस चेष्टासे परम हास्य उत्पन्न होता है—अधिक हँसी आ रही है ॥४१-४२॥ हमें इन कन्याओंसे क्या प्रयोजन है ? हमें तो मुक्तिकी दूती स्वरूप जिनेन्द्रभगवानकी कान्तिकी प्राप्ति हो चुकी है अर्थात् हमारे मनमें जिनेन्द्र मुद्राका स्वरूप मूल रहा है । फिर क्यों मूर्खोंके समान तुम व्यर्थ ही बार-बार इसीका शोक कर रहे हो ? ॥४३॥ केलेके स्तम्भके समान निःसार तथा आत्माको नष्ट करनेवाले कामोंके वशीभूत हो तुम लोग शोक और हास्य करनेके योग्य नहीं हो ॥४४॥ सब प्राणी कर्मके वशमें पड़े हुए हैं इसलिए वह काम क्यों नहीं करते कि जिससे वह कर्म नष्ट हो जाता है ॥४५॥ इस संसार रूपी सघन वनमें भूले हुए प्राणी ऐसे दुःखोंको प्राप्त हो रहे हैं इसलिए उस संसार वनको नष्ट करो ॥४६॥ हे भाइयो ! यह कर्मभूमि है परन्तु पिताके प्रसादसे मोहाकान्त बुद्धि होकर हम लोग इसे स्वर्ग जैसा समझ रहे हैं ॥४७॥ पहले बाल्यावस्थामें पिताकी गोदमें स्थित रहनेवाले मैंने किसीके द्वारा पुस्तकमें बाँची गई एक बहुत ही सुन्दर वस्तु सुनी थी कि सब भवोंमें मनुष्यभव दुर्लभ भव है उसे पाकर जो अपना हित नहीं करता है वह वञ्चित रहता है—ठगाया जाता है ॥४८-४९॥ यह जीव पात्रदानसे ऐश्वर्यको, तपसे स्वर्गको, ज्ञानसे मोक्षको, और पापसे दुःखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥५०॥ 'पुनर्जन्म अवश्य होता है' यह जानकर भी यदि हम तप नहीं करते हैं तो फिरसे दुःखोंसे भरी हुई दुर्गति प्राप्त करनी होगी ॥५१॥ इस प्रकार संसार-सागरके मध्य दुःखानुभवरूपी भँवरसे भयभीत रहनेवाले वे वीरकुमार प्रतिबोधको प्राप्त हो गये ॥५२॥ और शीघ्र ही पिताके पास जाकर तथा प्रणाम कर विनयसे खड़े हो हाथ जोड़ अत्यन्त मधुर स्वरमें कहने लगे कि हे पिताजी ! हमारी प्रार्थना सुनिए । आप विघ्न करनेके योग्य नहीं हैं । हम लोग दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं सो इसमें अनुकूलताको प्राप्त हूजिए ॥५३-५४॥ इस संसारकी बिजलीके समान क्षणभङ्गुर तथा साररहित देखकर हम लोगोंको अत्यन्त तीव्र भय उत्पन्न हो रहा है ॥५५॥ हम लोग इस समय

१. निवृत्ते म० । २. यानि म०, ज० । ३. विलोक्य दीयते व०, ज० । ४. रूपम् म०, ज० ।

आशीविषफणा^१भीमान् कामान् शङ्कासुकानलम् । हेतून् परमदुःखस्य वाञ्छामो दूरमुक्तितुम् ॥५७॥
 नास्य माता पिता आता बान्धवाः सुहृदोऽपि वा । सहायाः कर्मतन्त्रस्य परित्राणं शरीरिणः ॥५८॥
 तात विद्यस्तवाऽस्मात्^३ वात्सल्यमुपमोषिक्तम् । मातृणां च परं ह्येतद्वन्धनं भववासिनाम् ॥५९॥
 किं तर्हि सुचिरं सौख्यं भवद्वात्सल्यसंभवम् । भुक्त्वाऽपि विरहोऽवश्यं प्राप्यः क्रकचदारुणः ॥६०॥
 भृत्य एव भोगेषु जीवो दुर्मित्रविभ्रमः । इमं विमोचयते वेहं किं प्राप्तं जायते तदा ॥६१॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽत्रोचत्परमस्नेहविह्वलः । आश्राय मस्तके पुत्रानभीषय च पुनः पुनः ॥६२॥
 एते कैलासशिखरप्रतिमा हेमरत्नजाः । प्रासादाः कनकस्तम्भसहस्रपरिशोभिताः ॥६३॥
 नानाकुट्टिमभूमागाश्चरुनिर्व्यूहसङ्गताः । सुसेव्या विमलाः कान्ताः सर्वोपकरणान्विताः ॥६४॥
 मलयाचलसद्गन्धमारुताकृष्टपदाः । स्नानादिविधिसम्पत्तियोग्यनिर्मलभूमयः ॥६५॥
 शरच्चन्द्रप्रभा गौराः सुरस्त्रीसमयोपितः । गुणैः समाहिताः सर्वैः कल्पप्रासादसन्निभाः ॥६६॥
 वीणावेणुमृदङ्गादिसङ्गीतकमनोहराः । जिनेन्द्रचरितासक्तकथात्यन्तपवित्रिताः ॥६७॥
^१उक्त्वा सुखमेतेषु रमणीयेषु वत्सकाः । प्रतिपद्य कथं दीक्षां वत्स्यथान्तर्वनाचलम् ॥६८॥
^२सञ्चक्ष्य स्नेहनिधनं मां शोकतप्तां च मातरम् । न युक्तं वत्सका गन्तुं सेव्यतां तावदीशितां ॥६९॥

किसी तरह उस उत्तम बोधिको प्राप्त हुए हैं कि नौकास्वरूप जिस बोधिके द्वारा संसार-सागरके उस पार पहुँचेंगे ॥५६॥ जो आशीविष-सर्पके फनके समान भयङ्कर हैं, शङ्का अर्थात् भय जिनके प्राण हैं तथा जो परमदुःखके कारण हैं ऐसे भोगोंको हम दूरसे ही छोड़ना चाहते हैं ॥५७॥ इस कर्माधीन जीवकी रक्षा करनेके लिए न माता सहायक है, न पिता सहायक है, न भाई सहायक है, न कुटुम्बीजन सहायक हैं और न मित्र लोग सहायक हैं ॥५८॥ हे तात ! हम लोगोंपर आपका तथा माताओंका जो उपमारहित परम वात्सल्य है उसे हम जानते हैं और यह भी जानते हैं कि संसारी प्राणियोंके लिए यही बड़ा बन्धन है परन्तु आपके स्नेहसे होनेवाला सुख क्या चिरकाल तक रह सकता है ? भोगनेके बाद भी उसका विरह अवश्य प्राप्त करना होता है और ऐसा विरह कि जो करोंतके समान भयङ्कर होता है ॥५९-६०॥ यह जीव भोगोंमें वृत्त हुए बिना ही कुमित्रकी तरह इस शरीरको छोड़ देगा तब क्या प्राप्त हुआ कहलाया ? ॥६१॥

तदनन्तर परमस्नेहसे विह्वल लक्ष्मण उन पुत्रोंको मस्तकपर सूँवकर तथा पुनः पुनः उनकी ओर देखकर बोले कि ये महल जो कि कैलासके शिखरके समान हैं, सुवर्ण तथा रत्नोंसे निर्मित हैं, सुवर्णके हजारों खम्भोंसे सुशोभित हैं, जिनके फसोंकी भूमियाँ नानाप्रकारकी हैं, जो सुन्दर-सुन्दर छज्जोंसे सहित हैं, अच्छी तरह सेवन करने योग्य हैं, निर्मल हैं, सुन्दर हैं, सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित हैं, मलयाचल जैसी सुगन्धित वायुसे जिनमें भ्रमर आकृष्ट होते रहते हैं, जहाँ स्नानादि कार्योंके योग्य जुदी-जुदी उज्ज्वल भूमियाँ हैं, जो शरदूखतुके चन्द्रमाके समान आभावाले हैं, शुभ्रवर्ण हैं, जिनमें देवाङ्गनाओंके समान स्त्रियोंका आवास है, जो सब प्रकारके गुणोंसे सहित हैं, स्वर्गके भवनोंके समान हैं, वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदिके संगीतसे मनोहर हैं और जिनेन्द्र भगवान्के चरित सम्बन्धी कथाओंसे अत्यन्त पवित्र हैं, सामने खड़े हैं सो हे बालको ! इन महलोंमें सुखसे रहकर अब तुम लोग दीक्षा धारणकर वन और पहाड़ोंके बीच कैसे रहोगे ? ॥६२-६८॥ हे पुत्रो ! स्नेहाधीन मुझे तथा शोकसंतप्त माताको छोड़कर जाना योग्य नहीं है इसलिए ऐश्वर्यका सेवन करो ॥६९॥

१. फणान् भीमान् म० । २. शङ्कासुखानल -व० । ३. तथास्मात् म० । ४. सर्वे म० । ५. उक्त्वा म० । ६. वत्सका, संवक्ष्य ज०, ख० । ७. तावदीशितां ज०, ख० ।

स्नेहावासनचित्तास्ते संविमूरय ऋणं धिया । भवभीता हृषोकाऽऽप्यसौख्यैकान्तपराङ्मुखाः ॥७०॥
 उदारवीरतादत्तमहावष्टम्भशालिनः । ऊचुः कुमारवृषभास्त्वविम्यस्तचेतसः ॥७१॥
 सातरः पितरोऽप्ये च संसारेऽनन्तशो गताः । स्नेहबन्धनमेतानामेतद्धि चारकं गृहम् ॥७२॥
 पापस्य परमारम्भं नानादुःखाभिवर्द्धनम् । गृहपञ्जरकं मृदाः सेवन्ते न प्रबोधिनः ॥७३॥
 शारीरं मानसं दुःखं मा भूद्भूयोऽपि नो यथा । तथा सुनिश्चिताः कुर्मः किं वयं स्वस्य वैरिणः ॥७४॥
 निर्दोषोऽहं न मे पापमस्तीत्यपि विचिन्तयन् । मलिनत्वं गृही याति शुक्लांशुकमिव स्थितम् ॥७५॥
 उत्थायोऽथाय यज्ञणां गृहाश्रमनिवासिनाम् । पापे रतिस्ततस्त्यक्तो गृहधर्मो महात्मभिः ॥७६॥
 भुज्यतां तावदैश्वर्यमिति यत्प्रोक्तवानसि । तदन्धकारकूपे नः क्षिपसि ज्ञानवानपि ॥७७॥
 पिबन्तं मृगकं यद्ब्रह्मयाधो हन्ति नृषा जलम् । तथैव पुरुषं मृत्युर्हन्ति भोगैरनुसकम् ॥७८॥
 विषयप्राप्तिसंसक्तमस्वतन्त्रमिदं जगत् । कामैराशांविषैः साकं क्रीडत्यज्ञमनौषधम् ॥७९॥
 विषयमिषसंसक्ता मग्ना गृहजलाशये । रुजा वद्विशयोगेन नरमीना म्रजन्त्यमुम् ॥८०॥
 अत एव नृलोकेशो जगत्प्रितयवन्दितः । जगत्स्वकर्मणां वश्यं जगाद् भगवानृषिः ॥८१॥
 दुरन्तैस्तदलं तात प्रियसङ्गमलोभनैः । विचक्षणजनद्विष्टैस्तद्विष्णुश्चलाचलैः ॥८२॥

तदनन्तर स्नेहके दूर करनेमें जिनके चित्त लग रहे थे, जो संसारसे भयभीत थे, इन्द्रियोंसे प्राप्त होने योग्य सुखोंसे एकान्तरूपसे विमुख थे, उदार वीरताके द्वारा दिये हुए आलम्बनसे जो सुशोभित थे तथा तत्त्व विचार करनेमें जिनके चित्त लग रहे थे ऐसे वे सब कुमार बुद्धि द्वारा क्षणभर विचार कर बोले कि इस संसारमें माता-पिता तथा अन्य लोग अनन्तों वार प्राप्त होकर चले गये हैं। यथार्थमें स्नेहरूपी बन्धनको प्राप्त हुए मनुष्योंके लिए यह घर एक बन्दी गृहके समान है ॥७०-७२॥ जिसमें पापका परम आरम्भ होता है तथा जो नाना दुःखोंको बढ़ानेवाला है ऐसे गृहरूपी पिंजड़ेकी मूर्ख मनुष्य ही सेवा करते हैं बुद्धिमान् नहीं ॥७३॥ जिस तरह शारीरिक और मानसिक दुःख हमें पुनः प्राप्त न हों उस तरह ही दृढ़ निश्चय कर हम कार्य करना चाहते हैं। क्या हम अपने आपके वैरी हैं ॥७४॥ गृहस्थ यद्यपि यह सोचता है कि मैं निर्दोष हूँ, मेरे पाप नहीं हैं, फिर भी वह रखे हुए शुकवस्त्रके समान मलिनताको प्राप्त हो ही जाता है ॥७५॥ यतश्च गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले मनुष्योंको उठ-उठकर पापमें प्रीति होती है इसीलिए महात्मा पुरुषोंने गृहस्थाश्रमका त्याग किया है ॥७६॥ आपने जो कहा है कि अच्छी तरह ऐश्वर्यका उपभोग करो सो आप हमें ज्ञानवान् होकर भी अन्धकूपमें फँक रहे हैं ॥७७॥ जिस प्रकार प्याससे पानी पीते हुए हरिणको शिकारी मार देता है उसी प्रकार भोगोंसे अतृप्त मनुष्यको मृत्यु मार देती है ॥७८॥ विषयोंकी प्राप्तिमें आसक्त, परतन्त्र, अज्ञानी तथा औषधसे रहित यह संसार कामरूपी सापोंके साथ क्रीड़ा कर रहा है।

भावार्थ—जिस प्रकार साँपोंके साथ खेलनेवाले अज्ञानी एवं औषधरहित मनुष्य मरणको प्राप्त होता है उसी प्रकार आस्रवबन्ध और संवर निर्जराके ज्ञानसे रहित यह जीव इन्द्रिय भोगोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ मृत्युको प्राप्त होता है ॥७६॥ घररूपी जलाशयमें मग्न तथा विषयरूपी मांसमें आसक्त ये मनुष्यरूपी मच्छ रोगरूपी वंशीके योगसे मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥८०॥ इसीलिए मनुष्यलोकके स्वामी, लोकत्रयके द्वारा वन्दित भगवान् जिनेन्द्र जगत्को अपने कर्मके आधीन कहा है। भावार्थ—भगवान् जिनेन्द्रने बताया है कि संसारके सब प्राणी स्वीकृत कर्मोंके आधीन हैं ॥८१॥ इसलिए हे तात ! जिनका परिणाम अच्छा नहीं है, प्रियजनोंका समागम जिनका प्रलोभन है, जो विद्वज्जनोंके द्वेषपात्र हैं तथा जो बिजलीके समान चञ्चल हैं ऐसे इन भोगोंसे पूरा पड़े अर्थात्

१. स्नेहबन्धनमेतद्धि चारकं नारकं गृहम् ८०, ख० ।

ध्रुवं यदा समासाद्यो विरहो बन्धुभिः समम् । असमञ्जरूपेऽस्मिन्संसारे का रतिस्तदा ॥८३॥
 अयं मे प्रिय इत्याऽऽस्थाव्यामोहोपनिबन्धना । एक एव यतो जन्तुर्गत्यागमनदुःखभाक् ॥८४॥
 वितथागमकुट्टीपे मोहसङ्गतपङ्कके । शोकसंतापफेनाख्ये भवाऽऽवर्त्तव्रजाकुले ॥८५॥
 व्याधिमृत्यूमिकल्लोले मोहपातालगह्वरे । क्रोधादिमकरक्रूरनक्रसंघातघटिते ॥८६॥
 कुहेतुसमयोद्भूतनिर्हादात्यन्तभैरवे । मिथ्यात्वमारुतोद्भूते दुर्गतिचारवारिणि ॥८७॥
 नितान्तदुःसहोदारवियोगबडवानले । सुचिरं तात खिन्नाः स्मो वीरे संसारसागरे ॥८८॥
 नानायोनिषु संभ्रम्य कृच्छ्राप्राप्ता मनुष्यताम् । कुर्मस्तथा यथा भूयो मज्जामो नाऽत्र सागरे ॥८९॥
 ततः परिजनाकीर्णावापृच्छथ पितरौ क्रमात् । अष्टौ कुमारवीरास्ते निर्जग्मुर्गृहचारकात् ॥९०॥
 आसीन्निःक्रामतां तेषामाश्वरत्वे तथाविधे । बुद्धिर्जीर्णतृणे यद्द्वसंसाराचारवेदिनाम् ॥९१॥
 ते महेन्द्रोदयोद्यानं गत्वा संवेगकं ततः । महाबलमुनेः पार्वं जगृहुर्निरगारताम् ॥९२॥

आर्या

सर्चारम्भविरहिता विहरन्ति नित्यं निरम्बरा विधियुक्तम् ।
 चान्ता दान्ता मुक्ता निरपेक्षाः परमयोगिनो ध्यानरताः ॥९३॥

उपजातिः

सम्यक्तपोभिः प्रविधूय पापमध्यात्मयोगैः परिरुध्य पुण्यम् ।
 ते कीर्णनिःशेषभवप्रपञ्चाः प्रापुः पदं जैनमनन्तसौख्यम् ॥९४॥

इनकी आवश्यकता नहीं है ॥८२॥ जब कि बन्धुजनोंके साथ विरह अवश्यंभावी है तब इस अटपटे संसारमें क्या प्रीति करना है ? ॥८३॥ 'यह मेरा प्यारा है' ऐसी आस्था केवल व्यामोहके कारण उत्पन्न होती है क्योंकि यह जीव अकेला ही गमनागमनके दुःखको प्राप्त होता है ॥८४॥ मिथ्याशास्त्र ही जिसमें खोटे द्वीप हैं, मोहरूपी कीचड़से जो युक्त है, जो शोक संताररूपी फेनसे सहित है, जन्मरूपी भँवरोंके समूहसे व्याप्त है, व्याधि तथा मृत्युरूपी तरङ्गोंसे युक्त है, मोहरूपी गहरे गर्तोंसे सहित है, क्रोधादि कषाय रूपी क्रूर मकर और नाकोंके समूहसे लहरा रहा है, मिथ्या तर्कशास्त्रसे उत्पन्न शब्दोंसे अत्यन्त भयंकर है, मिथ्यात्व रूपी वायुके द्वारा कम्पित है, दुर्गतिरूपी खारे पानीसे सहित है और अत्यन्त दुःसह तथा उत्कट वियोग रूपी बडवानलसे युक्त है ऐसे भयंकर संसार-सागरमें हे तात ! हम लोग बहुत समयसे खेद-खिन्न हो रहे हैं ॥८५-८८॥ नाना योनियोंमें परिभ्रमण करनेके बाद हम बड़ी कठिनाईसे मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए हैं इसलिए अब वह काम करना चाहते हैं कि जिससे पुनः इस संसार-सागरमें न डूबें ॥८९॥

तदनन्तर परिजनके लोगोंसे घिरे हुए माता-पितासे पूछकर वे आठों वीर कुमार क्रम-क्रमसे घर रूपी कारागारसे बाहर निकले ॥९०॥ संसार-स्वरूपको जाननेवाले, घरसे निकलते हुए उन वीरोंकी उस प्रकारके विशाल साम्राज्यमें ठीक उस तरहकी अनादर बुद्धि हो रही थी जिस प्रकार कि जीर्ण-तृणमें होती है ॥९१॥ तदनन्तर उन्होंने महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें जाकर संवेगपूर्वक महाबल मुनिके समीप निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली ॥९२॥ जो सब प्रकारके आरम्भसे रहित थे, दिगम्बर थे, क्षमा युक्त थे, दमन शील थे, सब भङ्गटोंसे मुक्त थे, निरपेक्ष थे और ध्यानमें तत्पर थे ऐसे वे परम योगी निरन्तर विहार करते रहते थे ॥९३॥ समीचीन तपके द्वारा पापको नष्ट कर, और अध्यात्मयोगके द्वारा पुण्यको रोककर जिन्होंने संसारका

एतत् कुमाराष्टकमङ्गलं यः पठेद् विनीतः शृणुयाच्च भक्त्या ।
तस्य क्षयं याति समस्तपापं रविप्रभस्योदयते च चन्द्रः ॥६५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते कुमाराष्टकनिष्क्रमणाभिधानं नाम दशोत्तरशतं पर्व ॥११०॥

समस्त प्रपञ्च नष्ट कर दिया था ऐसे वे आठों मुनि अनन्त सुखसे युक्त निर्वाण पदको प्राप्त हुए ॥६४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य विनीत हो भक्ति पूर्वक इन आठ कुमारोंके सङ्गल-मय चरितको पढ़ता अथवा सुनता है सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाले उस मनुष्यका सब पाप नष्ट हो जाता है तथा उत्तम चन्द्रमाका उदय होता है ॥६५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें आठ कुमारोंकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला एक सौ दसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११०॥

एकादशोत्तरशतं पर्व

गर्णी वीरजिनेन्द्रस्य प्रथमः प्रथमः^१ सताम् । अवेद्यन्मनोयासं प्रभामण्डलचेष्टितम् ॥१॥
^२विद्याधरमहाकान्तकामिनीवीरदुग्धवे । सौख्यपुष्पासवे सक्तः प्रभामण्डलपदपदः ॥२॥
 अचिन्तयदहं दीक्षां यद्युपैर्युपवाससाम् । तदैतद्गङ्गापद्मखण्डं^३ पद्मस्यसंशयम् ॥३॥
 पतासां मत्समासक्तचेतसां विरहे मम । वियोगो भविताऽवश्यं प्राणैः सुखमपालितैः ॥४॥
 दुस्त्वजानिं दुरापानिं कामसौख्यान्यवारितम् । भुक्त्वा श्रेयस्करं पश्चात् करिष्यामि ततः परम् ॥५॥
 भोगैरुपाजितं पापमत्यन्तमपि पुष्कलम् । सुध्यानवह्निनाऽवश्यं भक्षयामि क्षणमात्रतः ॥६॥
 अत्र सेनां समावेश्य विमानक्रीडनं भजे । उद्घासयामि शत्रूणां नगराणि समन्ततः ॥७॥
 मानशृङ्गोन्नतेर्भङ्गं करोमि रिपुखण्डिगनाम् । स्थापयाम्युभयश्रेण्योर्वशे शासनकारिते ॥८॥
 मेरोर्मरकतादीनां रत्नानां विमलेश्वलम् । शिलातलेषु रम्येषु क्रीडामि ललनान्वितः ॥९॥
 एवमादीनि वस्तूनि ध्यायतस्तस्य^४ जानकेः । समतीर्णुर्मुहूर्तानि संवत्सरशतान्यलम् ॥१०॥
 कृतमेतत्करोमीदं कटिष्यामीदमित्यसौ । चिन्तयन्नात्मनोऽवेदी चायुः संहारमागतम् ॥११॥
 अन्वया सप्तमस्कन्धं प्राप्त्वाऽस्याधितिष्ठतः । अप्सदशनिर्मूर्ध्नि तस्य कालं ततो गतः ॥१२॥
 अशेषतो निजं वेत्ति जन्मान्तरविचेष्टितम् । दीर्घसूत्रस्तथाऽऽप्यात्मसमुद्धारै स नो स्थितः ॥१३॥

अथानन्तर वीर जिनेन्द्रके प्रथम गणधर सज्जनोत्तम श्री गौतमस्वामी मनमें आये हुए भामण्डलका चरित्र कहने लगे ॥१॥ विद्याधरोंकी अन्त्यन्त सुन्दर स्त्री रूपी लताओंसे उत्पन्न सुख रूपी फूलोंके आसवमें आसक्त भामण्डल रूपी भ्रमर इस प्रकार विचार करता रहता था कि यदि मैं दिगम्बर मुनियोंकी दीक्षा धारण करता हूँ तो यह स्त्रीरूपी कमलोंका समूह निःसन्देह कमलके समान आचरण करता है अर्थात् कमलके ही समान कोमल है ॥२-३॥ जिनका चित्त मुझमें लग रहा है ऐसी ये स्त्रियों मेरे विरहमें अपने प्राणोंका सुखसे पालन नहीं कर सकेंगी अतः उनका वियोग अवश्य हो जायगा ॥४॥ अतएव जिनका छोड़ना तथा पाना दोनों ही कठिन हैं ऐसे इन काम सम्बन्धी सुखोंको पहले अच्छी तरह भोग लें बादमें कल्याणकारी कार्य करूँ ॥५॥ यद्यपि भोगोंके द्वारा उपाजित किया हुआ पाप अत्यन्त पुष्कल होगा तथापि उसे सुध्यान रूपी अग्निके द्वारा एक क्षणमें जला डालूँगा ॥६॥ यहाँ सेना ठहराकर विमानोंसे क्रीड़ा करूँ और सब ओर शत्रुओंके नगर उजाड़ कर दूँ ॥७॥ दोनों श्रेणियोंमें शत्रु रूपी गंडा हाथियोंके मान रूपी शिखरकी जो उन्नति हो रही है उसका भंग करूँ तथा उन्हें आज्ञाके द्वारा क्रिये हुए अपने वशमें स्थापित करूँ ॥८॥ और मेरु पर्वतके मरकत आदि मणियोंके निर्मल एवं मनोहर शिलातलोंपर स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करूँ ॥९॥ इत्यादि वस्तुओंका विचार करते हुए उस भामण्डलके सैकड़ों वर्ष एक मुहूर्तके समान व्यतीत हो गये ॥१०॥ 'यह कर चुका, यह करता हूँ और यह करूँगा' वह यही विचार करता रहता था, पर अपनी आयुका अन्तिम अवसर आ चुका है यह नहीं विचारता था ॥११॥

एक दिन वह महलके सातवें खण्डमें बैठा था कि उसके मस्तक पर वज्र गिरा जिससे वह मृत्युको प्राप्त हो गया ॥१२॥ यद्यपि वह अपने जन्मान्तरकी समस्त चेष्टाको जानता था

१. आद्यः । २. श्रेष्ठः । ३. विद्याधरी -म० । ४. प्रेमखण्डं म० । ५. पद्ममिवाचरति ।
 ६. जनकापत्यस्य भामण्डलस्य ।

तृष्णाविषादहन्तृणां क्षणमप्यस्ति नो शमः । मूर्धोपकण्ठदत्ताङ्घ्रिर्भ्रूयुः कालमुदीरते ॥१४॥
 अस्य दग्धशरीरस्य कृते क्षणविनाशिनः । इताशः कुरुते किं न जीवो विषयदासकः ॥१५॥
 ज्ञात्वा जीवितमानान्तर्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् । स्वहिते वर्त्तते यो न स नश्यत्यकृतार्थकः ॥१६॥
 सहस्रेणापि शास्त्राणां किं येनात्मा न शाम्यति । तृप्तमेकपदेनाऽपि येनाऽऽत्मा शममश्नुते ॥१७॥
 कर्तुं निच्छति सद्धर्मं न करोति यथाप्ययम् । दिवं यिथासुर्विच्छिन्नपक्ष्काक इव श्रमम् ॥१८॥
 त्रिमुक्तो व्यवसायेन लभते चेत्समीहितम् । न लोके विरही कश्चिद्भवेद्द्रविणोऽपि वा ॥१९॥
 अतिथिं द्वार्गतं साधुं गुरुवाक्यं प्रतिश्रियाम् । प्रतीक्ष्य सुकृतं चाशु नावसीदति मानवः ॥२०॥

आर्यागीतिः

नानाव्यापारशतैराकुलहृदयस्य दुःखिनः प्रतिदिवसम् ।
 रत्नमिव करतलस्थं भ्रश्यत्यायुः प्रमादतः प्राणभृतः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाऽऽचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भामण्डलपरलोकामिगमनं
 नामैकादशोत्तरशतं पर्व ॥१११॥

तथापि इतना दीर्घसूत्री था कि आत्म-कल्याणमें स्थित नहीं हुआ ॥१३॥ तृष्णा और विषादको नष्ट करनेवाले मनुष्योंको क्षणभरके लिए भी शान्ति नहीं होती क्योंकि उनके मस्तकके सर्माप पैर रखनेवाला मृत्यु सदा अवसरकी प्रतीक्षा किया करता है ॥१४॥ क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाले इस अधम शरीरके लिए, विषयोंका दास हुआ यह नीच प्राणी क्या क्या नहीं करता है ? ॥१५॥ जो मनुष्य-जीवनको भङ्गुर जान समस्त परिग्रहका त्यागकर आत्महितमें प्रवृत्ति नहीं करता है वह अकृतकृत्य दशामें ही नष्ट हो जाता है ॥१६॥ उन हजार शास्त्रोंसे भी क्या प्रयोजन है जिससे आत्मा शान्त नहीं होती और वह एक पद भी बहुत है जिससे आत्मा शान्ति को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥ जिस प्रकार कटे पत्तका काक आकाशमें उड़ना तो चाहता पर वैसा श्रम नहीं करता वसी प्रकार यह जीव सद्धर्म करना तो चाहता है पर यह जैसा चाहिए वैसा श्रम नहीं करता ॥१८॥ यदि उद्योगसे रहित मनुष्य इच्छानुकूल पदार्थको पाने लगे तो फिर संसारमें कोई भी विरही अथवा दरिद्र नहीं होना चाहिए ॥१९॥ जो मनुष्य द्वारपर आये हुए अतिथि साधुको आहार आदि दान देता है तथा गुरुओंके वचन सुन तदनुकूल शीघ्र आचरण करता है वह कभी दुःखी नहीं होता ॥२०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि नाना प्रकारके सैकड़ों व्यापारोंसे जिसका हृदय आकुल हो रहा है तथा इसीके कारण जो प्रतिदिन दुःखका अनुभव करता रहता है ऐसे प्राणीको आयु हथेलीपर रखे रत्नके समान नष्ट हो जाती है ॥२१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें भामण्डलके परलोकगमनका वर्णन करनेवाला एक सौ न्यारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१११॥

द्वादशोत्तरशतं पर्व

अथ याति शनैः कालः पद्मचक्राङ्कुराजयोः । परस्परमहास्नेहबद्धयोस्त्रिविधः^१ सुखम् ॥१॥
^२परमैश्वर्यतामोरु राजीववनवत्सिनी । यथा ^३चन्दनदत्तौ तौ मोदेते नरकुञ्जरी ॥२॥
 शुष्यन्ति सरितो यरिमन् काले दावाग्निसंकुले । तिष्ठन्त्यभिमुखा मानोः भ्रमणाः प्रतिमागताः ॥३॥
 तत्र तावति रम्येषु जलयन्त्रेषु^४ सद्यसु । उद्यानेषु च निःशेषप्रियसाधनशालिषु ॥४॥
^५चन्दनान्त्रुमहामोदशीतशीकरवर्षिभिः । चामरैरुपवीज्यन्तौ तालवृन्तैश्च सत्तमैः ॥५॥
 स्वच्छस्फटिकपट्टस्थौ^६ चन्दनद्रवचर्चितौ । जलार्द्रनलिनीपुष्पदलमूलौघसंस्तरौ ॥६॥
 एलालवङ्गकपूरक्षौद्रसंसर्गशीतलम् । विमलं सलिलं स्वादु तेवमानौ मनोहरम् ॥७॥
 त्रिचित्रसङ्गथादक्षवनिताजनसेवितौ । शीतकालमिवाऽऽनीतं बलाद्धारयतः शुचौ ॥८॥
 योगिनः समये यत्र तरुमूलव्यवस्थिताः । क्षपयन्त्यशुभं कर्म धारानिधूतमूर्त्तयः ॥९॥
 विलसद्भिश्चुद्योते तत्र मेघान्धकारिते । बृहद्वर्धनरीरीषे कूलमुद्गुजसिन्धुके ॥१०॥
 मेरुशृङ्गसमाकारवत्सिनी वरवाससौ । कुङ्कुमद्रवदिग्वाङ्गातुपयुक्तामितागुरु ॥११॥
 महाविलासिनीनेत्रभृङ्गौघकमलाकरौ । तिष्ठतः सुन्दरीक्रीडौ यक्षेन्द्राविव तौ सुखम् ॥१२॥

अथानन्तर पास्परिक महास्नेहसे बँधे राम-लक्ष्मणका, उष्ण वर्षा और शीतके भेदसे तीन प्रकारका काल धीरे-धीरे व्यतीत हो रहा था ॥१॥ परम ऐश्वर्यके समूहरूपी कमलवनमें विद्यमान रहनेवाले वे दोनों पुरुषोत्तम चन्दनसे लिप्त हुएके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२॥ जिस समय नदियाँ सूख जाती हैं, वन दावानलसे व्याप्त हो जाते हैं और प्रतिमायोगको धारण करनेवाले मुनि सूर्यके सम्मुख खड़े रहते हैं । उस समय राम-लक्ष्मण, जलके फव्वारोंसे युक्त सुन्दर महलोंमें तथा समस्त प्रिय उपकरणोंसे सुशोभित उद्यानोंमें क्रीड़ा करते थे ॥३-४॥ चन्दनमिश्रित जलके महासुगन्धित शीतलकणोंको बरसानेवाले चमरों तथा उत्तमोत्तम पङ्क्तोंसे वहाँ उन्हें हवा की जाती थी । वहाँ वे स्फटिकके स्वच्छ पटियोंपर बैठते थे, चन्दनके द्रवसे उनके शरीर चर्चित रहते थे, जलसे भीगे कमलपुष्पोंकी कलियोंके समूहसे बने विस्तरोंपर शयन करते थे । इलायची लौंग कपूरके चूर्णके संसर्गसे शीतल निर्मल स्वादिष्ट और मनोहर जलका सेवन करते थे, और नानाप्रकारकी कथाओंमें दक्ष स्त्रियाँ उनकी सेवा करती थीं । इस प्रकार ऐसा जान पड़ता था मानो वे ग्रीष्म कालमें भी शीतकालको पकड़कर बलात् धारण कर रहे थे ॥३-८॥

जिनका शरीर जलकी धाराओंसे धुल गया है ऐसे मुनिराज जिस समय वृत्तोंके मूलमें बैठकर अपने अशुभ कर्मोंका क्षय करते हैं ॥६॥ जहाँ कहीं कौंधती हुई बिजलीके द्वारा प्रकाश फैल जाता है तो कहीं मेघोंके द्वारा अन्धकार फैला हुआ है, जहाँ जलके प्रवाह विशाल घर्-घर् शब्द करते हुए बहते हैं और जहाँ किनारोंको ढहाकर बहा ले जानेवाली नदियाँ बहती हैं, उस वर्षाकालमें वे मेरुके शिखरके समान उन्नत महलोंमें विद्यमान रहते थे, उत्तम वस्त्र धारण करते थे, कुङ्कुम-केशरके द्रवसे उनके शरीर लिप्त रहते थे, अपरिमित अगुरुचन्दनका वे उपयोग करते थे । महाविलासिनी स्त्रियोंके नेत्र रूप भ्रमर समूहके लिए वे कमलवनके समान सुखकारी थे और सुन्दरी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए यक्षेन्द्रके समान सुखसे विद्यमान रहते थे ॥१०-१२॥

१. शीतोष्णवर्षात्मकः । २. परमैश्वर्यतामानो राजीव -म । ३. नन्दनदत्तौ म० । ४. पद्मसु म० । ५. चन्दनार्द्र -म० । ६. पद्मस्थौ म० । ७. क्षौद्रः संसर्ग म० । ८. -सुदृगत -म० ।

प्राण्यपटसंवीता धर्मध्यानस्थचैतसः । तिष्ठन्ति योगिनो यत्र निशि स्थण्डिलपृष्ठगाः ॥१३॥
 तत्र काले महाचण्डशीतवाताहतद्रुमे । पश्चात्करसमुत्सादे दापितोष्णकरोद्गमे ॥१४॥
 प्रासादावनिक्कुक्षिस्थौ तिष्ठतस्तौ यथेप्सितम् । श्रीमद्यवतिवज्जोजक्रीडालम्बनवक्षसौ ॥१५॥
 वीणाभृद्गङ्गवंशादिसन्भूतं मधुरस्वरम् । कुर्वाणौ मनसि स्वेच्छं परं श्रोत्ररसायनम् ॥१६॥
 वाणीनिजितवीणाभिरनुकूलाभिरादरात् । सेव्यमानी वरस्त्रीभिरमरीभिरिवामरौ ॥१७॥
 नक्तं दिनं परिस्कीतभोगसम्पत्समन्वितौ । सुखं तौ नयतः कालं सर्वपुण्यानुभावतः ॥१८॥
 एवं तौ तावदासेते पुरुषौ जगदुकटौ । अथ श्रीशैलवीरस्य वृत्तान्तं शृणु पार्थिव ॥१९॥
 सेवते परमैश्वर्यं नगरे कर्णकुण्डले । पूर्वपुण्यानुभावेन स्वर्गीयानिलनन्दनः ॥२०॥
 विद्याधरमहत्त्वेन सहितः परमक्रियः । स्त्रीसहस्रपरीवारः स्वेच्छयाऽऽति मैदिनीम् ॥२१॥
 वरं विमानमारूढः परमद्विसमन्वितः । सत्काननादिषु श्रीमौस्तदा क्रीडति देववत् ॥२२॥
 अन्यदा जगदुन्मादहेतौ कुसुमहासिनि । वसन्तसमये प्राप्ते प्रियामोदनभन्वति ॥२३॥
 जिनेन्द्रभक्तिसंवीतमानसः पवनात्मजः । हृष्टः सम्प्रस्थितो मेरुमन्तःपुरसमन्वितः ॥२४॥
 नानाकुसुमरम्याणि सेवितानि शुवासिभिः । कुलपर्वतसानूनि प्रस्थितः सोऽवतिष्ठते ॥२५॥
 मत्तभृङ्गान्यपुष्टौषनादयन्ति मनोहरैः । सरोभिर्दर्शनीयानि स वनानि च भूरिशः ॥२६॥
 मिथुनैरुपभोग्यानि पत्रपुष्पफलैस्तथा । काननानि विचित्राणि रत्नोद्योतितपर्वतान् ॥२७॥

जिस कालमें रात्रिके समय धर्मध्यानमें लीन, एवं वनके खुले चबूतरोंपर बैठे मुनिराज बर्फरूपी वस्त्रसे आवृत हो स्थित रहते हैं, जहाँ अत्यन्त शीत वायुसे वृत्त नष्ट हो जाते हैं, कमलोंके वन सूख जाते हैं और जहाँ लोग सूर्योदयको अत्यन्त पसन्द करते हैं ऐसे शीतकालमें वे महलोंके गर्भगृहमें इच्छानुसार रहते थे, उनके वक्षःस्थल तरुण स्त्रियोंके स्तनोंकी क्रीड़ाके आधार थे, वीणां, मृदङ्ग, बाँसुरी आदिसे उत्पन्न, कानोंके लिए उत्तम रसायनस्वरूप मधुरस्वरको वे अपनी इच्छानुसार करते थे, जिन्होंने अपनी वाणीसे वीणाको जीत लिया था ऐसी अनुकूल स्त्रियाँ बड़े आदरसे उनकी सेवा करती थीं और इसीलिए वे देवियोंके द्वारा सेवित देवोंके समान जान पड़ते थे । इस प्रकार वे पुण्यकर्मके प्रभावसे रातदिन अत्यधिक भोगसम्पदासे युक्त रहते हुए सुखसे समय व्यतीत करते थे ॥१३-१८॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि इस तरह वे दोनों लोकोत्तम पुरुष सुखसे विद्यमान थे । हे राजन् ! अब वीर हनूमान्का वृत्तान्त सुन ॥१९॥ पूर्वपुण्यके प्रभावसे हनूमान् कर्णकुण्डल नगरमें देवके समान परम ऐश्वर्यका उपभोग कर रहा था ॥२०॥ विद्याधरोंके माहात्म्यसे सहित तथा उत्तमोत्तम क्रियाओंसे युक्त हनूमान् हजारों स्त्रियोंका परिवार लिये इच्छानुसार पृथ्वीमें भ्रमण करता था ॥२१॥ उत्तम विमानपर आरूढ तथा उत्तम विभूतिसे युक्त श्रीमान् हनूमान् उत्तम वन आदि प्रदेशोंमें देवके समान क्रीड़ा करता था ॥२२॥

अथानन्तर किसी समय जगत्के उन्मादका कारण, फूलोंसे सुशोभित एवं प्रिय सुगन्धित वायुके संचारसे युक्त वसन्तऋतु आई ॥२३॥ सो उस समय जिनेन्द्र भक्तिसे जिसका चित्त व्याप्त था ऐसा हर्षसे भरा हनूमान् अन्तःपुरके साथ मेरुपर्वतकी ओर चला ॥२४॥ वह बीचमें नाना प्रकारके फूलोंसे मनोहर और देवोंके द्वारा सेवित कुलाचलोंके शिखरोंपर ठहरता जाता था ॥२५॥ जिनमें मदनोन्मत्त भ्रमर और कोयलोंके समूह शब्द कर रहे थे, तथा जो मनोहर सरोवरोंसे दर्शनीय थे ऐसे अनेकों वन, पत्र, पुष्प और फलोंके कारण जो स्त्री-पुरुषोंके युगलसे

१. सहस्रेण म० । २. -मारूढाः म० । ३. प्रेम-म० । ४. मत्तभृङ्गान्यपुष्टौषा नादयन्ति म० ।
 ५. पर्वताः म०, ज० ।

सरितो विशदद्वीपा नितान्तविमलाम्भसः । वापीः प्रवरसोपानास्तत्रैकेषुऋपादपाः ॥२८॥
 नानाजलजकिञ्चलकिर्मीरसलिलानि च । सरसि मधुरस्वानैः सेवितानि पतत्रिभिः ॥२९॥
 महातरङ्गसङ्कोत्थफेनमालादृहासिनीः । महायादोगणाकीर्णा बहुचित्रा महानदीः ॥३०॥
 विलसद्गनमालाभिर्युक्तान्युपवनैर्वरैः । मनोहरणदक्षाणि चित्राण्यथयत्नानि च ॥३१॥
 जिनेन्द्रवरकूटानि नानारत्नमयानि च । कल्पवृक्षोददक्षाणि युक्तमानान्यनेकराः ॥३२॥
 एवमादीनि वस्तूनि वीक्षमाणः शनैः शनैः । सेव्यमानश्च कान्ताभिर्यात्यसौ परमोदयः ॥३३॥
 नभःशिरःसमारूढो विमानशिखरस्थितः । दर्शयन् याति तद्वस्तु कान्तां हृष्टतनूरुहः ॥३४॥
 पश्य पश्य प्रिये धामान्यतिरम्याणि मन्दरे । स्नपनानि जिनेन्द्राणाममूनि शिखरान्तिके ॥३५॥
 नानारत्नशरीराणि भास्करप्रतिमानि च । शिखराणि मनोज्ञानि तुङ्गानि विपुलानि च ॥३६॥
 गुहा मनोहरद्वारा गम्भीरा स्नदीपिताः । परस्परसमाकीर्णा दीधितीरतिदूरगाः ॥३७॥
 इदं महीतले रम्यं भद्रशालाह्वयं वनम् । मेखलायामिदं तच्च नन्दनं प्रथितं भुवि ॥३८॥
 इदं वक्षःप्रदेशस्य कल्पद्रुमलतामकम्^१ । नानारत्नशिलाशोभि वनं सौमनसं स्थितम् ॥३९॥
 जिनागारसहस्राक्षं त्रिदशक्रीडनोचितम् । पाण्डुकाख्यं वनं भाति शिखरे सुमनोहरम् ॥४०॥
 अचिञ्चोत्सवस्तानमहमिन्द्रजगत्समम् । यच्चकिञ्चरगन्धर्वसङ्गीतपरिनादितम् ॥४१॥
 सुरकन्यासमाकीर्णमप्सरोगणसङ्कुलम् । विचित्रगणसम्पूर्णं दिव्यपुष्पसमन्वितम् ॥४२॥
 सुमेरोः शिखरे रम्ये स्वभावसमवस्थिते । इदमालोक्यते जैनं भवनं परमाद्भुतम् ॥४३॥

सेवनीय थे ऐसे विचित्र वन, रत्नोंसे जगमगाते हुए पर्वत, जिनमें निर्मल टापू थे तथा अत्यन्त स्वच्छ पानी भरा था ऐसी नदियाँ, जिनमें उत्तम सीदियाँ लगी थीं तथा जिनके तटोंपर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खड़े थे ऐसी वापिकाएँ, नानाप्रकारके कमलोंकी केशरसे जिनका पानी चित्र-विचित्र हो रहा था तथा जो मधुर शब्द करनेवाले पक्षियोंसे सेवित थे ऐसे सरोवर, जो बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके साथ उठी हुई फेनपङ्क्तिसे मानो अदृहास कर रही थीं तथा जो बड़े-बड़े जल-जन्तुओंसे व्याप्त थीं ऐसी अनेक आश्चर्योंसे भरी महानदियाँ, सुशोभित वन-पंक्तियों एवं उत्तमोत्तम उपवनोंसे युक्त तथा मनको हरण करनेमें निपुण नाना प्रकारके भवन, और नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित, पाप नष्ट करनेमें समर्थ तथा योग्य प्रमाणसे युक्त अनेकों जिनकूट इत्यादि वस्तुओंको देखता तथा स्त्रियोंके द्वारा सेवित होता हुआ परम अभ्युदयका धारक हनूमान् धीरे-धीरे चला जा रहा था ॥२६-३३॥ जो आकाशमें बहुत ऊँचे चढ़कर विमानके शिखरपर स्थित था तथा जिसके रोमाञ्च निकल रहे थे ऐसा वह हनूमान् स्त्रीके लिए तत् तत् वस्तुएँ दिखाता हुआ जा रहा था ॥३४॥ वह कहता जाता था कि हे प्रिये ! देखो देखो, सुमेरु पर्वतपर शिखरके समीप वे कितने सुन्दर स्थान हैं वहीं जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेक हुआ करते हैं ॥३५॥ ये नाना रत्नोंसे निर्मित; सूर्य तुल्य, मनोहर, ऊँची और बड़े-बड़े शिखर देखो ॥३६॥ इन मनोहर द्वारोंसे युक्त तथा रत्नों से आलोकित गम्भीर गुफाओं और परस्पर एक दूसरेसे मिलीं, दूर-दूर तक फैलनेवाली किरणों को देखो ॥३७॥ यह पृथिवीतलपर मनोहर भद्रशाल वन है, यह मेखलापर स्थित जगत्प्रसिद्ध नन्दन वन है, यह उपरितन प्रदेशके वक्षःस्थलस्वरूप, कल्पवृक्ष और कल्पवेलोंसे तन्मय एवं नाना रत्नमयी शिलाओंसे सुशोभित सौमनस वन है, और यह उसके शिखरपर हजारों जिन-मन्दिरोंसे युक्त देवोंकी क्रीड़ाके योग्य पाण्डुक नामका अत्यन्त मनोहर वन है ॥३८-४०॥ यह सुमेरुके स्वाभाविक सुरम्य शिखरपर परम आश्चर्योंसे भरा हुआ वह जिनमन्दिर दिखाई देता है कि जिसमें उत्सवोंकी परम्परा कभी टूटती ही नहीं है, जो अहमिन्द्र लोकके समान है, यत्

१. जिनेन्द्रनर-म० । २. समुद्धृततनूरुहः म० । ३. ततान्तकम् म० । ४. जिनागारं सहस्राक्षं ।

उवलज्ज्वलनसन्ध्याक्तमेघवृन्दसमप्रभम् । जाम्बूनदमयं भानुकूटप्रतिममुत्तमम् ॥४४॥
 अशोकोत्तमरत्नौषभूषितं परमाकृति^१ । मुक्तादामसहस्राख्यं बुद्बुदादर्शशोभितम् ॥४५॥
 किङ्किणीपट्टलम्बूपकीर्णकविराजितम् । प्राकारतोरणोत्तुङ्गगोपुरैः परमैर्युतम् ॥४६॥
 नानावर्णचल्लकेतुकाञ्जनस्तम्भभासुरम् । गम्भीरं चारुनिर्व्यूहमशक्याशेषवर्णनम् ॥४७॥
 पञ्चाशद्योजनायामं षट्त्रिंशन्मानमुत्तमम् । इदं जिनगृहं कान्ते सुमेरोमुकुटायते ॥४८॥
 इति शंसन्महादेव्यै समीपस्वमुपागतः । अवतीर्य विमानाप्राङ्गके हृष्टः प्रदक्षिणाम् ॥४९॥
 तत्र सर्वातिशोषस्तु महैश्वर्यसमन्वितम् । नक्षत्रग्रहताराणां शशाङ्कमिव मध्यगम् ॥५०॥
 केसरीसनमूर्द्धस्थं स्फुरत्स्फारस्वतेजसम् । शुभाभ्रशिखरस्याग्रे शरदीव दिवाकरम् ॥५१॥
 प्रतिबिम्बं जिनेन्द्रस्य सर्वलक्षणसङ्गतम् । सान्तःपुरो नमस्चक्रे रचिताञ्जलिमस्तकः ॥५२॥
 जिनेन्द्रदर्शनोद्भूतमहासम्मदसम्पदाम् । विद्याधरवरखीणां धृतिरासीदलं परा ॥५३॥
 उत्पन्नघनरोमाञ्चा त्रिपुलाऽऽयतलोचनाः । भक्त्या परमया युक्ताः सर्वोपकरणान्विताः ॥५४॥
 महाकुलप्रसूतास्ताः स्त्रियः परमचेष्टिताः । चक्रुः पूजां जिनेन्द्राणां त्रिदशप्रमदा ह्व ॥५५॥
 जाम्बूनदमयैः पद्मैः पद्मरागमयैस्तथा । चन्द्रकान्तमयैश्चापि स्वभावकुसुमैरिति ॥५६॥
 सौरभाकान्तदिवचक्रैर्गन्धैश्च परमोज्ज्वलैः । पवित्रद्रव्यसम्भूतैर्धूपैश्चाकुलकोटिभिः ॥५७॥

किन्नर और गन्धर्वोंके संगीतसे शब्दायमान है, देवकन्याओंसे व्याप्त है, अप्सराओंके समूहसे आर्काण है, नाना प्रकारके गणोंसे परिपूर्ण है और दिव्य पुष्पोंसे सहित है ॥४१-४३॥ जो जलती हुई अग्निके समान लाल-लाल सन्ध्यासे युक्त मेघ समूहके समान प्रभासे युक्त है, स्वर्णमय है, सूर्यकूटके समान है, उन्नत है, सब प्रकारके उत्तम रत्नोंके समूहसे भूषित है, उत्तम आकृतिवाला है, हजारों मीतियोंकी मालाओंसे सहित है, छोटे-छोटे गोले और दर्पणोंसे सुशोभित है, छोटी-छोटी घंटियाँ, रेशमी वस्त्र, फन्नुस और चमरोंसे अलंकृत है, उत्तमोत्तम प्राकार, तोरण, और ऊँचे गोपुरोंसे युक्त है, जिस पर नाना रंगकी पताकाएँ फहरा रही हैं, जो सुवर्णमय खम्भोंसे सुशोभित है, गम्भीर है, सुन्दर छज्जोंसे युक्त है, जिसका सम्पूर्ण वर्णन करना अशक्य है, जो पचास योजन लम्बा है और छत्तीस योजन चौड़ा है। हे कान्ते ! ऐसा यह जिन-मन्दिर सुमेरु पर्वतके मुकुटके समान जान पड़ता है ॥४४-४८॥

इस प्रकार महादेवीके लिए मन्दिरकी प्रशंसा करता हुआ हनुमान जब मन्दिरके समीप पहुँचा तब विमानके अग्रभागसे उतरकर हर्षित होते हुए उसने सर्वप्रथम प्रदक्षिणा दी ॥४९॥ तदनन्तर अन्य सबको छोड़ उसने अन्तःपुरके साथ हाथ जोड़ मस्तकसे लगा जिनेन्द्र भगवान् की उस प्रतिमाको नमस्कार किया कि जो महान् ऐश्वर्यसे सहित थी, नक्षत्र ग्रह और ताराओंके बीचमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित थी, सिंहासनके अग्रभागपर स्थित थी, जिसका अपना विशाल तेज देदीयमान था, जो सफेद मेघके शिखरके अग्रभागपर स्थित शरत्कालीन सूर्यके समान थी, तथा सब लक्षणोंसे सहित थी ॥५०-५२॥ जिनेन्द्र-दर्शनसे जिन्हें महार्ह रूप सम्पत्तिकी उद्भूति हुई थी ऐसी विद्याधरराजकी स्त्रियोंको दर्शन कर बड़ा संतोष उत्पन्न हुआ ॥५३॥ तदनन्तर जिनके सघन रोमाञ्च निकल आये थे, जिनके लम्बे नेत्र हर्षातिरेकसे और भी अधिक लम्बे दिखने लगे थे, जो उत्कृष्ट भक्तिसे युक्त थीं, सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित थीं, महाकुलमें उत्पन्न थीं, तथा परमचेशाको धारण करनेवाली थीं ऐसी उन विद्याधरियोंने देवाङ्गनाओंके समान जिनेन्द्र भगवान्की पूजा की ॥५४-५५॥ सुवर्णमय, पद्मराग मणिमय तथा चन्द्रकान्तमणिमय कमल, तथा अन्य स्वाभाविक पुष्प, सुगन्धिसे दिङ्मण्डलको व्याप्त करनेवाली

भक्तिकल्पितस्वास्त्रियै रत्नदीपैर्महाशिल्पैः । चित्रवत्स्युपहारैश्च^१ जिनानानर्चं मारुतिः ॥५८॥
 ततश्चन्दनदिग्धाङ्गः कुङ्कुमस्थासकाचितः ।^२ सूत्रपत्रार्णसंवीताशेषो विगतकल्मषः ॥५९॥
 वानराङ्गस्फुरज्ज्योतिश्चक्रसौलिर्महात्मनाः । प्रमोदपरमस्फीतनेत्रांशुनिचिताननः ॥६०॥
 ध्यात्वा जिनेश्वरं स्तुत्वा स्तोत्रैरथविनाशनैः । सुरासुरगुरोर्विश्वं जिनस्य परमं मुहुः ॥६१॥
 ततः सङ्घ्रामस्थाभिरप्सरोभिरभीक्षितः । विधाय^३ वल्लकीमङ्गे गेयामृतमुदाहरत् ॥६२॥
 जिनचन्द्रार्चनन्यस्तविकासिनयना जनाः । नियमावहितात्मानः शिवं निदधते करे ॥६३॥
 न तेषां दुर्लभं किञ्चित् कल्याणं शुद्धचेतसाम् । ये जिनेन्द्रार्चनासक्ता जना मङ्गलदर्शनाः ॥६४॥
 श्रावकान्वयसम्भूतिर्भक्तिर्जिनवरे हृदा । समाधिनाऽवसानं च पर्याप्तं जन्मनः फलम् ॥६५॥
 उपवीप्येति सुचिरं भूयः स्तुत्वा समर्च्य च । विधाय वन्दनां भक्तिमादधानो नवां नवाम् ॥६६॥
 अग्रयच्छन् जिनेन्द्राणां पृष्ठं स्पष्टसुचेतसाम् । अनिच्छन्निव त्रिश्रब्धो निर्ययावर्हदालयात् ॥६७॥
 ततो विमानमाह्वय क्रीसहस्रसमन्वितः । मेरोः प्रदक्षिणं चक्रे ज्योतिर्देवं ह्रवोत्तमः ॥६८॥
 शैलराज इव प्रीत्या श्रीशैलः सुन्दरक्रियः । करोति स्म तदा मेरोरापृच्छामिव पश्चिमाम् ॥६९॥
 प्रकीर्यं वरपुष्पाणि सर्वेषु जिनवेशरमसु । जगाम मन्थरं व्योम्नि भरतक्षेत्रसम्मुखः ॥७०॥
 ततः परमरागाक्ता सन्ध्याऽऽश्लिष्य दिवाकरम् । अस्तसितिभृदावासं भजे खेदिनिनीषया ॥७१॥

परम उज्ज्वल गन्ध जिसकी धूमशिखा बहुत ऊँची उठ रही थी ऐसा पवित्र द्रव्यसे उत्पन्न धूप, भक्तिसे समीपमें लाकर रक्खे हुए बड़ी-बड़ी शिखाओंवाले दीपक, और नाना प्रकारके नैवेद्यसे हनूमान्ने जिनेन्द्रदेवकी पूजा की ॥५६-५८॥ तदनन्तर जिसका शरीर चन्दनसे व्याप्त था, जो केशरके तिलकोंसे युक्त था, जिसका शरीर वल्लसे आच्छादित था, जिसके पाप छूट गये थे, जिसका मुकुट वानर चिह्नसे चिह्नित एवं स्फुरायमान किरणोंके समूहसे युक्त था और हर्षके कारण अत्यधिक विस्तृत नेत्रोंकी किरणोंसे जिसका मुख व्याप्त था ऐसे हनूमान्ने जिनेन्द्र भगवान्का ध्यान कर, तथा पापको नष्ट करनेवाले स्तोत्रोंसे सुरासुरोंके गुरु श्री जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाकी बार-बार उत्तम स्तुति की ॥५९-६१॥ तदनन्तर विलास-विभ्रमके साथ बैठी हुई अप्सराएँ जिसे देख रहीं थी ऐसे हनूमान्ने वीणा गोदमें रख संगीत रूपी अमृत प्रकट किया ॥६२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिन्होंने अपने नेत्र जिनेन्द्र भगवान्की पूजामें लगा रक्खे हैं तथा जिनकी आत्मा नियम पालनमें सावधान है ऐसे मनुष्य कल्याणको सदा अपने हाथमें रक्खते हैं ॥६३॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की पूजामें लीन हैं तथा उनके मङ्गलमय दर्शन करते हैं ऐसे निर्मल चित्तके धारक मनुष्योंके लिए कोई भी कल्याण दुर्लभ नहीं है ॥६४॥ श्रावकके कुलमें जन्म होना, जिनेन्द्र भगवान्में सुहृद् भक्ति होना, और समाधिपूर्वक मरण होना, यही मनुष्य जन्मका पूर्ण फल है ॥६५॥ इस तरह चिरकाल तक वीणा बजाकर, बार-बार स्तुति और पूजा कर, वन्दना कर तथा नयी-नयी भक्तिकर आत्मज्ञ जिनेन्द्र भगवान्के लिए पीठ नहीं देता हुआ हनूमान् नहीं चाहते हुए की तरह विश्रब्ध हो जिन-मन्दिरसे बाहर निकला ॥६६-६७॥ तदनन्तर हजारों स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़कर उसने उत्तम ज्योतिषीदेवके समान मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा दी ॥६८॥ उस समय सुन्दर क्रियाओंको धारण करनेवाला हनूमान् एक दूसरे गिरिराजके समान प्रेमवश, मानो सुमेरुसे जानेकी अन्तिम आज्ञा ही ले रहा हो ॥६९॥ तदनन्तर सब जिन-मन्दिरोंपर उत्तम फूल बरषाकर भरतक्षेत्रकी ओर धीरे-धीरे आकाशमें चला ॥७०॥

अथानन्तर परमराग (अत्यधिक लालिमा पद्ममें उत्कट प्रेम) से युक्त सन्ध्या सूर्यका आलिङ्गनकर खेद दूर करनेकी इच्छासे ही मानो अस्ताचलके ऊपर निवासकी प्राप्त हुई ॥७१॥

१. चित्रवत्स्युपहारेण-म० । २. सूत्रपत्रार्ण ख० । पटोलको वल्लं वा श्री० टि० । ३. वीणाम् ।

कृष्णपक्षे तदा रात्रिस्ताराबन्धुभिरावृता । रहिता चन्द्रनाथेन नितान्तं न विराजते ॥७२॥
 अवतीर्य ततस्तेन सुरदुन्दुभिनामनि । शैलपादे परं रम्ये सैन्यमावासितं शनैः ॥७३॥
 तत्र पद्मोत्पलामोद्वाहिमन्थरमारुते^१ । सुखं जिनकथाऽऽसक्ता यथास्वं सैनिकाः स्थिताः ॥७४॥
 अधोपरि विमानस्य निष्पणः शिखरान्तिके । प्राग्भारचन्द्रशालायाः कैलासाधिव्यकीपमे ॥७५॥
 ज्योतिष्पथाःसमुत्तुङ्गात्पतत्प्रस्फुरितप्रभम् । ज्योतिर्बिम्बं मरुत्सूनुरालोकत तमोऽभवत् ॥७६॥
 अचिन्तयच्च हा कष्टं संसारे नास्ति तत्पदम् । यत्र न कीदृति स्वेच्छं मृत्युः सुरगणेष्वपि ॥७७॥
 तडिदुक्कातरङ्गातिभङ्गुरं जन्म सर्वतः । देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥७८॥
 अनन्तशो न भुक्तं यत्संसारे चेतनावता । न तदास्ति सुखं नाम दुःखं वा भुवनप्रये ॥७९॥
 अहो मोहस्य माहात्म्यं परमेतद्बलान्वितम् । एतावन्तं यतः कालं दुःखपर्यटितं भवेत् ॥८०॥
 उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भ्रान्त्वा कृच्छ्रात्सहस्रशः । अवाप्यते मनुष्यत्वं कष्टं नष्टमनासवत् ॥८१॥
 विनश्वरसुखासक्ताः सौहित्यपरिवर्जिताः । परिणामं प्रपद्यन्ते प्राणिनस्तापसङ्कटम् ॥८२॥
 चलान्युत्पथवृत्तानि दुःखदानि पराणि च । इन्द्रियाणि न शाम्यन्ति विना जिनपथाश्रयात् ॥८३॥
^३भ्रान्तायेन यथा दीना बध्यन्ते मृगपक्षिणः । तथा विषयजालेन बध्यन्ते मोहिनो जनाः ॥८४॥
 आशीविषसमानैर्यो रमते विषयैः समम् । परिणामे स मूढात्मा दह्यते दुःखवह्निना ॥८५॥
 को ह्येकदिवसं रात्र्यं वर्षमग्निव्य यातनाम् । प्रार्थयेत् विमूढात्मा तद्दृष्ट्विषयसौख्यभाक् ॥८६॥

वह समय कृष्ण पक्षका था, अतः तारारूपी बन्धुओंसे आवृत और चन्द्रमारूपी पतिसे रहित रात्रि अत्यधिक सुशोभित नहीं हो रही थी इसलिए उसने आकाशसे उतर सुरदुन्दुभि नामक परम मनोहर प्रत्यन्त पर्वतपर धीरेसे अपनी सेना ठहरा दी ॥७२-७३॥ जहाँ कमलों और नील कमलोंकी सुगन्धिको धारण करनेवाली वायु धीरे-धीरे बह रही थी ऐसे उस प्रत्यन्त पर्वतपर जिनेन्द्रभगवानकी कथामें लीन सैनिक यथायोग्य सुखसे ठहर गये ॥७४॥

अथानन्तर हनुमान् कैलास पर्वतके ऊपरी मैदानके समान विमानकी चन्द्रशाला सम्बन्धी शिखरके समीप सुखसे बैठा था कि उसने बहुत ऊँचे आकाशसे गिरते हुए तथा क्षण एकमें अन्धकार रूप हो जाने वाले देदीप्यमान कान्तिके धारक ज्योतिर्बिम्बको देखा ॥७५-७६॥ देखते ही वह विचार करने लगा कि हाय हाय बड़े दुःखकी बात है कि इस संसारमें वह स्थान नहीं है जहाँ देवसमूहके बीच भी मृत्यु इच्छानुसार क्रीड़ा नहीं करती हो ॥७७॥ जहाँ देवोंका भी जन्म सब ओरसे बिजली, उल्का और तरङ्गके समान अत्यन्त भङ्गुर है वहाँ अन्य प्राणियोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥७८॥ इस प्राणीने संसारमें अनन्तबार जिख सुख-दुःखका अनुभव नहीं किया है वह तीन लोकमें भी नहीं है ॥७९॥ अहो ! यह मोहकी बड़ी प्रबल महिमा है कि यह जीव इतने समय तक दुःखसे भटकता रहा है ॥८०॥ हजारों उत्सर्पिणियों और अपसर्पिणियोंमें कष्ट सहित भ्रमण करनेके बाद मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है सो खेद है कि वह उस प्रकार नष्ट हो गई कि जिस प्रकार मानो प्राप्त ही न हुई हो ॥८१॥ विनाशी सुखोंमें आसक्त प्राणी कभी तृप्ति को प्राप्त नहीं होते और उसी अतृप्त दशामें संतापसे परिपूर्ण अन्तिम अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं ॥८२॥ चञ्चल, कुमार्गमें प्रवृत्ति करने वाली और अत्यन्त दुःखदायी इन्द्रियाँ जिन-मार्गका आश्रय लिए विना शान्त नहीं होतीं ॥८३॥ जिस प्रकार दीन मृग और पक्षी जालसे बद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार ये मोही प्राणी विषय-जालसे बद्ध होते हैं ॥८४॥ जो मनुष्य सर्पके समान विषयोंके साथ क्रीड़ा करता है वह मूर्ख फलके समय दुःख रूपी अग्निसे जलता है ॥८५॥ जैसे कोई मनुष्य वर्षभर कष्ट भोगकर एक दिनके रात्र्यकी अभिलाषा करे वैसे ही विषय-सुखका उपभोग करने-

कदाचिद् बुध्यमानोऽपि मोहतस्करवञ्चितः । न करोति जनः स्वार्थं किमतः कष्टसुप्तमम् ॥८७॥
 भुक्त्वा त्रिविष्टपे धर्मं मनुष्यभवसञ्चितम् । पश्चान्मुषितवहीनो दुःखी भवति चेतनः ॥८८॥
 भुक्त्वापि त्रैदशान् भोगान् सुकृते क्षयमागते । शेषकर्मसहायः सन् चेतनः कापि गच्छति ॥८९॥
 एतदेवं प्रतीक्ष्येण त्रिजगत्पतिनोदितम् । यथा जन्तोर्निजं कर्म बान्धवः शशुरेव वा ॥९०॥
 तदलं निन्दितैरेभिर्भोगैः परमदारुणैः । विप्रयोगः सहार्माभिरवर्यं येन जायते ॥९१॥
 प्रियं जनमिमं त्यक्त्वा करोमि न तपो यदि । तदा सुभूमचक्राव मरिष्याभ्यवितृप्तकः ॥९२॥
 श्रीमत्सो हरिर्णानेना योषिद्गुणसमन्विताः । अत्यन्तदुःस्यजा सुग्धा मदाहितमनोरथाः ॥९३॥
 कथमेतास्यजामीति सञ्चिन्थ विमनाः क्षणम् । अश्राणयदुपालम्भं हृदयस्य प्रबुद्धधीः ॥९४॥

अज्ञातच्छन्दः (?)

दीर्घं कालं रन्त्वा नाके गुणयुवतीभिः सुविभूतिभिः ।
 मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसमं भूयः प्रमदवरललितवनिताजनैः परिललितः ॥९५॥

अज्ञातच्छन्दः (?)

को वा यातस्तृप्तिं जन्तुर्विषयविषयसुखरतिभिर्नदीभिरिवोदधिः ।
 नानाजन्मभ्रान्त श्रान्त व्रज हृदय शममपि किमाकुलितं भवेत् ॥९६॥

वाला यह मूर्ख प्राणी, चिरकाल तक कष्ट भोगकर थोड़े समयके लिए सुखकी आकांक्षा करता है ॥८६॥ यद्यपि यह प्राणी जानता हुआ भी मोहरूपी चोरके द्वारा ठगाया जाता है तथापि कभी आत्मकल्याण नहीं करता इससे अधिक कष्ट और क्या होगा ? ॥८७॥ यह प्राणी मनुष्यभवमें संचित धर्मका स्वर्गमें उपभोगकर पश्चात् लुटे हुए मनुष्यके समान दोन और दुःखी हो जाता है ॥८८॥ यह जीव देवों सम्बन्धी भोग भोगकर भी पुण्यके क्षीण होनेपर अवशिष्ट कर्मोंकी सहायतासे जहाँ कहीं चला जाता है ॥८९॥ पुण्यवर त्रिलोकीनाथने यही कहा है कि इस प्राणीका बन्धु अथवा शत्रु अपना कर्म ही है ॥९०॥ इसलिए जिनके साथ अवश्य ही वियोग होता है ऐसे उन निन्दित तथा अत्यन्त कठोर भोगोंसे पूरा पड़े—उनकी हमें आवश्यकता नहीं है ॥९१॥ यदि मैं इन प्रियजनोंका त्यागकर तप नहीं करता हूँ तो सुभूम चक्रवर्तीके समान अष्टदशामें मरूंगा ॥९२॥ 'जो हरिणियोंके समान नेत्रोंवाली है, स्त्रियोंके गुणोंसे सहित है, अत्यन्त कठिनाई से छोड़ने योग्य है, भोली है और सुभूपर जिनके मनोरथ लगे हुए हैं ऐसी इन श्रीमती स्त्रियोंको कैसे छोड़ूँ' ऐसा विचारकर यद्यपि वह क्षणभरके लिए बेचैन हुआ तथापि वह तत्काल ही प्रबुद्ध बुद्धि हो हृदयके लिए इस प्रकार उलाहना देने लगा ॥९३-९४॥ कि हे हृदय ! जिसने दीर्घकाल तक स्वर्गमें उत्तम विभूतिकी धारक गुणवती स्त्रियोंके साथ रमण किया तथा मनुष्य-लोकमें भी जो अत्यधिक हर्षसे भरी सुन्दर स्त्रियोंसे लालित हुआ ऐसा कौन मनुष्य नदियोंसे समुद्रके समान नाना प्रकारके विषय-सुख सम्बन्धी प्रीतिसे सन्तुष्ट हुआ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए हे नाना जन्मोंमें भटकनेवाले श्रान्त हृदय ! शान्तिकी प्राप्त हो, व्यर्थ ही आकुलित क्यों हो

१. बुध्यमानोऽपि म० । २. त्रिदशान् म० । ३. गच्छति म० । ४. एतदेवं प्रतीक्षेण म० 'पुण्यः प्रतीक्ष्यः' इत्यमरः । ५. समनुभूतिभिः म० । ६. प्रमदवरवनिताजनैः म० । ७. खपुस्तके ६४-६५ तमश्लोकयोः क्रमभेदो वर्तते ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

किं न भ्रुता नरकभीमविरोधरौद्रास्तीव्रासिपत्रवनसङ्कटदुर्गमार्गाः ।
 रागोज्ज्वेल जनितं घनकर्मपङ्कं यन्नेच्छसि क्षपयितुं तपसा समस्तम् ॥६७॥
 आसीन्निरर्थकतमो धिगतांतकालो दीर्घोऽसुखार्णवजले पतितस्य निन्द्ये^१ ।
 आत्मानमद्य भवपञ्जरसन्निरुद्धं मोक्षामि^२ लब्धशुभमार्गमतिप्रकाशः ॥६८॥

आर्या

इति कृतनिरचयचेताः परिदृष्टयथार्थजीवलोकविवेकः ।
 रविरिच गतघनसङ्गस्तेजस्वी गन्तुमुद्यतोऽहं मार्गम् ॥६९॥

इत्यार्षे|श्रीरविशेषणाचार्यप्रणीते पद्मपुराणे हनुमन्निवेदं नाम द्वादशोत्तरशतं पर्व ॥११२॥



रहा है ? ॥६५-६६॥ हे हृदय ! क्या नरकके भयंकर विरोधसे दुःखदायी एवं तीक्ष्ण अस्तिपत्र
 वनसे संकट पूर्ण दुर्गम मार्ग, तूने सुने नहीं है कि जिससे रागोत्पत्तिसे उत्पन्न समस्त सघनकर्म
 रूपी पङ्कको तू तपके द्वारा नष्ट करनेकी इच्छा नहीं कर रहा है ॥६७॥ धिक्कार है कि दीर्घ तथा
 निन्दनीय दुःखरूपी सागरमें डूबे हुए मेरा अतीतकाल सर्वथा निरर्थक हो गया । अब आज
 मुझे शुभ मार्ग और शुभ बुद्धिका प्रकाश प्राप्त हुआ है इसलिए संसार रूपी पिंजड़ेके भीतर रुके
 आत्माको मुक्त करता हूँ—भव-बन्धनसे छुड़ाता हूँ ॥६८॥ इस प्रकार जिसने हृदयमें दृढ़ निश्चय
 किया है तथा जीव लोकका जिसने यथार्थ विवेक देख लिया है ऐसा मैं मेघके संसर्गसे रहित
 सूर्यके समान तेजस्वी होता हुआ सन्मार्गपर गमन करनेके लिए उद्यत हुआ हूँ ॥६९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविशेषणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हनुमान्के
 वैराग्यका वर्णन करनेवाला एक सौ बारहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११२॥



१. दीर्घः सुखार्णवजले म० । दीर्घं सुखार्णव-ज० । २. निन्द्यः म० । ३. विरुद्धं म० । ४. मोक्षामि म० ।

त्रयोदशोत्तरशतं पर्व

अथ रात्रावतीतायां तपनीयनिभो रविः । जगदुद्योतयामास दीप्या साधुर्यथा गिरा ॥१॥
 नक्षत्रगणमुत्सार्थं बोधिता नलिनाकराः । रविणा जिननाथेन भव्यानां निचया इव ॥२॥
 आट्टच्छतं सखीन् वातिर्महासंवेगसङ्गतः । निःस्पृहात्मा यथापूर्वं भरतोऽप्यन् तपोवनम् ॥३॥
 ततः कृपणलोलाङ्गाः^१ परमोद्देगवाहिनः^२ । नाथं विज्ञापयन्ति स्म सखिवाः प्रेमनिर्भराः ॥४॥
 अनाथान् देव नो कर्तुं मस्मानहंसि सद्गुण । प्रभो प्रसीद भक्तेशु क्रियतामनुपालनम् ॥५॥
 जगाद् मारुतिर्युथं परमप्यनुवर्त्तिनः । अनर्थवान्धवा एव मम नो हितहेतवः ॥६॥
 उत्तरन्तं भवाग्भोधिं तत्रैव प्रक्षिपन्ति ये । हितास्ते कथमुच्यन्ते वैरिणः परमार्थतः ॥७॥
 माता पिता सुहृद्भ्राता न तदाऽगात्सहायताम् । यदा नरकवासेषु प्राप्तं दुःखमनुत्तमम् ॥८॥
 मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य बोधिं च जिनशासने । प्रमादो नोचितः कर्तुं निमेषमपि धीमतः ॥९॥
 "समुष्यापि परं प्रीतैर्भवद्भिः सह भोगवान् । अवश्यंभावुकस्तीव्रो विरहः कर्मनिर्मितः ॥१०॥
 देवापुरमनुष्येन्द्रा स्वकर्मवशवर्त्तिनः । कालदावानलालीढाः के वा न प्रलयं गताः ॥११॥
 पत्योपमसहस्राणि त्रिदिवेऽनेकशो मया । भुक्ता भोगा न वाऽनुष्यं वद्विः शुष्केऽन्धनैरिव ॥१२॥
 गताऽऽगमविधेर्दातृ मत्तोऽपि सुमहाबलम् । अपरं नाम कर्माऽस्ति जाता तनुर्ममाऽहमा ॥१३॥

अथानन्तर रात्रि व्यतीत होनेपर स्वर्णके समान सूर्यने दीप्तिसे जगत्को उस तरह प्रकाश-मान कर दिया जिस तरह कि साधु वाणीके द्वारा प्रकाशमान करता है ॥१॥ सूर्यने नक्षत्र-समूहको हटाकर कमलोंके समूहको उस तरह विकसित कर दिया जिस तरह कि जिनेन्द्रदेव भव्योंके समूहको विकसित कर देता है ॥२॥ जिस प्रकार पहले तपोवनको जाते हुए भरतने अपने मित्रजनोंसे पूछा था उसी प्रकार महासंवेगसे युक्त, तथा निःस्पृह चित्त हनुमान्ने मित्रजनोंसे पूछा ॥३॥ तदनन्तर जिनके नेत्र अत्यन्त दीन तथा चञ्चल थे, जो परम उद्देगको धारण कर रहे थे एवं जो प्रेमसे भरे हुए थे ऐसे मन्त्रियोंने स्वामीसे प्रार्थना की कि हे देव ! आप हम लोगोंको अनाथ करनेके योग्य नहीं हैं । हे उत्तम गुणोंके धारक प्रभो ! भक्तोंपर प्रसन्न हूजिए और उनका पालन कीजिए ॥४-५॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने कहा कि तुम लोग परम अनुयायी होकर भी हमारे अनर्थकारी बान्धव हो हितकारी नहीं ॥६॥ जो संसार-समुद्रसे पार होते हुए मनुष्यको उसीमें गिरा देते हैं वे हितकारी कैसे कहे जा सकते हैं ? वे तो पथार्थमें वैरी ही हैं ॥७॥ जब मैंने नरकवासमें बहुत भारी दुःख पाया था तब माता-पिता, मित्र, भाई—कोई भी सहायताको प्राप्त नहीं हुए थे—किसीने सहायता नहीं की थी ॥८॥ दुर्लभ मनुष्य-पर्याय और जिन-शासनका ज्ञान प्राप्तकर बुद्धिमान् मनुष्यको निमेष मात्र भी प्रमाद करना उचित नहीं है ॥९॥ परम प्रीतिसे युक्त आप लोगोंके साथ रहकर जिस प्रकार भोगकी प्राप्ति हुई है उसी प्रकार अब कर्म-निर्मित तीव्र विरह भी अवश्यंभावी है ॥१०॥ अपने-अपने कर्मके आधीन रहनेवाले ऐसे कौन देवेन्द्र असुरेन्द्र अथवा मनुष्येन्द्र हैं जो काल रूपी दावानलसे व्याप्त हो विनाशको प्राप्त न हुए हों ? ॥११॥ मैंने स्वर्गमें अनेकों बार हजारों पत्य तक भोग भोगे हैं फिर भी सूखे ईन्धनसे अग्निके समान वृत्त नहीं हुआ ॥१२॥ गमनागमनको देनेवाला

१. सखी म० । २. वातस्यापत्यं पुमान् वातिः हनुमान् । ३. लोभाख्याः ख० । लोभाङ्गाः म० ।

४. वाहिताः म० । ५. मनुष्योऽपि परं प्रीतैर्भवद्भिः सहभोगवान् ब० ।

देहिनी यत्र मुह्यन्ति दुर्गतं भवसङ्कटम् । विलङ्घ्य गन्तुमिच्छामि पदं गर्भविवर्जितम् ॥१४॥
 वज्रसारतनौ तस्मिन्नेवं कृतविचेष्टिते । अभूदन्तःपुरस्त्रीणां महानाक्रन्दितध्वनिः ॥१५॥
 समाधास्य विषादात् प्रमदाजनमाकुलम् । वचोभिर्बोधने शक्तैर्नानावृत्तान्तशंसिभिः ॥१६॥
 तनयाँश्च समाधाय राजधर्मे यथाक्रमम् । सर्वाङ्घ्रियोगकुशलः शुभावस्थितमानसः ॥१७॥
 सुहृदां चक्रवालेन महता परितो वृतः । विमानभवनान् राजा निर्ययौ वायुनन्दनः ॥१८॥
 नरयानं समारूढ्य रत्नकाञ्चनभासुरम् । बुद्बुदादर्शलम्बूपचित्रचामरसुन्दरम् ॥१९॥
 ध्रुपुण्डरीकसङ्काशं बहुभक्तिविराजितम् । चैत्योद्यानं यतः श्रीमान् प्रस्थितः परमोदयः ॥२०॥
 विलसत्केतुमालाङ्घ्यं तस्य यानमुदीचय तत् । ययौ हर्षविषादं च जनः सक्ताश्रुलोचनः ॥२१॥
 तत्र चैत्यमहोद्याने विचित्रद्रुममण्डिते । सारिकाचञ्चरीकान्यपुष्टकोलाहलाकुले ॥२२॥
 नानाकुसुमकिञ्जल्कमुगन्धिखलततायने । संयतो धर्मरत्नाख्यस्तदा तिष्ठति कीर्त्तिमान् ॥२३॥
 धर्मरत्नमहाराशिमत्यन्तोत्तमयोगिनम् । यथा बाहुबली पूर्वं भावप्लावितमानसः ॥२४॥
 नरयानात् समुत्तीर्य हनूमानाससाद तम् । भगवन्तं नभोयातं चारणर्षिगणावृतम् ॥२५॥
 प्रणम्य भक्तिसम्पन्नः कृत्वा गुरुमहं परम् । जगद शिरसि न्यस्य करराजिवकुड्मलम् ॥२६॥
 उपेत्य भवतो दीक्षां निमुक्ताङ्गो महामुने । अहं विहसुमिच्छामि प्रसादः क्रियतामिति ॥२७॥

यह कर्म मुझसे भी अधिक महाबलवान् है । मेरा शरीर तो अब अहम्—असमर्थ हो गया है ॥१३॥ प्राणी जिस दुर्गम जन्म संकटको पाकर मोहित हो जाते हैं—स्वरूपको भूल जाते हैं । मैं उसे उल्लङ्घनकर गर्भातीत पदको प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१४॥

इस प्रकार वज्रमय शरीरको धारण करनेवाले हनूमान्ने जब अपनी दृढ़ चेष्टा दिखाई तब उसके अन्तःपुरकी स्त्रियोंमें रुदनका महाशब्द उत्पन्न हो गया ॥१५॥ तदनन्तर समझानेमें समर्थ एवं नाना प्रकारके वृत्तान्तोंका निरूपण करनेवाले वचनोंके द्वारा विषादसे पीडित, व्यग्र स्त्रियोंको सान्त्वना देकर तथा समस्त पुत्रोंको यथाक्रमसे राजधर्ममें लगाकर व्यवस्थापटु तथा शुभ कार्यमें मनको स्थिर करने वाले राजा हनूमान्, मित्रोंके बहुत बड़े समूहसे परिवृत हो विमानरूपी भवनसे बाहर निकले ॥१६-१८॥ जो रत्न और सुवर्णसे देदीप्यमान थी, छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्सू तथा नाना प्रकारके चमत्तोंसे सुन्दर थी और दिव्य-कमलके समान नाना प्रकारके वेलवृट्टोंसे सुशोभित थी ऐसी पालकीपर सवार हो परम अभ्युदयको धारण करनेवाला श्रीमान् हनूमान् जिस ओर मन्दिरका उद्यान था उसी ओर चला ॥१९-२०॥ जिसपर पताकाएँ फहरा रही थीं तथा जो मालाओंसे सहित थीं ऐसी उसकी पालकी देखकर लोग हर्ष तथा विषाद दोनोंको प्राप्त हो रहे थे और दोनों ही कारणोंसे उनके नेत्रोंमें आँसू छलक रहे थे ॥२१॥ जो नाना प्रकारके वृत्तोंसे मण्डित था, मैना, भ्रमर तथा कोयलके कोलाहलसे व्याप्त था और जिसमें नाना फूलोंकी केशरसे सुगन्धित वायु बह रही थी ऐसे मन्दिरके उस महोद्यानमें उस समय धर्मरत्न नामक यशस्वी मुनि विराजमान थे ॥२२-२३॥

जिसका मन वैराग्यकी भावनासे आप्लुत था ऐसे बाहुबली जिस प्रकार पहले धर्मरूपी रत्नोंकी महाराशि स्वरूप अत्यन्त उत्तम योगी—श्री ऋषभ जिनेन्द्रके समीप गये थे उसी प्रकार वैराग्य भावनासे आप्लुत हृदय हनूमान् पालकीसे उतरकर आकाशगामी एवं चारणर्षियोंसे आवृत उन भगवान् धर्मरत्न नामक मुनिराजके समीप पहुँचा ॥२४-२५॥ पहुँचते ही उसने प्रणाम किया, बहुत बड़ी गुरुपूजा की और तदनन्तर हस्तरूपी कमल-कुड्मलोंको शिरपर धारण कर कहा कि हे महामुने ! मैं आपसे दीक्षा लेकर तथा शरीरसे ममता छोड़ निर्द्वन्द्व विहार करना

यतिराहोत्तमं युक्तमेवमस्तु सुमानसः । जगद्धिःसारमालोक्य क्रियतां स्वहितं परम् ॥२८॥
 अशाश्वतेन देहेन विद्वत्तुं शाश्वतं पदम् । परमं तव कल्याणी मतिरेषा समुद्गता ॥२९॥
 इत्यनुज्ञां मुनेः प्राप्य संवेगारभसान्विततः । कृतप्रणमनस्तुष्टः पर्यङ्कासनमाश्रितः ॥३०॥
 मुकुटं कुण्डले द्वारमवशिष्टं विभूषणम् । समुत्ससर्ज वस्त्रं च मानसं च परिग्रहम् ॥३१॥
 दयितानिगडं भित्त्वा दग्ध्वा जालं ममत्वजम् । क्षिप्वा स्नेहमयं पाशं त्यक्त्वा सौख्यं विवोपमम् ॥३२॥
 वैराग्यदीपशिखया मोहध्वान्तं निरस्य च । कमप्यपकरं द्रष्टुं शरीरमतिभङ्गुरम् ॥३३॥
 स्वयं सुसुकुमाराभिर्जितपद्माभिरुत्तमम् । उत्तमाङ्गरुहो नीत्वा करशाखाभिरुत्तमः ॥३४॥
 निःशेषसङ्गनिर्मुक्तो मुक्तिलक्ष्मीं समाश्रितः । महाव्रतधरः श्रीमान्बुद्धीशैलः शुशुभेतराम् ॥३५॥
 निर्वेदप्रभुरागाभ्यां प्रेरितानि महात्मनाम् । शतानि सप्त साम्राणि पञ्चाशद्भिः सुचेतसाम् ॥३६॥
 विद्याधरनरेन्द्राणां महासंवेगवर्तिनाम् । स्वपुत्रेषु पदं दत्त्वा प्रतिपन्नानि योगिताम् ॥३७॥
 विद्युद्गत्यादिनामानः परमप्रीतमानसाः । मुक्तसर्वकलङ्कास्ते श्रिताः श्रीशैलविभ्रमम् ॥३८॥
 कृत्वा परमकारुण्यं विप्रलापं महाशुचम् । वियोगानलसन्तप्ताः परं निर्वेदमागताः ॥३९॥
 प्रथितां बन्धुमत्याख्यामुपगम्य महत्तराम् । प्रयुज्य विनयं भक्त्या विधाय महसुत्तमम् ॥४०॥
 धीमत्यो भवतो भीता धीमत्यो नृपयोषितः । महद्भूषणनिर्मुक्ताः शीलभूषाः प्रवन्नजुः ॥४१॥
 बभूव विभवस्तासां तदा जीर्णतृणोपमः । महामहाजनः प्रायो रतिवद्विरतो भृशम् ॥४२॥

चाहता हूँ अतः मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥२६-२७॥ यह सुन उत्तम हृदयके धारक मुनिराजने कहा कि बहुत अच्छा, ऐसा ही हो, जगत्को निःसार देख अपना परम कल्याण करो ॥२८॥ विनश्वर शरीरसे अविनाशी पद प्राप्त करनेके लिए जो तुम्हारी कल्याणरूपिणी बुद्धि उत्पन्न हुई है यह बहुत उत्तम बात है ॥२९॥

इस प्रकार मुनिकी आज्ञा पाकर जो वैराग्यके वेगसे सहित था, जिसने प्रणाम किया था, और जो संतुष्ट होकर पद्मासनसे विराजमान था ऐसे हनूमान्ने मुकुट, कुण्डल, हार तथा अन्य आभूषण, वस्त्र और मानसिक परिग्रहको तत्काल छोड़ दिया ॥३०-३१॥ उसने स्त्री रूपी वेड़ी तोड़ डाली थी, ममतासे उत्पन्न जालको जला दिया था, स्नेह रूपी पाश छेद डाली थी, सुखको विषके समान छोड़ दिया था, अत्यन्त भङ्गुर शरीरको अद्भुत अपकारी देख वैराग्य रूपी दीपककी शिखासे मोहरूपी अन्धकारको नष्ट कर दिया था, और कमलको जीतनेवाली अपनी सुकुमार अङ्गुलियोंसे शिरके बाल नोच डाले थे । इस प्रकार समस्त परिग्रहसे रहित, मुक्ति रूपी लक्ष्मीके सेवक, महाव्रतधारी, और वैराग्य लक्ष्मीसे युक्त उत्तम हनूमान् अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥३२-३४॥ उस समय वैराग्य और स्वामिभक्तिसे प्रेरित, उदारात्मा, शुद्ध हृदय और महासंवेगमें वर्तमान सातसौ पचास विद्याधर राजाओंने अपने-अपने पुत्रोंके लिए राज्य देकर मुनिपद धारण किया ॥३५-३७॥ इस प्रकार जिनके चित्त अत्यन्त प्रसन्न थे, तथा जिनके सब कलंक छूट गये थे ऐसे वे विद्युद्गति आदि नामको धारण करनेवाले मुनि हनूमान्की शोभाको प्राप्त थे अर्थात् उन्हींके समान शोभायमान थे ॥३८॥

तदनन्तर जो वियोगरूपी अग्निसे संतप्त थीं, महाशोकदायी अत्यन्त करुण विलाप कर परम निर्वेद—वैराग्यको प्राप्त हुई थीं, श्रीमती थीं, संसारसे भयभीत थीं, धीमती थीं, महा-आभूषणोंसे रहित थीं, और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाली थीं ऐसी राजस्त्रियोंने बन्धुमती नामकी प्रसिद्ध आर्यिकाके पास जाकर तथा भक्ति पूर्वक नमस्कार और उत्तम पूजा कर दीक्षा धारण कर ली ॥३९-४१॥ उस समय उन सबके लिए वैभव जीर्णतृणके समान जान पड़ने लगा

व्रतगुप्तिसमित्युच्चैः शैलः श्रीशैलपुङ्गवः । महातपोधनो धीमान् गुणशीलविभूषणः ॥४३॥

आर्याच्छुन्दः

धरणीधरैः प्रहृष्टैरुपगीतो वन्दितोऽप्सरोभिश्च ।
अमलं समयविधानं सर्वज्ञोक्तं समाचर्य ॥४४॥
निर्दग्धमोहनिचयो जैनेन्द्रं प्राप्य पुष्कलं ज्ञानविधिम् ।
निर्वाणगिरावसिधच्छीशैलः श्रमणसत्तमः पुरुषरविः ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते हनूमन्निर्वाणाभिधानं नाम त्रयोदशोत्तरशतं पर्व ॥११३॥

था सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम पुरुष राग करने वालोंसे अत्यन्त विरक्त रहते ही हैं ॥४२॥ इस प्रकार जो व्रत, गुप्ति और समितिके मानो उच्च पर्वत थे ऐसे श्री हनूमान् मुनि महातप रूपी धनके धारक, धीमान् और गुण तथा शील रूपी आभूषणोंसे सहित थे ॥४३॥ हर्षसे भरे बड़े-बड़े राजा जिनकी स्तुति करते थे, अप्सराएँ जिन्हें नमस्कार करती थीं, जिन्होंने मोहकी राशि भस्म कर दी थी, जो मुनियोंमें उत्तम थे, तथा पुरुषोंमें सूर्यके समान थे ऐसे श्रीशैल महामुनिने सर्वज्ञ प्रतिपादित निर्मल आचारका पालन कर तथा जिनेन्द्र सम्बन्धी पूर्णज्ञान प्राप्तकर निर्वाण गिरिसे सिद्ध पद प्राप्त किया ॥४४-४५॥

इस प्रकार आर्षं नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें हनूमान्के निर्वाणका वर्णन करनेवाला एकसौ तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११३॥

चतुर्दशोत्तरशतं पर्व

प्रमथ्यामष्टवीराणां ज्ञात्वा वायुसुतस्य च । रामो जहास किं भोगो भुक्तस्तैः कातरैरिति ॥१॥
 सन्तं सन्नयस्य ये भोगं प्रमथन्त्यायतेषणाः । नूनं प्रहृष्टहीतास्ते वायुना वा वशीकृताः ॥२॥
 नूनं तेषां न विद्यन्ते कुशला वैद्यवार्तिकाः^१ । यतो मनोहरान् कामान्परित्यज्य व्यवस्थिताः ॥३॥
 एवं भोगमहासङ्गसौख्यसागरसेविनः । आसीत्तस्य जडा बुद्धिः कर्मणा वशमीयुषः ॥४॥
^२भुज्यमानाऽऽस्वसौख्येन संसारपदमीयुषाम्^३ । प्रायो विस्मयते सौख्यं श्रुतमप्यतिसंस्मृतिं^४ ॥५॥
 एवं तयोर्महाभोगमग्नयोः प्रेमबन्धुयोः । पद्मवैकुण्ठयोः कालो धर्मकुण्डो विवर्तते ॥६॥
 अधान्यदा समायातः सौधर्मेन्द्रो महाद्युतिः । ऋद्धया परमया युक्तो धैर्यगाम्भीर्यसंस्थितः ॥७॥
 सेवितः सचिवैः सर्वैर्नानालङ्कारधारिभिः । कात्स्वरमहाशैल इव गण्डमहोधरैः ॥८॥
 सुखं तेजःपरिच्छक्ते निषण्णः सिंहविष्टरे । सुमेरुशिखरस्थस्य चैत्यस्य श्रियमुद्गहन^५ ॥९॥
 चन्द्रादित्योत्तमोद्योतरत्नालङ्कृतविग्रहः । मनोहरेण रूपेण जुष्टो नेत्रसमुत्सवः ॥१०॥
 विभ्राणो विमलं हारं तरङ्गितमहाप्रभम्^६ । प्रवाहमिव सीतोदं श्रीमाक्षिपधभूधरः ॥११॥
 हारकुण्डलकेयूरप्रभृत्युत्तमभूषणैः । समन्तादावृतो देवैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१२॥

अथानन्तर लक्ष्मणके आठ वीर कुमारों और हनुमानकी दीक्षाका समाचार सुन श्रीराम यह कहते हुए हँसे कि अरे! इन लोगोंने क्या भोग भोगा? ॥१॥ जो दूरदर्शी मनुष्य, विद्यमान भोगको छोड़कर दीक्षा लेते हैं जान पड़ता है कि वे प्रहाँसे आक्रान्त हैं अथवा वायुके वशीभूत हैं। भावार्थ—या तो उन्हें भूत लगे हैं या वे वायुकी बीमारीसे पीड़ित हैं ॥२॥ जान पड़ता है कि ऐसे लोगोंकी ओषधि करने वाले कुशल वैद्य नहीं हैं इसीलिए तो वे मनोहर भोगोंको छोड़ बैठते हैं ॥३॥ इस प्रकार भोगोंके महासंगसे होने वाले सुख रूपी सागरमें निमग्न तथा चारित्र-मोहनीय कर्मके वशीभूत श्रीरामचन्द्रकी बुद्धि जड़ रूप हो गई थी ॥४॥ भोगनेमें आये हुए अल्प सुखसे उपलक्षित संसारी प्राणियोंको यदि किसीके लोकोत्तर सुखका वर्णन सुननेमें भी आता है तो प्रायः वह आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥५॥ इस प्रकार महाभोगोंमें निमग्न तथा प्रेमसे बँधे हुए उन राम-लक्ष्मणका काल चारित्र रूपी धर्मसे निरपेक्ष होता हुआ व्यतीत हो रहा था ॥६॥

अथानन्तर किसी समय महा कान्तिसे युक्त, उत्कृष्ट ऋद्धिसे सहित, धैर्य और गाम्भीर्यसे उपलक्षित सौधर्मेन्द्र देवोंकी सभामें आकर विराजमान हुआ ॥७॥ नाना अलंकारोंको धारण करने वाले समस्त मन्त्री उसकी सेवा कर रहे थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो अन्य छोटे पर्वतोंसे परिवृत सुमेरु महापर्वत ही हो ॥८॥ कान्तिसे आच्छादित सिंहासनपर बैठा हुआ वह सौधर्मेन्द्र सुमेरुके शिखरपर विराजमान जिनेन्द्रकी शोभाको धारण कर रहा था ॥९॥ चन्द्रमा और सूर्यके समान उत्तम प्रकाश वाले रत्नोंसे उसका शरीर अलंकृत था। वह मनोहर रूपसे सहित तथा नेत्रोंको आनन्द देने वाला था ॥१०॥ जिसकी बहुतभारी कान्ति फैल रही थी ऐसे निर्मल हारको धारण करता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो सीतोदा नदीके प्रवाहको धारण करता हुआ निषध पर्वत ही हो ॥११॥ हार, कुण्डल, केयूर आदि उत्तम आभूषणोंको धारण करने

१. वैद्यवार्तिकाः म० । २. कपुस्तके षष्ठ श्लोको नास्ति । ३. -मीयुषः म० । ४. संस्मृतिः । ५. प्रेमबन्धुयोः म० । ६. महाप्रभः म० ।

चन्द्रनक्षत्रसादृश्यं चारु मानुषगोचरम् । उक्तं यतोऽन्यथाकल्पज्योतिषामन्तरं महत् ॥१३॥
 महाप्रभावसम्पन्नो दिशो दश निजौजसा । भासयन्परमोदात्तस्तर्कज्ञैर्नेरवरो यथा ॥१४॥
 अशक्यवर्णनो भूरि संवत्सरशतैरपि । अप्यशेषैर्जनैर्जिह्वासहस्रैरपि सर्वदा ॥१५॥
 लोकपालप्रधानानां सुराणां चारुचेतसाम् । यथाऽऽसनं निषण्णानां पुराणमिदमभ्यधात् ॥१६॥
 येनैषोऽत्यन्तदुःसाध्यः संसारः परमासुरः । निहतो ज्ञानचक्रेण महारिः सुखसूदनः ॥१७॥
 अर्हन्तं तं परं भक्त्या भावपुष्पैरनन्तरम् । नाथमर्चयताऽशेषदोषकणविभावसुम् ॥१८॥
 कषायोऽग्रतरङ्गाख्यात् कामप्राहसमाकुलात् । यः संसाराणवाद् भव्यान् समुत्तारयितुं क्षमः ॥१९॥
 यस्य प्रजातमात्रस्य मन्दरे त्रिदशेश्वराः । अभिषेकं निषेवन्ते परं क्षीरोदवारिणा ॥२०॥
 अर्चयन्ति च भक्त्याख्यास्तदेकाम्प्रानुवसिन्तः । पुरुषार्थाऽऽहितस्वान्ताः परिवर्गसमन्विताः ॥२१॥
 विन्ध्यकैलासवह्नीजां पारावारोर्मिमेखलाम् । यावत्तस्थौ महीं त्यक्त्वा गृह्णत्वा सिद्धियोषिताम् ॥२२॥
 महामोहतमख्यं धर्महीनमपाथिवम् । येनेदमेव नाकामादालोकं प्रापितं जगत् ॥२३॥
 अत्यन्ताद्भुतवीर्येण येनाष्टौ कर्मशत्रवः । क्षपिताः क्षणमात्रेण हरिणेवेह इन्तितः ॥२४॥

वाले देव उस सौधर्मेन्द्रको सब ओरसे घेरे हुए थे इसलिए वह नक्षत्रोंसे आवृत चन्द्रमाके समान जान पड़ता था ॥१३॥ इन्द्र तथा देवोंके लिए जो चन्द्रमा और नक्षत्रोंका सादृश्य कहा है वह मनुष्यकी अपेक्षा है क्योंकि स्वर्गके देव और ज्योतिषी देवोंमें बड़ा अन्तर है । भावार्थ—मनुष्य-लोकमें चन्द्रमा और नक्षत्र उज्ज्वल दिखते हैं इसलिए इन्द्र तथा देवोंको उनका दृष्टान्त दिया है यथार्थमें चन्द्रमा नक्षत्र रूप ज्योतिषी देवोंसे स्वर्गवासी देवोंकी ज्योति अधिक है और देवोंकी ज्योतिसे इन्द्रोंकी ज्योति अधिक है ॥१३॥ वह इन्द्र स्वयं महाप्रभावसे सम्पन्न था और अपने तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशमान कर रहा था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्र सम्बन्धी अत्यन्त ऊँचा अशोक वृक्ष ही हो ॥१४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यदि सब लोग मिलकर हजारों जिह्वाओंके द्वारा निरन्तर उसका वर्णन करें तो सैकड़ों वर्षोंमें भी वर्णन पूरा नहीं हो सकता ॥१५॥

तदनन्तर उस इन्द्रने, यथायोग्य आसनोपर बैठे लोकपाल आदि शुद्ध हृदयके धारक देवोंके समक्ष इस पुराणका वर्णन किया ॥१६॥ पुराणका वर्णन करते हुए उसने कहा कि अहो देवो ! जिन्होंने अत्यन्त दुःसाध्य, सुखको नष्ट करनेवाले तथा महाशत्रु स्वरूप इस संसाररूपी महाअसुरको ज्ञानरूपी चक्रके द्वारा नष्ट कर दिया है और जो समस्त दोष रूपी अटवीको जलानेके लिए अग्निके समान हैं उन परमोत्कृष्ट अर्हन्त भगवान्की तुम निरन्तर भक्तिपूर्वक भाव रूपी फूलोंसे अर्चा करो ॥१७-१८॥ कषायरूपी उन्नत तरङ्गोंसे युक्त तथा कामरूपी मगर-मच्छ्रोंसे व्याप्त संसार रूपी सागरसे जो भव्य जीवोंको पार लगानेमें समर्थ हैं, उत्पन्न होते ही जिनका इन्द्र लोग सुमेरु पर्वतपर क्षीरसागरके जलसे उत्कृष्ट अभिषेक करते हैं । तथा भक्तिसे युक्त, मोक्ष पुरुषार्थमें चित्तको लगानेवाले एवं अपने-अपने परिजनोंसे सहित इन्द्र लोग तदेकाम् चित्त होकर जिनकी पूजा करते हैं ॥१९-२१॥ विन्ध्य और कैलाश पर्वत जिसके स्तन हैं तथा समुद्रकी लहरें जिसकी मेखला है ऐसी पृथिवी रूपी स्त्रीका त्यागकर तथा मुक्ति रूपी स्त्रीको लेकर जो विद्यमान हैं ॥२२॥ महामोह रूपी अन्धकारसे आच्छादित, धर्महीन तथा स्वामी हीन इस संसारकी जिन्होंने स्वर्गके अग्रभागसे आकर उत्तम प्रकाश प्राप्त कराया था ॥२३॥ और जिस प्रकार सिंह हाथियोंको नष्ट कर देता है उसी प्रकार अत्यन्त अद्भुत पराक्रमको धारण करने वाले जिन्होंने आठ कर्म रूपी शत्रुओंको क्षणभरमें

जिनेन्द्रो भगवानर्हन् स्वयम्भूः शम्भुरुजितः । स्वयम्प्रभो महादेवः स्थाणुः कालञ्जरः शिवः ॥२५॥
 महाहिरण्यगर्भश्च देवदेवो महेश्वरः । सद्धर्मचक्रवर्ती च विभुस्तीर्थकरः कृती ॥२६॥
 संसारसूदनः सुरिज्ञानचक्षुर्भवान्तकः । एचसादिर्यथार्थास्थो गीयते यो मनीषिभिः ॥२७॥
 निगूढप्रकटस्वार्थैरभिधानैः सुनिर्मलैः । स्तूयते स मनुष्येन्द्रैः सुरेन्द्रैश्च सुभक्तिभिः ॥२८॥
 प्रसादाद्यस्य नाथस्य कर्ममुक्ताः शरीरिणः । त्रैलोक्याप्तेऽवतिष्ठन्ते यथावत्प्रकृतिस्थिताः ॥२९॥
 इत्यादि यस्य माहात्म्यं स्मृतमप्यवनाशनम् । पुराणं परमं दिव्यं सम्मदोद्भवकारणम् ॥३०॥
 महाकल्याणमूलस्य स्वार्थार्कणतत्पराः । तस्य देवाधिदेवस्य भक्ता भवस सन्ततम् ॥३१॥
 अनादिनिघने जन्तुः प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः । दुर्लभं प्राप्य मनुष्यं धिक् कश्चिदपि मुञ्चति ॥३२॥
 चतुर्गतिमहावर्त्से महासंसारमण्डले । पुनर्वीधिः कुतस्तेषां ये द्विषन्त्यर्हदक्षरम् ॥३३॥
 कृच्छ्रान्मानुषमासाद्य यः स्याद्बोधिविवर्जितः । पुनर्भ्रम्यत्यपुण्यात्मा सः स्वयंरथचक्रवत् ॥३४॥
 अहो धिङ्मानुषे लोके गतानुगतिकैर्जनैः । जिनेन्द्रो नाहतः कैश्चित्संसारारिनिषूदनः ॥३५॥
 मिथ्यातपः समाचर्य भूत्वा देवो लवर्धिकः^३ । च्युत्वा मनुष्यतां प्राप्य कष्टं दुःखति जीवकः ॥३६॥
 कुधर्माशयसक्तोऽसौ महामोहवशीकृतः । न जिनेन्द्रं महेंद्राणामपीन्द्रं प्रतिपद्यते ॥३७॥
 विषयामिषलुब्धात्मा जन्तुर्मनुजतां गतः । मुञ्चते मोहनीयेन कर्मणा कष्टमुत्तमम् ॥३८॥
 अपि दुर्दृष्टयोगाद्यैः स्वर्गं प्राप्य कुतापसः । स्वहीनतां परिज्ञाय दह्यते चिन्तयाऽनुरः ॥३९॥
 रत्नद्वीपोपमे रम्ये तदा धिङ्मन्दबुद्धिना । मयार्हच्छासने किं नु श्रेयो न कृतमात्मनः ॥४०॥

नष्ट कर दिया है ॥२४॥ जिनेन्द्र-भगवान्, अर्हन्त, स्वयंभू, शम्भु, ऊर्जित, स्वयंप्रभ, महादेव, स्थाणु, कालञ्जर, शिव, महाहिरण्यगर्भ, देवदेव, महेश्वर, सद्धर्म चक्रवर्ती, विभु, तीर्थकर, कृति, संसारसूदन, सुरि, ज्ञानचक्षु और भवान्तक इत्यादि यथार्थ नामोंसे विद्वज्जन जिनकी स्तुति करते हैं ॥२५-२७॥ उत्तम भक्तिसेयुक्त नरेन्द्र और देवेन्द्र गूढ तथा अगूढ अर्थको धारण करने वाले अत्यन्त निर्मल शब्दों द्वारा जिनकी स्तुति करते हैं ॥२८॥ जिनके प्रसादसे जीव कर्मरहित हो तीन लोकके अप्रभागमें स्वस्वभावमें स्थित रहते हुए विद्यमान रहते हैं ॥२९॥ जिनका इस प्रकारका माहात्म्य स्मृतिमें आनेपर भी पापका नाश करनेवाला है और जिनका परम दिव्य पुराण हर्षकी उत्पत्तिका कारण है ॥३०॥ हे आत्मकल्याणके इच्छुक देवजनों ! उन महाकल्याणके मूल देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्के तुम सदा भक्त होओ ॥३१॥ इस अनादि-निघन संसारमें अपने कर्मोंसे प्रेरित हुआ कोई विरला मनुष्य ही दुर्लभ मनुष्य पर्यायको प्राप्त करता है परन्तु धिक्कार है कि वह भी मोहमें फँस जाता है ॥३२॥ जो 'अर्हन्त' इस अक्षरसे द्वेष करते हैं उन्हें चतुर्गति रूप बड़ी-बड़ी आवर्तोंसे सहित इस संसाररूपी महासागरमें रत्नत्रयकी प्राप्ति पुनः कैसे हो सकती है ? ॥३३॥ जो बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभव पाकर रत्नत्रयसे वर्जित रहता है, वह पापी रथके चक्रके समान स्वयं भ्रमण करता रहता है ॥३४॥ अहो धिक्कार है कि इस मनुष्य-लोकमें कितने ही गतानुगतिक लोगोंमें संसार-शत्रुको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का आदर नहीं किया ॥३५॥ यह जीव मिथ्या तपकर अल्प ऋद्धिका धारक देव होता है और वहाँसे च्युत होकर मनुष्य पर्याय पाता है फिर भी खेद है कि द्रोह करता है ॥३६॥ महामोहके वशीभूत हुआ यह जीव, मिथ्याधर्ममें आसक्त हो बड़े-बड़े इन्द्रोंके इन्द्र जो जिनेन्द्र भगवान् हैं उन्हें प्राप्त नहीं होता ॥३७॥ विषय रूपी मांसमें जिसकी आत्मा लुभा रही है ऐसा यह प्राणी मनुष्य पर्याय कर्मको पाकर मोहनीयके द्वारा मोहित हो रहा है, यह बड़े कष्टकी बात है ॥३८॥ मिथ्यातप करनेवाला प्राणी दुर्देवके योगसे यदि स्वर्ग भी प्राप्त कर लेता है तो वहाँ अपनी हीनताका अनुभव करता हुआ चिन्तानुर हो जलता रहता है ॥३९॥ वहाँ वह सोचता है कि अहो ! रत्नद्वीपके

१. निगूढः प्रकटः म० । २. अनादिनिघनो म० । ३. लवर्धिकः म० । ४. प्रतिपद्यन्ते म० ।

हा धिक्कुशास्त्रनिवहैस्तैश्च वाक्पटुभिः खलैः । पापैर्मानिभिर्हन्मार्गे पातितः पतितैः कथम् ॥४१॥
 एवं मानुष्यमासाद्य जैनेन्द्रमतमुत्तमम् । दुर्विज्ञेयमधन्यानां जन्तूनां दुःखभागिनाम् ॥४२॥
 महर्षिकस्य देवस्य च्युतस्य स्वर्गतो भवेत् । आर्हती दुर्लभा बोधिर्देहिनोऽन्यस्य किं पुनः ॥४३॥
 धन्यः सोऽनुगृहीतश्च मानुषत्वे भवोत्तमे । यः करोत्यात्मनः श्रेयो बोधिमासाद्य नैष्ठिकीम् ॥४४॥
 तत्रैवात्मगतं प्राह सुरश्रेष्ठो विभावसुः । कदा तु खलु मानुष्यं प्राप्स्यामि स्थितिसंक्षये ॥४५॥
 विषयार्थिं परित्यज्य स्थापयित्वा वशे मनः । नीत्वा कर्म प्रयास्यामि तपसा गतिमार्हतीम् ॥४६॥
 तत्रैको विबुधः प्राह स्वर्गस्थस्येदशी मतिः । अस्माकमपि सर्वेषां नृत्वं प्राप्य विमुह्यति ॥४७॥
 यदि प्रत्ययसे नैतद् ब्रह्मलोकात् परिच्युतम् । मानुष्यैश्चर्यसंयुक्तं पद्मार्थं किं न पश्यसि ॥४८॥
 भत्रोवाच महातेजाः शचीपतिरसौ स्वयम् । सर्वेषां बन्धनानां तु स्नेहबन्धो महाददः ॥४९॥
 हस्तपादाङ्गबद्धस्य मोक्षः स्यादसुधारिणः । स्नेहबन्धनबद्धस्य कुलो मुक्तिर्विधीयते ॥५०॥
 योजनानां सहस्राणि निगडैः पूरितो व्रजेत् । शक्तो नाहुलमप्येकं बद्धः स्नेहेन मानवः ॥५१॥
 अस्य लाङ्गलिनो नित्यमनुरक्तो गदायुधः । अतृप्तो दर्शने कृत्यं जीवितेनाऽपि वान्छति ॥५२॥
 निमेषमपि नो यस्य विकलं हलिनो मनः । स तं लषमोधरं त्यक्तुं शक्नोति सुकृतं कथम् ॥५३॥

समान सुन्दर जिन-शासनमें पहुँचकर भी मुझ मन्दबुद्धिने आत्माका हित नहीं किया अतः मुझे धिक्कार है ॥४०॥ हाय हाय धिक्कार है कि मैं उन मिथ्या शास्त्रोंके समूह तथा वचन-रचना-में चतुर, पापी, मानी तथा स्वयं पतित दुष्ट मनुष्योंके द्वारा कुमार्गमें कैसे गिरा दिया गया ? ॥४१॥ इस प्रकार मनुष्य-भव पाकर भी अधन्य तथा निरन्तर दुःख उठानेवाले मनुष्योंके लिए यह उत्तम जिन-शासन दुर्ज्ञेय ही बना रहता है ॥४२॥ स्वर्गसे च्युत हुए महर्षिक देवके लिए भी जिनेन्द्र प्रतिपादित रत्नत्रयका पाना दुर्लभ है फिर अन्य प्राणीकी तो बात ही क्या है ? ॥४३॥ सब पर्यायोंमें उत्तम मनुष्य-पर्यायमें निष्ठापूर्ण रत्नत्रय पाकर जो आत्माका कल्याण करता है वही धन्य है तथा वही अनुगृहीत-उपकृत है ॥४४॥

उसी सभामें बैठा हुआ इन्द्ररूपी सूर्य, मन-ही-मन कहता है कि यहाँकी आयुपूर्ण होनेपर मैं मनुष्य-पर्यायको कब प्राप्त करूँगा ? ॥४५॥ कब विषयरूपी शत्रुको छोड़कर मनकी अपने वश कर, तथा कर्मको नष्टकर तपके द्वारा मैं जिनेन्द्र सम्बन्धी गति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करूँगा ॥४६॥ यह सुन देवोंमें से एक देव बोला कि जब तक यह जीव स्वर्गमें रहता है तभी तक उसके ऐसा विचार होता है, जब हम सब लोग भी मनुष्य-पर्यायको पा लेते हैं तब यह सब विचार भूल जाता है ॥४७॥ यदि इस बातका विश्वास नहीं है तो ब्रह्मलोकसे च्युत तथा मनुष्योंके से युक्त राम-बलभद्रको जाकर क्यों नहीं देख लेते ? ॥४८॥

इसके उत्तरमें महातेजस्वी इन्द्रने स्वयं कहा कि सब बन्धनोंमें स्नेहका बन्धन अत्यन्त दृढ़ है ॥४९॥ जो हाथ-पैर आदि अवयवोंसे बँधा है ऐसे प्राणीको मोक्ष हो सकता है परन्तु स्नेहरूपी बन्धनसे बँधे प्राणीको मोक्ष कैसे हो सकता है ? ॥५०॥ बेड़ियोंसे बँधा मनुष्य हजारों योजन भी जा सकता है परन्तु स्नेहसे बँधा मनुष्य एक अङ्गुल भी जानेके लिए समर्थ नहीं है ॥५१॥ लक्ष्मण, राममें सदा अनुरक्त रहता है वह इसके दर्शन करते-करते कभी तृप्त ही नहीं होता और अपने प्राण देकर भी उसका कार्य करना चाहता है ॥५२॥ पलभरके लिए भी जिसके दूर होनेपर रामका मन बेचैन हो उठता है वह उस उपकारी लक्ष्मणको छोड़नेके लिए

छन्दः (?)

कर्मणामिदमाहशमीहितं बुद्धिमानपि यदेति विमूढताम् ।
 अन्यथा श्रुतसर्वनिजायतिः कः करोति न हितं सचेतनः ॥५४॥
 एवमेतद्दहो त्रिदशाः स्थितं देहिनामपरमत्र किमुच्यताम् ।
 कृत्यमत्र भवारिविनाशनं यत्नमेत्य परमं सुचेतसा ॥५५॥

मालिनीच्छन्दः

इति सुरपतिमार्गं तत्त्वमार्गानुरक्तं जिनवरगुणसङ्गात्स्वन्तपूतं मनोज्ञम् ।
 रविशशिमरुद्राद्याः प्राप्य चेतोविशुद्धा भवभयमभिजगमुर्मानवस्वाभिकाङ्क्षाः ॥५६॥

इत्यार्षे श्रीपद्मचरिते रविषेणाचार्यप्रणीते शकसुरसंकथामिधानं नाम
 चतुर्दशोत्तरशतं पर्व ॥११४॥

कैसे समर्थ हो सकता है ? ॥५३॥ कर्मकी यह ऐसी ही अद्भुत चेष्टा है कि बुद्धिमान् मनुष्य भी विमोहको प्राप्त हो जाता है अन्यथा जिसने अपना समस्त भविष्य सुन रक्खा है ऐसा कौन सचेतन प्राणी आत्महित नहीं करता ॥५४॥ इस प्रकार अहो देवो ! प्राणियोंके विषयमें यहाँ और क्या कहा जाय ? इतना ही निश्चित हुआ कि उत्तम प्रयत्न कर अच्छे हृदयसे संसार रूपी शत्रुका नाश करना चाहिए ॥५५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार यथार्थ मार्गसे अनुरक्त एवं जिनेन्द्र भगवान्के गुणोंके संगसे अत्यन्त पवित्र, सुरपतिके द्वारा प्रदर्शित मनोहर मार्गको पाकर जिनके चित्त विशुद्ध हो गये थे तथा जो मनुष्य-पर्याय प्राप्त करनेकी आकांक्षा रखते थे ऐसे सूर्य, चन्द्र तथा कल्पवासी आदि देव संसारसे भयको प्राप्त हुए ॥५६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें इन्द्र और देवोंके बीच हुई कथाका वर्णन करनेवाला एकसौ चौदहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥११४॥

पञ्चदशोत्तरशतं पर्व

अथाऽऽसनं विमुञ्चन्तं शक्रं नत्वा सुरासुराः । यथायथं ययुश्चित्रं बहन्तो भावमुत्कटम् ॥१॥
 कुतूहलतया द्वौ तु विबुधौ कृतनिश्चयौ । पद्मनारायणस्नेहमीहमानौ परीक्षितुम् ॥२॥
 क्रीडैकरसिकात्मानान्वन्योन्यप्रेमसङ्गतौ । पश्यावः प्रीतिमनयो रियागातां प्रधारणाम् ॥३॥
 दिवसं विश्वसित्येकमप्यस्यादर्शनं न यः । मरणे पूर्वजस्यासौ हरिः किञ्च विचेष्टते ॥४॥
 शोकविह्वलितस्यास्य वीक्षमाणौ विचेष्टितम् । परिहासं क्षणं कुर्वो गच्छ्यावः कोशलां पुरीम् ॥५॥
 शोकाकुलं मुखं विष्णोर्जायते कीदृशं तु तत् । कस्मै कुप्यति याति कं करोति किमु भाषणम् ॥६॥
 कृत्वा प्रधारणामेतां रत्नचूले दुरीहितः । नामतो मृगचूलश्च विनातां नगरीं गतौ ॥७॥
 तत्रैत्याकुरतां पद्मभवने कन्दितध्वनिम् । समस्तान्तःपुरस्त्रीणां दिव्यमायासमुद्भवम् ॥८॥
 प्रताडारसुहृन्मन्त्रिपुरोहितपुरोगमाः । अधोमुखा ययुर्विष्णुं जगुश्च बलपञ्चताम् ॥९॥
 मृतौ राघव इत्येतद्वाक्यं श्रुत्वा रादायुधः । मन्दप्रभञ्जनाधृतनीलोत्पलनिभेक्षणः ॥१०॥
 हा किमिदं समुद्भूतमित्येवैकृतजहपनः । मनोवितानतां प्राप्तः सहसाश्रूण्यमुञ्चत ॥११॥
 ताडितोऽशनिनेवाऽसौ काञ्चनस्तम्भसंश्रितः । सिंहासनगतः पुस्तकमन्यस्त इव स्थितः ॥१२॥
 अनिमोलितनेत्रोऽसौ तथाऽवस्थितविग्रहः । दधार जीवतो रूपं कापि प्रहितचेतसः ॥१३॥
 वीष्य निर्गतजोवं तं भ्रातृमृत्युनलाहतम् । त्रिदशौ व्याकुलीभूतौ जीवितुं दातुमचमौ ॥१४॥

अथानन्तर आसनको छोड़ते हुए इन्द्रको नमस्कारकर नाना प्रकारके उत्कट भावको धारण करनेवाले सुर और असुर यथायोग्य स्थानोंपर गये ॥१॥ उनमेंसे राम और लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षा करनेके लिए चेष्टा करनेवाले, क्रीड़ाके रसिक तथा पारस्परिक प्रेमसे सहित दो देवोंने कुतूहलवश यह निश्चय किया, यह सलाह बाँधी कि चलो इन दोनोंकी प्रीति देखें ॥२-३॥ जो उनके एक दिनके भी अदर्शनको सहन नहीं कर पाता है ऐसा नारायण अपने अग्रजके मरणका समाचार पाकर देखें क्या चेष्टा करता है ? शोकसे विह्वल नारायणकी चेष्टा देखते हुए ज्ञान-भरके लिए परिहास करें । चलो, अयोध्यापुरी चलें और देखें कि विष्णुका शोकाकुल मुख कैसा होता है ? वह किसके प्रति क्रोध करता है और क्या कहता है ? ऐसी सलाहकर रत्नचूल और मृगचूल नामके दो दुराचारी देव अयोध्याकी ओर चले ॥४-५॥ वहाँ जाकर उन्होंने रामके भवनमें दिव्य मायासे अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियोंके रुदनका शब्द कराया तथा ऐसी विक्रिया की कि द्वारपाल, मित्र, मन्त्री, पुरोहित तथा आगे चलनेवाले अन्य पुरुष नीचा मुख किये लक्ष्मणके पास गये और रामकी मृत्युका समाचार कहने लगे । उन्होंने कहा कि 'हे नाथ ! रामकी मृत्यु हुई है' । यह सुनते ही लक्ष्मणके नेत्र मन्द-मन्द वायुसे कम्पित नीलोत्पलके वनसमान चञ्चल हो उठे ॥६-१०॥ 'हाय यह क्या हुआ ?' वे इस शब्दका आधा उच्चारण ही कर पाये थे कि उनका मन शून्य हो गया और वे अश्रु छोड़ने लगे ॥११॥ वज्रसे ताड़ित हुए के समान वे स्वर्णके खम्भेसे टिक गये और सिंहासनपर बैठे-बैठे ही मिट्टीके पुतलेकी तरह निश्चेष्ट हो गये ॥१२॥ उनके नेत्र यद्यपि बन्द नहीं हुए थे तथापि उनका शरीर ज्योंका त्यों निश्चेष्ट हो गया । वे उस समय उस जीवित मनुष्यका रूप धारणकर रहे थे जिसका कि चित्त कहीं अन्यत्र लगा हुआ है ॥१३॥ भाईकी मृत्यु रूपी अग्निसे ताड़ित लक्ष्मणको निर्जीव देख दोनों देव बहुत व्याकुल

१. तत्रत्यं कुरतां म०, ज० । २. राममृत्युम् । ३. सहसाश्रूनमुञ्चत म० । ४. मृत्युनलाहतम् म० ।

नूनमस्येदशो मृत्युविधिनेति कृताशयौ । विषादविस्मयाऽऽपूर्णौ सौधर्ममरुची गतौ ॥१५॥
 पश्चात्तापाऽनलज्वालाकास्त्र्योपाखीडमानसौ । न तत्र तौ धृतिं जातुं सम्प्राप्तौ निन्दितात्मकौ ॥१६॥
 अप्रेष्यकारिणां पापमानसानां हतात्मनाम् । अनुष्ठितं स्वयं कर्म जायते तापकारणम् ॥१७॥
 दिव्यमायाकृतं कर्म तदा ज्ञात्वा तथाविधम् । प्रसादयितुमुद्युक्ताः सौमित्रिं प्रवराः स्त्रियः ॥१८॥
 कयाऽकृतज्ञया नाथ मूढयाऽस्थपमानितः । सौभाग्यगर्ववाहिन्या परमं दुर्विदग्धया ॥१९॥
 प्रसीद मुच्यतां कोपो देव दुःखासिकापि वा । ननु यत्र जने कोपः क्रियतां तत्र यन्मतम् ॥२०॥
 इत्युक्त्वा काश्चिदालिङ्ग्य परमप्रेमभूमिकाः । निपेतुः पादयोर्नानाचाटुजल्पितसत्पराः ॥२१॥
 काश्चिद्वीणां विधायाङ्के तद्गुणग्रामसङ्गतम् । जगुर्मधुरमस्थन्तं प्रसादनकृताशयाः ॥२२॥
 काश्चिदाननमालोक्य कृतप्रियशतोद्यताः । समाभाषयितुं यत्नं सर्वसन्दोहतोऽभवन् ॥२३॥
 स्तनोपपीडमारिलभ्य काश्चिद् विमलविभ्रमाः । कान्तस्य कान्तमाजिघन्तु गण्डं कुण्डलमण्डितम् ॥२४॥
 ईश्वरपादं समुदृष्ट्य काश्चिन्मधुरभाषिताः । चक्रुः शिरसि संकुण्डलकमलोदरसन्निभम् ॥२५॥
 काश्चिदर्भकसारङ्गालोचनाः कर्तुं मुद्यताः । सोन्मादविभ्रमचित्सकटाङ्कोत्पलरोक्षरम् ॥२६॥
 जम्भज्जम्भायताः काश्चित्तदानकृतेक्षणः । मन्दं बभञ्जुरङ्गानि स्वनल्यखिलसन्धिषु ॥२७॥
 एवं विचेष्टमानानां तासामुत्तमयोषिताम् । यत्नोऽनर्थकर्ता प्राप तत्र चैतन्यवर्जिते ॥२८॥

हुए परन्तु वे जीवन देनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥१४॥ 'निश्चय ही इसकी इसी विधिसे मृत्यु होनी होगी' ऐसा विचारकर विषाद और आश्चर्यसे भरे हुए दोनों देव निष्पन्न हो सौधर्म स्वर्ग चले गये ॥१५॥ पश्चात्ताप रूपी अग्नि की ज्वालासे जिनका मन समस्तरूपसे व्याप्त हो रहा था तथा जिनकी आत्मा अत्यन्त निन्दित थी ऐसे वे दोनों देव स्वर्गमें कभी धैर्यको प्राप्त नहीं होते थे अर्थात् रात-दिन पश्चात्तापकी ज्वालामें फुलसते रहते थे ॥१६॥ सो ठीक ही है क्योंकि बिना विचारे काम करनेवाले नीच, पापी मनुष्योंका किया कार्य उन्हें स्वयं सन्तापका कारण होता है ॥१७॥

तदनन्तर 'यह कार्य लक्ष्मणने अपनी दिव्य मायासे किया है' ऐसा जानकर उस समय उनकी उत्तमोत्तम स्त्रियों उन्हें प्रसन्न करनेके लिए उद्यत हुईं ॥१८॥ कोई स्त्री कहने लगी कि हे नाथ ! सौभाग्यके गर्वको धारण करनेवाली किस अकृतज्ञ, मूर्ख और कुचतुर स्त्रीने आपका अपमान किया है ? ॥१९॥ हे देव ! प्रसन्न हुईए, क्रोध छोड़िए तथा यह दुःखदायी आसन भी दूर कीजिए । यथार्थमें जिसपर आपका क्रोध हो उसका जो चाहें सो कीजिए ॥२०॥ यह कहकर परम प्रेमकी भूमि तथा नाना प्रकारके मधुर वचन कहनेमें तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ आलिङ्गन कर उनके चरणोंमें लोट गईं ॥२१॥ प्रसन्न करनेकी भावना रखनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें वीणा रख उनके गुण-समूहसे सम्बन्ध रखनेवाला अत्यन्त मधुर गान गाने लगीं ॥२२॥ सैकड़ों प्रिय वचन कहनेमें तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ उनका मुख देख वार्तालाप करानेके लिए सामहिक यत्न कर रही थीं ॥२३॥ उज्वल शोभाको धारण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ स्तनों को पीड़ित करनेवाला आलिङ्गन कर पतिके कुण्डलमण्डित सुन्दर कपोलको सूँघ रही थीं ॥२४॥ मधुर भाषण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ, विकसित कमलके भीतरी भागके समान सुन्दर उनके पैरको कुल्ल ऊपर उठाकर शिरपर रख रही थीं ॥२५॥ बालमृगीके समान चञ्चल नेत्रोंको धारण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ उन्माद तथा विभ्रमके साथ छोड़े हुए कटाक्ष रूपी नील कमलोंका सेहरा बनानेके लिए ही मानो उद्यत थीं ॥२६॥ लम्बी जमुहाई लेनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ उनके मुखकी ओर दृष्टि डालकर धीरे-धीरे अँगड़ाई ले रही थीं और अँगुलियोंकी संधिया चटक रही थीं ॥२७॥ इस प्रकार चेष्टा करने वाली उन उत्तम स्त्रियोंका सब यत्न चेतनारहित

१. कर्मापालीढ म० । २. जातौ म० । ३. यन्मनः म० । ४. -नर्थकतः म० ।

तानि सप्तदश स्त्रीणां सहस्राणि हरेर्दधुः । मन्दमारुतनिर्धूतचित्राम्बुजवनश्रियम् ॥२६॥
 तस्मिंस्तथाविधे नाथे स्थिते कृच्छ्रसमागतः^१ । व्याकुले मनसि स्त्रीणां निदधे संशयः पदम् ॥३०॥
 सुदुश्चित्तं च दुर्भाष्यं भावं दुःश्रवमेव च । कृत्वा मनसि सुग्वाण्यः पस्पृशुर्मोहसङ्गताः ॥३१॥
 सुरेन्द्रशनिताचक्रसमचेष्टिततेजसाम् । तदा शोकाभितप्तानां नैतासां चारुताऽभवत् ॥३२॥
 श्रुत्वाऽन्तश्चरत्प्रवेष्ट्यस्तं वृत्तान्तं तथाविधम् । ससम्भ्रमं परिप्राप्तः पद्माभः सचिवैर्वृतः ॥३३॥
 अन्तःपुरं प्रविष्टश्च परमासजनावृतः । ससम्भ्रमैर्जनैर्दृष्टो विक्षिप्तविरलकमः ॥३४॥
 ततोऽपश्यदतिक्रान्तकान्तशुतिसमुद्भवम् । वदनं धरणांन्द्रस्य प्रभातशशिपाण्डुरम् ॥३५॥
 न सुक्लिष्टमिवाप्यन्तं परिभ्रष्टं स्वभावतः । तत्कालमग्नमूलाम्बुरुहसाम्यमुपागतम् ॥३६॥
 अचिन्तयन् च किं नाम कारणं येन मे स्वयम् । आस्ते रष्टो विषादी च किञ्चिद्विनतप्रस्तकः ॥३७॥
 उपस्पृश च सस्नेहं सुहुराघ्राय मूर्द्धनि । हिमाऽऽहतनगाकारं पद्मस्तं परिवस्त्रजे ॥३८॥
 विह्वानि जीवमुक्तस्य पश्यन्नपि समन्ततः । अमृतं लक्ष्मणं मेने काकुरस्थः स्नेहनिर्भरः ॥३९॥
 नताङ्गयष्टिरावका प्रीषा दोःपरिघौ^४ श्लथौ । प्राणनाकुञ्चनोन्मेषप्रभृतीहोऽज्जिता तनुः ॥४०॥

लक्ष्मणके विषयमें निरर्थकपनेको प्राप्त हो गया ॥२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय लक्ष्मणकी सत्रह हजार स्त्रियाँ मन्द-मन्द वायुसे कम्पित नाना प्रकारके कमल वनकी शोभा धारण कर रही थीं ॥२६॥

तदनन्तर जब लक्ष्मण उसी प्रकार स्थित रहे आये तब बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुए संशयने उन स्त्रियोंके व्यग्र मनमें अपना पैर रक्खा ॥३०॥ मोहमें पड़ी हुई वे भोली-भाली स्त्रियाँ मनमें ऐसा विचार करती हुई उनका स्पर्श कर रही थीं कि सम्भव है हमलोगोंने इनके प्रति मनमें कुछ खोटा विचार किया हो, कोई न कहने योग्य शब्द कहा हो, अथवा जिसका सुनना भी दुःखदायी है, ऐसा कोई भाव किया हो ॥३१॥ इन्द्राणियोंके समूहके समान चेष्टा और तेजको धारण करनेवाली वे स्त्रियाँ उस समय शोकसे ऐसी संतप्त हो गईं कि उनकी सब सुन्दरता समाप्त हो गई ॥३२॥

अथानन्तर अन्तःपुरचारी प्रतिहारोंके मुखसे यह समाचार सुन मन्त्रियोंसे घिरे राम घबड़ाहटके साथ वहाँ आये ॥३३॥ उस समय घबड़ाये हुए लोगोंने देखा कि परम प्रामाणिक जनोंसे घिरे राम जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए अन्तःपुरमें प्रवेश कर रहे हैं ॥३४॥ तदनन्तर उन्होंने जिसकी सुन्दर कान्ति निकल चुकी थी और जो प्रातःकालीन चन्द्रमाके समान पाण्डुर वर्ण था ऐसा लक्ष्मणका मुख देखा ॥३५॥ वह मुख पहलेके समान व्यवस्थित नहीं था, स्वभावसे बिलकुल भ्रष्ट हो चुका था, और तत्काल उखाड़े हुए कमलकी सदृशताको प्राप्त हो रहा था ॥३६॥ वे विचार करने लगे कि ऐसा कौन-सा कारण आ पड़ा कि जिससे आज लक्ष्मण मुझसे रूखा तथा विषादयुक्त हो शिरको कुछ नीचा झुकाकर बैठा है ॥३७॥ रामने पास जाकर बड़े स्नेहसे बार-बार उनके मस्तकपर सूँघा और तुषारसे पीड़ित वृक्षके समान आकारवाले उनका बार-बार आलिङ्गन किया ॥३८॥ यद्यपि राम सब ओरसे मृतकके चिह्न देख रहे थे तथापि स्नेहसे परिपूर्ण होनेके कारण वे उन्हें अमृत अर्थात् जीवित ही समझ रहे थे ॥३९॥ उनकी शरीर-यष्टि झुक गई थी, गर्दन टेढ़ी हो गई थी, भुजा रूपी अर्गल ढीले पड़ गये थे और शरीर, साँस लेना, हस्त-पादादिक अथयवोंको सिकोड़ना तथा नेत्रोंका टिमकार पड़ना आदि

१. श्रियाम् म० । २. समागताः म० । ३. तत्कालतरु-म० । ४. वक्रप्रीषा म० । ५. प्राणाना-म० ।
 प्राणानां ज० ।

ईदृशं लघमणं वीचय विमुक्तं स्वशरीरिणा । उद्वेगोरुभयाक्रान्तः प्रसिन्धेदापराजितः ॥४१॥
 अथाऽसौ दीनदीनारयो मूर्च्छमानो मुहुर्मुहुः । वाष्पाकुलेषणोऽपरयदस्याङ्गानि समन्ततः ॥४२॥
 न ज्ञतं नखरेखाया अपि तुल्यमिहेषयते ॥ ३ ॥ अवस्थामोदशीं केन भवेदयमुपागतः ॥४३॥
 इति ध्यायन् समुद्रभूतत्रेपथुस्तद्विदं जनम् । आह्लायणद्विवर्णात्मा तूर्णं विद्वानपि स्वयम् ॥४४॥
 यदा वैद्यगणैः सर्वैर्मन्त्रौषधिविशारदैः । प्रतिशिष्टः कलापारैः परीषय धरणीधरः ॥४५॥
 तदाहताशतां प्राज्ञो रामो मूर्च्छां समागतः । ५ ॥ पर्यासे वसुधापृष्ठे छिन्नमूलस्तरुर्था ॥४६॥
 हारैश्चन्दननारैश्च तालवृन्तानिलैर्निभैः । कृच्छ्रेण ध्याजितो मोहं ॥ ६ ॥ विललाप सुविह्वलः ॥४७॥
 समं शोकविषादाभ्यामसौ पीडनमाश्रितः । उत्ससर्ज यदश्रूणां प्रवाहं ॥ ७ ॥ पिहिताननम् ॥४८॥
 वाष्पेण ९ ॥ पिहितं वक्त्रं रामदेवस्य ललितम् । विरलाम्भोदसंवीतचन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥४९॥
 अत्यन्तविवर्द्धाभूतं तमालोक्य तथाविधम् । वितानतां परिप्रापदन्तःपुरमहागवः ॥५०॥
 दुःखसागरनिर्मम्राः शुष्यदङ्गा वरस्त्रियः । भृशं ध्यानशिरे वाष्पाऽऽक्रन्दाम्भ्रां रोदसी समम् ॥५१॥
 हा नाथ भुवनानन्द सर्वसुन्दरजीवित । प्रयच्छ दयितां वार्धं क्रासि यातः किमर्थकम् ॥५२॥
 अपराधादते कस्मादस्मानेवं विमुञ्चसि । नन्वाऽऽगः सत्यमप्यास्ते जने ॥ ८ ॥ तिष्ठति नो चिरम् ॥५३॥
 एतस्मिन्नन्तरे भ्रुत्वा तद्वस्तु लवणाकुशौ । विषादं परमं प्राप्ताविति चिन्तामुपागतौ ॥५४॥

चेष्टाओंसे रहित हो गया था ॥४०॥ इस प्रकार लक्ष्मणको अपनी आत्मासे विमुक्त देख उद्वेग तथा तीव्र भयसे आक्रान्त राम पर्यानासे तर हो गये ॥४१॥

अथानन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन हो रहा था, जो बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे, और जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, ऐसे राम सब ओरसे उनके अंगोंको देख रहे थे ॥४२॥ वे कह रहे थे कि इस शरीरमें कहीं नखकी खरोंच बराबर भी तो घाव नहीं दिखाई देता फिर यह ऐसी अवस्थाको किसके द्वारा प्राप्त कराया गया ?—इसकी यह दशा किसने कर दी ? ॥४३॥ ऐसा विचार करते-करते रामके शरीरमें कँप-कँपी छूटने लगी तथा उनकी आत्मा विषादसे भग गई । यद्यपि वे स्वयं विद्वान् थे तथापि उन्होंने शीघ्र ही इस विषयके जानकार लोगोंको बुलवाया ॥४४॥ जब मन्त्र और औषधियोंमें निपुण, कलाके पारगामी समस्त वैद्याँने परीक्षा कर उत्तर दे दिया तब निराशाको प्राप्त हुए राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये और उखड़े वृक्षके समान पृथिवीपर गिर पड़े ॥४५-४६॥ जब हार, चन्दन मिश्रित जल और तालवृन्तके अनुकूल पवनके द्वारा बड़ी कठिनाईसे मूर्च्छा छुड़ाई गई तब अत्यन्त विह्वल हो विलाप करने लगे ॥४७॥ चूँकि राम शोक और विषादके द्वारा साथ ही साथ पीडाको प्राप्त हुए थे इसीलिए वे मुखको आच्छादित करनेवाला अश्रुओंका प्रवाह छोड़ रहे थे ॥४८॥ उस समय आँसुओंसे आच्छादित रामका मुख विरले-विरले मेघोंसे टँके चन्द्रमण्डलके समान जान पड़ता था ॥४९॥ उस प्रकारके गम्भीर हृदय रामको अत्यन्त दुःखी देख अन्तःपुर रूपी महासागर निर्मयीद अवस्थाको प्राप्त हो गया अर्थात् उसके शोककी सीमा नहीं रही ॥५०॥ जो दुःखरूपी सागरमें निमग्न थी तथा जिनके शरीर सूख गये थे ऐसी उत्तम स्त्रियोंने अत्यधिक आँसु और रौनेकी ध्वनिसे पृथिवी तथा आकाशको एक साथ व्याप्त कर दिया था ॥५१॥ वे कह रही थीं कि हा नाथ ! हा जगदानन्द ! हा सर्वसुन्दर जीवित ! प्रिय चचन देओ, कहीं हो ? किस लिए चले गये हो ? ॥५२॥ इस तरह अपराधके बिना ही हमलोगोंको क्यों छोड़ रहे हो ? और अपराध यदि सत्य भी हो तो भी वह मनुष्यमें दीर्घ काल तक नहीं रहता ॥५३॥

इसी बीचमें यह समाचार सुनकर परम विषादको प्राप्त हुए लवण और अंकुश इस प्रकार

१ रामः । २. -मिहेषयते म० । ३. अवस्थां कीदृशीं म० । ४. पर्याप्तो म० । ५. विललापि म० । ६. विहिताननम् म० । ७. विहितं म० । ८. तिष्ठति म०, ज० ।

धिगसारं मनुष्यत्वं नाऽतोऽस्त्यन्यमहाधमम् । मृत्युर्बन्धव्यवस्कन्दं यदज्ञातो निमेषतः ॥५५॥
 यो न निष्कृष्टितं शक्यः सुरविद्याधरैरपि । नारायणोऽप्यसौ नीतः कालपाशेन^१ वश्यताम् ॥५६॥
 आनाय्येव शरीरेण किमनेन धनेन च । अवधार्येति सम्बोधं वैदेहीजाबुपेयतुः ॥५७॥
 पुनर्गर्भाशयाद् भीतौ नवा तातक्रमद्रयम् । महेन्द्रोदयमुद्यानं शिविकाऽवस्थितौ गतौ ॥५८॥
 तत्रामृतस्वराभिर्यं शरणाकृत्य संयतम् । बभूवतुर्महाभागौ श्रमणौ लवणाकुशौ ॥५९॥
 गृह्णतोरनयोर्दीक्षां तदा सत्तमचेतसोः । पृथिव्यामभवद् बुद्धिर्भृत्तिकागोलकाहिता ॥६०॥
 एकतः पुत्रविरहो भ्रातृमृत्यवशमन्यतः । इति शोकमहावर्त्तं परावर्त्तत राघवः ॥६१॥
 राज्यतः पुत्रतश्चारि स्वभूताजीवितादपि । तथाऽपि^२ दयितोऽतोऽस्त्य परं लक्ष्मीधरः प्रियः ॥६२॥

आर्यागीतिच्छन्दः

कर्मनियोगेनैवं प्राप्तेऽवस्थामशोभनामासजने ।

^३शोकं वैराग्यं च प्रतिपद्यन्ते विचित्रचित्ताः पुरुषाः ॥६३॥

कालं प्राप्य जनानां किञ्चिच्च निमित्तमात्रकं परभावम् ।

सम्बोधरविरुदेति स्वकृतविपाकेऽन्तरङ्गहेतौ जाते ॥६४॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणो श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते लवणाकुशतपोऽभिधानं नाम
 पञ्चदशोत्तरशतं पर्व ॥११५॥

विचार करने लगे कि सारहीन इस मनुष्य-पर्यायको धिक्कार हो। इससे बढ़कर दूसरा महानीच नहीं है क्योंकि मृत्यु बिना जाने ही निमेषमात्रमें इसपर आक्रमण कर देती है ॥५४-५५॥ जिसे देव और विद्याधर भी वश नहीं कर सके थे ऐसा यह नारायण भी कालके पाशसे वशीभूत अवस्थाको प्राप्त हो गया ॥५६॥ इन नश्वर शरीर और नश्वर धनसे हमें क्या आवश्यकता है? ऐसा विचारकर सीताके दोनों पुत्र प्रतिबोधको प्राप्त हो गये ॥५७॥ तदनन्तर 'पुनः गर्भवासमें न जाना पड़े' इससे भयभीत हुए दोनों वीर, पिताके चरण-युगलको नमस्कार कर पालकीमें बैठ महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें चले गये ॥५८॥ वहाँ अमृतस्वर नामक मुनिराजकी शरण प्राप्तकर दोनों बड़भागी मुनि हो गये ॥५९॥ उत्तम चित्तके धारक लवण और अंकुश जब दीक्षा ग्रहण कर रहे थे तब विशाल पृथिवीके ऊपर उनकी मिट्टीके गोलके समान अनादरपूर्ण बुद्धि ही रही थी ॥६०॥ एक ओर पुत्रोंका विरह और दूसरी ओर भाईकी मृत्युका दुःख—इस प्रकार राम शोक रूपी बड़ी भँवरमें घूम रहे थे ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि रामको लक्ष्मण राज्यसे, पुत्रसे, स्त्रीसे और अपने द्वारा धारण किये जीवनसे भी कहीं अधिक प्रिय थे ॥६२॥ संसारमें मनुष्य नाना प्रकारके हृदयके धारक हैं इसीलिए कर्मयोगसे आप्रजनोंके ऐसी अशोभन अवस्थाको प्राप्त होनेपर कोई तो शोकको प्राप्त होते हैं और कोई वैराग्यको प्राप्त होते हैं ॥६३॥ जब समय पाकर स्वकृत कर्मका उदयरूप अन्तरङ्ग निमित्त मिलता है तब बाह्यमें किसी भी परपदार्थका निमित्त पाकर जीवोंके प्रतिबोध रूपी सूर्य उदित होता है उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा विरचित पद्मपुराणमें लक्ष्मणका मरण और लवणाकुशके तपका वर्णन करनेवाला एकसौ पन्द्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११५॥

षोडशोत्तरशतं पर्व

कालधर्मं परिप्राप्ते राजन् लक्ष्मणपुङ्गवे । त्यक्तं युगप्रधानेन रामेण व्याकुलं जगत् ॥१॥
 'स्वरूपमृदु सङ्गन्धं स्वभावेन हरेर्वपुः । जीवेनाऽपि परित्यक्तं न पद्याभस्तदाऽप्यजत् ॥२॥
 आलिङ्गति निधायान्ने मार्ष्टि जिघ्रति निङ्क्षति । निर्वादति समाधाय सस्पृहं भुजपञ्जरे ॥३॥
 अवाप्नोति न विश्वासं क्षणमप्यस्य मोचने । बालोऽमृतफलं यद्वत् स तं मेने महाप्रियम् ॥४॥
 विललाप च हा भ्रातः किमिदं युक्तमीदृशम् । यत्परित्यज्य मां गन्तुं मत्तिरेकाकिना कृता ॥५॥
 ननु नाऽहं किमु ज्ञातस्तवः स्वहिरहासहः । यन्मां निङ्क्षिप्य दुःखाग्नावकस्मादिदमीहसे ॥६॥
 हा तात किमिदं क्रूरं परं स्ववसितं स्वया । यदसंवाद्य मे लोकमन्यं दत्तं प्रयाणकम् ॥७॥
 प्रयच्छ सङ्कल्प्याशु वत्स प्रतिवचोऽमृतम् । दोषान् किं नाऽसि किं क्रुद्धो ममापि सुविनीतकः ॥८॥
 कृतवानसि नो जातु मानं मयि मनोहर । अन्य एवाऽसि किं जातो बद्ध वा किं मया कृतम् ॥९॥
 वृशदेवान्यदा दृष्ट्वा दत्वाऽभ्युत्थानमादतः^३ । रामं सिंहासने कृत्वा महीपृष्ठं न्यसेष्यः^४ ॥१०॥
 अधुना मे शिरस्यस्मिन्नन्दुकान्तनखावली । पादेऽपि लक्ष्मणन्यस्ते रूपे मृश्यति नो कथम् ॥११॥
 देव स्वरितमुत्सिद्ध मम पुत्री वनं गती । दूरं न गच्छतो यावत्तावत्तानयामहे ॥१२॥
 स्वया विरहिता एताः कृतार्त्तकुररीरवाः । भवद्गुणग्रहप्रस्ता विलोलन्ति महीतले ॥१३॥
 अष्टहारशिरोरत्नमेखलाकुण्डलादिकम् । आकन्दन्तं प्रियालोकं वारयस्याकुलं न किम् ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! लक्ष्मणके मृत्युको प्राप्त होनेपर युग-
 प्रधान रामने इस व्याकुल संसारको छोड़ दिया ॥ १ ॥ उस समय स्वरूपसे कोमल और स्वभाव
 सुगन्धित नारायणका शरीर यद्यपि निर्जीव हो गया था तथापि राम उसे छोड़ नहीं रहे थे ॥२॥
 वे उसका आलिङ्गन करते थे, गोदमें रखकर उसे पोंछते थे, सूँघते थे, चूमते थे और बड़ी उमंग
 के साथ भुजपंजरमें रखकर बैठते थे ॥३॥ इसके छोड़नेमें वे क्षणभरके लिए भी विश्वासको प्राप्त
 नहीं होते थे। जिस प्रकार बालक अमृत फलको महाप्रिय मानता है। उसी प्रकार वे उस मृत शरीर
 को महाप्रिय मानते थे ॥४॥ कभी विलाप करने लगते कि हाय भाई ! क्या तुम्हे यह ऐसा करना
 उचित था। मुझे छोड़कर अकेले ही तूने चल दिया ॥५॥ क्या तुम्हे यह विदित नहीं कि मैं तेरे
 विरहको सहन नहीं कर सकता जिससे तू मुझे दुःख रूपी अग्निमें डालकर अकस्मात् यह
 करना चाहता है ॥६॥ हाय तात ! तूने यह अत्यन्त क्रूर कार्य क्यों करना चाहा जिससे कि
 मुझसे पूछे बिना ही परलोकके लिए प्रयाण कर दिया ॥७॥ हे वत्स ! एक बार तो प्रत्युत्तर रूपी
 अमृत शीघ्र प्रदान कर। तू तो बड़ा विनयवान था फिर दोषके बिना ही मेरे ऊपर भी कुपित
 क्यों हो गया है ? ॥८॥ हे मनोहर ! तूने मेरे ऊपर कभी मान नहीं किया, फिर अब क्यों अन्य-
 रूप हो गया है ? कह, मैंने क्या किया है ? ॥९॥ तू अन्य समय तो रामको दूरसे ही देखकर
 आदरपूर्वक खड़ा हो जाता था और उसे सिंहासनपर बैठाकर स्वयं पृथिवीपर नीचे बैठता था
 ॥१०॥ हे लक्ष्मण ! इस समय चन्द्रमाके समान सुन्दर नखावलीसे युक्त तेरा पैर मेरे मस्तकपर
 रखा है फिर भी तू क्रोध ही करता है जमा क्यों नहीं करता ? ॥११॥ हे देव ! शीघ्र उठ, मेरे पुत्र
 वनको चले गये हैं सो जब तक वे दूर नहीं पहुँच जाते हैं तब तक उन्हें वापिस ले आवे ॥१२॥
 तुम्हारे गुण ग्रहणसे प्रसन्न ये बिर्यौं तुम्हारे बिना कुररीके समान करुण शब्द करती हुईं पृथिवीतलमें
 लोट रही हैं ॥१३॥ हार, चूड़ामणि, मेखला तथा कुण्डल आदि आभूषण नीचे गिर गये हैं ऐसी

१. स्वरूपं मृदु म० । २. चुम्बति । ३. माहृतः म० । ४. निषेचय म० । ५. सरस्यस्मिन् ।

किं करोमि क्व गच्छामि त्वया विरहितोऽधुना । स्थानं तस्मानुपरयामि जायते यत्र निर्हृतिः ॥१५॥
 आसेचनकमेतत् पश्याम्यद्यापि विवर्तकम् । अनुरक्तारमकं तस्मिन् त्यक्तुं समुचितं तव ॥१६॥
 मरणव्यसने भ्रातुरपूर्वोऽयं ममाङ्गकम् । दग्धुं शोकानलः सक्तः किं करोमि विपुण्यकः ॥१७॥
 न कृशानुर्दहन्येवं नैवं शोषयते विषम् । उपमानविनिर्मुक्तं यथा भ्रातुः परायणम् ॥१८॥
 अहो लक्ष्मीधर क्रोधधैर्यं संहार साम्प्रतम् । वेलाऽतीताऽनगाराणां महर्षीणामियं हि सा ॥१९॥
 अयं रविरुपैत्यस्तं वीक्षस्वैतानि साम्प्रतम् । पद्मानि स्वस्सनिद्राक्षिसमानि सरसां जले ॥२०॥
 शय्यां व्यरचयत् क्षिप्रं कृत्वा विष्णुं भुजान्तरे । व्यापारान्तरनिर्मुक्तः स्वप्नुं रामः प्रचक्रमे ॥२१॥
 श्रवणे देवसद्भावं ममैकस्य निवेदय । केनासि कारणेनैतामवस्थामोदशामितः ॥२२॥
 प्रसन्नचन्द्रकान्तं ते वक्त्रमासीन्मनोहरम् । अधुना विगतच्छायं कस्मादीदृगिदं स्थितम् ॥२३॥
 मृदुप्रभञ्जनाऽऽभूतकरपल्लवसञ्जिभे । आस्तां निरीक्षणे कस्मादधुना म्लानिमागते ॥२४॥
 बृहि बृहि किमिष्टं ते सर्वं सम्पादयाम्यहम् । एवं न शोभसे विष्णो सव्यापारं मुखं कुरु ॥२५॥
 देवो सीता स्मृता किन्ते समदुःखसहायिनी । परलोकं गता साध्वी विषण्णोऽसि भवेत्ततः ॥२६॥
 विषादं मुञ्च लक्ष्मीश विरुद्धा खंगसंहतिः । अवस्कन्दागता सेयं साकेतामवगाहते ॥२७॥
 क्रुद्धरयार्यादृशं वक्त्रं मनोहरं न जातुचित् । तवाऽऽसीदधुना वत्स मुञ्च मुञ्च विचेष्टितम् ॥२८॥

करुण रुदन करती हुई इन व्याकुल स्त्रियोंको मना क्यों नहीं करते हो ? ॥१४॥ अब तेरे बिना क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? वह स्थान नहीं देखता हूँ जहाँ पहुँचनेपर सन्तोष उत्पन्न हो सके ॥१५॥ जिसे देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी ऐसे तेरे इस मुखको मैं अब भी देख रहा हूँ फिर अनुरागसे भरे हुए मुझे छोड़ना क्या तुझे उचित था ? ॥१६॥ इधर भाईपर मरणरूपी संकट पड़ा है लक्ष्मीधर यह अपूर्व शोकाग्नि मेरे शरीरको जलानेके लिए तत्पर है, हाय मैं अभागा क्या करूँ ? ॥१७॥ भाईका उपमातीत मरण शरीरको जिस प्रकार जलाता और सुखाता है उस प्रकार न अग्नि जलाती है और न विष सुखाता है ॥१८॥ अहो लक्ष्मण ! इस समय क्रोधकी आसक्तिको दूर करो । यह गृहत्यागी मुनियोंके संचारका समय निकल गया ॥१९॥ देखो, यह सूर्य अस्त होने जा रहा है और तालाबोंके जलमें कमल तुम्हारे निद्रा निमीलित नेत्रोंके समान हो रहे हैं ॥२०॥ यह कहकर अन्य सब कामोंसे निवृत्त रामने शीघ्र ही शय्या बनाई और लक्ष्मण को छातीसे लगा सोनेका उपक्रम किया ॥२१॥ वे कहते कि हे देव ! इस समय मैं अकेला हूँ । आप मेरे कानमें अपना अभिप्राय बता दो कि किस कारणसे तुम इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ? ॥२२॥ तुम्हारा मनोहर मुख तो उज्ज्वल चन्द्रमाके समान सुन्दर था पर इस समय यह ऐसा कान्तिहीन कैसे हो गया ? ॥२३॥ तुम्हारे नेत्र मन्द-मन्द वायुसे कम्पित पल्लवके समान थे फिर इस समय म्लानिको प्राप्त कैसे हो गये ? ॥२४॥ कह, कह, तुम्हें क्या इष्ट है ? मैं सब अभी ही पूर्ण किये देता हूँ । हे विष्णो ! तू इस प्रकार शोभा नहीं देना, मुखको व्यापारसहित कर अर्थात् मुखसे कुछ बोल ॥२५॥ क्या तुम्हें सुख-दुःखमें सहायता देनेवाली सीता देवीका स्मरण हो आया है परन्तु वह साध्वी तो परलोक चली गई है क्या इसी लिए तुम विषादयुक्त हो ॥२६॥ हे लक्ष्मीपते ! विषाद छोड़ो, देखो विषाधरोंका समूह विरुद्ध होकर आक्रमणके लिए आ पहुँचा है और अयोध्यामें प्रवेश कर रहा है ॥२७॥ हे मनोहर ! कभी क्रुद्ध दशामें भी तुम्हारा ऐसा मुख नहीं हुआ फिर अब क्यों रहा है ? हे वत्स ! ऐसी विरुद्ध चेष्टा अब तो छोड़ो ॥२८॥

१. वैमुख्यम्, मरुणमित्यर्थः । २. विषण्णासि म० । ३. विद्याधरसमूहः ।

प्रसौदैष तवावृत्तपूर्वं पादौ नमाम्यहम् । ननु श्यातोऽखिले लोके मम त्वमनुकूलने ॥२६॥
 असमानप्रकाशस्त्वं जगद्दीपः समुन्नतः । वलिनाऽकालवातेन प्रायो निर्वापितोऽभवत् ॥३०॥
 राजराजत्वमासाद्य नीत्वा लोकं महोत्सवम् । अनाथीकृत्य तं कस्माद् भवितागमनं तव ॥३१॥
 चक्रेण द्विषतां चक्रं जित्वा सकलमूर्जितम् । कथं नु सहसेऽद्य त्वं कालचक्रपराभवम् ॥३२॥
 राजश्रिया तवाराजघादिदं सुन्दरं वपुः । तदद्यापि तथैवेदं शोभते जीवितोऽजितम् ॥३३॥
 निद्रां राजेन्द्र मुञ्चस्व समतीता विभावरी । निवेद्यति सन्ध्येयं परिप्राप्तं दिवाकरम् ॥३४॥
 सुप्रभातं जिनेन्द्राणां लोकालोकावलोकनाम् । अन्येषां भव्यपद्मानां शरणं मुनिसुव्रतः ॥३५॥
 प्रभातमपि जानामि ध्वान्तमेतद्दहं परम् । चदनं यन्नरेन्द्रस्य परयामि गतविभ्रमम् ॥३६॥
 उत्तिष्ठ मा चिरं स्वार्प्सांमुखं निद्रां विचक्षण । आश्रयावः सभास्थानं तिष्ठ सामन्तदर्शने ॥३७॥
 प्राप्सो विनिद्रतामेष सशोकः कमलाकरः । कस्मादभ्युत्थितस्त्वं तु निद्रितं सेवते भवान् ॥३८॥
 विपरीतमिदं जातु त्वया नैवमनुष्ठितम् । उत्तिष्ठ राजकृत्येषु भवावहितमानसः ॥३९॥
 भ्रातस्त्वयि चिरं सुप्ते जिनवेरमसु नोचिताः । क्रियन्ते चास्सङ्गीता भेरामङ्गलनिःस्वनाः ॥४०॥
 श्लथप्रभातकर्तव्याः करुणासक्तचेतसः । उद्वेगं परमं प्राप्ता यतयोऽपि स्वयोद्देशे ॥४१॥
 वीणावेणुमृदङ्गादिनिस्वानपरिवर्जिता । त्वद्वियोगाकुलीभूता नगरीयं न राजते ॥४२॥

प्रसन्न होओ, देखो मैंने कभी तुम्हें नमस्कार नहीं किया किन्तु आज तेरे चरणोंमें नमस्कार करता हूँ । अरे ! तू तो मुझे अनुकूल रखनेके लिए समस्त लोकमें प्रसिद्ध है ॥२६॥ तू अनुपम प्रकाशका धारी बहुत बड़ा लोकप्रदीप है सो इस असमयमें चलनेवाली प्रचण्ड वायुके द्वारा प्रायः बुझ गया है ॥३०॥ तुमने राजाधिराज पद पाकर लोकको बहुत भारी उत्सव प्राप्त कराया था अब उसे अनाथकर तुम्हारा जाना किस प्रकार होगा ? ॥३१॥ अपने चक्ररत्नके द्वारा शत्रुओंके समस्त सबल दलको जीतकर अब तुम कालचक्रका पराभव क्यों सहन करते हो ॥३२॥ तुम्हारा जो सुन्दर शरीर पहले राजलक्ष्मीसे जैसा सुशोभित था वैसा ही अब निर्जीव होनेपर भी सुशोभित है ॥३३॥ हे राजेन्द्र ! उठो, निद्रा छोड़ो, रात्रि व्यतीत हो गई, यह सन्ध्या सूचित कर रही है कि अब सूर्यका उदय होनेवाला है ॥३४॥

लोकालोकको देखनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का सदा सुप्रभात है तथा भगवान् मुनि-सुव्रतदेव अन्य भव्य जीवरूपी कमलोंके लिए शरणस्वरूप हैं ॥३५॥ इस प्रभातको भी मैं परम अन्धकार स्वरूप ही जानता हूँ क्योंकि मैं तुम्हारे मुखको चेश्चरहित देख रहा हूँ ॥३६॥ हे चतुर ! उठ, देर तक मत सो, निद्रा छोड़, चल सभास्थलमें चलो, सामन्तोंको दर्शन देनेके लिए सभा-स्थलमें बैठ ॥३७॥ देख, यह शोकसे भरा कमलाकर विनिद्र अवस्थाको प्राप्त हो गया है— विकसित हो गया है पर तू विद्वान् होकर भी निद्राका सेवन क्यों कर रहा है ? ॥३८॥ तूने कभी ऐसी विपरीत चेष्टा नहीं की अतः उठ और राजकार्योंमें सावधानचित्त हो ॥३९॥ हे भाई ! तेरे बहुत समय तक सोते रहनेसे जिन-मन्दिरोंमें सुन्दर सङ्गीत तथा भेरियोंके माङ्गलिक शब्द आदि उचित क्रियाएँ नहीं हो रही हैं ॥४०॥ तेरे ऐसे होनेपर जिनके प्रातःकालीन कार्य शिथिल हो गये ऐसे दयालु मुनिराज भी परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे हैं ॥४१॥ तुम्हारे वियोगसे दुःखी हुई यह नगरी वीणा ब्राँसुगी तथा मृदङ्ग आदिके शब्दसे रहित होनेके कारण सुशोभित नहीं

आर्याच्छुन्दः

पूर्वोपचितमशुद्धं नूनं मे कर्म पाकमायातम् ।
 भ्रातृवियोगव्यसनं प्राप्तोऽस्मि यदीदृशं कष्टम् ॥४३॥
 युद्ध इव शोकभाजश्चैतन्यसमागमानन्दम् ।
 उत्तिष्ठ मानवरवे कुरु सकृदत्यन्तखिन्नस्य ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते रामदेवविप्रलापं नाम
 षोडशोत्तरशतं पर्व ॥११६॥

हो रही है ॥४२॥ जान पड़ता है कि मेरा पूर्वोपार्जित पाप कर्म उदयमें आया है इसीलिए मैं
 भाईके वियोगसे दुःखपूर्ण ऐसे कष्टको प्राप्त हुआ हूँ ॥४३॥ हे मानव सूर्य ! जिस प्रकार तूने
 पहले युद्धमें सचेत हो मुझ शोकातुरके लिए आनन्द उत्पन्न किया था उसी प्रकार अब भी उठ
 और अत्यन्त खेदसे खिन्न मेरे लिए एक बार आनन्द उत्पन्न कर ॥४४॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें श्रीरामदेवके
 विप्रलापका वर्णन करनेवाला एक सौ सोलहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११६॥

सप्तदशोत्तरशतं पर्व

ततो विदितवृत्तान्ताः सर्वे विद्याधराधिपाः । सह स्त्रीभिः समायातास्वरिताः कोशला पुरीम् ॥१॥
 विभीषणः समं पुत्रैश्चन्द्रोदरनृपात्मजः । समेतः परिवर्गेण सुभीवः शशिवर्द्धनः ॥२॥
 बाष्पविप्लुतनेत्रास्ते सम्भ्रान्तमनसोऽविशन् । भवनं पद्मनाभस्य भरिताञ्जलयो नताः ॥३॥
 विषादिनो विधिं कृत्वा पुरस्तात्ते महीतले । उपविश्य क्षणं स्थित्वा भन्दं व्यज्ञापयन्निदम् ॥४॥
 देव यद्यपि दुर्मोचः शोकोऽयं परमात्मजः । ज्ञातज्ञेयस्तथापि त्वमेनं सन्त्यक्तुमर्हसि ॥५॥
 एवमुक्त्वा स्थितेष्वेव वचः प्रोचे विभीषणः । परमार्थस्वभावस्य लोकतत्त्वविचक्षणः ॥६॥
 अनादिनिधना राजन् स्थितिरेषा व्यवस्थिता । अधुना नेयमस्यैव प्रवृत्ता भुवनोदरे ॥७॥
 जातेनाऽवश्यमसंख्यमन्न संसारपञ्जरे । प्रतिक्रियाऽस्ति नो मृत्योरुपायैर्विविधैरपि ॥८॥
 अनाद्ये^१ नियतं देहे शोकस्यालम्बनं मुधा । उपायैर्हि प्रवर्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धयः ॥९॥
 आक्रन्दितेन नो कश्चित्परलोकगतो गिरम् । प्रयच्छति ततः शोकं न राजन् कर्तुं महसि ॥१०॥
 नारीपुरुषसंयोगाच्छरीराणि शरीरिणाम् । उत्पद्यन्ते व्यद्यन्ते च प्राप्तसाम्यानि बुद्बुदैः ॥११॥
 लोकपालसमेतानामिन्द्राणामपि नाकतः । नष्टा योनिजदेहानां प्रच्युतिः पुण्यसंख्ये ॥१२॥
 गर्भोक्लिष्टे रुजाकीर्णे तृणबिन्दुचलाचले । क्लेदकैकससङ्घाते काऽऽस्था मर्त्यशरीरके ॥१३॥
 अजरामरणमन्यः किं शोचति जनो मृतम् । मृत्युदृष्टान्तरविलष्टमात्मानं किं न शोचति ॥१४॥

समाचार मिलनेपर समस्त विद्याधर राजा अपनी स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरी आये ॥१॥ अपने पुत्रोंके साथ विभीषण, राजा विराधित, परिजनोसे सहित सुभीव और चन्द्रबर्धन आदि सभी लोग आये ॥२॥ जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा मन धबड़ाये हुए थे ऐसे सब लोगोंने अञ्जलि बाँधे-बाँधे रामके भवनमें प्रवेश किया ॥३॥ विषादसे भरे हुए सब लोग योग्य शिष्टाचारकी विधि कर रामके आगे पृथिवीतलपर बैठ गये और क्षणभर चुपचाप बैठनेके बाद धीरे-धीरे यह निवेदन करने लगे कि हे देव ! यद्यपि परम इष्टजनके वियोगसे उत्पन्न हुआ यह शोक दुःखसे छूटने योग्य है तथापि आप पदार्थके ज्ञाता हैं अतः इस शोकको छोड़नेके योग्य हैं ॥४-५॥ इस प्रकार कहकर जब सब लोग चुप बैठ गये तब परमार्थ स्वभाववाले आत्माके लौकिक स्वरूपके जाननेमें निपुण विभीषण निम्नाङ्कित वचन बोला ॥६॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यह स्थिति अनादिनिधन है । संसारके भीतर आज इन्हीं एककी यह दशा नहीं हुई है ॥७॥ इस संसाररूपी पिंजड़ेके भीतर जो उत्पन्न हुआ है उसे अवश्य मरना पड़ता है । नाना उपायोंके द्वारा भी मृत्युका प्रतिकार नहीं किया जा सकता ॥८॥ जब यह शरीर निश्चित ही विनश्वर है तब इसके विषयमें शोकका आश्रय लेना व्यर्थ है । यथार्थमें बात यह है कि जो कुशलबुद्धि मनुष्य हैं वे आत्महितके उपायोंमें ही प्रवृत्ति करते हैं ॥९॥ हे राजन् ! परलोक गया हुआ कोई मनुष्य रोनेसे उत्तर नहीं देता इसलिए आप शोक करनेके योग्य नहीं हैं ॥१०॥ स्त्री और पुरुषके संयोगसे प्राणियोंके शरीर उत्पन्न होते हैं और पानीके बबूलेके समान अनायास ही नष्ट हो जाते हैं ॥११॥ पुण्यक्षय होनेपर जिनका वैक्रियिक शरीर नष्ट हो गया है ऐसे लोकपालसहित इन्द्रों को भी स्वर्गसे च्युत होना पड़ता है ॥१२॥ गर्भके क्लेशोंसे युक्त, रोगोंसे व्याप्त, तृणके ऊपर स्थित बूँदके समान चञ्चल तथा मांस और हड्डियोंके समूह स्वरूप मनुष्यके तुच्छ शरीरमें क्या आदर करना है ? ॥१३॥ अपने आपको अजर-अमर मानता हुआ यह मनुष्य मृत

१. अनायें व, अनाय्ये ख०, अनायो क० । २. नष्टयोनिजदेहानां म० ।

यदा निधनमस्यैव केवलस्य तदा सति । उच्चैराक्रन्दितुं युक्तं न सामान्ये पराभवे ॥१५॥
यदैव हि जनो जातो मृत्युनाधिष्ठितस्तदा । तत्र साधारणे धर्मे भुवे किमिति शोच्यते ॥१६॥
अभीष्टसङ्गमाकाङ्क्षो मुधा शुष्यति शोकवान् । शबरार्त्तं द्वारण्ये चमरः केशलोभतः ॥१७॥
सर्वैरेविर्यदास्माभिरितो गम्यं वियोगतः । तदा किं क्रियते शोकः प्रथमं तत्र निर्गते ॥१८॥
लोकस्य साहसं पश्य निर्भीस्तिष्ठति यत्पुरः । मृत्योर्वज्राप्रदण्डस्य सिंहस्येव कुरङ्गकः ॥१९॥
लोकनार्थं विमुच्यैकं कश्चिदन्यः श्रुतस्त्वया । पाताले भूतले वा यो न जातो मृत्युनाऽर्दितः ॥२०॥
संसारमण्डलापन्नं दृष्टमानं सुगन्धिना । सदा च विन्ध्यदावाभं भुवनं किं न वीक्षसे ॥२१॥
पर्यव्य भवकान्तारं प्राप्य कामभुजिष्यताम् । मत्तद्विषा इवाऽऽयान्ति कालपाशस्य वरधताम् ॥२२॥
धर्ममार्गं समासाद्य गतोऽपि त्रिदशालयम् । अशाश्वततया नद्या पात्यते तटवृक्षवत् ॥२३॥
सुरमानवनाथानां चयाः शतसहस्रशः । निधनं समुपानीताः कालमेवेन बह्वयः ॥२४॥
दूरमन्वरमुत्तलङ्घ्य समापत्य रसातलम् । स्थानं तत्र प्रपश्यामि यत्र मृत्योरगोचरः ॥२५॥
षष्ठकालक्षये सर्वं क्षीयते भारतं जगत् । धराधरा विशीर्यन्ते मर्त्यकाये तु का कथा ॥२६॥
वज्रपर्वभवपुर्वदा^१ अथ्वबध्याः सुरासुरैः । नन्वनिश्चयतया लब्धा रम्भागर्भोपमैस्तु किम् ॥२७॥

व्यक्तिके प्रति क्यों शोक करता है ? वह मृत्युकी डौढ़ोंके बीच क्लेश उठानेवाले अपने आपके प्रति शोक क्यों नहीं करता ? ॥१४॥ यदि इन्हीं एकका मरण होता तब तो जोरसे रोना उचित था परन्तु जब यह मरण सम्बन्धी पराभव सबके लिए समानरूपसे प्राप्त होता है तब रोना उचित नहीं है ॥१५॥ जिस समय यह प्राणी उत्पन्न होता है उसी समय मृत्यु इसे आ घेरती है । इस तरह जब मृत्यु सबके लिए साधारण धर्म है तब शोक क्यों किया जाता है ? ॥१६॥ जिस प्रकार जङ्गलमें भीलके द्वारा पीड़ित चमरी मृग—बालोंके लोभसे दुःख उठाता है उसी प्रकार इष्ट पदार्थोंके समागमकी आकांक्षा रखनेवाला यह प्राणी शोक करता हुआ व्यर्थ ही दुःख उठाता है ॥१७॥ जब हम सभी लोगोंको वियुक्त होकर यहाँसे जाना है तब सर्वप्रथम उनके चले जानेपर शोक क्यों किया जा रहा है ? ॥१८॥ अरे, इस प्राणीका साहस तो देखो जो यह सिंहके सामने मृगके समान वज्रदण्डके धारक यमके आगे निर्भय होकर बैठा है ॥१९॥ एक लक्ष्मीधरको छोड़कर समस्त पाताल अथवा पृथिवीतलपर किसी ऐसे दूसरेका नाम आपने सुना कि जो मृत्युसे पीड़ित नहीं हुआ हो ॥२०॥ जिस प्रकार सुगन्धिसे उपलक्षित विन्ध्याचलका वन, दावानलसे जलता है उसी प्रकार संसारके चक्रको प्राप्त हुआ यह जगत् कालानलसे जल रहा है, यह क्या आप नहीं देख रहे हैं ? ॥२१॥ संसाररूपी अटवीमें घूमकर तथा कामकी आधीनता प्राप्तकर ये प्राणी मदनोन्मत्त हाथियोंके समान कालपाशकी आधीनताको प्राप्त करते हैं ॥२२॥ यह प्राणी धर्मका मार्ग प्राप्तकर यद्यपि स्वर्ग पहुँच जाता है तथापि नश्वरताके द्वारा उस तरह नीचे गिरा दिया जाता है जिस प्रकार कि नदीके द्वारा तटका वृक्ष ॥२३॥ जिस प्रकार प्रलयकालीन मेघके द्वारा अन्नियों नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार नरेन्द्र और देवेन्द्रोंके लाखों समूह कालरूपी मेघके द्वारा नाशको प्राप्त हो चुके हैं ॥२४॥ आकाशमें बहुत दूर तक उड़कर और नीचे रसातलमें बहुत दूर तक जाकर भी मैं उस स्थानको नहीं देख सका हूँ जो मृत्युका अगोचर न हो ॥२५॥ छठवें कालकी समाप्ति होनेपर यह समस्त भारतवर्ष नष्ट हो जाता है और बड़े-बड़े पर्वत भी विशीर्ण हो जाते हैं तब फिर मनुष्यके शरीरकी तो क्या ही क्या है ? ॥२६॥ जो वज्रमय शरीरसे युक्त थे तथा सुर और असुर भी जिन्हें मार नहीं सकते थे ऐसे लोगोंको भी अनित्यताने प्राप्त कर लिया है फिर केलेके भीतरी भागके समान निःसार मनुष्योंकी तो बात ही

१. मदनपारवश्यम् । २. तत्र म० । ३. यत्र म० । ४. 'यत्र मृत्योरगोचरः' इति शुद्धं प्रतिभाति ।

५. अथ्वबध्यां०म० ।

जनन्यापि समाश्लिष्टं मृत्युर्हरति देहिनम् । पातालान्तर्गतं यद्वत् काद्रवेयं द्विजोत्तमः^२ ॥२८॥
 हा भ्रातर्दयिते पुत्रेत्येवं क्रन्दन् सुदुःखितः । कालाहिना जगद्वयङ्को प्रासतामुपनीयते ॥२९॥
 करोम्येतत्करिष्यामि वदस्येवमनिष्टयोः । जनो विशति कालास्यं भीमं पीत इवाणवम् ॥३०॥
 जन् भवान्तरं प्राप्तमनुगच्छेजनो यदि । द्विष्टैरिष्टैश्च नो जातु जायेत विरहस्ततः ॥३१॥
 परे स्वजनमानी यः कुरुते स्नेहसम्पत्तिम् । विशति क्लेशवह्निं स मनुष्यकलभो ध्रुवम् ॥३२॥
 स्वजनौघाः परिप्राप्ताः संसारे येऽसुधारिणाम् । सिन्धुसैकतसङ्घाता अपि सन्ति न तस्मिन् ॥३३॥
 य एव लालितोऽन्यत्र विविधप्रियकारिणा । स एव रिपुतां प्राप्नो हन्यते तु महारुषा ॥३४॥
 पीतो पयोधरौ यस्य जीवस्य जननान्तरे । त्रस्ताहतस्य तस्यैव खाद्यते मांसमत्र धिक् ॥३५॥
 स्वामीति पूजितः पूर्वं यः शिरोनमनादिभिः । स एव दासतां प्राप्नो हन्यते पादताडनैः ॥३६॥
 विभोः पश्यत मोहस्य शक्तिं येन वशीकृतः । जनोऽन्विष्यति संयोग-हस्तेनेव महोरगम् ॥३७॥
 प्रदेशस्तिलमात्रोऽपि विष्टपे न स विद्यते । यत्र जीवः परिप्राप्तो न मृत्युं जन्म एव वा ॥३८॥
 तान्नादिकलिलं पीतं जीवेन नरकेषु यत् । स्वयम्भूरमणे तावत् सलिलं न हि विद्यते ॥३९॥
 वराहभवयुक्तेन यो नीहारोऽशनीकृतः । मन्ये विन्ध्यसहस्रेभ्यो बहुशोऽन्यन्तदूरतः ॥४०॥
 परस्परस्वनाशेन कृता या मूर्खसंहतिः । ज्योतिषां मार्गमुल्लङ्घ्य यायात्सा यदि रुष्यते ॥४१॥

क्या है ? ॥२७॥ जिस प्रकार पातालके अन्दर छिपे हुए नागको गरुड़ खींच लेता है उसी प्रकार मातासे आलिङ्गित प्राणीको भी मृत्यु हर लेती है ॥२८॥ हाय भाई ! हाय प्रिये ! हाय पुत्र ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ यह अत्यन्त दुःखी संसाररूपी मेंढक, कालरूपी साँपके द्वारा अपना प्रास बना लिया जाता है ॥२९॥ 'मैं यह कर रहा हूँ और यह आगे करूँगा' इस प्रकार दुर्बुद्धि मनुष्य कहता रहता है फिर भी यमराजके भयंकर मुखमें उस तरह प्रवेश कर जाता है जिस तरह कि कोई जहाज समुद्रके भीतर ॥३०॥ यदि भवान्तरमें गये हुए मनुष्यके पीछे यहाँके लोग जाने लगे तो फिर शत्रु मित्र—किसीके भी साथ कभी वियोग ही न हो ॥३१॥ जो परको स्वजन मानकर उसके साथ स्नेह करता है वह नरकुञ्जर अवश्य ही दुःखरूपी अग्निमें प्रवेश करता है ॥३२॥ संसारमें प्राणियोंको जितने आत्मीयजनोंके समूह प्राप्त हुए हैं समस्त समुद्रोंकी बालूके कण भी उनके बराबर नहीं हैं। भावार्थ—असंख्यात समुद्रोंमें बालूके जितने कण हैं उनसे भी अधिक इस जीवके आत्मीयजन हो चुके हैं ॥३३॥ नाना प्रकारकी प्रियचेष्टाओंको करनेवाला यह प्राणी, अन्य भवमें जिसका बड़े लाड़-प्यारसे लालन-पालन करता है वही दूसरे भवमें इसका शत्रु हो जाता है और तीव्र क्रोधको धारण करनेवाले उसी प्राणीके द्वारा मारा जाता है ॥३४॥ जन्मान्तरमें जिस प्राणीके स्तन पिये हैं, इस जन्ममें भयभीत एवं मारे हुए उसी जीवका माँस खाया जाता है, ऐसे संसारको धिक्कार है ॥३५॥ 'यह हमारा स्वामी है' ऐसा मानकर जिसे पहले शिरोनमन—शिर झुकाना आदि विनयपूर्ण क्रियाओंसे पूजित किया था वही इस जन्ममें दासताको प्राप्त होकर लातोंसे पीटा जाता है ॥३६॥ अहो ! इस सामर्थ्यवान् मोहकी शक्ति तो देखो जिसके द्वारा चशीभूत हुआ यह प्राणी इष्टजनोंके संयोगको उस तरह हूँदता फिरता है जिस तरह कि कोई हाथसे महानागको ॥३७॥ इस संसारमें तिलमात्र भी वह स्थान नहीं है जहाँ यह जीव मृत्यु अथवा जन्मको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥३८॥ इस जीवने नरकोंमें ताँबा आदिका जितना पिघला हुआ रस पिया है उतना स्वयंभूरमण समुद्रमें पानी भी नहीं है ॥३९॥ इस जीवने सूकरका भव धारणकर जितने विष्टाको अपना भोजन बनाया है मैं समझता हूँ कि वह हजारों विन्ध्याचलोंसे भी कहीं बहुत अधिक अत्यन्त ऊँचा होगा ॥४०॥ इस जीवने परस्पर एक दूसरेको मारकर जो मस्तकोंका समूह काटा है यदि उसे एक जगह रोका जाय—एक

१. सर्पम् । २. गरुडः । ३. शक्तिर्वेन म० । ४. स्वयंभूरमणो म० ।

शर्कराधरणीयात्तैर्दुःखं प्राप्तमनुत्तमम् । श्रुत्वा तत्कस्य रोचेत् मोहेन सह मित्रता ॥४२॥

आर्यावृत्तम्

यस्य कृतेऽपि निमेषं नेच्छति दुःखानि विषयसुखसंसक्तः ।
पर्यटति च संसारे प्रस्तो मोहग्रहेण मत्तवदात्मा ॥४३॥
एतद् दग्धशरीरं युक्तं त्यक्तुं कषायचिन्तायासम् ।
अन्यस्मादन्यतरं किं पुनरीदृग्विधं कलेवरभारम् ॥४४॥
इत्युक्तोऽपि विविक्तं खेचररत्रिणा विपश्चिता रामः ।
नोऽस्मत्ति लक्ष्मणमूर्तिं गुरोरिवाऽऽज्ञां विनीतात्मा ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते लक्ष्मणवियोगविभीषणसंसारस्थितिवर्णनं
नाम सप्तदशोत्तरशतं पर्व ॥११७॥

स्थानपर इकट्टा किया जाय तो वह ज्योतिषी देवोंके मार्गको भी उल्लंघन कर आगे जा सकता है ॥४१॥ नरक-भूमिमें गये हुए जीवोंने जो भारी दुःख उठाया है उसे सुन मोहके साथ मित्रता करना किसे अच्छा लगेगा ? ॥४२॥ विषय-सुखमें आसक्त हुआ यह प्राणी जिस शरीरके पीछे पलभरके लिए भी दुःख नहीं उठाना चाहता तथा मोहरूपी ग्रहसे प्रस्त हुआ पागलके समान संसारमें भ्रमण करता रहता है, ऐसे कषाय और चिन्तासे खेद उत्पन्न करनेवाले इस शरीरको छोड़ देना ही उचित है क्योंकि इनका यह ऐसा शरीर क्या अन्य शरीरसे भिन्न है—विलक्षण है ? ॥४३-४४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि विद्याधरोंमें सूर्य स्वरूप बुद्धिमान् विभीषणने यद्यपि रामको इस तरह बहुत कुछ समझाया था तथापि उन्होंने लक्ष्मणका शरीर उस तरह नहीं छोड़ा जिस तरह कि विनयी शिष्य गुरुकी आज्ञा नहीं छोड़ता है ॥४५॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके वियोगको लेकर विभीषणके द्वारा संसारकी स्थितिका वर्णन करने वाला एकसौ सत्रहवाँ पर्व पूरा हुआ ॥११७॥

अष्टादशोत्तरशतं पर्व

सुग्रीवाद्यैस्ततो भूपैर्विज्ञप्तं देव साम्प्रतम् । चित्तं कुर्मो नरेन्द्रस्य देहं संस्कारमापय ॥१॥
 कलुषात्मा जगादासौ मातृभिः पितृभिः समम् । चितायामाशु दग्धन्तां भवन्तः सपितामहाः ॥२॥
 यः कश्चिद् विद्यते बन्धुपुष्पमाकं पापचेतसाम् । भवन्त एव तेनाऽमा व्रजन्तु निधनं द्रुतम् ॥३॥
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गच्छामः प्रदेशं लक्ष्मणाऽपरम् । शृणुमो नेदशं यत्र खलानां कटुकं वचः ॥४॥
 एवमुक्त्वा तनुं भ्रातृजिघृक्षोरस्य सत्वरम् । वृष्टस्कन्धादि राजानो ददुः सम्भ्रमवत्तिनः ॥५॥
 अविश्वसन् स तेभ्यस्तु स्वयमादाय लक्ष्मणम् । प्रदेशमपरं यातः शिशुर्विषफलं यथा ॥६॥
 जगौ वाक्पपरीताक्षो भ्रातः किं सुप्यते चिरम् । उत्तिष्ठ वर्त्तते वेला स्नानभूमिनिषेव्यताम् ॥७॥
 ह्युक्त्वा तं मृतं कृत्वा साश्रये स्नानविष्टरे । अभ्यविद्धन्महामोहो हेमकुम्भाम्भसा चिरम् ॥८॥
 अलङ्कृत्य च निःशेषभूषणैर्मुकुटादिभिः । सदाज्ञोऽज्ञापयत् क्षिप्रं भुक्तिभूसकृतानिति ॥९॥
 नानारत्नशरीराणि जाम्बूनदमयानि च । भाजनानि विधीयन्तां भक्तं चाऽऽनीयतां परम् ॥१०॥
 समुपाह्रियतामच्छा वाढं कादम्बरी वरा । विचित्रमुपदंशं च रसबोधनकारणम् ॥११॥
 एवमाज्ञां समासाद्य परिवर्गेण सादरम् । तथाविधं कृतं सर्वं नाथबुद्धयनुवर्तिना ॥१२॥
 १ लक्ष्मणस्यान्तरास्यस्य राघवः पिण्डमादधे । न त्वविद्धजिनेन्द्रोक्तमभव्यश्रवणे यथा । ॥१३॥

अथानन्तर सुग्रीव आदि राजाओंने कहा कि हे देव ! हम लोग चिता बनाते हैं सो उस-
 पर राजा लक्ष्मीधरके शरीरको संस्कार प्राप्त कराइए ॥१॥ इसके उत्तरमें कुपित होकर रामने
 कहा कि चितापर माताओं, पिताओं और पितामहोंके साथ आप लोग ही जलें ॥२॥ अथवा
 पाप पूर्ण विचार रखनेवाले आप लोगोंका जो भी कोई इष्ट बन्धु हो उसके साथ आप लोग
 ही शीघ्र मृत्युको प्राप्त हों ॥३॥ इस प्रकार अन्य सब राजाओंको उत्तर देकर वे लक्ष्मणके प्रति
 बोले कि भाई लक्ष्मण ! उठो, उठो, चलो दूसरे स्थानपर चलें। जहाँ दुष्टोंके ऐसे वचन नहीं
 सुनने पड़ें ॥४॥ इतना कहकर वे शीघ्र ही भाईका शरीर उठाने लगे तब घबड़ाये हुए राजाओं-
 ने उन्हें पीठ तथा कन्धा आदिका सहारा दिया ॥५॥ राम, उन सबका विश्वास नहीं रखते थे
 इसलिये स्वयं अकेले ही लक्ष्मणको लेकर उस तरह दूसरे स्थानपर चले गये जिस तरह कि
 बालक विषफलको लेकर चला जाता है ॥६॥ वहाँ वे नेत्रोंमें आँसू भरकर कहे कि भाई !
 इतनी देर क्यों सोते हो ? उठो, समय हो गया, स्नान-भूमिमें चलो ॥७॥ इतना कहकर उन्होंने
 मृत लक्ष्मणको आश्रयसहित (टिकनेके उपकरणसे सहित) स्नानकी चौकीपर बैठा दिया
 और स्वयं महामोहसे युक्त हो सुवर्णकलशमें रखे जलसे चिरकाल उसका अभिषेक करते
 रहे ॥८॥ तदनन्तर मुकुट आदि समस्त आभूषणोंसे अलंकृत कर, भोजन-गृहके अधिकारियोंको
 शीघ्र ही आज्ञा दिलाई कि नाना रत्नमय एवं स्वर्णमय पात्र इकट्ठे कर उनमें उत्तम भोजन
 लाया जाय ॥९-१०॥ उत्तम एवं स्वच्छ मदिरा लाई जाय तथा रससे भरे हुए नाना प्रकारके
 स्वादिष्ट व्यञ्जन उपस्थित किये जावें। इस प्रकार आज्ञा पाकर स्वामीकी इच्छानुसार काम
 करनेवाले सेवकोंने आदरपूर्वक सब सामग्री लाकर रख दी ॥११-१२॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके मुखके भीतर भोजनका प्रास रक्खा। पर वह उस तरह
 भीतर प्रविष्ट नहीं हो सका, जिस तरह कि जिनेन्द्र भगवान्का वचन अभव्यके कानमें प्रविष्ट

१. व्यञ्जनम् । २. लक्ष्मणस्य + अन्तर् + आस्यस्य इतिच्छेदः ।

ततोऽभदद् यदि क्रोधो मयि देव कृतस्त्वया । ततोऽस्यात्र किमायातममृतस्वादिभोऽन्धसः ॥१४॥
 इयं भीधर ते नित्यं दयिता मदिरोत्तमा । इमां तावत् पिव न्यस्तां चचके विकचोत्पले ॥१५॥
 इत्युक्त्वा तां मुखे न्यस्य चकार सुमहादरः । कथं विशतु सा तत्र चार्वी संक्रान्तचेतने ॥१६॥
 इत्यशेषं क्रियाजातं जीवतीव स लक्ष्मणे । चकार स्नेहमूढात्मा मोघं निर्वेदवर्जितः ॥१७॥
 गीतैः स चारुभिवेणुवीणानिस्वनसङ्गतैः । परासुरपि रामाशां प्राप्तामापष्व लक्ष्मणः ॥१८॥
 चन्दनाशितदेहं तं दोर्भ्यामुद्यम्य सस्पृहः । कृत्वाकृके मस्तकेऽनुभवत् पुनराण्डे पुनः करे ॥१९॥
 अपि लक्ष्मण किन्ते स्यादिदं सञ्जातमीदृशम् । न येन मुखसे निद्रां सकृदेव निवेद्य ॥२०॥
 इति स्नेहप्रहाविष्टो यावदेव विचेष्टते । महामोहकृतासङ्गे कर्मण्युदयमागते ॥२१॥
 तावद्विदितवृत्तान्ता रिपवः क्षोभमागता । परे तेजसि कालास्ते गर्जन्तो विषदा इव ॥२२॥
 विरोधिताशया दूरं सामर्षा सुन्दनन्दनम् । चारुरत्नाख्यमाजगुरसौ कुलिशमालिनम् ॥२३॥
 ऊचे च 'मद्गुरोर्येन मीत्वा सोदरकारकौ । पातालनगरे चासौ राज्येऽस्थापि विराधितः ॥२४॥
 वानरध्वजिनीचन्द्रं सुग्रीवं प्राप्य बान्धवम् । उदन्तोऽलम्बि कान्ताया रामेणाऽऽर्त्तिमता ततः ॥२५॥
 उदन्वन्तं समुल्लङ्घ्य नभोगैर्यानवाहनैः । द्वीपा विध्वंसितास्तेन लङ्कां जेतुं युयुसुता ॥२६॥

नहीं होता है ॥१३॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि हे देव ! तुम्हारा मुझपर क्रोध है तो यहाँ अमृतके समान स्वादिष्ट इस भोजनने क्या बिगाड़ा ? इसे तो ग्रहण करो ॥१४॥ हे लक्ष्मीधर ! तुम्हें यह उत्तम मदिरा निरन्तर प्रिय रहती थी सो खिले हुए नील कमलसे सुशोभित पानपात्रमें रखी हुई इस मदिराको पिओ ॥१५॥ ऐसा कहकर उन्होंने बड़े आदरके साथ वह मदिरा उनके मुखमें रख दी पर वह सुन्दर मदिरा निश्चेतन मुखमें कैसे प्रवेश करती ॥१६॥ इस प्रकार जिनकी आत्मा स्नेहसे मूढ़ थी तथा जो वैराग्यसे रहित थे ऐसे रामने जीवित दशाके समान लक्ष्मणके विषयमें व्यर्थ ही समस्त क्रियाएँ कीं ॥१७॥ यद्यपि लक्ष्मण निष्प्राण हो चुके थे तथापि रामने उनके आगे वीणा बाँसुरी आदिके शब्दोंसे सहित सुन्दर संगीत कराया ॥१८॥ तदनन्तर जिसका शरीर चन्दनसे चर्चित था ऐसे लक्ष्मणको बड़ी इच्छाके साथ दोनों सुजाओंसे उठाकर रामने अपनी गोदमें रख लिया और उनके मस्तक कपोल तथा हाथका बार-बार चुम्बन किया ॥१९॥ वे उनसे कहते कि हे लक्ष्मण, तुम्हें यह ऐसा हो क्या गया जिससे तू नींद नहीं छोड़ता, एक बार तो बता ॥२०॥ इस प्रकार महामोहसे सम्बद्ध कर्मका उदय आनेपर स्नेह रूपी पिशाचसे आक्रान्त राम जब तक यहाँ यह चेष्टा करते हैं तब तक वहाँ यह वृत्तान्त जान शत्रु उस तरह क्षोभको प्राप्त हो गये जिस तरह कि परम तेजार्थान् सूर्यको आच्छादित करनेके लिए गरजते हुए काले मेघ ॥२१-२२॥ जिनके अभिप्रायमें बहुत दूर तक विरोध समाया हुआ था तथा जो अत्यधिक क्रोधसे सहित थे ऐसे शत्रु, शम्भूकके भाई सुन्दके पुत्र चारुरत्नके पास गये और चारुरत्न उन सबको साथ ले इन्द्रजित्के पुत्र वज्रमालीके पास गया ॥२३॥ उसे उत्तेजित करता हुआ चारुरत्न बोला कि लक्ष्मणने हमारे काका और बाबा दोनोंको मारकर पाताल लंकाके राज्यपर विराधितको स्थापित किया ॥२४॥ तदनन्तर वानर-वंशियोंकी सेनाकी हर्षित करनेके लिए चन्द्रमा स्वरूप एक भाईके समान हितकारी सुग्रीवको पाकर विरहसे पीड़ित रामने अपनी स्त्री सीताका समाचार प्राप्त किया ॥२५॥ तत्पश्चात् लंकाको जीतनेके लिए युद्ध करनेके इच्छुक रामने विद्याधरोंके साथ विमानों द्वारा समुद्रको लँघकर

१. मद्गुरौ येन नीत्वा सोदरकारकौ म० । मीत्वा = हत्वा, सोदरकारकौ मम भ्रातृजनकौ श्री० टि०,
 मम गुरुः सुन्दस्तस्य सोदरम् ।

सिंहताकर्ममहाविधौ रामलक्ष्मणयोस्तयोः । उत्पन्नो बन्दितां नीतास्तास्थामिन्द्रजितादयः ॥२७॥
 चक्ररत्नं समासाद्य येनाऽश्वाति दशाननः । अधुना कालचक्रेण लक्ष्मणोऽसौ निपातितः ॥२८॥
 आसंस्तस्य भुजच्छायां श्रित्वा मत्ता ह्रवङ्गमाः । साम्प्रतं लूनपद्मास्ते परमास्कन्धतां गताः ॥२९॥
 अद्यास्ति द्वादशः पक्षो राघवस्येयुषः शुचम् । प्रेताङ्गं वहमानस्य व्यामोहः कोऽपरोऽस्त्वतः ॥३०॥
 यद्यप्यप्रतिमहोऽसौ हलरत्नादिमर्दनः । तथापि लङ्घितुं शक्यः शोकपङ्कगतोऽभवत् ॥३१॥
 तस्यैव विभिमस्त्वस्य न जात्वन्यस्य कस्यचिद् । यस्यानुजेन विध्वस्ता सर्वास्मिद्दशसङ्गतिः ॥३२॥
 अथैन्द्रजितिराकर्ण्य व्यसनं स्वोरुगोत्रजम् । प्रतिद्यासितमार्गेण जज्वाल क्षुब्धमानसः ॥३३॥
 आज्ञाप्य सचिवान् सर्वान् भेर्यां संयति राजितान् । प्रययौ प्रति साकेतं सुन्दतोऽकसमन्वितः ॥३४॥
 सैन्याकूपारगुप्तौ तौ सुग्रीवं प्रति कोपितौ । पद्मनाभमयासिष्ठां प्रकोपयितुमुद्यतौ ॥३५॥
 वज्रमालिनमायातं श्रुत्वा सौन्दिसमन्वितम् । सर्वे विद्याधराधीशा रघुचन्द्रमशिश्रियन् ॥३६॥
 वितानतां परिप्राप्ता क्षुब्धाऽयोध्या समन्ततः । लवणाकुशयोर्द्वदागमे भीतिवेपिता ॥३७॥
 अरातिसैन्यमभ्यर्णमालोक्य रघुभास्करः । क्रुवाङ्के लक्षणं सर्वं वहमानस्तथाविधम् ॥३८॥
 उपनीतं समं वाणैर्वज्रावर्तमहाधनुः । आलोकित स्वभावस्थं कृतान्तभ्रूलतोपमम् ॥३९॥
 एतस्मिन्नन्तरे नाके जातो विष्टरवेपथुः । कृतान्तवक्त्रदेवस्य जटायुत्रिदशस्य च ॥४०॥

अनेक द्वीप नष्ट किये ॥२६॥ राम-लक्ष्मणको सिंहवाहिनी एवं गरुडवाहिनी नामक विद्याएँ प्राप्त हुई। उनके प्रभावसे उन्होंने इन्द्रजित आदिको बन्दी बनाया ॥२७॥ तथा जिस लक्ष्मणने चक्ररत्न पाकर रावणको मारा था इस समय वही लक्ष्मण कालके चक्रसे मारा गया है ॥२८॥ उसकी भुजाओंकी छाया पाकर वानरवंशी उन्मत्त हो रहे थे पर इस समय वे पक्ष कट जानेसे अत्यन्त आक्रमणके योग्य अवस्थाको प्राप्त हुए हैं। शोकको प्राप्त हुए रामको आज बारहवाँ पक्ष है वे लक्ष्मणके मृतक शरीरको लिये फिरते हैं अतः कोई विचित्र प्रकारका मोह—पागलपन उनपर सवार है ॥२९-३०॥ यद्यपि हल-मुसल आदि शस्त्रोंको धारण करनेवाले राम अपनी सानी नहीं रखते तथापि इस समय शोकरूपी पंक्रमे फँसे होनेके कारण उनपर आक्रमण करना शक्य है ॥३१॥ यदि हमलोग डरते हैं तो एक उन्हींसे डरते हैं और किसीसे नहीं जिनके कि छोटे भाई लक्ष्मणने हमारे वंशकी सब संगति नष्ट कर दी ॥३२॥

अथानन्तर इन्द्रजितका पुत्र वज्रमाली अपने विशाल वंशपर उत्पन्न पूर्व संकटको सुनकर लुभित हो उठा और प्रसिद्ध मार्गसे प्रवृत्त होने लगा अर्थात् क्षत्रिय कुल प्रसिद्ध तेजसे दमकने लगा ॥३३॥ वह मन्त्रियोंको आज्ञा दे तथा भेरीके द्वारा सब लोगोंको युद्धमें इकट्ठाकर सुन्दपुत्र चारुरत्नके साथ अयोध्याकी ओर चला ॥३४॥ जो सेना रूपी समुद्रसे सुरक्षित थे तथा सुग्रीवके प्रति जिनका क्रोध उमड़ रहा था ऐसे वे दोनों—वज्रमाली और चारुरत्न, रामको कुपित करनेके लिए उद्यत हो उनकी ओर चले ॥३५॥ चारुरत्नके साथ वज्रमालीको आया सुन सब विद्याधर राजा रामचन्द्रके पास आये ॥३६॥ उस समय अयोध्या किंकर्तव्यमूढताको प्राप्त हो सब ओरसे लुभित हो उठी तथा जिस प्रकार लवणाकुशके आनेपर भयसे काँपने लगी थी वसी प्रकार भयसे काँपने लगी ॥३७॥ अनुपम पराक्रमको धारण करनेवाले रामने जब शत्रुसेनाको निकट देखा तब वे मृत लक्ष्मणको गोदमें रख वाणोंके साथ लाये हुए उस वज्रावर्त नामक महाधनुषकी ओर देखने लगे कि जो अपने स्वभावमें स्थित था तथा यमराजकी भ्रुकुटि रूपी लताके समान कुटिल था ॥ ३८-३९॥

इसी समय स्वर्गमें कृतान्तवक्त्र सेनापति तथा जटायु पक्षीके जीव जो देव हुए थे उनके

विमाने यत्र सम्भूतो जटायुस्त्रिदशोत्तमः । तस्मिन्नेव कृतान्तोऽपि तस्यैव विभुतां गतः ॥४१॥
 कृतान्तत्रिदशोऽवोचद् भो गीर्वाणपते कुतः । इमं पातोऽसि संरम्भं सोऽगदधोजितावधिः ॥४२॥
 यदाऽहमभवं गुध्रस्तदा येनेष्टपुत्रवत् । लालितः शोकतप्तं तमेति शत्रुबलं महत् ॥४३॥
 ततः कृतान्तदेवोऽपि प्रयुज्यावधिलोचनम् । अधोभूयिष्ठदुःखार्तो बभाषे चातिभासुरः ॥४४॥
 सखे सत्यं ममाप्येष प्रभुरासीत् सुवत्सलः । प्रसादादस्य भूपृष्ठे कृतं दुर्लभितं मया ॥४५॥
 भावितव्राह्ममेतेन गहनात्परमोचनम् । तद्विदं जातमेतस्य तदेहो नमिमो लघु ॥४६॥
 इत्युक्त्वा प्रचलन्नालकेशकुन्तलसंहर्ता^१ । स्फुरत्किरीटभाचक्रौ विलसन्मणिकुण्डली ॥४७॥
 माहेन्द्रकल्पतो देवौ श्रीमन्ती प्रति कोशलाम् । जग्मतुः परमोद्योगौ प्रतिपक्वचिचणौ ॥४८॥
 सामानिकं कृतान्तोऽगाद् वज्रं त्वं द्विषतां बलम् । विमोहय रघुश्रेष्ठं रचितुं तु व्रजाम्यहम् ॥४९॥
 ततो जटायुर्गीर्वाणः कामरूपविवर्षकृत् । सुश्रीरुदारमत्यन्तं परसैन्यममोहयत् ॥५०॥
 आगच्छतामरातीनामयोध्यामीक्षितां पुरः । पुनः प्रदर्शयामास पर्वतं पृष्ठतः पुनः ॥५१॥
 निरस्याऽऽरादधीयांस्तं शत्रुल्लेचवाहिनीम् । आरेभे रोदसौ व्याप्तुमयोध्याभिरनन्तरम् ॥५२॥
 अयोध्वैष विनीतेयमियं सा कोशला पुरी । अहो सर्वमिदं जातं नगरीगहनात्मकम् ॥५३॥
 इति वीष्य महोपृष्ठं खं चायोध्यासमाकुलम् । मानोज्ञत्या विद्युक्तं तद्वाचयापन्नमभूद्बलम् ॥५४॥

आसन कम्पायमान हुए ॥४०॥ जिस विमानमें जटायुका जीव उत्तम देव हुआ था उसी विमानमें कृतान्तवक्त्र भी उसीके समान वैभवका धारी देव हुआ था ॥४१॥ कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवसे कहा कि हे देवराज ! आज इस क्रोधको क्यों प्राप्त हुए हो ? इसके उत्तरमें अवधिज्ञानको जोड़नेवाले जटायुके जीवने कहा कि जब मैं गुध्र पर्यायमें था तब जिसने प्रिय पुत्रके समान मेरा लालन-पालन किया था आज उसके संमुख शत्रुकी बड़ी भारी सेना आ रही है और वह स्वयं भाईके मरणसे शोक-संतप्त है ॥४२-४३॥ तदनन्तर कृतान्तवक्त्रके जीवने भी अवधिज्ञान रूपी लोचनका प्रयोगकर नीचे होनेवाले अत्यधिक दुःखसे दुःखी तथा क्रोधसे देदीप्यमान होते हुए कहा कि मित्र, सच है वह हमारा भी स्नेही स्वामी रहा है । इसके प्रसादसे मैंने पृथिवीतलपर अनेक दुर्दान्त चेष्टाएँ की थीं ॥४४-४५॥ इसने मुझसे कहा भी था कि संकटसे मुझे छुड़ाना । आज वह संकट इसे प्राप्त हुआ है इसलिए आओ शीघ्र ही इसके पास चलो ॥४६॥

इतना कहकर जिनके काले-काले केश तथा कुन्तलोंका समूह हिल रहा था, जिनके मुकुटोंका कान्तिचक्र देदीप्यमान हो रहा था, जिनके मणिमय कुण्डल सुशोभित थे, जो परम उद्योगी थे तथा शत्रुका पक्ष नष्ट करनेमें निपुण थे ऐसे वे दोनों श्रीमान् देव, माहेन्द्र स्वर्गसे अयोध्याकी ओर चले ॥४७-४८॥ कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवसे कहा कि तुम तो जाकर शत्रु सेनाको मोहित करो—उसकी बुद्धि भ्रष्ट करो और मैं रामकी रक्षा करनेके लिए जाता हूँ ॥४९॥ तदनन्तर इच्छानुसार रूपपरिवर्तित करनेवाले बुद्धिमान् जटायुके जीवने शत्रुकी उस बड़ी भारी सेनाको मोहयुक्त कर दिया—भ्रममें डाल दिया ॥५०॥ 'यह अयोध्या दिख रही है' ऐसा सोचकर जो शत्रु उसके समीप आ रहे थे उस देवने मायासे उनके आगे और पीछे बड़े-बड़े पर्वत दिखलाये । तदनन्तर अयोध्याके निकट खड़े होकर उसने शत्रु विद्याधरोंकी समस्त सेनाका निराकरण किया और पृथिवी तथा आकाश दोनोंको अयोध्या नगरियोंसे अविरल व्याप्त करना शुरू किया ॥५१-५२॥ जिससे 'यह अयोध्या है, यह विनीता है, यह कोशलापुरी है, इस तरह वहाँकी समस्तभूमि और आकाश अयोध्या नगरियोंसे तन्मय हो गया ॥५३॥ इस

बभगुश्राधुना केन प्रकारेण स्वजीवितम् । धारयामः परा यत्र काऽप्येषा रामदेवता ॥५५॥
 ईदृशी विक्रिया शक्तिः कुतो विद्याधरद्विषु । किमिदं कृतमस्माभिरनालोचितकारिभिः ॥५६॥
 विरुद्धा अपि हंसस्य^१ खद्योताः किं नु कुर्वते । यस्यामीषुसहस्राप्तं परिजाज्वल्यते जगत् ॥५७॥
 प्रपलायितुकामानामपि नः साम्प्रतं सखे । नास्ति मार्गः सुभीमेऽस्मिन्बले स्तृणाति विष्टपम् ॥५८॥
 महान्न मरणेऽप्यस्ति गुणो जीवन् हि मानवः । कदाचिदेति कल्याणं स्वकर्मपरिपाकतः ॥५९॥
 बुद्बुदा इव यद्यस्मिन्नमीभिः सैनिकोर्मिभिः । आनीताः स्म प्रविध्वंसं किं भवेदजितं ततः ॥६०॥
 इत्यन्योन्यकृताऽऽलापमुद्भूतपृथुवेपथु^२ । विद्याधरबलं सर्वं जातमत्यन्तबिह्वलम् ॥६१॥
 विक्रियाक्रोडनं कृत्वा जटायुरिति पार्थिव । पलायनपथं तेषां दक्षिणं कृपया ददौ ॥६२॥
 प्रस्पन्दमानचित्तास्ते कम्पमानशरीरकाः । भृशं ते खेचरा नेशुः श्येनप्रस्ता द्विजा इव ॥६३॥
 तस्मै विभीषणायाऽग्रे दास्यामो नु किमुत्तरम् । का वा शोभाऽधुनाऽस्माकमत्यन्तोपहतात्मनाम् ॥६४॥
 छायाया दर्शयिष्यामः कथा बक्त्रं स्वदेहिनाम् । कुतो वा धृतिरस्माकं का वा जीवितशोमुषी ॥६५॥
 अवधारेति सन्नीडस्तस्मिन्नजितात्मजः । प्राप्सो विरागमैश्वर्ये विभूतिं वीक्ष्य दैविकीम् ॥६६॥
 समेतरचारुरत्नेन स्निग्धकैश्च सभूमिभिः । रतिवेगमुनेः पार्श्वे विरोषः श्रमणोऽभवत् ॥६७॥
 दृष्ट्वाऽनन्तरदेहांस्तत्रिभुक्तकलुषानृपान् । विद्युत्प्रहरणं देवः समहार्षीत् प्रभीषणः ॥६८॥

प्रकार पृथिवी और आकाश दोनोंको अयोध्याओंसे व्याप्त देखकर शत्रुओंकी वह सेना अभिमानसे रहित हो आपत्तिमें पड़ गई ॥५४॥ सेनाके लोग परस्पर कहने लगे कि जहाँ यह राम नामका कोई अद्भुत देव विद्यमान है वहाँ अब हम अपने प्राण किस तरह धारण करें—जीवित कैसे रहें ? ॥५५॥ विद्याधरोंकी ऋद्धियोंमें ऐसी विक्रिया शक्ति कहाँसे आई ? बिना विचारे काम करनेवाले हमलोगोंने यह क्या किया ? ॥५६॥ जिसकी हजार किरणोंसे व्याप्त हुआ जगत् सब ओरसे देदीप्यमान हो रहा है, बहुतसे जुगनुँ विरुद्ध होकर भी उस सूर्यका क्या कर सकते हैं ? ॥५७॥ जबकि यह भयंकर सेना समस्त जगत्में व्याप्त हो रही है तब हे सखे ! हम भागना भी चाहें तो भी भागनेके लिए मार्ग नहीं है ॥५८॥ मरनेमें कोई बड़ा लाभ नहीं है क्योंकि जीवित रहनेवाला मनुष्य कदाचित् अपने कर्मोंके उदयवशा कल्याणको प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ यदि हम इन सैनिक रूपी तरङ्गोंके द्वारा बबूलोंके समान नाशको भी प्राप्त हो गये तो उससे क्या मिल जायगा ? ॥६०॥ इस प्रकार जो परस्पर वार्तालाप कर रही थी तथा जिसे अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसी वह विद्याधरोंकी समस्त सेना अत्यन्त बिह्वल हो गई ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर जटायुके जीवने इस तरह विक्रिया द्वारा क्रीड़ाकर दयापूर्वक उन विद्याधर शत्रुओंको दक्षिण दिशाकी ओर भागनेका मार्ग दे दिया ॥६२॥ इस प्रकार जिनके चित्त चञ्चल थे तथा जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसे वे सब विद्याधर बाजसे डरे पत्तियोंके समान बड़े वेगसे भागे ॥६३॥

अब आगे विभीषणके लिए क्या उत्तर देंगे ? इस समय जिनकी आत्मा एक दम दीन हो रही है ऐसे हम लोगोंकी क्या शोभा है ? ॥६४॥ हम अपने ही लोगोंकी क्या कान्ति लेकर मुख दिखावेंगे ? हम लोगोंकी धैर्य कहाँ हो सकता है ? अथवा जीवित रहनेकी इच्छा ही हम लोगोंकी कहाँ हो सकती है ? ॥६५॥ ऐसा निश्चय कर उनमें जो इन्द्रजितका पुत्र ब्रजमाली था वह लज्जासे युक्त हो गया । यतश्च वह देवोंका प्रभाव देख चुका था अतः उसे अपने ऐश्वर्यमें वैराग्य उत्पन्न हो गया । फल स्वरूप वह सुन्दके पुत्र चारुरत्न तथा अन्य स्नेही जनकोंके साथ, क्रोध छोड़ रतिवेग नामक मुनिके पास साधु हो गया ॥६६-६७॥ भयभीत करनेके लिए जटायुका

१. सूर्यस्य । 'हंसः पद्म्यात्मसूर्येषु' इत्यमरः । २. वेपथुः म० ।

दध्यानुद्विग्नचित्तः स कृतावधिनियोजनः । अहोऽमी प्रतिबोधाढ्याः संवृत्ताः परमर्षयः ॥६१॥
 दोषांस्तदास्मिन्दासित्वा^३ साधूनां विमलात्मनाम् । महादुःखं परिप्राप्तं तिर्यङ्मु नरकेषु च ॥७०॥
 यस्यानुबन्धमद्यापि^३ सहे शत्रोर्दुरात्मनः । येन स्तोकेन न भ्रान्तः पुनर्दीर्घं भवार्णवम् ॥७१॥
 इति सञ्ज्ञित्य शान्तात्मा स्वं निवेद्य यथाविधि । प्रणम्य भक्तिसम्पन्नः सुधीः साधूनमर्षयत् ॥७२॥
 तथा कृत्वा च साकेतामगाद् यत्र विमोहितः । भ्रातृशोकेन काकुत्स्थः शिशुवत्परिचेष्टते ॥७३॥
 आकल्पान्तरमापन्नं सिञ्चन्तं शुष्कपादपम् । पद्मनाभप्रबोधार्थं कृतान्तं वीष्य साद्रम् ॥७४॥
 जटायुः शीरभासाद्य गोकलेवरयुग्मके । बीजं शिलातले वप्तुमुद्यतः प्राजनं दधत् ॥७५॥
 "कृपीटपूरितां कुम्भीं कृतान्तस्तपुरोऽमथत् । जटायुश्चक्रमारोप्य सिकतां पर्यपीडयत् ॥७६॥
 अन्यानि चार्थहानानि कार्याणि त्रिदशाविमौ । चक्रतुः स तसो गत्वा पप्रच्छेति क्रमान्वितम् ॥७७॥
 परेतं सिञ्चसे मूढ कस्मादेनमनोकहम् । कलेवरं^४ हलं प्राणिं बीजं हारयसे कुतः ॥७८॥
 नीरनिर्मथने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता । बालुकापीडनाद्बाल स्नेहः सञ्जायतेऽथ किम् ॥७९॥
 केवलं श्रम एवात्र फलं नाण्वपि काङ्क्षितम् । लभ्यते किमिदं व्यर्थं समारब्धं विषेष्टितम् ॥८०॥
 ऊचतुस्तौ क्रमेणैतं पृच्छावश्चापि सत्यतः । जीवेन रक्षितामेतां तनुं वहसि किं वृथा ॥८१॥

जीव देव, विद्युत्प्रहार नामक शस्त्र लेकर उन सबको दक्षिणकी ओर खदेड़ रहा था सो उन सब राजाओंको नग्न तथा क्रोधरहित देख उसने अपना विद्युत्प्रहार नामक शस्त्र संकुचित कर लिया ॥६८॥ उद्विग्न चित्तका धारी वह देव अवधिज्ञानका प्रयोगकर विचार करने लगा कि अहो ! ये सब तो प्रतिबोधको प्राप्त हो परम ऋषि हो गये हैं ॥६९॥ उस समय (राजा दण्डककी पर्यायमें) मैंने निर्दोष आत्माके धारी साधुओंको दोष दिया था—घानीमें पिलवाया था सो उसके फल स्वरूप तिर्यङ्मौ और नरकोंमें मैंने बहुत भारी दुःख उठाया है । तथा अब भी उसी दुष्ट शत्रुका संस्कार भोग रहा हूँ परन्तु वह संस्कार इतना थोड़ा रह गया है कि उसके निमित्तसे पुनः दीर्घ संसारमें भ्रमण नहीं करना पड़ेगा ॥७०-७१॥ ऐसा विचारकर उस बुद्धिमान्ने शान्त हो अपने आपका परिचय दिया और भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन मुनियोंसे क्षमा माँगी ॥७२॥

तदनन्तर इतना सब कर, वह अयोध्यामें वहाँ पहुँचा जहाँ भाईके शोकसे मोहित हो राम बालकके समान चेष्टा कर रहे थे ॥७३॥ वहाँ उसने बड़े आदरसे देखा कि कृतान्तवक्त्रका जीव रामको समझानेके लिए वेष बदलकर एक सूखे वृत्तको सींच रहा है ॥७४॥ यह देख जटायुका जीव भी दो मृतक बैलोंके शरीरपर हल रखकर परेना हाथमें लिये शिलातलपर बीज बोनेका उद्यम करने लगा ॥७५॥ कुछ समय बाद कृतान्तवक्त्रका जीव रामके आगे जलसे भरी मटकीको मथने लगा और जटायुका जीव घानीमें बालू डाल पेलने लगा ॥७६॥ इस प्रकार इन्हें आदि लेकर और भी दूसरे-दूसरे निरर्थक कार्य इन दोनों देवोंने रामके आगे किये । तदनन्तर रामने यथाक्रमसे उनके पास जाकर पूछा कि अरे मूर्ख ! इस मृत वृत्तको क्यों सींच रहा है ? मृतक कलेवरपर हल क्यों रक्खे हुए हैं ? पत्थरपर बीज क्यों बरबाद करता है ? पानीके मथनेमें मक्खनकी प्राप्ति कैसे होगी ? और रे बालक ! बालूके पेलनेसे क्या कहीं तेल उत्पन्न होता है ? इन सब कार्योंमें केवल परिश्रम ही हाथ रहता है इच्छित फल तो परमाणु बराबर भी नहीं मिलता फिर यह व्यर्थकी चेष्टा क्यों प्रारम्भ कर रक्खी है ॥७७-८०॥

तदनन्तर क्रमसे उन दोनों देवोंने कहा कि हम भी एक यथार्थ बात आपसे पूछते हैं

१. प्रीतिबोधाढ्याः म० । २. दापित्वा म० । ३. मोह-म० । ४. 'प्राजनं तोदनं तोन्वम्' इत्यमरः ।

५. कृपीट म० । ६. कलेवरं म० ।

लक्ष्मणाङ्गं ततो दोर्भ्यामालिङ्ग्य वरलक्ष्णम् । इदं जगाद् भूदेवः कलुषीभूतमानसः ॥८२॥
 भो भो कुत्सयते कस्माद् सौमित्रिं पुरुषोत्तमम् । भ्रमङ्गलाभिधानस्य किं ते दोषो न विद्यते ॥८३॥
 कृतान्तेन समं यावद् विवादोऽस्येति वर्त्तते । जटायुस्तावदायातो वहश्चरकलेवरम् ॥८४॥
 तं दृष्ट्वाऽभिमुखं रामो बभाषे केन हेतुना । कलेवरमिदं स्कन्धे वहसे मोहसङ्गतः ॥८५॥
 तेनोक्तमनुयुङ्क्षे मां कस्माच्च त्वं विचक्षणः । यतः प्राणनिमेषादिमुक्तं वहसि विग्रहम् ॥८६॥
 बालाग्रमात्रकं दोषं परस्य द्विप्रमीक्षसे । मेरुकूटप्रमाणान् स्वान् कथं दोषाच्च पश्यसि ॥८७॥
 दृष्ट्वा भवन्तमस्माकं परमा प्रीतिरुद्गता । सदृशः सदृशेष्वेव रज्यन्तीति सुभाषितम् ॥८८॥
 सर्वेषामस्मदादीनां यथेप्सितविधायिनाम् । भवान् पूर्वं पिशाचानां त्वं राजा परमेप्सितः ॥८९॥
 उन्मत्तेन्द्रध्वजं दृष्ट्वा भ्रमामः सकलां महीम् । उन्मत्तां प्रवणीकुर्मः समस्तां प्रत्यवस्थिताम् ॥९०॥
 एवमुक्तमनुश्रित्य मोहे शिथिलतां गते । गुरुवाक्यभवं चाऽन्यत् स्मृत्वा ह्रीमानभून्नुपः ॥९१॥
 मुक्तमोहघनव्रातः प्रतिबोधमरीचिभिः । नृपदाज्ञायणीभर्ता राजते परमं तदा ॥९२॥
 घनपङ्क्तिविभुक्तमिव शारदमम्बरम् । विमलं तस्य सञ्जातं मानसं सत्त्वसङ्गतम् ॥९३॥
 स्मृतैरमृतसम्पन्नैर्हृतशोको गुरुदितैः । पुरेष नन्दनस्वास्थ्यं दधानः शुशुभेतराम् ॥९४॥
 अवलम्बितधीरत्वस्तैरेव पुरुषोत्तमः । छायां प्राप यथा मेरुर्जिनाभिषववारिभिः ॥९५॥

कि आप इस जीवरहित शरीरको व्यर्थ ही क्यों धारण कर रहे हैं ? ॥८१॥ तब जिनका मन कलुषित हो रहा था ऐसे श्री रामदेवने उत्तम लक्ष्णोंके धारक लक्ष्मणके शरीरका भुजाओंसे आलिङ्गनकर कहा कि अरे अरे ! तुम पुरुषोत्तम लक्ष्मणकी बुराई क्यों करते हो ? ऐसे अमाङ्गलिक शब्दके कहनेमें क्या तुम्हें दोष नहीं लगता ? ॥८२-८३॥ इस प्रकार जब तक रामका कृतान्तवक्त्रके जीवके साथ उक्त विवाद चल रहा था तब तक जटायुका जीव एक मृतक मनुष्यका शरीर लिये हुए वहाँ आ पहुँचा ॥८४॥ उसे सामने खड़ा देख रामने उससे पूछा कि तू मोह युक्त हुआ इस मृत शरीरको कन्धे पर क्यों रखे हुए है ? ॥८५॥ इसके उत्तरमें जटायुके जीवने कहा कि तुम विद्वान् होकर भी हमसे पूछते हो पर स्वयं अपने आपसे क्यों नहीं पूछते जो श्वासोच्छ्वास तथा नेत्रोंकी टिमकार आदिसे रहित शरीरको धारण कर रहे हो ॥८६॥ दूसरेके तो बालके अग्रभाग बराबर सूक्ष्म दोषको जल्दीसे देख लेते हो पर अपने मेरुके शिखर बराबर बड़े-बड़े दोषोंको भी नहीं देखते हो ? ॥८७॥ आपको देखकर हम लोगोंको बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ क्यों कि यह सूक्ति भी है कि सदृश प्राणी अपने ही सदृश प्राणीमें अनुराग करते हैं ॥८८॥ इच्छानुसार कार्य करनेवाले हम सब पिशाचोंके आप सर्वप्रथम मनोनीत राजा हैं ॥८९॥ हम उन्मत्तोंके राजाकी ध्वजा लेकर समस्त पृथिवीमें घूमते फिरते हैं और उन्मत्त तथा प्रतिकूल खड़ी समस्त पृथिवीको अपने अनुकूल करने जाते हैं ॥९०॥ इस प्रकार देवोंके वचनोंका आलम्बन पाकर रामका मोह शिथिल हो गया और वे गुरुओंके वचनोंका स्मरण कर अपनी मूर्खतापर लज्जित हो उठे ॥९१॥ उस समय जिनका मोहरूपी मेघ-समूहका आवरण दूर हो गया था ऐसे राजा रामचन्द्र रूपी चन्द्रमा प्रतिबोधरूपी किरणोंसे अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥९२॥ उस समय धैर्यगुणसे सहित रामका मन मेघ-रूपी कीचड़से रहित शारद ऋतुके आकाशके समान निर्मल हो गया था ॥९३॥ स्मरणमें आये तथा अमृतसे निर्मितकी तरह मधुर गुरुओंके वचनोंसे जिनका शोक हर लिया गया था ऐसे राम उस समय उस तरह अत्यधिक सुशोभित हुए थे जिस तरह कि पहले पुत्रोंके मिलाप-सम्बन्धी सुखको धारण करते हुए सुशोभित हुए थे ॥९४॥ उस समय उन्हीं गुरुओंके वचनोंसे जिन्होंने धैर्य धारण किया था

'प्रालेयवातसम्पर्कविमुक्ताभोजखण्डवत् । प्रजह्रादे विशुद्धात्मा विमुक्तकलुषाशयः ॥६६॥
 महान्तध्वान्तसम्मूढो भानोः प्राप्त इवोदयम् । महाधुद्विदितो लेभे परमात्मिवेप्सितम् ॥६७॥
 तृषा परमयां प्रस्तो महासर इवागमत् । महौषधमिव प्रापदत्यन्तव्याधिपीडितः ॥६८॥
 यानपात्रमिवासादत्तुं कामो महार्णवम् । उस्पथप्रतिपन्नः सन्मार्गं प्राप्येव नागरः ॥६९॥
 गन्तुमिच्छन्निजं देशं महासार्थमिव श्रिताः^३ । निर्गन्तुं चारकादिच्छोभंनेव सुदृढाऽगला ॥१००॥
 जिनमार्गस्मृतिं प्राप्य पद्मनाभः प्रमोदवान् । अधारयत् परां कान्तिं प्रबुद्धकमलेक्षणः ॥१०१॥
 मन्यमानः स्वमुत्तीर्णमन्ध्रकूपोदरादिव । भवान्तरमिव प्राप्सो मनसीदं समादधे ॥१०२॥
 भहो तृणाप्रसंसक्तजलविन्दुचलाचलम् । मनुष्यजीवितं यद्वृत्तगाम्नाशसुपागतम् ॥१०३॥
 भ्रमताऽत्यन्तकृच्छ्रेण चतुर्गतिभवान्तरे । नृशरीरं मया प्राप्तं कथं मूढोऽत्यन्तार्थकः ॥१०४॥
 कस्येष्टानि कलत्राणि कस्यार्थाः कस्य बान्धवाः । संसारे सुलभं ह्येतद् बोधिरेका सुदुर्लभा ॥१०५॥
 इति ज्ञात्वा प्रबुद्धं तं मायां संहस्य तौ सुरौ । चकतुस्त्रैदशीमृद्धिं लोकविरमयकारिणीम् ॥१०६॥
 अपूर्वः प्रववौ वायुः सुखस्पर्शः सुसौरभः । नभो यानैर्विमानैश्च व्याप्तमत्यन्तसुन्दरैः ॥१०७॥
 गीयमाने सुरस्त्रीभिर्त्रीणानिःस्वनसङ्गतम् । आत्मीयं चरितं रामः शृणोति स्म क्रमस्थितम् ॥१०८॥
 एतस्मिन्नन्तरे देवः कृतान्तोऽमा जटायुषा । रामं पप्रच्छ किं नाथ प्रेरिताः दिवसाः सुखम् ॥१०९॥

ऐसे पुरुषोत्तम राम, जिनेन्द्र भगवान्के जन्माभिषेकके जलसे मेवके समान कान्तिको प्राप्त हुए थे ॥६५॥ जिनकी आत्मा विशुद्ध थी तथा अभिप्राय कलुषतासे रहित था ऐसे राम उस समय तुषारकी वायुसे रहित कमल वनके समान आह्लादसे युक्त थे ॥६६॥ उस समय उन्हें ऐसा हर्ष हो रहा था मानो महान् गाढ़ अन्धकारमें भूला व्यक्ति सूर्यके उदयको प्राप्त होगया हो, अथवा तीव्र लुधासे पीडित व्यक्ति इच्छानुकूल उत्तम भोजनको प्राप्त हुआ हो ॥६७॥ अथवा तीव्र व्याससे प्रस्त मनुष्य किसी महासरोवरको प्राप्त हुआ हो अथवा अत्यधिक रोगसे पीडित मनुष्य महौषधिको प्राप्त होगया हो ॥६८॥ अथवा महासागरको पार करनेके लिए इच्छुक मनुष्यको जहाज मिल गई हो अथवा कुमार्गमें पड़ा नागरिक सुमार्गमें आ गया हो ॥६९॥ अथवा अपने देशको जानेके लिए इच्छुक मनुष्य व्यापारियोंके किसी महासंघमें आ मिला हो अथवा कारागृहसे निकलनेके लिए इच्छुक मनुष्यका मजबूत अर्गल टूट गया हो ॥१००॥ जिन मार्गका स्मरण पाकर राम हर्षसे खिल उठे और फूले हुए कमलके समान नेत्रोंको धारण करते हुए परम कान्तिको धारण करने लगे ॥१०१॥ उन्होंने मनमें ऐसा विचार किया कि जैसे मैं अन्धकूपके मध्यसे निकल कर बाहर आया हूँ अथवा दूसरे ही भवको प्राप्त हुआ हूँ ॥१०२॥ वे विचार करने लगे कि अहो, तृणके अग्रभागपर स्थित जलकी बूदोंके समान चञ्चल यह मनुष्यका जीवन क्षणभरमें नष्ट हो जाता है ॥१०३॥ चतुर्गति रूप संसारके बीच भ्रमण करते हुए मैंने बड़ी कठिनाईसे मनुष्य-शरीर पाया है फिर व्यर्थ ही क्यों मूर्ख बन रहा हूँ ? ॥१०४॥ ये इष्ट स्त्रियाँ किसकी हैं ? ये धन, वैभव किसके हैं ? और ये भाई-बान्धव किसके हैं ? संसारमें ये सब सुलभ हैं परन्तु एक बोधि ही अत्यन्त दुर्लभ है ॥१०५॥

इस प्रकार श्री रामको प्रबुद्ध जान कर उक्त दोनों देवोंने अपनी माया समेट ली तथा लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाली देवोंकी विभूति प्रकट की ॥१०६॥ सुखकर स्पर्शसे सहित तथा सुगन्धिसे भरी हुई अपूर्व वायु बहने लगी और आकाश अत्यन्त सुन्दर वाहनों और विमानोंसे व्याप्त हो गया ॥१०७॥ देवाङ्गनाओं द्वारा वीणाके मधुर शब्दके साथ गाया हुआ अपना क्रम-पूर्ण चरित श्री रामने सुना ॥१०८॥ इसी बीचमें कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवके साथ

एवमुक्त्वा जगौ राजा पृच्छथः किं शिवं मम । तेषां सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागताः ॥११०॥
 भवन्तावस्मि पृच्छामि कौ युवां सौम्यदर्शनौ । केन वा कारणेनेदं कृतमोद्ग्विचेष्टितम् ॥१११॥
 सत्तो जटायुर्वैबोऽनादिति जानासि भूपते । गृध्रोऽरण्ये यदाशिक्ष्ये शमिष्यासि मुनीज्जनात् ॥११२॥
 लालयिष्ये च यत्तत्र भ्रात्रा देव्या सह स्वया । सीता हृता हनिष्ये च रावगेनाऽभियोगकृत् ॥११३॥
 यच्च कर्णेजपः शोकविह्वलेन त्वया प्रभो । दापिष्यते नमस्कारः पञ्चसत्पुरुषाश्रितः ॥११४॥
 सोऽहं भवत्प्रसादेन समारोहं त्रिचिष्टपम् । तथाविधं परित्यज्य दुःखं तिर्यग्भवोद्भवम् ॥११५॥
 सुरसौख्यैर्महोदारैर्मोहितेन मया गुरो । अविज्ञेन हि न ज्ञाता तवासाता गतेयता ॥११६॥
 अवसानेऽधुना देव त्वत्कर्मकृतचेतनः । किञ्चिक्विल प्रतीकारं समनुष्ठातुमागतः ॥११७॥
 ऊचे कृतान्तदेवोऽपि गत्वा किञ्चित् सुवेगताम् । सोऽहं नाथ कृतान्ताख्यः सेनानीरभवं तव ॥११८॥
 स्मर्त्तव्योऽसि त्वया कृच्छ्रे इति बुद्ध्योदितं त्वया । विधातुं तदहं स्वामिन् भवदन्तिकमागतः ॥११९॥
 विलोक्य वैबुधीमृद्धिं भूतभोगचरा जनाः । परमं विस्मयं प्राप्तां बभूवुर्विमलाशयाः ॥१२०॥
 रामो जगद् सेनान्यमप्रमेयं सुरेशिनाम् । उदसीसरतां भद्रौ प्रत्यनीकस्थितात्मनाम् ॥१२१॥
 तौ युवामागतौ नाक्रान्तां प्रबोधयितुं सुरौ । महाप्रभावसम्पन्नावत्यन्तशुद्धमानसौ ॥१२२॥
 इति सम्भाष्य तौ रामो निष्क्रान्तः शोकसङ्कटात् । सरयूरोधसंवृत्या लक्ष्मणं समिधीकरत् ॥१२३॥

मिलकर श्री रामसे पूछा कि हे नाथ ! क्या ये दिन सुखसे व्यतीत हुए ? देवोंके ऐमा पूछनेपर राजा रामचन्द्रने उत्तर दिया कि मेरा सुख क्या पूछते हो ? समस्त सुख तो उन्हींको प्राप्त है जो मुनि पदको प्राप्त हो चुके हैं ॥१०६-११०॥ मैं आपसे पूछता हूँ कि सौम्य दर्शन वाले आप दोनों कौन हैं ? और किस कारण आप लोगोंने ऐसी चेष्टा की ? ॥१११॥ तदनन्तर जटायुके जीव देवने कहा कि हे राजन् ! जानते हैं आप, जब मैं वनमें गीध था और मुनिराजके दर्शनसे शान्तिको प्राप्त हुआ था ॥११२॥ वहाँ आपने भाई लक्ष्मण और देवी—सीताके साथ मेरा लालन-पालन किया था । सीता हरी गई थी और उसमें मैं रुकावट डालनेवाला था अतः रावणके द्वारा मारा गया था ॥११३॥ हे प्रभो ! उस समय शोकसे विह्वल होकर आपने मेरे कानमें पञ्च परमेष्ठियोंसे सम्बन्ध रखने वाला पञ्च नमस्कार मन्त्रका जाप दिलाया था ॥११४॥ मैं वही जटायु, आपके प्रसादसे उस प्रकारके तिर्यञ्च गति सम्बन्धी दुःखका परित्याग कर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ था ॥११५॥ हे गुरो ! देवोंके अत्यन्त उदार महासुखोंसे मोहित होकर मुझ अज्ञानीने नहीं जाना कि आपपर इतनी विपत्ति आई है ॥११६॥ हे देव ! जब आपकी विपत्ति-का अन्त आया तब आपके कर्मोदयने मुझे इस ओर ध्यान दिलाया और कुछ प्रतीकार करनेके लिए आया हूँ ॥११७॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्रका जीव भी कुछ अच्छा-सा वेप धारणकर बोला कि हे नाथ ! मैं आपका कृतान्तवक्त्र सेनापति था ॥११८॥ आपने कहा था कि 'कष्टके समय मेरा स्मरण रखना' सो हे स्वामिन् ! आपका वही आदेश बुद्धिगतकर आपके समीप आया हूँ ॥११९॥ उस समय देवोंकी उस ऋद्धिको देख भोगी मनुष्य परम आर्च्यको प्राप्त होते हुए निर्मलचित्त हो गये ॥१२०॥ तदनन्तर रामने कृतान्तवक्त्र सेनापति तथा देवोंके अधिपति जटायुके जीवोंसे कहा कि अहो भद्र पुरुषो ! तुम दोनों विपत्तिप्रस्त जीवोंका उद्धार करनेवाले हो ॥१२१॥ देखो, महाप्रभावसे सम्पन्न एवं अत्यन्त शुद्ध हृदयके धारक तुम दोनों देव मुझे प्रबुद्ध करनेके लिए स्वर्गसे यहाँ आये ॥१२२॥ इस प्रकार उन दोनोंसे वार्तालाप कर शोकरूपी संकटसे पार हुए रामने सरयू नदीके तटपर लक्ष्मणका दाह संस्कार किया ॥१२३॥

१. मदोदारै-म० । २. ज्ञानेनावधिना शत्वाऽसाताऽऽगतेदृशी म० । ३. देवसम्बन्धिनीं ।

परं बिबुद्धभावश्च विषादपरिवर्जितः । जगद् धर्ममर्यादापालनार्थमिदं वचः ॥१२४॥

उपजातिः

शत्रुघ्न राज्यं कुरु मर्त्यलोके तपोवनं सम्प्रविशाभ्यहं तु ।
 सर्वस्पृहादूरितमानसाऽपि पदं समादाधयितुं जिनानाम् ॥१२५॥
 रागादहं नो खलु भोगलुब्धः मनस्तु निःसङ्गसमाधिराज्ये ।
 समाश्रयिष्यामि तदेव देव त्वया समं नास्ति गतिर्ममान्या ॥१२६॥
 कामोपभोगेषु मनोहरेषु सुहृदेषु सम्बन्धिषु बान्धवेषु ।
 वस्तुष्वभोगेषु च जीवितेषु कस्यास्ति तृप्तिर्नृवे भवेऽस्मिन् ॥१२७॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते लक्ष्मणसंस्कारकरणं कल्याणमित्रदेवामि-
 गमाभिधानं नामाष्टादशोत्तरशतं पर्व ॥१२८॥

तदनन्तर वैराग्यपूर्ण हृदयके धारक विषादरहित रामने धर्म-मर्यादाकी रक्षा करनेवाले निम्नाङ्कित वचन शत्रुघ्नसे कहे ॥१२४॥ उन्होंने कहा कि हे शत्रुघ्न ! तुम मनुष्यलोकका राज्य करो । सब प्रकारकी इच्छाओंसे जिसका मन और आत्मा दूर हो गई है ऐसा मैं मुक्ति पदकी आराधना करनेके लिए तपोवनमें प्रवेश करता हूँ ॥१२५॥ इसके उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा कि देव ! मैं रागके कारण भोगोंमें लुब्ध नहीं हूँ । मेरा मन निर्मन्थ समाधिरूपी राज्यमें लग रहा है इसलिए मैं आपके साथ उसी निर्मन्थ समाधि रूप राज्यको प्राप्त करूँगा । इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति नहीं है ॥१२६॥ हे नरसूर्य ! इस संसारमें मनको हरण करनेवाले कामोपभोगोंमें, मित्रोंमें, सम्बन्धियोंमें, भाई-बान्धवोंमें, अशोच वस्तुओंमें तथा स्वयं अपने आपके जीवनमें किसे तृप्ति हुई है ? ॥१२७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें लक्ष्मणके संस्कारका वर्णन करनेवाला एक सौ अठारहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥१२८॥

एकोनविंशोत्तरशतं पर्व

तत्स्य वचनं श्रुत्वा हितमत्यन्तनिश्चितम् । मनसा क्षणमालोच्य सर्वकर्तव्यदक्षिणम् ॥१॥
 विकीर्णयाऽऽसीनमासन्नमनङ्गलवणात्मजम् । क्षितीरवरपदं तस्मै ददौ स परमर्द्धिकम् ॥२॥
 अनन्तलवणः सोऽपि पितृतुल्यगुणक्रियः । प्रणताऽखिलसामन्तो जातः कुलधुरावहः ॥३॥
 परं प्रतिष्ठितः सोऽयमनुरागप्रतापवान् । धरणीमङ्गलं सर्वमापन्न विजयो यथा ॥४॥
 सुभूषणाय पुत्राय लङ्काराज्यं विभीषणः । सुग्रीवोऽपि निजं राज्यमङ्गदाङ्गभुवे ददौ ॥५॥
 ततो दाशरथी रामः सविषादमिवेक्षितम् । कलत्रमिव चागस्वि^१ राज्यं भरतवज्रहौ ॥६॥
 एकं निःश्रेयसस्याङ्गं देवासुरनमस्कृतम् । साधकैर्मुनिभिर्जुष्टं सममानगुणोदितम् ॥७॥
 जन्ममृत्युपरिग्रस्तः श्लथकर्मकलङ्कभृत् । विधिमार्गं वृणोति स्म मुनिसुव्रतदेशितम् ॥८॥
 बोधिं सम्प्राप्य काकुत्स्थः क्लेशभावविनिर्गतः । अदीपिष्ठाधिकं मेघमजनिःसूतभानुवत् ॥९॥
 अर्हद्दहासनामानं श्रेष्ठिनं द्रष्टुमागतम् । कुशलं सर्वसङ्गस्थं प्रपच्छेह सदैःस्थितः ॥१०॥
 उवाच स महाराज व्यसनेन तवाऽमुना । व्यथनं परमं प्राप्ता यतयोऽपि महीतले ॥११॥
 अवबुध्य विष्वधात्मा किल व्योमचरो मुनिः । सुव्रतो भगवान् प्राप मुनिसुव्रतवंशशृत् ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुघ्नके हितकारी और दृढ़ निश्चयपूर्ण वचन सुनकर राम क्षणभरके लिए विचारमें पड़ गये । तदनन्तर मनसे विचार कर अनङ्गलवणके पुत्रको समीपमें बैठा देख उन्होंने उसीके लिए परम ऋद्धिसे युक्त राज्यपद प्रदान किया ॥१-२॥ जो पिताके समान गुण और क्रियाओंसे युक्त था, तथा जिसे समस्त सामन्त प्रणाम करते थे ऐसा वह अनन्तलवण भी कुलका भार उठानेवाला हुआ ॥३॥ परम प्रतिष्ठाको प्राप्त एवं उत्कट अनुराग और प्रतापको धारण करनेवाले अनन्तलवणने विजय बलभद्रके समान पृथिवीतलके समस्त मङ्गल प्राप्त किये ॥४॥ विभीषणने लंकाका राज्य अपने पुत्र सुभूषणके लिए दिया और सुग्रीवने भी अपना राज्य अङ्गदेके पुत्रके लिए प्रदान किया ॥५॥

तदनन्तर जिस प्रकार पहले भरतने राज्य छोड़ दिया था उसी प्रकार रामने राज्यको विष मिले अन्नके समान अथवा अपराधी स्त्रीके समान देखकर छोड़ दिया ॥६॥ जो जन्म-मरणसे भयभीत थे तथा जो शिथिलीभूत कर्म कलङ्कको धारणकर रहे थे ऐसे श्रीरामने भगवान् मुनि-सुव्रतनाथके द्वारा प्रदर्शित आत्म-कल्याणका एक वही मार्ग चुना जो कि मोक्षका कारण था, सुर-असुरोंके द्वारा नमस्कृत था, साधक मुनियोंके द्वारा सेवित था तथा जिसमें माध्यस्थ्य भाव रूप गुणका उदय होता था ॥७-८॥ बोधिको पाकर क्लेश भावसे निकले राम, मेघ-मण्डलसे निर्गत सूर्यके समान अत्यधिक देदीप्यमान हो रहे थे ॥९॥

अथानन्तर राम सभामें विराजमान थे उसी समय अर्हद्दहास नामका एक सेठ उनके दर्शन करनेके लिए आया था, सो रामने उससे समस्त मुनिसंघकी कुशल पूछी ॥१०॥ सेठने उत्तर दिया कि हे महाराज ! आपके इस कष्टसे पृथिवीतलपर मुनि भी परम व्यथाको प्राप्त हुए हैं ॥११॥ उसी समय मुनिसुव्रत भगवान्की वंश-परम्पराको धारण करनेवाले निर्वन्ध आत्माके धारक, आकाशगामी भगवान् सुव्रत नामक मुनि रामकी दशा जान वहाँ आये ॥१२॥

१. अनङ्गलवणः म० । २. अनुरागं प्रतापवान् म०, क० । ३. धरणीमण्डले सर्वे सावर्थं विजयो यथा म०, क० । ४. धरणीमण्डले सर्वे स्युस्वर्वविजया यथा ज० । ५. सापराधं । ६. सदैःस्थितम् म० ।

इति श्रुत्वा महामोदप्रजातपुलकोद्गमः । विस्तारिलोचनः श्रीमान् समप्रतस्थेऽन्तिकं यतेः ॥१३॥
 भूत्वेचरमहाराजैः सेव्यमानो महोदयः । विजयः स्वर्णकुम्भं वा सुभक्तियुतमागमत् ॥१४॥
 गुणप्रचरनिर्ग्रन्थसहस्रकृतपूजनम् । प्रणनामोपसृत्वैव शिरसा रचिताञ्जलिः ॥१५॥
 इष्ट्वा स तं महात्मानं मुक्तिकारणमुत्तमम् । जज्ञे निमग्नमात्मानममृतस्येव सागरे ॥१६॥
 भविषं महिमानं च परं श्रद्धातिपूरितः । पूर्वं यथा महापद्मः सुव्रतस्यैव योगिनः ॥१७॥
 सर्वादेरार्थितात्मानो विहायश्ररणा अपि । ध्वजतोरणवृत्तार्घसङ्गीत^३र्क्षीर्व्यधुः परम् ॥१८॥
 त्रियामायामतीतायां भास्करेऽभिनिवेदिते । प्रणम्य राघवः साधून् वज्रे निर्ग्रन्थदीक्षणम् ॥१९॥
 विभूतकवचमपस्वकरागद्वेषो यथाविधि । प्रसादान्तव योगीन्द्र विहसु^४महमुन्मनाः ॥२०॥
 अबोधत गणार्थाशः परमं नृप साम्प्रतम् । किमनेन समस्तेन विनाशित्वावसादिना ॥२१॥
 सनातननिराबाधपरातिशयसौख्यदम् । मनीषितं परं युक्तं जिनधर्मं वगाहितुम् ॥२२॥
 पूर्वं प्रभाषिते साधौ विरागो भववस्तुनि । दक्षं प्रदक्षिणं चक्रे मुनेर्मैरौ यथा रविः ॥२३॥
 समुत्पन्नमहाबोधिः महासंवेगकङ्कटः । बद्धकचो महाघृत्वा कर्माणि क्षणोद्यतः ॥२४॥
 आशापाशं समुत्क्षिप्य निर्दग्ध स्नेहपञ्जरम् । भिन्वा^५कलप्रहिरुजीरं मोहदर्पं निहरय च ॥२५॥

मुनि आये हैं यह सुन अत्यधिक हर्षके कारण जिन्हें रोमाञ्च निकल आये थे तथा जिनके नेत्र फूल गये थे ऐसे श्रीराम मुनिके समीप गये ॥१३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिस प्रकार पहले विजय बलभद्र स्वर्ण कुम्भ नामक मुनिराज के समीप गये थे उसी प्रकार भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओंके द्वारा सेवित एवं महाभ्युदयके धारक राम सुभक्तिके साथ सुव्रत मुनिके पास पहुँचे । गुणोंके श्रेष्ठ हजारों निर्ग्रन्थ जिनकी पूजा कर रहे थे ऐसे उन मुनिके पास जाकर रामने हाथ जोड़ शिरसे नमस्कार किया ॥१४-१५॥ मुक्तिके कारणभूत उन उत्तम महात्माके दर्शन कर रामने अपने आपको ऐसा जाना मानो अमृतके सागरमें ही निमग्न होगया होऊँ ॥१६॥ जिस प्रकार पहले महापद्म चक्रवर्तीने मुनिसुव्रत भगवान् की परम महिमा की थी उसी प्रकार श्रद्धासे भरे श्रीमान् रामने उन सुव्रत नामक मुनिराजकी परम महिमा की ॥१७॥ सब प्रकारके आदर करनेमें योग देने वाले विद्याधरोंने भी ध्वजा तोरण अर्घदान तथा संगीत आदिकी उत्कृष्ट व्यवस्था की थी ॥१८॥

तदनन्तर रात व्यतीत होनेपर जब सूर्योदय हो चुका तब रामने मुनियोंको नमस्कार कर निर्ग्रन्थ दीक्षा देनेकी प्रार्थना की ॥१९॥ उन्होंने कहा कि हे योगिराज ! जिसके समस्त पाप दूर होगये हैं तथा राग-द्वेषका परिहार हो चुका है ऐसा मैं आपके प्रसादसे विधिपूर्वक विहार करनेके लिए उत्कण्ठित हूँ ॥२०॥ इसके उत्तरमें मुनिसंघके स्वामीने कहा कि हे राजन् ! तुमने बहुत अच्छा विचार किया, विनाशसे नष्ट हो जाने वाले इस समस्त परिकरसे क्या प्रयोजन है ? ॥२१॥ सनातन, निराबाध तथा उत्तम अतिशयसे युक्त सुखको देने वाले जिनधर्ममें अबगाहन करनेकी जो तुम्हारी भावना है वह बहुत उत्तम है ॥२२॥ मुनिराजके इस प्रकार कहनेपर संसारकी वस्तुओंमें विराग रखनेवाले रामने उन्हें उस प्रकार प्रदक्षिणा दी जिस प्रकार कि सूर्य सुमेरु पर्वतकी देता है ॥२३॥ जिन्हें महाबोधि उत्पन्न हुई थी, जो महासंवेग रूपी कवचको धारण कर रहे थे और जो कमर कसकर बड़े धैर्यके साथ कर्मोंका क्षय करनेके लिए उद्यत हुए थे ऐसे श्री राम आशारूपी पाशको छोड़कर, स्नेहरूपी पिण्डको जलाकर, स्त्री रूपी सांकलको तोड़कर, मोहका घमण्ड चूरकर, और आहार, कुण्डल, मुकुट तथा वस्त्रको

१. विजयनामा प्रथमबलभद्रो यथा स्वर्णकुम्भमुनेः पार्श्वं जगाम तथेति भावः । २. सर्वदार्थितात्मानो म० । ३. संगीताविश्वधुः परम् म०, संगीताच्चिर्व्यधुः परम् ज०, ख० । ४. मुनि-म० । ५. लीशृङ्गलाम् ।

आहारं कुण्डलं मौलिमपनीथाभ्वरं तथा । परमार्थापितस्वान्तस्तनुलग्नमलावलिः ॥२६॥
 स्वेताञ्जसुकुमाराभिरङ्गुलीभिः शिरोरुहान् । निराचकार काकुत्स्थः पर्यङ्कासनमास्थितः ॥२७॥
 राजा सुतरां रामस्यक्ताशेषपरिमहः । सैहिकैयविनिर्मुक्तो हंसमण्डलविभ्रमः ॥२८॥
 शीलतानिलयीभूतो गुप्तो गुप्त्याऽभिरूपया । पञ्चकं समितेः प्राप्तः पञ्चसर्वमतं श्रितः ॥२९॥
 षट्जीवकायरचस्थो दण्डत्रितयसूदनः । सप्तभीतिविनिर्मुक्तः षोडशाङ्गमदादनः ॥३०॥
 श्रीवत्सभूषितोरस्को गुणभूषणमानसः । जातः सुश्रमणः पद्मो मुक्तितत्त्वविधौ इवः ॥३१॥
 अदृष्टविग्रहैर्देवैराजघ्ने सुरदुन्दुभिः । दिव्यप्रसूनवृष्टिश्च विविक्षेर्भक्तितत्परैः ॥३२॥
 निष्क्रामति तदा रामे गृहिभावोरुकलमषात् । चक्रे कल्याणमित्राभ्यां देवाभ्यां परमोत्सवः ॥३३॥
 भूदेवे तत्र निष्क्रान्ते सनुपा भूवियञ्चराः । चिन्तान्तरमिदं जन्मुर्विस्मयव्याप्तमानसाः ॥३४॥
 विभूतिरत्नमीडङ्गं यत्र त्यक्त्वाऽतिदुरस्यजम् । देवैरपि कृतस्वार्थो रामदेवोऽभवन्मुनिः ॥३५॥
 तत्रास्माकं परिस्थाज्यं किमिवास्ति प्रलोभकम् । तिष्ठामः केवलं येन व्रतेच्छाविकलात्मकाः ॥३६॥
 एवमादि परिध्याय कृत्वान्तःपरिदेवनम् । संवेगिनो निराक्रान्ता बहवो गृहबन्धनात् ॥३७॥
 छित्वा रागमयं पाशं निहत्य द्वेषवैरिणम् । सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः शत्रुघ्नः श्रमणोऽभवत् ॥३८॥
 विभीषणोऽथ सुग्रीवो नीलश्चन्द्रनखो नलः । क्रव्यो विराधिताद्याश्च निरीयुः खेचरेश्वराः ॥३९॥
 विद्याभृतां परित्यज्य विद्यां प्राप्ताज्यमीयुषाम् । केषाञ्चिच्चारणा लब्धिर्भूयो जन्माऽभवत्पुनः ॥४०॥

छोड़कर पर्यङ्कासनसे विराजमान होगये । उनका हृदय परमार्थके चिन्तनमें लग रहा था, उनके शरीरपर मलका पुञ्ज लग रहा था, और उन्होंने श्वेत कमलके समान सुकुमार अंगुलियोंके द्वारा शिरके बाल ऊखाड़ कर फेंक दिये थे ॥२४-२७॥ जिनका सब परिग्रह छूट गया था ऐसे राम उस समय राहुके चङ्गुलसे छूटे हुए सूर्यके समान सुरोभित हो रहे थे ॥२८॥ जो शीलव्रतके घर थे, उत्तम गुप्तियोंसे सुरक्षित थे, पञ्च समितियोंको प्राप्त थे और पाँच महाव्रतोंकी सेवा करते थे ॥२९॥ छह कामके जीवोंकी रक्षा करनेमें तत्पर थे, मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति रूप तीन प्रकारके दण्डको नष्ट करने वाले थे, सप्त भयसे रहित थे, आठ प्रकारके मदको नष्ट करने वाले थे ॥३०॥ जिनका चक्षस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे अलङ्कृत था, गुणरूपी आभूषणोंके धारण करनेमें जिनका मन लगा था और जो मुक्तिरूपी तत्त्वके प्राप्त करनेमें सुदृढ़ थे ऐसे राम उत्तम श्रमण होगये ॥३१॥ जिनका शरीर दिख नहीं रहा था ऐसे देवोंने देवदुन्दुभि बजाई, तथा भक्ति प्रकट करनेमें तत्पर पवित्र भावनाके धारक देवोंने दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की ॥३२॥ उस समय श्री रामके गृहस्थावस्था रूपी महापापसे निष्क्रान्त होनेपर कल्याणकारी मित्र— कृतान्तवक्त्र और जटायुके जीवरूप देवोंने महान् उत्सव किया ॥३३॥ वहाँ श्री रामके दीक्षित होनेपर राजाओं सहित समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर आश्चर्यसे चकितचित्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि देवोंने भी जिनका कल्याण किया ऐसे राम देव जहाँ इस प्रकारकी दुस्त्यज विभूतिको छोड़कर मुनि हो गये वहाँ हम लोगोंके पास छोड़नेके योग्य प्रलोभन है ही क्या ? जिसके कारण हम व्रतकी इच्छासे रहित हैं ॥३४-३६॥ इस प्रकार विचारकर तथा हृदयमें अपनी आसक्तिपर दुःख प्रकटकर संवेगसे भरे अनेकों लोग घरके बन्धनसे निकल भागे ॥३७॥

शत्रुघ्न भी रागरूपी पाशको छेदकर, द्वेषरूपी वैरीको नष्टकर तथा समस्त परिग्रहसे निर्मुक्त हो श्रमण हो गया ॥३८॥ तदनन्तर विभीषण, सुग्रीव, नील, चन्द्रनख, नल, क्रव्य तथा विराधित आदि अनेक विद्याधर राजा भी बाहर निकले ॥३९॥ जिन विद्याधरोंने विद्याका परि-

एवं श्रीमति निष्कान्ते रामे जातानि षोडश । श्रमणानां सहस्राणि साधिकानि महीपते ॥४१॥
सप्तविंशसहस्राणि प्रधानवरयोषिताम् । श्रीमतीश्रमणीपार्श्वे बभूवुः परमार्थिकाः ॥४२॥
अथ पद्माभनिर्ग्रन्थो गुरोः प्राप्यानुमोदनम् । एकाकां विहतद्वन्द्वो विहारं प्रतिपन्नवान् ॥४३॥
गिरिगङ्गदेशेषु भीमेषु क्षुब्धचेतसाम् । क्रूरश्चापदशब्देषु रात्रौ वासमसेवत ॥४४॥
गृहीतोत्तमयोगस्य विधिसद्भावसङ्गिनः । तस्यामेवास्य शर्वर्यामवधिज्ञानमुद्गतम् ॥४५॥
आलोकत यथाऽवस्थं रूपि येनाखिलं जगत् । यथा पाणितलन्यस्तं विमलं स्फटिकोपलम् ॥४६॥
ततो विदितमेतेनापरतो लक्ष्मणो यथा । विक्रियां तु मनो नास्य गतं विच्छिन्नबन्धनम् ॥४७॥
समा शतं कुमारत्वे मण्डलित्वे शतत्रयम् । चत्वारिंशच्च विजये यस्य संवत्सरा मताः ॥४८॥
एकादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च । अब्दानां पष्टिरन्या च साम्राज्यं येन सेवितम् ॥४९॥
योऽसौ वर्षसहस्राणि प्राप्य द्वादश भोगिताम् । ऊनानि पञ्चविंशत्या विदुस्त्रिवरं गतः ॥५०॥
देवयोस्तत्र नो दोषः सर्वाकारेण विद्यते । तथा हि प्राप्तकालोऽयं भ्रातृमृत्यवपदेशतः ॥५१॥
अनेकं मम तस्यापि विविधं जन्म तद्रतम् । वसुदत्तादिकं मोहपरायत्तितचेतसः ॥५२॥
एवं सर्वमतिक्रान्तमज्ञासीत् पद्मसंयतः । धैर्यमत्युत्तमं विभ्रद्वतशीलधराधरः ॥५३॥
परया लेश्यया युक्तो गम्भीरो गुणसागरः । बभूव स महाचेताः सिद्धिलक्ष्मीपरायणः ॥५४॥
युष्मानपि वदाम्यस्मिन् सर्वानिह समागतान् । रमध्वं तत्र सन्मार्गे रतो यत्र रघूत्तमः ॥५५॥

त्यागकर दीक्षा धारण की थी उनमेंसे कितने ही लोगोंको पुनः चारणवृद्धि उत्पन्न हो गई थी ॥४०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय रामके दीक्षा लेनेपर कुल अधिक सोलह हजार साधु हुए और सत्ताईस हजार प्रमुख प्रमुख स्त्रियाँ श्रीमती नामक साध्वीके पास आर्थिका हुई ॥४१-४२॥

अथानन्तर गुरुकी आज्ञा पाकर श्रीराम, निर्ग्रन्थ मुनि, सुख-दुःखादिके द्वन्द्वको दूरकर एकाकी विहारको प्राप्त हुए ॥४३॥ वे रात्रिके समय पहाड़ोंकी उन गुफाओंमें निवास करते थे जो चञ्चल चित्त मनुष्योंके लिए भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जहाँ क्रूर हिंसक जन्तुओंके शब्द व्याप्त हो रहे थे ॥४४॥ उत्तम योगके धारक एवं योग्य विधिका पालन करनेवाले उन मुनिको उसी रातमें अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ॥४५॥ उस अवधिज्ञानके प्रभावसे वे समस्त रूपी जगत्को हथेलीपर रखे हुए निर्मल स्फटिकके समान ज्यों-का-त्यों देखने लगे ॥४६॥ उस अवधिज्ञानके द्वारा उन्होंने यह भी जान लिया कि लक्ष्मण परभवमें कहाँ गया परन्तु यतश्च उनका मन सब प्रकारके बन्धन तोड़ चुका था इसलिए विकारको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ वे सोचने लगे कि देखो, जिसके सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, तीन सौ वर्ष मण्डलेश्वर अवस्थामें और चालीस वर्ष दिग्विजयमें व्यतीत हुए ॥४८॥ जिसने ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष तक साम्राज्य पदका सेवन किया ॥४९॥ और जिसने पच्चीस कम बारह हजार वर्ष भोगीपना प्राप्तकर व्यतीत किये वह लक्ष्मण अन्तमें भोगोंसे तृप्त न होकर नीचे गया ॥५०॥ लक्ष्मणके मरणमें उन दोनों देवोंका कोई दोष नहीं है, यथार्थमें भाईकी मृत्युके बहाने उसका वह काल ही आ पहुँचा था ॥५१॥ जिसका चित्त मोहके आधीन था ऐसे मेरे तथा उसके वसुदत्तको आदि लेकर अनेक प्रकारके नाना जन्म साथ-साथ बीत चुके हैं ॥५२॥ इस प्रकार व्रत और शीलके पर्वत तथा उत्तम धैर्यको धारण करनेवाले पद्ममुनिने समस्त बीती बात जान ली ॥५३॥ वे पद्ममुनि उत्तम लेश्यासे युक्त, गम्भीर, गुणोंके सागर, उदार हृदय एवं मुक्ति रूपी लक्ष्मीके प्राप्त करनेमें तत्पर थे ॥५४॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैं यहाँ आये हुए तुम सब लोगोंसे भी कहता हूँ कि तुम लोग

जैने शक्त्या च भक्त्या च शासने सङ्गतपराः । जना विभ्रति लभ्यार्थं जन्म मुक्तिपदान्तिकम् ॥५६॥
 जिनाक्षरमहारत्ननिधानं प्राप्य भो जनाः । कुलिङ्गसमयं सर्वं परित्यजत दुःखदम् ॥५७॥
 कुम्भन्यैर्भोद्वितात्मानः सदम्भकलुषक्रियाः । जात्यन्धा इव गच्छन्ति त्यक्त्वा कल्याणमन्यतः ॥५८॥
 नानोपकरणं दृष्ट्वा साधनं शक्तिवर्जिताः । निर्दोषमिति भाषित्वा गृह्णते सुखराः परे ॥५९॥
 व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते मूढैरन्यैः पुरस्कृताः । प्रखिन्नतनवो भारं वहन्ति भृतका इव ॥६०॥

आर्यागीतिः

ऋषयस्ते खलु येषां परिग्रहे नास्ति याचने वा बुद्धिः ।
 तस्मात्ते निर्ग्रन्थाः साधुगुणैरन्विता बुधैः संसेव्याः ॥६१॥
 श्रुत्वा बलदेवस्य त्यक्त्वा भोगं परं विमुक्तिग्रहणम् ।
 भवत भवभावशिथिला व्यसनरवेस्तापमाप्नुत न पुनर्यत्नात् ॥६२॥
 इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाऽऽचार्यप्रणीते बलदेवनिष्कमस्याभिधानं नाम
 एकोनविंशोत्तरशतं पर्व ॥११६॥

उसी मार्गमें रमण करो जिसमें कि रघूत्तम—राममुनि रमण करते थे ॥११५॥ जिन-शासनमें शक्ति और भक्तिपूर्वक प्रवृत्त रहनेवाले मनुष्य, जिस समस्त प्रयोजनकी प्राप्ति होती है ऐसे मुक्तिपदके निकटवर्ती जन्मको प्राप्त होते हैं ॥११६॥ हे भव्य जनो ! तुम सब जिनवाणी रूपी महारत्नोंके खजानेको पाकर कुलिङ्गियोंके दुःखदायी समस्त शास्त्रोंका परित्याग करो ॥११७॥ जिनकी आत्मा खोटे शास्त्रोंसे मोहित हो रही है तथा जो कपट सहित कलुषित क्रिया करते हैं ऐसे मनुष्य जन्मान्धोंकी तरह कल्याण मार्गको छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं ॥११८॥ कितने ही शक्तिहीन बकवादी मनुष्य नाना उपकरणोंको साधन समझ 'इनके ग्रहणमें दोष नहीं है' ऐसा कहकर उन्हें ग्रहण करते हैं सो वे कुलिङ्गी हैं । मूर्ख मनुष्य उन्हें व्यर्थ ही आगे करते हैं वे खिन्न शरीर होते हुए बोझा ढोनेवालोंके समान भारको धारण करते हैं ॥११९-१२०॥ वास्तवमें ऋषि वे ही हैं जिनकी परिग्रहमें और उसको याचनामें बुद्धि नहीं है । इसलिए उत्तम गुणोंके धारक निर्मल निर्ग्रन्थ साधुओंकी ही विद्वज्जनोंकी सेवा करनी चाहिए । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे भव्य-जनो ! इस तरह बलदेवका चरित सुनकर तथा संसारके कारणभूत समस्त उत्तम भोगोंका त्याग-कर यत्नपूर्वक संसारवर्धक भावोंसे शिथिल होओ जिससे फिर कष्टरूपी सूर्यके संतापको प्राप्त न हो सको ॥११९-१२०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें बलदेवकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला एकसौ उन्नीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११६॥

विंशोत्तरशतं पर्व

एवमादीन् गुणान् राजन् बलदेवस्य योगिनः । धरणोऽप्यक्षमो वक्तुं जिह्वाकोटिविकारगः ॥१॥
उपोष्य द्वादशं सोऽथ धीरो विधिसमन्वितः । नन्दस्थलीं पुरीं भजे पारणार्थं महातपाः ॥२॥
तरुणं तरुणिं दीप्तया द्वितीयमिव भूधरम् । अन्यं दासायणीनाथमगम्यमिव भास्वतः ॥३॥
वीधस्फटिकसंशुद्धदयं पुरुषोत्तमम् । मूर्त्यैव सङ्गतं धर्ममनुरागं त्रिलोक्यगम् ॥४॥
आनन्दमिव सर्वेषां गत्वैकत्वमिव स्थितम् । महाकान्तिप्रवाहेण प्लावयन्तमिव च्छित्तिम् ॥५॥
धवलाम्बोजखण्डानां प्रयन्तमिवाम्बरम् । तं वीथय नगरीलोकः समस्तः क्षोभमागतः ॥६॥
अहो चित्रमहो चित्रं भो भो परयत परयत । अदृष्टवरमीडपमाकारं भुवनातिगम् ॥७॥
अयं कोऽपि महोक्षेति आयातीह सुसुन्दरः । प्रकम्बदोर्युगः श्रीमानपूर्वन्तरमन्दरः ॥८॥
अहो धैर्यमहो सख्यमहो रूपमहो धृतिः । अहो काम्तिरहो शान्तिरहो मुक्तिरहो गतिः ॥९॥
कोऽयमीदृशकुलः कस्मिन् समन्वयेति मनोहरः । युगान्तरदिग्धरन्यस्तशान्तदृष्टिः समाहितः ॥१०॥
उदारपुण्यमेतेन कतरन्मण्डितं कुलम् । कुर्यादनुग्रहं कस्य गृह्णानोऽन्नं सुकर्मणः ॥११॥
सुरेन्द्रसदृशं रूपं कुतोऽत्र भुवने परम् । अक्षोभ्यसत्त्वशैलोऽयं रामः पुरुषसत्तमः ॥१२॥
पतैत चेतसो दृष्टेर्जन्मनः कर्मणो मतेः । कुरुध्वं चरितार्थैवं देहस्य चरितस्य च ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस तरह योगी बलदेवके गुणोंका वर्णन करनेके लिए एक करोड़ जिह्वाओंकी विक्रिया करनेवाला धरणेन्द्र भी समर्थ नहीं है ॥१॥ तदनन्तर पाँच दिनका उपवासकर धीर वीर महातपस्वी योगी राम पारणा करनेके लिए विधिपूर्वक—ईर्यासमितिसे चार हाथ पृथिवी देखते हुए नन्दस्थली नगरीमें गये ॥२॥ वे राम अपनी वीप्तिसे ऐसे जान पड़ते थे मानो तरुण सूर्य ही हों, स्थिरतासे ऐसे लगते थे मानो दूसरा पर्वत ही हों, शान्त स्वभावके कारण ऐसे जान पड़ते थे मानो सूर्यके अगम्य दूसरा चन्द्रमा ही हों, कनका हृदय धवल स्फटिकके समान शुद्ध था, वे पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे, ऐसे जान पड़ते थे मानो मूर्तिधारी धर्म ही हों, अथवा तीन लोकके जीवोंका अनुराग ही हों, अथवा सब जीवोंका आनन्द एकरूपताको प्राप्त होकर स्थिति हुआ हो, वे महाकान्तिके प्रवाहसे पृथिवीको तर कर रहे थे, और आकाशको सफेद कमलोंके समूहसे पूर्ण कर रहे थे । ऐसे श्रीरामको देख नगरीके समस्त लोग क्षोभको प्राप्त हो गये ॥३-६॥ लोग परस्पर कहने लगे कि अहो ! आश्चर्य देखो, अहो आश्चर्य देखो जो पहले कभी देखनेमें नहीं आया ऐसा यह लोकोत्तर आकार देखो ॥७॥ यह कोई अत्यन्त सुन्दर महावृषभ यहाँ आ रहा है, अथवा जिसकी दोनों लम्बी भुजाएँ नीचे लटक रही हैं ऐसा यह कोई अद्भुत मनुष्य रूपी मंदराचल है ॥८॥ अहो, इनका धैर्य धन्य है, सत्त्व-पराक्रम धन्य है, रूप धन्य है, कान्ति धन्य है, शान्ति धन्य है, मुक्ति धन्य है और गति धन्य है ॥९॥ जो एक युग प्रमाण अन्तरपर बड़ी सावधानीसे अपनी शान्तदृष्टि रखता है ऐसा यह कौन मनोहर पुरुष यहाँ कहाँसे आ रहा है ॥१०॥ उदार पुण्यको प्राप्त हुए इसके द्वारा कौनसा कुल मण्डित हुआ है—यह किस कुलका अलंकार है ? और आहार ग्रहणकर किसपर अनुग्रह करता है ? ॥११॥ इस संसारमें इन्द्रके समान ऐसा दूसरा रूप कहाँ हो सकता है ? अरे ! जिनका पराक्रम रूपी पर्वत क्षोभ रहित है ऐसे ये पुरुषोत्तम राम हैं ॥१२॥ आओ आओ

इतिदर्शनसक्तानां पौराणां पुरुविस्मयः । समाकुलः समुत्तस्थौ रमणीयः परं ध्वनिः ॥१४॥
 प्रविष्टे नगरीं रामे यथासमयचेष्टितैः । नारीपुरुषसङ्घातै रथ्याः मार्गाः प्रपूरिताः ॥१५॥
 विचित्रभक्ष्यसम्पूर्णपात्रहस्ताः समुत्सुकाः । प्रवराः प्रमदास्तस्थुः गृहीतकरकाभसः ॥१६॥
 इदं परिकरं बद्ध्वा मनोज्ञजलपूरितम् । आदाय कलशं पूर्णमाजमुर्बह्वो नराः ॥१७॥
 इतः स्वामिजितः स्वामिन् स्थीयतामिह सन्मुने । प्रसादाद्भूयतामत्र विचेरिति सद्गिरः ॥१८॥
 भमाति हृदये हर्षं हृष्टदेहरुहोऽपरे । उत्कृष्टध्वेडितास्फोटसिंहनाशनजीजनन् ॥१९॥
 मुनीन्द्र जय वर्द्धस्व नन्द पुण्यमहीधर । एवं च पुनरुक्ताभिर्वीरिमरापूरितं नभः ॥२०॥
 अमत्रमानय क्षिप्रं स्थालमालोक्य द्रुतम् । जाम्बूनदमयीं पार्श्वीमवलम्बितसाहर ॥२१॥
 चारमानीयतामिक्षुः सजिधीक्रियतां दधि । राजते भाजने भव्ये लघु स्थापय पायसम् ॥२२॥
 शर्करां कर्करां कर्कामरं कुरु कश्पकके । कर्पूरपूरितां क्षिप्रं पूरकापटलं नय ॥२३॥
 रसालां कलशे सारां तरसा विधिवद्धिते । मोदकान् परमोदारान् प्रमोदाद्देहि दक्षिणे ॥२४॥
 एवमादिभिरालापैराकुलैः कुलयोषिताम् । पुरुषाणां च तन्मध्ये पुरमासीत्तदात्मकम् ॥२५॥
 अतिपात्यपि नो कार्यं मन्यते, नार्भका अपि । आलोक्यन्ते तदा तत्र सुमहासम्भ्रमैर्जनैः ॥२६॥
 वेगिभिः पुरुषैः कैश्चिदागच्छद्भिः सुसङ्कटे । पात्यन्ते विशिखामार्गं जना भाजनपाणयः ॥२७॥
 एवमत्युन्नतस्वान्तं कृतसम्भ्रान्तचेष्टितम् । उन्मत्तमिव संवृत्तं नगरं तस्समन्ततः ॥२८॥
 कोलाहलेन लोकस्य यतस्तेन च तेजसा । आलानविपुलस्तम्भान् बभभुः कुक्षरा अपि ॥२९॥

इन्हें देखकर अपने चित्त, दृष्टि, जन्म, कर्म, बुद्धि, शरीर और चरितको सार्थक करो। इस प्रकार श्रीरामके दर्शनमें लगे हुए नगरवासी लोगोंका बहुत भारी आश्चर्यसे भरा सुन्दर कोलाहल-पूर्ण शब्द उठ खड़ा हुआ ॥१३-१४॥

तदनन्तर नगरीमें रामके प्रवेश करते ही समयानुकूल चेष्टा करनेवाले नर-नारियोंके समूहसे नगरके लम्बे-चौड़े मार्ग भर गये ॥१५॥ नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे परिपूर्ण पात्र जिनके हाथमें थे तथा जो जलकी भारी धारण कर रही थी ऐसी उत्सुकतासे भरी अनेक उत्तम क्षियाँ खड़ी हो गईं ॥१६॥ अनेकों मनुष्य पूर्ण तैयारीके साथ मनोज्ञ जलसे भरे पूर्ण कलश ले-लेकर आ पहुँचे ॥१७॥ 'हे स्वामिन! यहाँ आइए, हे स्वामिन! यहाँ ठहरिए, हे मुनिराज! प्रसन्नतापूर्वक यहाँ विराजिए' इत्यादि उत्तमोत्तम शब्द चारों ओर फैल गये ॥१८॥ हृदयमें हर्षके नहीं समानेपर जिनके शरीरमें रोमाञ्च निकल रहे थे ऐसे कितने ही लोग जोर-जोरसे अस्पष्ट सिंहनाद कर रहे थे ॥१९॥ हे मुनीन्द्र! जय हो, हे पुण्यके पर्वत! वृद्धिगत होओ तथा समृद्धिमान् होओ' इस प्रकारके पुनरुक्त वचनोंसे आकाश भर गया था ॥२०॥ 'शीघ्र ही बर्तन लाओ, स्थालको जल्दी देखो, सुवर्णकी थाली जल्दी लाओ, दूध लाओ, गन्ना लाओ, दही पासमें रखो, चाँदीके उत्तम बर्तनमें शीघ्र ही खीर रखो, शीघ्र ही खड़ी शक्कर-मिश्री लाओ, इस बर्तनमें कर्पूरसे सुवासित शीतल जल भरो, शीघ्र ही पूड़ियोंका समूह लाओ, कलशमें शीघ्र ही विधिपूर्वक उत्तम शिखरिणी रखो, अरी, चतुरे! हर्षपूर्वक उत्तम बड़े बड़े लड्डू दे' इत्यादि कुलाङ्गनाओं और पुरुषोंके शब्दोंसे वह नगर तन्मय हो गया ॥२१-२५॥ उस समय उस नगरमें लोग इतने संभ्रममें पड़े हुए थे कि भारी जहरतके कार्यको भी लोभ नहीं मानते थे और न कोई बच्चोंको ही देखते थे ॥२६॥ सकड़ी गलियोंमें बड़े वेगसे आने-वाले कितने ही लोगोंने हाथोंमें बर्तन लेकर खड़े हुए मनुष्य गिरा दिये ॥२७॥ इस प्रकार जिसमें लोगोंके हृदय अत्यन्त उन्नत थे तथा जिसमें हड़बड़ाहटके कारण विरुद्ध चेष्टाएँ की जा रही थीं ऐसा वह नगर सब ओरसे उन्मत्तके समान हो गया था ॥२८॥ लोगोंके उस भारी

तेषां कपोलपालीषु पालिता विपुलाश्विरम् । प्लावयन्तः पयःपूरा गण्डश्रोत्रविनिर्गताः ॥३०॥
 उत्कर्णनेत्रमध्यस्थतारकाः कवलवयजः । उद्ग्रीवा वाजिनस्तस्थुः कृतगम्भीरहेषिताः ॥३१॥
 भाकुलाध्यक्षलोकेन कृतातुगमनाः परे । चक्रुरत्याकुलं लोकं प्रस्तास्त्रुदितधन्धनाः ॥३२॥
 पूर्वविधो जनो यावद्भवद्दानतत्परः । परस्परमहाक्षोभपरिपूरणचञ्चलः ॥३३॥
 तावच्छ्रुत्वा धनं घोरं क्षुब्धसागरसन्मितम् । प्रासादान्तर्गतो राजा प्रतिनन्दीत्यनन्दितः ॥३४॥
 सहसा क्षोभमापन्नः किमेतदिति सत्वरम् । हर्म्यमूर्द्धानमारुहत् परिच्छदसमन्वितः ॥३५॥
 ततः प्रधानसाधुं तं धीष्य लोकविशेषकम् । कलङ्कपङ्कनिर्मुक्तशशाङ्कधवलच्छविम् ॥३६॥
 आज्ञापयद् बहून् वीरान् यथैनं मुनिसत्तमम् । व्यतिपत्य द्रुतं प्रीत्या परिप्रापयतात्र मे ॥३७॥
 यदाज्ञापयति स्वामीत्युक्त्वा प्रमज्जितास्ततः । राजमानवसिंहास्ते समुत्सारितजन्तवः ॥३८॥
 गत्वा व्यज्ञापयन्नेवं मस्तकन्यस्तपाणयः । मुनिं मधुरवाणीकास्तःकान्तिहृतचेतसः ॥३९॥
 भगवन्धीप्सितं वस्तु गृह्णाणेत्यस्मदीश्वरः । विज्ञापयति भक्त्या त्वां सदनं तस्य गम्यताम् ॥४०॥
 अपथ्येन विवर्णेन विरसेन रसेन च । पृथग्जनप्रणोतेन किमनेन तवान्धसा ॥४१॥
 एष्यागच्छ महासाधो प्रसादं कुरु याचितः । अन्नं यथेप्सितं स्वैरमुपभुञ्ज्य निराकुलम् ॥४२॥
 इत्युक्त्वा दातुमुद्युक्ता भिक्षां प्रवरयोधितः । विषण्णचेतसो राजपुरुषैरपसारिताः ॥४३॥
 उपचारप्रकारेण जातं ज्ञात्वान्तरायकम् । राजपौराङ्गतः साधुः सर्वतोऽभूत्पराङ्मुखः ॥४४॥

कोलाहल और तेजके कारण हाथियोंने भी बाँधनेके खम्भे तोड़ डाले ॥२६॥ उनकी कपोल-पालियोंमें जो मदजल अधिक मात्रामें चिरकालसे सुरक्षित था वह गण्डस्थल तथा कानोंके विवरोंसे निकल-निकलकर पृथिवीको तर करने लगा ॥३०॥ जिनके कान खड़े थे, जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ नेत्रोंके मध्यमें स्थित थीं, जिन्होंने घास खाना छोड़ दिया था, और जिनकी गरदन ऊपरकी ओर उठ रही थी ऐसे घोड़े गम्भीर हिनहिनाहट करते हुए भयभीत दशामें खड़े थे ॥३१॥ जिन्होंने भयभीत होकर बन्धन तोड़ दिये थे तथा जिनके पीछे पीछे घबड़घबड़े हुए सईस दौड़ रहे थे ऐसे कितने ही घोड़ोंने मनुष्योंको व्याकुल कर दिया ॥३२॥ इस प्रकार जब तक दान देनेमें तत्पर मनुष्य पारस्परिक महाक्षोभसे चञ्चल हो रहे थे तब तक लुभित सांगरके समान उनका घोर शब्द सुनकर महलके भीतर स्थित प्रतिनन्दी नामका राजा कुल्ल रुष्ट हो सहसा क्षोभको प्राप्त हुआ और 'यह क्या है' इस प्रकार शब्द करता हुआ परिकरके साथ शीघ्र ही महलकी छतपर चढ़ गया ॥३३-३५॥

तदनन्तर महलकी छतसे लोगोंके तिलक और कलंक रूरी पङ्कसे रहित चन्द्रमाके समान धवल कान्तिके धारक उन प्रधान साधुको देखकर राजाने बहुतसे वीरोंको आज्ञा दी कि शीघ्र ही जाकर तथा प्रीतिपूर्वक नमस्कार कर इन उत्तम मुनिराजको यहाँ मेरे पास लेआओ ॥३६-३७॥ 'स्वामी जो आज्ञा करें' इस प्रकार कह कर राजाके प्रधान पुरुष, लोगोंकी भीड़को चीरते हुए उनके पास गये ॥३८॥ और वहाँ जाकर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मधुर वाणीसे युक्त और उनकी कान्तिसे हृत चित्त होते हुए इस प्रकार निवेदन करने लगे कि ॥३९॥ हे भगवन् ! इच्छित वस्तु ग्रहण कीजिए' इस प्रकार हमारे स्वामी भक्तिपूर्वक प्रार्थना करते हैं सो उनके घर पधारिए ॥४०॥ अन्य साधारण मनुष्योंके द्वारा निर्मित अपथ्य, विवर्ण और विरस भोजनसे आपको क्या प्रयोजन है ॥४१॥ हे महासाधो ! आओ प्रसन्नता करो, और इच्छानुसार निराकुलता पूर्वक अभिलषित आहार ग्रहण करो ॥४२॥ ऐसा कहकर भिक्षा देनेके लिए उद्यत उत्तम स्त्रियोंको राजाके सिपाहियोंने दूर हटा दिया जिससे उनके चित्त विषाद युक्त हो गये ॥४३॥ इस तरह उपचारकी विधिसे उत्पन्न हुआ अन्तराय जानकर मुनिराज, राजा

नगर्यास्तत्र निर्याति यथावत्तियत्तात्मनि । पूर्वस्मादपि सञ्जातः सकृद्धोभः परमो जने ॥४५॥

उत्कण्ठाकुलहृदयं कृत्वा लोकं समस्तमस्तसुखः ।

गत्वा श्रमणोऽरण्यं गहनं नक्तं समाचचार प्रतिमाम् ॥४६॥

दृष्ट्वा तथाविधं तं पुरुषरविं चारुचेष्टितं नयनहरम् ।

जाते पुनर्वियोगे तिर्यञ्चोऽप्युत्समामष्टतिमाजगमुः ॥४७॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पुरसंक्षोभाभिधानं नाम विशोत्तरशतं पर्व ॥१२०॥



तथा नगरवासी दोनोंके अन्नसे विमुख होगये ॥४४॥ तदनन्तर अत्यन्त यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करने वाले मुनिराज जब नगरीसे वापिस लौट गये तब लोगोंमें पहलेकी अपेक्षा अत्यधिक क्षोभ होगया ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने इन्द्रिय सम्बन्धी सुखका त्याग कर दिया था ऐसे मुनिराजने समस्त मनुष्योंको उत्कण्ठासे व्याकुलहृदय कर सघन वनमें चले गये और वहाँ उन्होंने रात्रि भरके लिए प्रतिमा योग धारण कर लिया अर्थात् सारी रात कायोत्सर्गसे खड़े रहे ॥४६॥ सुन्दर चेष्टाओंके धारक नेत्रोंको हरण करने वाले तथा पुरुषोंमें सूर्य समान उन जैसे मुनिराजको देखनेके बाद जब पुनः वियोग होता था तब तिर्यञ्च भी अत्यधिक अधीरताको प्राप्त हो जाते थे ॥४७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें नगरके क्षोभका वर्णन करने वाला एकसौ बीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥१२०॥



एकविंशोत्तरशतं पर्व

अथ द्वादशमादाय द्वितीयं मुनिपुङ्गवः । सहिष्णुरितरागभ्यं चकार समवग्रहम् ॥१॥
 अस्मिन् मृगकुलाकीर्णे वने वा मम जायते । भिक्षा तामेव गृह्णामि सन्निवेशं विशामि न ॥२॥
 इति तत्र समारूढे मुनौ घोरमुपग्रहम्^१ । दुष्टारवेन हतो राजा प्रतिनन्दी प्रसूतिनः ॥३॥
 अन्विष्यन्ती जनौघेभ्यो हतिमार्गं समाकुला । स्थूरीवृष्टसमारूढा महिषी प्रभवाह्वया ॥४॥
 किं भवेदिति भूयिष्ठं चिन्तयन्ती त्वरावती । प्रातिष्ठतानुमार्गेण भटचक्रसमन्विता ॥५॥
 हियमाणस्य भूपस्य सरः संवृत्तमन्तरे । तत्र पङ्के यथुर्मग्नः कलत्र इव गेहिकः ॥६॥
 ततः प्राप्ता वरारोहा वीक्ष्य पद्मादिमसरः । किञ्चिस्मिताननाऽत्रोचत्साध्वेश्वरो^२ नृपाव्यधात् ।
 अपाहरिष्यथ नो चेददृश्यत ततः कुतः । सरो नन्दनपुष्याख्यमभिकाङ्क्षितदर्शनम् ॥७॥
 सफलोद्यानयात्राऽथो याता यस्तुमनोहरम् । वनान्तरमिदं दृष्टमासेचनकदर्शनम् ॥८॥
 इति नर्मपरं कृत्वा जल्पितं प्रियसङ्गता । सर्वाजनावृता तस्थौ सरसस्तस्य^३ रोधसि ॥९॥
 प्रकील्य विमले तोये विधाय कुसुमोच्चयम् । परस्परमलंकृत्य दम्पती भोजने स्थितौ ॥१०॥
 एतस्मिन्नन्तरे साधुरुपवासविधिं गतः । तयोः सन्निधिमार्गीदत् क्रियामार्गविशारदः ॥११॥
 तं समीक्ष्य समुद्रभूतप्रमदः पुलकान्वितः । अभ्युत्तस्थौ सपत्नोको राजा परमसम्भ्रमः ॥१२॥

अथानन्तर कष्ट सहन करने वाले, मुनिश्रेष्ठ श्री रामने पाँच दिनका दूसरा उपवास लेकर यह अवग्रह किया कि मृग समूहसे भरे हुए इस वनमें मुझे जो भिक्षा प्राप्त होगी उसे ही मैं ग्रहण करूँगा—भिक्षाके लिए नगरमें प्रवेश नहीं करूँगा ॥१-२॥ इस प्रकार कठिन अवग्रह लेकर जब मुनिराज वनमें विराजमान थे तब एक प्रतिनन्दी नामका राजा दुष्ट घोड़ेके द्वारा हरा गया ॥३॥ तदनन्तर उसकी प्रभवा नामकी रानी शोकातुर हो मनुष्योंके समूहसे हरणका मार्ग खोजती हुई घोड़ेपर चढ़कर निकली । अनेक योधाओंका समूह उसके साथ था । 'क्या होगा ? कैसे राजाका पता चलेगा ?' इस प्रकार अत्यधिक चिन्ता करती हुई वह बड़े वेगसे उसी मार्गसे निकली ॥४-५॥ हरे जानेवाले राजाके बीचमें एक तालाब पड़ा सो वह दुष्ट अश्व उस तालाबकी कीचड़में उस तरह फँस गया जिस तरह कि गृहस्थ स्त्रीमें फँस रहता है ॥६॥ तदनन्तर सुन्दरी रानी, वहाँ पहुँचकर और कमल आदिसे युक्त सरोवरको देखकर कुछ मुसकराती हुई बोली कि राजन् ! घोड़ाने अच्छा ही किया ॥७॥ यदि आप इस घोड़ेके द्वारा नहीं हरे जाते तो नन्दन वन जैसे पुष्पोंसे सहित यह सुन्दर सरोवर कहाँ पाते ? इसके उत्तर में राजाने कहा कि हाँ यह उद्यान-यात्रा आज सफल हुई जब कि जिसके देखनेसे तृप्ति नहीं होती ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनके मध्य तुम आ पहुँची ॥८-९॥ इस प्रकार हास्यपूर्ण वार्ता-कर पतिके साथ मिली रानी, सखियोंसे आवृत हो उसी सरोवरके किनारे ठहर गई ॥१०॥

तदनन्तर निर्मल जलमें क्रीडा कर, फूल तोड़कर तथा परस्पर एक दूसरेको अलंकृत कर जब दोनों दम्पति भोजन करनेके लिए बैठे तब इसी बीचमें उपवासकी समाप्तिको प्राप्त एवं साधुकी क्रियामें निपुण मुनिराज राम, उनके समीप आये ॥११-१२॥ उन्हें देख जिसे हर्ष उत्पन्न हुआ था, तथा रोमाञ्च उठ आये थे ऐसा राजा रानीके साथ धबड़ा कर उठकर

१. मुपग्रहे म०, ज० । २. साध्वेश्वरो नृपाविधत् म० । साध्वेश्वरो नृपाविधत् ज० ।

३. रोधिता म० ।

प्रणम्य स्थीयतामत्र भगवन्निति शब्दवान् । संशोध्य भूतलं चक्रे कमलादिभिरर्चितम् ॥१४॥
 सुगन्धिजलसम्पूर्णं पात्रमुद्धृत्य भामिनी । देवी वारि ददौ राजा पादावघालयन्मुनेः ॥१५॥
 शुचिश्रामोदसर्वाङ्गस्ततो राजा महादरः । क्षैरेयादिकमाहारं सद्गन्धरसदर्शनम् ॥१६॥
 हेमपात्रगतं कृत्वा श्रद्धया परयान्वितः । श्राद्धं स्म परिवेवेष्टि पात्रे परममुत्तमे ॥१७॥
 ततोऽन्नं दीयमानं तद्वृद्धिमेरयभिभाजनम् । सुदानकारणादाद्रमनोरथगुणोपमम् ॥१८॥
 तुष्ट्यादिभिर्गुणैर्युक्तं ज्ञात्वा दातारमुत्तमम् । प्रहृष्टमनसो देवा विहायस्यभ्यनन्दयन् ॥१९॥
 अनुकूलो चक्रौ वायुः पञ्चवर्णां सुसौरभाम् । पुष्पवृष्टिममुञ्चन्त प्रमथाः प्रमदान्विताः ॥२०॥
 चित्रश्रोत्रहरो जज्ञे पुष्करे दुन्दुभिस्वनः । अप्सरोगणसङ्गीतप्रवरध्वनिसङ्गतः ॥२१॥
 तुष्ट्याः कन्दर्पिणो देवाः कृतानेकविधस्वनाः । चकार बहुलं व्योम्नि ननृतुश्च समाकुलम् ॥२२॥
 अहो दानमहो दानमहो पात्रमहो विधिः । अहो देयमहो दाता साधु साधु परं कृतम् ॥२३॥
 वर्द्धस्व जय नन्देतिप्रभृतिः परमाकुलः । विहायोमण्डपव्यापां निःस्वनञ्चैदशोऽभवत् ॥२४॥
 नानारत्नसुवर्णादिपरमद्रविणात्मिका । पपात वसुधारा च छोसयन्ती दिशो दश ॥२५॥
 पूजामवाप्य देवैभ्यो मुनेर्देशव्रतानि च । विशुद्धदर्शनो राजा पृथिव्यामाप गौरवम् ॥२६॥

एवं सुदानं विनियोज्य पात्रे भक्तिप्रणम्यो नृपतिः सजानिः^२ ।

वहन्नितान्तं परमं प्रमोदं मनुष्यजन्माऽऽसफलं विवेद ॥२७॥

खड़ा होगया ॥१३॥ उसने प्रणाम कर कहा कि हे भगवन् ! खड़े रहिए, तदनन्तर पृथिवीतलको शुद्ध कर उसे कमल आदिसे पूजित किया ॥१४॥ रानीने सुगन्धित जलसे भरा पात्र उठाकर जल दिया और राजाने मुनिके पैर धोये ॥१५॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर हर्षसे युक्त था ऐसे उज्वल राजाने बड़े आदरके साथ उत्तम गन्ध रस और रूपसे युक्त खीर आदिक आहार सुवर्ण पात्रमें रक्खा और उसके बाद उत्कृष्ट श्रद्धामे सहित हो वह उत्तम आहार उत्तम पात्र अर्थात् मुनिराजको समर्पित किया ॥१६-१७॥ तदनन्तर जिस प्रकार दयालु मनुष्यका दान देनेका मनोरथ बढ़ता जाता है उसी प्रकार मुनिके लिए दिया जाने वाला अन्न उत्तम दानके कारण वर्तनमें वृद्धिको प्राप्त होगया था । भावार्थ—श्री राम मुनि अक्षीणश्रद्धिके धारक थे इसलिए उन्हें जो अन्न दिया गया था वह अपने वर्तनमें अक्षीण हो गया था ॥१८॥ दाताको श्रद्धा तुष्टि भक्ति आदि गुणोंसे युक्त उत्तम दाता जानकर देवोंने प्रसन्नचित्त हो आकाशमें उसका अभिनन्दन किया अर्थात् पञ्चाश्चर्य किये ॥१९॥ अनुकूल—शीतल मन्द सुगन्धित वायु चली, देवोंने हर्षित हो पाँच वर्णकी सुगन्धित पुष्पवृष्टि की, आकाशमें कानोंको हरने वाला नाना प्रकारका दुन्दुभि नाद हुआ, अप्सराओंके संगीतकी उत्तम ध्वनि उस दुन्दुभिनादके साथ मिली हुई थी, संतोषसे युक्त कन्दर्प जातिके देवोंने अनेक प्रकारके शब्द किये तथा आकाशमें नानारस पूर्ण अनेक प्रकारका नृत्य किया ॥२०-२२॥ अहो दान, अहो पात्र, अहो विधि, अहो देव, अहो दाता तथा धन्य धन्य आदि शब्द आकाशमें किये गये ॥२३॥ बढ़ते रहो, जय हो, तथा समृद्धिमान् होओ आदि देवोंके विशाल शब्द आकाशरूपी मण्डपमें व्याप्त होगये ॥२४॥ इनके सिवाय नाना प्रकारके रत्न तथा सुवर्णादि उत्तम द्रव्योंसे युक्त धनकी वृष्टि दशों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई पड़ी ॥२५॥ विशुद्ध सम्भ्यदर्शनका धारक राजा प्रतिनन्दी देवोंसे पूजा तथा मुनिसे देशव्रत प्राप्त कर पृथिवीमें गौरवको प्राप्त हुआ ॥२६॥ इस प्रकार भक्तिसे नम्रीमूत भार्या सहित राजाने सुपात्रके लिए दान देकर अत्यधिक हर्षका

रामोऽपि कृत्वा समयोदितार्थं विवक्तशय्यासनमध्यवर्ती ।
तपोऽतिदीप्तो विजहार युक्तं महीं रविः प्राप्त इव द्वितीयः ॥२८॥

इत्यार्षे । श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे दानप्रसङ्गाभिधानं नामैकविंशोत्तरशतं पर्व ॥१२१॥



अनुभव किया और मनुष्य जन्मको सफल माना ॥२७॥ इधर श्री रामने भी आग्राममें कहे अनुसार प्रवृत्ति कर, एकान्त स्थानमें शयनासन किया तथा तपसे अत्यन्त देदीप्यमान हो पृथिवीपर उस तरह योग्य विहार किया कि जिस तरह मानो दूसरा सूर्य ही पृथिवीपर आ पहुँचा हो ॥२८॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें श्रीरामके आहार दानका वर्णन करने वाला एकसौ इक्कीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२१॥



द्वाविंशत्युत्तरशतं पर्व

भगवान् बलदेवोऽसौ प्रशान्तरतिमत्सरः । अत्युन्नतं तपश्चक्रे सामान्यजनदुःखहम् ॥१॥
 अष्टम्याद्युपवासस्थः स्वमध्यस्थे विरोचने । पर्युपास्यत गोपाद्यैररण्ये गोचरं भ्रमन् ॥२॥
 व्रतगुप्तिसमिःयाद्यसमयज्ञो जितेन्द्रियः । साधुवाससत्यसम्पन्नः स्वाध्यायनिरतः सुकृत् ॥३॥
 लब्धानेकमहालब्धिरपि निर्विक्रियः परः । परीषद्भटं मोहं पराजेतुं समुद्यतः ॥४॥
 तपोऽनुभावतः शान्तैर्व्याघ्रैः सिंहैश्च वीक्षितः । विस्तारिलोचनोद्ग्रीवैर्मृगाणां च कदम्बकैः ॥५॥
 निःश्रेयसगतस्वान्तः स्पृहासक्तिविवर्जितः । प्रयत्नपरमं मार्गं विजहार वनान्तरे ॥६॥
 शिलातलस्थितो जातु पर्यङ्कासनसंस्थितः । ध्यानान्तरं विवेशासौ भानुर्मेघान्तरं यथा ॥७॥
 मनोज्ञे क्वचिदुद्देशे प्रलम्बितमहाभुजः । अस्थान्मन्दरनिष्कम्पचित्ताः प्रतिमया प्रभुः ॥८॥
 युगान्तर्बन्धनः श्रीमान् प्रशान्तो विहरन् क्वचित् । वनस्पतिनिवासाभिः सुरर्क्षाभिरपूज्यत ॥९॥
 एवं निरुपमात्मासौ तपश्चक्रे तथाविधम् । कालेऽस्मिन् दुःषमे शक्यं ध्यातुमप्यपरैर्नयत् ॥१०॥
 तप्तोऽसौ विहरन् साधुः प्राप्तः कोटिशिलां क्रमात् । नमस्कृत्योद्धृता पूर्व भुजाभ्यां लक्ष्मणेन या ॥११॥
 महात्मा तां समारूढ प्रच्छिन्नस्नेहबन्धनः । तस्थौ प्रतिमया रात्रौ कर्मक्षपणकोविदः ॥१२॥

अथानन्तर जिनके राग-द्वेष शान्त हो चुके थे ऐसे श्री भगवान् बलदेवने सामान्य मनुष्यों के लिए अशक्य अत्यन्त कठिन तप किया ॥१॥ जब सूर्य आकाशके मध्यमें चमकता था तब तेल आदिका उपवास धारण करनेवाले राम वनमें आहारार्थ भ्रमण करते थे और गोपाल आदि उनकी उपासना करते थे ॥२॥ वे व्रत गुप्ति समिति आदिके प्ररूपक शास्त्रोंके जाननेवाले थे, जितेन्द्रिय थे, साधुओंके साथ स्नेह करनेवाले थे, स्वाध्यायमें तत्पर थे, अनेक उत्तम कार्योंके विधायक थे, अनेक महाऋद्धियों प्राप्त होनेपर भी निर्विकार थे, अत्यन्त श्रेष्ठ थे, परीषद् रूपी योद्धा तथा मोहको जीतनेके लिए उद्यत रहते थे, तपके प्रभावसे व्याघ्र और सिंह शान्त होकर उनकी ओर देखते थे, जिनके नेत्र हर्षसे विस्तृत थे तथा जिन्होंने अपनी गरदन ऊपरकी ओर उठा ली थी ऐसे मृगोंके झुण्ड बड़े प्रेमसे उन्हें देखते थे, उनका चित्त मोक्षमें लग रहा था, तथा जो इच्छा और आसक्तिसे रहित थे । इस प्रकार उत्तम गुणोंको धारण करनेवाले भगवान् राम वनके मध्य बड़े प्रयत्नसे—ईर्ष्यासमितिपूर्वक मार्गमें विहार करते थे ॥३-६॥ कभी शिलातल-पर खड़े होकर अथवा पर्यङ्कासनसे विराजमान होकर उस तरह ध्यानके भीतर प्रवेश करते थे जिस तरह कि सूर्य मेघोंके भीतर प्रवेश करता है ॥७॥ वे प्रभु कभी किसी सुन्दर स्थानमें दोनों भुजाएँ नीचे लटककर मेरुके समान निष्कम्पचित्त हो प्रतिमायोगसे विराजमान होते थे ॥८॥ कहीं अत्यन्त शान्त एवं वैराग्य रूपी लक्ष्मीसे युक्त राम जूड़ा प्रमाण भूमिको देखते हुए विहार करते थे और वनस्पतियोंपर निवास करनेवाली देवाङ्गनाएँ उनकी पूजा करती थीं ॥९॥ इस प्रकार अनुपम आत्माके धारक महामुनि रामने जो उस प्रकार कठिन तप किया था, इस दुःषम नामक पञ्चम कालमें अन्य मनुष्य उसका ध्यान नहीं कर सकते हैं ॥१०॥ तदनन्तर विहार करते हुए राम क्रम-क्रमसे उस कोटिशिलापर पहुँचे जिसे पहले लक्ष्मणने नमस्कारकर अपनी भुजाओंसे उठाया था ॥११॥ जिन्होंने स्नेहका बन्धन तोड़ दिया था तथा जो कर्मोंका क्षय करनेके लिए उद्यत थे ऐसे महात्मा श्री राम उस शिलापर आरूढ़ हो रात्रिके समय प्रतिमा-योगसे विराजमान हुए ॥१२॥

१. अष्टम्याद्युप-म० । २. स्वमध्यस्थे म० । ३. प्राप्त-म० ।

अथासावच्युतेन्द्रेण प्रयुक्तावधिचक्षुषा । उदारस्नेहयुक्तेन सीतापूर्वेण वीक्षितः ॥१३॥
 आत्मनो भवसंवर्त्त संस्मृत्य च यथाक्रमम् । जिनशासनमार्गस्य प्रभवं च महोत्तमम् ॥१४॥
 दध्यौ सोऽयं नरार्थीशो रामो भुवनभूषणः । योऽभवन्मानुषे लोके स्त्रीभृतायाः पतिर्मम ॥१५॥
 परय कर्मविचित्रत्वान्मानसस्य विचेष्टितम् । अन्यथाकाङ्क्षितं पूर्वमन्यथा काङ्क्षयतेऽधुना ॥१६॥
 कर्मणः पश्यताधानं ही शुभाशुभयोः पृथक् । विचित्रं जन्म लोकस्य यत्साक्षादिदमीष्यते ॥१७॥
 जगतो विस्मयकरौ सीरिचक्रायुधाविमौ । जातावृक्ष्णाधरस्थानभाजाबुचितकर्मतः ॥१८॥
 एकः प्रक्षीणसंसारो ज्येष्ठश्रमदेहधृक् । द्वितीयः पूर्णसंसारो निरये दुःखितोऽभवत् ॥१९॥
 विषयैरवितृप्तारामा लक्ष्मणो दिव्यमानुषैः । अधोलोकमनुप्राप्तः कृतपापोऽभिमानतः ॥२०॥
 राजीवलोचनः श्रीमानेषोऽसौ लाङ्गलायुधः । विप्रयोगेन सौमित्रेरुपेतः शरणं जिने ॥२१॥
 बहिः शत्रून् पराजित्य हलस्नेन सुन्दरः । इन्द्रियाप्यधुना जेतुमुद्यतो ध्यानशक्तितः ॥२२॥
 तदस्थ क्षपश्रेणिमारूढस्य करोमि यत् । इह येन वयस्यो मे ध्यानभ्रष्टोऽभिजायते ॥२३॥
 ततोऽनेन सह प्रीत्या महामैत्रीसमुत्थया । मेरुं नन्दीश्वरं त्रासिपि सुखं यास्यामि शोभया ॥२४॥
 विमानशिखरारूढौ विभूरया परयाऽन्वितौ । अन्योन्यं वेदयिष्यावो दुःखानि च सुखानि च ॥२५॥
 सौमित्रिमधरप्राप्तमानेतुं प्रतिबुद्धताम् । सह तेनागमिष्यामि रामेणः क्लिष्टकर्मणा ॥२६॥
 इदमन्यच्च सञ्चिष्य सीतादेवः स्वयंप्रभः । सौधर्मकत्वमन्येन समागादाङ्गणच्युतात् ॥२७॥

अथानन्तर जिसने अवधिज्ञान रूपी नेत्रका प्रयोग किया था तथा जो अत्यधिक स्नेहसे युक्त था ऐसे सीताके पूर्व जीव अच्युत स्वर्गके प्रतीन्द्रने उन्हें देखा ॥१३॥ उसी समय उसने अपने पूर्व भव तथा जिन शासनके महोत्तम माहात्म्यको क्रमसे स्मरण किया ॥१४॥ स्मरण करते ही उसे ध्यान आ गया कि ये संसारके आभूषण स्वरूप वे राजा राम हैं जो मनुष्य लोकमें जब मैं सीता थी तब मेरे पति थे ॥१५॥ वह प्रतीन्द्र विचार करने लगा कि अहो कर्मोंकी विचित्रतासे होनेवाली मनकी विविध चेष्टाको देखो जो पहले अन्य प्रकारकी इच्छा थी और अब अन्य प्रकारकी इच्छा हो रही है ॥१६॥ अहो ! कार्योंकी शुभ अशुभ कर्मोंमें जो पृथक् पृथक् प्रवृत्ति है उसे देखो । लोगोंका जन्म विचित्र है जो कि यह साक्षात् ही दिखाई देता है ॥१७॥ ये बलभद्र और नारायण जगत्को आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले थे पर अपने-अपने योग्य कर्मोंके प्रभावसे ऊर्ध्व तथा अधःस्थान प्राप्त करनेवाले हुए अर्थात् एक लोकके ऊर्ध्व भागमें विराजमान होंगे और एक अधोलोकमें उत्पन्न हुआ ॥१८॥ इनमें एक बड़ा तो क्षीण संसारी तथा चरम शरीरी है और दूसरा छोटो—लक्ष्मण, पूर्ण संसारी नरकमें दुःखी हो रहा है ॥१९॥ दिव्य तथा मनुष्य सम्बन्धी भोगोंसे जिसकी आत्मा तृप्त नहीं हुई ऐसा लक्ष्मण पापकर अभिमानके कारण नरकमें दुःखी हो रहा है ॥२०॥ यह कमललोचन श्रीमान् बलभद्र, लक्ष्मणके वियोगसे जिनेन्द्र भगवान्की शरणमें आया है ॥२१॥ यह सुन्दर, पहले हलरत्नसे बाह्य शत्रुओंको पराजित कर अब ध्यानकी शक्तिसे इन्द्रियोंको जीतनेके लिए उद्यत हुआ है ॥२२॥ इस समय यह क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ है इसलिए मैं ऐसा काम करता हूँ कि जिससे यह मेरा मित्र ध्यानसे भ्रष्ट हो जाय ॥२३॥ [और मौज न जाकर स्वर्गमें ही उत्पन्न हो] तब महामित्रतासे उत्पन्न प्रीतिके कारण इसके साथ सुखपूर्वक मेरुपर्वत और नन्दीश्वर द्वीपको जाऊँगा उस समयकी शोभा ही निराली होगी । विमानके शिखरपर आरूढ़ तथा परम विभूतिके सहित हम दोनों एक दूसरेके लिए अपने दुःख और सुख बतलावेंगे ॥२४-२५॥ फिर अधोलोकमें पहुँचे हुए लक्ष्मणको प्रतिबुद्धता प्राप्त करानेके लिए शुभकार्यके करनेवाले उन्हीं रामके साथ जाऊँगा ॥२६॥ यह तथा इसी

तत्रावतरति स्कीतं तन्महां नन्दनायते । वनं यत्र स्थितः साधुर्ध्यानयोगेन रावव ॥२८॥
 बहुपुष्परजोवाही बवौ वायुः सुखावहः । कोलाहलरवो रम्यः पक्षिणां सर्वतोऽभवत् ॥२९॥
 प्रबलं चञ्चरीकाणां चञ्चलं बकुले कुलम् । प्रद्युष्टं परपुष्टानां पुष्टं जुष्टं कदम्बकैः ॥३०॥
 रुद्रवुः सारिकाश्चारुनानास्वरविशारदाः । चिक्रीडुर्विशदस्वानाः शुकाः सम्प्राप्तकिशुकाः ॥३१॥
 मञ्जर्याः सहकाराणां विरेजुर्भ्रमरान्विताः । तीरका इव संशाता नूतनाश्चित्तजन्मनः ॥३२॥
 कुसुमैः कर्णिकाराणामरण्यं पिञ्जरीकृतम् । पीतपिष्टातकेनेव कर्तुं क्रीडनमुद्यतम् ॥३३॥
 अनपेक्षितगण्डूषमदिरानेकदौहदः । ववृषे बकुलः प्रावृट् नभोभवकुलैरिव ॥३४॥
 जानकीवेषमास्थाय कामरूपः सुरोत्तमः । समीपं रामदेवस्य मन्थरं गन्तुमुद्यतः ॥३५॥
 मनोऽभिरमणे तस्मिन् वने जनविवर्जिते । विचित्रपादपद्माते सर्वतुंकुसुमाकुले ॥३६॥
 सीता किल महाभागा पर्यटन्ती सुखं वनम् । अकस्मादग्रतः साधोः सुन्दरी समदृश्यत ॥३७॥
 अवोचत च दृष्टोऽसि कथञ्चिदपि रावव । भ्रमन्त्या विष्टपं सर्वं मया पुण्येन भूरिणा ॥३८॥
 विप्रयोगोर्मिसङ्कीर्णं स्नेहमन्दाकिनीहृदे । प्रासां सुवदनां नाथ मां सन्धारय सामग्रतम् ॥३९॥
 विचेष्टितैः सुमिष्टोक्तैर्ज्ञात्वा मुनिमकम्पनम् । मोहपापार्जितस्वान्ता पुरःपाश्वीनुवत्तिनी ॥४०॥
 मनोभवज्वरग्रस्ता वेपमानशरीरिका । स्फुरितारुणतुङ्गौष्ठी जगादैवं मनोरमा ॥४१॥
 अहं देवासमीध्येव तदा पण्डितमानिनी । दीक्षिता त्वां परित्यज्य विहरामि तपस्विनी ॥४२॥

प्रकारका अन्य विचारकर सीताका जीव स्वयंप्रभ देव, अन्य देवोंके साथ आरुणाच्युत कल्पसे उतरकर सौधर्म कल्पमें आया ॥२७॥ तदनन्तर सौधर्म कल्पसे चलकर वह पृथिवीके उस विस्तृत वनमें उतरा जो कि नन्दन वनके समान जान पड़ता था और जहाँ महामुनि रामचन्द्र ध्यान लगाकर विराजमान थे ॥२८॥ उस वनमें अनेक फूलोंकी परागको धारण करनेवाली सुखदायक वायु बह रही थी और सब ओर पक्षियोंका मनोहर कल-कल शब्द हो रहा था ॥२९॥ बकुल वृक्षके ऊपर भ्रमरोंका समूह चञ्चल हो रहा था तथा कोकिलाओंके समूह जोरदार मधुर शब्द कर रहे थे ॥३०॥ नाना प्रकारके सुन्दर शब्द प्रकट करनेमें निपुण मैनाएँ मनोहर शब्द कर रही थीं और पलाश वृक्षोंपर बैठे शुक स्पष्ट शब्दोंका उच्चारण करते हुए क्रीड़ा कर रहे थे ॥३१॥ भ्रमरोंसे सहित आमोंकी मञ्जरियों कामदेवके नूतन तीक्ष्ण वाणोंके समान जान पड़ती थीं ॥३२॥ कनेरके फूलोंसे पीला-पीला दिखनेवाला वन ऐसा जान पड़ता था मानो पीले रङ्गके चूर्णसे क्रीड़ा करनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३३॥ मदिराके गण्डूषरूपी दौहदकी उपेक्षा करनेवाला बकुल वृक्ष ऐसा बरस रहा था जैसा कि वर्षा काल मेघोंके समूहसे बरसता है ॥३४॥

अथानन्तर इच्छानुसार रूप बदलनेवाला वह स्वयंप्रभ प्रतीन्द्र जानकीका वेष रख मदमाती चालसे रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३५॥ वह वन मनकी हरण करनेवाला, एकान्त, नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त एवं सब ऋतुओंके फूलोंसे व्याप्त था ॥३६॥ तदनन्तर सुखपूर्वक वनमें घूमती हुई सीता महादेवी, अकस्मात् उक्त साधुके आगे प्रकट हुई ॥३७॥ वह बोली कि हे राम ! समस्त जगत्में घूमती हुई मैंने बहुत भारी पुण्यसे जिस किसी तरह आपको देख पाया है ॥३८॥ हे नाथ ! वियोगरूपी तरङ्गोंसे व्याप्त स्नेहरूपी गङ्गाकी धारमें पड़ी हुई मुझ सुवदनाको आप इस समय सहारा दीजिए—डूबनेसे बचाइए ॥३९॥ जब उसने नाना प्रकारकी चेष्टाओं और मधुर वचनोंसे मुनिको अकम्प्य समझ लिया तब मोहरूपी पापसे जिसका चित्त प्रसा था, जो कभी मुनिके आगे खड़ी होती थी और कभी दोनों वगलोंमें जा सकती थी, जो काम ज्वरसे ग्रस्त थी, जिसका शरीर काँप रहा था और जिसका लाल-लाल ऊँचा आँठ फड़क रहा था ऐसी मनोहारिणी सीता उनसे बोली कि हे देव, अपने आपकी

सद्विद्याधरकन्याभिस्ततश्चास्मि हता सती । भवोचे संविपश्चिद्भिरिदं विविधदर्शनैः ॥४३॥
 अलं प्रव्रज्यया तावद्^१ वयस्येवं विरुद्धया । ह्यमत्यन्तबद्धानां पूज्यते ननु^२ नैष्ठिकी ॥४४॥
 यौवनोद्या तनुः कवेयं क्व चेदं दुष्करं व्रतम् ।^३ शशलक्ष्मणदीधित्या भिद्यते किं महीधरः ॥४५॥
 गच्छामस्त्वां पुरस्कृत्य वयं सर्वाः समाहिताः । बलदेवं वरिष्यामस्तव देवि समाश्रयात् ॥४६॥
 अस्माकमपि सर्वासं त्वमग्रमहिषी भव । क्रीडामः सह रामेण जम्बूद्वीपतले सुखम् ॥४७॥
 अत्रान्तरे समं प्राप्ता नानालङ्कारभूषिताः । भूयःसहस्रसंख्यानाः कन्या दिव्यश्रियान्विताः ॥४८॥
 राजहंसवधूलोला मनोज्ञगतिविभ्रमाः । सीतेन्द्रविक्रियाजन्या जग्मुः पद्मसमीपताम् ॥४९॥
 वदन्त्यो मधुरं काश्चित्परपुष्टवनादपि । विरेजिरेतरां कन्याः साक्षात्तन्मय इव स्थिताः ॥५०॥
 मनःप्रह्लादनकरं परं श्रोत्ररसायनम् । दिव्यं गेयामृतं चक्रुर्वशीणास्वनानुगम् ॥५१॥
 अमरासितकेरवस्ताः क्षणांशुसमतेजसः । सुकुमारास्तलोदर्यः पीनोन्नतपयोधराः ॥५२॥
 चारुशृङ्गारहासिन्यो नानावर्णसुवाससः । विचित्रविभ्रमालापाः कान्तिपूरितपुष्कराः ॥५३॥
 कामयाञ्चकिरे मोहं सर्वतोऽवस्थिता मुनेः । श्रीबाहुबलिनः पूर्वं यथा त्रिदशकन्यकाः ॥५४॥
 भाङ्गस्य बकुलं काचिच्छायाऽसौ^४ चिन्वती क्वचित् । उद्वेजितालिचक्रेण भ्रमणं शरणं स्थिता ॥५५॥
 काश्चिक्किल^५ विवादेन कृतपत्तपरिग्रहाः । पप्रच्छुनिर्णयं देव किनामाऽयं वनस्पतिः ॥५६॥

पण्डिता माननेवाली मैं उस समय बिना बिचारे ही आपको छोड़कर दीक्षिता हो गई और तपस्विनी बनकर इधर-उधर विहार करने लगी ॥४०-४२॥ तदनन्तर विद्याधरोंकी उत्तम कन्याएँ मुझे हरकर ले गईं । वहाँ उन विदुषी कन्याओंने नाना उदाहरण देते हुए मुझसे कहा कि ऐसी अवस्थामें यह विरुद्ध दीक्षा धारण करना व्यर्थ है क्योंकि यथार्थमें यह दीक्षा अत्यन्त वृद्धा स्त्रियोंके लिए ही शोभा देती है ॥४३-४४॥ कहाँ तो यह यौवनपूर्ण शरीर और कहाँ यह कठिन व्रत ? क्या चन्द्रमाकी किरणसे पर्वत भेदा जा सकता है ? ॥४५॥ हम सब तुम्हें आगे कर चलती हैं और हे देवि ! तुम्हारे आश्रयसे बलदेवको वरेंगी—उन्हें अपना भर्ता बनावेंगी ॥४६॥ हम सभी कन्याओंके बीच तुम प्रधान रानी होओ । इस तरह रामके साथ हम सब जम्बूद्वीपमें सुखसे क्रीड़ा करेंगी ॥४७॥ इसी बीचमें नाना अलंकारोंसे भूषित तथा दिव्य लक्ष्मीसे युक्त हजारों कन्याएँ वहाँ आ पहुँचीं ॥४८॥ राजहंसीके समान जिनकी सुन्दर चाल थी ऐसी सीतेन्द्रकी विक्रियासे उत्पन्न हुईं वे सब कन्याएँ रामके समीप गईं ॥४९॥ कोयलसे भी अधिक मधुर बोलनेवाली कितनी ही कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो साक्षात् लक्ष्मी ही स्थित हों ॥५०॥ कितनी ही कन्याएँ मनको आह्लादित करनेवाले, कानोंके लिए उत्तम रसायन स्वरूप तथा बाँसुरी और वीणाके शब्दसे अनुगत दिव्य संगीतरूपी अमृतको प्रकट कर रही थीं । जिनके केश भ्रमरोंके समान काले थे, जिनकी कान्ति बिजलीके समान थी, जो अत्यन्त सुकुमार और कुशोदरी थीं, स्थूल और उन्नत स्तनोंको धारण करनेवाली थीं, सुन्दर शृंगार पूर्ण हास्य करनेवाली थीं, रङ्ग-चिरङ्गें वस्त्र पहने हुई थीं, नाना प्रकारके हाव-भाव तथा आलाप करनेवाली थीं और कान्तिसे जिन्होंने आकाशको भर दिया था ऐसी वे सब कन्याएँ मुनिके चारों ओर स्थित हो उस तरह मोह उत्पन्न कर रही थीं, जिस तरह कि पहले बाहुबलीके आसपास खड़ी देव-कन्याएँ ॥५१-५४॥ कोई एक कन्या छायाकी खोज करती हुई बकुल वृक्षके नीचे पहुँची । वहाँ पहुँचकर उसने उस वृक्षको खींच दिया जिससे उसपर बैठे भ्रमरोंके समूह उड़कर उस कन्याकी ओर झपटे और उनसे भयभीत हो वह कन्या मुनिकी शरणमें जा खड़ी हुई ॥५५॥ कितनी ही कन्याएँ किसी

१. वयस्येव म०, ज० । २. न तु म० । ३. बललक्ष्मणदीधित्वा म०, शललक्ष्मणदीधित्वा ज०, क०, ल० । ४. छायासौ । ५. विषादेन म०, ज० ।

दूरस्थमाधवीपुष्पग्रहणशुद्धमना परा । संसमानांशुका बाहुमूलं चणमदर्शयत् ॥५७॥
 आबध्य मण्डलीमन्याश्चलिताकरपल्लवाः । सहस्रतालसङ्गीता रासकं दातुमुद्यताः ॥५८॥
 नितम्बफलके काचिदम्भःस्वच्छारणांशुके । चण्डातकं नभोनीलं चकार किल लज्जया ॥५९॥
 पूर्वविधक्रियाजालैरितरस्वान्तहारिभिः । अक्षोभ्यत न पद्माम्भः पवनैरिव मन्दरः ॥६०॥
 ऋजुदृष्टिर्विशुद्धात्मा परीषहगणाशनिः । प्रविष्टो धवलध्यानप्रथमं सुप्रभो यथा ॥६१॥
 तस्य सत्त्वपदन्त्यस्तं चित्तमत्यन्तनिर्मलम् । समेतमिन्द्रियैरासीदात्मनः प्रवर्णं परम् ॥६२॥
 कुर्वन्तु वाञ्छितं बाह्याः क्रियाजालमनकेया । प्रध्यवन्ते न तु स्वार्थात्परमार्थविचक्षणम् ॥६३॥
 यदा सर्वप्रयत्नेन ध्यानप्रत्यूहलालसः । चेष्टां चकार सीतेन्द्रः सुरमायाविकल्पिताम् ॥६४॥
 अत्रान्तरे मुनिः पूर्वमत्यन्तशुचिरागमत् । अनादिकर्मसङ्घातं विभुर्दग्धुं समुद्यतः ॥६५॥
 कर्मणः प्रकृतीः षष्टिं निषूय दृढनिश्चयः । क्षपकश्रेणिमारुहदुत्तरां पुरुषोत्तमः ॥६६॥
 माघशुद्धस्य पक्षस्य द्वादश्यां निशि पश्चिमे । यामे केवलमुत्पन्नं ज्ञानं तस्य महात्मनः ॥६७॥
 सर्वदर्शाचिसमुद्भूते तस्य केवलचक्षुषि । लोकालोकद्वयं जातं गोष्पदप्रतिमं प्रभोः ॥६८॥
 ततः सिंहासनाकम्पप्रयुक्तावधिचक्षुषः । सप्रणामं सुरार्थीशाः प्रचेलुः सम्भ्रमान्विताः ॥६९॥
 आजगमुश्च महाभूत्या महासङ्घातवर्तिनः । विधातुमुद्यताः श्राद्धाः केवलोत्पत्तिपूजनम् ॥७०॥

वृक्षके नामको लेकर विवाद करती हुई अपना पक्ष लेकर मुनिराजसे निर्णय पूछने लगी कि देव ! इस वृक्षका क्या नाम है ? ॥५६॥ जिसका वस्त्र खिसक रहा था ऐसी किसी कन्याने ऊँचाईपर स्थित माधवी लताका फूल तोड़नेके छलसे अपना बाहुमूल दिखाया ॥५७॥ जिनके हस्तरूपी पल्लव हिल रहे थे तथा जो हजारों प्रकारके तालोंसे युक्त संगीत कर रही थीं ऐसी कितनी ही कन्याएँ मण्डली बाँधकर रासक क्रीड़ा करनेके लिए उद्यत थीं ॥५८॥ किसी कन्याने जलके समान स्वच्छ लाल वस्त्रसे सुशोभित अपने नितम्बतटपर लज्जाके कारण आकाशके समान नील वर्णका लहंगा पहन रक्खा था ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अन्य मनुष्योंके चित्तको हरण करनेवाली इस प्रकारकी क्रियाओंके समूहसे राम उस तरह क्षोभको प्राप्त नहीं हुए जिस प्रकार कि वायुसे मेरुपर्वत क्षोभको प्राप्त नहीं होता है ॥६०॥ उनकी दृष्टि अत्यन्त सरल थी, आत्मा अत्यन्त शुद्ध थी और वे स्वयं परीषहोंके समूहको नष्ट करनेके लिए वज्र स्वरूप थे, इस तरह वे सुप्रभके समान शुक्ल ध्यानके प्रथम पायेमें प्रविष्ट हुए ॥६१॥ उनका हृदय सत्त्व गुणसे सहित था, अत्यन्त निर्मल था, तथा इन्द्रियोंके समूहके साथ आत्माके ही चिन्तनमें लग रहा था ॥६२॥ बाह्य मनुष्य इच्छानुसार अनेक प्रकारकी क्रियाएँ करें परन्तु परमार्थके विद्वान् मनुष्य आत्मकल्याणसे च्युत नहीं होते ॥६३॥ ध्यानमें विघ्न डालनेकी लालसासे युक्त सीतेन्द्र, जिस समय सर्व प्रकारके प्रयत्नके साथ देवमायासे निर्मित चेष्टा कर रहा था उस समय अत्यन्त पवित्र मुनिराज अनादि कर्म समूहको जलानेके लिए उद्यत थे ॥६४-६५॥ दृढ़ निश्चयके धारक पुरुषोत्तम, कर्मोंकी साठ प्रकृतियाँ नष्टकर उत्तरवर्ती क्षपक श्रेणीपर आरूढ़ हुए ॥६६॥ माघ शुक्ल द्वादशीके दिन रात्रिके पिछले पहरमें उन महात्माको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥६७॥ सर्वदर्शी केवलज्ञान रूपी नेत्रके उत्पन्न होनेपर उन प्रभुके लिए लोक अलोक दोनों ही गोष्पदके समान तुच्छ हो गये ॥६८॥

तदनन्तर सिंहासनके कम्पित होनेसे जिन्होंने अवधिज्ञानरूपी नेत्रका प्रयोग किया था ऐसे सब इन्द्र संभ्रम के साथ प्रणाम करते हुए चले ॥६९॥ तदनन्तर जो देवोंके महा समूहके बीच वर्तमान थे, श्रद्धासे युक्त थे और केवलज्ञानकी उत्पत्तिकी पूजा करनेके लिए

दृष्ट्वा रामं समासीनं चातिकर्मविनाशनम् । प्रणेमुर्भक्तिसम्पन्नाश्चारणर्षिसुरासुराः ॥७१॥
 तस्य जाताःत्मरूपस्य वन्द्यस्य भुवनेश्वरैः । जातं समवसरणं समग्रं परमेष्ठिनः ॥७२॥
 ततः स्वयम्प्रभाभिन्धुः सीतेन्द्रः केवलार्चनम् । कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य मुनिमन्त्रमयन्मुहुः ॥७३॥
 चमस्व भगवन् दोषं कृतं दुर्बुद्धिना मया । प्रसीद कर्मणामन्तं यच्छ मद्यमपि द्रुतम् ॥७४॥

आर्यागीतिः

एवमनन्तश्रीद्युति-कान्तियुतो नूनमनार्त्तमूर्त्तिर्भगवान् ।
 कैवल्यसुखसमृद्धिं बलदेवोऽवाप्तवाञ्छिनोत्तमभवत्या ॥७५॥
 पूजामहिमानमरं कृत्वा स्तुत्वा प्रणम्य भवत्यां परया ।
 प्रविहरति भ्रमणरवौ जग्मुर्देवा यथाक्रमं प्रमदयुताः ॥७६॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणेःपद्मस्य केवलोत्पत्यभिधानं नाम
 द्वाविंशत्युत्तरशतं पर्व ॥१२२॥

उद्यत थे ऐसे सब इन्द्र बड़े वैभवके साथ वहाँ आ पहुँचे ॥७०॥ चातिया कर्मोका नाश करने वाले सिंहासनासीन रामके दर्शन कर चारणश्रद्धिधारी मुनिराज तथा समस्त सुर और असुरोंने उन्हें प्रणाम किया ॥७१॥ जिन्हें आत्मरूपकी प्राप्ति हुई थी, तथा जो संसारके समस्त इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय थे ऐसे परमेष्ठी पदको प्राप्त श्री रामके सम्पूर्ण समवसरणकी रचना हुई ॥७२॥ तदनन्तर स्वयंप्रभ नामक सीतेन्द्रने केवलज्ञानकी पूजा कर मुनिराजको प्रदक्षिणा दी और बार-बार क्षमा कराई ॥७३॥ उसने कहा कि हे भगवन् ! मुझ दुर्बुद्धिके द्वारा किया हुआ दोष क्षमा कीजिए, प्रसन्न हूजिए और मेरे लिए भी शीघ्र ही कर्मोका अन्त प्रदान कीजिए अर्थात् मेरे कर्मोका क्षय कीजिए ॥७४॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार अनन्त लक्ष्मी द्युति और कान्तिसे सहित तथा प्रसन्न मुद्राके धारक भगवान् बलदेवने श्री जिनेन्द्रदेवकी उत्तम भक्तिसे केवलज्ञान तथा अनन्त सुख रूपो समृद्धिको प्राप्त किया ॥७५॥ मुनियोंमें सूर्यके समान तेजस्वी श्री राम मुनि जब विहार करनेको उद्यत हुए तब हर्षसे भरे देव शीघ्र ही भक्तिपूर्वक पूजाकी महिमा, स्तुति तथा प्रणाम कर यथाक्रमसे अपने-अपने स्थानोंपर चले गये ॥७६॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा रचित पद्मपुराणमें श्री राममुनिको केवलज्ञान उत्पन्न होनेका वर्णन करनेवाला एकसौ बाईसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥१२२॥

त्रयोविंशोत्तरशतं पर्व

अथ संस्मृत्य सीतेन्द्रो लक्ष्मीधरगुणार्णवम् । प्रतिबोधयितुं बाम्बुन् प्रतस्थे^१ वालुकाप्रभाम् ॥१॥
मानुषोत्तरमुत्तुङ्घ्य गिरिं मर्त्यसुदुर्गमम् । रत्नप्रभामतिक्रम्य^२ शर्करां चापि मेदिनीम् ॥२॥
प्राप्तो ददर्श बीभन्सां कृच्छ्रातिशयदुःसहाम् । पापकर्मसमुद्भूतानवस्थां नरकश्रिताम् ॥३॥
असुरत्वं गतो योऽसौ शम्बूको लक्ष्मणा हतः । व्याधदारकवत् सोऽत्र हिंसाकीडनमाश्रितः ॥४॥
भानृणेद् कारिचदुद्वाध्य कांश्चिद्भृत्यैरघातयत् । नारकानावृतान् कांश्चिपरस्परमयूयुधत् ॥५॥
केचिद् बध्वाग्निकुण्डेषु च्छिद्यन्ते विकृतस्वराः । शालमलीषु नियुज्यन्ते केचित् प्रत्यङ्गकण्ठकम् ॥६॥
ताड्यन्तेऽयोमयैः केचिन्मुसलैरभितः स्थितैः । स्वमांसरुधिरं केचित्खाद्यन्ते निर्दयैः सुरैः ॥७॥
गाढप्रहारनिभिन्नाः कृतभूतललोठनाः । श्वमार्जारहरिव्याघ्रैर्भक्ष्यन्ते पक्षिभिस्तथा ॥८॥
केचिच्छूलेषु भिद्यन्ते ताड्यन्ते घनमुद्गरैः । कुम्भ्यामन्ये निर्धायन्ते ताम्रादिकलिलाम्भसि ॥९॥
करपत्रैर्विदार्यन्ते बद्ध्वा दारुषु निश्चलाः । केचित्कैश्चिन्न पाच्यन्ते ताम्रादिकलिलं बलात् ॥१०॥
केचिचन्त्रेषु पीड्यन्ते हन्यन्ते सायकैः परे । दन्ताशिरसनादीनां प्राप्नुवन्त्युद्धृतिं परे ॥११॥
एवमादीनि दुःखानि विलोक्य नरकाश्रिताम् । उत्पन्नपुरुकारुण्यः सोऽभूदमरपुङ्गवः ॥१२॥

अथानन्तर सीतेन्द्र, लक्ष्मणके गुणरूपी सागरका स्मरणकर उसे संबोधनेकी इच्छा करता हुआ वालुकाप्रभाकी ओर चला ॥१॥ मनुष्योंके लिए अत्यन्त दुर्गम मानुषोत्तर पर्वतको लौंघकर तथा क्रमसे नीचे रत्नप्रभा और शर्कराप्रभाकी भूमिको भी उल्लंघनकर वह तीसरी वालुकाप्रभा भूमिमें पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने नारकियोंकी अत्यन्त घृणित कष्टकी अधिकतासे दुःसह एवं पाप कर्मसे उत्पन्न अवस्था देखी ॥२-३॥ लक्ष्मणके द्वारा मारा गया जो शम्बूक असुरकुमार हुआ था वह शिकारीके पुत्रके समान इस भूमिमें हिंसापूर्ण क्रीड़ा कर रहा था ॥४॥ वह कितने ही नारकियोंको ऊपर बाँधकर स्वयं मारता था, कितनों ही को सेवकोंसे मरवाता था और धिरे हुए कितने ही नारकियोंको परस्पर लड़ाता था ॥५॥ विरूप शब्द करने वाले कितने ही नारकी बाँधकर अग्निकुण्डोंमें फेंके जाते थे, और कितने ही जिनके अङ्ग-अङ्गमें काँटा लग रहे थे ऐसे सेमरके वृक्षोंपर चढ़ाये-उतारे जाते थे ॥६॥ कितने ही सब ओर खड़े हुए नारकियोंके द्वारा लोह-निर्मित मूसलोंसे कूटे जाते थे और कितने ही को निर्दय देवोंके द्वारा अपना मांस तथा रुधिर खिलाया जाता था ॥७॥ गाढ़ प्रहारसे खण्डित हो पृथिवी-तलपर लोटने वाले नारकी कुत्ते, बिलाव, सिंह, व्याघ्र तथा अनेक पक्षियोंके द्वारा खाये जा रहे थे ॥८॥ कितने ही शूलीपर चढ़ा कर भेदे जाते थे, कितने ही घनों और मुद्गरोंसे पीटे जाते थे, कितने ही ताबाँ आदिके स्वरस रूपी जलसे भरी कुम्भियोंमें डाले जाते थे ॥९॥ लकड़ियों बाँध देनेसे निश्चल खड़े हुए कितने नारकी करोंतोंसे बिदारे जाते थे, और कितने ही नारकियोंको जबरदस्ती ताम्र आदि धातुओंका पिघला द्रव पिलाया जाता था ॥१०॥ कितने ही कोलहुओंमें पेले जाते थे, कितने ही बाणोंसे छेदे जाते थे, और कितने ही दाँत, नेत्र तथा जिह्वाके उपाड़नेका दुःख प्राप्त कर रहे थे ॥११॥ इस प्रकार नारकियोंके दुःख देखकर सीतेन्द्रको बहुत भारी दया उत्पन्न हुई ॥१२॥

१. शर्कराप्रभां म०, ज० । २. वालुकां म०, ज०, ख० । ३. बध्वाग्निकुण्डेषु म० ।

अग्निकुण्डाद् विनिर्यातमथालोकत लक्ष्मणम् । बहुधा नारकैरन्यैरर्घ्यमानं समन्ततः ॥१३॥
सीदन्तं विकृतग्राहे भीमे वैतरणीजले । द्विद्यमानं च कनकैरसिपत्रवनान्तरे ॥१४॥
वधाय शोचतं तस्य बाधमानं भवानकम् । क्रुद्धं बृहद्गदापाणिं हन्व्यमानं तथा परैः ॥१५॥
'प्रचोद्यमानं घोराचं' स्रवहेहं बृहन्मुखम् । तेन देवकुमारेण शम्बूकेन दशाननम् ॥१६॥
अत्रान्तरे महातेजाः सीतेन्द्रः सन्निधिं गतः । तर्जयन् तत्र तीव्रं तं गणं भवनवासिनाम् ॥१७॥
अरे ! रे ! पाप शम्बूक प्रारब्धं किमिदं स्वया । कथमद्यापि ते नास्ति शमो निर्घृणचेतसः ॥१८॥
मुञ्च क्रूराणि कर्माणि भव स्वस्थः सुराधम । किमनेनाभिमानेन परमानर्थहेतुना ॥१९॥
श्रुत्वेदं नारकं दुःखं जन्तोर्भयमुदीर्यते । प्रत्यक्षं किं पुनः कृत्वा त्रासस्तव न जायते ॥२०॥
शम्बूके प्रशमं प्राप्ते ततोऽसौ विबुधेश्वरः । प्रबोधयितुमुद्युक्तो यावत्तावदमी द्रुतम् ॥२१॥
अतिदारुणकर्माणिश्चला दुर्ग्रहचेतसः । देवप्रभाभिभूताश्च नारकाः परिदुद्बुधुः ॥२२॥
रुद्रुश्चापरे दीना धाराश्रुगलिताननाः । धावन्तः पतिताः केचिद्रत्नेषु विषमेष्वलम् ॥२३॥
मा मा नश्यत सन्त्रस्ता निवर्षाध्वं सुदुःखिताः । न भेतव्यं न भेतव्यं नारका भवत स्थिताः ॥२४॥
एवमुक्ताः सुरेन्द्रेण समाश्वासनचेतसा । प्राविचलन्धतमसं वेपमानाः समन्ततः ॥२५॥
भण्यमानास्ततो भूयः शक्तेषुद्रयोऽभिताः । इत्युक्तास्ते ततः कृच्छ्रादवधानमुपागताः ॥२६॥

तदनन्तर उसने अग्निकुण्डसे निकले और अन्य अनेक नारकियोंके द्वारा सब ओरसे घेरकर नाना तरहसे दुःखी किये जानेवाले लक्ष्मणको देखा ॥१३॥ वहीं उसने देखा कि, लक्ष्मण विक्रिया कृत मगर-मच्छ्रांसे व्याप्त वैतरणीके भयंकर जलमें छूटपटा रहा है और असिपत्र वनमें शस्त्राकार पत्रोंसे छेदा जा रहा है ॥१४॥ उसने यह भी देखा कि लक्ष्मणको मारनेके लिए वाधा पहुँचाने वाला एक भयंकर नारकी कुपित हो हाथमें बड़ी भारी गदा लेकर उद्यत हो रहा है तथा उसे दूसरे नारकी मार रहे हैं ॥१५॥ सीतेन्द्रने वहीं उस रावणको देखा कि जिसके नेत्र अत्यन्त भयंकर थे, जिसके शरीरसे मल-भूत्र झड़ रहे थे, जिसका मुख बहुत बड़ा था और शम्बूकका जीव असुरकुमार देव जिसे लक्ष्मणके विरुद्ध प्रेरणा दे रहा था ॥१६॥

तदनन्तर इसी बीचमें महातेजस्वी सीतेन्द्र, भवनवासियोंके उस दुष्ट समूहको डाँटे दिखाता हुआ पासमें पहुँचा ॥१७॥ उसने कहा कि अरे ! रे ! पापी शम्बूक ! तूने यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? तुझे निर्दयचित्तकी क्या अब भी शान्ति नहीं है ? ॥१८॥ हे अधमदेव ! क्रूर कार्य छोड़, मध्यस्थ हो, अत्यन्त अनर्थके कारणभूत इस अभिमानसे क्या प्रयोजन सिद्ध होना है ? ॥१९॥ नरकके इस दुःखको सुनकर ही प्राणीको भय उत्पन्न हो जाता है, फिर तुझे प्रत्यक्ष देखकर भी भय क्यों नहीं उत्पन्न होता है ? ॥२०॥ तदनन्तर शम्बूकके शान्त हो जानेपर ज्योंही सीतेन्द्र संबोधनेके लिए तैयार हुआ त्योंही अत्यन्त क्रूर काम करनेवाले, चञ्चल एवं दुर्ग्रह चित्तके धारक वे नारकी देवकी प्रभासे तिरस्कृत हो शीघ्र ही इधर-उधर भाग गये ॥२१-२२॥ कितने ही दीन-हीन नारकी, धाराबद्ध पड़ते हुए आँसुओंसे मुखको गोला करते हुए रोने लगे, कितने ही दौड़ते-ही-दौड़ते अत्यन्त विषम गतोंमें गिर गये ॥२३॥ तब सान्त्वना देते हुए सीतेन्द्रने कहा कि 'अहो नारकियों ! भागो मत, भय-भीत मत होओ, तुम लोग बहुत दुःखी हो, लौटकर आओ, भय मत करो, भय मत करो, खड़े रहो' इस प्रकार कहनेपर भी वे भयसे काँपते हुए गाढ़ अन्धकारमें प्रविष्ट हो गये ॥२४-२५॥ तदनन्तर यही बात जब सीतेन्द्रने फिरसे कही तब कहीं उनका कुछ-कुछ भय कम हुआ और बड़ी

महामोहद्वृत्तात्मानः कथं नरकसम्भवाः । एतयाऽवस्थया युक्ता न जानीथाऽऽत्मनो हितम् ॥२७॥
 भद्रदृष्टलोकपर्यन्ता हिंसानृतपरस्विनः । रौद्रध्यानपराः प्राप्ता नरकस्थं प्रतिद्विषः ॥२८॥
 भोगाधिकारसंस्कारास्तीव्रक्रोधादिरञ्जिताः । विकर्मनिरता नित्यं सम्प्राप्ता दुःखमीदृशम् ॥२९॥
 रमणीये विमानाग्रे ततो वीक्ष्य सुरोत्तमम् । सौमित्रिरावणौ पूर्वमप्राप्तं को भवानिति ॥३०॥
 स तयोः सकलं वृत्तं पश्चात्स्य तथाऽऽत्मनः । कर्माञ्चित्तमभापिष्ट विचित्रमिति सम्भवम् ॥३१॥
 ततः श्रुत्वा स्ववृत्तान्तं प्रतिबोधमुपागतौ । उपशान्तात्मकौ दीनमेवं शुशुचतुस्तकौ ॥३२॥
 धृतिः किं न कृता धर्मे तदा मानुषजन्मनि । अवस्थामिमकां येन प्राप्ताः स्मः पापकर्मभिः ॥३३॥
 हा ! हा ! किं कृतमस्माभिरात्मदुःखपरं परम् । अहो मोहस्थ माहात्म्यं यस्स्वार्थादपि हीयते ॥३४॥
 स्वमेव धन्यो देवेन्द्र यस्यस्त्वया विषयस्पृहाम् । जिनवाक्यामृतं पीत्वा सम्प्राप्तोऽस्यमरेशलाम् ॥३५॥
 ततोऽसौ पुरुकारुण्यो मा मैष्टेति बहुस्वनम् । एतैत नरकाज्ञाकं नये युष्मानितीरयन् ॥३६॥
 ततः परिकरं बध्वा ग्रहीतुं स्वयमुद्यतः । दुर्ग्रहास्तु विलीयन्ते तेऽग्निना नवनीतवत् ॥३७॥
 सर्वोपायैरपीन्द्रेण ग्रहीतुं स्पष्टमेव च । न शक्यास्ते यथा भावाश्छायाया दर्पणे स्थिताः ॥३८॥
 ततस्तेऽत्यन्तदुःखात्तां जगदुर्देवयानिनः । पुराकृतानि कर्माणि तानि भोग्यान्वसंशयम् ॥३९॥

कठिनाईसे वे चित्तकी स्थिरताको प्राप्त हुए ॥२६॥ शान्त वातावरण होनेपर सीतेन्द्रने कहा कि महामोहसे जिनकी आत्मा हरी गई है ऐसे हे नारकियो ! तुम लोग इस दशासे युक्त होकर भी आत्माका हित नहीं जानते हो ? ॥२७॥ जिन्होंने लोकका अन्त नहीं देखा है, जो हिंसा, मूठ और परधनके हरणमें तत्पर हैं, रौद्रध्यानी हैं तथा नरकमें स्थित रहनेवालेके प्रति जिनकी द्वेष-बुद्धि है ऐसे लोग ही नरकमें आते हैं ॥२८॥ जो भोगोंके अधिकारमें संलग्न हैं, तीव्र क्रोधादि कषायोंसे अनुरञ्जित हैं और निरन्तर विरुद्ध कार्य करनेमें तत्पर रहते हैं ऐसे लोग ही इस प्रकारके दुःखको प्राप्त होते हैं ॥२९॥

अथानन्तर सुन्दर विमानके अग्रभागपर स्थित सुरेन्द्रको देखकर लक्ष्मण और रावणके जीवने सबसे पहले पूछा कि आप कौन हैं ? ॥३०॥ तत्र सुरेन्द्रने उनके लिए श्रीरामका तथा अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया और साथ ही यह भी कहा कि कर्मानुसार यह सब विचित्र कार्य संभव हो जाते हैं ॥३१॥ तदनन्तर अपना वृत्तान्त सुनकर जो प्रतिबोधको प्राप्त हुए थे तथा जिनकी आत्मा शान्त हो गई थी ऐसे वे दोनों दीनता पूर्वक इस प्रकार शोक करने लगे ॥३२॥ कि अहो ! हम लोगोंने उस समय मनुष्य जन्ममें धर्ममें रुचि क्यों नहीं की ? जिससे पाप-कर्मोंके कारण इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं ॥३३॥ हाय हाय, आत्माको दुःख देनेवाला यह क्या विकट कार्य हम लोगोंने कर डाला ? अहो ! यह सब मोहकी महिमा है कि जिसके कारण जीव आत्महितसे भ्रष्ट हो जाता है ॥३४॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हीं धन्य हो, जो विषयोंकी इच्छा छोड़ तथा जिन वाणीरूपी अमृतका पानकर देवोंकी ईशताको प्राप्त हुए हो ॥३५॥

तदनन्तर अत्यधिक करुणाको धारण करनेवाले देवेन्द्रने कई बार कहा कि 'डरो मत, डरो मत, आओ, आओ, मैं तुम लोगोंको नरकसे निकालकर स्वर्ग लिये चलता हूँ' ॥३६॥ तत्पश्चात् वह सुरेन्द्र कमर कसकर उन्हें स्वयं ले जानेके लिए उद्यत हुआ परन्तु वे पकड़नेमें न आये । जिस प्रकार अग्निमें तपानेसे नवनीत पिघलकर रह जाता है उसी प्रकार वे नारकी भी पिघलकर वहीं रह गये ॥३७॥ इन्द्रने उन्हें उठानेके लिए सभी प्रयत्न किये पर वे उठाये नहीं जा सके । जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्बित ग्रहणमें नहीं आते उसी प्रकार वे भी ग्रहणमें नहीं आ सके ॥३८॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखी होते हुए उन नारकियोंने कहा कि हे देव ! हम लोगोंके जो पूर्वोपार्जित कर्म हैं, वे निःसन्देह भोगनेके योग्य नहीं

विषयामिषलुब्धानां प्राप्तानां नरकासुखम् । स्वकृतप्राप्तिवस्थानां किङ्करिष्यन्ति देवताः ॥४०॥
 एतस्त्वोपचितं कर्म भोक्तव्यं यस्त्रियोगतः । तदास्माकं न शक्नोषि दुःखान्मोचयितुं सुर ॥४१॥
 परिश्रायस्व सीतेन्द्र नरकं येन हेतुना । प्राप्स्यामो न पुनर्ब्रूहि त्वमस्माकं दयापरः ॥४२॥
 देवो जगाद् परमं शाश्वतं शिवमुत्तमम् । रहस्यमिव मूढानां प्रख्यातं भुवनत्रये ॥४३॥
 कर्मप्रमथनं शुद्धं पवित्रं परमार्थदम् । अप्राप्तपूर्वमाप्तं वा दुर्गृहीतं प्रमादिनाम् ॥४४॥
 दुर्निज्ञेयमभ्युत्थानां बृहद्भवभवानकम् । कस्याणं दुर्लभं सुष्ठु सम्यग्दर्शनमूर्जितम् ॥४५॥
 यदाऽप्युत्थानः श्रेयस्तत एव गतेऽपि हि । सम्यक्त्वं प्रतिपद्यस्व काले बोधिप्रदं शुभम् ॥४६॥
 इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति न भूतं न भविष्यति । इह सेत्स्यन्ति सिद्धयन्ति सिषिषुश्च महर्षयः ॥४७॥
 अर्हद्भिर्गदिता भावा भगवद्भिर्महोत्तमैः । तथैवेति इहं भक्त्या सम्यग्दर्शनमिष्यते ॥४८॥
 नयन्निःशब्दादिभिर्वाक्यैः सम्यक्त्वं नरके स्थितम् । सुरेन्द्रः शोचितुं लग्नस्तथाप्युत्तमभोगभाक् ॥४९॥
 तद्भवं कान्तिलावण्यशरीरमसुन्दरम् । निर्दग्धं कर्मणा पश्य नवोद्यानमिवाग्निना ॥५०॥
 अचिन्नीयत यां दृष्ट्वा भुवनं सकलं तदा । द्युतिः सा क्व गतोदात्ता चारुकीदितसंयुता ॥५१॥
 कर्मभूमौ सुखाख्यस्य यस्य क्षुद्रस्य कारणे । ईदृग्दुःखार्णवे मग्ना भवन्तो दुरितक्रियाः ॥५२॥
 इत्युक्तैः प्रतिपन्नं तैः सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । अनादिभवसंश्लिष्टैर्यज्ञ प्राप्तं कदाचन ॥५३॥

हैं ॥३६॥ जो विषयरूपी आमिषके लोभी होकर नरकके दुःखको प्राप्त हुए हैं तथा जो अपने द्वारा किये हुए कर्मोंके पराधीन हैं उनका देव लोग क्या कर सकते हैं ? ॥४०॥ यतश्च अपने द्वारा किया हुआ कर्म नियमसे भोगना पड़ता है इसलिए हे देव ! तुम हम लोगोंको दुःखसे लुढ़ानेमें समर्थ नहीं हो ॥४१॥ हे सीतेन्द्र ! हमारी रक्षा करो, अब हम जिस कारण फिर नरकको प्राप्त न हों कृपाकर वह बात तुम हमें बताओ ॥४२॥

तदनन्तर देवने कहा कि जो उत्कृष्ट है, नित्य है, आनन्द रूप है, उत्तम है, मूढ़ मनुष्योंके लिए मानो रहस्यपूर्ण है, जगत्त्रयमें प्रसिद्ध है, कर्मोंको नष्ट करनेवाला है, शुद्ध है, पवित्र है, परमार्थको देनेवाला है, जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ है और यदि प्राप्त हुआ भी है तो प्रमादी मनुष्य जिसकी सुरक्षा नहीं रख सके हैं, जो अभव्य जीवोंके लिए अज्ञेय है और दीर्घ संसारको भय उत्पन्न करनेवाला है, ऐसा सबल एवं दुर्लभ सम्यग्दर्शन ही आत्माका सबसे बड़ा कल्याण है ॥४३-४५॥ यदि आप लोग अपना भला चाहते हैं तो इस दशामें स्थित होनेपर भी सम्यक्त्व को प्राप्त करो । यह सम्यक्त्व समयपर बोधिकी प्रदान करनेवाला एवं शुभरूप है ॥४६॥ इससे बढ़कर दूसरा कल्याण न है, न था, न होगा । इसके रहते ही महर्षि सिद्ध होंगे, अभी हो रहे हैं और पहले भी हुए थे ॥४७॥ महा उत्तम अरहन्त जिनेन्द्र भगवान्ने जीवादि पदार्थोंका जैसा निरूपण किया है वह वैसा ही है । इस प्रकार भक्तिपूर्वक दृढ़ श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है ॥४८॥ इत्यादि वचनोंके द्वारा नरकमें स्थित उन लोगोंको यद्यपि सीतेन्द्रने सम्यग्दर्शन प्राप्त करा दिया था तथापि उत्तम भोगोंका अनुभव करनेवाला वह सीतेन्द्र उनके प्रति शोक करनेमें लीन था ॥४९॥ उसकी आँखोंमें उनका पूर्वभव मूल गया और उसे ऐसा लगने लगा कि देखो, जिस प्रकार अग्निके द्वारा नवीन उद्यान जल जाता है उसी प्रकार इनका कान्ति और लावण्य पूर्ण सुन्दर शरीर कर्मके द्वारा जल गया है ॥५०॥ जिसे देख उस समय सारा संसार आश्चर्यमें पड़ जाता था । इनकी वह उदात्त तथा सुन्दर क्रीड़ाओंसे युक्त कान्ति कहाँ गई ? ॥५१॥ वह उनसे कहने लगा कि देखो कर्मभूमिके उस क्षुद्र सुखके कारण आप लोग पापकर इस दुःखके सागरमें निमग्न हुए हैं ॥५२॥ इस प्रकार सीतेन्द्रके कहनेपर अनादि भवोंमें क्लेश उठानेवाले

पतस्मिन्नन्तरे दुःखमनुभूय निकाचितम् । उद्गत्य प्राप्य मानुष्यमुपेयः शरणं जिनम् ॥५४॥
 अहोऽतिपरमं देव स्वयाऽस्मभ्यं हितं कृतम् । यत्सम्यग्दर्शने रम्ये समेत्य विनियोजिताः ॥५५॥
 हे सीतेन्द्र महाभाग ! गच्छ गच्छारणाच्युतम् । शुद्धधर्मफलं स्फूर्तिमनुभूय शिवं व्रज ॥५६॥
 एवमुक्तः सुरेन्द्रोऽसौ शोकहेतुविवर्जितः । तथापि परमद्विश्च सः शोचन्तान्तरात्मना ॥५७॥
 द्वा तेषां समाधानं पुनर्बोधिप्रदं शुभम् । महासुकृतभाग्धीरः समारोहनिजास्पदम् ॥५८॥
 शङ्कितारमा च संबृत्तश्रतुःशरणतःपरः । बहुशश्च करोति स्म पञ्चमेरुपदक्षिणम् ॥५९॥
 तद्दीप्य नारकं दुःखं स्मृत्वा च विबुधोत्तमः । वेपिताः समा विमानेऽपि ध्वनिमालम्ब्य तं सुधीः ॥६०॥
 प्रकम्पमानहृदयः श्रीमच्चन्द्रनिभाननः । उद्युक्तो भरतक्षेत्रे भूयोऽवतरितुं सुधीः ॥६१॥
 सम्पतद्भिर्विमानौघैः समीरसमवर्त्तिभिः । तुरङ्गमहरिणीवमतङ्गजघटाकुलैः ॥६२॥
 नानावर्णान्बरधरैर्हरिस्त्रक्ष्मुकुटोऽज्वलैः । विचित्रवाहनारूढैर्ध्वजच्छत्रातिशोभितैः ॥६३॥
 शतधनीशक्तिचक्रासिपतुःकुन्तगदाधरैः । व्रजद्भिः सर्वतः कान्तैरमरैः साप्सरोगणैः ॥६४॥
 मृदङ्गदुन्दुभिस्वानैर्वेषुवाणास्वनान्वितैः । जयनन्दरवोन्मिश्रैरापूर्यत तदा नभः ॥६५॥
 जगाम शरणं पदं सीतेन्द्रः परमोदयः । कृताञ्जलिपुटो भक्त्या प्रणनाम पुनः पुनः ॥६६॥
 एवं च स्तवनं कर्त्तुं मारेभे विनयान्वितः । संसारतारणोपायप्रतिपत्तिदृष्टाशयः ॥६७॥

उन लोगोंने वह उत्तम सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया जो कि उन्हें पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था ॥५३॥ उन्होंने कहा कि इस बीचमें जिसका छूटना अशक्य है ऐसे इस दुःखको भोगकर जब यहाँ से निकलेंगे तब मनुष्य भव धारणकर श्री जिनेन्द्र देवकी शरण रहेंगे ॥५४॥ अहो देव ! तुमने हम सबका बड़ा हित किया जो यहाँ आकर उत्तम सम्यग्दर्शनमें लगाया है ॥५५॥ हे महाभाग ! सीतेन्द्र ! जाओ जाओ अपने आरणाच्युत कल्पको जाओ और शुद्ध धर्मका विशाल फल भोगकर मोक्षको प्राप्त होओ ॥५६॥ इस प्रकार उन सबके कहनेपर यद्यपि वह सीतेन्द्र शोकके कारणोंसे रहित हो गया था तथापि परम ऋद्धिको धारण करनेवाला वह मन ही मन शोक करता जाता था ॥५७॥ तदनन्तर महान् पुण्यको धारण करनेवाला वह धीर-वीर सुरेन्द्र, उन सबके लिए बोधि दायक शुभ उपदेश देकर अपने स्थानपर आरूढ हो गया ॥५८॥

नरकसे निकलकर जिसकी आत्मा अत्यन्त भयभीत हो रही थी ऐसा वह सीतेन्द्र मन ही मन अरहन्त सिद्ध साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारकी शरणको प्राप्त हुआ और अनेकों बार उसने मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणाएँ दीं ॥५९॥ नरकगतिके उस दुःखको देखकर, स्मरणकर, तथा वहाँके शब्दका ध्यानकर वह सुरेन्द्र विमानमें भी काँप उठता था ॥६०॥ जिसका हृदय काँप रहा था तथा जिसका मुख शोभासम्पन्न चन्द्रमाके समान था, ऐसा वह बुद्धिमान् सुरेन्द्र फिरसे भरत क्षेत्रमें उतरनेके लिए उद्यत हुआ ॥६१॥ उस समय वायुके समान वेगशाली घोड़े, सिंह तथा मदोन्मत्त हाथियोंके समूहसे युक्त, चलते हुए विमानोंसे और नाना रंगके वस्त्रोंको धारण करने वाले, यानर तथा माला आदिके चिह्नोंसे युक्त मुकुटोंसे उज्ज्वल, नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़, पताका तथा छत्र आदिसे शोभित शतधनी, शक्ति, चक्र, अस्त्र, धनुष, कुन्त और गदाको धारण करने वाले, सब ओर गमन करते हुए, अप्सराओंके समूहसे सहित सुन्दर देवोंसे और बाँसुरी तथा वीणाके शब्दोंसे सहित तथा जय जयकार, नन्द, वधरव आदि शब्दोंसे मिश्रित मृदङ्ग और दुन्दुभि के नादसे आकाश भर गया था ॥६२-६५॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला सीतेन्द्र श्री राम केवलीकी शरणमें गया । वहाँ जाकर उसने हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम किया ॥६६॥ तदनन्तर संसार-सागर-से पार होनेके उपाय जाननेके लिए जिसका अभिप्राय दृढ़ था ऐसे उस विनयी सीतेन्द्रने श्री राम

ध्यानमाहृतयुक्तेन तपःसंशुचिताभना । त्वया जन्माटवी दग्धा दीप्तेन ज्ञानवह्निना ॥६८॥
 शुद्धलेरपात्रिशूलेन मोहनीयरिपुहंतः । इदं वैराग्यवज्रेण चूर्णितं स्नेहपञ्जरम् ॥६९॥
 संशये वसंमानस्य भवारण्यविवर्तिनः । शरणं भव मे नाथ मुनीन्द्र भवसूदन ॥७०॥
 लब्धलब्धव्य ! सर्वज्ञ ! कृतकृत्य ! जगद्गुरो । परिभ्रायस्व पद्माभ मामात्माकुलमानसम् ॥७१॥
 मुनिसुव्रतनाथस्य सम्यगासेष्य शासनम् । संसारसागरस्य त्वं गतोऽन्तं तपसोरुणा ॥७२॥
 राम युक्तं किमेतत्ते यदत्यन्तं विहाय माम् । एकेन गम्यते तुङ्गममलं पदमच्युतम् ॥७३॥
 ततो मुनीश्वरोऽवोचन्मुञ्च रागं सुराधिप । मुक्तिर्वैराग्यनिष्ठस्य रागिणो भवमज्जनम् ॥७४॥
 अबलमस्य शिला कण्ठे दोर्भ्यां तसु न शक्यते । नदी तद्वन्न रागाद्यैस्तरितुं संसृतिः क्षमा ॥७५॥
 ज्ञानशीलगुणासङ्गैस्तीर्यते भवसागरः । ज्ञानानुगतचित्तेन गुरुवाक्यानुवर्तिना ॥७६॥
 आदिमभवावसानेषु वेदितव्यमिदं बुधैः । सर्वेषां यन्महातेजाः केवली प्रसते गुणान् ॥७७॥
 अतः परं प्रवचयामि यच्चान्धकारणं नृप । सीतादेवो यदप्राचोद् बभाषे यच्च केवली ॥७८॥
 कृते नाथ समस्तज्ञ भव्या दशरथादयः । लवणाङ्कुशयोः का वा दृष्टा नाथ त्वया गतिः ॥७९॥
 सोऽवोचदानते कल्पे देवो दशरथोऽभवत् । केकया केकयी चैव सुप्रजाश्चापराजिता ॥८०॥

केवलीकी इस तरह स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥६७॥ वह कहने लगा कि हे भगवन् ! आपने ध्यानरूपी वायुसे युक्त तथा तपके द्वारा की हुई देदीप्यमान ज्ञानरूपी अग्निसे संसाररूपी अटवीको दग्ध कर दिया है ॥६८॥ आपने शुद्ध लेश्यारूपी विशूलके द्वारा मोहनीय कर्मरूपी शत्रुका घात किया है, और इदं वैराग्यरूपी वज्रके द्वारा स्नेहरूपी पिंजड़ा चूर-चूर कर दिया है ॥६९॥ हे नाथ ! मैं संसाररूपी अटवीके बीच पड़ा जीवन-मरणके संशयमें मूल रहा हूँ अतः हे मुनीन्द्र ! हे भवसूदन ! मेरे लिए शरण हूजिए ॥७०॥ हे राम ! आप प्राप्त करने योग्य सब पदार्थ प्राप्त कर चुके हैं, सब पदार्थोंके ज्ञाता हैं, कृतकृत्य हैं, और जगत्के गुरु हैं अतः मेरी रक्षा कीजिए, मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है ॥७१॥ श्री मुनिसुव्रतनाथके शासनकी अच्छी तरह सेवा-कर आप विशाल तपके द्वारा संसार-सागरके अन्तको प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ हे राम ! क्या यह तुम्हें उचित है जो तुम मुझे बिलकुल छोड़ अकेले ही उन्नत निर्मल और अविनाशी पदको जा रहे हो ॥७३॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे सुरेन्द्र ! राग छोड़ो क्योंकि वैराग्यमें आरुह मनुष्यकी मुक्ति होती है और रागी मनुष्यका संसारमें डूबना होता है ॥७४॥ जिस प्रकार कण्ठमें शिला बाँधकर भुजाओंसे नदी नहीं तैरी जा सकती उसी प्रकार रागादिसे संसार नहीं तिरा जा सकता ॥७५॥ जिसका चित्त निरन्तर ज्ञानमें लीन रहता है तथा जो गुरुजनोंके कहे अनुसार प्रवृत्ति करता है ऐसा मनुष्य ही ज्ञानशील आदि गुणोंकी आसक्तिसे संसार-सागरको तैर सकता है ॥७६॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! विद्वानोंको यह समझ लेना चाहिए कि महाप्रतापी केवली आदि मध्य और अवसानमें अर्थात् प्रत्येक समय सब पदार्थोंके गुणोंको ग्रस्त करते हैं—जानते हैं ॥७७॥ हे राजन् ! अब इसके आगे सीतेन्द्रने जो पूछा और केवलीने जो उत्तर दिया वह सब कहूँगा ॥७८॥

सीतेन्द्रने केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! हे सर्वज्ञ ! ये दशरथ आदि भव्य जीव कहाँ हैं ? तथा लवण और अंकुशकी आपने कौन-सी गति देखी है ? अर्थात् ये कहाँ उत्पन्न होंगे ? ॥७९॥ तब केवलीने कहा कि राजा दशरथ आनत स्वर्गमें देव हुए हैं । इनके सिवाय सुमित्रा, कैकयी,

जनकः कनकश्रैव सम्यग्दर्शनतत्परः^१ । एते स्वशक्तियोगेन कर्मणा तुल्यभूतयः ॥८१॥
 ज्ञानदर्शनतुल्यौ द्वौ भ्रमणौ लवणाङ्कुशौ । विरजस्कौ महाभागौ यास्यतः पद्मक्षयम् ॥८२॥
 इत्युक्ते हर्षतोऽन्यन्तममरेन्द्रो महाधृतिः । संस्मृत्य भ्रातरं स्नेहादपृच्छत्तस्य चेष्टितम् ॥८३॥
 भ्राता तवापि इत्युक्ते सीतेन्द्रो दुःखितोऽभवत् । कृताञ्जलिपुटोऽपृच्छज्जातः क्वेति मुनीश्वर ॥८४॥
 पद्मनाभस्ततोऽवोचदच्युतेन्द्र मत्तं शृणु । चेष्टितेन गतो येन यत्पदं तव सोदरः ॥८५॥
 अयोध्यायां कुलपतिर्वहुकोटिधनेश्वरः । मकरीदयिता कामभोगो वज्राङ्कसंज्ञकः ॥८६॥
 अतिक्रान्तो बहुसुतैः पार्थिवोपमविभ्रमः । श्रुत्वा निर्वासितां सीतामिति चिन्तासमाश्रितः ॥८७॥
 साऽन्यन्तसुकुमाराङ्गा गुणदिव्यैरलङ्कृता । कान्तु प्राप्ता वनेऽवस्थामिति दुःखी ततोऽभवत् ॥८८॥
 स्थिताद्द्रव्यहृदयश्चासौ वैराग्यं परमाश्रितः । द्युतिसंज्ञमुनेः पार्श्वे निष्क्रान्तो द्विष्टसंस्तुतिः ॥८९॥
 अशोकतिलकाभिल्यौ विनीती तस्य पुत्रकौ । निमित्तज्ञं द्युतिं प्रष्टुं पितरं जातुचिह्नतौ ॥९०॥
 तत्रैव च तमालोक्य स्नेहाद् वैराग्यतोऽपि च । द्युतिमूले व्यतिक्रान्तावशोकतिलकावपि ॥९१॥
 द्युतिः परं तपः कृत्वा प्राप्य संक्षयमायुषः । दत्त्वा सानुजनोरकण्ठामूर्ध्वं प्रैवेयकं गतः ॥९२॥
 यथागुरुसमादिष्टं पिता-पुत्रौ त्रयस्तु ते । ताम्रचूडपुरं प्राप्नो प्रस्थितौ वन्दितुं जिनम् ॥९३॥
 पञ्चाशद्योजनं तत्र सिकताणवमीयुषाम् । अप्राप्तानां च तान्वन्तं घनकालः समागतः ॥९४॥

सुप्रजा (सुप्रभा) और अपराजिता (कौशल्या), जनक तथा कनक ये सभी सम्यग्दृष्टि अपने-अपने सामर्थ्यके अनुसार बँधे हुए कर्मसे उसी आनत स्वर्गमें तुल्य विभूतिके धारक देव हैं ॥८०-८१॥ ज्ञान और दर्शनकी अपेक्षा समानता रखनेवाले लवण और अंकुश नामक दोनों महाभाग मुनि कर्मरूपी धूलिसे रहित हो अविनाशी पद प्राप्त करेंगे ॥८२॥ केवलीके इस प्रकार कहनेपर सीतेन्द्र हर्षसे अत्यधिक सन्तुष्ट हुआ । तदनन्तर उसने स्नेह वश भाई—भामण्डलका स्मरणकर उसकी चेष्टा पूछी ॥८३॥ इसके उत्तरमें तुम्हारा भाई भी, इतना कहते ही सीतेन्द्र कुछ दुःखी हुआ । तदनन्तर उसने हाथ जोड़कर पूछा कि हे मुनिराज, वह कहाँ उत्पन्न हुआ है ? ॥८४॥ तदनन्तर पद्मनाभ (राम) ने कहा कि हे अच्युतेन्द्र ! तुम्हारा भाई जिस चेष्टासे जहाँ उत्पन्न हुआ है उसे कहता हूँ सो सुन ॥८५॥

अयोध्या नगरीमें अपने कुलका स्वामी अनेक करोड़का धनी, तथा मकरी नामक प्रियाके साथ कामभोग करनेवाला एक 'वज्राङ्क' नामका सेठ था ॥८६॥ उसके अनेक पुत्र थे तथा वह राजाके समान वैभवकी धारण करनेवाला था । सीताको निर्वासित सुन वह इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ कि 'अत्यन्त सुकुमाराङ्गी तथा दिव्य गुणोंसे अलङ्कृत सीता वनमें किस अवस्थाको प्राप्त हुई होगी' ? इस चिन्तासे वह अत्यन्त दुःखी हुआ ॥८७-८८॥ तदनन्तर जिसके पास दयालु हृदय विद्यमान था, और जिसे संसारसे द्वेष उत्पन्न हो रहा था ऐसा वह वज्राङ्क सेठ परम वैराग्यको प्राप्त हो द्युति नामक मुनिराजके पास दीक्षित हो गया । इसकी दीक्षाका हाल घरके लोगोंको विदित नहीं था ॥८९॥ उसके अशोक और तिलक नामके दो चिनयवान् पुत्र थे, सो वे किसी समय निमित्तज्ञानी द्युति मुनिराजके पास अपने पिताका हाल पूछनेके लिए गये ॥९०॥ वहीं पिताको देखकर स्नेह अथवा वैराग्यके कारण अशोक तथा तिलक भी उन्हीं द्युति मुनिराजके पादमूलमें दीक्षित हो गये ॥९१॥ द्युति मुनिराज परम तपश्चरणकर तथा आयुका क्षय प्राप्तकर शिष्यजनोंको उत्कण्ठा प्रदान करते हुए ऊर्ध्वं प्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए ॥९२॥ यहाँ पिता और दोनों पुत्र मिलकर तीनों मुनि, गुरु के कहे अनुसार प्रवृत्ति करते हुए जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना करनेके लिए ताम्रचूडपुरकी ओर चले ॥९३॥ बीचमें पचास योजन प्रमाण बालूका समुद्र (रेगिस्तान) मिलता था सो वे इच्छित स्थान तक नहीं पहुँच पाये, बीचमें ही वर्षा-

तत्रैकं दुर्लभं प्राप्य ^१पात्रदानोदयोपमम् । बहुशाखोपशाखाख्यमनोकहमिमे स्थिताः ॥१५॥
 ततो जनकपुत्रेण व्रजता कोशलां पुरीम् । दृष्टास्ते मानसे चास्य जातमेतत्सुकर्मणः ॥१६॥
 इमे समयरक्षार्थमिहास्थुर्विजने वने । प्राणसाधारणोच्चारं कर्त्तारः क्व नु साधवः ॥१७॥
 इति सखिन्य चान्यन्तनिकटं परमं पुरम् । कृतं सविषयं तेन सद्विद्योदारशक्तिना ॥१८॥
 स्थाने स्थाने च घोषाद्यसन्निवेशानदर्शयत् । स्वभावापिंतरूपश्च प्राणमद् विनयी मुनीन् ॥१९॥
 काले देशे च भावेन ^३सतो गोचरमागतान् । ^४पर्युपास्त यथान्यायं सम्मदी परिवर्गवान् ॥१००॥
 पुनश्चानुदकेऽरण्ये पर्युपासिष्ट संयतान् । अन्यथा भुवि सङ्कष्टान् सावूनङ्कितसंयमान् ॥१०१॥
^५पुण्यसागरवाणिज्यसेवका मुक्तिभावेन । दृष्टान्तत्वेन वक्तव्यास्तस्य धर्मानुरागिनः ॥१०२॥
 अन्यदोद्यानयातोऽसौ^६ यथासुखमवस्थितः । शयने श्रीमान्मालिन्या पविना कालमाहृतः ॥१०३॥
 ततः साधुप्रदानोत्थपुण्यतो मेरुदक्षिणे । कुरी जातस्त्रिपत्यायुर्विव्यलक्षणभूषितः ॥१०४॥
 पात्रदानफलं तत्र महाविपुलतां गतम् । समं सुन्दरमालिन्या मुकुतेऽसौ परमद्युतिः ॥१०५॥
 पात्रभूतान्नदानाच्च शक्याख्यास्तर्पयन्ति ते । ते भोगभूमिमासाद्य प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥१०६॥
 स्वर्गं भोगं प्रभुञ्जति भोगभूमेरच्युता नराः । तत्रस्थानां स्वभावोऽयं दानैर्भोगस्य सत्पदः ॥१०७॥

काल आगया ॥६४॥ उस रेगिस्तानमें जिसका मिलना अत्यन्त कठिन था तथा जो पात्र दानसे प्राप्त होनेवाले अभ्युदयके समान जान पड़ता था एवं जो अनेक शाखाओं और उपशाखाओंसे युक्त था ऐसे एक वृक्षको पाकर उसके आश्रय उक्त तीनों मुनिराज ठहर गये ॥६५॥

तदनन्तर अयोध्यापुरीको जाते समय जनकके पुत्र भामण्डलने वे तीनों मुनिराज देखे ; देखते ही इस पुण्यात्माके मनमें यह विचार आया कि ये मुनि, आचारकी रक्षाके निमित्त इस निर्जन वनमें ठहर गये हैं परन्तु प्राण धारणके लिए आहार कहाँ करेंगे ? ॥६६-६७॥ ऐसा विचारकर सद्विद्याकी उत्तम शक्तिसे युक्त भामण्डलने बिलकुल पासमें एक अत्यन्त सुन्दर नगर बसाया जो सब प्रकारकी सामग्रीसे सहित था, स्थान-स्थानपर उसने घोष—अहीर आदिके रहनेके ठिकाने दिखलाये । तदनन्तर अपने स्वाभाविक रूपमें स्थित हो उसने विनय पूर्वक मुनियोंके लिए नमस्कार किया ॥६८-६९॥ वह अपने परिजनोंके साथ वहीं रहने लगा तथा योग्य देश कालमें दृष्टिगोचर हुए सत्पुरुषोंको भावपूर्वक न्यायके साथ हर्षसहित भोजन कराने लगा ॥१००॥ इस निर्जन वनमें जो मुनिराज थे उन्हें तथा पृथिवीपर उच्छुष्ट संयमकी धारण करनेवाले जो अन्य विपत्तिग्रस्त साधु थे उन सबको वह आहार आदि देकर संतुष्ट करने लगा ॥१०१॥ मुक्तिकी भावना रख पुण्यरूपी सागरमें वाणिज्य करनेवाले मनुष्योंके जो सेवक हैं धर्मानुरागी भामण्डलको उन्हींका दृष्टान्त देना चाहिए । अर्थात् मुनि तो पुण्यरूपी सागरमें वाणिज्य करनेवाले हैं और भामण्डल उनके सेवकके समान हैं ॥१०२॥ किसी एक दिन भामण्डल उद्यानमें गया था वहाँ अपनी मालिनी नामक स्त्रीके साथ वह शय्यापर सुखसे पड़ा था कि अचानक वज्रपात होनेसे उसकी मृत्यु हो गई ॥१०३॥ तदनन्तर मुनि-दानसे उत्पन्न पुण्यके प्रभावसे वह मेरु पर्वतके दक्षिणमें विद्यमान देवकुरुमें तीन पत्नियोंकी आयुवाला दिव्य लक्षणोंसे भूषित उत्तम आर्य हुआ ॥१०४॥ इस तरह उत्तम दीप्तिकी धारण करनेवाला वह आर्य, अपनी सुन्दर मालिनी स्त्रीके साथ उस देवकुरुमें महाविस्तारको प्राप्त हुए पात्रदानके फलका उपभोग कर रहा है ॥१०५॥ जो शक्तिसम्पन्न मनुष्य, पात्रोंके लिए अन्न देकर संतुष्ट करते हैं वे भोगभूमि पाकर परम पदको प्राप्त होते हैं ॥१०६॥ भोगभूमिसे च्युत हुए मनुष्य स्वर्गमें भोग भोगते

१. प्रान्तदीनोच्चयोपमम् म० । प्रान्तदीनोच्चयोपमम् (?) ज०, क० । २. सविषसम्पन्नं (?) म०, ३. सतां गोचरमागतं म० । सतां गोचरमागतं ज० । ४. भोजयामास, श्री० टि० । ५. ततो नगरवाणिज्य-ज०, पुण्यसागर-ख० । ६. शक्तिभावना क० । ७. प्रातोऽसौ म० ।

दानतो 'सातप्राप्तिश्च स्वर्गमोक्षकारणम् । इति श्रुत्वा पुनः पृष्टो रावणो बालुकां गतः ॥१०८॥
 तथा नारायणो ज्ञातो लक्ष्मणोऽधोगतिं गतः । उत्थाय दुरितस्यान्ते नाथ कोऽनुभविष्यति ॥१०९॥
 प्रापत्यस्यते गतिं कां वा दशाननचरः २ प्रभो । को नु वाऽहं भविष्यामीत्येवमिच्छामि वेदितुम् ॥११०॥
 इति स्वयंप्रभे ३ प्रश्नं कृत्वा विदितचेतसि । सर्वज्ञो वचनं प्राह भविष्यद्भवसम्भवम् ॥१११॥
 भविष्यतः स्वकर्मभ्युदयो रावणलक्ष्मणौ । तृतीयनरकादेत्य अनुपूर्वाच्च मन्दरात् ॥११२॥
 ऋणु सीतेन्द्र निजिंथ दुःखं नरकसम्भवम् । नगर्यां विजयावत्यां मनुष्यत्वेन चास्यते ॥११३॥
 गृहिण्यां रोहिणीनाम्न्यां सुनन्दस्य कुटुम्बिनः । सम्यग्दृष्टेः प्रियौ पुत्रौ क्रमेणैतौ भविष्यतः ॥११४॥
 अर्हदासर्विदासाख्यौ वेदितव्यौ च सद्गुणैः । अस्यन्तमहचेतस्कौ श्लाघनीयक्रियापरौ ॥११५॥
 ४ गृहस्थविधिनाभ्यस्यै देवदेवं जिनेश्वरम् । अणुव्रतधरौ काले सुप्रीवाणौ भविष्यतः ॥११६॥
 पञ्चेन्द्रियसुखं तत्र चिरं प्राप्य मनोहरम् । च्युत्वा भूयश्च तत्रैव जनिष्येते महाकुले ॥११७॥
 सद्दानेन हरिक्षेत्रं प्राप्य च त्रिदिवं गतौ । प्रच्युतौ पुरि तत्रैव नृपपुत्रौ भविष्यतः ॥११८॥
 ५ तातः कुमारकीर्त्याख्यौ लक्ष्मीस्तु जननी तयोः । वीरौ कुमारकावेतौ जयकान्तजयप्रभौ ॥११९॥
 ततः परं तपः कृत्वा लान्तवं कल्पमाश्रितौ । विबुधोत्तमतां गत्वा भोष्येते तद्भवं सुखम् ॥१२०॥
 स्वप्नभरतक्षेत्रे च्युतः सन्नारणाच्युतात् । सर्वरत्नपतिः श्रीमान् चक्रवर्ती भविष्यसि ॥१२१॥
 तौ च स्वर्गच्युतौ देवौ पुण्यनिस्यन्दतेजसा । इन्द्राभ्योदरथाभिख्यौ तव पुत्रौ भविष्यतः ॥१२२॥

हैं क्योंकि वहाँके मनुष्योंका यह स्वभाव ही है । यथार्थमें दानसे भोगकी संपदाएँ प्राप्त होती हैं ॥१०७॥ दानसे सुखकी प्राप्ति होती है और दान स्वर्ग तथा मोक्षका प्रधान कारण है ; इस प्रकार भामण्डलके दानका माहात्म्य सुनकर सीतेन्द्रने बालुकाप्रभा पृथिवीमें पड़े हुए रावण और उसी अधोभूमिमें पड़े लक्ष्मणके विषयमें पूछा कि हे नाथ ! यह लक्ष्मण पापका अन्त होने-पर नरकसे निकलकर क्या होगा ? हे प्रभो ! वह रावणका जीव कौन गतिको प्राप्त होगा और मैं स्वयं इसके बाद क्या होऊँगा ? यह सब मैं जानना चाहता हूँ ॥१०८-११०॥ इस प्रकार प्रश्नकर जब स्वयंप्रभ नामका सीतेन्द्र उत्तर जाननेके लिए उद्यत चित्त हो गया तब सर्वज्ञ देवने उनके आगामी भवोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाले वचन कहे ॥१११॥

उन्होंने कहा कि हे सीतेन्द्र ! सुन, स्वकृत कर्मके अभ्युदयसे सहित रावण और लक्ष्मण, नरक सम्बन्धी दुःख भोगकर तथा तीसरे नरकसे निकलकर मेरुपर्वतसे पूर्वकी ओर विजयावती नामक नगरीमें सुनन्द नामक सम्यग्दृष्टि गृहस्थकी रोहिणी नामक स्त्रीके क्रमशः अर्हदास और ऋषिदास नामके पुत्र होंगे । ये पुत्र सद्गुणोंसे प्रसिद्ध, अत्यधिक उत्सवपूर्ण चित्तके धारक और प्रशंसनीय क्रियाओंके करनेमें तत्पर होंगे ॥११२-११५॥ वहाँ गृहस्थकी विधिसे देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्की पूजाकर अणुव्रतके धारी होंगे और अन्तमें मरकर उत्तम देव होंगे ॥११६॥ वहाँ चिरकाल तक पञ्चेन्द्रियोंके मनोहर सुख प्राप्तकर वहाँसे च्युत हो उसी महाकुलमें पुनः कल्प होंगे ॥११७॥ फिर पात्रदानके प्रभावसे हरिक्षेत्र प्राप्तकर स्वर्ग जावेंगे । तदनन्तर वहाँसे च्युत हो उसी नगरमें राजपुत्र होंगे ॥११८॥ वहाँ इनके पिताका नाम कुमारकीर्ति और माताका नाम लक्ष्मी होगा तथा स्वयं ये दोनों कुमार जयकान्त और जयप्रभ नामके धारक होंगे ॥११९॥ तदनन्तर तप करके लान्तव स्वर्ग जावेंगे । वहाँ उत्तम देवपद प्राप्तकर तत्सम्बन्धी सुखका उपभोग करेंगे ॥१२०॥ हे सीतेन्द्र ! तू आरणाच्युत कल्पसे च्युत हो इस भरतक्षेत्रके रत्नस्थलपुर नामक नगरमें सब रत्नोंका स्वामी चक्रवर्ती नामका श्रीमान् चक्रवर्ती होगा ॥१२१॥ रावण और लक्ष्मणके जीव जो लान्तव स्वर्गमें देव हुए थे वे वहाँसे च्युत हो पुण्य रसके प्रभावसे तुम्हारे क्रमशः इन्द्ररथ

१. भोग-म० । २. चरोपमम् म० । ३. सोऽयं प्रभोः म० । ४. एष श्लोकः म पुस्तके नास्ति ।
 ५. ततः कुमारकीर्त्याख्यौ म० ।

भासीत् प्रतिरिपुर्योऽसौ दशवक्त्रो महाबलः । येनेमे भारते वास्ये त्रयः खण्डा वशीकृताः ॥१२३॥
न कामयेपरस्य स्त्रीमकामामिति निश्चयः । अपि जीवितमत्याचीत्सस्यमनुपालयन् ॥१२४॥
सोऽयमिन्द्ररथाभिख्यो भूत्वा धर्मपरायणः । प्राप्य श्रेष्ठान् भवान् कांश्चित्तिर्यङ्नरकवर्जितान् ॥१२५॥
स मानुष्यं समासाद्य दुर्लभं सर्वदेहिनाम् । तीर्थङ्कर्मसङ्घातमर्जयिष्यति पुण्यवान् ॥१२६॥
ततोऽनुक्रमतः पूजामवाप्य भुवनत्रयात् । मोहादिशत्रुसङ्घातं निहत्यार्हतमाप्स्यति ॥१२७॥
रत्नस्थलपुरे कृत्वा राज्यं चक्रथस्वसौ । वैजयन्तेऽहमिन्द्रस्वमवाप्स्यति तपोबलात् ॥१२८॥
स त्वं सस्य जिनेन्द्रस्य प्रच्युतः स्वर्गलोकतः । आद्यो गणधरः श्रीमान्द्विप्रासो भविष्यति ॥१२९॥
ततः परमनिर्वाणं यास्यसीत्यमरेश्वरः । श्रुत्वा यथौ परां तुष्टिं भावितेनाऽन्तरात्मना ॥१३०॥
अयं तु लक्ष्मणो भावः सर्वज्ञेन निवेदितः । अभोदरथनामासौ भूत्वा चक्रधराऽमजः ॥१३१॥
चारुन् कांश्चिद्भवान् भ्रान्त्वा धर्मसङ्गतचेष्टितः । विदेहे पुष्करद्वीपे शतपत्राङ्गये पुरे ॥१३२॥
लक्ष्मणः स्वोचिते काले प्राप्य जन्माभिषेचनम् । चक्रपाणिस्वमहर्षवं लब्ध्वा निर्वाणमेष्यति ॥१३३॥
सम्पूर्णैः सप्तशिरान्द्वैरहमप्यपुनर्भवः । गमिष्यामि गता यत्र साधवो सरतादयः ॥१३४॥
भविष्यद्भववृत्तान्तमवगम्य सुरोत्तमः । अपेतसंशयः श्रीमान्महाभावनयान्वितः ॥१३५॥
परिणूय नमस्कारस्य पद्मनाभं पुनः पुनः । तस्मिन्नुद्यति चैत्यानि वन्दितुं विहृतिं श्रितः ॥१३६॥
जिननिर्वाणधामानि परं भक्तः समर्चयन् । तथा नन्दीश्वरद्वीपे जिनेन्द्राचार्यमहर्षिकः ॥१३७॥

और मेघरथ नामक पुत्र होंगे ॥१२२॥ जो पहले दशानन नामका तेरा महाबलवान् शत्रु था, जिसने भरतक्षेत्रके तीन खण्ड वश कर लिये थे, और जिसके यह निश्चय था कि जो परस्त्री सुम्ने नहीं चाहेगी उसे मैं नहीं चाहूँगा । निश्चय ही नहीं, जिसने जीवन भले ही छोड़ दिया था पर इस सत्यव्रतको नहीं छोड़ा था किन्तु उसका अच्छी तरह पालन किया था । वह रावणका जीव धर्मपरायण इन्द्ररथ होकर तिर्यञ्च और नरकको छोड़ अनेक उत्तम भव पा मनुष्य होकर सर्व प्राणियोंके लिए दुर्लभ तीर्थकर नाम कर्मका बन्ध करेगा । तदनन्तर वह पुण्यात्मा अनुक्रमसे तीनों लोकोंके जीवोंसे पूजा प्राप्तकर मोहादि शत्रुओंके समूहको नष्टकर अर्हन्त पद प्राप्त करेगा ॥१२३-१२७॥ और तेरा जीव जो चक्रथ नामका चक्रधर हुआ था वह रत्नस्थल-पुरमें राज्यकर अन्तमें तपोबलसे वैजयन्त विमानमें अहमिन्द्र पदको प्राप्त होगा ॥१२८॥ वहीं तू स्वर्गलोकसे च्युत हो उक्त तीर्थकरका ऋद्धिधारी श्रीमान् प्रथम गणधर होगा ॥१२९॥ और उसके बाद परम निर्वाणको प्राप्त होगा । इस प्रकार सुनकर सीताका जीव सुरेन्द्र, भावपूर्ण अन्तरात्मासे परमसंतोषको प्राप्त हुआ ॥१३०॥ सर्वज्ञ देवने लक्ष्मणके जीवका जो निरूपण किया था, वह मेघरथ नामका चक्रवर्तीका पुत्र होकर धर्मपूर्ण आचरण करता हुआ कितने ही उत्तम भवोंमें भ्रमणकर पुष्करद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रके शतपत्र नामा नगरमें अपने योग्य समयमें जन्माभिषेक प्राप्तकर तीर्थकर और चक्रवर्ती पदको प्राप्त हो निर्वाण प्राप्त करेगा ॥१३१-१३३॥ और मैं भी सात वर्ष पूर्ण होते ही पुनर्जन्मसे रहित हो वहाँ जाऊँगा जहाँ भरत आदि मुनिराज गये हैं ॥१३४॥

इस प्रकार आगामी भवोंका वृत्तान्त जानकर जिसका सब संशय दूर हो गया था, तथा जो महाभावनासे सहित था ऐसा सुरेन्द्र सीतेन्द्र, श्री पद्मनाभ केवलीकी बार-बार स्तुतिकर तथा नमस्कारकर उनके अभ्युदय युक्त रहते हुए चैत्यालयोंकी वन्दना करनेके लिए चला गया ॥१३५-१३६॥ वह अत्यन्त भक्त हो तीर्थकरोंके निर्वाण-क्षेत्रोंकी पूजा करता, नन्दीश्वर द्वीपमें जिन-प्रतिभाओंकी अर्चा करता, देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्को निरन्तर मनमें धारण करता

देवदेवं जिनं विभ्रन्मानसेऽसावनारतम् । केवलित्वमिव प्राप्तः परमं शर्म धारयन् ॥१३८॥
 लुपितं कल्पं कर्म मन्यमानः सुसम्मदः । सुवृचः स्वर्गमारोहत् सुरसङ्घसमावृतः ॥१३९॥
 स्वर्गं तेन तदा याता^१ भ्रातृस्नेहात् पुरातनात् । भामण्डलचरो दृष्टः कुरौ सम्भाषितः^२ प्रियम् ॥१४०॥
 तन्नाश्याच्युते कल्पे सर्वकामगुणप्रदे । अमरीणां सहस्राणि रमयन्नीश्वरः स्थितः ॥१४१॥
 दश सप्त च वर्षाणां सहस्राणि बलायुषः । चापानि षोडशोत्सेधः सानुजस्य प्रकीर्तितः ॥१४२॥
 ईदृशमवधार्येदमन्तरं पुण्यपापयोः । पापं दूरं परिस्थय वरं पुण्यमुपाजितम् ॥१४३॥

आर्यागीतिः

परयत् बलेन विभुना जिनेन्द्रवरशासने धृतिं प्राप्तेन ।
 जन्मजरामरणमहारिपवो बलिनः पराजिताः पद्मेन ॥१४४॥
 स हि जन्मजरामरणव्युच्छेदाश्रित्यपरमकैवल्यसुखम् ।
 अतिशयदुर्लभमनघं सम्प्राप्तो जिनवरप्रसादादतुलम् ॥१४५॥
 मुनिदेवासुरवृषभैः स्तुतमहितनमस्कृतो निष्कृदितशेषः ।
 प्रमदशतैरुपगीतो विद्याधरपुष्पवृष्टिभिर्दुर्लभ्यः ॥१४६॥
 आराध्य जैनसमयं परमविधानेन पञ्चविंशत्यब्दान् ।
 प्राप त्रिभुवनशिखरं^३ सिद्धपदं सर्वजीवनिकायललामम् ॥१४७॥
 व्यपगतभवहेतुं तं योगधरं शुद्धभावहृदयधरं वीरम् ।
 अनगारवरं भक्त्या प्रणमत रामं मनोऽभिरामं शिरसा ॥१४८॥

स्वयं केवली पदको प्राप्त हुए के समान परम सुखका अनुभव करता, पाप कर्मको भस्मीभूत मानता, हर्षित तथा सदाचारसे युक्त होता और देवोंके समूहसे आवृत होता हुआ स्वर्गलोक बला गया ॥१३७-१३९॥ उस समय उसने स्वर्ग जाते-जाते भाईके पुरातन स्नेहके कारण देवकुलमें भामण्डलके जीवको देखा और उसके साथ प्रिय वार्तालाप किया ॥१४०॥ वह सीतेन्द्र सर्व मनोरथोंकी पूर्ण करनेवाले उस आरणाच्युत कल्पमें हजारों देवियोंके साथ रमण करता हुआ रहता था ॥१४१॥ रामकी आयु सत्रह हजार वर्षकी तथा उनके और लक्ष्मणके शरीरकी ऊँचाई सोलह धनुषकी थी ॥१४२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह पुण्य और पापका अन्तर जानकर पापको दूरसे ही छोड़कर पुण्यका ही संचय करना उत्तम है ॥१४३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! देखो जिनेन्द्र देवके उत्तम शासनमें धैर्यको प्राप्त हुए बलभद्र पदके धारी विभु रामचन्द्रने जन्म-जरा-मरण रूपी महाबलवान् शत्रु पराजित कर दिये ॥१४४॥ वे रामचन्द्र, श्री जिनेन्द्र देवके प्रसादसे जन्म-जरा-मरणका व्युच्छेदकर अत्यन्त दुर्लभ, निर्दोष, अनुपम, नित्य और उत्कृष्ट कैवल्य सुखको प्राप्त हुए ॥१४५॥ मुनोन्द्र देवेन्द्र और असुरेन्द्रोंके द्वारा जो स्तुत, महित तथा नमस्कृत हैं, जिन्होंने दोषोंको नष्ट कर दिया है, जो सैकड़ों प्रकारके हर्षसे उपगीत हैं तथा विद्याधरोंकी पुष्प-वृष्टियोंकी अधिकतासे जिनका देखना भी कठिन है ऐसे श्रीराम महामुनि, पच्चीस वर्ष तक उत्कृष्ट विधिसे जैनाचारकी आराधनाकर समस्त जीव समूहके आभरणभूत, तथा सिद्ध परमेष्ठियोंके निवास क्षेत्र स्वरूप तीन लोकके शिखरको प्राप्त हुए ॥१४६-१४७॥ हे भव्य जनो ! जिनके संसारके कारण—मिथ्या दर्शनादिभाव नष्ट हो चुके थे, जो उत्तम योगके धारक थे, शुद्ध भाव और शुद्ध हृदयके धारक थे, कर्मरूपी शत्रुओंके जीतनेमें वीर थे, मनको आनन्द देनेवाले थे और मुनियोंमें श्रेष्ठ थे उन भगवान् रामको शिरसे

विजिततरुणाकंतेजसमधरीकृतपूर्णचन्द्रमण्डलं कान्तम् ।
 सर्वोपमानभावव्यतिगमरूपातिरूढमूर्जितचरितम् ॥१४६॥
 पूर्वरनेहेन तथा सीतादेवाधिपेन धर्मस्थतया ।
 परमहितं परमर्द्धिप्राप्तं पदमं यतिप्रधानं नमत ॥१५०॥
 योऽसौ बलदेवानामष्टमसङ्ख्यो नितान्तशुद्धशरीरः ।
 श्रीमाननन्तबलभुक्तियमशतसहस्रभूषितो गतविकृतिः ॥१५१॥
 तमनेकशीलगुणशतसहस्रधरमतिशुद्धकीर्त्तिमुदारम् ।
 ज्ञानप्रदीपममलं प्रणमत रामं त्रिलोकनिर्गतयशसम् ॥१५२॥
 निर्दग्धकर्मपटलं गम्भीरगुणार्णवं विमुक्तज्ञोभम् ।
 मन्दरमिव निष्कम्पं प्रणमत रामं यथोक्तचरितश्रमणम् ॥१५३॥
 विनिहस्य कषायरिपून् येन त्यक्तान्यशेषतो द्वन्द्वानि ।
 त्रिभुवनपरमेश्वरतां यश्च प्राप्तो जिनेन्द्रशासनसक्तः ॥१५४॥
 निर्धूतकलुपरजसं सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्रमयम् ।
 तं प्रणमत भवमथनं श्रमणवरं सर्वदुःखसंशयसक्तम् ॥१५५॥
 चेष्टितमनघं चरितं करणं चारित्रमित्यमी यच्छ्लब्दाः ।
 पर्याया रामायणमित्युक्तं तेन चेष्टितं रामस्य ॥१५६॥
 बलदेवस्य सुचरितं दिव्यं यो भावितेन मनसा नित्यम् ।
 विस्मयहर्षाविष्टस्वान्तः प्रतिदिनमपेतशङ्कितकरणः ॥१५७॥
 वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्वृद्धिमीयते पुण्यं च ।
 आकृष्टखड्गहस्तो रिपुरपि न करोति वैरमुपशममेति ॥१५८॥

प्रणाम करो ॥१४८॥ जिन्होंने तरुण सूर्यके तेजको जीत लिया था, जिन्होंने पूर्ण चन्द्रमाके मण्डलको नीचा कर दिया था, जो अत्यन्त सुदृढ था, पूर्व स्नेहके वश अथवा धर्ममें स्थित होनेके कारण सीताके जीव प्रतीन्द्रने जिनकी अत्यधिक पूजा की थी, तथा जो परम ऋद्धिको प्राप्त थे ऐसे मुनिप्रधान श्रीरामचन्द्रको नमस्कार करो ॥१४६-१५०॥ जो बलदेवोंमें आठवें बलदेव थे, जिनका शरीर अत्यन्त शुद्ध था, जो श्रीमान् थे, अनन्त बलके धारक थे, हजारों नियमोंसे भूषित थे और जिनके सब विकार नष्ट हो गये थे ॥१५१॥ जो अनेक शील तथा लाखों उदारगुणोंके धारक थे, जिनकी कीर्ति अत्यन्त शुद्ध थी, जो उदार थे, ज्ञानरूपी प्रदीपसे सहित थे, निर्मल थे और जिनका उज्ज्वल यश तीन लोकमें फैला हुआ था उन श्रीरामको प्रणाम करो ॥१५२॥ जिन्होंने कर्मपटलको जला दिया था, जो गम्भीर गुणोंके सागर थे, जिनका ज्ञोभ छूट गया था, जो मन्दरगिरिके समान अकम्प थे तथा जो मुनियोंका यथोक्त चारित्र पालन करते थे उन श्रीरामको नमस्कार करो ॥१५३॥ जिन्होंने कषायरूपी शत्रुओंको नष्टकर सुख-दुःखादि समस्त द्वन्द्वोंका त्याग कर दिया था, जो तीन लोककी परमेश्वरताको प्राप्त थे, जो जिनेन्द्र देवके शासनमें लीन थे, जिन्होंने पापरूपी रज उड़ा दी थी, जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रसे तन्मय हैं, संसारको नष्ट करनेवाले हैं, तथा समस्त दुःखोंका क्षय करनेमें तत्पर हैं ऐसे मुनिवर श्रीरामको प्रणाम करो ॥१५४-१५५॥

चेष्टित, अनघ, चरित, करण और चारित्र ये सभी शब्द यतश्च पर्यायवाचक शब्द हैं अतः रामकी जो चेष्टा है वही रामायण कही गई है ॥१५६॥ जिसका हृदय आश्चर्य और हर्षसे आक्रान्त है तथा जिसके अन्तःकरणसे सब शङ्काएँ निकल चुकी हैं ऐसा जो मनुष्य प्रतिदिन भावपूर्ण मनसे बलदेवके चरित्रको बाँचता अथवा सुनता है उसकी आयु वृद्धिको प्राप्त होती है,

किं चान्यद्भूमार्थी लभते धर्मं यशः परं यशसोऽर्थी ।
 राज्यभ्रष्टो राज्यं प्राप्नोति न संशयोऽत्र कश्चिद्व्यस्यः ॥१५३॥
 इष्टसमायोगार्थी लभते तं चिप्रतो धनं धनार्थी ।
 जायार्थी वरपत्नीं पुत्रार्थी गोत्रनन्दनं प्रवरपुत्रम् ॥१६०॥
 अक्लिष्टकर्मविधिना लाभार्थी लाभमुत्तमं सुखजननम् ।
 कुशली विदेशगमने स्वदेशगमनेऽथवापि सिद्धसर्माहः ॥१६१॥
 व्याधिरूपैति प्रशमं ग्रामनगरवासिनः सुरास्तुष्यन्ति ।
 नक्षत्रैः सह कुटिला अपि भान्वाद्या ग्रहा भवन्ति प्रीताः ॥१६२॥
 दुश्चित्तानि दुर्भावितानि दुष्कृतशतानि यान्ति प्रलयम् ।
 यत् किञ्चिदपरमशिवं तत्सर्वं क्षयमुपैति पद्मकथाभिः ॥१६३॥
 यद्वा निहितं हृदये साधु तदाप्नोति रामकीर्तनासक्तः ।
 इष्टं करोति भक्तिः सुदृढा सर्वज्ञभावगोचरनिरता ॥१६४॥
 भवशतसहस्रसञ्चितमसौ हि दुरितं तृणैडि जिनवरभक्त्या ।
 व्यसनार्णवमुत्तीर्य प्राप्नोत्यर्हस्पदं सुभावः क्षिप्रम् ॥१६५॥

शार्दूलचिक्रीडितम्

एतत् तत्सुसमाहितं सुनिपुणं दिव्यं पवित्राक्षरं
 नानाजन्मसहस्रसञ्चितघनक्लेशौघनिर्णायनम् ।
 आख्यानैर्विविधैश्चितं सुपुरुषव्यापारसङ्कीर्तनं
 भव्याम्भोजपरग्रहर्षजननं सङ्कीर्तितं भक्तिः ॥१६६॥

पुण्य बढ़ता है, तथा तलवार खींचकर हाथमें धारण करनेवाला भी शत्रु उसके साथ वैर नहीं करता है, अपितु शान्तिको प्राप्त हो जाता है ॥१५७-१५८॥ इसके सिवाय इसके बाँचने अथवा सुननेसे धर्मका अभिलाषी मनुष्य धर्मको पाता है, यशका अभिलाषी परमयशको पाता है, और राज्यसे भ्रष्ट हुआ मनुष्य पुनः राज्यको प्राप्त करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं करना चाहिए ॥१५९॥ इष्ट संयोगका अभिलाषी मनुष्य शीघ्र ही इष्टजनके संयोगको पाता है, धनका अर्थी धन पाता है। स्त्रीका इच्छुक उत्तम स्त्री पाता है और पुत्रका अर्थी गोत्रको आनन्दित करनेवाला उत्तम पुत्र पाता है ॥१६०॥ लाभका इच्छुक सरलतासे सुख देनेवाला उत्तम लाभ प्राप्त करता है, विदेश जानेवाला कुशल रहता है और स्वदेशमें रहनेवालेके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥१६१॥ उसकी बीमारी शान्त हो जाती है, ग्राम तथा नगरवासी देव संतुष्ट रहते हैं, या नक्षत्रोंके साथ साथ सूर्य आदि कुटिल ग्रह भी प्रसन्न हो जाते हैं ॥१६२॥ रामकी कथाओंसे श्रुतित, तथा दुर्भावित सैकड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा इनके सिवाय जो कुछ अन्य अभङ्गल हैं वे सब क्षयको प्राप्त हो जाते हैं ॥१६३॥ अथवा हृदयमें जो कुछ उत्तम बात है राम-कथाके कीर्तनमें लीन मनुष्य उसे अवश्य पाता है, सो ठीक ही है क्योंकि सर्वज्ञदेव सम्बन्धी सुदृढ भक्ति इष्टपूर्ति करती ही है ॥१६४॥ उत्तम भावको धारण करनेवाला मनुष्य, जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे लाखों भावोंमें संचित पाप कर्मको नष्ट कर देता है, तथा दुःख रूपी सागरको पारकर शीघ्र ही अर्हन्त पदको प्राप्त करता है ॥१६५॥

ग्रन्थकर्ता श्री रविषेणाचार्य कहते हैं कि बड़ी सावधानीसे जिसका समाधान बैठाया गया है, जो दिव्य है, पवित्र अक्षरोंसे सम्पन्न है, नाना प्रकारके हजारों जन्मोंमें संचित अत्यधिक क्लेशोंके समूहको नष्ट करनेवाला है, विविध प्रकारके आख्यानों-अवान्तर कथाओंसे व्याप्त है, सत्पुरुषोंकी चेष्टाओंका वर्णन करनेवाला है, और भव्य जीवरूपी कमलोंके परम हर्षको करने

निर्दिष्टं सकलैर्नतेन भुवनैः श्रीवर्द्धमानेन यत्
 तत्त्वं वासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च ।
 शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्यस्य वृत्तं मुनेः
 श्रेयःसाधुसमाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मङ्गलम् ॥१९७॥
 ज्ञाताशेषकृतान्तसन्मुनिमनःसोपानपर्वावली
 पारम्पर्यसमाधितं सुवचनं सारार्थमत्यद्भुतम् ।
 भासीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनि-
 स्तस्माह्वयमणसेनसन्मुनिरदःशिष्यो रविस्तु स्मृतम् ॥१९८॥
 सम्यग्दर्शनशुद्धिकारणगुरुश्रेयस्करं पुष्कलं
 विस्पष्टं परमं पुराणममलं श्रीमत्प्रबोधिप्रदम् ।
 रामस्याद्भुतविक्रमस्य सुकृतो माहात्म्यसङ्कीर्तनं
 श्रोतव्यं सततं विचक्षणजनैरात्मोपकारार्थिभिः ॥१९९॥

छन्दः (१)

हलचक्रभृतोर्द्विषोऽनयोश्च प्रथितं वृत्तमिदं समस्तलोके ।
 कुशलं कलुषं च तत्र बुद्ध्या शिवभारमाकुर्वतेऽशिवं विहाय ॥१७०॥
 अपि नाम शिवं गुणानुबन्धि व्यसनस्फातिकरं शिवेतरम् ।
 तद्विषयस्पृहया तदेति मैत्रीमशिवं तेन न शान्तये कदाचित् ॥१७१॥

वाला है ऐसा यह पद्मचरित मैंने भक्ति वश ही निरूपित किया है ॥१९६॥ श्री पद्ममुनिका जो चरित मूलमें सब संसारसे नमस्कृत श्रीवर्धमान स्वामीके द्वारा कहा गया, फिर इन्द्रभूति गणधरके द्वारा सुधर्मा और जम्बू स्वामीके लिए कहा गया तथा उनके बाद उनके शिष्योंके शिष्य श्री उत्तरवाग्मी अर्थात् श्रेष्ठवक्ता श्री कीर्तिधर मुनिके द्वारा प्रकट हुआ तथा जो कल्याण और साधुसमाधिकी वृद्धि करनेवाला है, ऐसा यह पद्मचरित सर्वोत्तम मङ्गल स्वरूप है ॥१९७॥ यह पद्मचरित, समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता उत्तम मुनियोंके मनकी सोपान परम्पराके समान नाना पर्वोंकी परम्परासे युक्त है, सुभाषितोंसे भरपूर है, सारपूर्ण है तथा अत्यन्त आश्चर्यकारी है । इन्द्र गुरुके शिष्य श्री दिवाकर यति थे, उनके शिष्य अर्हद्दयति थे, उनके शिष्य लक्ष्मणसेन मुनि थे और उनका शिष्य मैं रविषेण हूँ ॥१९८॥ जो सम्यग् दर्शनकी शुद्धताके कारणोंसे श्रेष्ठ है, कल्याणकारी है, विस्तृत है, अत्यन्त स्पष्ट है, उत्कृष्ट है, निर्मल है, श्री-सम्पन्न है, रत्नत्रय रूप बोधिका दायक है, तथा अद्भुत पराक्रमी पुण्यस्वरूप श्री रामके माहात्म्यका उत्तम कीर्तन करनेवाला है ऐसा यह पुराण आत्मोपकारके इच्छुक विद्वज्जनोंके द्वारा निरन्तर श्रवण करनेके योग्य है ॥१९९॥

बलभद्र नारायण और इनके शत्रु रावणका यह चरित्र समस्त संसारमें प्रसिद्ध है । इसमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके चरित्रोंका वर्णन है । इनमें बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धि द्वारा विचार कर अच्छे अंशको ग्रहण करते हैं और बुरे अंशको छोड़ देते हैं ॥१७०॥ जो अच्छा चरित्र है वह गुणोंको बढ़ानेवाला है और जो बुरा चरित्र है वह कष्टोंकी वृद्धि करनेवाला है, इनमें से जिस मनुष्यको जिस विषयकी इच्छा हो वह उसीके साथ मित्रताको करता है अर्थात् गुणोंको चाहने वाला अच्छे चरित्रसे मित्रता बढ़ाता है और कष्ट चाहनेवाला बुरे चरित्रसे मित्रता करता है ।

यदि तावदसौ नभश्चरेन्द्रो व्यसनं प्राप पराङ्गनाहिताशः ।
 निधनं गतवाननङ्गरोगः किमुतान्यो रतिरङ्गनासुभावः (?) ॥१७२॥
 सततं सुखसेवितोऽप्यसौघद् दशवक्त्रो वरकामिनीसहस्रैः ।
 अत्रितृप्तमतिर्विनाशमागादितरस्तृप्तिमुपेयतीति मोहः ॥१७३॥
 स्वकलत्रसुखं हितं रहित्वा परकान्ताभिरतिं करोति पापः ।
 व्यसनार्णवमत्युदारमेष प्रविशत्येव विशुष्कदारुकरूपः ॥१७४॥
 व्रजत स्वरिता जना भवन्तो बलदेवप्रमुखाः पदं गता यत्र ।
 जिनशासनभक्तिरागरक्ताः सुदृढं प्राप्य यथाबलं सुवृत्तम् ॥१७५॥
 सुकृतस्य फलेन जन्तुहन्त्रैः पदमाप्नोति सुसम्पदां निधानम् ।
 दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं कुगतिस्थं समुपैत्यथं स्वभावः ॥१७६॥
 कुकृतं प्रथमं सुदीर्घरोषः परपीडाभिरतिर्वचश्च रूक्षम् ।
 सुकृतं विनयः श्रुतं च शीलं सदयं वाक्यममसरः शमश्च ॥१७७॥
 न हि कश्चिद्दहो ददाति किञ्चिद्द्रविणारोग्यसुखादिकं जनानाम् ।
 अपि नाम यदा सुरा ददन्ते बहवः किन्तु विदुःखितास्तदेते ॥१७८॥
 बहुधा गदितेन किन्वनेन पदमेकं सुबुधा निबुध्य यन्नात् ।
 बहुभेदविपाककर्मसूक्तं तदुपायसिन्धिषी सदा रमध्वम् ॥१७९॥

अनुष्टुप्

उपायाः परमार्थस्य कथितास्तस्वतो बुधाः ।

सेष्यन्तां शक्तितो येन निष्कामत भवान्वात् ॥१८०॥

इससे इतना सिद्ध है कि बुरा चरित्र कभी शान्तिके लिए नहीं होता ॥१७१॥ जब कि परस्त्रीकी आशा रखनेवाला विद्याधरोंका राजा-रावण कष्टको प्राप्त होता हुआ अन्तमें मरणको प्राप्त हुआ तब साक्षात् रति-क्रीड़ा करनेवाले अन्य काम रोगीकी तो कथा ही क्या है ? ॥१७२॥ हजारों उत्तमोत्तम स्त्रियों जिसकी निरन्तर सेवा करती थीं ऐसा रावण भी जब अतृप्तबुद्धि होता हुआ मरणको प्राप्त हुआ तब अन्य मनुष्य तृप्तिको प्राप्त होगा यह कहना मोह ही है ॥१७३॥ अपनी स्त्रीके हितकारी सुखको छोड़कर जो पापी पर-स्त्रियोंमें प्रेम करता है वह सूखी लकड़ीके समान दुःखरूपी बड़े सागरमें नियमसे प्रवेश करता है ॥१७४॥ अहो भव्य जनो ! तुम लोग जिन-शासनकी भक्तिरूपी रङ्गमें रँगकर तथा शक्तिके अनुसार सुदृढ चरित्रको ग्रहणकर शीघ्र ही उस स्थानको जाओ जहाँ कि बलदेव आदि महापुरुष गये हैं ॥१७५॥ पुण्यके फलसे यह जीव उच्च पद तथा उत्तम सम्पत्तियोंका भण्डार प्राप्त करता है और पापके फलसे कुगति सम्बन्धी दुःख पाता है यह स्वभाव है ॥१७६॥ अत्यधिक क्रोध करना, परपीडामें प्रीति रखना, और रूक्ष वचन बोलना यह प्रथम कुकृत अर्थात् पाप है और विनय, श्रुत, शील, दया सहित वचन, अमात्सर्य और क्षमा ये सब सुकृत अर्थात् पुण्य हैं ॥१७७॥ अहो ! मनुष्योंके लिए धन आरोग्य तथा सुखादिक कोई नहीं देता है । यदि यह कहा जाय कि देव देते हैं तो वे स्वयं अधिक संख्यामें दुःखी क्यों हैं ? ॥१७८॥ बहुत कहनेसे क्या ? हे विद्वज्जनो ! यत्नपूर्वक एक प्रमुख आत्म पदको तथा नाना प्रकारके विपाकसे परिपूर्ण कर्मोंके स्वरसको अच्छी तरह जानकर सदा उसीकी प्राप्तिके उपायोंमें रमण करो ॥१७९॥ हे विद्वज्जनो ! हमने इस ग्रन्थमें परमार्थकी प्राप्तिके उपाय कहे हैं सो उन्हें शक्तिपूर्वक काममें लाओ जिससे संसाररूपी सागरसे पार हो

छन्दः (?)

इति जीवविशुद्धिदानदत्तं परितः शास्त्रमिदं नितान्तरम्यम् ।
सकले भुवने रविप्रकाशं स्थितमुद्योतितसर्ववस्तुसिद्धम् ॥१८१॥
द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्द्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे श्रितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥१८२॥

अनुष्टुप्

कुर्वन्वधात्र सांनिध्यं सर्वाः समप्रदेवताः । कुर्वाणाः सकलं लोकं जिनभक्तिपरायणम् ॥१८३॥
कुर्वन्तु वचनै रक्षां समये सर्ववस्तुषु । सर्वादरसमायुक्ता भव्या लोकसुवत्सलाः ॥१८४॥
व्यञ्जनान्तं स्वरान्तं वा किञ्चिन्नामेह कीर्तितम् । अर्थस्य वाचकः शब्दः शब्दो वाक्यमिति स्थितम् ॥
लक्ष्णालङ्कृती वाच्यं प्रमाणं छन्द आगमः । सर्वं चामल्लक्षितेन ज्ञेयमत्र सुखागतम् ॥१८६॥
इदमष्टादश प्रोक्तं सहस्राणि प्रमागतः । शास्त्रमानुष्टुपरलोकैस्त्रयोविंशतिसङ्गतम् ॥१८७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे बलदेवसिद्धिगमनामिधानं
नाम त्रयोविंशोत्तरशतं पर्व ॥१२३॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

सको ॥१८०॥ इस प्रकार यह शास्त्र जीवोंके लिए विशुद्धि प्रदान करनेमें समर्थ, सब ओरसे अत्यन्त रमणीय, और समस्त विश्वमें सूर्यके प्रकाशके समान सब वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाला है ॥१८१॥ जिनसूर्य श्री वर्धमान जिनेन्द्रके मोक्ष जानेके बाद एक हजार दो सौ तीन वर्ष छह माह बीत जानेपर श्री पद्ममुनिका यह चरित्र लिखा गया है ॥१८२॥ मेरी इच्छा है कि समस्त श्रुत-देवता जिन शासन देव, निखिल विश्वको जिन-भक्तिमें तत्पर करते हुए यहाँ अपना सांनिध्य प्रदान करें ॥१८३॥ वे सब प्रकारके आदरसे युक्त, लोकरनेही भव्य देव समस्त वस्तुओंके विषयमें अर्थात् सब पदार्थोंके निरूपणके समय अपने वचनोंसे आगमकी रक्षा करें ॥१८४॥ इस ग्रन्थमें व्यञ्जनान्त अथवा स्वरान्त जो कुछ भी कहा गया है वही अर्थका वाचक शब्द है, और शब्दोंका समूह ही वाक्य है, यह निश्चित है ॥१८५॥ लक्षण, अलंकार, अभिप्रेय, लक्ष्य और व्यङ्ग्यके भेदसे तीन प्रकारका वाच्य, प्रमाण, छन्द तथा आगम इन सबका यहाँ अवसरके अनुसार वर्णन हुआ है सो शुद्ध हृदयसे उन्हें जानना चाहिए ॥१८६॥ यह पद्मचरित ग्रन्थ अनुष्टुप् श्लोकोंकी अपेक्षा अठारह हजार तेईस श्लोक प्रमाण कहा गया है ॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें बलदेवकी सिद्धि-प्राप्तिका वर्णन करनेवाला एकसौ तेईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२३॥

टीकाकर्तृ प्रशस्तिः

दशार्णासरितस्तोरे पारमामो विराजते । यत्र लीलाधरो जैनो न्यवासीऽच्छावकप्रतः ॥१॥
 पुत्रास्तस्य त्रयोऽभूवन् जैनधर्मपरायणाः । गल्लीलालो ततो नन्द-लालः सद्धर्मभूषितः ॥२॥
 प्यारेलालस्ततो ज्ञेयो वासल्यामृतसागरः । गल्लीलालस्य भार्यासीजानकी जानकीसमा ॥३॥
 तयोः पुत्रास्त्रयो जाताः सौहार्दाग्नवसन्निभाः । आलम्बेन्दुरभूदाद्यो लटोरेलालनामकः ॥४॥
 मध्यमः सूनुरन्यश्च पन्नालालाभिधो बुधः । ताते दिवङ्गते माता सूनूनादाय सागरम् ॥५॥
 समागता सनाभेहिं साहाय्यं समवाप्य सा । आलम्बेन्दुस्ततो यातः स्वल्पायुयंममन्दिरम् ॥६॥
 माता विपत्तिमायाता सार्धं पुत्रद्वयेन सा । वर्णिना पूज्यपादेन पञ्जालालः प्रवेशितः ॥७॥
 सागरस्थं महाविद्यालयं प्रशाविभूषितः । माता द्वितीयपुत्रेण गृहभारं बभार सा ॥८॥
 विद्यालये पठन् पञ्जालालो विनयभूषितः । अचिरेणैव कालेन विद्वानासीद् गुरुप्रियः ॥९॥
 लोकनाथस्ततश्छेदीलालः पण्डितमण्डनः । कपिलेश्वरो मुकुन्दश्च बान्ुरामः कुशाग्रधीः ॥१०॥
 एषां पादप्रसादेन शब्दविद्यामहोदधिः । काव्यविद्यामहासिन्धुस्तेनोत्तीर्णः सुखेन हि ॥११॥
 सम्यक्कालकृतस्वान्तो दयापीयूषसागरः । दयाचन्द्रो महाप्राज्ञो धर्मन्यायमहाबुधः ॥१२॥
 धर्मन्यायगुरुस्तस्य बभूवाह्लाददायकः । धर्मे न्याये च साहित्ये 'शास्त्री' पदविभूषितः ॥१३॥
 साहित्याचार्यपदवीं लब्धवानचिरं ततः । विद्यालये स्वकीये च वर्णिना सूक्ष्मदर्शिना ॥१४॥
 कारितोऽध्यापकस्तस्मिन्नध्यापनपटुः प्रियः । सुखं विभक्तिं भारं स्व-मध्यमेन सनाभिनः ॥१५॥
 प्तस्मिन्नन्तरे क्रूर-कृतान्तेन स्वमालयम् । आनीतो मध्यमस्तस्य सनाभिः सहजप्रियः ॥१६॥
 तेन दुःखातिभारेण स्वान्ते कष्टंभरन्नसौ । चिन्तयन् कर्मवैचिष्यं चकारात्मकृतिं तथा ॥१७॥
 ग्रन्थाः सुरधितास्तेन रचनापटुबुद्धिना । केचित् सम्पादिताः केचिदनुवादेन भूषिताः ॥१८॥
 सूरिणा रविषेणेन रचितं सुरभाषया । चरितं पद्मनाभस्य लोकत्रयमणीयते ॥१९॥
 माहात्म्यं तस्य किं श्रुतः स्वरुचयाधीयतां स्वयम् । अध्येतुर्हृदयं शीघ्रं महानन्देन पूर्यते ॥२०॥
 सम्यक्त्वं जायते नूनं तस्वाध्यायपटोः सदा । टीका विरचिता तस्य पञ्जालालेन तेन हि ॥२१॥
 टीकानिर्माणवेलायामानन्दोऽलम्बितेन यः । कथ्यते स कया वाचा हृदयालयमध्यगः ॥२२॥
 भाषाढालितसप्तम्यां रविचारदिने तथा । यामिन्याः पश्चिमे यामे टीका पूर्णा बभूव सा ॥२३॥
 भूतधसुभूतयुगम् (२४८४)-वर्षे बीरालदसंज्ञिते पूर्णा । टीका बुधजनचेतः कुमुदकलापप्रहर्षिणी सेयम् ॥२४॥
 पुराणाब्धिप्रगम्योऽयमर्थवीचिविभूषितः । सर्वथा शरणमन्ये रविषेणं महाकविम् ॥२५॥
 जिनागमस्य सिध्यार्थी माभून्मे करयुगमतः । इति चिन्ताभरं चित्ते संवहामि निरन्तरम् ॥२६॥
 तथाप्येतद् विजानामि गम्भीरः शास्त्रसागरः । क्षुद्रोऽहमहपविज्ञानो गृहभारकदर्थितः ॥२७॥
 पदे पदे श्रुतिं कुर्यां ततो हे बुधबान्धवाः । अमध्वं मां, न मे चित्तं जिनवाक्यविदूषकम् ॥२८॥

ग्रन्थोऽयं समाप्तः ।

श्लोकानुक्रमणिका

[अ]					
अंशुकैनोपवीतेन	२२६	अचिन्तयच्च हा कष्टं	३५७	अतिवीर्यस्य तनयः	१९०
अकाण्डकौमुदीसर्ग-	६७	अचिन्तयच्च हा कष्ट-	१६६	अतिसम्भ्रान्तचित्तश्च	११४
अकामनिर्जरायुक्तौ	३३२	अचिन्तयदहं दीक्षां	३५०	अतिस्वल्पोऽपि सद्भावो	२७४
अकालेऽपि किल प्राप्ताः	१७७	अचिन्तितं कृत्स्नमुपैति	११७	अतुल एव भोगेषु	३४६
अकीर्तिः परमल्पापि	२०२	अचिरेण मृतश्चासौ	३३२	अतो मगधराजेन्द्र	२६३
अकूपारं समुत्तीर्य	३१४	अच्छिन्नोऽस्त्वसन्तान-	३५४	अत्यन्तदुःसहाः सन्तो	१८८
अकृताकारितां भिक्षां	१७६	अजङ्गमं यथान्येन	३०६	अत्यन्तप्रलयं कृत्वा	१५४
अक्ताः सुगन्धिभिः पथ्यैः	६८	अजत्वं च परिप्राप्तौ	१७१	अत्यन्तभैरवाकारः	१४७
अक्लिष्टकर्मविधिना	४२२	अजरामरणम्भन्यः	३७८	अत्यन्तविकलवीभूतं	३७२
अक्षाद्याः बहवः शूरा	१७	अज्ञातकुलशोलाभ्या-	२४४	अत्यन्तविमलाः शुद्धाः	१९३
अक्षोभ्ये विमले नाना	१४७	अज्ञातक्लेशसम्पर्कः	३१८	अत्यन्तसुरभिर्दिव्य-	३६
अग्रदन्च विचेतस्का	१६६	अज्ञानप्रवणीभूत-	२८३	अत्यन्ताद्भुतवीर्येण	३६५
अग्रदीत् प्रथमं सीते	२१६	अज्ञानादभिमानेन	१४६	अत्यन्ताशुचिबीभत्सं	१५१
अग्निकुण्डाद् विनिर्यात-	४११	अज्ञानमन्मत्सराद् वापि	३१५	अत्युत्तुङ्गविमानाभ-	१२०
अग्निभूतिस्ततः क्रुद्धः	३३१	अज्ञानाद्रिप्रतीकाशा-	२५	अत्र नीत्वा निशामेकां	२४५
अग्रतः प्रस्तुतोदार-	२५८	अञ्जनायाः सुतस्तस्मिन्	५७	अत्र सेनां समावेश्य	३५०
अग्रतोऽवस्थिता तस्य	२७४	अटनीं सिंहनादाख्यां	२०६	अत्रान्तरे परिप्राप्तः	३३५
अग्रतोऽवस्थितान्यस्य	२७	अट्टहासान् विमुञ्चन्तः	८६	अत्रान्तरे महातेजाः	४४१
अग्रां देवीसहस्रस्य	६६	अगुणधर्मोऽग्रधर्मश्च	१३७	अत्रान्तरे समं प्राप्ता	४०७
अग्निवारिप्रवेशादिपापं	२६६	अगुणतधरः सोऽयं	३१२	अत्रोवाच महातेजाः	३६७
अग्रे त्रिभुवनस्यास्य	२६१	अगुणतानि गृह्णीतां	३३७	अत्रान्तरे मुनिः पूर्व-	४७८
अङ्गस्येन पितृर्याल्पे	३४५	अगुणतानि सा प्राप्य	१०६	अथ काञ्चनकक्षाभिः	२५५
अङ्गुशस्यान्तिकं गत्वा	२६५	अगुणतासिदोसाङ्गो	४७	अथ केवलिनो वाणी	२६६
अङ्गोटनखरो विभ्र-	१६२	अतः परं चित्तहरं	३४१	अथ कैलासशृङ्गार्भं	३०२
अङ्गदः परिवेनाङ्गः	६६	अतः परं प्रवक्ष्यामि	४१५	अथ क्षणाद्गुपानीतां	२२५
अङ्गाथान् विषयाञ्जित्वा	१७३	अतः परं महाराज	३७	अथ ज्ञात्वा समासजां	१७८
अचलस्य समं मात्रा	१७३	अत एव नृत्येकेशो	३४७	अथ तं गोचरीकृत्य	१६४
अचिचीयत यो दृष्ट्वा	४१३	अतपञ्च तपस्तीव्रं	३१३	अथ तस्य दिनस्यान्ते	८०
अचिन्तयच्च किं नाम	३७१	अतपत् स तपो धोरं	१४६	अथ तेन घनप्रेम-	२३७
अचिन्तयच्च किं न्वेतद्-	१६६	अतिक्रान्तो बहुसुतैः	४१६	अथ दुर्गागिरेर्मूर्ध्नि	१४६
अचिन्तयच्च किं न्वेत-	२२६	अतिक्षिप्रपरावर्तौ	२४४	अथ द्वादशमादाय	४०२
अचिन्तयच्च मुक्तापि	२७३	अतित्वरापरीतौ तौ	२४३	अथ निर्वाणधामानि	१८१
अचिन्तयच्च यद्येत-	१८४	अतिथिं दार्ढ्यं साधु	३५१	अथ पद्मान्नरं नान्यं	२८०
अचिन्तयच्च लोकोऽय-	१६६	अतिदारुणकर्मण-	४११	अथ पद्माभसौमित्रौ	७४
		अतिपात्यपि नो कार्यः	३६८	अथ पद्माभिनिर्ग्रन्थौ	३९५

अथ प्रकरणं तत्ते	५६	अथान्तिकस्थितामुक्त्वा	८९	अधिगतसम्यग्दृष्टि-	२२३
अथ प्रासादमूर्धस्था	११५	अथान्यः कश्चिदङ्गाख्यः	१७२	अधितिष्ठन् महातेजो-	२४६
अथ फाल्गुनिके मासे	१२	अथान्यं रथमारुह्य	२६०	अधिष्ठिताः सुसन्नाहै-	२५५
अथ भूम्यासुरपतिवत्स-	१६४	अथान्यदा समायातः	३६४	अधिष्ठिता भृशं भक्ति-	६
अथ भूयोमचारणां	२६७	अथायोध्यां पुरीं दृष्ट्वा	२७२	अधुना ज्ञातुमिच्छामि	१८८
अथ भोगविनिर्विण्णः	३२६	अथार्हद्दासनामानं	३६२	अधुनाऽन्याहितस्वान्ता	३५
अथ मन्त्रिजनादेशान्	१६२	अथासनं विमुञ्चन्तं	३६६	अधुना पश्यतस्तेऽहं	२८
अथ मुनिवृषभं तथा-	८१	अथासावच्युतेन्द्रेण	४०५	अधुना मे शिरस्यस्मि-	३७४
अथ याति शनैः कालः	३५२	अथाऽसौ दीनदीनास्यो	३७२	अधुनाऽऽलम्बने क्लिन्ने	३३
अथ रत्नपुरं नाम	१८३	अथासौ भरतस्तस्य	१२५	अधुना वर्तते क्वासौ	१५५
अथ राजगृहस्वामी	१७१	अथेन्द्रजिद् वारिदवाहनाभ्यां	८३	अध्यात्मनियतात्मन्तं	३२८
अथ रात्रावतीतायां	३६०	अथैन्द्रजितिराकर्ष्य	३८४	अनगारं सहागारं	३०५
अथ लक्ष्मणवीरेण	५६	अथोत्तमकुमार्यौ ते	३४३	अनगारगुणोपेतां	३३४
अथ लक्ष्मीधरं स्वन्तं	१	अथोत्तमरथारूढो	१६५	अनघं वेदिम सीतायाः	२७०
अथवा ज्योतिरीशस्य	२३०	अथोदयमिते भानौ	११८	अनङ्गलवणः कोऽत्र	२६८
अथवा परुषैर्वाक्यैः	२१३	अथोपकरणं क्लिन्तं	३३२	अनङ्गलवणाभिख्या	२३५
अथवा येन यादृक्	२७६	अथोपरि विमानस्य	३५७	अनङ्गलवणोऽवोचद्	२५१
अथवा विस्मयः कांऽत्र	३४४	अथोपशमनात् किञ्चि-	३१०	अनन्तं दर्शनं ज्ञानं	२६२
अथवा वेत्ति नारीणां	२००	अथोपहसितौ राजं	३३३	अनन्तः परमः सिद्धः	२२१
अथवा श्रमणाः ज्ञान्ताः	२१४	अथो मृदुमतिर्भिक्षा-	१४६	अनन्तपूरणस्यापि	२६२
अथवा स्वोचिते नित्यं	२५१	अदत्तग्रहणे यत्र	२६४	अनन्तरमधोवासा	२८६
अथ विज्ञापितोऽन्यस्मिन्	२७०	अदृष्टपारमुद्वृत्तं	३३	अनन्तलवणः सोऽपि	२६८
अथ विद्याधरस्त्रीभिः	६७	अदृष्टलोकपर्यन्ता	४१२	अनन्तविक्रमाधारौ	२३६
अथ वैर्भाषणैर्वाक्यं	१८	अदृष्टविग्रहैर्द्वै-	३६४	अनन्तशो न भुक्तं यद्-	३५७
अथ शान्तिजितेन्द्रस्य	१४	अदृष्टा राघवः सीतां	२८४	अनन्तानन्तरुणत-	२६२
अथ शुकसमो बुद्ध्या	२	अथ गच्छाम्यहं शीघ्र-	२०३	अनन्तालोकातस्थो	२८६
अथ शल्लायुधत्यक्तं	१६५	अथ प्रभृति यद्गोहे	१८१	अनन्तेनापि कालेन	२४६
अथ श्रुत्वा परानीकं	२५७	अथ मे सोदरं प्रेथ्य	३	अनपेक्षितगणद्वेष-	४०६
अथ श्रेणिकशत्रुघ्नं	१७६	अथश्वीनमिदं मन्ये	३१३	अनभिसंहितमीदृशमुत्समं	२६६
अथ संस्मृत्य सीतेन्द्रो	४१०	अद्यापि किमतीतं ते	४२	अनया कथया किं ते	४४
अथ सम्यग् बहन् प्रीतिं	१५६	अद्यापि खगसम्पूज्य	६८	अनयाऽवस्थया मुक्तौ	३३५
अथ सर्वप्रजापुण्यै-	२३४	अद्यापि पुण्यमस्त्येव	२२३	अनया सह संवासो	३३८
अथ साधुः प्रशान्तात्मा	१५३	अद्यापि मन्यते नेय-	३३८	अनयोरेककस्यापि	७८
अथ स्वाभाविकीं दृष्टिं	३२१	अद्यास्ति द्वादशः पद्भो	३८४	अनघं वज्रवैडूर्य-	२१
अथाङ्कुशकुमारेण	२६५	अद्यैव कुरुते तस्य	११०	अनघाणि च वज्राणि	१२३
अथाङ्कुशो विहस्योचे	२५१	अद्यैव व्यतिपत्याशु	१८३	अनघ्यं परमं रत्नं	३०८
अथाचलकुमारोऽसौ	१७२	अद्यैव श्राविकेऽवश्यं	११५	अनाथमध्रुवं दीनं	३१६
अथातो गुणदोषज्ञा	१६६	अद्यैव सा परासक्त-	३५	अनाथानामवन्धूनां	२७४
अथात्यन्तकुलात्मानौ	२५७	अधन्या किं तु पद्माभं	३३	अनाथान् देव नो कतुं	३६०

अनादरो मुनेलोकैः	३१५	अन्यतः कुष्ठिनी सा तु	१०६	अपश्यत् पश्चिमे यामे	१९१
अनादिकालसम्बन्धा	२९३	अन्यत्र जनने मन्ये	२१३	अपश्यन् क्षणमात्रं या	२००
अनादिनिधना राजन्	३७८	अन्यथात्वमिवानीता	३२६	अपश्यन् मनसा खेदं	२४१
अनादिनिधने जन्तुः	३६६	अन्यदा जगदुन्माद-	३५३	अपाहरिष्यथ नो चेद-	४०२
अनादिनिधने लोके	१३७	अन्यदा नटरङ्गस्य	१७४	अपि त्यजामि वैदेहीं	२०३
अनाहतनराः केचित्	२६१	अन्यदा मधुराजेन्द्रो	३३६	अपि दुर्दृष्टयोगाद्यैः	३६६
अनादौ भवकान्तारे	१६६	अन्यदा सप्तमस्कन्धं	३५०	अपि देवेन्द्रभोगैर्मे	६
अनिच्छन्त्यपि नो पूर्व-	३५	अन्यदास्तां व्रतं तावत्	४३	अपि नाम शिवं गुणानु-	४२३
अनिमीलितनेत्रोऽसौ	३६६	अन्यदोद्यानयातोऽसौ	४१७	अपि निजितदेवीभ्या-	३४४
अनुकूला प्रिया साध्वी	३२०	अन्यनारीभुजोत्पीडा	२६६	अपि पादनखस्थेन	२३८
अनुकूलो ववौ वायुः	४०२	अन्या दध्वौ भवेत् पापैः	१८	अपि या त्रिदशस्त्रीणां	३२८
अनुक्रमेण सम्प्राप	२२५	अन्यानि चार्थहीनानि	३८७	अपि लक्ष्मण किं ते स्यात्	३८३
अनुप्रशक्तयः केचिद्	१५०	अन्या भगवती नाम	१८६	अपुस्यया मयाऽलीकं	३१५
अनुमार्गं त्रिमूर्धनोऽस्य	२५८	अन्यास्तत्र जगुर्देव्यो	१६७	अपुण्यया मया सार्धं	२१५
अनुमार्गेण च प्राप्ता	४८	अन्येऽपि दक्षिणश्रेण्यां	१८८	अपुनः पतनस्थान-	१०२
अनुमोदनमद्यैव	१२८	अन्येऽपि शकुनाः क्रूरा	४०	अपूर्वकौमुदीसर्ग-	२५
अनुरागेण ते धान्य-	२७२	अन्येषु च नमारस्य-	१४७	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनुवृत्तिप्रसक्तानां	१४७	अन्यैरपि जिनेन्द्राणां	१२	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेकं मम तस्यापि	३६५	अन्योचे किं परायत्त-	३२२	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेकपुरसम्पन्नाः	२७१	अन्योचे परमावेती	३२२	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेकमपि सञ्चित्य	१७४	अन्योचे सखि पश्येमं	३२२	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेकरूपनिर्माणं	३२	अन्योन्यं मूर्धजैरन्या	२८	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेकाद्भुतसंकीर्णै-	६७	अन्योन्यं विरथीकृत्य	१६४	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेकाद्भुतसम्पन्नै-	८०	अन्योन्यहृदयासीनाः	१६०	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेकाश्चर्यसंकीर्णै-	१२५	अन्योन्यपूरणासक्तां	६६	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेकाश्चर्यसम्पूर्णां	११६	अन्वीष्यन्ती जनौषेभ्यो	४०१	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेन ध्यानभारेण	२५२	अपकर्णिततद्वाक्यौ	२४३	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेन प्राप्तनागेन	२५३	अपत्यशोकनिर्दग्धा	२१६	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेनालातचक्रेण	६८	अपध्येन विवर्णेन	३६६	अपूर्वः प्रववौ वायुः	३८६
अनेनैवानुपूर्व्येण	११२	अप्रमानपरीवाद-	२२२	अप्सरः संसृतियोग्य-	१८५
अनौषधकरः कोऽसौ	२५२	अपरत्र प्रभाजाल	१८५	अप्सरोगणसंकीर्णाः	२७८
अन्तःपुरं प्रविष्टश्च	३७१	अपराधविनिर्मुक्ता	२२६	अप्सरोभिः समं स्वर्गं	१४८
अन्तरङ्गैर्वृतो बाह्य-	२७	अपराधविमुक्ताना-	७२	अप्सरार्थमृदू कान्तौ	२२६
अन्तरेऽत्र समागत्य	१८६	अपराधादते कस्मात्	३७२	अप्सरस्तुल्यक्रमा काचिद्	४६
अन्तर्नक्रभ्रमग्राह-	२०८	अपरासामपि स्त्रीणां	३२१	अप्सरोभिः समं स्वर्गं	१४८
अन्तर्बहिश्च तत्स्थानं	२२६	अपवादरजोभिर्मे	२०३	अप्सरस्तुल्यक्रमा काचिद्	४६
अन्नं यथेप्सितं भुक्त	३२०	अपश्यच्च गृहस्थास्य	६३	अप्सरस्तुल्यक्रमा काचिद्	४६
अन्य एवासि संवृत्तो	११०	अपश्यच्च दशास्यं च	२७	अप्सरस्तुल्यक्रमा काचिद्	४६
अन्यच्छरीरमन्योऽह-	३०६	अपश्यच्च शरद्भानु-	५३	अप्सरस्तुल्यक्रमा काचिद्	४६

अभिभायेति देवेन्द्रो	२७८	अयं तु लक्ष्मणो भावः	४१६	अर्हद्दत्ताय वाताय	१७८
अभिभायेति सा देवि	२८१	अयं परमसत्त्वोऽसौ	२६५	अर्हद्वासर्षिदासाख्यो	४१८
अभिनन्दितसंज्ञेन	१३६	अयं पुमानियं स्त्रीति	४६	अर्हद्भिर्भादिता भावा	४१३
अभिनन्द्य च तं सम्यक्	२१	अयं प्रभावो जिनशासनस्य	३४०	अर्हद्भ्योऽथ विमुक्तेभ्य-	१६६
अभिनद्योति वैदेहीं	३२१	अयं मे प्रिय इत्यास्था	३४८	अर्हन्तं तं परं भक्त्या	३६५
अभिनन्द्यौ समस्तस्य	२३९	अयं रविरुपैत्यस्तं	३७५	अर्हन्तोऽथ विमुक्ताश्च	१६६
अभिप्राय विदित्येष	१०४	अयं राघवदेवोऽद्य	५९	अलं प्रमथ्यया तावत्	४०७
अभिभूतानिमान् ज्ञात्वा	२०	अयं लक्ष्मीधरो येन	१२१	अलं विभवमुक्तेन	३११
अभिमान महादाह-	३३०	अयं श्रीबलदेवोऽसौ	३२१	अलङ्कृत्य च निःशेष-	३८२
अभिषेकैः सवादित्रै-	१४	अयं स जनकीभ्राता	८६	अलङ्घ्याऽसौ ततः कन्यां	२४२
अभिषेकैर्जिनेन्द्राणां	१६७	अयमपि राज्ञसवृषभः	१३	अलीकं लक्षणैः ख्यातं	२६५
अभिषेकतुं समासक्ता	६६	अयशःशालमुत्तुङ्गं	४३	अवज्ञाय मुनीन् गेही	१८०
अभिहन्त्री समस्ताना-	२००	अयशोदावनिर्दग्धा	२१४	अवतीर्य करेशोश्च	२१८
अभीष्टसङ्गमाकाङ्क्षो	३७९	अयि कल्याणि निक्षेप	१६३	अवतीर्य गजाद् रामः	१६४
अभूच्च पुरि कार्कया-	३२४	अयि कान्ते किमर्थं त्व-	४४	अवतीर्य च नागेन्द्राद्	३०३
अभ्यर्णार्णवसंरोध-	२३८	अयि वैदेहि वैदेहि	२२९	अवतीर्य ततस्तेन	३५७
अभ्याख्यानपरो दुष्ट-	२०४	अयोध्यानगरीं द्रष्टुं	११४	अवतीर्य ततो व्योमनः	२६७
अभ्राणीद् रावणं क्रुद्ध-	२८	अयोध्यानगरीन्द्रस्य	३३७	अवतीर्य महानागात्	७७
अमन्नमानथ क्षिप्रं	३९८	अयोध्यां पुनरागत्य	३३८	अवतीर्यथ नागेन्द्रात्	६७
अमराप्सरसः संख्यं	१६७	अयोध्यायां कुलपति-	४१६	अवद्यं सकलं त्यक्त्वा	१६८
अमरैरपि दुर्वारं	१५६	अयोध्यावभिमानेन	२३६	अवदारो जगौ राजन्	१११
अमाति हृदये हर्षे	३६८	अयोध्या सकला येन	३२८	अवधार्येति सत्रीड-	३८६
अमात्यः सर्वगुप्ताख्यो	३२४	अयोध्याव विनीतेश-	३८५	अवबुध्य विबन्धात्मा	३६२
अमात्यवनिता रक्ता	३२४	अरजा निस्तमो योगी	१०२	अवर्णवचनं नूनं	२१३
अमी तपोधनाः शुद्धाः	३३३	अरण्यदाहशक्तस्य	२४५	अवलम्बितधीरत्व-	३८८
अमी निद्रामिव प्राप्ता	२६३	अरण्ये किं पुनर्भांमे	२५१	अवलम्ब्य परं धैर्यं	२१०
अमी सुश्रमणा धन्या	३३४	अरण्येऽत्र महाभीष्मे	२११	अवलम्ब्य शिलाकण्ठे	४१५
अमुष्य धनदाहस्य	१४५	अरातिप्रतिकूलेन	६६	अवलीनकण्डान्ता	३२९
अमूर्तस्त्वं यथा व्योमनः	८०	अरातिसैन्यमध्यर्ण	३८४	अवलोक्य ततः सीता	२७८
अमृताहारविलेपनशयना-	१६५	अरिभिः पापक्रोधैः	२८८	अवश्यं त्यजनीये च	१२६
अमृतेनेव वा दृष्टा	३५	अरिष्टनेमिनाथस्य	३३०	अवश्यं त्वद्वियोगेन	३१८
अमृतोपममन्त्रं च	६२	अरे रे पाव शम्बूक	४११	अवश्यं भाविनो गूर्नं	३३
अमेध्यमयदेहाभि-	१२७	अर्चयन्ति च भक्ताख्या-	३६५	अवसत्तत्र वैदेही	२२६
अमोघाश्च गदालङ्क-	१२३	अर्चयन्ति सुराः पद्मै-	१२	अवसानेऽधुना देव	३६०
अमोघेन किलाकटो	१६२	अर्थसाराणि शास्त्राणि	४१	अवस्थां च परां प्राप्य	२१४
अम्भोधरधृतेनापि	२३८	अर्थपर्यकसंविष्टो	२९	अवस्थामेतिकां प्राप्त-	७३
अयं कोऽपि महोत्तेति	३९७	अर्द्धरात्रे व्यतीतेऽसौ	१६३	अवाप्नोति न निश्वासं	३७४
अयं क्रमेण सम्पन्नो	३२७	अर्हच्छासनवास्तव्या	११२	अवारितगतित्त्र	१६४
अयं जीमूतसंघात-	१४७	अर्हद्दत्तश्च सम्प्राप्त-	१७७	अविधं महिमानं च	३६३

अविरुद्धे यथा वायु-	१५३	असमाधिमृतिं प्राप्तां	२७४	अहंकारसमुत्थस्य	१७८
अविरुद्धं स्वभावस्थं	४२	असमानप्रकाशस्त्वं	३७६	अहं देवासमीक्ष्येव	४०६
अविश्वसन् स तेभ्यस्तु	३८२	असहन्तः परानीकं	१६३	अहिंसा यत्र भूतेषु	२६४
अवोचत च दृष्टोऽसि	४०६	असहन् परतैर्नर्य	१६४	अहिते हितमित्याशा	२६७
अवोचत गणाधीशः	३६३	असहायो विषयणात्मा	२४४	अहो कृतान्तवक्त्रोऽसौ	२३०
अवोचदीर्घ्या युक्तो	७५	असावपि कृतान्तास्यः-	२२६	अहो चित्रमहो चित्र-	२८३
अवोचत्सद्धमणं कौपी	५६	असाविन्द्रजितो योगी	१०१	अहोऽतिपरमं देव	४१४
अव्युच्छिन्नसुसङ्गीत-	१८	असिचापगदाकुन्त-	५१	अहो तृणाग्रसंसक्त-	३८९
अशकनुवन्निव द्रष्टु-	२८०	असिधारामधुस्वाद-	२६१	अहो ते वीतरागत्वं	२९
अशक्यवर्णनो भूरि	३६५	असिधाराव्रतं तीव्रं	१४३	अहो त्वं परिडतम्मन्या	४६
अशङ्कित इव स्वामी	१७१	असुरत्वं गतो योऽसौ	४१०	अहो दानमहो दान-	४०२
अशब्दायन्त शङ्खौषा	२८२	असुमान् विष्टपे कोऽसौ	२७१	अहोऽद्य वर्तते देव	१३४
अशाश्वतेन देहेन	३६२	असुरेन्द्रसमो येन	८६	अहो घिङ्मानुषे लोके	३६६
अशाश्वतेषु भोगेषु	१२८	असूनामपि नाथस्त्वं	१६०	अहो धैर्यमहो सत्त्व-	३९७
अशाश्वते समस्तेऽस्मिं	१६६	अस्यैपश्यनार्योऽपि	२७०	अहो निकाचितस्नेह-	३४
अशुभोदयतो भूयो	२२३	असृकर्दमनिमग्न-	२६१	अहो निरुपमं धैर्यं	९१
अशून्यं सर्वदा तीव्रं	२००	असौ किष्किन्धराजोऽयं	८६	अहो तु व्रतनैष्कम्प्य-	६१
अशेषतो निजं वेत्ति	३५०	असौ तु ब्रह्मलोकेशो	३११	अहो पश्यत मूढत्वं	३११
अशेषोत्तरलौघ-	३५५	असौ धनदपूर्वस्तु	१४४	अहो पुण्यवती सीता	२६६
अशोकतिलकाभिख्यौ	४१६	असौ पुराकृतात् पापात्	२६७	अहो मोहस्य माहात्म्यं	३५७
अशोकदत्तको मार्गो	१४१	असौ विनाशमेतेन	७४	अहो राजसर्वशस्य	६९
अश्वयुक्तरथारूढः	२५८	असौ विमलचन्द्रश्च	५१	अहो रूपमहो धैर्य-	२७३
अश्ववृन्दं क्वचित्तुङ्गं	२६१	अस्तीक्ष्णवाक्कुलव्योम-	२४६	अहो लक्ष्मीधर क्रोध-	३७५
अश्ववृन्दस्त्रुघात-	२५५	अस्थानं स्थापितं किं वा	२१४	अहो लङ्केश्वरस्येदं	१७
अश्वास्ते तां समुत्तीर्णाः	२०६	अस्थिमज्जानुरक्तोऽसौ	३०३	अहो वः परमं धैर्यं	७८
अश्वीयमपि संरुद्धं	२१५	अस्नानमलसाध्वङ्गो	३०७	अहो वज्रमयं नूनं	२१८
अश्रुदुर्दिनवक्त्राया	२२७	अस्मत्स्वामिगृहं देव	६६	अहो विगतलज्जेयं	२७३
अश्रुलाघ्येषु निवृत्तात्मा	२१	अस्मदीयोऽयमाचार्यो	१७७	अहो विद्याधराधीश	२१४
अष्टभेदजुषो वेद्या	२६०	अस्माकमपि सर्वासं	४०७	अहो वेगादतिक्रान्तं	११८
अष्टमार्द्धर्तुक्कालादि	३२८	अस्माभिः किङ्करगणाः	२७१	अहो सदृशसम्बन्धो	३४३
अष्टमाद्युपवासस्थः	४०४	अस्मिन् मृगकुलाकीर्यौ	४०१	अहो सोऽसौ पिताऽस्माकं	२५४
अष्टाङ्गनिग्रहं कर्तुं	१७३	अस्य दग्धशरीरस्य	३०५	अहोऽस्या वीतपङ्कत्वं	२७३
अष्टादशसहस्रल्लो	४७	अस्य देवि गुणान् वक्तुं	२१८	अहो स्वसेति सम्भाष्य	२५३
अष्टादशौषमादीनां	७२	अस्य पत्नी सती सीता	२९६		
असंख्यातभुजः शत्रुः	६४	अस्य मानवचन्द्रस्य	६३	[आ]	
असकृजयनिःस्वानं	२३४	अस्य लाङ्गलिनो नित्यं	३६७	आः पाप दूत गोमायो	४
असङ्ख्येयं प्रदेशेन	२६०	अस्य विस्तरतो वार्ता	१८३	आकर्णसंहतैर्बाणै-	६०
असज्जनवचोदाव-	२७१	अस्यां ततो विनीतायां	२२०	आकल्पान्तरमापन्नं	३८७
असर्वं वक्तुं दुर्लोकः	२०३	अस्यां हलधरः श्रीमान्	२५६	आकाशगामिभिर्यानै-	२१६
				आकाशमपि नीतः सन्	२३१

आकुलाध्यक्षलोकेन	३६६	आद्योऽत्र नाम्नां प्रथमो	८४	आशीविषसमानैर्यो	३५७
आकूपारपयोवासा	६७	आनन्दं नन्दुस्तत्र	११०	आशीविषसमाश्चण्डा	१८
आकृष्टखड्गहस्तौ च	३३५	आनन्दमिव सर्वेषां	३६७	आशकारसमुद्युक्ताः	५१
आकृष्य दारपाणिभ्यां	२८	आनन्दयाष्पपूर्णाक्षाः	१२२	आशिष्टदयिताः काश्चित्	७२
आकृष्य बकुलं काश्चि-	४०७	आनन्द्य जयशब्देन	१५७	आसंस्तस्य भुजच्छायां	३८४
आक्रन्दितेन नो कश्चिद्	३०८	आनायेन यथा दीना	३५७	आसन् विद्याधरा देवा	१२०
आक्रामन्तौ सुखं तस्य	२४५	आनाय्ये नियतं देहे	३७८	आसीच्छोभपुरे नाम्ना	१०६
आक्षेपणीं पराक्षेप-	३०५	आनाय्येव शरीरेण	३७३	आसीज्जनपदो यस्मिन्	१०४
आखण्डलस्ततोऽवोचद-	२७८	आपातमात्रकेणैव	२६०	आसीत्तया कृतो मेदः	३२६
आगच्छतामरातोना-	३८५	आपातात्वाद् भिन्नमूला	१८१	आसीत् प्रतिरिपुयोऽसौ	४१६
आगच्छद्भिः खगैरूर्ध्व-	२७०	आपूर्वमाण्यचेतस्का	७६	आसीदत्रैव च ग्रामे	३३२
आगच्छन्नन्यदा गोष्ठं	३०१	आपूर्वमाण्यसत्सैन्धाः	३४२	आसीदन्यमभवे तेन	३३०
आगतेषु भवत्स्वेषा	१७६	आपृच्छत् सखीन् वाति	३६०	आसीदाद्ये युगेऽयोध्या	१३८
आगत्य बहुभिस्ताव-	११६	आवध्य मण्डलीमन्या	४०८	आसीदेवं कथा यावत्	२४७
आगत्य साभिजातेन	९६	आयान्ती तेन सा दृष्टा	४१	आसीद् गतः तदास्थानं	६२
आगमिष्यति काले सा	१८०	आयान्तीमन्तिकं किञ्चिद-	६१	आसीद् गुणवती या तु	३११
आगुल्फं पूरितो राज-	२४७	आयुधैः किमभीतानां	२६२	आसीद् गुणवती याऽसौ	३०८
आजमुश्च महाभूत्या	४०८	आयुष्येषः परीक्षीणे	१४२	आसीद् यदानुकूलो मे	३५
आशां प्रतीच्छता मूर्ध्ना	२२६	आरात् पुत्रौ समालोक्य	२४८	आसीद् योगीव शत्रुघ्न	१६३
आशां प्रयच्छ मे नाथ	३०३	आराध्य जैनसमयं	४२०	आसीन्निःकामतां तेषा-	३४८
आशापयद् बहून् वीरान्	३६६	आरक्ष्य च महानागं	११९	आसीन्निरर्थकतमो	३५६
आशाप्यन्तां यथा क्षिप्र-	२५२	आरुह्य वारणानुग्रान्	१३६	आसीन्नोदननामा सा	१०४
आशाप्य सचिवान् सर्वान्	३८४	आरुढौ द्विरदौ चन्द्र-	२५४	आसीद् विद्रुमकल्पानां	५०
आतपत्रं मुनेर्दृष्ट्वा	१३७	आरोहामि तुलां वह्नि-	२७५	आसीद् विष्णुरसौ साधुः	४५
आतपत्रमिदं यस्य	६०	आर्जवादिगुणश्लाघ्या-	२५१	आसेचनकमेतत्ते	३७५
आतुरेणापि भोक्तव्यं	३०	आर्यां म्लेच्छा मनुष्याश्च	२६०	आस्तां जनपरीवादो	२०४
आतुरोद् काश्चिद्दुद्वय-	४१०	आर्यो तात स्वकर्मात्थ-	९५	आस्तां तावदयं लोकः	२५०
आत्मनः शीलनाशेन	३०६	आर्हतं भवनं जग्मुः	१७७	आस्तां तावदसौ राजा	१६६
आत्मनस्तत् कुरु श्रेयो	७५	आलानं स समाभिद्य	१३०	आस्तृणन्त्यभिधावन्ति	५६
आत्मनोऽपि यदा नाम	६५	आलानगोहान्निस्तं	१३५	आस्थानस्थः प्रभावेऽसौ	१०४
आत्मनो भवसंवतं-	४०५	आलिङ्गति निजायाङ्के	३७४	आहारं कुण्डलं मौलि-	३६४
आत्मा कुलद्वयं लोक-	३२१	आलिङ्गतीमिव सिन्धु-	६०	आहूतो वीरसेनोऽपि	३३८
आत्माधीनस्य पापस्य	१६६	आलोक्य यथाऽवस्थं	३६५	आहूय गुरुणा चोक्तः	३३२
आत्माशीलसमृद्धस्य	२०३	आवेशं सायकैः कृत्वा	६	आहोस्विन् सैव पूर्वयं	१२५
आदित्यश्रुतिविप्रश्च	१४८	आशया नित्यमाविष्टो	२६६	आहोस्विद् गमनं प्राप्त-	२८०
आदित्याभिमुखीभूताः	३६	आशापाशं समुच्छ्रिय	३९३	आह्लादयन् सदः सर्वं	१५६
आदिमध्यावसानेषु	४१५	आशापाशैर्दृढं बद्धा	२६६	[इ]	
आदिष्टया तयेत्यात्म-	१९३	आशीर्वादसहस्राणि	१२२	इक्ष्वाकुवंशतिलका	२०२
आद्यं जल्पितमव्यक्तं	२३५	आशीविषफणा भीमान्	३४६	इच्छामात्रसमुद्भूतै-	१२७

इच्छामि देव सन्त्यक्तु-	१२८	इति प्रसादयन्ती सा	४७	इत्युक्तः परमं हृष्ट-	३३३
इतः समरसंबुत्तात्	५०	इति प्रसाद्यमाना सा	२०६	इत्युक्ता अपि तं भूयः	१९८
इतः स्वामिन्नितः स्वामिन्	३६८	इति लक्ष्मणवाक्येन	२३२	इत्युक्ते जयशब्देन	१५६
इतश्चपि परिप्राप्त-	२१२	इति वरभवनाद्वि-	२६९	इत्युक्ते पृष्ठतस्तेषा-	१८५
इतस्ततश्च तौ दृष्ट्वा	२४४	इति वाष्पभराद् वाचो	२७६	इत्युक्ते राजपुत्रभ्रू-	१८३
इतस्ततश्च विचरन्	१४७	इति विश्वाय देवोऽत्र	१३५	इत्युक्ते विनिवृत्त्यासौ	२४५
इति कातरतां कृच्छ्रा-	१५१	इति विमृश्य सन्त्यज्य	२१२	इत्युक्ते हर्षतोऽत्यन्त-	४१६
इति कृतनिश्चयचेताः	३५६	इति वीक्ष्य महीपृष्ठं	३८५	इत्युक्तैः प्रतिपन्नं तैः	४१३
इति क्रियाप्रसक्त्यां	१६७	इति ब्रीडापरिध्वक्तं	२६५	इत्युक्तो दमितानेत्र-	५३
इति लुद्रजनोद्गीतः	१२५	इति शंसन् महादेव्यै	३५५	इत्युक्तोऽपत्रपाभार-	२३०
इति गदितमिदं यथा	८	इति श्रुत्वा महाभोदः	३६३	इत्युक्तोऽपि न चेद् वाक्यं	१२८
इति गवौत्कटा वीरा	५४	इति श्रुत्वा मुनीन्द्रस्य	३१५	इत्युक्तोऽपि विविकं	३८१
इति चिन्तयतस्तस्य	३	इति सञ्चिन्तयन् राजा	३३८	इत्युक्तो रावणो वार्यैः	५६
इति चिन्तातुरे तस्मिन्	२७६	इति सञ्चित्य कृत्वा च	१७	इत्युक्त्वा काश्चिदालिङ्ग्य	३७०
इति जनितवितर्कं	२१५	इति सञ्चित्य चात्यन्त-	४१७	इत्युक्त्वा खं व्यतिक्रम्य	१६६
इति जल्पनमत्युग्रं	३३६	इति सञ्चित्य शान्तात्मा	३८७	इत्युक्त्वाऽचिन्तयच्छ्राद्धः	१७९
इति जीवविशुद्धिदान-	४२५	इति सम्भाष्य तौ रामो	३६०	इत्युक्त्वा चेष्टितं तस्य	१०६
इति ज्ञात्वाऽऽत्मनः श्रेयः	१०७	इति साधुस्तुतिं श्रुत्वा	३४४	इत्युक्त्वा तं मृतं कृत्वा	३८२
इति ज्ञात्वा प्रबुद्धं तं	३८९	इति साधोर्नियुक्तेन	३३६	इत्युक्त्वा तां मुखे न्यस्य	३८३
इति ज्ञात्वा प्रसादं नः	१	इति सुरपतिमार्गं	३६८	इत्युक्त्वा त्यक्तनिर्शेष-	१५०
इति ज्ञात्वा भवावस्थां	३३३	इति स्थिते विपातभवा-	५२	इत्युक्त्वाऽत्यन्तसंविग्न	१२९
इति ज्ञात्वा समायातं	१८०	इति स्नेहग्रहाविष्टो	३८२	इत्युक्त्वा दातुमुद्युक्ता	३९९
इति तत्र विनिश्चेष्टः	३४३	इति स्मृतातीतभवो	१३२	इत्युक्त्वाऽनुस्मृतात्यन्त-	१११
इति तत्र समारूढे	४०१	इति स्वयंप्रभं प्रशर्नं	४१८	इत्युक्त्वा पूर्वमेवासीद्	२११
इति दर्शनसक्तानां	३६८	इतो जनपरीवाद-	२००	इत्युक्त्वा प्रचलन्नील-	३८५
इति धर्माजनादेतौ	१७४	इतो निर्दयताऽत्युग्रा	२११	इत्युक्त्वा प्रणता वृद्धाः	२
इति ध्यात्वा महारौद्रः	१६६	इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति	४१३	इत्युक्त्वा भद्रकलशां	१६७
इति ध्यात्वा समाहूय	६	इतोऽभवद् भिद्गुगणः	१५१	इत्युक्त्वाऽभिनवाशो	२८४
इति ध्यानमुपायाता	१२	इत्यमेतं निराकृत्य	१८०	इत्युक्त्वा मस्तकं न्यस्य	११५
इति ध्यायन् समुद्भूत-	३७२	इत्यनुशां मुनेः प्राप्य	३६२	इत्युक्त्वा मूर्च्छिता भूमौ	३४
इति नर्मपदं कृत्वा	४०१	इत्यन्यानि च साधूनि	३२६	इत्युक्त्वा वैक्रियैरन्यै-	२८८
इति नर्मसमेताभिः	१८६	इत्यन्यैश्च महानादै-	५२	इत्युक्त्वा शोकभारेण	२४१
इति निश्चितमापन्ने	३६	इत्यन्योन्यकृतालाप-	३८६	इत्युक्त्वा सायकं यावज्ज-	४
इति निश्चित्य यो धर्मं	१२६	इत्ययं भीतिकामाभ्यां	२६६	इत्युक्त्वाऽऽह्वय संरब्धो	१८४
इति पालयता सत्यं	६३	इत्यशेषं क्रियाजातं	३८३	इत्युक्त्वेष्वाभवं क्रोधं	४४
इति प्रचयडमपि भाषमाणे	७	इत्यादिभिर्वाङ्निवहैः	८	इत्युदाहृतमाधाय	४१
इति प्रतर्कमापन्ना	२०८	इत्यादि यस्य माहात्म्यं	३६६	इत्युद्भूतसमाशङ्कै-	७८
इति प्रतीष्य विघ्नघ्ना	१६१	इत्याद्याः शतशस्तस्य	१५६	इत्यूर्जितमुदाहृत्य	४८
इति प्रभाषिते दूते	४	इत्युक्तः परमं क्रुद्धो	६५	इत्येकान्तपरिध्वस्त-	२४२

इदं कृतमिदं कुर्वे	२६७	ईदृशस्य सतो भद्र	२१	उत्तुङ्गशिखरो नाम्ना	१४७
इदं चित्रमिदं चित्र-	२७	ईदृशी कर्मणा शक्ति-	१४८	उत्थायोत्थाय यन्नुणां	३४७
इदं तद्गुणसम्प्रश्न-	२४९	ईदृशी विक्रिया शक्तिः	३८६	उत्पतद्भिः पतद्भिश्च	५७
इदं महीतलं रम्यं	३५४	ईदृशो लवणस्ताड-	२३८	उत्पत्य भैरवाकाराः	२०
इदं वक्षःप्रदेशस्य	१५४	ईदृश्यापि तया साकं	४४	उत्पन्नघनरोमाञ्चा	३३५
इदं सुदर्शनं चक्र-	१२७	ईन्सितं जन्तुना सर्वं	१३७	उत्पन्नचक्ररत्नं च	११५
इदमन्यच्च सञ्चित्य	४०५	ईन्सितेषु प्रदेशेषु	४७	उत्पन्नचक्ररत्नं तं	६७
इदमष्टादश प्रोक्तं	४२५	ईशो तथापि को दोषः	४१	उत्पन्नचक्ररत्नेन	६८
इन्दुरकत्वमागच्छेद्	२७५	ईषत्पादं समुद्धृत्य	३७०	उत्पन्नः कनकाभायां	३०४
इन्द्रचापसमानानि	२२५	ईषत्पाद्भारसंज्ञासौ	२६१	उत्पलैः कुमुदैः पद्मैः	२८२
इन्द्रजित्कुम्भकर्णशंख	७०	ईष्यमाणो रहो इन्दु-	१७२	उत्पातवातसन्नुन्न-	६६
इन्द्रध्वजः श्रुतधरः	१५४			उत्पाताः शतशो भीमाः	३६
इन्द्रनीलद्युतिच्छायात्	२८४	[उ]		उत्फुल्लपुरण्डरीकाङ्कः	३९
इन्द्रनीलमयीं भूमि	२६	उक्तं तेन निजाकृता	६८	उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ	३५७
इन्द्रनीलात्मिका भित्तीः	२५	उक्तं तैरेवमेवैतत्	९६	उत्सारय रथं देहि	६६
इन्द्रवंशप्रसूतस्य	२२३	उक्तः स बहुशोऽस्माभिः	४१	उत्साहकवचच्छ्रुत्वा	३०६
इमां या लभते कन्यां	८८	उक्तवत्यामिदं तस्यां	२५३	उत्सृजन्तश्च पुष्पाणि	११५
इमे प्राप्ता द्रुतं नश्य	१६	उक्ता मनोहरे इंस-	४२	उदन्वन्तं समुल्लङ्घ्य	३८३
इमे समयरक्षार्थ-	४१७	उक्तो दाशरथिर्भूयो	७	उदयाद्येष यस्त्वत्तः	७३
इमौ च पश्य मे बाहू-	२६३	उच्छिष्टं संस्तरं यद्वत्	३२६	उदारपुण्यमेतेन	३६७
इयं विद्याधरेन्द्रस्य	२६	उच्यते च यथा भ्रात-	१२७	उदारवीरतादत्त-	३४७
इयं शाक्रं द्रुमं छित्वा	३१४	उज्जयिन्यादितोऽप्येता-	१००	उदारसंरम्भवशं प्रपन्नाः	६१
इयं श्रीधर ते नित्यं	३८३	उडुनाथांशुविशद-	६२	उदारा नगरे शोभा	३०२
इयं सा भद्रुजारन्ध्र-	३२०	उत्कण्ठाकुलहृदयं	४००	उदाराभुदवृन्दाभं	२४
इयं हि कुटिला पापा	४७	उत्कर्षनेत्रमध्यस्थ-	३६६	उदगते भास्करे भानुः	१०६
इष्टं बन्धुजनं त्यक्त्वा	३१२	उत्तमाखुव्रतो नाना	२३६	उद्घाटनघटीयन्त्र-	३३३
इष्टच्छायकरं स्कीतं	१२३	उत्तरन्तं भवाम्भोधि	३६०	उद्धृत्य विशिखं सोऽपि	५७
इष्टसमागममेतं	१२२	उत्तरन्त्युदधि केचिद्	१०७	उद्धैर्यत्वं गभीरत्वं	४३
इष्टसमायोगार्थी	४२२	उत्तरीयेण कण्ठेऽन्यां	२८	उद्भूतपुलकस्यास्य	९१
इह जम्बूमति द्वीपे	२६६	उत्तस्थावथ मध्येऽस्या	२८२	उद्यद्भास्करसंकाशं	२८३
इह प्रद्युम्नशाम्भौ तौ	३३०	उत्तिष्ठ कान्त कारुण्य-	७२	उद्यद्भास्करसंकाश-	१२३
इहलोकसुखस्वार्थं	३०८	उत्तिष्ठत गृहं यामः	६६	उद्ययौ निःस्वनो रम्यो	१८
		उत्तिष्ठ देहि मे वाक्यं	७१	उद्यानान्यधिकां शोभां	१८२
[ई]		उत्तिष्ठ मा चिरं स्वाप्सी-	३७६	उद्याने तिलकामिख्ये	१३८
ईदृक्षमवधार्येद-	४२०	उत्तिष्ठ रथमारोह	२०६	उद्यानेन परिक्रितं	२२६
ईदृगोव हि श्रीराणां	२४५	उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गच्छामः	३८२	उद्यानेऽवस्थितस्यास्य	३०५
ईदृग्गुणो विधिज्ञः	१०८	उत्तीर्य द्विरदाद् राजा	१३३	उद्यानेऽवस्थितस्यैवं	१६६
ईदृङ्माहात्म्ययुतः	१५४	उत्तीर्य द्विरदाधीशा	६०	उद्याने स्थित इत्युक्ते	३२६
ईदृशं लक्ष्मणं वीक्ष्य	३७२	उत्तीर्य नागतो मत्त-	६३	उद्गमद्भूयिकाऽऽमोद-	४९

उद्धतनैः सुलीलाभिः	३२
उद्वासयामि सर्वस्मिन्	३७
उद्देशकरणं नात्र	१३२
उद्देशसागराकारा	१९
उन्नत्या त्रपया दीप्त्या	२१२
उन्मत्तमर्त्यलोकाभ-	२३५
उन्मत्तसदृशं जातं	१६५
उन्मत्तेन्द्रध्वजं दत्त्वा	३८८
उन्मादेन बने तस्मिन्	१२१
उन्मुक्तसुमहाशब्द-	२७६
उपगम्य समाधाय	२३६
उपगम्य च साधूनां	३३१
उपगुण्य प्रयत्नेन	१६६
उपगृह्य सुतौ तेऽहं	४६
उपचारप्रकारेण	३६६
उपदेशं ददत्वात्रे	२३७
उपद्रवैर्यदाऽमीभिः	२७८
उपनीतं समं वाणै-	३८४
उपमानविनिर्मुक्त-	२०२, २२७
उपमारहितं नित्यं	६४
उपमृद्य प्रभो स्तम्भं	१३७
उपलप्स्ये कुतः सौख्यं	२७९
उपलभ्येदृशं वाक्यं	३४०
उपवक्षस्ततः पद्मं	२६४
उपविश्य सरस्तीरे	७७
उपविष्टा महोपृष्टे	२७१
उपवीण्येति सुचिरं	३५६
उपशान्तस्ततः पुण्य-	३०१
उपशोभा ततः पृथ्वी	२४७
उपसर्गं समालोक्य	१६७
उपसर्गं तयोदारे	३२६
उपसर्गो महानासीद्	२७६
उपसृत्य च सस्नेहं	३७१
उपसृत्य ततो रामं	२७३
उपायाः परमार्थस्य	४२४
उपायाः सन्ति तेनैव	७९
उपागमद् विनीतात्मा	३१९
उपेक्षयैवादरकार्य-	८४
उपेत्य भवतो दीक्षां	३६१

उपोष्य द्वादशं सोऽथ	३६७
उवाच केवली लोक-	२६१
उवाच गौतमः पाप्माः	१२३
उवाच च न ते दूत	२४१
उवाच च न देवि त्वं	२३७
उवाच न्व यथा भद्र	९२
उवाच चादरं विभ्रद्	१८४
उवाच नारदं देवी	११०
उवाच प्रहसन्नग्नि-	३३१
उवाच भगवान् राम-	२९८
उवाच भगवान् सभ्या	२६४
उवाच भरतो बाढं	१२८
उवाच वचनं पद्मः	११४
उवाच वचनं साधु-	७५
उवाच विस्मितश्चोच्चै-	३३३
उवाच श्रेणिको नाथः	१०३
उवाच श्रेणिको भूपो	१८८
उवाच स महाराज	३९२
उषित्वा सुखमेतेषु	३४६
उष्णीषं भो गृह्णास्येति	५१
उष्णोर्निश्वासवातूलै-	८०
उष्णमानाय सम्भूति-	१५०

[ऊ]

ऊचतुः कश्यपोद्युक्तो	७४
ऊचतुर्वज्रजडघं च	२५३
ऊचतुस्तौ क्रमेणैतं	३८७
ऊचतुस्तौ गुरोः पूर्व-	६६
ऊचतुस्तौ स्वया मातः	२४३
ऊचतुस्तौ रिपुस्थान-	२५४
ऊचुश्चासीत् समादिष्टः	६७
ऊचुस्तं दयिता नाथ	५३
ऊचे कृतान्तदेवोऽपि	३९०
ऊचे च मदगुरोर्येन	३८३
ऊचे नरपतिर्भद्रा	१६८
ऊचे मन्दोदरीं सार्धं	४४
ऊचे विराधितश्च त्वां	७
ऊचेऽसौ परमं मित्रं	१६८
ऊर्ध्वं व्यन्तरदेवानां	२६१
ऊर्ध्वबाहुः परिक्रोशन्	३३६

[ऋ]

ऋजुदृष्टिर्विशुद्धात्मा	४०८
ऋद्धथा परमया क्रीड-	३०७
ऋद्धथा परमया युक्ता	२२५
ऋषभादीजमस्कृत्य	२८०
ऋषयस्ते खलु तेषां	३६६

[ए]

एकं चक्रधरं मुक्त्वा	३०
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि	६४
एकं निःश्रेयसस्याङ्गं	३६२
एकः प्रक्षीणसंसारो	४०५
एक एव महान् दोषः	१२५
एक एव हि दोषोऽय-	१६६
एककर्णं विनिर्जित्य	२४६
एकको बलसम्पन्ने	१०५
एकतः पुत्रविरहो	३७३
एकस्मिन् शिरसिच्छिन्ने	६३
एकस्य पुण्योदयकाल-	६६
एकाकी चन्द्रभद्रश्च	१७३
एकाग्रध्यानसम्पन्नो	१४
एकादशसहस्राणि	३६५
एकीभूयसमुद्युक्ता	६६
एकेन व्रतरत्नेन	१०३
एकैकं रक्षयतां यस्य	२५०
एकोऽपि कृतो नियमः	१२२
एकोऽपि हि नमस्कारो	२२०
एको वैदेशिको आम्यन्	१०७
एतत्कुमाराष्टकमङ्गलं	३४६
एतत्तत्सुसमाहितं	४२२
एतत्तु दण्डकारण्य-	११८
एतत्तेन गुरोरग्रे	१४६
एतत्ते पुष्पकं देवि	२७२
एतत्पद्मस्य चरितं	३२३
एतत्स्वोपचितं कर्म	४१३
एतदुक्त्वा जगौ पुत्रौ	२५३
एतदेकभवे दुःखं	२२८
एतदेवं प्रतीक्ष्येण	३५८
एतद्गुणसमायुक्तं	२६५
एतद्दग्धशरीरं	३८१

एतन्मयस्य साधो-	१०८	एवं च मानसे चक्रुः	१२	एवं भोगमहासङ्ग-	३६४
एतन्मुशालरत्नं च	२६३	एवं स्तवनं कर्तुं-	४१४	एवं मथुरापुस्त्यां निवेश-	१८२
एतया सहितोऽरख्ये	३	एवं चिन्तयतस्तस्य	१२७	एवं महत्तरग्रष्टै-	२२५
एतस्य रघुचन्द्रस्य	२१	एवं चिन्ताभराक्रान्त-	३२०	एवं महावृषेणैव	२८
एतस्मिन्नन्तरे क्रोध-	५७	एवं चिन्तामुपाधातां	३३	एवं मातृमहास्नेह-	११४
एतस्मिन्नन्तरे ज्ञात-	७१	एवं जनस्तत्र बभूव	१५२	एवं मानुष्यमासाद्य	३६७
एतस्मिन्नन्तरे दुःख-	४१४	एवं जनस्य स्वविधान-	१६७	एवं रघुत्तमः श्रुत्वा	२६३
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा	२०	एवं जिनेन्द्रभवने	१६५	एवं रामेण भरतं	१२४
एतस्मिन्नन्तरे देवः	३८६	एवं तं दूतमत्यस्य	३२५	एवं रावणपत्नीनां	७३
एतस्मिन्नन्तरे नाके	३८४	एवं तत्परमं सैन्यं	२५९	एवं लक्ष्मणपुत्राणां	३४५
एतस्मिन्नन्तरे योऽसौ	१३०	एवं तदुक्तिः पत्यु-	२०७	एवं वाग्भिर्विचित्राभिः	८६
एतस्मिन्नन्तरे राजन्	१३६	एवं तयोर्महाभोग-	३६४	एवं विचेष्टमानानां	३७०
एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा	३७२	एवं तस्य सभृत्यस्य	२१७	एवं विदित्वा सुलभौ	३२७
एतस्मिन्नन्तरे साधु-	४०१	एवं तस्यां समाक्रन्दं	२१५	एवं विद्याधराधीशैः	१२०
एतस्मिन्नन्तरे सीता	१२६	एवं ताः सान्त्व दयिता	३१	एवंविधक्रियाजालै-	४०८
एतस्मिन्भुवने तस्माद्	२७०	एवं तावदिदं जात-	२२४	एवंविधां तकां सीतां	२०४
एतां यदि न मुञ्चामि	२००	एवं तावदिदं वृत्तं	१०१	एवंविधां समालोक्य	३२०
एतान् पश्य कृपामुक्तान्	२०	एवं ते विविधा	७५	एवंविधे गृहे तस्मिन्	६७
एताभ्यां ब्रह्मतावादे	३३२	एवं तौ गुणरत्नपर्वत-	२४०	एवंविधे महारण्ये	२२६
एतावद्दर्शनं नूनं	२११	एवं तौ तावदासेते	३५३	एवंविधे स्मशानेऽसौ	३३४
एतासां च समस्तानां	१८६	एवं तौ परमैश्वर्यं-	२४६	एवंविधो जनो यावत्	३६६
एतासां मत्समासक्त-	३५०	एवं दिनेषु गच्छन्तु रात्रि	१८३	एवंविधो भवन् सोऽयं	३७
एते कैलासशिखर-	३४६	एवं दिनेषु गच्छन्तु भोग-	१६१	एवं विभीषणाधार-	६६
एते जनपदाः केचिद्-	२४६	एवं द्वन्द्वमभूद् युद्धं	२६१	एवं विस्मययुक्ताभिः	१२१
एतेन जन्मना नो चेद्-	३१६	एवं द्वाषष्टिवर्षाणि	३२६	एवं श्रीमति निष्क्रान्ते	३६५
एते ते चपलाः क्रुद्धा	१८५	एवं निरुपमात्मासौ	४०४	एवं संयति संवृत्ते	५७
एतेऽन्ये च महात्मानः	१०२	एवं पश्चात्तन्ममभृत्-	११५	एवं स तावत्	८५
एते हस्त्यश्वपादात्	१५५	एवं परमदुःखानां	३१४	एवं सति विशुद्धात्मा	३२२
एतैत चेतसो दृष्टे	३६७	एवं पारमर्यादा-	१७४	एवं सत्यपि तैरुक्तं	१८६
एतैर्विनाशिभिः क्षुद्रैर-	२८४	एवं पितापि लोकस्य	३२२	एवं सद्भयानमारुह्य	१६६
एतौ तावद्धचन्द्राम-	२६८	एवं प्रचण्डा अपि	१८७	एवं सद्भ्रान्त्युगलं	३१५
एतौ स्वोपचितैर्दोषैः	३३६	एवं प्रदुष्टचित्तस्य	१६६	एवं सर्वमतिक्रान्त-	३६५
एत्यायोध्यां समुद्रस्य	३३७	एवं प्रभाषमारोऽस्मिन्	१८३	एवं सुदानं विनियोज्य	४०२
एलालवङ्ककपूर्-	३५२	एवं प्रसाधिते साधौ	३६३	एवं सुविधिना दानं	१६७
एवं कुमारकोट्योऽपि	२५८	एवं प्रवृत्तनिस्वानै-	१६	एवं स्वपुत्रयोदययोग्य-	१५८
एवं कुमारवीरास्ते	३४५	एवं प्रशस्यमानौ तौ	२४५	एवमत्यन्तचार्वीभि-	१६४
एवं गतेऽपि पद्माभ	२७४	एवं प्रशस्यमानौ नमस्य-	३२२	एवमत्यन्तस्थानं	३६८
एवं गतेऽपि भा मैषी-	२५२	एवं भवस्थितिं ज्ञात्वा	७५	एवमत्यन्तानां लक्ष्मीं	६६
एवं च कात्स्न्येन कुमार-	१६०	एवं भाषितुमासक्त-	१२८	एवमनन्तं श्रीद्युति-	४०६

एवमन्योन्यघातेन	३००	एवमुक्तमनुश्रित्य	३८८	कटकोद्भासिवाह्वन्ताः	२४
एवमष्टकुमाराणां	३४४	एवमुक्ताः सुरेन्द्रेण	४११	कथटस्पर्शिं ततो जाते	२८१
एवमस्त्विति तैरेवं	२७०	एवमुक्ता जगौ देवी	४६	कथं तद्राममात्रस्य	२०३
एवमस्त्विति वैदेही	२७५	एवमुक्ता जगौ सीता	१६७	कथं न किञ्चिदुत्सिको	२६
एवमस्त्विति सन्नद्धा	७७	एवमुक्ता प्रधानस्त्री	२७२	कथं पद्मं कथं चन्द्रः	१०१
एवमाकर्ण्य पद्मामः	१६३	एवमुक्ता सती देवी	२५३	कथं मे ह्रीयते परनी	२८५
एवमाकुलतां प्राप्ते	१८	एवमुक्तेऽजलिं बद्ध्वा	२०५	कथं वा मुनिवाक्यानां	२६५
एवमाज्ञां समासाद्य	२८२	एवमुक्ती भृशं क्रुद्धो	४६	कथं वार्तामपीदानीं	११०
एवमाज्ञापयन्तीव	२७६	एवमुक्तौ जगौ राजा	३६०	कथं सहिष्यसे तीव्रान्	३१८
एवमाज्ञाप्य संग्राम	२५२	एवमुक्त्वा तनुं भ्रातुः	३८२	कथञ्चिजातसञ्चारा	२५
एवमादिकथासक्तः	२०६	एवमुक्त्वा प्रसन्नाक्षौ	२२	कथञ्चिदधुना प्राप्ता	३४५
एवमादिकृताचेष्टो	२८५	एवमुक्त्वा मयो व्योम	१०७	कथञ्चिद्दुर्लभं लब्ध्वा	३०६
एवमादिकृतालापाः	३२२	एवमुक्त्वा समुत्पत्य	२६	कथमेतास्त्यजामीति	३५८
एवमादिक्रियायुक्तः	३१०	एवमुक्त्वा स्थितेष्वेपु	३७८	कथितौ यौ समासेन	३२७
एवमादिक्रियासक्ता-	२०८	एवमुक्त्वोत्तरीयान्तः	२७	कदम्बघनवातेन	१६१
एवमादिगुणः कृत्वा	३०७	एवमुद्गंतवाक्यौ तौ	२४३	कदलीगृहमनोहरगृहे-	१६४
एवमादीनि दुःखानि जीवा	२८८	एवमुद्भृषिताङ्गानां	२७३	कदागमसमापन्नान्	१४०
एवमादीनि दुःखानि विलोक्य	४१०	एवमेतत् कुतो देव	२१७	कदाचिच्चलति प्रेम	३२२
एवमादीनि वाक्यानि	६	एवमेतदथाभीष्टा	१४०	कदाचित्सा सपत्नीभि-	२७७
एवमादीनि वस्तूनि ध्यायत-	३५०	एवमेतदहो त्रिदशाः	३६८	कदाचित् स्वजनानेतान्	७८
एवमादीनि वस्तूनि वीक्ष्यमाण	३५४	एवमेतदिति ध्यानं	६५	कदाचिदथ संस्मृत्य	१००
एवमादि पठन् स्तोत्रं	९४	एवमेतैर्महाद्यौधै-	१८५	कदाचिदपि नो भूयः	२८३
एवमादि परिच्छुब्ध-	२८१	एष प्रेष्यामि ते पुत्र्यौ	३	कदाचिद् बुध्यमानोऽपि	३५८
एवमादि परिध्याय	३६४	एषोऽपि रक्षसामिन्द्र-	५०	कदाचिद् विहरन् प्राप्तः	३०२
एवमादिभिरालापैर्मधुरै-	६६	एषोऽसौ दिव्यरत्नात्म-	१२१	कनकप्रभसंज्ञस्य	३११
एवमादिभिरालापैर्गकुलै-	३९८	एषोऽसौ बलदेवत्वं	६२	कनकादिरजशिचञ्ज-	१२
एवमादिसुसम्भाषं	३०३	एषोऽसौ यो महानासीद्	१३१	कन्दरापुलिनोद्याने	३०७
एवमादीन् गुणान् राजन्	३६७	एष्यागच्छ महासाधो	३६९	कन्दरोदरसम्मूर्च्छा-	२२७
एवमाद्याः कथास्तत्र	२६६	एरयुत्तिष्ठोत्तमे यावः	२२३	कन्यामदर्शयश्चित्रे	१८४
एवमाद्याः गिरः श्रुत्वा	१४४	[ऐ]		कपिकृच्छ्ररजःसङ्ग-	२२८
एवमाद्या महाराजा	३१६	ऐरावतं च विज्ञेयं	२६०	कपोलमल्लि संघट्टा	२६६
एवमाद्या महारावा	२५९	ऐरावतेऽवतीर्यासौ	१०२	कमलादित्यचन्द्रचमा-	१६०
एवमास्थां समारुढे	१६०	ऐरावतोपमं नागं	६३	कम्लामलातकमेर्यादि-	१३३
एवमुक्तं निशम्येतौ	११४	ऐन्द्री रत्नवती लक्ष्मीः	१२६	कयाऽकृतज्ञया नाथ	३७०
एवमुक्तं समाकर्ण्य कृतान्त-	१६२	ऐश्वर्यं पात्रदानेन	३४५	करञ्जजालिकां कत्ते	२३६
एवमुक्तं समाकर्ण्य क्षण-	१६६	[औ]		करणं चरणं द्रव्यं	३०५
एवमुक्तं समाकर्ण्य नव-	६८	औदारिकं शरीरं तु	२६०	करपत्रैर्विदार्यन्ते	४१०
एवमुक्तं समाकर्ण्य वाष्प-	१२८	[क]		करस्थामलकं यद्वत्	१६०
एवमुक्तः सुरेन्द्रोऽसौ	४१५	कजलोपमकारीषु	४३	करस्थामलकज्ञान-	२६३

करालतीक्ष्णधारेण	३६	कस्याश्चिदन्यवनिता	२६६	काश्चिदधर्मकसारङ्गी-	३७०
करिश्लुकृतसम्भूत-	२६२	कस्यासि कुपिता मात-	२५२	काश्चिदानन्दमालोक्य	३७०
करे च चक्ररत्नं च	३०	कस्येष्टानि कलत्राणि	३८६	काश्चिद् वीणां विधाभाङ्गे	३७०
करे चाकृष्य चिच्छेद	२८	कस्यैष भ्रूयते नादो	३०५	काष्ठे विपाठ्यमाने तं	१३६
करेण ब्रह्मवाम् दन्ती	१६२	काग्नेः शुष्कैन्धनैस्तृप्तिः	३०६	किं करोतु प्रियोऽपत्यो	२१३
करेणोद्धर्तयन्नेष	१२६	काचित् स्ववदनं दृष्ट्वा	४६	किं करोमि क्व गच्छामि कं	२१४
करोम्येतत् करिष्यामि	३८०	काचिदूचे कथं धीरौ	३२२	किं करोमि क्व गच्छामि स्वया	३७५
कर्कन्धुकण्टकाश्लिष्ट-	२२८	काचिदूचे त्वया सीते	३२२	किं क्रुद्धः किं पुनः	१३४
कर्तुं तथापि ते युक्तो	२४१	काचिद् विगलितां काञ्ची-	१६	किं च यादृशमुर्वीशः	१६६
कर्तुमिच्छति सद्धर्म-	३५१	काञ्चन स्थाननाथस्य	३४२	किं चान्यदधर्माधीं	४२२
कर्पूरागुरुगोशीर्ष-	७७	कान्ताः कर्तास्मि सुग्रीवं	३१	किं तन्मद्वचनं नाथ	७१
कर्मणः पश्यताधानं	४०५	कान्तिमस्ति त संदध्नी	१९१	किं तर्हि सुचिरं सौख्यं	३४६
कर्मणः प्रकृतीः पष्टि	४०८	कामयाञ्चक्रिरे मोहं	४०७	किं तस्य पतितं यस्य	७४
कर्मणा मनसा वाचा	२८०	कामासक्तमतिः पापो	१२६	किं तेऽपकृतमस्मानिः	२२
कर्मणा मिदमीदृश-	३६८	कामिनोः दिवसः षष्ठ-	१६२	किं न वैदेहि ते ज्ञाता	३२२
कर्मणाष्टप्रकारेण मुक्ता	१६०	कामोपभोगेषु मनोहरेषु	३६१	किं न श्रुता नरकभीम-	३५१
कर्मणाष्टप्रकारेण पर-	२६१	काम्पिल्ये विमलं ननुं	२२०	किं निरन्तरतोत्रांशु-	२८०
कर्मण्युपैतेऽभ्युदयं	६१	का यूयं देवताकाराः	६२	किं पुनर्थत्र भूयोऽपि	१७४
कर्मदौरात्म्यसम्भार-	३१६	कायोत्सर्गविधानेन	६३	किं भवेदिति भूयिष्ठं	४०१
कर्मनियोगेनैवं	३७३	कार्याकार्यविवेकेन	१३१	किं मयोपचितं पश्य परमा	४५
कर्मप्रमथनं शुद्ध	४१३	कालं कृत्वा समुत्पन्नौ	३३७	किं मयोपचितं पश्य मोह-	३२०
कर्मबन्धस्य चित्रत्वा-	३०८	कालं द्राधिष्ठमत्यन्तं	१३८	किं वा विभूषणैरेभि-	३१८
कर्मभिस्तस्य युक्तायाः	२२२	कालं प्राप्य जनानां	३७३	किं वा विलोलजिह्वेन	२३०
कर्मभूमौ सुखाख्यस्य	४१३	कालधर्मं च सम्प्राप्य	३०१	किं वा सरसि पद्मादि-	२१३
कलपुंस्कोकिलात्तापै-	१६२	कालधर्मं परिप्राप्ते	३७४	किं वृथा गर्जसि नुद्ध	२५६
कलहं सदसि श्वोऽसौ	३२४	कालधर्मं परिप्राप्य	३१०	किं वेपसे न हन्मि त्वां	२५६
कलागुणसमुद्भोऽसौ	१७२	कालाग्निमण्डलाकारो	५१	किङ्कर्तव्यविमूढा सा	२७४
कलासमस्तसन्दोह-	१२६	कालाग्निर्नाम रुद्राणां	२६६	किङ्किणीपटलम्बूष-	३५५
कलुषत्वविनिर्मुक्तां	६०	कालानला प्रचण्डाङ्गा	२५९	किञ्चित्कर्तुं मशक्तस्य	२४१
कलुषात्मा जगादासौ	३८२	कालिङ्गकाश्च राजानो	२५६	किञ्चित्संकीड्य संचेष्ट	१३०
कल्याणं दोहदं तेषु	१९३	काले तस्मिन्नरेन्द्रस्य	१६२	किञ्चिदाकर्ण्य स्वामिन्	४२
कवाटजीविना तेन	१७२	काले देशे च भावेन	४१७	किञ्चिदाशङ्कितारमाभ्या-	१३३
काशिपुः काशिराजोऽसौ	३२६	काले पद्मरुचिः प्राप्य	३०४	किञ्चिद् वक्तुमशक्तात्मा	२०६
काश्चिदभ्यायतोऽश्वस्य	२६१	काले पूर्णतमश्कन्ने	२२०	किञ्चिद् व्रज पुरोभागं	२५६
काश्चिन्मोहं गताः सत्यः	७२	काले विकालवत्काले	१७६	किन्तु कोविद नोपायः	२३२
कषायोऽग्रतरङ्गाढ्यात्	३६५	का वार्ता तेऽधुना	१८६	किन्तु लोकविरुद्धानि	२०४
कष्टं भूमितले देव	७१	कावेतावीटशौ पापौ	३३५	किमनर्थकृतार्थेन	२०४
कष्टं लोकान्तरस्यापि	२३३	काशिदेशं तु विस्तीर्णं	३२५	किमनेनेदमरन्ध्रं	२५
कस्यचिदथ कालस्य	३३१	काश्चित् किल विधादेन	४०७	किममी त्रिदशक्रीडा	१२४

किमयं कृत्रिमो दन्ती	१३४	कुमारावृचतुर्थाव-	२५१	कृतानि कर्माण्यशुभानि	१३२
किमर्थं संशयतुला	४२	कुम्भश्रुतिमारीचा-	८६	कृतान्तत्रिदशोऽवोचत्	३८५
किमाभ्यां निर्वृतेर्वृती	३४५	कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते	२८८	कृतान्तवक्त्रमात्माभं	१६१
किमिदं दृश्यते सख्यो	२४७	कुररीवं कृताक्रन्दा	११४	कृतान्तवक्त्रवेगेन	२६३
किमिदं स्थिरमाहोस्विद्	२६५	कुरु प्रसादमुत्तिष्ठ	७३	कृतान्तवक्त्रसेनानीः	२०५
किमिदं हेतुना केन	२०६	कुर्वन्तीति समाक्रन्दं	१५१	कृतान्तस्यापि भीमार-	२२७
किमेकरमप्रायो	२६८	कुर्वन्तु वचनै रक्षां	४२५	कृतान्तास्यस्ततोऽवोच-	३१८
किमेतच्चेष्टतेऽद्यापि	४०	कुर्वन्तु वाञ्छितं बाह्याः	४०८	कृतान्तेन समं यावद्	३८८
किमेतद् दृश्यते माम	२५६	कुर्वन्त्वथात्र सान्निध्यं	४२५	कृतान्तेनाहमानीता	१६६
किम्पाकफलवद्भोगा	६७	कुलं महार्हमेतन्ने,	२०३	कृताशेषक्रियास्तत्र	१६१
कियता देहभारेण	२४३	कुलं शीलं धनं रूपं	२४२	कृत्यं विधातुमेतावद्	१११
कियन्तमपि कालं मे	१७६	कुलक्रमागतं वत्स	१४२	कृत्वाकृत्यविवेकेन	२३०
किल शान्तिजिनेन्द्रस्य	१६	कुलङ्करचरो जन्म-	१४०	कृत्रिमाकृत्रिमान्यस्मिन्	२२०
किष्किन्धकारडनामानं	२४	कुलङ्करोऽन्वदा गोत्र-	१३९	कृत्रिमोऽयमिति ज्ञात्वा	२६
किष्किन्धपतिवैदेह-	६६	कुलपद्मवनं गच्छत्	४२	कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि	३१६
किष्किन्धराजपुत्रेण	५४	कुलिशभ्रवणश्चरडो	२५८	कृत्वा करपुटं सीता	३४
कुकर्मानिरतैः क्रूरै-	१८०	कुशलं रावणस्थायं	११२	कृत्वा कलकलं व्योम्नि	१८५
कुक्रुतं प्रथमं सुदीर्घ-	४२४	कुशाग्रनगरे देवि	२२०	कृत्वा कहकहाशब्दं	१८६
कुवकुटाण्डप्रभं गर्भं	१२३	कुसुमाञ्जलिभिः साधं	२८२	कृत्वा च तं तन्नगर-	८५
कुग्रन्थैर्मोहितात्मानः	३६६	कुसुमामोदमुद्यानं	१३३	कृत्वा तत्र परां पूजां	३२
कुटिलभृकुटीबन्ध-	३६	कुसुमैः कर्णिकारायां	४०६	कृत्वा परमकारुण्यं	३६२
कुटिलां भृकुटीं कृत्वा	२२	कुहेतुसमयोद्भूत-	३४८	कृत्वा पाण्डित्ये गण्डं	६
कुटुम्बसुमहापङ्के	२६७	कूबरस्थाननाथस्य	१००	कृत्वापि सङ्गतिं धर्मै	३१४
कुरडलाद्यैरलंकारैः	१४५	कृच्छ्रान्मानुषमासाद्य	३६६	कृत्वा प्रधारणामेतां	३६९
कुतः पुनरिमां कान्तां	२७६	कृतं मया ययोरसीद	११८	कृत्वा स्तुतिं प्रमाणं च	९५
कुतः प्राप्तासि कल्याणि	११०	कृतं वश्यतया किञ्चित्	२११	कृपीटपूरितां कुम्भीं	३८७
कुतहलतया द्वौ तु	३६६	कृतकोमलसङ्गीते	१२६	कृष्णपद्मे तदा रात्रिः	३५७
कुतोऽत्र भीमे	२१५	कृतज्ञतं ससीत्कारं	५०	केकयानन्दनस्यैव	१५६
कुतो रावणवर्गीयो	११२	कृतप्रस्थिकमाधाय	२८	केकयावरदानेन	२१९
कुस्तिताचारसम्भूतं	२३२	कृतभिद्स्य निर्यातः	२७७	केचिच्छार्दूलपृष्ठस्थाः	६७
कुधर्माचरणाद् भ्रान्तौ	१२६	कृतमेतत् करोमीदं	३५०	केचिच्छूलेषु भिद्यन्ते	४१०
कुधर्माशयसक्तोऽसौ	२६६	कृतवानसि को जातु-	३७४	केचिच्छावकर्ता प्राप्ताः	३१६
कुन्दः कुम्भो निकुम्भश्च	५७	कृतस्तत्र प्रभात्वेण	६५	केचिज्जनकराजस्य	२७३
कुबेरकान्तनामानं	२४५	कृतस्य कर्मणो लोके	१४८	केचित् खड्गहस्तोरस्काः	५६
कुबेरवरुशान-	३९	कृतां स्वर्गपुरीतुल्यां	११७	केचित् प्लावितुमारुन्धा	२८१
कुमारयोस्तयोरिच्छ्या	२४४	कृताञ्जलिपुटः क्षोणीं	१४	केचित् संसारभावैभ्यो	८०
कुमारयोस्तयोर्थाव-	२५८	कृताञ्जलिपुटाश्रूनां	२६०	केचित् सुकृतसामर्थ्या-	५६
कुमाराः प्रस्थिता लङ्कां	१७	कृताञ्जलिपुटाः स्तुत्वा	१३७	केचिद् दीप्तास्त्रसम्पूर्णै-	५२
कुमारादित्यसंकाशौ	२३६	कृताञ्जलिपुटौ नम्रौ	१२२	केचिद् बध्वाग्निगुण्डेषु	४१०

केचिद् बलममृष्यन्तो	७६	क्रुद्धस्थापीदृशं वक्त्रं	३७५	क्षुद्रविद्यात्तवर्गेषु	३०
केचिद् भोगेषु विद्वेषं	७६	क्रुद्धेनापि त्वया संख्ये	३४	क्षुद्रस्योत्तरमेतस्य	५
केचिद् यन्त्रेषु पीड्यन्ते	४१०	क्रुद्धो मयमहादैत्यः	१६	क्षुद्रमेघकुलस्वानं	६५
केचिद् वरतुरङ्गावै-	५२	क्रूरो यवनदेवाख्यो	१७१	क्षोमाञ्जलिपुरेशस्य	१००
केचिन्नाथं समुत्सृज्य	२६१	क्रोधाद् विकुरुते किञ्चिद्	१५	क्षोमेण रावणाङ्गस्य	२२
केचिन्निर्भरनिश्च्योत-	२५५	क्रौञ्चानां चक्रवाकानां	२८२	क्षोणीं पर्यटता तेन	१४१
केचिन्निष्कणमैल्लन्त-	३२२	क्लेशित्वाऽपि महायत्नं	२६६	क्षोभयन्तावथोदारं	२६०
केयूरदष्टमूलाभ्यां	६१	क्वचित् कञ्जकलारावा-	२८१	क्ष्वेडवद्दुर्जनं निन्द्यं	४७
केवलं भ्रम एवात्र	३८७	क्वचित् पुलिन्दसङ्घात-	२०८	[ख]	
केवलज्ञानसुरराद्य	१७६	क्वचिदञ्जाल्यन्तरीभिः	२०८	खचितानि महारत्नै-	११६
केसर्वासनमूर्धस्थं	३५५	क्वचिदुन्नतशैलाग्रं	२०८	खजलस्थलचारेण	२२२
कैक्या कैकयी देवी	१३६	क्वचिद् ग्रामे पुरेऽरण्ये	२०७	खलमास्तनिर्धूत-	२८७
कैकयीसु नुना व्यस्रः	५६	क्वचिद् धनपटञ्छन्न-	२०७	खलवाक्ययुषारेण	२३१
कैकेयेयस्ततः पाप-	६०	क्वचिद् विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	खिन्ना तं प्राह चन्द्राभा	३३६
कैटभस्य च तद्भ्रातुः	३३०	क्वचिन्मुञ्चति हुङ्कारान्	२८१	खिन्नाभ्यां दीयते स्वाद्	६२
कैलासकूटकल्पासु	४०	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	खेचरेन्द्रा यथा योग्यं	६८
कैलाससानुसङ्काशाः	१८२	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	खेचरेशैस्ततः कैश्चिद्	७७
कैश्चिद्दशालातपञ्चायैः	३२	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	खेचरैरपि दुस्साध्य-	१२६
को जानाति प्रिये भूगो	५३	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	ख्यातं किञ्चिद्वनूमन्तं	२७३
को दोषो यदहं त्यक्त्वा	२२७	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	[ग]	
कोऽयं प्रवर्तितो दम्भो	२७	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गगने खेचरो लोको	२७३
कोऽयमीदृक् कुतः	३६७	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गङ्गायां पूरयुक्तायां	१२७
कोलाहलेन लोकस्य	३६८	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गच्छ गच्छाप्रतो मार्गं	२६
को वा यातस्तृप्तिं	३५८	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गच्छतोऽस्य बलं भीमं	२
को वा रत्नेऽस्तया नाम	१४४	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गच्छामस्त्वां पुरस्कृत्य	४०७
कोविदः कथमीदृक् स्व-	१०४	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गजः संसारभीतोऽयं	१५३
को ह्येकदिवसरार्यं	३५७	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गजेन्द्र इव सद्भीतः	३३
कौमारव्रतयुक्ता सा	१६८	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गणी वीरजिनेन्द्रस्य	३५०
क्रमवृत्तिरियं वाणी	३३०	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गणयाह मगधाभिख्ये	३३०
क्रमान्मार्गवशात्प्राप्तो	३३८	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गण्युचे यदि सीताया	१०३
क्रमेण चानुभावेन	१७३	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गताऽऽगमविषेर्दत्त-	३६०
क्रमेण पुण्यभाराया	१६१	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गतिरेवैष वीराणा-	७६
क्रमविक्रयसक्तस्य	२६५	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गते च सवितर्यस्तं	३३४
क्रव्याच्छ्वापदनादाढ्ये	३३४	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गत्यागतिविमुक्तानां	२६२
क्रियमाणामसौ पूजां	६६	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गरवा च ते दती	३३३
क्रीडयापि कृतं सेहे	२३५	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गत्वा नन्दीश्वरं भक्त्या	१२
क्रीडाग्रहमुपाविच्छन्	४८	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गत्वा व्यज्ञापयन्नेवं	३६६
क्रीडानिस्पृहचित्तोऽसौ	१३०	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गत्वाैवं ब्रूहि दूतं त्वं	३
क्रीडैकरसिकात्मानां	३६९	क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं	२६१	गदासिचक्रसम्पातो	१६४

गदितं तैरलं भोतै-	७६	गुरुलोकं समुल्लङ्घ्य	२८८	ग्रामस्यैतस्य सीमान्ते	३३२
गदितं यत्त्वयाऽन्यस्य	४८	गुरुशुश्रूषणोद्युक्तौ	२३९	ग्रामैरानीय सङ्कुञ्चैः	१०७
गन्तुमिच्छन्निजं देशं	३८६	गुरोः समक्षमादाय	२१३	ग्रामो मण्डलको नाम	३१५
गन्धर्वगीतममृतं	१८८	गुरा मनोहरद्वारा	३५४	ग्रैष्मादित्यांशुसन्तान-	११४
गन्धर्वाप्सरसस्तेषां	५५	गृधर्क्षमल्लगोमायु-	२३०	[घ]	
गन्धवाप्सरसो विश्वा	६५	गृहं च तस्य प्रविशन्	८५	घनकर्मकलङ्काक्ता	२६७
गन्धोदकं च संगुञ्जद्	६१	गृहदाहं रजोवर्षं	२७७	घनजीमूतसंसक्ता	१७६
गमने शकुनास्तेषां	५५	गृहस्थविधिनाऽभ्यर्च्यं	४१८	घनपङ्कविनिर्मुक्त-	३८८
गम्भीरं भवनाख्यात-	३४२	गृहस्य वापिनो वाऽपि	७४	घनवृन्दादिवोत्तीर्यं	६०
गम्भीरास्ताडिता भेर्यः	५१	गृहाण सकल राज्य-	३०३	घनाघनघनस्वानो	१४७
गरुडमण्डिनिर्माणैः	३२	गृहान्तर्ध्वनिना तुल्यं	१२६	घनाघनघनोदार-	१३०
गर्भभारसमाक्रान्ता-	२०५	गृहाभ्रमविधिः पूर्वः	१३७	घर्माकंमुनिरीक्षवाक्षः	२६०
गर्भस्थ एवात्र मही-	८४	गृह्णियां रोहिणीनान्यं	४१८	घूर्णमानेक्षणं भूयः	४६
गलगण्डसमानेषु	१२६	गृहीतं बहुभिर्विद्धि	२९३	घृतक्षीरादिभिः पूर्णाः	१२
गलदन्त्रचयाः केचिद्	५६	गृहीत इव भूतेन	३३३	[च]	
गलद्विधिरधाराभिः	६४	गृहीतदारुभारेण	१७३	चक्रं छत्रं धनुः शक्ति-	१८८
गहने भवकान्तारे	३४५	गृहीते किं विजित्यैते	३४३	चक्रककचवागासि-	१८४
गाढक्षतशरीरोऽसौ	१६७	गृहीतोत्तमयोगस्य	३६५	चक्रपाणिरयं राजा	३२२
गाढदद्याधरं स्वांशु-	३६	गृहीत्वा समरे पापं	३६	चक्ररत्नं समासाद्य	३८४
गाढप्रहारनिर्मिन्नाः	४१०	गृहीत्वा तांस्तयोमात्रोः	११६	चक्रेण द्विषतां चक्रं	३७६
गारुडं रथमारूढो	५५	गृहीत्वा जानकीं कृत्वा	४६	चक्रेणारिगणं जित्वा	६४
गिरा सान्त्वनकारिण्या	१६८	गृहे गृहे तदा सर्वाः	७६	चक्रे शान्तिजिनेन्द्रस्य	१४
गिरिगह्वरदेशेषु	३६५	गृहे गृहे शनैर्भिन्नां	२३६	चक्रेयुशक्तिकुन्तादि-	६४
गीतानङ्गद्रवालापै-	४६	गृह्तोरनयोर्दोक्षां	३७३	चक्षुःकुमुदती कान्तं	२८५
गीतैः सचारुभिर्वेणु-	३८३	गृहन्तौ सन्दधानौ वा	२४४	चक्षुः पञ्जरसिद्धेषु	२३५
गीयमाने सुरस्त्रीभि-	३८६	गृह्णाति रावणो यद्यत्	६३	चक्षुर्मानसयोर्वासं	२००
गुच्छुगुलमलतावृक्षाः	१६२	गृह्णासि किमयोध्यार्द्धं	१५६	चक्षुर्व्यापारनिर्मुक्ते	३०१
गुञ्जाफलाद्धवर्णाक्ष-	२१३	गृह्णीयतामिषुं मुक्त-	२३९	चण्डसैन्योर्मिमालाढयं	७
गुणप्रवरनिर्ग्रन्थ-	३६३	गृह्यमाणोऽतिकृष्णोऽपि	२०३	चतुःशाल इति ख्यातः	१२३
गुणरत्नमहीर्षं ते	२७१	गोत्रक्रमागतो राजन्	१४०	चतुःषष्टिसहस्राणि	१४४
गुणशीलसुसम्पन्नः	३१०	गोदण्डमार्गसहस्रो	१४८	चतुःषष्टिसहस्रेषु	३२६
गुणसौभाग्यतूष्णीरौ	२८६	गोदुःखमरणं तस्मै	३०३	चतुरङ्गाकुले भीमे	२४६
गुणान् कस्तस्य शक्नोति	१३८	गोपनीयानदृश्यन्त	५०	चतुरङ्गुलमानेन	१७७
गुरोर्न केन हीनाः स्मः	३४४	गोपायितदृषीकस्वं	२६४	चतुरङ्गेन सैन्येन	५१
गुप्तिव्रतसमित्युद्यः	३०४	गोपुरेण समं शालः	२२६	चतुरश्रमथाऽरुह्य	२०५
गुरुं प्रणम्य विधिना	२४०	गोष्यदीकृतनिःशेष-	१०२	चतुर्गतिमहावर्ते	३६६
गुरुराह ततः कान्त	३३७	ग्रसमाना इवाशेषां	१८	चतुर्गतिविधानं ये	१६०
गुरुर्वन्धुः प्रणोता च	६४	ग्रहाणामिव सर्वेषां	२४	चतुर्भेदजुषो देवा	२८६
		ग्रामस्यानीयसम्पन्नां	३०४	चतुर्विंशतिभिः सिद्धिं	१६

चतुर्विधोत्तमाहार-	३२	चिरं संसारकान्तारे	१४४	जगद् च स्मितं कृत्वा	१
चतुष्कर्ममयारण्यं	३२७	चिरस्यालोक्य तां पद्मः	६१	जगद् चाधुना वार्ता	२७
चन्दनाद्यैः कृताः सर्वै-	६६	चिरारुच प्रतिकारेण	२२९	जगद् देवि पापेन	३३
चन्दनाम्बुमहामोद-	३५२	चिरादुत्सहसे वक्तुं	१६८	जगद् भरतश्चैनं	१३१
चन्दनाचित्तेहं तं	३८३	चिह्नानि जीवमुक्तस्य	३७१	जगद् मास्तिर्युयं	३६०
चन्दनोदकसिक्तश्च	२६६	चूडामणिगतेनापि	२३८	जगादासावतिक्रान्ताः	१६८
चन्द्रः कुलङ्कारो यश्च	१४८	चूडामणिहसद्बद्ध-	१४	जगाम शरणं पद्मं	४१४
चन्द्रनक्षत्रसादृश्यं	३६५	चेष्टितमनघं चरितं	४२१	जगावत्या परं सीता	३२२
चन्द्रभद्ररूपः पुत्र-	१७२	चैत्यस्य वन्दनां कृत्वा	१०६	जगौ काश्चित् प्रवीराणां	३२१
चन्द्रवर्धनजाताना-	१०१	चैत्यागाराणि दिव्यानि	११६	जगौ च देव सिद्धोऽहं	३०
चन्द्रवर्धननाम्नोऽथ	६२	चैत्यानि रामदेवेन	१२४	जगौ च देवि कल्याणि	२८३
चन्द्रहासं समाकृष्य	६६	च्युतं निपतितं भूमौ	१२१	जगौ च पूर्वं जननं	८५
चन्द्रादित्यसमानेभ्यः	२६	च्युतः पुरयावशेषेण	३११	जगौ च वर्द्धसे दिष्टया	३२६
चन्द्रादित्योत्तमोद्योत-	३६४	च्युतः सन्नभिरामोऽपि	१४८	जगौ च शूर सेयं ते	२६
चन्द्रार्भं चन्द्रपुर्यां च	२२०	च्युतपुष्पफला तन्वी	२०७	जगौ नारायणो देव	२६५
चन्द्राभा चन्द्रकान्तास्या	३३८	च्युतशस्त्रं क्वचिद् वीक्ष्य	२६१	जगौ वाष्पपरीताहो	३८२
चन्द्रोदयेन मधुना	५०	च्युतस्ततो गिरेर्मैरो	३०४	जग्राह भूषणं काश्चित्	४९
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं विरा-	८६	च्युतो जम्बूमति द्वीपे	१४३	जष्वाला ज्वलनश्चोग्रः	२८०
चन्द्रोदस्तुतः सोऽयं सलि	१२१	च्युतो मृदुमतिस्तस्मात्	१४७	जटाकूर्चधरः शुक्ल-	१०६
चराचरस्य सर्वस्य	९४	च्युतोऽयं पुरयशेषेण	१३१	जटायुः शीरमासाद्य	३८७
चरितं सत्पुरुषस्य	२२३	च्युत्वा जम्बूमति द्वीपे	३१२	जनं भवान्तरं प्राप्त-	३८०
चलत्पादाततुङ्गोर्मि-	१६३	च्युत्वापरविदेहे तु	३०४	जनकः कनकश्चैव	४१६
चलदधर्याभिरामस्य	६३	[छ]		जनको भर्त्रा पुत्रः	८६
चलान्युत्पथवृत्तानि	३५७	छत्रध्वजनिरुद्धार्क-	११८	जननीक्षीरसेकोत्थ-	२३६
चलितासनकैरिन्द्रै-	६४	छत्रचामरधारीभि-	४१	जननीजनितं तौ	२४८
चषके विगतप्रीतिः	५०	छायशा दशविष्यामः	३८६	जनन्यापि समाश्लिष्टं	३८०
चाटुवाक्यानुरोधेन	१३४	छायाप्रत्याशया यत्र	२८७	जनितोदारसंघट्टै-	१३०
चारणश्रमणान् ज्ञात्वा	१७७	छित्त्वाऽन्यदा गृहे	२७७	जनेभ्यः सुखिनो भूयाः	२६२
चारणश्रमणौ यत्र	११८	छित्त्वा रागमयं पाशं	३६४	जनेशिनोऽश्वरथ-	५२
चारित्र्येण च तेनार्थो	२०४	छिन्दन्तः पादपादोस्ते	२५४	जन्ममृत्युजरादुःखं	३०६
चारुचैत्यालयाकीर्णै	३३०	छिन्दानेन शरान् बद्ध-	१६५	जन्ममृत्युपरित्रस्तः	३६२
चारुमङ्गलगीतानि	१५६	छिन्नपादशुजस्कन्ध-	२८८	जन्मान्तरकृतश्लाघ्य-	११६
चारुलक्षणसम्पूर्णं	२१	छिन्नैर्विपाटितैः क्षोदं	५६	जम्बूद्वीपतलस्येदं	११८
चारुशृङ्गारहासिन्यो	४०७	[ज]		जम्बूद्वीपमुखा द्वीपा	२९०
चारुन् काश्चिद् भवान्	३०५	जगतीह प्रविख्यातौ	३३७	जम्बूद्वीपस्य भरते	१४२
चित्रचापसमानस्य	२१२	जगतो विस्मयकरौ	४०५	जम्बूभरतमागत्य	११०
चित्रतां कर्मणां केचित्	७९	जगद् च चतुर्भेदः	२०६	जम्भजृम्भायताः	३७०
चित्रश्रोत्रहरो जहे	४०२	जगद् च समस्तेषु	२१७	जय जीवाभिनन्देति	२२६
चिन्तितं मे ततो भर्त्रा	२२१			जयत्यजेयराजेन्द्रो	३२६

जयत्रिस्ररडनाथस्थ	१५७	जिनवागमृते लब्धं	३२१	ज्ञानदर्शनभेदोऽयं	२६३
जयन्त्यात्र महादेव्या	१६२	जिनशासनतत्त्वज्ञः	२१८	ज्ञानमष्टविधं ज्ञेयं	२८६
जलबुद्बुदनिःसारं	३०६	जिनशासनतोऽन्यत्र	३०८	ज्ञानविज्ञानसम्पन्नौ	२३६
जलबुद्बुदसंयोग-	६५	जिनशासनदेवीव	२३६	ज्ञानशीलगुणसङ्गै-	४१५
जले स्थलेऽपि भूयोऽपि	३०२	जिनशासनमेकान्ता-	३००	ज्ञापयामोऽधुनाऽऽत्मीये	२४५
जल्पितेन वरस्त्रीणां	२१३	जिनशासनवात्सल्यं	३३७	ज्ञायतां कस्य नादोऽथ-	३०५
जातः कुलकराभिरव्यः	१३६	जिनशासनसद्भावाः	१३६	ज्ञेयदृश्यस्वभावेषु	२८६
जातरूपधरः सत्य-	१५३	जिनाक्षरमहारत्न-	३९६	ज्ञेयो रूपवती पुत्र	१८६
जातरूपधरान् दृष्ट्वा	१८०	जिनागारसद्वेष्टादर्थं	३५४	ज्योतिभ्यो भवनावासा	२६२
जातरूपमयैः पद्मै-	१३	जिनेन्द्रचरितन्यस्त-	१९७	ज्योतिष्पाथात् समुत्तुङ्गा-	३५७
जाता च ब्रह्मदेवस्य	३१२	जिनेन्द्रदर्शनासक्त-	११०	ज्वलज्वलनतो	२८५
जातेनावश्यमर्तव्य-	३७८	जिनेन्द्रदर्शानोद्भूत-	३५५	ज्वलज्वलनसन्ध्याक्त-	३५५
जातो नारायणः सोऽयं	६७	जिनेन्द्रपूजाकरण-	१५	ज्वलाद्बद्धिचयाद्भीता	२८७
जातौ गिरिवने व्याधौ	१४७	जिनेन्द्रप्रतिमास्तेषु	१०	ज्वालाकलापिनोत्तुङ्ग-	२३०
जानकं पालयन् सत्यं	२५०	जिनेन्द्रभक्तिसंवीत	३५३	ज्वालावलीपरीतं तद्-	२६५
जानकीवचनं श्रुत्वा	११९	जिनेन्द्रवन्दनां कृत्वा	१७७	[ऋ]	
जानकीवेषमास्थाय	४०६	जिनेन्द्रवरकूटानि	३५४	भूलाभ्लातकद्वकानां	६६
जानक्या भक्तितो दत्त-	१८१	जिनेन्द्रविहिते सोऽयं	१२७	भूलाभ्लातकद्वकानां	१२०
जानक्यास्तनयावेतौ	२६५	जिनेन्द्रशासनादन्य-	२९३	[त]	
जानन्तोऽपि निमित्तानि	५४	जिनेन्द्रो भगवानर्हन्	३६६	तं कदा तु प्रभु गत्वा	२२१
जानन्नपि नयं सर्वं	४५	जिह्वा दुष्टभुजङ्गीव	२५१	तं चूडामणिसंकाशं	७१
जानानः को जनः कूपे	१४४	जीमूतशाल्यदेवाद्या-	६२	तं तथाविधमायान्तं	२०५
जानुमात्रं क्षणादम्भः	२८१	जीवतां देव दुःपुत्रा-	३३६	तं दृष्ट्वाऽभिमुखं रामो	३८८
जानुसम्पीडितक्षोणिः	१५०	जीवन्तावेव तावतौ	१४१	तं निमेषेऽङ्गिताकृत-	२
जामाता रावणस्यासा-	१५६	जीवप्रभृति तत्त्वानि	२२१	तं प्रति प्रस्तुता वीराः	५५
जाम्बूनदमयोधधि-	२८३	जीवलोकेश्वलानाम	३१४	तं राजा सहसा	२७७
जाम्बूनदमयैः कूटैः	५४	जीविततृष्णारहितं	२६२	तं वृत्तान्तं ततो ज्ञात्वा	१११
जाम्बूनदमयैः पद्मैः	३३५	जीवितेश समुत्तिष्ठ	७३	तं वृत्तान्तं समाकर्ष्य	१७६
जायतां मथुरालोकः	१८१	जुगुञ्जुर्मञ्जवो गुञ्जा	२८२	तं समीक्ष्य समुद्भूत-	४०१
जितं विशल्यथा तावत्	१६८	जेतुं सर्वजगत्कान्ति	३४३	तं समीपत्वमायात-	१०६
जित्वा राज्ञसर्वशस्य	१२८	जैने शक्त्या च भक्त्या च	३६६	त एते पूर्वया प्रीत्या	३१२
जित्वा शत्रुगणं संख्ये	१२६	ज्ञाताशेषकृतान्त-	४२३	तच्चैतच्छ्रुत्वास्त्राणां	२०३
जित्वा सर्वजनं सर्वान्	३७	ज्ञातास्मि देव वैराग्यात्	१४०	तच्छ्रुत्वा परमं प्राप्तौ	२५३
जिनचन्द्राः प्रपूज्यन्तां	१४	ज्ञात्वा जीवितमानाय्यं	३५१	तदर्थं पुरुषं तस्य	११२
जिमचन्द्रार्चनन्यस्त-	३५६	ज्ञात्वा नृपास्तं विविधै-	८४	तद्विदुल्कातरङ्गाति-	३५७
जिननिर्वाणधामानि	४१६	ज्ञात्वा व्याघ्ररथं बद्धं	२४२	तत उद्गतभूच्छेद-	२६
जिनबिम्बाभिषेकार्थ-	१३	ज्ञात्वा सुदुर्जरं वैरं	३१६	ततः कथमपि न्यस्य	२०२
जिनमार्गस्मृतिं प्राप्य	३८६	ज्ञात्वैवं गतिमायति च	१४८	ततः कथमपि प्राप	१४२
जिनवरवदनविनिर्गत-	१४६	ज्ञानदर्शनतुल्यौ द्वौ	४१६	ततः कथितनिर्शेष-	२५०

ततः कर्मानुभावेन	३०२	ततः प्राग्रहरस्तेषा-	१६८	ततश्च्युतः समानोऽसा-	१७४
ततः कश्चिन्नरं दृष्ट्वा	२६	ततः प्राप्ता वरारोह्या	४०१	ततश्च्युतः समुत्पन्नः	३०१
ततः कालावसानेन	३००	ततः प्रीतिङ्कराभिख्य-	३१२	ततस्तं सचिवाः प्रोचुः	३२
ततः किञ्चिदधोवक्त्रो	४५	ततः शत्रुबलं श्रुत्वा	२४३	ततस्तत्पुण्ययोगेन	२३६
ततः किष्किन्धराजोऽस्य	५८	ततः श्रामण्यमास्थाय	३०४	ततस्तथाविधैवेयं	६८
ततः कुमारधीरास्ते	३४२	ततः श्रुत्वा परानीक-	२५६	ततस्तथाऽस्त्विति प्रोक्ते	२१
ततः कुलन्धराभिख्यः	१७१	ततः श्रुत्वा महादुःखं	३१८	ततस्तदिङ्गितं ज्ञात्वा	२७२
ततः कृतान्तदेवोऽपि	३८३	ततः श्रुत्वा स्ववृत्तान्तं	४१२	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा	२१०
ततः कृपणलोलाबाः	३६०	ततः संज्ञां परिप्राप्य	२६४	ततस्तनुकषायत्वा-	३०६
ततः कृत्वाञ्जलिं	२६७	ततः संस्थानमास्थाय	३३५	ततस्तमुच्यतं गन्तुं-	१६०
ततः केवलसम्भृति-	२७८	ततः संस्मित्य वैदेही	१६२	ततस्तयोः समाकर्य	२५२
ततः केवलिनो वाक्यं	३२०	ततः सद्भिन्नमस्थाभि-	३५६	ततस्तां सङ्गमादित्य-	६३
ततः कोलाहलस्तुङ्गो	२४२	ततः सन्ध्यासमासक्त-	२५६	ततस्तान् सुमहाशोक-	२१७
ततः क्रमेण तौ वृद्धिं	२३५	ततः सन्नाहशब्देन	२५४	ततस्तार्क्ष्यसमाख्येण	६०
ततः क्षणमिव स्थित्वा	२०२	ततः सप्तमभूपृष्ठं	२४७	ततस्तावूचतुः कौ तौ	२४६
ततः क्षुब्धार्णवत्वाना	५४	ततः समागमो जातः	२६७	ततस्तावूचतुर्मातः	२५३
ततः पतत्रिसंघातै-	६३	ततः समाधि समुपेत्य	१६७	ततस्तुष्टेन तार्क्ष्येण	१३६
ततः पदातिसंघाता	२५५	ततः समाधिमारुध्य	३०४	ततस्ते जगद्दुर्देवि	२७१
ततः पद्माभचक्रेशौ	१३६	ततः समीपतां गत्वा	२५२	ततस्तेऽत्यन्तदुःखार्ता	४१२
ततः पद्मो मयं वाणै-	५८	ततः समुत्थिते पद्मे	१५६	ततस्ते परसैन्यस्य	२५६
ततः परं तपः कृत्वा	४१८	ततः सम्भ्रान्तचेतस्को	१६५	ततस्ते व्योमपृष्ठस्था	११६
ततः परबलं प्राप्तं	१८४	ततः सरसिरुड्गर्भ-	२८२	ततस्तोमरमुद्यम्य	१६४
ततः परबलाम्भोधौ	१८५	ततः साधुप्रदानोत्थ-	४१७	ततस्तौ रामलक्ष्मीशौ	३४२
ततः परमगम्भीरः	३०५	ततः सिंहासनाकम्प-	४०८	ततस्तौ सुमहाभूत्या	२४५
ततः परमनिर्वाणं	४१६	ततः सितयशोव्यास-	५५	ततोऽकृत्रिमसावित्री	२८३
ततः परमभृद् युद्धं	२६१	ततः सिद्धात्रमस्कृत्य	२०७	ततो गजघटापृष्ठे	२६८
ततः परमरागाक्ता	३६५	ततः सीताविशाल्याभ्यां	१३३	ततो गत्वार्धमध्वानं	२४२
ततः परिकरं बद्ध्वा	४१२	ततः सीतासमीपस्थं	२५२	ततोऽगदद् यदि	३८३
ततः परिजनाकीर्णा-	३४८	ततः सीता समुत्थाय	२८०	ततो ग्रामीणलोकाय	३१५
ततः परिभवं स्मृत्वा	३६	ततः सुखं समासीनः	२४६	ततोऽङ्कुरो जगादासौ	२५०
ततः परिषदं पृथ्वीं	२७२	ततः सुविमले काले	३३५	ततोऽङ्गदः प्रहस्योचे	११२
ततः पुत्रौ परिष्वज्य	२६६	ततः सेनापतेर्वाक्यं	२२६	ततोऽङ्गदकुमारेण	२५
ततः पुरैव रम्यासौ	२६७	ततः स्त्रीणां सहस्राणि	३१	ततोऽङ्गनाञ्जान्तःस्थं	१३१
ततः पुरो महाविद्या-	२१७	ततः स्नुषासमेताऽसौ	२२८	ततो जगाद् वैदेही निन्दुरो	२७४
ततः प्रकुपितात्यन्तं	३०६	ततः स्वयंप्रभाभिख्यः	४०६	ततो जगाद् वैदेही राजन्	२८४
ततः प्रकुपितेनासौ	३०६	ततश्चन्दनदिग्धाङ्गः	३५६	ततो जगाद् शत्रुघ्नः किमत्र	१५६
ततः प्रणम्य भक्ताऽभा	१७६	ततश्चन्द्रोदयः कर्म-	१३६	ततो जगाद् शत्रुघ्नः प्रसादं	१७६
ततः प्रधानसाधुं तं	३६९	ततश्च पद्मनाभस्य	८८	ततो जगाद् सौमित्रिः	२०३
ततः प्रभावमाकर्ण्य	१७८	ततश्चागमनं श्रुत्वा	३३१		

ततो जगाववद्वारः	२४६	ततो महेन्द्रकिष्किन्धः	२५०	ततो हलहलाराव-	३४३
ततो जययुर्गांवाणो	३८५	ततो महोत्कटद्वार-	२८७	तत्कराहतभूकम्प-	३२
ततो जययुर्देवोऽगा	३६०	ततो मातृजनं वीक्ष्य	१२१	तत्कार्यं बुद्धियुक्तेन	४७
ततो जनकपुत्रेण	४१७	ततो मुनिगणस्वामी	१८८	तत्तस्य वचनं श्रुत्वा	३६२
ततो जनकराजस्य	२२१	ततो मुनीश्वरोऽवोचत्	४१४	तत्तुल्यविभवा भूत्वा	२२
ततो जिनेन्द्रगेहेषु	१६७	ततो मृता परिप्राप्ता	१०७	तत्तेषां प्रदहत्कण्ठं	२८८
ततोऽतिविमले जाते	१६१	ततो मृदुमतिः कालं	१४१	तत्स्वमूढास्ततो भीता	२१७
ततोऽस्यन्तदृढीभूत-	२०५	ततो मेरुवदक्षोभ्य-	२०६	तत्स्वश्रद्धानमेतस्मिन्	२९४
ततोऽस्यन्तप्रचण्डौ तौ	३३५	ततो यथाऽऽज्ञापयतीति	१५	तत्पूर्वन्नेहसंसक्तो	३२७
ततोऽस्युग्रं विहायःस्थं	११९	ततो यथावदाख्याते	१०६	तत्र कन्ये दिनेऽन्यस्मिन्	३४२
ततोऽथ गदतः स्पष्टं	३०	ततो रत्नरथः साकं	१८६	तत्र कल्पे मणिच्छाया	३२६
ततो दशाननोऽन्यत्र	३६	ततो रथास्समुत्तीर्य	२६६	तत्र काले महाचण्ड-	३५३
ततो दारक्रियायोग्यौ	२४१	ततो रामसमादेशा-	२७१	तत्र चैत्यमहोद्याने	३६१
ततो दाशरथी रामः	३६२	ततोऽरिघ्नानुभावेन	१६८	तत्र तावतिरभ्येपु	३५२
ततो दिव्यानुभावेन	२८४	ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्	५६	तत्र तौ परमैश्वर्यं	२५०
ततो दुरीक्षितां प्राप्तं	२०२	ततो लक्ष्मीधरोऽवोचद्	३४६	तत्र दिव्यायुधाकीर्णा	१६३
ततोऽधिगम्य मात्रातो	६२	ततो वातगतिः क्षोणीं	११२	तत्र नन्दनचारुणां	२४६
ततोऽधिपतिना साकं	१८५	ततो विकचराजीव-	३०५	तत्र नूनं न दोषाऽस्ति	१६६
ततो नरेन्द्रदेवेन्द्र-	३१६	ततो विदितमेतेन	३६५	तत्र पद्मोत्पलामोद-	३५६
ततो निर्मलसम्पूर्ण-	४२	ततो विदितवृत्तान्ताः	३७८	तत्र पङ्कजनेत्राणां	५१
ततोऽनुक्रमतः पूजा	४१६	ततो विभीषणोऽवोचत्	१६	तत्र भ्रातृशतं जित्वा	२४६
ततोऽनुश्यातमात्रेण	१४०	ततो विभीषणोऽवोचत्	११४	तत्र व्योमतलस्थो-	२७८
ततोऽनेन सह प्रीत्या	४०५	ततो विमलया दृष्ट्या	३३	तत्र सर्वतिशेषस्तु	३३५
ततोऽन्तःपुरराजीव	२८	ततो विमानमारुह्य	३५६	तत्र साधूनभाषिष्ट	३००
ततोऽन्धकारितं व्योम	२८०	ततो विविधवादित्र-	२२६	तत्र सिंहरवाख्याद्या	२५३
ततोऽन्नं दीयमानं	४०२	ततो वेदवतीमेनां	३०९	तत्रापाश्रयसंयुक्त-	२०७
ततोऽन्यानपि वैदेहि	२२०	ततो व्याघ्रपुरे सर्वाः	१०५	तत्राभिनन्दिते वाक्ये	७७
ततोऽपरजिताऽवादीत्	१११	ततोऽश्रुजलधाराभिः	२१०	तत्रामरवरच्छीभि-	२८२
ततोऽपश्यदतिक्रान्तः	३७१	ततोऽष्टाभिः सुकन्याभिः	३४१	तत्रामृतस्वराभिख्यं	२७३
ततो बन्धुसमायोगं	१०६	ततोऽसावश्रुमानूचे	१४५	तत्रारणाच्युते कल्पे	४२०
ततो भगवतीं विद्यां	६३	ततोऽसौ कम्पविलसि	२६	तत्रावतरति स्फीतं	४०६
ततो भर्ता मया सार्धं	२१६	ततोऽसौ क्षणमात्रेण	२४४	तत्रास्माकं परित्याज्यं	३३४
ततोऽभवत् कृतान्तास्य	२५८	ततोऽसौ पुरुकाश्यौ	४१२	तत्राहवसमासक्तो	१६३
ततोऽभिमुखमायान्तीं	२७३	ततोऽसौ रत्नवलय-	८६	तत्रेन्द्रदत्तनामायं	१७३
ततोऽभ्यधायि रामेण	२७४	ततोऽसौ विहरन्साधुः	४०४	तत्रैकं दुर्लभं प्राप्य	४१७
ततो मधु क्षयं क्रुद्धो	३३८	ततोऽस्त्रमिन्धनं नाम	६०	तत्रैकश्रमणोऽवोचत्	३०१
ततो मयं पुरश्चक्रे	५८	ततोऽस्य प्रतिमास्थस्य	२७७	तत्रैको विदुषः प्राह	३६७
ततो मया तदाक्रोश-	६	ततोऽहं न प्रपश्यामि	१६६	तत्रैत्याक्षुरतां पद्म-	३६६
ततो महर्दिसम्पन्नः	३०२	ततो हलधरोऽवोचत्	७७	तत्रैव च लमालोक्य	४१६

तत्रैव च पुरे नामा	१३०	तदाशंसानि योधानां	१६५	तवैवं भाषमाश्रय	६
तत्रोक्तं मुनिमुख्येन	१७६	तदाहताशानां प्रातो	३७२	तस्मात् क्षमापितात्मानं	२२
तथा कल्याणमालाऽसौ	१२६	तदेकगतचित्तानां	२६८	तस्मात् फलमधर्मस्य	२८९
तथा कृत्वा च साक्रेता-	३८७	तदेवं गुणसम्बन्ध-	२३२	तस्माद् दानमिदं दत्त्वा	१८१
तथा तयोस्तथाऽन्येषां	६२	तदेव वस्तुसंसर्गा-	४९	तस्माद् देशय पन्थानं	१८४
तथा नारायणो ज्ञातो	४१८	तदर्शनात् परं प्राप्ता-	६३	तस्माद् व्यापादयाम्येनं	१४०
तथापि कौशले शोकं	१११	तद्भवं कान्तिलावय-	४१३	तस्मिंस्तथाविधे नाथे	३७१
तथापि जननीतुल्यां	११०	तद्वत् साधुं समालोक्य	३३६	तस्मिन्नाश्रितसर्वलोक-	१०
तथापि तेषु सर्वेषु	२४२	तद्वीक्ष्य नारकं दुःखं	४१४	तस्मिन्नासन्नतां प्राप्ते	२
तथापि नाम कोऽमुष्मिन्	४	तनयस्नेहप्रवणा	२४८	तस्मिन्नेव पुरे दत्ता	११६
तथापि भवतोर्वाक्यात्	२४९	तनयांश्च समाधाय	३६१	तस्मिन् परब्रह्मत्वंसं	५८
तथापि शृणु ते राजन्	१२३	तनयायोगतीव्रान्नि-	११४	तस्मिन् बहवः प्रोचुः	१०४
तथाप्यनादिनेऽमुष्मिन्	६६	तनुकर्मशरीरोऽसौ	१५३	तस्मिन् महोत्सवे जाते	१५७
तथाप्यलं सदिव्यासो	२६४	तन्निबद्धं क्षणी	३०३	तस्मिन् राजपथे प्राप्ते	८८
तथाप्युत्तमनारीभि-	२७२	तपसा क्षपयन्ती स्वं	३३४	तस्मिन् विहरते काले	३२८
तथाप्युत्तमया राज्य-	१२७	तपसा च विचित्रेण	१४४	तस्मिन् संक्रीड्य चिरं	१६४
तथाप्युत्तमसम्यक्त्वो	१७९	तपसा द्वादशाङ्गेन	१६१	तस्मिन् स्वाग्निनि नीरारो	२०६
तथाप्येव प्रयत्नोऽस्य	२२	तपोधनान् स राज्यस्य	१४३	तस्मै ते शान्तिनाथाय	६४
तथाप्यैश्वर्यपाशेन	३४०	तपोऽनुभावतः शान्तै-	४०४	तस्मै विदितनिश्शेष-	१८३
तथाभूतं स दृष्ट्वा तं	७५	ततायस्तलदुःस्पर्श-	२८७	तस्मै विभीषणायाग्रे	३८६
तथातं भुसमालोक्य	२६५	तमनेकशीलगुण-	४२१	तस्मै संयुक्तमाबाध-	१७४
तथा विचिन्तयन्नेव	१२२	तमरिध्नोऽब्रवीददाता	१६०	तस्य जातात्परूपस्य	४०६
तथाविधां श्रियमनुभूय	६६	तमादृतं वीक्ष्य मुनीश्वरेश	८४	तस्य तूर्यवं श्रुत्वा	२
तथाशानिरयाद्याश्च	५७	तमालोक्य मुनिश्रेष्ठं	२८५	तस्य देवाधिदेवस्य	११०
तथा स्कन्देन्द्रनीलाद्या	२४	तमालोक्य समाधान्तं	३३	तस्य पुरयानुभावेन	३०४
तथा हि पश्य मध्येऽस्य	२४७	तमुपात्तजयं शूरं	१६६	तस्य प्रामरकस्यैत-	३३३
तथेन्द्रनीलसङ्घात-	२७	तमोमण्डलकं तं च	३६	तस्य राज्यमहाभार-	२४६
तथोपकरशौर्यैः	१६३	तथा विरहितः शम्भु-	३१०	तस्य श्रीरित्यभूद् भार्या	२७७
तदनन्तरं शर्वर्या	२७६	तथा वेदितवृत्तान्तो	२३७	तस्य सत्त्वपदन्यस्तं	४०८
तदभवञ्जुगुप्सतो	२१०	तयोः समागमो रौद्रो	२२६	तस्य सा भ्रमतो भिक्षां	२७७
तदलं निन्दितैरेभि-	३५८	तयोः सुप्रभनामाऽभूत्	३१२	तस्य सैन्यशिरोजाताः	२१५
तदवस्थामिमां दृष्ट्वा	३४	तयोः स्वयंवरार्थेन	३४२	तस्यां च तत्र बेलयां	११२
तदस्य क्षपकश्रेणि-	४०५	तयोरनन्तरं सम्यग्	१०२	तस्यां सिद्धिमुपेतायां	१६
तदहं नो वदाम्येवं	४४	तयोर्जङ्घा समीरेण	२१	तस्याः परमरूपायाः	३०६
तदाकर्ण्य मुमिन्नाजो	२०२	तयोर्ब्रह्मि वषाणि	१००	तस्याः शीलाभिधानायाः	१०५
तदा कृतास्तवकत्रं तु	२४६	तयोस्तु कीदृशः कोपो	३१	तस्या अपि समीपस्था	८६
तदा दिक्षु समस्तासु	२७०	तरलच्छातजीमूत-	२४७	तस्या एकासने चासा-	१७१
तदाऽपह्नियमाणाया	२७६	तरुणं तरिणीं दीप्त्या	३६७	तस्यातिशयसम्बन्धं	८१
तदा भुक्तं तदा घ्रातं	९८	तरुण्यो रूपसम्पन्नाः	१६६	तस्यापराजितासूनोः	३११

तस्याभिमुखमालोक्य	१६४	तावत् सुकन्यकारत्न-	१८५	ते चक्रकनकच्छिन्नाः	५६
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा	३३९	तावदञ्जनशौलाभाः	३३२	तेजस्वी सुन्दरो धीमान्	१४५
तस्यास्य जनकस्यैव	२५३	तावदश्रुतपूर्वं तं	२४२	तेन दुर्मृत्युना भ्रातुः	३००
तस्यैव सदृशी कन्या	१८३	तावदेव प्रपद्यन्ते	१६५	तेन निष्कान्तमात्रेण	१८४
तस्यैकस्य मतिः शुद्धा	१५६	तावदेवेक्षितो दृष्ट्या	२४१	तेन श्रेणिक शूरेण	५७
तस्यैव विभियस्त्वस्य	३८४	तावदैक्षत सर्वांशा	११९	तेनानेकभवप्राप्ति-	१७४
तां निरोक्ष्य ततो वापीं	२७९	तावद् भवति जनानां	२३	तेनेयं पृथिवी वत्सौ	२५३
तां विपृच्छिष्यतो यान्तः	२६	तावद् रामाज्ञया प्राप्ताः	१२९	तेनैव विधिनाऽन्येऽपि	५५
तां प्रसादनसंयुक्तां	१८६	तावद् विदितवृत्तान्ता	३८३	तेनोक्तं धातकीखण्डे	१७०
तां समालोक्य सौमित्रः	१८४	तावन्मघोः सुरेन्द्रस्य	३३०	तेनोक्तमनुयुद्धे मां	३८८
ताडितोऽशनिनेवाऽसौ	३६९	तावल्लक्ष्मणवीरोऽपि	२६५	ते भग्ननिचयाः क्षुद्राः	१३६
ताड्यन्तेऽयोमयैः केचिद्	४१०	ताबुयानं गतो क्रीडां	१७४	ते महेन्द्रोदयोद्यानं	३४८
तातः कुमारकीर्त्याख्यो	४१८	तावेतौ मानिनौ भानु-	१४८	ते महाविभवैर्युक्ता	२४६
तात नः शृणु विज्ञातं	३४५	तासां जगत्प्रसिद्धानि	१८९	ते विन्यस्य बहिः सैन्य-	२७१
तात विघ्नस्तवास्मात्	३४६	तासामनुमती नाम	१९६	ते विभूति परा चक्रुः	१५
तातावशीघ्रतां प्राप्तौ	३२४	तासामष्टौ महादेव्यः	१८९	तेषां कपोलपत्नीषु	३९९
तादृशीं विकृतिं गत्वा	१३३	तिरस्कृत्य श्रियं सर्वां	३१६	तेषां तपःप्रभावेन	१७६
तादृशीभिस्तवाप्यस्य	१३०	तिर्यक् कश्चिन्मनुष्यो	४८	तेषां पलायमानानां	२१
तादृशी राजपुत्री इव	२२९	तिर्यगूर्ध्वमधस्ताद् वा	२२२	तेषां प्रत्यवसानार्था	९८
तानि सप्तदशस्त्रीणां	३७१	तिष्ठति स्वयि सत्पुत्रे	११३	तेषां मध्ये महामानो	१३९
ताभ्यां कथितमन्येन	३११	तिष्ठ-तिष्ठ रणं यच्छ	५९	तेषां यशःप्रदानेन	२०२
ताभ्यामियं समाक्रान्त्य	३७७	तिष्ठन्ति मुनयो यस्मिन्	८०	तेषामभिमुखः क्रुद्धो	५५
तामश्रुजलपूर्णां	२२१	तिष्ठाम्येकाकिनी कष्टे	२१४	तेषामभिमुखीभूता	५७
तामालिङ्गनविलीनो नु	९१	तीव्राशोऽपि यथाभूतो	२११	तेषामष्टौ प्रधानाश्च	१८९
ताम्बूलगन्धमाल्याद्यै-	४९	तुरगमकरवृन्दं प्रौढ-	२१६	तेषु-तेषु प्रदेशेषु	२८३
ताम्रादिकलिलं पीतं	३८०	तुरगाः कचिदुद्दीप्ताः	५६	तेषु ख्रियः समस्त्रीभिः	२७१
तादर्यकैसरिसाद्विद्या-	११५	तुरगैः स्यन्दनैर्युगैः	२७०	तैरियं परमोदारा	३०६
तादर्यवेगाश्वसंयुक्तः	२०७	तुरङ्गरथमारूढो	१३३	तैरुक्तं यद्यदः सत्यं	११२
तालवृन्तादिवातश्च	६२	तुष्टाः क्रन्दर्पिनो देवाः	४०२	तोरणैर्वैजयन्तीभिः	१९३
तावच्च मधुरं श्रुत्वा	२०८	तुष्ट्यादिभिर्गुणैर्युक्तं	४०२	तौ च स्वर्गच्युतौ देवौ	४१८
तावच्छ्रुत्वा घनं घोरं	३९९	तूष्णीमिति महाशैले	१०२	तौ चाचिन्त्यतामुच्चैः	३२५
तावच्छ्रेणिक निवृत्ते	६४	तूर्यनादाः प्रदाप्यन्तां	२५२	तौ महासैन्यसम्पन्नौ	२४३
तावता शङ्कयते नाथ	४७	तृणमिव खेचरविभवं	८६	तौ तत्र कोशलायां	२३३
तावत् कुलिशजङ्घेन	२४२	तृतीया वनमालेति	१८९	तौ च सन्त्यक्तसन्देहौ	३३७
तावत् क्षणक्षये श्रुत्वा	१४२	तृप्तिं न तृणकोटिस्थैः	१२७	तौ युवामागतौ नाका-	३९०
तावत् परिकरं बद्ध्या	१३१	तृषा परमया प्रस्तौ	३८९	तौ वारयितुमुद्युक्ता	२४३
तावत् परित्यज्य मनो-	३०	तृष्णातुरवृकग्राम-	२२८	तौ शीरचक्रदिव्यास्त्रौ	२३३
तावत् प्रस्तावमासाद्य	१३७	तृष्णाविषादहन्तृणां	३५९	तौ समूचतुरग्येऽपि	३३१
तावत् प्रासादमूर्धस्थं	१२१	तृष्यत्तरन्नुविध्वस्त-	२२७	त्यक्तास्त्रकवचौ भूभ्यां	७१

त्यक्त्वा समस्तं गृहि-	१५१	त्वामाह मैथिली देवी	२२७	दशाननेन गर्वेण	३१३
त्यज सीतासमासङ्गां	५	[६]		दशास्वभवने मासान्	२७४
त्यज सीतां भजात्मीयां	१	दंष्ट्राकरालवक्त्रेण	२३०	दशाहोऽतिगतस्तीव्र-	६२
त्यज्यतामपरा चिन्ता	१२६	दण्डनायकसामन्ता	१२४	दातारोऽपि प्रविख्याताः	२६१
त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुः	३१३	दख्ख्याः पञ्चकदयडेन	३३६	दानतो सातप्राप्तिश्च	४१८
त्रायस्व देवि त्रायस्व	२८१	दत्तं च परमं दानं	१२८	दाप्यतां घोषणाः स्थाने	१४
त्रायस्व नाथ किन्त्वेता	२९	दत्तयुद्धश्चिरं शक्त्या	१६४	दासुभारं परित्यज्य	१७३
त्रायस्व भद्र हा भ्रातः	१६	दत्ताज्ञा पूर्वमेवाथ	१४	दिनरत्नकरालीढ-	१००
त्रासात्तरत्ननेत्राणां	१६३	दत्ता तथा स्तनस्थेन	१८६	दिनैः षोडशभिश्चार-	११७
त्रासाकुलेक्षणा नायों	१३१	दत्ता विश्वापितो लेखो	३४२	दिनैस्त्रिभिरतिक्रम्य	२२५
त्रिकूटशिखरे राज्यं	१५७	दत्ता तेषां समाधानं	४१४	दिवसं विश्वसित्येक-	३६६
त्रिकूटाधिपतावस्मिन्	३६	ददर्श सम्भ्रमेणैतं	१४६	दिवाकररथाकारा	५५
त्रिखण्डाधिपतिश्चण्डो	१११	ददामि ते महानागां	५	दिवा तपति तिग्मांशु-	३०६
त्रिज्ञानी धीरगम्भीरो	१३८	ददुः केचिदुपालभ्यां	७६	दिव्यज्ञानसमुद्रेण	१७१
त्रिदशत्वान्मनुष्यत्वं	३०८	ददौ नारायणश्चाशां	२५७	दिव्यमायाकृतं कर्म	३७०
त्रिदशासुरगन्धर्वैः	२२०	दध्यातुद्विग्नचित्तः सः	३८७	दिव्यस्त्रीवदनाम्भोज-	८७
त्रिपदील्लेदललितं	१३४	दध्वी सोऽयं नराधीशो	४०५	दिव्यालङ्कारताम्बूल-	१००
त्रिपल्यान्तमुहूर्तं तु	२६०	दन्तकीटकसम्पूर्णं	१२६	दीक्षामुपेत्य यः पापे	२६५
त्रिप्रस्तुतद्विपार्श्वीय-	२६८	दन्तशय्यां समाश्रित्य	२६१	दीनादीनां विशेषेण	२१८
त्रियामायामतीतायां	३६३	दन्ताधरविचित्रोर-	४२	दीनारैः पञ्चभिः काञ्चित्	२८
त्रिसन्ध्यं वन्दनोद्युक्तैः	१०	दन्ताधरेक्ष्णञ्छाया	५०	दीयमाने जये तेन	३०२
त्रीणि नारीसहस्राणि	१४३	दन्तिनां रणचण्डानां	२५६	दीर्घं कालं रत्नत्रा	३५८
त्रीनावासानुरुप्रीतिं	१६१	दमदानदयायुक्तं	१०१	दुःखसागरनिर्मगना	३७२
त्रैलोक्यं भगवन्नेत-	३१६	दम्पती मधु वाञ्छन्तौ	५०	दुःपाषण्डैरिदं जैनं	१७६
त्रैलोक्यज्ञोभणं कर्म	१३८	दयां कुरु महासाधिव	२८२	दुग्धुभयानकभ्रूल्लय-	१५६
त्रैलोक्यमङ्गलात्मभ्यः	१६२	दयादमन्त्रमा	२६५	दुरन्तैस्तदलं तात	३४७
त्रैलोक्यमङ्गलात्मानः	१६०	दयामूलस्तु यो धर्मो	१३७	दुरात्मना लुलं प्राप्य	२१
त्वं कर्ता धर्मतोर्थस्य	६४	दयितानिगडं भित्वा	३६२	दुरोदरे सदा जेता	१४५
त्वं वीरजननी भूत्वा	४६	दयिताष्टसहस्री तु	१८६	दुर्जनैर्धनदस्ताय	३००
त्वमत्र भरतक्षेत्रे	४१८	दरीगान्धारसौवीराः	२४६	दुर्जानान्तरमीदृशं	१३५
त्वमेव धन्वो देवेन्द्र	४१२	दर्भशल्याचिते सेयं	३२०	दुर्दान्ता विनयाधानं-	५३
त्वया तु षोडशाहानि	११५	दर्शनज्ञानसौख्यानि	२६३	दुर्भेदकवचञ्छत्रो	१६
ध्वया मानुषमात्रेण	५६	दर्शनेऽवस्थितौ वीरौ	२४६	दुर्लोकधर्मभानुक्ति-	२५१
त्वया विरहिता एताः	३७४	दर्शयाम्यद्य तेऽवस्थां	६८	दुर्वाररिपुनागेन्द्र-	२६३
त्वयि ध्यानमुपासीने	३१	दश सप्त च वर्षाणां	४२०	दुर्विज्ञेयमभवानां	४१३
त्ववैवंविधया शान्ते	३२१	दशाङ्गभोगनगर-	१००	दुर्विनीतान् प्रसह्यैतान्	१०५
त्वरितं कः पुनर्मर्तुं-	२५७	दशाङ्गभोगनगर-	११६	दुर्वृत्तः नरकः शङ्को	३
त्वरितं गदितेनैवं	२६४	दशानग यदि प्रीति-	३४	दुश्चिन्तितानि दुर्भाषितानि	४२२
त्वरितं पितरं गत्वा	३४५	दशाननसुहृन्मध्ये	४५	दुष्टभूपालवंशाना-	२३८

दुस्त्यजानि दुरापानि	३५०	देवदेवं जिनं विभ्र-	४२०	दुतिः परं तपः कृत्वा	४१६
दुहितुः स्वहितं वाक्यं	१६	देव यद्यपि दुर्मोचः	३७८	दुपुण्डरीकसङ्काशाः	३६१
दूतः प्राप्तो विदेहाज-	२	देवयोस्तत्र नो दोष-	३६५	द्यूताविनयसक्तात्मा	१४४
दूतदर्शनमात्रेण	२५७	देवरः क्रियतामेकः	१२६	द्रक्ष्यन्ते ये तु ते स्वस्य	३४३
दूतस्य मन्त्रिसन्दिष्टं	२	देवलोकमसौ गत्वा	१०७	द्रव्यदर्शनराज्यं यः	३१३
दूरमन्वरमुल्लङ्घ्य	३७९	देव सीतापरित्याग-	२३१	द्राघीयसि गते काले	३४०
दूरस्थमाधवीपुष्प-	४०८	देवस्तुताचारविभूति-	६२	द्वारमेतं न कुर्व्यं तु	२६
दूरादेवान्यदा दृष्ट्वा	३७४	देवाः समागता योद्धुं	२०	द्वारदेशे च तस्यैव	३०२
दृष्ट्वात्ररमणीयां तां	२००	देवा इव प्रदेशं तं	१३६	द्वाराण्युल्लङ्घ्य भूरीणि	२५
दृष्टं परिकरं बद्ध्वा	३६८	देवादेशा विनीतासौ	२५६	द्विजेनैकेन च प्रोक्त-	३२१
दृश्यते पद्मनाभायं	५४	देवासुरमनुष्येन्द्रा	३६०	द्वितीया चन्द्रभद्रस्या-	१२७
दृष्टं कश्चित् प्रतीहारं	२६	देवासुरस्तुतावेतौ	१२६	द्विरदौ महिषौ गावौ	३०१
दृष्टः सस्योऽपि दोषो न	३१५	देवि त्वमेव देवस्य	१६६	द्विशताभ्यधिके समा-	४२५
दृष्टागमा महाचित्ता	९५	देवि यत्र पुरा देवैः	११८	द्वीपेष्वर्घतृतीयेषु	१६६
दृष्टा च दृष्टया दृष्टया	२०४	देवि वैक्रियरूपेण	४५	द्वे शते शतमर्द्धं च	१८६
दृष्टिगोचरतोऽतीते	५१	देवीजनसमाकीर्णो	१३०		
दृष्टिमाशीविषस्येव	१६४	देवीजनसमाकीर्णो	१४६	[ध]	
दृष्ट्वा तं मुदितं सीता	६२	देवी पद्मावती कान्तिः	७२	धनदः सोदरः पूर्वं	१४८
दृष्ट्वा तथाविधं तं	४००	देवी पुनरुवाचेदं	३३९	धनदस्तापरिप्राप्त्या	३००
दृष्ट्वा तामेव कुर्वन्ति	३२६	देवीभिरनुपमाभिः	१६५	धनदसौ भवेद् योऽसौ	३११
दृष्ट्वा ते तं परिज्ञाय	१७३	देशीशतसहस्राणां	३२६	धन्यः सोऽनुग्रहीतश्च	३६७
दृष्ट्वा तौ परमं हर्षं	८८	देवी सीता स्मृता किन्ते	३७५	धन्या भगवति त्वं नो	३२१
दृष्ट्वा तौ सुतरां नायों	७७	देवेन जातमात्रः सन्न-	१२६	धमिल्लसफरीदंष्ट्रा	२६६
दृष्ट्वा दक्षिणतोऽन्यन्त-	५४	देवैरनुग्रहीतोऽपि	४३	धरणीधरैः प्रहृष्टै-	३६३
दृष्ट्वाऽनन्तरदेहांस्ता-	३८६	देवो जगाद परमं	४१३	धरस्यां पतिता तस्यां	२११
दृष्ट्वा निश्चित्य ते प्राप्ता	३४२	देवो जयति शत्रुघ्नः	१६३	धर्मतः सम्मितौ साधो-	२३६
दृष्ट्वा पद्मं प्रणम्यासौ	२	देव्यस्तदग्रतो नाना	३२१	धर्मनन्दनकालेषु	१७६
दृष्ट्वा पलायमानांस्तान्	१८५	देव्या सह समाहूतः	३३८	धर्ममार्गं समासाद्य	३७६
दृष्ट्वा षादचरास्त्रस्ताः	२५	देशकालविधानसौ	१८६	धर्मरत्नमहाराशि-	३६१
दृष्ट्वा प्रथौ च कुशलं	११९	देशग्रामपुरारण्य-	१२४	धर्मार्थकाममोक्षेषु	२६६
दृष्ट्वा भरतमायान्त-	११६	देशतः कुलतो विस्तात्	३४२	धर्मार्थमविपस्काल-	२८६
दृष्ट्वा भवन्तमस्माकं	३८८	देशानामेवमादीनां	२४६	धर्मं परमासक्तो	२१८
दृष्ट्वाऽभिमुखमागच्छत्	६५	देशदर्शनमात्रेण	२०	धर्मो नाम परो बन्धुः	१३७
दृष्ट्वा रामं समासीनं	४०९	देशिनो यत्र मुह्यन्ति	३६१	धर्मो रक्षति मर्माणि	५७
दृष्ट्वा शरभवच्छाया-	४३	दैवतप्रतिमा जाता	३६	धवलाम्भोजलण्डानां	३६७
दृष्ट्वा स तं महात्मानं	३६३	दैवोपगीतनगरे	१५७	धवान्तरात्रलेच्छातः	४३
दृष्ट्वा सम्प्रविशन्तौ तौ	३४७	दोषास्तदाऽस्मिन् दासित्वा	३८७	धात्रीकराङ्गुलीलग्नौ	२३६
दृष्ट्वा सुविहितं सीता	६१	दोषाविशमग्नकस्यापि	२८४	धारयन्ति न निर्यातं	३१८
देव त्वरितमुत्तिष्ठ	३७४	दोहलच्छन्ना नीत्या	२७४	धारयामि स्वयं ह्यत्रं	२२७
				धावमानां समालोक्य	५८

धिक् धिक् कष्टमहो	८०	न गजस्योचिता घयटा	५६	नरयानात् समुत्तीर्थ	३६१
धिक् धिक् किमिदम-	३४	नगरस्य बहिर्यज्ञ-	१४१	नरसिंहप्रतीतिश्च	४६
धिक् सोऽहमग्रहीतार्थः	७८	नगर्यां भ्रमणा अस्यां	१७७	नरस्य सुलभं लोके	२२८
धिक्क्षियं सर्वदोषाणा-	२००	नगर्यां बहिरन्तश्च	१८१	नरेण सर्वथा स्वस्य	४
धिगसारं मनुष्यत्वं	३७३	नगर्यामिति सर्वस्यां	१३३	नरेन्द्र त्यज संरम्भं	४
धिगस्तु तव वीर्येण	२६	नगर्यास्तत्र निर्याति	४००	नरेन्द्रशक्तिवश्यः स	२१२
धिगिमां नृपते लक्ष्मीं	६७	न चेदेवं करोषि त्वं	३	नरेश्वरा अर्जितशौर्य-	७
धिगोदृशीं श्रियमति-	७०	नताङ्गवष्टिरावका	३७१	नर्तकीनटभण्डाद्यै-	६७
धिग् भृत्यतां जगन्नित्यां	२१२	न नृप्यतीन्धनैर्वह्निः	१२६	नवग्रैवेयकास्ताभ्यः	२६१
धिङ् नारी पुरुषेन्द्राणां	३४	न तेषां दुर्लभं किञ्चिद्	३५६	नवयोजनवस्तारा	११७
धीरैः कामुकनिःस्वानैः	२३८	न दिव्यं रूपमेतस्यां	४५	नवयौवनसम्पन्नौ	२३६
धीरो भगवतः शान्ते	२७	नदीव कुटिला भीमा	३५	न विवेद च्युतां काञ्चीं	२६९
धीरोऽभयनिनादाख्यो	२८६	न दृश्यते भवाद्दृश्यो	२१७	न विहारे न निद्रायां	१३४
धीरौ प्रवीणद्वनगरे	२४७	नद्युद्यानसभाग्राम-	१६६	न वेत्सि नृपते कार्यं	३
धृतानि स्फटिकस्तम्भैः	२७	ननु जीवेन किं दुःखं	२२२	न शक्यस्तोषमानेतुं	१३५
धृतिः किं न कृता धर्मै	४१२	ननु नाऽहं किमु ज्ञात-	३७४	न शक्यो रक्षितुं पूर्व-	५७
धृतिकान्ताय पुत्राय	३०७	नन्दनप्रतिमे तौ च	१३६	न शमो न तपो यस्य	३१४
ध्यात्वा जगाद् पद्माभो	१६०	नन्दनप्रतिमेऽमुष्मिन्	८९	न शोभना नितान्तं ते	४
ध्यात्वा जिनेश्वरं स्तुत्वा	३५६	नन्दनप्रभवैः कुलैः	१३	नष्ट चेष्टां तकां दृष्ट्वा	२११
ध्यानमास्तयुक्तेन	४१५	नन्दनादिषु देवेन्द्राः	३०७	नष्टानां विषयान्धकार-	३१७
ध्यानस्वाध्याययुक्तात्मा	३०७	नन्दीश्वरे महे तस्मिन्	१२	न सावित्री न च भ्राता	२१०
ध्रियन्ते यद्यवाप्येमा-	२१४	नन्द्यावर्ताख्यसंस्थानं	१२३	न सा गुणवती ज्ञाता	४४
ध्रुवं परमनाम्नाध-	२९२	न पद्मावातेन सुमेरु-	७	न सा सम्पन्न सा शोभा	१०१
ध्रुवं पुनर्भवं ज्ञात्वा	१६६	नभःकरिकराकारैः	६३	न सुरैरपि वैदेह्याः	२७५
ध्रुवं यदा समासाद्यो	२४८	नभःशिरःसमारूढो	३५४	न सुशिलष्टमिवात्यन्तं	३७१
		नभः समुत्पत्य	८	न हि कश्चिदतो ददाति	२४
[न]		नभश्चरमहामात्रान्	१३१	न हि कश्चिद् गुरोः खेदः	२३७
नक्षत्रत्यतिशयाः सर्वे	१८०	नभस्तर्लं समुत्पत्य	१८३	न हि चित्रभूतं बल्ल्यां	१०३
न कश्चित्स्वयमात्मानं	४४	नभो निमेषमात्रेण	१७६	न हि प्रतीक्षते मृत्यु-	२६७
न कश्चिदग्रतस्तस्य	१६५	नभोमध्यगते भाना-	१७७	नागेन्द्रवृन्दसङ्घट्टे	६
न कश्चिदत्र ते	२८४	नभोविचारिणीं पूर्वं	१०२	नाथ प्रसीद विषयेऽन्य-	२७०
न कामयेत् परस्य	४१९	नमस्ते देवदेवाय	९४	नाथ योनिसहस्रेषु	१५०
न कृशानुर्दहत्येवं	३७५	नम्रौ प्रदक्षिणां कृत्वा	३३७	नाथ वेदविधिं कृत्वा	१४०
नक्तंदिनं परिस्फीत-	३५३	नयनाञ्जलिभिः पातुं	२६८	नादर्शिं मलिनस्तत्र	२५६
न क्षतं नखरेखाया	३७२	नयन्नित्यादिभिर्वाक्यैः	४१३	नानाकुट्टिमभूभागा-	३४६
नक्षत्रगणमुत्सार्थं	३६०	नुरके दुःखमेकान्ता-	३०६	नानाकुसुमकिञ्चलक-	३६१
नक्षत्रदीपितिभ्रंशे	५०	नुरकेषु तु यद्दुःखं	२२२	नानाकुसुमरम्याणि	३५३
नक्षत्रवलनिर्मुक्तो	३७	नरखेटपृथो व्यर्थं	२४४	नानाचिह्नात्पत्रांस्ते	१७
नखक्षतकृताकृता	५६	नरयानं समारूढा	३६१		१६०
नखमांसवदेतेषां	१९०				

नानाजनपदाकीर्णा	५	नासहिष्ठ द्विषां सैन्यं	३१८	निर्घृणेन दशास्येन	१११
नानाजनपदा बाल-	२७०	नास्ति यद्यपि तत्सेन	२९२	निर्दग्धकर्मपटलं	४२१
नानाजलजकिञ्जल्क-	३५४	नास्मि सुप्रजसः कुक्षौ	२५२	निर्दग्धमोहनिचथो	३६३
नानातिघोरनिःस्वान-	२२७	नास्य माता पिता भ्राता	३४६	निर्दह्य स भवारण्यं	३१३
नानानैकमहायुद्ध-	३	नाहं जाता नरेन्द्रस्य	३२६	निर्दिष्टं सकलैर्नतेन	४२३
नानाप्रकारदुःखौघ-	२८७	नाहारे शयने रात्रौ	११३	निर्दोषाया जनो दोषं	२२७
नानामक्तिपरीताङ्गं	२८२	निःक्रामद्दधिरोद्गार-	२६२	निर्दोषोऽहं न मे पाप-	३४७
नानाभरणसम्पन्ना-	२५६	निःप्रयूहमिदं राज्यं	१२८	निर्धूतकलुषरजसं	४२१
नानायानसमारूढै-	१६१	निःशेषसङ्गनिमुंको-	३६२	निर्धूतकल्मषत्यक्त-	३६३
नानायोनिषु सम्भ्रम्य	३४८	निःश्रेयसगतस्वान्ताः	४०४	निर्भस्तिस्तः कूरकुमार-	८
नानारत्नकरोद्योत-	२१४	निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च	२७०	निर्मलं कुलप्रत्यन्तं	४३
नानारत्नपरीताङ्ग-	६५	निःश्वासामोदजालेन	२२६	निर्मानुष्ये बने त्यक्ता	२०५
नानारत्नमयैः कान्तैः	१०	निःसङ्गाः सङ्घमृत्युञ्ज-	३३४	निर्मितानां स्वयं शश्वत्	१६६
नानारत्नशरीराणि भास्कर-	३५४	निःसक्तस्य महामांस-	२१२	निर्वाणं साधयन्तीति	३३४
नानारत्नशरीराणि बाम्बू-	३८२	निःस्वत्वेनाक्षरत्वे च	१४१	निर्वाणधामचैत्यानि	१६३
नानारत्नसुवर्णा-	४०२	निकाचितं कर्म नरेण	३८	निर्वासनकृतं दुःखं	२६६
नानालम्बिसमेतोऽपि	३१३	निकारो यद्युदारोऽपि	१५	निर्वासितस्य ते पित्रा	६८
नानावर्णचलत्केतु-	३५५	निकुञ्जनप्रतिस्वान-	८८	निर्वेदप्रमुरागाग्भ्यां	३६२
नानावर्णाभ्रधरै-	४१४	निकृते बाहुयुग्मे	६३	निर्व्यूढमूर्च्छनाः काश्चिद्	७२
नानावाद्यकृतानन्द-	३१	निर्गूढप्रकटस्वार्थैः	३६६	निर्व्यूहबलभीष्टङ्ग-	१२५
नानाव्याधिजरा-	३१६	नितम्बगुरुतायोग-	३२०	निर्वर्तितान्यकर्तव्यः	२३६
नानाव्यापारशते	३५१	नितम्बफलके काचित्	४०८	निवासे परमे तत्र	३०७
नानाशकुनविज्ञान-	४०	नितान्तदुःसहोदार-	३४८	निवृत्य काश्चिदाश्रित्य	५१
नानाशकुन्तनादेन	२०८	निदानदूषितात्मासौ	३११	निशम्य वचनं तस्य	१३१
नानाशस्त्रदलप्रस्त-	१८४	निदानशृङ्खलाबद्धा	३२७	निशम्येति मुनेरुक्तं	३०७
नानोपकरणं दृष्ट्वा	३६६	निद्रां राजेन्द्र मुञ्चस्व	३७६	निश्चलाश्चरणन्यस्त-	१६८
नामग्रहणकोऽस्माकं	१८०	निपातोत्पत्तनैस्तेषां	१६२	निष्क्रान्ते भरते तस्मिन्	१५६
नामनारायणाः सन्ति	४८	निमेषमपि नो यस्य	३६७	निष्क्रामति तदा रामे	३६४
नामानि राजधानीनां	१८८	निमेषेण पराभग्नं	२४४	निसर्गद्वेषसंसक्त-	२२७
नारायणस्य पुत्राः स्मो	३४४	नियताचारयुक्तानां	१६८	निसर्गारमणीयेन	२१३
नारायणो तथा लग्ने	७६	नियम्याभूणि कृच्छ्रेण	३१६	निसर्गाधिगमद्वारा-	२६४
नारायणोऽपि च यथा	१९४	नियुक्ता राजवाक्येन	२५५	निस्त्रयं भाषमाणाय	२४२
नारायणोऽपि तत्रैव	२६८	निरस्तः सीतया दूरं	३२४	निहतः प्रथमं येन	१२१
नारायणोऽपि सौम्यात्म	३२१	निरस्यारादधीयास्तां	३८५	नीतः सागरप्रत्यन्तवासित्वं	३२६
नारायणो भवाऽप्यो वा	६८	निरीक्ष्योन्मत्तभृतं च	५८	नीरनिर्मथने लम्बि-	३८७
नारो स्फटिकसोपाना-	२६	निरुच्छ्वासाननः स्वेदः	६४	नीलसागरनिःस्वानः	१७
नारीणां चेष्टिते वायु-	१२६	निरुध्माणश्चलात्मानो	२४१	नृपुरौ कर्णयोश्चक्रे	२८
नारीपुरुषसंयोगा-	३७८	निर्गतां दयितां कश्चिद्	५१	नूनं जन्मनि पूर्वस्मिन्	२१३
नार्यो निरीक्षितुं सक्ता	१२०	निर्जातमुनिमाहात्म्यः	१७८	नूनं जन्मान्तरोपात्त-	२५१

नूनं तेषां न विद्यन्ते	३६४	पञ्चोदारव्रताधारः	३०७	पद्मोत्पलादिसञ्छन्नाः	१६२
नूनं न सन्ति लङ्कायां	६	पटहानां पटीयांसो	१२०	पद्मोपमेक्षणाः पद्मो	३१६
नूनं नास्तमिते भानौ	१०१	पटुभिः पटहैस्तूर्यै-	१३	पद्मो मौक्तिकगोशोर्ष-	२८४
नूनं पुण्यजनैरेषा	१२५	पतनं पुष्पकस्याग्रा-	१६१	पद्मोऽवदग्ममाप्येवं	२६३
नूनं पूर्वत्र भवे	२२४	पताकाशिखरे तिष्ठन्	१०६	पद्मच्छासन्नपुरुषान्	२१७
नूनं रस्नरथो न त्वं	१८६	पतितं तनयं वीक्ष्य	१६४	पद्मच्छुः पुरुषा देवि	२१७
नूनं स्वामिनि सिद्धार्थौ	२४७	पतितोऽयमहो नाथः	६६	परं कृतापकारोऽपि	७८
नूनमस्येदृशो मृत्यु-	३७०	पतिपुत्रविरहदुःख-	८६	परं कृतार्थमात्मानं	२६७
नृजन्म सुकृती प्राप्य	१६१	पतिपुत्रान् परित्यज्य	३२८	परं प्रतिष्ठितः सोऽयं	३६२
नृतमस्य इवाभूवं	२३५	पतिव्रताभिमाना प्रा-	१०३	परं विबुद्धभावश्च	३६१
नृपान् वश्यत्वमानीय	२४६	पदातयोऽपि हि करवाल्-	५२	परं सम्यक्त्वमासाद्य	१५०
नृशंसेऽपि मयि स्वान्तं	२३०	पदातयो महासंख्याः	२४	परदेवनमारेभे	१०६
नेत्से पञ्चनमस्कार-	३०३	पद्म्यामेव जिनागारं	१७७	परपद्मपरिज्ञोद-	२६३
नेच्छत्याज्ञां नरेन्द्रैको	३३७	पद्मः पुरं च देशश्च	२७२	परपीडाविनिर्मुक्तं	२६४
नेत्रास्यहस्तसञ्चार-	३०३	पद्माः प्रीतिं परां विभ्रत्	२६७	परमं गजमारूढः	१९४
नेदं सदःसरःशोभां	३६	पद्मकान्तिभिरन्याभिः	३२	परमं चापलं धत्ते	१६६
नैशिष्ठ भानुमुद्यन्तं	१४२	पद्मनाराचसंयुक्त-	१६१	परमं त्वद्वियोगेन	६०
नैचिकीमहिषी ब्रतै-	२५६	पद्मनाभनृरस्नस्य	११०	परमं दुःखितः सोऽपि	३०१
नैति पौरुषतां यावत्	२८१	पद्मनाभस्ततोऽवोचच्छु-	६१	परमश्चरितो धर्म-	८८
नैते चाटुशतान्युक्ता	२६३	पद्मनाभस्ततोऽवोचत् सो	-११३	परमाख्येवमादीनि	१८८
नैतेषु विग्रहं कुर्मो	१२	पद्मनाभस्ततोऽवोचद-	४१६	परमा देवि धन्या त्वं	२२३
नैमित्तेनायमादिष्टः	१४२	पद्मनाभस्ततोऽवोचदु-	३१८	परमानन्दकारीणि	७३
नैव तत्कुरुते माता	३०३	पद्मनाभस्ततोऽवोचन्न	३	परमान्नमहाकूर्तं	३१४
नैषा कुलसमुत्थानां	१६	पद्मनाभस्य कन्यानां	१०१	परमैश्वर्यतानोरू-	३५२
नोदनेनाभिमानासौ	१०४	पद्मनाभो जगौ गच्छ-	२०६	परमोत्कण्ठया युक्तः	७५
नोल्लुभकानि न काष्ठानि	२८१	पद्मनाभमण्डलस्वस्त्रा	३४	परमोदारचेतस्की	२४३
नो पृथग्जनवादेन	२०४	पद्म मद्रचनं स्वामी	२	परथा लेश्यया युक्तो	३९५
न्यस्तानि शतपत्राणि	१८३	पद्मलक्ष्मणवार्तायाः	११२	परलोकगतस्यापि	३१०
[प]		पद्मलक्ष्मणवोराभ्यां	१३६	परलोके गतस्यातो	७७
पद्ममासादिभिर्भक्त-	१५३	पद्मलक्ष्मणवैदेही	६६	परस्परप्रतिस्पर्द्धाङ्गेग-	५४
पद्मप्रणामसंयुक्त-	१४४	पद्मस्य चरितं राजा	३२४	परस्परप्रतिस्पर्द्धासमु-	२५४
पद्मभी रतिमालेति	१८६	पद्मस्याङ्गता सीता	११८	परस्परमनेकत्र	३१३
पद्ममो जयवान् ज्ञेयः	१७६	पद्मादिभिर्जलं व्याप्तं	१६२	परस्परमहंकारं	५१
पद्मवर्णैर्विकाराढ्यै-	१८३	पद्माननं निशानाथं	१२०	परस्परस्वनाशेन	३८०
पद्मानामर्थयुक्तस्व-	६८	पद्माभं दूरतो दृष्ट्वा	११३	पराङ्गनां समुद्दिश्य	६
पद्माशङ्कलकोटीनां	१२४	पद्माभचक्र भृन्मात्री-	११६	पराजित्यापि संघातं	४३
पद्माशयोजनं तत्र	४१६	पद्माभोऽपि स्वसैन्यस्थः	५४	परात्मशासनाभिज्ञाः	१६१
पद्माशयोजनाधामं	३३५	पद्मालयारतिः सद्यः	४५	परिच्युतापरङ्गाऽपि	१७४
पद्मेन्द्रियसुखं तं	४१८	पद्मो जगाद् यद्येवं	२७६	परिज्ञातमितः पश्चाद्	२६५

परिज्ञानी ततो नाग-	१३१	पश्य धात्रा मृगाक्षौ तौ	३२४	पुण्यसागरवाणिज्य-	४१७
परिण्य नमस्कृत्य	४१६	पश्यन्ति शिखरं शान्ति-	२६	पुण्यानुभावस्य फलं	१५८
परितप्येऽधुना व्यर्थं	१३२	पश्यन्नप्येवमादीनि	२०७	पुण्योक्तिभक्ता त्वदीयास्य	१११
परितो हितसंस्काराः	२२५	पश्य पश्य प्रिये धामा-	३५४	पुण्योदयं समं तेन	२२२
परिचायस्व सीतेन्द्र	४१३	पश्य पश्य सुदूरस्था-	११५	पुत्रं वितुरिति ज्ञास्वे-	३३२
परित्रेदनमिति कश्चणं	८७	पश्य पश्येयमुत्तुङ्ग-	८६	पुत्रः कल्याणमालायाः	१८६
परिदेवनमेवं च	२३१	पश्याम्भोजवनानन्द-	२०३	पुत्रकौ तादृशं वीक्ष्य	२३६
परिप्राप्तकलापारं	२१०	पश्याष्टापदकूटाभा-	४	पुत्रौ दशरथस्याहं	२६४
परिप्राप्तोऽहमिन्द्रत्वं	१०२	पश्यैतकामवस्थां नो	३१	पुनः पुनः परिष्वज्य	१२२
परिप्राप्य परं कान्तं	२६७	पाण्डियुग्ममहाम्भोज-	२६६	पुनः पुनरहं राजन्	१२८
परिश्रष्टं प्रमादेन	२२३	पाताले प्रविशेन्मेरुः	२७५	पुनः प्रणम्य शिरसा	१२३
परिवादिमिमं किन्तु	२७४	पाताले भूतले त्र्योग्नि	३	पुनरामभ्य दुःखानि	२८
परिवारजनाह्वाने	२३४	पातालेऽसुरनाथाद्या	१३७	पुनरालोक्य धरणीं	११६
परिवारसमायुक्ता	११८	पात्रदानफलं तत्र	४१७	पुनरीर्ष्यां नियम्यान्त-	४४
परिवार्यं ततस्तासां	१३०	पात्रभूतान्नदानाच्च	४१७	पुनरेमीति सञ्चिन्त्य	३३२
परिव्रजन्ति ये मुक्तिं	३३४	पादपल्लवयोः पीडां	१०९	पुनर्गर्भाशयाद् भीतौ	३७३
परिसान्त्व्य ततश्चक्रौ	७६	पादात्सुमहावृक्षं	१६२	पुनर्जन्म भ्रुवं ज्ञात्वा	३४७
परिहासकथासक्तं	७२	पादातैः परितो गुप्ता	५५	पुनर्जन्मोत्सवं चक्रे	३२६
परुषानिलसञ्चार-	२२८	पादौ मुनेः परामृष्य	१०६	पुनश्चानुदकेऽरश्ये	११७
परैणाय समाक्रान्तां	१६३	पापस्य परमारम्भं	३४७	पुरं रविनिभं नाम	१८८
परेतं सिञ्चसे मूढ	३८७	पापस्यास्य शिरश्छित्त्वा	३२५	पुरखेटकमटम्बेन्द्रा	२४६
परे स्वजनमानी यः	३८	पापातुरो विना कार्यं	३४	पुरन्दरसमबद्धायं	६२
पर्यट्य भवकान्तरं	३७९	पापेन विधिना दुःखं	१६६	पुरानेकेन युद्धोऽह-	६४
पर्यन्तबद्धफेनौघ-	२८१	पापोऽहं पापकर्मा च	१७८	पुरा स्वयं कृतस्येदं	२१३
पर्यस्तकरिसंकुद्ध-	२६२	पारम्पर्येण ते यावत्	२१७	पुरुषान्दीन्द्रतो यस्या-	२४६
पर्वतेन्द्रगुहाकारे	२५	पार्श्वस्थौ वीक्ष्य रामस्य	२७३	पुरुषौ द्वावधस्तात्	२७६
पर्वते पर्वते चारौ	६	पालयन्तौ महीं सम्यक्	२३३	पुरे च खेचराणां च	१००
पल्योपमसहस्राणि	३६०	पाल्या बहुविधैर्धान्यैः	१३४	पुरे तत्रेन्द्रनगर-	१००
पल्योपमान् ब्रह्मन् तत्र	१४३	पावकं प्रविविञ्चन्तीं	२७५	पुरे मृणालकुण्डाख्यो	३०८
पवनोद्भूतसत्केश-	२७८	पितरावनयोः सम्यक्	३३७	पुरैर्नाकपुरच्छायै-	२२५
पवित्रवस्त्रसंवीताः	६८	पितरौ प्रति निःस्नेहाः	१८०	पुरोधः परमस्तस्य	३०८
पश्चात् कृतगुरुत्वस्य	२१२	पितरौ बन्धुभिः सार्द्धं	१४५	पुरोहितः पुरः श्रेष्ठी	३०३
पश्चात्तापहताः पश्चात्	२८८	पितुराज्ञां समाकारयं	२४२	पुष्पकाग्रं समारुह्य	२२०
पश्चात्तापानलज्वाला-	३७०	पित्राकृतं परिज्ञाय	३००	पुष्पकाप्रार्थ्यं श्रीमान्	३३
पश्चाद्बिभ्रवसंयुक्तौ	३५	पिन्नन्तं मृगकं यद्वत्	२२०	पुष्पप्रकीर्णनगर-	१०४
पश्यंल्लोकमलोकं च	१०२	पीतौ पयोधरौ यस्य	२८०	पुष्पशोभापरिच्छन्न-	३३
पश्य कर्मविचित्रत्वा-	४०५	पुञ्जिपूरितदेहस्य	२६४	पुष्पसौन्दर्यसङ्काश-	१५
पश्यत बलेन विभुना	४२०	पुण्यवान् भरतो विद्वान्	१५०	पूजयत्यखिलो लोक-	२३२
पश्य त्वं समभावेन	२२	पुरणवान् स नरो लोके	११४	पूजां च सर्वचैत्येषु	६

पूजामवाप्य देवेभ्यो	४०२	पृथुलारोहवच्छ्रोणी	६०	प्रतिशामेवमादाय	१११
पूजामहिमानमरं	४०६	पृथुः सहायताहेतोः	२४२	प्रतिशामेवमारुढा	७८
पूज्यता वपर्यतां तस्य	१५६	पृष्ठतः क्षुतमग्रे च	४०	प्रतिपक्षे हते तस्मिन्	२२३
पूज्यमाना समस्तेन	२८३	पृष्ठतः प्रेर्यमाणोऽसौ	११२	प्रतिपक्षोऽनया मृत्यु-	२७५
पूरयोध्या प्रिये सेयं	११६	पृष्ठे त्रिविष्टपस्यैव	१८१	प्रतिविम्बं जिनेन्द्रस्य	३३५
पूरिता निगडैः स्थूलै-	७७	पोताण्डजजरामूना-	२८६	प्रतिशब्देपु कः कोपः	५
पूरितायामयोध्यायां	११६	पौरण्डरीकपुरः स्वामी	२१५	प्रतीतो जगतोऽप्ये-	२९३
पूर्णकाञ्चनभद्राख्यो	३३७	प्रकटास्थिसिराजाल-	३१८	प्रतीहारञ्चः श्रुत्वा	२०२
पूर्णभद्रस्ततोऽबोचद्	२२	प्रकम्पमानहृदयः	४१४	प्रतीहारविनिर्मुक्तः	१६७
पूर्णमास्यां ततः पूर्ण-	१६	प्रकीर्य वरपुष्पाणि	३५६	प्रतीहारसुहृन्मन्त्रि-	३६६
पूर्णाया सुप्रजाश्चासौ	१६६	प्रकृतिस्थिरनेत्रभ्र -	३२०	प्रत्यनीका ययुप्रीवा	४६
पूर्णेऽय नवमे मासि	२३५	प्रकीर्ण्य विमले तोषे	४०१	प्रत्यागतं कृतार्थं त्वां	१६०
पूर्वं जनितपुण्यानां	१६०	प्रचण्डत्वमिदं तेषां	१८४	प्रत्यावृत्त्य कृतं कर्म	३१४
पूर्वं पूर्णोन्दुवत् सौम्या	५१	प्रचण्डवहलज्वालो	२७६	प्रत्यासन्नं समाधाते	२४४
पूर्वं भाग्योदयाद् राजन्	१०७	प्रचलत्कुण्डला राजन्	४०	प्रत्यासन्नत्वमायातं	६०
पूर्वं वेदवती काले	३१३	प्रचोद्यमानं घोरान्धं	४११	प्रत्यासन्नेषु तेष्वासीद्	१८५
पूर्वकर्मानुभावेन तयो-	१४६	प्रच्छादयितुमुद्युक्तः	१६५	प्रथमस्तु भवानेव	३३६
पूर्वकर्मानुभावेन प्रमादं	७४	प्रच्युतं प्रथमाघाता-	२६१	प्रथमा जानकी ख्याता	१८९
पूर्वपुण्योदयात्तत्र	३०१	प्रजा च सकला तस्य	३२८	प्रथितां बन्धुमत्यास्था-	३६२
पूर्वमाजननं बाले-	३१२	प्रजातसम्मदाः केचिद्	२७३	प्रदीतं भवनं कीडक्	१६६
पूर्वमेव जिनोक्तेन	१५१	प्रजानां दुःखतप्तानां	२३१	प्रदेशस्तिलमात्रोऽपि	३८०
पूर्वमेव परित्यक्तः	२७	प्रजानां पतिरेको यो	२२०	प्रदेशानृषमादीनां	१०२
पूर्वश्रुतिरतो हस्ती	१४०	प्रज्वलन्तीं चितां वीक्ष्य	७८	प्रदोषे तत्र संवृत्ते	४८
पूर्वस्नेहेन तथा	४२१	प्रणम्य भक्तिसम्पन्नः	३६१	प्रधानगुणसम्पन्नो	२९९
पूर्वादपि प्रिये दुःखा-	२३०	प्रणम्य विश्वासमुपा-	३०	प्रधानपुरुषो भूत्वा	७२
पूर्वाद् द्विगुणविक्रमभा-	२९०	प्रणम्य सकलं त्यक्त्वा	३१६	प्रधानसंयतेनैतौ	३३१
पूर्वानुबन्धदोषेण	३००	प्रणम्य स्थीयतामत्र	४०२	प्रपलायितुकामाना-	३८६
पूर्वापरककुम्भागा	२३८	प्रणम्य स्वामिनं तुष्टः	२	प्रपानाटकसङ्गीत-	१७६
पूर्वापरायतास्तत्र	२६०	प्रणाममात्रतः प्रीता	२४५	प्रबलं चञ्चरीकाणां	४०६
पूर्वोपचितमशुद्धं	३७७	प्रणिपत्य ततो देवी	४१	प्रभातमपि जानामि	३७६
पृच्छतेऽस्मै सुषिणाद्या	५४	प्रणिपत्य ततो नाथं	२०६	प्रभातसमये देव्यो	५१
पृथिवीनगरेशस्य	२४१	प्रणिरस्य सवित्रीं च	२४३	प्रभामण्डलमायातं	२५७
पृथिवीपुरनाथस्य	१००	प्रतापभङ्गभीतोऽयं	३७	प्रभासकुन्दनामासौ	३१०
पृथिवीपुरमासाय	२४१	प्रतार्यमाणमात्मानं	५	प्रभ्रष्टदुष्टदुर्दान्त-	२८
पृथिवीश्वर्गसङ्काशा	८०	प्रतिकूलं कृतं केन	२५२	प्रमादाद् विकृतिं प्राप्तं	३५
पृथिव्यां ब्राह्मणाः श्रेष्ठा	३३५	प्रतिकूलमिदं वाच्यं	१५६	प्रमादापतितं किञ्चिद्	२०६
पृथिव्यां योऽतिनीचोऽपि	२७२	प्रतिकूलितसूत्रार्था	१७७	प्रमृद्य बन्धनस्तम्भं	१४८
पृथिव्यापक्ष तेजश्च	२८९	प्रतिक्रूरमनाः पापा	२७७	प्रयच्छ देव मे भर्तृ	४२
पृथुदेशावधेः पाता	२४२	प्रतिज्ञां तव नो वेद	१६२	प्रयच्छन्निच्छता तेषा-	१८२

प्रयच्छ सकृदप्याशु	३७४	प्रसाद्य पृथिवीमेतां	२४७	प्रासादस्था कदाचित्सा	१७१
प्रयाति नगतो नाये	३१६	प्रसारितमहामात्यां	२२५	प्रासादशिलरे देव	५६
प्ररोदनं प्रहासेन	३३६	प्रसीद देव पद्माभ-	२७६	प्रासादावनिकुक्षिस्थौ	३५३
प्रलम्बजलभृत्तुल्या	१२०	प्रसीद न चिरं कोपः	७२	प्रासुकाचारकुशलः	३०७
प्रलयाम्बुदनिर्घोषा-	९६	प्रसीद नाथ निर्दोषां	२०५	प्राह यज्ञोऽतिरक्ताज्ञो	३३६
प्रलीनधर्ममर्यादा-	१६६	प्रसीद मुच्यतां कोपो	३७०	प्रियं जनमिमं त्यक्त्वा	३५८
प्रवरिष्यति कं त्वेषा	३४३	प्रसीद वैदेहि विमुञ्च	७	प्रियं प्रणयिनी काश्चि-	४६
प्रवरोधानमध्यस्था	१२४	प्रसीदैव तवावृत्त-	३७६	प्रियकण्ठसमासक्त-	६१
प्रवर्तते यदाऽकार्यै	७४	प्रस्तावेऽस्यन्तहर्षस्य	२०६	प्रियस्य प्राणिनो	२८५
प्रविशन्तं बलं वीक्ष्य	३२१	प्रस्तावे यदि नैतरिमन्	१६२	प्रीतिकुरमुनीन्द्रस्य	१७६
प्रविशन्ति ततः सर्वे	११६	प्रस्थितस्य मया साक-	२२१	प्रीतिकुरो हृदरथः	१७
प्रविश्य स नरः स्त्री वा	११६	प्रस्यन्दमानचित्तास्ते	३८६	प्रीतिरेव मया साद्धं	३
प्रविष्टाश्च चक्षन्तेका	२५	प्रहृतं लघुना तेन	२५६	प्रीत्यैव शोभना सिद्धिः	३
प्रविष्टे नगरीं रामे	३६७	प्रहर प्रथमं क्षुद्र	२५६	प्रेक्षाग्रहं च विन्ध्याभं	१२३
प्रविष्टो भवनं किञ्चिद्	१४५	प्रह्लाङ्गाः पृष्ठतस्तस्य	६४	प्रेक्ष्य गोमहिषीवृन्द-	१२४
प्रवीरः कातरैः शूर-	१६६	प्राकारपुटगुह्येन	३२५	प्रेतकर्मणि जानक्याः	२३२
प्रवृत्तवेगमात्रेण	२५७	प्राकारशिलरावल्या-	२४७	प्रेतकोपविनाशाय	७३
प्रवृत्तो तुमुले क्रूरे	२०	प्राकारोऽयं समस्ताशा	१२४	प्रेषितं तार्क्ष्यनाथेन	४
प्रवृत्तो शस्त्रसम्पाते	५८	प्रागेव यदवासव्यं	३४४	प्रेष्यन्ते नगरीं दूता	११५
प्रवेशं विविधोपायै-	१६३	प्राग्मारकन्दरासिन्धु-	१७७	प्रौढकोकनदच्छायः	२८४
प्रव्रज्य राजा प्रथमामरस्य	८५	प्रान्तास्थितमदक्लिन्न-	१२६	प्रौढेन्दीधरसंकाश-	२१
प्रव्रज्यामष्टवीराणां	३६४	प्रान्तावस्थितहर्म्याली-	६७	प्लवङ्गहरिशार्दूल-	३४२
प्रशशंस च तं स त्वं	२२३	प्रापस्स्यते गतिं कां वा	४१८		
प्रशस्तं जन्म नो तस्य	२०४	प्राप्तदुःखां प्रियां साध्वीं	१६६	[फ]	
प्रशस्तदर्शनज्ञान-	२८६	प्राप्तानां दुर्लभं मार्गं	१५५	फलं पूर्वाजितस्येदं	२३१
प्रशान्तकलुषाकर्ता	११२	प्राप्तायाः पद्मभार्यायाः	२७३	फलासारं विमुञ्चद्भिः	६०
प्रशान्तवदनो धीरो	२३६	प्राप्तव्यं येन यश्लोके	२३१	फेनमालासमासक्त-	२०९
प्रशान्तवैरसम्बद्धै-	१३	प्राप्ता लङ्कापुरीबाह्यो-	१७		
प्रशान्तहृदयं हन्तु-	२१	प्राप्तश्च शान्तिनाथस्य	२७	[ब]	
प्रशान्तहृदयान् साधून्	१८०	प्राप्तो ददर्श बीभत्सं	४१०	बद्धयज्ञाञ्जलिपुटा	४८
प्रशान्तहृदयेऽयथा	१२७	प्राप्तो विनिद्रतामेष	३७६	बद्धपाणिपुटा धन्या	६५
प्रशान्ता सप्तरात्रेण	३३२	प्राप्य नारायणादाशा-	१३२	बद्ध्वा करद्वयाम्भोज-	६३
प्रशान्तिं भ्रातरो यात-	३४४	प्राभृतं यावदायाति	२२६	बन्दाकश्चैत्यमभवनं	३०२
प्रशान्ते द्विरदश्रेष्ठे	१३३	प्राप्तोऽयपटसंवीता-	३५३	बन्दिग्रहणमानीतः	१७
प्रसन्नचन्द्रकान्तं ते	३७५	प्राप्तोऽयवातसम्पर्क-	३८६	बन्धनं कुम्भकर्णस्य	१
प्रसन्नमुखतारिणं	३०५	प्रावर्त्यन्त महापूजा	१६७	बन्धूकपुत्रसङ्काश-	७२
प्रसादं कुरुतां पश्य	११३	प्रावृष्टमेघदलच्छायो	१०	बभञ्जुः केचिदस्त्राणि	८०
प्रसादाद् यस्य नाथस्य	३६३	प्रावृष्टारम्भसम्भूत-	१५६	बभणुरत्राधुना केन	३८६
प्रसाद्य धरिणीं सर्वां	१८८	प्रावृष्टेययनाकार-	५	बभूव तनयस्तरय	१४३

बभूव पोदनस्थाने	१०७	त्रिभ्राणो विमलं हारं	३६४	भग्नामेरीमृदङ्गानां	६६
बभूव विभवस्तासां	३६२	बीजं शिलातले न्यस्तं	१८०	भयासङ्गं समुत्पृष्य	१८
बभूवुर्दृष्टयस्तासां	२६६	बुद्धात्मनोऽवसानं च	१६५	भरतर्षेदिदमनर्ध	१५४
बर्हणास्त्रेण तपोर-	६०	बुद्बुदा इव यद्यरिमन्	२८६	भरताख्यमिदं क्षेत्रं	२६०
बलदेव प्रसादात्ते	२८४	बुद्बुदादर्शलम्बूष-	२५५	भरताद्याः सधन्यास्ते	६८
बलदेवस्ततोऽवोचत्	२०४	बुधं समाधिरत्नस्य	३०२	भरताभिमुखं धान्तं	१३१
बलदेवस्य सुचरितं	४२१	बृहद्विविधवादित्रै-	५२	भरतेन समं वीरा	१५८
बलं वो जगौ भूयः	७७	बोधिं मनुष्यलोकेऽपि	२६७	भरतोऽथ समुत्थाय	१५०
बलवन्तः समुद्बृत्ताः	३४४	बोधिं सम्प्राप्य काकुत्स्थः	३६२	भरतोऽपि महातेजा	१५३
बलोद्रेकादयं तुङ्गान्	१३७	ब्रवीत्येवं च रामस्त्वां	६	भर्तृपुत्रवियोगाग्नि-	१०६
बहवः पद्मनाभाख्या	११२	ब्रह्मब्रह्मोत्तरो लोको	२६१	भवता परिराल्थन्ते	१
बहवो जनघादस्य	२५१	ब्रह्मलोकभवाकारं	१०६	भवतो नापरः कश्चित्	२३२
बहवो राजधान्योऽन्याः	१७१	ब्राह्मणः सोमदेवोऽथ	३३०	भवतोरन्यथाभावं	२६६
बहवो हि भवास्तस्य	१७१	ब्रुवाणो लोकविद्वेष-	३१५	भवतिपतुर्मया ध्यातं	२५३
बहिः शत्रून् पराजित्य	४०५	ब्रुवते नास्ति तृष्णा मे	२८८	भवत्युद्भवकालेषु	३११
बहिरप्रत्ययं राजा	३२४	ब्रूत किं नामधेयोऽयं	५४	भवत्येव हि शोकेन	६६
बहिराशास्वशेषामु	११७	ब्रूहि कारणमेतस्या	२१८	भवत्समाभयाद् भद्र	३१६
बहुकृतितलोकेन	३०८	ब्रूहि ब्रूहि किमिष्टं ते	३७५	भवानान्यतिशुभ्राणि	१२४
बहुधा गदितेन किं त्य-	४२४	ब्रूहि ब्रूहि न सा कान्ता	२३०	भवने शब्दसेन्द्रस्य	१८
बहुपुष्परजोवाही	४०६	ब्रूह्य सर्वदैत्यानां	३०	भवन्तावस्मि पृच्छामि	३६०
बहुप्रियशतैः स्तोत्रैः	१३४	[भ]		भवन्ति दिवसेष्वेषु	१२
बहुरूपधरैर्युक्तं	६७	भक्तिः स्वामिनि परमा	२६२	भवन्तौ परमौ धीरौ	२४५
बहुविदितमलं	८	भक्तिकल्पितसाम्निध्यै-	३५६	भवन्मृदङ्गनिस्वानात्	२८१
बाध्यतां रावणः कृत्यं	१६	भक्ष्यैः बहुप्रकारैस्तं	१४६	भवशतसहस्र-	४२२
बाध्यमानाधरा नेत्र-	२६	भगवन् शतुमिन्ञ्जामि	१०६	भवानां किल सर्वेषां	३४५
बालकौ नैष युद्धस्य	२८३	भगवन् पद्मनाभेन	२६६	भवान्तरसमायोग-	१२१
बालाग्रमात्रकं दोषं	३८८	भगवन्नधमा मथ्या	२६४	भविष्यतः स्वकर्माभ्यु-	४१८
बाहुच्छायां समाश्रित्य	१६६	भगवन्निति संशति	१३७	भविष्यद्भववृत्तान्त-	४१६
बाहुमस्तकसंघट्ट-	६४	भगवनीप्सितं वस्तु	३६६	भव्याभव्यादिभेदं च	२८९
बाहुसौदामिनीदण्ड-	६४	भगवान् पुरुषेन्द्रोऽसौ	१३८	भव्याभ्युपगमप्रधानस्य	३०५
बाह्यालङ्कारयुक्तोऽपि	२८६	भगवान् बलदेवोऽसौ	४०४	भानावस्तङ्गतेऽभ्यर्शा	१०५
बाह्योद्यानानि चैत्यानि	२६८	भगवन्नप्रकपाटं च	१६	भामरडलेन चात्मीया	७८
विभेति मृत्युतो नास्य	२६६	भजतां संस्तवं पूर्वं	२३७	भासकुन्तलकालाम्बु-	२४६
विभ्रता परमं तोषं	२२६	भज निष्कण्डकं राज्यं	६	भारत्यपि न वक्तव्या	३१५
विभ्रतुस्तौ परां लक्ष्मीं	२३६	भजस्व प्रस्वळं दानैः	२११	भार्यावारी प्रविष्टः सन्	२६७
विभ्रस्तगुणैश्चर्यं	१५६	भण्यमानास्ततो भूयः	४११	भावनाश्चन्दनाद्राङ्गः	४७
विभ्रस्फटिकनिर्माणा-	१४	भदन्तास्त्यक्तसन्देहा	३३४	भावापितनमस्काराः	२८६
विभ्राणः परमां लक्ष्मीं	१८३	भद्र त्वदाकृतिर्बालो	१४५	भाषितश्चाहमेतेन	३८५
विभ्राणाः कवचं चारु	२२५	भद्रशालवनोद्भूतै-	२२०	भाषितान्यनुभूतानि	१५

भासमभोजलण्डानां	६७	भोगीमूर्धमणिच्छाया-	३४	मथुरायां महाचित्ता-	१७२
भासुरोपमहाव्याल-	२२८	भोगैः किं परमोदारैः	२०३	मथुरायाचने तेन	१५६
भास्करेण विना का द्यौः	२३१	भोगैरुपाजितं पाप-	३५०	मदनाकुशवीरस्य	२४५
भिक्षार्थिनं मुनिं मेहं	३०६	भो भो कुत्सयते कस्मात्	३८८	मदवशाकरो वाञ्छन्	४४
भिरनेवं सहसा क्षोणीं	२८१	भो विराधित सद्वुद्धे-	२६४	मदासक्तचकोरात्ति	२२६
भिन्दन्तं वालिनं वायु-	२३८	भ्रमताभ्यन्तकृच्छ्रेण	३८६	मदिरापतितां काचिद्	४६
भिक्षाञ्जनदलच्छाया-	८६	भ्रमरासितकेश्यस्ताः	४०७	मदिरायां परिन्यस्तं	४६
भिक्षाञ्जनदलच्छाये-	७६	भ्रमरैरुपगीतानि	११७	मद्यामिषनिवृत्तस्य	१६६
मीतादिष्वपि नो तावत्	१६	भ्रमितोपरिवहान्त-	६६	मद्युक्ताऽप्यगमत् त्रासं	३२०
भोमज्ज्वालालीभङ्ग-	२७५	भ्रमितश्चापदण्डोऽयं	२६५	मद्विधानां निसर्गोऽय-	३०
भीरवो यवनाः कक्षा-	२४६	भ्रष्टहारशिरोरत्न-	३७४	मधुः सुघोरं परमं	३४०
भुक्तभोगौ ततश्च्युत्वा-	३२७	भ्रातरः कर्मभूरेषा-	३४५	मधुमङ्गकृताशंसा-	१६१
भुक्त्वा त्रिविष्टपे धर्मं	३५८	भ्रातरः सुहृदः पुत्रा	२४३	मधुमांससुराहारः	३१०
भुक्त्वा देवविभूतिं	१३	भ्रातस्त्वपि चिरं सुते	३७६	मधुराभिर्मनोहाभि-	१६३
भुक्त्वापि त्रैदशान् भोगान्	३५८	भ्राता तत्रापि हस्तुक्ते	४१६	मधुरित्याह भगवान्	३२६
भुक्त्वापि सकलं भोगं	४७	भ्रातृर्वियोगजं दुःखं	३१३	मधु शीघ्रं घृतं वारिं	२५५
भुजपत्रापि जातास्य	१०७	भ्रातृपक्षातिसक्तेन	२६६	मधोरिन्द्रस्य सम्भूति-	३४१
भुजाभ्यामुत्क्षिपेन्मेहं	२४६	भ्राग्यन्नथ सुपर्णेन्द्रो	१६८	मध्यकर्मसमाचाराः	१७१
भुज्यतां तावदैश्वर्य-	३४७	भ्रूक्षेपमात्रकस्यापि	३१	मध्याह्नार्कदुरीक्षाद्वाः	२०
भुज्यमानाल्पसौख्येन	३६४	[म]		मध्याह्ने दीधितिं सौरी-	२७४
भुञ्जानोऽपि फलं तस्य	२६६	मकरध्वजचित्तस्य	४५	मध्येऽमरकुरोर्यदत्	१६२
भूलेचरमहाराजैः	३६३	मकरध्वजसटोप-	१७	मध्ये महालयस्थास्य	६७
भूगोचरनरेन्द्राणां	२६०	मकरन्दातिलब्धाभि-	२०८	मध्ये राजसहस्राणां	३२१
भूदेवे तत्र निष्क्रान्ते	३६४	मगधाधिपतिः प्राह	३३०	मध्ये शकत्रपुरीतुल्या	१२४
भूधराचलसम्भेद-	५७	मगधेन्द्रनाथ निःशेषा	१३४	मनःप्रहरणाकारा	१२६
भूपात्ताचारसम्पन्नं	३३६	मङ्गलैः कौतुकैर्यौतैः	१३४	मनःप्रह्लादनकरं	४०७
भूमिशय्यासु मौनेन	८०	मज्जन्निव जले विन्नो	३०६	मनःश्रोत्रपरिह्लादं	२६४
भूयः भ्रेणिकसंरम्भ-	१०	मज्जर्यः सहकाराणां	४०६	मनसा कान्तसक्तेन	२०६
भूयश्चण्डेन दण्डेन	६९	मणिकाञ्जनसोपानै-	२८२	मनसा कामतप्तेन	३०६
भूयस्तामसवाणौघै-	६०	मणिचित्रसमाकृष्ट-	१६३	मनसा च सशल्येन	२३३
भूयो भूयः प्रणामेन	३३५	मणिजालगवाक्षान्त-	४०	मनसा सम्प्रघार्यैवं	३६
भूरिवर्षसहस्राणि	२७५	मणिभद्रस्ततोऽनोच-	२१	मनागवस्तता तिष्ठ	२६८
भूरेणुधूसरीभूत-	६०	मखिहेमात्मके कान्ते	३०८	मनुष्यजन्मसम्प्राप्य	२८७
भूषिताङ्गो द्विपारुढः	१६७	मण्डलाग्रं समुद्यम्य	३००	मनुष्यनाकवासेषु	२८६
भृङ्गात्मकमिवोद्भूतं	२८०	मण्डलेन तदावृत्त्य	१२३	मनोगतं मम ज्ञानं	३३३
भृत्यताकरणीयेन	२१२	मण्डलस्याभवाच्छुभ्य-	३१६	मनोज्ञपञ्चविषय-	३०४
भृशं पटुखुराघातै-	२५६	मत्तभृङ्गान्वयपृष्ठीघ-	३५३	मनोशे क्वचिदुद्देशे	४०४
भेकत्वं मूषकत्वं च	१४०	मत्तास्ते करिणो गण्ड-	५३	मनोभवज्वरप्रस्ता	४०६
भोगाधिकारसंस्का-	४१२	मत्तोऽस्ति नाधिकः कश्चित्	४८	मनोऽभिरमणे तस्मिन्	४०६

मनोरथः प्रवृत्तोऽयं	४२	महदम्भोजकाण्डं	१२३	महार्णवोर्मिसन्तान-	१५७
मनोरथशतैर्लब्धः	१४२	महद्भिरनुमातेन	६३	महालङ्कारधारिण्यः	१३३
मनोरथसहस्राणि	१२२	महर्द्धिकस्य देवस्य	३६७	महाविज्ञानयुक्तेन	१०५
मनोरमेति तस्यास्ति	१८३	महर्ल्लोकापवादश्च	३५	महाविद्याधराश्रान्धे	५५
मनोहरकटाक्षेषु	४२	महाकलकलाराव-		महाविनययोगेन	२५४
मनोहरगतिश्चैव	१२६	महाकल्याणमूलस्य	३६६	महाविमानसङ्घातै-	८८
मनोहरग्रासंसक्तौ	२३९	महाकुठारहस्तानां	२५४	महाविरागतः साक्षात्	३२०
मनोहरस्वर्नं तासां	६३	महाकुलप्रयुतास्ताः	३३५	महाविलासिनीनेत्र	३५२
मनोहराभकेयूर-	५३	महाकोलाहलस्वानैः	२७६	महावीर्यः पुरा येन	१६१
मन्त्रविन्द्रिस्ततस्तुष्टै-	२	महाकौतुकयुक्ताना-	८८	महावृषौ यथा कान्त-	२३७
मन्त्रिभिः सह सङ्गत्य	१८३	महागणसमाकीर्णौ	१३६	महावैराग्यसम्पन्नं	१४३
मन्दं मदं प्रयच्छन्त्या	२३४	महागिरिगुहाद्वार-	१६३	महाव्रतधराः शान्ता	१५९
मन्दभाग्यां परित्यज्य	१०९	महागुणधरा देवी	१२१	महाव्रतपवित्राङ्गा-	२८४
मन्दरे तस्य देवेन्द्रैः	११०	महाजगरसञ्चार-	२२८	महाव्रतशिखाटोपाः	३३३
मन्दारैः सौरभासद-	१३	महातपोधना इष्टा	१७८	महाशान्तिस्वभावस्थं	९४
मन्दोदरी समाहूय	४०	महातरङ्गसङ्कोस्थ-	३५४	महासंरम्भसंबद्ध	६५
मन्दोदर्यां समं सर्व-	७७	महातृष्णादिता दीना	२८८	महासंवेगसम्पन्ना	३२८
मन्त्रसूर्यस्वनश्रितो	२४	महात्मसुखतृप्तानां	२६२	महासत्त्वस्य वीरस्य	७४
मम्भस्यस्यान्तिकं गन्तुं	४१	महात्मा तां समाख्या	४०४	महासाधनसम्पन्ना	२५०
मन्यमानः स्वसुत्तीर्ण-	३८६	महादुन्दुभिनिर्घोष-	६५	महासैन्यसमायुक्ता	२६०
मन्ये दूरस्थिताप्येषा	२००	महादृष्टयानुरागेण	३४३	महासौभाग्यसम्पन्ना	१५७
मन्ये विपाटयन् व्योम-	३४३	महादेव्यभिषेकेण	३३८	महाहवेऽधुना जाते	२५३
मंमायं कुपितोऽमुष्य	३९	महानिश्चिन्तचित्ते	२७६	महाह्रवो यथा जातः	२६१
मयं विह्वलमालोक्य	५८	महानिमित्तमष्टाङ्गं	२३७	महाहिरण्यगर्भश्च	३६६
मयं विह्वलितं दृष्ट्वा	५८	महानुभावधीर्देवो	१६	महिषत्वमितोऽरण्ये	१४१
मया सुयोजिता साकं	३१५	महान्तं क्रोधमापन्नः	२०	महिषोष्टमहोद्वाद्या	२५५
मयोप्रशुकलोकात्	३६	महान्तध्वान्तसम्भूदो	३८६	महिम्ना पुरुषा युक्तं	२४
मयोऽपि मायया तीव्रः	१०३	महान् यद्येष दोषोऽस्ति	३३६	महीतलं खलं द्रव्यं-	१८०
मरणव्यसने भ्रातु-	३७५	महाब्र मररोऽप्यस्ति	३८६	महीतले विमर्यादो	२१६
मरणात् परमं दुःखं	३७	महापादप-सङ्घातः	२०८	महीभृच्छिखरश्वभ्र-	२०७
मरणे कथिते तेन	१६८	महापूरकृतोत्पीडः	४१	महेन्द्रदमनो येन	३
मरोचिशिष्ययोः कूट-	१३६	महाप्रतिभयेऽरण्ये	२२६	महेन्द्रनगराकारा	१०
मर्तव्यमिति निश्चित्य	६५	महाप्रभावसम्पन्नः	२७५	महेन्द्रभवनाकारे	११४
मर्त्यानुगीतं चक्राहं	१८८	महाप्रभावसम्पन्नो	३६५	महेन्द्रविन्ध्यकिष्किन्ध-	१८४
मर्दान्स्नानसंस्कार-	२९५	महाबलैः सुरच्छायैः	५३	महेन्द्रविभ्रमो नेतः	३६
मर्यादाङ्कुशसंयुक्तो	४७	महामोहतमश्कलं	३६५	महेन्द्रशिखरामेषु	११७
मलयाचलसद्गन्ध-	३४६	महामोहहृतात्मानः	४१२	महेन्द्रोदयसुधानं	१६३
महता-शोकभारेण	३४	महायतं विनिःश्वस्य	१३४	महोपचारविनय-	२३७
महत्यापि न सा तृप्ति	१२६	महाराजतरागाक्तं	२६८	महोरगेन संदृष्ट-	१०५

महौकसामुदाराणां	३२४	मिथ्यापथपरिभ्रान्त्या	३१८	मृतो राघव इत्येत-	३६६
मांसवर्जितसर्वाङ्गा	३२८	मिथ्याभिमानसम्भूतो	३१०	मृत्युजन्मजराव्याधि-	२६१
मांसेन बहुभेदेन	२८८	मिश्रितं मत्सरेणापि	५६	मृत्युदावानलः सोऽहं	४४
मानर्थं नगरं प्राप्ते	१४१	मुकुटं कुण्डले हार-	३६२	मृत्युगाशेन बद्धोऽसौ	३१
मन्त्रशुद्धस्य पत्नस्य	४०८	मुकुटाङ्गदकेयूर-	१५७	मृत्युव्यसनसम्बद्धे	३०३
मातरः पितरोऽप्ये च	३४७	मुकुटी कुण्डली धन्वी	५५	मृदङ्गदुन्दुभिस्वानै-	४१४
मत्तर्मनागितो वदत्रं	२६८	मुक्तमोहघनव्रातः	३८८	मृदुचारसितश्लक्ष्ण-	३१६
माता पद्मवती तस्य	३०४	मुक्तादामसमाकीर्णा	५३	मृदुप्रभञ्जनाऽऽधूत-	३७५
माका पिता सुहृद् भ्राता	३६०	मुक्तासारसमाघात-	२६२	मृष्टमन्नं स्वभावेन	९८
मन्त्राऽस्य माधवीत्यासीत्	१४३	मुक्त्वा राघवमुदवृत्ता-	३६	मेघवाहोऽनगारोऽपि	१०२
मन्त्रशुद्धीजतेर्भङ्गं	३५०	मुखं मैथिली पश्याद्य	२७२	मेने सुपुत्रलभं च	२६७
मानुषोत्तरमुल्लङ्घ्य	४१०	मुखारविन्दमालोक्य	६०	मेरुं स्थिरत्वयोगेन	२३६
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य	३६०	सुगन्धितानि रम्याणि	२३५	मेरुनाभिरसौ वृत्तो	२९०
मान्याऽपराजिता देवी	११३	मुच्यते च पराभूय	२७७	मेरुशृङ्गसमाकार-	३५२
मान्ये भगवति श्लाघ्ये	२२५	मुञ्च क्रूराणि कर्माणि	४११	मेरोर्मरकतादीनां	३५०
मा भैवीर्दयिते तिष्ठ	५४	मुञ्चध्वमायु मुञ्चध्व	११३	मैथिलीं राघवो वीक्ष्य	२८३
मा मा नश्यत सन्त्रस्ता	४११	मुनयः शङ्किता जाता	३१६	मोक्षो निगडवदस्य	२६७
मायाप्रवीणया तावत्	१७२	मुनिं प्रीतिकुरो गत्वा	७५	मोक्ष्यामि क्षणमप्येक-	५०
मारीचः कल्पवासित्वं	१०३	मुनिः स चावधिशाना-	३३१	मोहपङ्कनिमग्नेयं	३२७
मारीचचन्द्रनिकर-	५७	मुनिदर्शनतृड्प्रस्ता	१३७	मोहेन निन्दनैस्त्रैणै-	३०६
माल्यान्वत्यन्तन्त्रिणाणि	१६४	मुनिदेवासुरवृषभैः	४२०	मोहेन बलिनाऽत्यन्तं	६८
मासजातं नृपो न्यस्य	१७६	मुनिधर्मजिनेन्द्राणां	३०८	[य]	
माहात्म्यं पश्यतेहृद्	३२६	मुनिना गदितं चित्ते	७५	यः कश्चिद्विद्यते बन्धुः	३८२
माहात्म्यं भवदीयं मे	२४५	मुनिराहावगच्छामि	३३१	यः सदा परमप्रीत्यां	७४
माहात्म्यमेतत् सुसना-	६६	मुनिसुव्रततीर्थकृत-	८६	यः साधुकुसुमागारं	२२३
माहेन्द्रकल्पतां देवौ	३८५	मुनिसुव्रतनाथस्य तत्तीर्थं	३२८	य एव लालितोऽन्यत्र	३८०
माहेन्द्रभोगसम्पन्नि-	३०६	मुनिसुव्रतनाथस्य सम्य-	४१५	यत्किञ्चरगन्धर्वा-	६२
माहेन्द्रस्वर्गमारूढ-	१४३	मुनीनां परया भक्त्या	१७६	यत्क्षेत्रे परिक्रुद्धौ	२१
मिथ्यामात्यादिभिः साद्धं	१३४	मुनीन्द्र जय वर्द्धस्व	३६८	यत्क्षेत्रे महाबायु-	२१
मिथुनैरुपभोग्यानि	३५३	मुनीन्द्रदेहवच्छाया-	२८५	यत्क्षेत्रे कर्णेजपः शोक-	३६०
मिथ्याग्रहं विमुञ्चस्व	५	मुमुर्षन्ती समासोक्य	३०६	यत्क्षेत्रे प्रमदाभोज	७१
मिथ्यादर्शनदुष्टात्मा	२६५	मुहुर्मुहुः समातिङ्ग्य	५०	यत्क्षेत्रे भूतले सारं	५६
मिथ्यादर्शनयुक्तोऽपि	२९६	मुहुस्ततोऽन्नुयुक्ता सा	२१६	यतः क्षमान्वितं वीरं	७
मिथ्यादर्शनीनां पापां	२८१	मूर्च्छामित्य विबोधं	८६	यतः प्रभृति संज्ञोभं	१३४
मिथ्यादृष्टिः कुतोऽस्त्यन्यो	१७८	मूढे रोदिषि किं	८७	यतिराहोत्तमं युक्त-	३६२
मिथ्यादृष्टिः कुत्रेरेण	३०६	मृगनागारिसंलक्ष्य-	२६०	यत्कर्म क्षपयत्यज्ञो	२६३
मिथ्यादृष्टिर्वधूर्यदद्-	२२२	मृगमहिषतरक्षुदीपि-	२१५	यत् कर्म निर्मितं पूर्वं	१९६
मिथ्यादृष्टिस्वभावेन	३००	मृगाक्षीमेतिकां त्यक्त्वा	२११	यत् किञ्चित्करणोन्मुक्तः	३५
मिथ्यानयः समाचर्य	३६६	मृगैः सममरययान्वां	२६५	यत्कृतं दुःखं सोढं	१९६

यत्प्रसादान्निरस्तत्त्वं	१३६	यदर्थमन्विमुत्तीर्थं	२००	यस्यातपत्रमालोक्य	६७
यत्र त्वं प्रथितस्तत्र	१३९	यदाज्ञापयति स्वामी	३६६	यस्याद्यापि महापूजा	२२१
यत्र त्वेते न विद्यन्ते	२६५	यदा निघ्ननमस्यैव	३७६	यस्यानुबन्धमद्यापि	३८७
यत्र मन्दोदरी शोक-	७७	यदा वैद्यगणैः सर्वैः	३७२	यस्यामेवाथ वेलाया-	२७६
यत्रामृतवती देवी	३१२	यदा सर्वप्रयत्नेन	४०८	यस्यार्थं कुर्वता मन्त्र-	१५२
यत्रैव यः स्थितः स्थाने	१६६	यदाऽहमभवं गृध्र-	३८५	यस्यावतरणे शान्ति-	६४
यथा कर्तव्यविज्ञान-	२६०	यदि तत् किं वृथा	२८५	यस्याष्टगुणमैश्वर्यं-	२२१
यथा किल न युद्धेन	२	यदि तावदसौ नभ-	४२४	यस्यैवाङ्गता भाति	१२१
यथा केचिन्नरा लोके	३३४	यदि न प्रत्ययः	३३२	यस्यैषा ललिता करौ	२४
यथा गुरुसमादिष्टं	४१६	यदि नाम प्रपद्येरन्	९५	या काचिन्द्रविता बुद्धि-	४१
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्ताः	१८१	यदि नामाचलं किञ्चित्	१७३	यातश्च कशिपुं तेन	३२५
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा		यदि प्रत्ययसे नैतत्	३६७	यातास्मः श्व इति	१००
गुह्यकेन	३३७	यदि प्रत्रजसीत्युक्त्वा	१७२	या नग्दिनश्चेन्दुमुखी	८५
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा		यदीच्छतात्मनः श्रेयः	४१३	यानपात्रमिवासाद-	३८९
द्रविणा	१६७	यदीदमीदृशं धत्से	२१७	यानि चात्यन्तरम्याणि	७३
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा		यदीर्थं दर्शनं ज्ञानं	२६३	यानैर्नानाविधैस्तुद्धै-	९६
प्रणम्य	३१६, २३२	यदुद्यानं सपद्माया-	२७२	यावजीवं सहावद्यं	१६६
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा		यदैव वार्तां गगनाङ्गणा-	११७	यावज्जीवं हि विरह-	२७९
वितर्कं	२०६	यदैव हि जनो जातो	३७६	यावत्ते वन्दनां चक्रु-	६५
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा		यद्यपि महाभिरामा	१६६	यावत्समाप्यते योगो	१४
विराधि-	२५७	यद्यप्यप्रतिमङ्गोऽसौ	३८४	यावदाश्वासनं तस्य	२८४
यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्त्वा		यद्यप्यहं स्थिरस्वान्त-	२००	यावदेषा कथा तेषां	२१८
सिद्धा-	१६०	यद्यर्पयामि पञ्चाय	३५	यावद् भगवती तस्य	१६
यथाऽऽदर्शतले कश्चित्	३३६	यद्यैकमपि किञ्चिन्मे	३१६	यावन्न मृत्युवज्ज्रेण	३१८
यथा देवर्षिणा ख्यातं	३५३	यद्वा निहितं हृदये	४२२	या वृणोति न मां नारी	३३
यथानुकूलमाश्रित्य	१३०	यद्विद्याधरनाथेन	१२५	या श्रीश्वन्द्रचरस्यास्य	३०८
यथापराजिताजस्य	२६४	यन्त्रचेष्टिततुल्यस्य	२१२	या सा मद्दिरहै दुःखं	८६
यथायथं ततो याता	९७	यमिनो वीतरागाश्च	३३४	या साम्भ्यं शशिचूलायाः	२४१
यथार्थं भाष्यसे देव	१	यया ह्यवस्थया राजा	२१६	युक्तं जनवैदो वक्ति	२००
यथाहं द्वे श्रपि श्रेण्यौ	३४२	ययुर्द्विपमहाव्यालां	७	युक्तं दन्तिसहखेण	५३
यथावद् वृत्तमाचख्युः	११५	ययोर्वंशगिरावासीत्	१३६	युक्तं बहुप्रकारेण	१७६
यथा शक्त्या जितेन्द्राणां	९६	यवपुण्ड्रेक्षुगोधूम-	२५६	युक्तमिदं किं भवतो-	८६
यथाछादशसंख्यानां	१०	यशसा परिवीतान्य-	१०२	युक्तो बोधिसभाधिभ्यां	१५
यथा समाहिताकल्प-	४५	यस्त्वसावमलो राजा	१०६	युग्मप्रधाननरयोः	१८८
यश्च सुवर्षपिण्डस्य	२९१	यस्य कृतेऽपि निमेषं	३८१	युगमानमहोपुष्ट-	३२६
यथेच्छं विद्यमानऽपि	२३५	यस्य प्रजातमात्रस्य	३६५	युगावसानमध्याह्न -	६५
यथेतदन्तं वंक्ति	२८०	यस्य यत्सदृशं तस्य	२१	युगान्तवीक्षणः श्रीमान्	४०४
यथेप्सितमहाभोग-	१०१	यस्य संसेव्यते तीर्थं	२८०	युद्ध इव शोकभाज-	३७७
यथोपपन्नमन्त्रेन	२११	यस्याङ्गुष्ठप्रमाणापि	१८१	युद्धक्रीडां काचिच्छक्ते	१८५

राम इत्यादितस्तेषां	२५०	लक्ष्मणं घूर्णमानाच्चि	२६४	लभ्यते खलु लब्धव्यं	३७
रामनारायणावेतौ	६७	लक्ष्मणं समरे शक्या	१११	ललाटोपरि विन्यस्ता	२७
रामयुक्तं किमेतत्ते	४१५	लक्ष्मणः स्वोचिते काले	४१६	लवणाकुशमाहात्म्यं	२६६
रामलक्ष्मणयोः साकं	२१९	लक्ष्मणस्य स्थितं पाणौ	६७	लवणाकुशयोः पत्ने	२६०
रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा	१०१	लक्ष्मणस्यान्तरास्थस्य	३८२	लवणाकुशसम्भूतिं	२६०
रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीं	२५८	लक्ष्मणाङ्गं ततो दोर्म्यां	३८८	लाङ्गूलपाणिना तेन	२६०
रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मी-	२४६	लक्ष्मणेन ततः कोपात्	२६४	लाङ्गूलपाणिरप्येवं	२६७
रामशक्रप्रियारुटो	२०७	लक्ष्मणेन ततोऽभाणि	६८	लाळयिष्ये च यत्तत्र	३६०
रामस्यासन्नतां प्राप्य	२०२	लक्ष्मणेन धनूरन्	१६१	लिम्पन्तीमिव लावण्य-	९०
रामीयवचनस्थान्ते	७४	लक्ष्मणेनानुजेनासौ	२५०	लुञ्चनोत्थितसंरुद्ध-	३१०
रामो जगाद जानामि	२७४	लक्ष्मणेनैवमुक्तोऽसौ	५	लुमकेशीमपीमां मे	२८५
रामो जगाद भगवन्	२९१	लक्ष्मणोऽत्रान्तरे प्राप्नो	२३१	लूथितं क्लृप्तं कर्म	४२०
रामो जगाद सेनान्य-	३९०	लक्ष्मणोऽपि परं क्रुद्धो	६४	लोकनाथं विमुष्यैकं	३७९
रामोऽपि कृत्वा समयो-	४०३	लक्ष्मणोऽपि स बाष्पाक्षः	२६६	लोकपालप्रधानानां	३६५
रामो मनोऽभिरामः	१६४	लक्ष्मीदेव्याः समुत्पन्नां	२४१	लोकपालसमेताना-	२७८
रामो वा न कथं ज्ञातो	२५०	लक्ष्मीधरनरेन्द्रोऽपि	२८६	लोकपालौबसो वीराः	४०
रावणं पञ्चता प्राप्तं	११५	लक्ष्मीधर न वक्तव्यं	२०५	लोकशास्त्रातिनिःसार-	१०४
रावणः परमः प्राज्ञो	२१६	लक्ष्मीधरशरैस्तीक्ष्णैः	६३	लोकस्य साहसं पश्य	३७६
रावणस्य कथां केचिद्	७६	लक्ष्मीधरेण तच्चापि	६०	लोकापवादमात्रेण	२०३
रावणस्य विमानाभं	६३	लक्ष्मीप्रतापसम्पन्नः	१६२	लोकोपालम्भखिन्नाभ्यां	१४४
रावणालयबाह्यक्षमा-	२५	लक्ष्मीहरिध्वजोद्भूतो	७४	लोहिताक्षः प्रतापाढ्यः	४०
रावणो जीवति प्राप्तो	८०	लङ्काद्वीपेऽसि यत् प्राप्ता	२२२	[व]	
रावणेन ततोऽवोचि	६८	लङ्काधिपतिना किं ना-	२७९	वंशत्रिसरिकावीणा	२१४
रावणेन समं युद्धं	६२	लङ्कायां च मदैश्वर्यं	३११	वंशस्वनानुगामीनि	१२०
राष्ट्रायधिकृतैः पूजां	२४७	लङ्कायां सर्वलोकस्य	८०	वंशाः सकाहलाः शङ्काः	२४४
राष्ट्राधिपतिभिर्भूयैः	६	लङ्केश्वरं रणे जित्वा	२५०	वक्ष्याम्यतः समासेन	३०८
रुक्मकाञ्चननिर्माणै-	१५७	लङ्केश्वरस्तु सङ्गाद-	२६	वचनं कुरु तातीयं	१२८
रुक्मी च शिखरी	२६०	लज्जासखीमपाकृत्य	४९	वचनं कुरुते यस्य	४१
रुदत्याः करुणं तस्याः	२१३	लङ्कुकान् मण्डकान् मृष्टा-	१५३	वचनं तत्समाकर्ण्य	१६२
रुद्रुश्चापरे दीनाः	४११	लब्धप्रसादया देव्या	४५	वचनं तस्य सम्पूज्य	१८
रुद्रुः सारिकाश्चारु-	४०६	लब्धलब्धत्य ! सर्वश !	४१५	वज्रकम्बुः सुतस्तस्य	३०८
रूपनिश्चलतां दृष्ट्वा	२५	लब्धवर्णं न युद्धेन	४७	वज्रजङ्घगृहान्तःस्थं	२२६
रूपयौवनलावण्य-	२६६	लब्धवर्णाः समस्तेषु	४	वज्रजङ्घप्रधानेषु	२४५
रूपिणी रुक्मिणी शीला	७१	लब्धवर्षां विशुद्धात्मा	२१८	वज्रदण्डान् शरानेष	६०
रोमेति परिनिर्मुक्ता	१७६	लब्धसंज्ञो जिघांसुः स्वं	७१	वज्रदण्डैः शरैर्वृष्टिं	२६४
रौद्रार्त्तध्यानसक्तस्य	२६६	लब्धां परगृहे भिक्षां	१७७	वज्रदण्डैः शरैस्तस्य	५९
[ल]		लब्धानेकमहालम्बि-	४०४	वज्रप्रभवमेवौघ-	६८
लक्ष्मणालङ्कृती वाच्यं	४२५	लब्धा बोधिमनुत्तमां	८७	वज्रमालिनमायातं	३८४
लक्ष्मणं केचिदैक्षन्त	२७३	लभ्यं दुःखेन मानुष्यं	१२६	वज्रर्षभवपुर्वदा	३७६

वज्रसारतनौ तस्मिन्	३६१	वर्षासु मेघमुक्ताभि-	३१०	विकषायसितध्यान-	३१३
वज्रसारमिदं नूनं	७३	वर्षायांसोऽतिमात्रं ये	२७०	विकासिकाशसङ्घात-	३१६
वज्रस्तम्भसमानस्य	१०५	वल्लिपुण्यादिकं दृष्टं	२०५	विकासिमालतीमाला-	२७६
वज्रालयमिवेशानः	४०	वर्गिता च्वेडितोद्भुष्ट-	२८२	विकीर्णां ता पुरस्तस्य	२८
वज्रावर्तं समुद्धृत्य	२६३	ववल्लुः परमं दृष्टाः	५५	विकृत्य सुमहारोगां	१६६
वज्रावर्तेन पद्माभौ	६५	वसन्तकैसरी प्राप्ते	१६२	विक्रियाक्रीडनं कृत्वा	३८६
वज्रोपरमेषु कुड्येषु	२८७	वसन्तडमरा नाम	१४५	विग्रहे कुर्वतो यत्नं	४
वयिकृत्सागरदत्ताख्य-	२६६	वसन्तसमये रम्ये	२१४	विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य	२००
वर्तसेन्दीवराघातात्	७३	वसन्तोऽथ परिप्रात-	१६१	विघ्नानां नाशनं दानं-	१६७
वत्समर्द्धासने कृत्वा	१६०	वसुदत्तोऽभवद्यश्च	३११	विचित्रकुसुमा वृक्षा	१६२
वद कल्याणि कथ्यं चेद्	२१७	वसुपर्वतकश्रुत्या	१४०	विचित्रजलदाकाराः	११६
वदन्त्यामेवमेतस्यां	५०	वस्तुतो बलदेवस्य-	६६	विचित्रभक्ष्यसम्पूर्ण-	३६८
वदन्त्यो मधुरं काश्चिद्	४०७	वहन् खेदं च शोकं च	१६८	विचित्रमणिनिर्माण-	१२५
वदान्यं त्रिजगत्ख्यात-	७	वहन्तो सम्मदं तुङ्गं	१८१	विचित्रवस्त्ररत्नाद्या	२४६
वधताडनत्रन्धाङ्क-	२९५	वहन् संवेगमुत्तुङ्गं	१५०	विचित्रसङ्क्रधादत्त-	३५२
वधाय चोद्यतं तस्य	४११	वाग्बली यस्य यत्किञ्चित्	२२७	विचित्रस्यास्य लोकस्य	२०४
वधघातकयोरेवं	३१४	वाचयति शृणोति जन-	४२१	विचित्रा भक्तयो न्यस्ता	१६३
वनस्पतिप्रथिव्याद्याः	२८६	वापीनिर्जितत्रीणाभिः	३५३	विचेष्टितमिदं ज्ञात्वा	३००
वनेषु नन्दनाद्येषु	६८	वातूलप्रेरितं छत्रं	४०	विचेष्टितैः सुमिश्रोक्तैः	४०६
वन्दिताः पूजिता वा स्युः	१७८	वार्ति व्यस्त्रकृतं दृष्ट्वा	५८	विजयादिमहानाग-	१४७
वन्दीशृङ्गं समानीता	१११	वातिरसनजटिभ्यां मे	२३०	विजयाद्ददन्निणे स्थाने	१५७
वन्द्यानां त्रिदशैन्द्र-	११	वानरध्वजिनीचन्द्रं	३८३	विजयाद्दोतरे वास्ये	२७७
वन्द्येनानन्तवीर्येण	६७	वानराङ्कस्फुरज्ज्योति-	३५६	विजयोऽथ त्रिपृष्ठश्च	४६
वपुः कषणमानीय-	९८	वाप्यः काञ्चनसोपाना	११७	विजयोऽथ सुराजिश्च	१६८
वपुर्गौरोचनापङ्क-	२३५	वायुना वातचरयडेन	६	विजयी वैजयन्तश्च	२६१
वयं वेत्रासनेनैव	६	वारयन्ती वधं तस्य	७१	विजहृहीहि विभोऽत्यन्तं	४४
वरं प्रियजने त्यक्ते	२२१	वाराणस्यां सुपार्श्वं च	२२०	विजिततरुणार्कतेज-	४२१
वरं मरुणमावाभ्यां	२५४	वार्त्तयमेव कैकट्या	११३	विजित्य तेजसा भानुं	१३६
वरं विमानमारूढः	३५३	वाल्लिखिल्यपुरं भद्रे	११८	विजित्य विशिखाचार्यं	१७३
वरं हि मरणं श्लाघ्यं	२७६	वाष्पगद्गदया वाचा	२५२	विज्ञातजातिसम्बन्धौ	२६४
वरदर्पणलम्बूष-	२२५	वाष्पविप्लुतनेत्रायाः	१०५	विहातुं यदि ते वाञ्छां	२१६
वरसीमन्तिनीवृन्दै-	२६८	वाष्पविप्लुतनेत्रास्ते	३७८	विशप्यं श्रूयतां नाथ	१६८
वराङ्कनापरिक्रीडा-	७२	वाष्पेण पिहितं वक्त्रं	३७३	विशाय ते हि जीवन्तं	३२६
वराङ्कनासमाक्रीणां	१५३	वासवेश्मनि सुसाया	२३४	विशायमानपुरुषैः	१२०
वराहभवयुक्तेन	३८०	विशस्य देवदेवस्य	६	विट्कुम्भद्वितयं नोत्वा	१२७
वर्तते सङ्कथा यावत्	९६	विकचाक्षैर्मुखैः स्त्रीणां	८८	वितथागमकुद्वीपे	३४८
वर्द्धमानौ च तौ कान्तौ	२३६	विकटा हाटकावद-	२३५	वितान्धितः कृतान्तः सः	१६४
वर्द्धस्य जय नन्देति	४०२	विकर्म कर्तुमिच्छन्ता-	३३५	वितानतां परिप्राप्ता	३८४
वर्षाभूर्त्वं पुनः प्राप्तः	१४०	विकर्मणा स्मृतेरेव	११४	वित्तस्य जातस्य फलं	११

वित्तस्याल्पतयावशां	३००	विधे किं कृतमस्माभि-	७३	विमानस्यापि मुक्तस्य	२१२
वित्रस्तहरिणीनेत्रा	२६०	विध्वंस्य शब्दमात्रेण	१६३	विमानामेऽन्यदा सुप्ता	१९१
विदधस्स्वफलत्वं न-	१५६	विनतं कुरु मूर्धानं	२६८	विमाने यत्र सम्भूतो	३८५
विदित्वैश्वर्यमानाभ्यं	३४०	विनयेन समासाद्य	६१	विमानैः सन्द्नेयुग्मै-	२७८
विदुषामज्ञकानां या	१५६	विनयो नियमः शीलं	२६५	विमुक्तगर्वसम्भासः	३१६
विदेहमध्यदेशस्थ-	९३	विनश्चरसुखासक्ताः	३५७	विमुक्तरतिकन्दर्प-	३१०
विदेहायास्तयोर्गोभै	३१२	विनिपात्य क्षिताविषां	२८८	विमुक्तिवनिताऽऽश्लेष-	२९३
विदेहे कर्मणो भूमि-	२६०	विनिहृत्य कषायरिपून्	४२१	विमुक्तो व्यवसायेन	३५१
विद्ययाऽथ महर्द्धिस्थो	३२	विनीतां यां समुद्दिश्य	१६६	विमुच्य सर्वं भव-	३२७
विद्यां विचिन्तयन्नेष	२६	विनोदस्याङ्गना तस्य	१४१	विमुञ्चतु स्वानं तेषु	६५
विद्याकेसरियुक्तं च	५८	विनोदो दधितायुक्तो	१४१	विमोक्षं यदि नामास्मात्	७८
विद्याधरजनाधीशै-	१३३	विन्ध्यकैलासवल्गोजां	३६५	वियोगः सुचिरेणापि	३१८
विद्याधरनरेन्द्राणां	३६२	विन्ध्यहिमनगोत्तुङ्ग-	१३८	वियोगनिम्नवाद्युःख-	४२
विद्याधरमहत्त्वेन	३५३	विन्ध्यारण्यमहास्थरुयां	१०२	वियोजितं भवेऽन्वयिन्	२१३
विद्याधरमहाकान्त-	३५०	विपरीतमिदं जातु	३७६	विरचितकरपुटकमलो	२४८
विद्याधरमहीपालाः	३२१	विपुलं निपुणं शुद्धं	२८६	विरसो नन्दनो नन्द-	१५५
विद्याधरवरस्त्रीभिः	२८३	विप्रयोगाः समुष्कपटा	२२२	विरहाग्निप्रदीप्तानि	७३
विद्याधरैः कृतं देवैः	२४७	विप्रयोगोभिसङ्कीर्णो	४०६	विरहितविद्याविभवौ	८६
विद्याधर्मः समानन्दं	२६७	विप्रलापं परित्यज्य	२५७	विरहोदन्वतः कूलं	२७४
विद्यापराक्रमोश्रेष्ठा	१४७	विप्रलब्धस्तथाप्येतै-	५६	विराहितभुञ्जस्तन्म-	१५६
विद्याबलसमृद्धेन	२७५	विबुद्धा चाकरोत्तिन्दा-	१५१	विरामरहितं राम-	१००
विद्याभृतां परित्यज्य	३६४	विबुधेस्वपि राजन्तं	२८५	विरुद्धपूर्वोत्तरमाकुलं	२०१
विद्याभूमिथुनान्युच्चै-	१८	विभिन्नकवचं हृष्टा	५८	विरुद्धा अपि हंसस्य	३८६
विद्याविनिर्मितैर्दिश्वै-	५२	विभिन्नैः विशिखैः क्रूरैः	२४४	विरोधः क्रियते स्वामिन्	४३
विद्यासाधनसंयुक्त-	१४	विभीषण रणे भीमे	७४	विरोधमतिरूढोऽपि	३१३
विद्युदाकालिकं होत-	३४५	विभीषणः समं पुत्रैः	३७८	विरोधिताशया दूरं	३८३
विद्युद्गत्यादिनामानः	३६२	विभीषणोऽथ सुप्रोत्रो	३६४	विलक्ष इव चोत्सर्पिं	४५
विद्युद्गर्मरक्षा सत्या	२१७	विभूतिरत्नमीदृक्षं	३६४	विललाप च हा भ्रातः	३७४
विधवा दुःखिनी तस्मिन्	१०५	विभूतिर्या तदा तेषां	६७	विलसत्केतुमालाढ्यं	३६१
विधाय करयित्वा च	२८७	विभूत्या परया युक्त्या	१०	विलसद्भवजमालाढ्यं	२२६
विधाय कृतसंस्कारं	६६	विभूत्या परया युक्ता	२५६	विलसद्भनमालाभि-	३५४
विधाय चाञ्जलिं भक्त्या	२८५	विभोः पश्यत मोहस्य	३८०	विलसद्विद्युद्युतो	३५२
विधाय जयशब्दं च	२७१	विभ्रंशिमनसोऽन्यस्य	२६६	विलसद्विधिप्रप्राणि-	११८
विधाय दन्तयोरग्रे	१३४	विमलप्रभनामाऽभूत्	१८६	विलापं कुरुते देव	११३
विधाय वदनाम्भोजं	७२	विमानशतमारूढा	३४५	विलासं सेवते सारं	१४७
विधाय सुकृतज्ञेन	७३	विमानशिखरात्तौ तं	११६	विलासिनि वदाध्वान-	२६
विधायैवंविधां पापीं	२७६	विमानशिखरारूढां	२६०	विलासैः परमस्त्रीणा-	१८
विधिक्रमेण पूर्वैण	५३	विमानशिखरारूढौ	४०५	विलीनमोहनियम-	१४८
विधृत्य स्पन्दनं लग्नः	२०६	विमानसदृशैर्गै-	११९	विलेपनानि चारुणि	६२

विलोक्य वैभुषीमृद्धि-	३६०	विहसन्नय तामूचे	४८	वैदेहीदेहविन्यस्त-	१०१
विलोक्या नीयमानांस्तान्	७८	विहस्य कामुकं यावत्	२६०	वैदेह्याः पश्य माहात्म्यं	१०३
विलोक्यासीनमासन्न-	३६२	विहस्योवाच चन्द्राभा	३३६	वैदेह्यागमनं श्रुत्वा	२२५
विलोलनयनां वेण्यां	२६	विहिताहर्नमहापूजा	१३०	वैराग्यदीपशिखया	३६२
विवाहमङ्गलं द्रष्टु-	२४१	विह्वलाऽन्वितयत् काचित्	१८	वैराग्यानिलयुक्तेन	१०१
विविशुश्च कुमारेणाः	२४	विह्वला मातरश्चास्य	१३१	व्यक्त चेतनतां प्राप्य	१५०
विशल्यादिमहादेवी-	३४३	बोद्धते सा दिशः सर्वाः	१०९	व्यक्ततैजोबलावग्नि-	२३७
विशल्यासुन्दरीयुक्त-	१००	वीक्ष्य कम्पितदेहास्ता	१९८	व्यङ्गतेनान्तं स्वरान्तं वा	४२५
विशल्यासुन्दरीसुतुः	१८६	वीक्ष्य निर्गतजीवं तं	३६९	व्यतिपस्य महाद्योगैः-	१६३
विशालनयनस्तत्र	५३	वीक्ष्य पृच्छति पद्माभः	१९२	व्यपगतभवहेतुं तं	४२०
विशालनयना नारी-	१०	वीणामृदङ्गवंशादि-	३५३	व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते	३६६
विशालातोथशालाभिः	१६४	वीणावेणुमृदङ्गादि-	३४६	व्यसनार्णवमगनाया	११३
विशिष्टेनान्नपानेन	२३६	वीणावेणुमृदङ्गादि	३७६	व्याधिमृत्युर्मिकल्लोलो	३४८
विशुद्धकुलजातस्य	२२१	वीणावेणुमृदङ्गैर्या	३२०	व्याधिरुपैति प्रशमं	४२२
विशुद्धकुलसम्भूताः	१५५	वीतरागैः समस्तत्रै-	२६६	व्यापाद्य पितरं पाप	३०६
विशुद्धगोत्रचारित्रः	२५१	वीध्रस्फटिकसंशुद्ध-	३६७	व्युत्सुजाभ्येष हातव्य-	१६६
विश्वाप्रियङ्गुनामानौ	३२७	वीरपुत्रानुभावेन	१२२	व्युत्सुष्टाङ्गो महाधीर-	१५३
विषमिश्रान्नवक्त्यकरवा	६८	वीरसेननृपः सोऽयं	३३६	व्योम्नि वैचाधरो लोको	२७६
विषयः स्वर्गतुल्योऽपि	६८	वीरसेनेन लेखश्च	३३८	ब्रजत त्वरिता जनो	४२४
विषयामिषलुब्धात्मा	३६६	वीरदशवेदलोहाना-	१०३	ब्रजत्यहानि पक्षाश्च	१८८
विषयामिषलुब्धानां	४१३	वीरोद्भदकुमारोऽय-	८६	ब्रज वा किं तवैतेन	१६६
विषयामिषसंस्तता	३३७	वृतः कुलोद्गतैर्वीरैः	३६	ब्रज स्वास्थ्यं रजः शुद्धं	१८४
विषयामिषसक्तात्मन्	४५	वृतस्ताभिरसौ मेने	१४३	व्रतगुप्तिसमासाद्य	४०४
विषयारिं परित्यज्य	३६७	वृतस्तैः सुमहासैन्यै-	१८४	व्रतगुप्तिसमित्युच्चैः	३६३
विषया विषवद् देवि	१४५	वृत्ते यथायथं तत्र	७८	व्रतमवाप्नुवज्जनं	१२७
विषयैः मुचिरं भुक्तै-	४७	वृत्तौ यत्र सुकन्याभ्यां	३४४		
विषयैरवि तृप्तात्मा	४०५	वृषनागप्लवङ्गादि-	२५७	[श]	
विषाग्निशस्त्रसदृशं	२०६	वृषभः खेचराणां	२६६	शकुनाग्निमुखास्तस्य	१४४
विषाणा विषमं नाथ	२७५	वृषभध्वजनामासौ	३०२	शकुनाग्निमुखे नामा	१४५
विषादं मा गमः मात-	२५४	वृषभो धरणश्चन्द्रः	१८६	शक्नोमि पृथिवीमेतां	२६७
विषादं मुञ्च लक्ष्मीश	३७५	वृषाणवैद्यकाश्मरा	२४६	शक्यं करोत्यशक्ये तु	२६५
विषादं विस्मयं हर्षं	२५७	वेगिभिः पुरुषैः कैश्चि-	३६८	शक्राविव विनिश्चिन्त्य	२५२
विष्वादिनां विधि कृत्वा	३७८	वेणुवीणामृदङ्गादि-	२४	शङ्का काङ्क्षा चिकित्सा	२६४
विषादी विस्मयी हर्षा	२७२	वेणुवीणामृदङ्गादि-	२३२	शङ्कादिमलनिर्मुक्तं	२१८
विस्मृते तत्र विघ्नास्त्रे	६०	वेतालैः करिभिः सिंहैः	२७७	शङ्कित्वात्मा च संवृत्त-	४१४
विस्मयं परमं प्राप्ता	१५०	वेदाभिमाननिर्दग्धा-	३३६	शङ्कैः सलिलनाथानां	२३८
विस्मयस्यापिचित्तेन	२२६	वेपमाना दिशि प्राच्या	३६	शचीव सङ्गता शक्रं	६१
विस्मयातित्यसम्पर्क-	११६	वैङ्ग्यारसहस्रेण	६५	शतधनी शक्ति चक्रासि-	४१४
विहरन्तोऽप्यदा प्राप्ता	१७६	वैदेहस्य समायोगं	१११	शतारोऽथ सहस्रारः	२६१
				शतैरर्द्धतृतीयैर्वा-	२४३

शत्रुघ्नं मथुरां ज्ञात्वा	१६३	शाखामृगबलं भूपः	५८	शौकराज इव प्रीत्या	३५६
शत्रुघ्नं कुमारेऽसौ	१७०	शामल्यां देवदेवस्य	३२६	शोकं विरह मा रोदी-	२२३
शत्रुघ्नगिरिणा खड्गे	१६४	शान्तं यक्षाधिपं ज्ञात्वा	२४	शोकविह्वलितस्यास्य	३६६
शत्रुघ्नरक्षितं स्थानं	१६३	शान्तैरभिमुखः स्थित्वा	१४	शोकाकुलं मुखं विष्णो-	३६६
शत्रुघ्नं राज्यं कुरु	३६१	शारीरं मानसं दुःखं	३४७	शोकाकुलितचेतस्को	१५५
शत्रुघ्नवीरोऽपि	१६७	शाला चन्द्रमणी रम्या	१२३	शोणं शोणितधाराभिः	२६३
शत्रुघ्नाप्रेसयाः भूरा	२०२	शिखयन्तं नृपं देवी	१४६	शौर्यमानसमेताभिः	२५६
शत्रुघ्नाद्या महीपाला	२६७	शिखराय्यगराजस्य	३४	श्मशानसदृशाः प्रामाः	१७६
शत्रुघ्नोऽपि तदाऽऽगत्य	१६७	शिखरात् पुष्करस्याथ	१६१	श्यामतासमवष्टम्भः	२३४
शत्रुघ्नोऽपि महाशत्रु-	२८६	शिखान्तिकगतप्राणो	११३	श्रमसौख्यमसम्प्राप्तौ	२३६
शपथादिव दुर्वादे	२७२	शिरःक्रीतयशोरत्नं	२६२	श्रवणे देवसद्भावं	३७५
शब्दादिप्रभवं सौख्यं	२६२	शिरःसहस्रसंपन्नं	६४	श्रामयं विमलं कृत्वा	३२६
शम्भुके प्रशमं प्राप्ते	४११	शिरोप्राहसहस्रोर्ध्व-	६४	श्रामप्यसङ्गतस्थापि	३१४
शम्भुपूर्वं ततः शत्रु-	२१३	शिलातलस्थितो जातु	४०४	श्रावकान्वयसम्भूति-	३५६
शयनासनताम्बूल-	२५५	शिलाताडितमूर्धानः	२५	श्रावस्त्यां शम्भवं शुभ्रं	२२०
शयनासनताम्बूल-	२७१	शिलामुत्पाटलशीलांशुं	२०४	श्राविकायाः सुशीलायाः	२७८
शय्यां व्यरचयत् क्षिप्रं	३७५	शिवमार्गमहाविघ्न-	२९४	श्रावितं प्रतिहारीभिः	१६६
शरच्चन्द्रप्रभागौराः	३४६	शिविकाशिखरैः केचित्	२५९	श्रितमङ्गलसङ्घौ च	२५४
शरच्चन्द्रसितच्छाया	१०	शिशुमारस्तयोरुत्का-	१४०	श्रियेव स तथा साकं	३३८
शरदादित्यसङ्काशो	२२५	शीलतः स्वर्गागामिन्या	१०३	श्रीकान्तः क्रमयोगेन	३११
शरदिन्दुसमच्छायो	१६१	शीलतानिलयीभूतो	३६४	श्रीकान्त इति विख्यातो	३००
शरनिर्भरसङ्काशो	६०	शुक्लध्यानप्रमृत्तस्य	८१	श्रीकान्तभवनोद्याने	३००
शरभः सिंहसङ्घात-	१५६	शुचिश्रामोदसर्वाङ्गः-	४०२	श्रीगृहं भास्कराभं च	१८८
शरविज्ञाननिर्धूत-	१०५	शुद्धभिद्वैषणाकृताः	१७७	श्रीदत्तायां च सङ्गहे	३०२
शरासनकृतच्छायं	२५८	शुद्धलेश्यात्रिश्लेन	४१५	श्रीदामनामा रतितुल्य-	१८६
शरीरे मर्मसङ्घाते	१७८	शुद्धाभोजसमं गोत्रं	३४	श्रीधरस्या मुनीन्द्रस्य	१४३
शर्करां कर्करां कर्का-	३६८	शुभाशुभा च जन्तूनां	५६	श्रीधरवर्ते मरुज्जस्य	१५७
शर्कराधरणीयातै-	३८१	शुष्कद्रुमसमारूढो	२०७	श्रीभूतिः स्वर्गमारुह्य	३१३
शर्करावालुकापङ्क-	२८७	शुष्कपुष्पद्रवोत्ताम्य-	२२८	श्रीभूतिर्वेदविद्विप्रः	३१३
शशाङ्कनगरे राज-	१४५	शुष्केन्धनमहाकूटे-	२०३	श्रीमत्यो भवतो मीता	३६२
शशाङ्कमुखसंज्ञस्य	१४५	शुश्रुवुश्च मुनेर्वाक्यं	१३७	श्रीमत्यो हरिणीनेत्रा	३५८
शशाङ्कवक्त्रया चारु	३४३	शुष्यन्ति सरितो यस्मिन्	३५२	श्रीमज्जनकराजस्य	२८२
शशाङ्कवदनौ राजन्	२२	शरं विहाय जीवन्तं	५६	श्रीमानयं परिप्राप्तौ	२१८
शशाङ्कविमलं गोत्र-	२०३	शृणु देवास्ति पूर्वस्थां	१६२	श्रीमानुषभदेवोऽसौ	१३८
शस्त्रशास्त्रकृतश्रान्ति-	२१८	शृणु संतोषतो वक्ष्ये	१०४	श्रीमाला मानवी लक्ष्मी-	७१
शस्त्रसंस्तवनश्याम-	२३८	शृणु सीतेन्द्र निर्जित्य	४१८	श्रीवत्सभूषितोरस्को	३६४
शस्त्रान्धकारपिहिता	२५५	शृश्रवताऽपि त्वया तत्तत्	२११	श्रीविराधितसुग्रीवा-	२६७
शस्त्रान्धकारमध्यस्थो	२०६	शेषभूतव्यपोहेन	८०	श्रीशैलेन्दुमरीचिभ्यां	५७
शाखामृगध्वजाधीशः	६	शेषाः सिंहवराहेभ-	१७	श्रुति पाञ्चनमस्कारि	३०२

श्रुत्वा तं निनदं हृष्टा	५४	संख्येयानि सहस्राणि	२६१	सखि पश्यैष रामोऽसौ	८८
श्रुत्वा तद्दुदितस्वानं	२१५	संग्रामे वेदितुं वार्तां	२५०	सखे सख्यं ममाप्येष	३८५
श्रुत्वा तद्वचनं क्रुद्धाः	११२	संज्ञा प्राप्य च कृच्छ्रेण	२१०	सगरोऽमिमौ तौ ये	२६७
श्रुत्वा तद्वचनं तासां	३१	संभ्रमं परमं विभ्रत्	६६	सङ्कारकूटकस्येव	२१२
श्रुत्वा तद्वचनं तेषां	५४	संयतान् तत्र पश्यन्वी	१४२	सङ्क्रीडितानि रम्याणि	१२०
श्रुत्वा तमथ वृत्तान्तं	२६६	संयतो वक्ति कः कोपः	३३६	सङ्कलेशवह्नितप्तो	२६७
श्रुत्वा तस्य इवं दत्त्वा	११३	संयमं परमं कृत्वा	१७४	सङ्गतेनामुना किं त्वं	६५
श्रुत्वा तां घोषणां सर्व-	११६	संयुगे सर्वगुप्तस्य	३२६	सङ्गमे सङ्गमे रम्ये	१०
श्रुत्वा तां सुतरां	२७७	संयोगा विप्रयोगाश्च	२२२	सङ्गश्चतुर्विधः सर्व	३३५
श्रुत्वाऽन्तश्चरवक्त्रेभ्य-	३७१	संलक्ष्यन्तां महानागा	२५२	सङ्गद्विसङ्गतैर्यानि-	११६
श्रुत्वा परमं धर्मं	१७५	संवत्सरसहस्रं च	१३८	सचक्रवर्तिनो मर्त्याः	२६२
श्रुत्वा बलदेवस्य	३६६	संवत्सरसहस्राणि	३०४	स च न ज्ञायते यस्य	२४२
श्रुत्वा भवमिति द्विविधं	८५	संवादजनितानन्दाः	१००	स च प्रामरकः प्राप्तो-	३३२
श्रुत्वाऽस्य पार्श्वे विनयेन	८४	संवेजनीं च संसार-	३०५	स चापि जानकीसूनुः	२६१
श्रुत्वा स्वसुर्यथा वृत्तं	२५७	संशये वर्तमानस्य	४१५	सचिवापसदैर्भूयः	५
श्रुत्वेदं नारकं दुःखं	४११	संशक्तभूरजोवस्त्र-	३२८	सचिवैरावृतो धीरैः	३२
श्रुत्वेनां प्रतिबोधदान	७६	संसारप्रकृतिप्रबोधन-	८७	सच्छत्रानपि निश्छायान्	२३८
श्रुत्वेहितं नागपते-	१३५	संसारप्रभवो मोहो	१६०	स जगाद न जानामि	२५३
श्रेष्ठः सर्वप्रकारेण	२००	संसारभावसंविग्नः	१४६	सजन्ती पादयोर्भूयः	२६
श्रेष्ठोति नन्दीति जितेन्द्र-	८४	संसारभीसरत्यन्तं	१२६	सञ्जय स्नेहनिघ्नं	३४६
श्लथप्रभातकर्तव्याः	३७६	संसारमण्डलापन्नं	३७६	सञ्जातोद्वेगभारश्च	१३१
श्लार्थं जलधिगम्भीरं	४३	संसारसागरं घोरं	१२८	त तं गन्धं समाधाय	१०६
श्लार्थो महानुभावोऽयं	६६	संसारसागरे घोरे	३३३	स तं प्रत्यहमाचार्यं	१०६
श्वःसङ्ग्रामकृतौ साद्धं	३५	संसारसूदनः सुरि-	३६६	स तं रथं समाह्वय	५८
श्वसन्ती प्रस्खलन्ती च	४१	संसारस्य स्वभावोऽयं	३३२	सतडित्पावृडम्भोद-	५८
श्वसर्पमनुजादीनां	२८७	संसारस्वरमं भीरु-	१४३	सततं लालितैः केचित्	५६
श्वेताञ्जसुकुमाराभि-	३६४	संसाराद्दुःखनिर्घोरा-	२१०	सततं साधुचेष्टस्य	२१३
श्वो गन्तास्म इति प्राप्ता	१६	संसारानित्यताभाव-	९५	सततं सुखसेवितोऽप्यसौ	४२४
[ष]		संसारार्णवसंसेवी-	१७१	स तयोः सकलं वृत्तं	४१२
षट्कर्मविधिसम्पन्नौ	३३०	संसारिणस्तु तान्येव	२६२	स तादृग् बलवानासीद्	२६६
षट्पञ्चाशत्सहस्रैस्तु	८१	संसारे दुर्लभं प्राप्य	३१२	सती सीता सती सीता	२७६
षड्जीवकाय रत्नस्थो	३६४	संसारे सारगन्धोऽपि	७८	स तु दाशरथी रामः	१६६
षड्वारान् महिषो भूत्वा	१७१	संस्तः परमार्थेन	१६६	सत्पल्लवमहाशालै-	२०८
षण्णां जीवनिक्कायानां	२६५	स उवाच तवादेशान्-	५	सत्पुत्रप्रेससक्तनेन	१४२
षष्टिवर्षसहस्राणि	३३०	सकङ्कटशिरस्त्राणाः	२५६	स त्वं चक्राङ्गाज्यस्य	९२
षष्ठकालक्षये सर्वं	३७२	सकलं पोटनं नूनं	१०७	स त्वं तस्य जिनेन्द्रस्य	४१६
षष्ठाष्टमार्द्धमासादि-	३१०	सकलस्यास्य राज्यस्य	१३५	स त्वं यः पर्वतस्थाग्रे	१४६
[स]		सकाननवनामेतां	२८३	स त्वं सत्त्वयुतः कान्ति-	७२
संक्रुद्धस्य मृधे तस्य	२२	सकाशे पृथिवीमर्त्याः	१५१	स त्वथास्माद् दिनादहि	७५

स त्वया भ्राम्यता देशे	१४५	समः शत्रौ च मित्रे च	१५३	स म्पतीन्द्रिर्विमानौद्यैः	४१४
सदा जनपदैः स्फीतैः	६	समन्तं शपथं तेषां	२७०	सम्पूर्णचन्द्रसङ्काशं	१२०
सदा नरेन्द्रकामार्थी	१२८	समन्तान्मृपलोकेन	२२७	सम्पूर्णचन्द्रसङ्काशः	८८
सदाऽवलोकमानोऽगाद्	३६	समये तु महावीर्यो	४६	सम्पूर्णं सप्तभिश्चाब्दै-	४१६
सद्दानेन हरिश्चेत्रं	४१८	समयो घोषमाण्योऽसौ	१६	सम्प्रदायेन यः स्वर्गः	१३५
सद्धर्मोत्सवसन्तान-	३२८	समस्तं भूतले लोकं	२७०	सम्प्रधार्य पुनः प्राप्ताः	१५६
सद्भावमन्त्रणं श्रुत्वा	१४१	समस्तविभवोपेता	३४२	सम्प्रधार्य समस्तैस्तैः	१६
सद्भृत्य परिवारेण	२१४	समस्तशालसत्कार-	१३४	सम्प्रयुज्य समीरास्त्र-	६०
सद्विद्याधरकन्याभिः	४०७	समस्तशवापदत्रासं	१४७	सम्प्राप्तप्रसरास्तस्मात्	१३०
सद्वृत्तात्थन्तनिभृतां	३१९	समस्तसस्यसम्पद्भि-	२२५	सम्प्राप्तवलदेवत्वं	९९
सन्तकुमारमाकलय	३१३	समस्तां रजनीं चन्द्रो	३६	सम्प्राप्तोपालम्भं	२३
सनातननिरात्राध-	३९३	समादिष्टोऽसि वैदेह्या	२३२	सम्प्रोत्साहनशीलेन	२५२
सन्तं सन्त्यज्य ये भोगं	३६४	समाधिबहुलः सिंह-	१७	सम्भाव्य सम्भवं शत्रु-	१
सन्तताभिपतन्तीभि-	२३२	समाध्यमृतपाथेयं	३०३	सम्भाषिता सुगम्भीरा	२७१
सन्त्यक्ता जानकी येन	२५०	स मानुष्यं समासाद्य	४१६	सम्भ्रमवृत्तितथूल-	१६
सन्त्यस्य दुस्त्यजं स्नेहं	२०६	समासिविरसा भोगा	१२६	सम्भ्रणे च सम्भूज्य	३०३
सन्त्यन्याः शीलवत्यश्च	१०३	समारब्धसुखक्रीडं	२१४	सम्भ्रान्तः शरणं यच्छन्	१०५
सन्त्रस्त हरिणीनेत्रा	२०	समालिङ्गनमात्रेण	७३	सम्भ्रान्ता केकया चास्य	१५०
सन्दिष्टमिति जानक्या	२२८	समा शतं कुमारस्त्रे	३६५	सम्भ्रान्ताश्वरथाकृदा	१८६
सन्देशच्छ्रावको गत्वा	१०६	समाश्वारय विषादात्	३६१	सम्भ्रान्तो लक्ष्मणस्तावत्	६१
सन्धावतोऽस्य संसारे	३०५	समाहितमतिः प्रीतिं	६३	सम्भेदेनान्यथा सुता	२७७
सन्ध्यात्रयमबन्धं	२३६	समीक्ष्य तनयं देवी	१६०	सम्भूर्त्तुं समस्तानां	२८६
सन्ध्यात्रलिबिदष्टौष्ट	४८	समीक्ष्य यौवनं तस्या	१८३	सम्भेदगिरिजैनेन्द्र-	२०८
सन्ध्याबुदबुदफेनोर्मि-	३०६	समीपीभूय लङ्काया-	११२	सम्यक्तपोभिः प्राक्	३४८
सन्मूढा परदारेषु	३३६	समीपी तावितौ दृष्ट्वा	११६	सम्यग्दर्शनमीहत्वं	२१८
स पूर्वमेवप्रतिबोध-	८५	समुचितविभवयुतानां	१३	सम्यग्दर्शनमुत्तुङ्गं	२६६
ससितां साधिकाः कोट्यः	१२४	समुच्छ्रितसितच्छत्र-	२०५	सम्यग्दर्शनरत्नं यः	२१८
सप्तभङ्गीवचोमार्गः	२८९	समुच्छ्रितसितच्छत्र-	२८४	सम्यग्दर्शनरत्नस्थ	३१५
सप्तमं तलमारूढा	१०६	समुत्कण्ठापराधीनैः	२१३	सम्यग्दर्शनरत्नेन	२२८
सप्तर्षिप्रतिमा दिव्यु	१८१	समुत्तमं समुत्तमं	६४	सम्यग्दर्शनशुद्धिकारण-	४२३
सप्तर्षिप्रतिमाश्चापि	१८१	समुत्तम महात्रोधिः	३६३	सम्यग्दर्शनसंयुक्तः	१५३
सप्तविंशसहस्राणि	३६५	समुत्सारितर्वाणाद्या	२३५	सम्यग्दर्शनसम्पन्नः	५१
सप्ताष्टसु नृदेवत्व-	२६६	समुद्रकोडपर्यस्तो	२०६	सम्यग्दृष्टिः पिता-	३१२
सफलोद्यानयात्राऽथो	४०१	समुपाह्वयतामच्छा	३८२	सम्यग्भावनया युक्त-	३०७
सवाहुमस्तकच्छत्रा	६४	समुप्यापि परं प्रीतै-	३६०	सयोषित्तनयो दम्भो	३२५
स बोध्यमानोऽप्यनिवृत्त-	८४	समूलोन्मूलितोत्तुङ्ग-	२०८	स रथान्तरमारुह्य	५८
सभाः प्रपाश्च मञ्जाश्च	१२	समृद्ध्या परया युक्तः	१७८	सरसोऽस्य तटे रभ्ये	७३
समं त्रिकालभेदेपु	२६३	समेतः सर्वसैन्येन	२५७	सरांसि पद्मरम्याणि	१२
समं शोकविषादाभ्या-	३७२	समेतश्चाहरत्नेन	३८६	सरांसि सहसा शोषं	३६

सरिता राजहंसौधैः	२५६	सशरीरेण लोकेण	१२५	साधौ श्रीतिलकामिख्ये	३२७
सरिता विशद्वीपा	३५४	स सिद्धार्थमहास्त्रेण	६३	सान्त्वयित्वाऽतिक्लेश्चरेण	२५७
सरोषमुक्तनिस्वानो	१३१	सहकारसमासक्ता	२०८	सान्त्वयमाना ततस्तेन	२२३
सर्वं ग्रामं दहामीति	१०७	सहसा ज्ञोममापन्नः	२९६	सा भास्करप्रतीकाशा	२२१
सर्वगुप्तो महासैन्य-	३२५	सहसा चकितत्रस्ता	१८	साभिज्ञानानसौ लेखा-	१००
सर्वज्ञशासनोकेन	२९४	सहस्रकिरणस्त्रेण	६०	सामानिकं कृतान्तोऽगाद्	३८५
सर्वज्ञोक्त्यङ्कुरो नैव	१०४	सहस्रप्रितयं चाह	६	सा मे विफलता यायाः	२७५
सर्वथा यावदेवस्मिन्	१६६	सहस्रपञ्चकेयन्ता	२५८	साम्राज्यादपि पञ्चाभः	२१०
सर्वथैवं भवत्वेत-	११५	सहस्रमधिकं राशं	१५०	सायाहस्रसमये तावद्	४८
सर्वत्र भरतक्षेत्रे	६	सहस्रस्तम्भसम्पन्ना	११६	सारं सर्वकथानां	१५४
सर्वद्वीचिसमुद्भूते	४०८	सहस्रान्नवने कान्ते	३४०	सावधिर्भगवानाह	३३१
सर्वप्राणिहिताचार्य-	२८०	सहस्रेणापि शास्त्राणां	३२१	सावित्री सह गायत्री	२५१
सर्वभूषणमैक्षिष्ट	२८५	सहस्रैरष्टभिः स्त्रीणां	२३२	साहं गर्भान्विता जाता	२१६
सर्वमङ्गलसङ्घातै-	३३४	सहस्रैरुत्तमाङ्गानां	६३	साऽहं जनपरीवादा-	२२१
सर्वरत्नमयं दिव्यं	२२१	सहस्रैर्दशभिः स्वस्य	५३	सिंहताद्वयमहाविद्ये	३८४
सर्वलोकगता कन्या	६	सहस्रैर्नरनाथानां	२४६	सिंहबालाश्च तन्मूर्द्ध	२५
सर्वलक्षणसम्पूर्णा	२३५	सहामीभिः खगैः पापैः	६८	सिंहव्याघ्रमहावृक्ष-	१५७
सर्वविद्याधराधीशं	३१	सहायतां निशास्वस्य	८८	सिंहव्याघ्रवराहेभ-	१७
सर्वशास्त्रप्रवीणस्य	२११	स हि जन्मजरामरण-	४२०	सिंहस्थानं मनोजं च	१८८
सर्वशास्त्रार्थसम्बोध-	७४	सहोदरौ तौ पुनरेव	८५	सिंहो किशोररूपेण	११३
सर्वाः शू्रजनन्यस्ताः	१२२	सा करेणुसमारूढा	२७२	सिंह भादिवोन्मिश्र-	१८
सर्वादरायितात्मानो	३६३	साकेतविषयः सर्वः	१२४	सिंहोदरः सुमेरुश्च	२५८
सर्वादरेण भरतं	१२६	सागरान्तां महीमेतां	३	सितचन्दनदिग्धाङ्गौ	४३
सर्वारम्भप्रवृत्ता ये	३३३	सा जगौ मुनिमुख्येन	७५	सिद्धयोगमुनिर्दृष्ट्वा	११०
सर्वारम्भविरहिता	३४८	सा तं क्रोडन्तमालोक्य	१७१	सिद्धा यत्रावतिष्ठन्ते	२६१
सर्वाश्च वनिता वाष्प-	७१	सा तं रथं समारूढा	२०७	सिद्धार्थः सिद्धसाध्यायां	१५५
सर्वेन्द्रियक्रियायुक्तां	२६	साऽस्त्यन्तसुकुमाराङ्गा	४१६	सिद्धार्थशब्दानात्तस्माद्	६३
सर्वे शरीरिणः कर्म	२४५	साधयन्ति महाविद्यां	९	सिद्धिभक्तिविनिर्मुक्ता	२६३
सर्वेषामरमदादीनां	३८८	साऽधुना क्षीणपुण्योधा	२१४	सीतां प्रति कथा केयं	४
सर्वेषु नयशास्त्रेषु	३७	साधुरूपं समालोक्य	१७८	सीता किल महाभागा	४०६
सर्वे सम्भाविताः सर्वे	६६	साधुष्ववर्णवादेन	३०९	सीताचरणराजीव-	६२
सर्वैः प्रपूजितं श्रुत्वा	३	साधुसदानवृक्षोत्थ-	३२७	सीता त्राससमुत्पन्न-	२१७
सर्वैरैर्मिथदास्माभिः	३७९	साधुसमागमसक्ताः	१८२	सीताऽपि पुत्रमाहात्म्यं	२६७
सर्वोपायैरपीन्द्रेण	४१२	साधु साध्विति देवाना-	१५०	सीताऽब्रवीदलमिदं	२५४
सलजा इव ता ऊचुः	६२	साधुस्वाध्यायनिस्वानं	३१२	सीताया अतुलं धैर्यं	१०३
स विद्वो वाकशरैस्तीक्ष्णैः	५	साधूनां सन्निधौ पूर्वं	३३	सीतालक्ष्मणयुक्तस्य	१११
सविशाल्यस्ततश्चक्री	९५	साधून् वीक्ष्य जुगुप्सन्ते	३५६	सीताशब्दमयस्तस्य	२३२
स वृत्तान्तश्चगास्थेभ्यः	१६	सावोरिवातिशान्तस्य	६	सीता शुद्धयनुरागमद्वा	२७२
सन्ध्येष्टा वज्रजङ्घोऽभूद्-	२६३	साधोस्तद्वचनं श्रुत्वा	१५०	सीदतः खान् सुगान् दृष्ट्वा	२०

सीदन्तं विकृतग्राहे	४११	सुप्रभातं जिनेन्द्राणां	३७६	सुह्याङ्गमगधैर्वङ्गैः	२४५
सीमान्तावस्थिता यत्र	२५६	सुभद्रासदृशीभद्रा	२३१	सुह्याङ्गा षड्ङ्गमगध-	२४४
सीरपाणिर्जयत्त्रेष-	१५७	सुभूषणाय पुत्राय	३६२	सूक्ष्मचादरभेदेन	२८६
सुकलाः काहला नादा	१२०	सुमनाश्चिन्तयामास	३३५	सूचीनिचितमार्गेषु	१५४
सुकान्ते पञ्चतां प्राप्ते	१०५	सुमहापङ्कनिर्मना	३०६	सूक्तिकालकृताकाङ्क्षा	२३४
सुकुमाराः प्रपद्यन्ते	२५१	सुमहाशोकसन्तप्ता	२०७	सूत्रार्थे चूर्णिता सेयं	३१४
सुकृतस्य फलेन जन्तु-	४२४	सुमार्दवाभिकमला	२०५	सूर्यकीर्तिरहं नासौ	४४
सुकृतासक्तिरेकैव	१४४	सुमित्रातनुजातस्य	२६३	सूर्यारकाः सनताश्च	२४६
सुकृतासुकृतास्वाद-	१०३	सुमित्रो धर्ममित्रायः	१५५	सूर्याविधयमुनाशब्दै-	१७२
सुकौशलमहाराज-	११०	सुमेरुमूर्तिमुत्थोप्लुं	२७१	सूर्योदयः पुरेऽत्रैव	१३६
सुखं तिष्ठत सस्वरूपो	२०६	सुमेरुशिखराकारे	३२६	सेनापते त्वया वाच्यो	२१०
सुखं तेजः परिच्छन्ते	३६४	सुमेरोः शिखरे रभ्ये	३५४	सेवते परमैश्वर्यं	३५३
सुखदुःखाटयस्तुल्याः	३०६	सुरकन्यासमाकीर्णा	३५४	सेवितः सच्चिवैः सर्वै-	३६४
सुखार्णवे निमग्नस्य	१०१	सुरप्रासादसङ्काशो	२५८	रे व्यमानो वरस्त्रीभि-	१४२
सुखिनोऽपि नराः केचिद्	१८०	सुरमन्युर्द्वितीयश्च	१७६	सैहंगारुडविद्ये तु	१
सुगन्धिजलसम्पूर्णं	४०२	सुरमानवनाथानां	३७६	सैन्यमावासितं तत्र	२५७
सुगन्धितवस्त्रमाल्यो-	३०२	सुरमानुषमध्येऽस्मिन्	२६४	सैन्याकूपारगुप्तौ तौ	३८४
सुभ्रामः पत्तनाकारो	३१२	सुरवरवनितेयं किन्तु	२१५	सैन्यार्णवसमुद्भूत-	१७
सुग्रीव पद्मगर्वेण	७	सुरसौख्यैर्महोदारै-	३६०	सोऽतिकष्टं तपः कृत्वा	१७२
सुग्रीवाद्यैस्ततो भूयैः	३८२	सुरस्त्रीनयनाम्भोज-	३०४	सोदरं पतितं दृष्ट्वा	७१
सुग्रीवोऽयं महासस्व-	१२१	सुरस्त्रीभिः समानानां	१८६	सोऽप्याकर्णसमाकृष्टैः	१६४
सुग्रीवो वायुतनयो	६२	सुराणामपि दुःस्पर्शो	२७८	सोऽभिषिक्तो भवान्नाथो	१२७
सुतप्रतीतिभराक्रान्ता	१५१	सुराणामपि सम्पूज्यं	२६४	सोऽयं कैलासकम्पस्य	१३३
सुता जनकराजस्य	२१९	सुरासुरजनाधीशै-	१०२	सोऽयं नारायणो यस्य	१८६
सुतोऽहं वज्रजङ्गाख्यः	२२३	सुरासुरविशाचाद्या	१६८	सोऽयं रत्नमयैस्तुङ्गैः	११८
सुदर्शानां स्थितां तत्र	३१५	सुरासुरस्तुतो धीरः	१४३	सोऽयमिन्द्ररथाभिखो	४१६
सुदुश्चित्तं च दुर्भाष्यं	३७१	सुरासुरैः समं नत्वा	१४१	सोऽयं सुलोचने भूसृ-	११८
सुनन्दा गेहिनी तस्य	२६६	सुरेन्द्रवनिताचक्र-	३७१	सोऽवोचदानते कल्पे	४१५
सुनिश्चितात्मना येन	१०५	सुरेन्द्रसदृशं रूपं	३७६	सोऽवोचदेव वीक्षस्व	२६३
सुन्दर्योऽन्तरसां तुल्याः	१२४	सुवर्णकुम्भसङ्काशः	८०	सोऽवोचद् देवि दूरं सा	२१०
सुपर्णेशो जगौ किं न	१६८	सुवर्णधान्यरत्नाढ्याः	१८२	सोऽवोचद् व्यवहारोऽयं	३३६
सुमल्लवल्ताजालैः	२०८	सुवर्णरत्नसङ्घातो	१२५	साऽहं भवत्प्रसादेन	३६०
सुपार्श्वकीर्तिनामानं	१६०	सुविद्याधरयुग्मानि	४६	साऽहं भूगोचरेणाजौ	६७
सुतचित्रार्पितं पश्यन्	२७	सुविहारपरः सोढा	३०७	सौख्यं जगति किं तस्य	२०४
सुप्तबद्धनतस्त्रस्त-	७७	सुशीतलाम्बुतुतात्मा	१४५	सौदामिनी सदच्छाया	६०
सुप्ते शत्रुबले दत्त्वा	६	सुस्नातोऽलङ्घ्युतः कान्तः	३२	सौदामिनीमयं किन्तु	२८०
सुप्त्या किं ध्वस्तनिद्राणां	२६२	सुस्नातौ तौ कृताहारौ	२४३	सौधर्मोऽस्यस्तथैशानः	२६१
सुप्रपञ्चाः कृताः मञ्चाः	२७१	सुहृदां चक्रवालेन	३६६	सौधर्मैन्द्रप्रधानैर्य-	१३८
सुप्रभस्य विनीतायां	१३६	सुहृदां चक्रवालेन	३६१	सौभाग्यवरसम्भृति-	९०

सौमित्रिमधुरप्रात-	४०५	स्मर्तव्योऽस त्वया कृच्छ्रे	३६०	स्वान्यसैन्यसमुद्भूत-	२५५
सौम्यधर्मकृतौपम्यैः	२०२	स्मृतमात्रत्रियोगाग्नि-	११४	स्वामिघातकृतो इन्ता	३२५
सौरभाक्रान्तदिकृच्छ्रै-	३३५	स्मृतैरमृतसम्पन्नै-	३८८	स्वामिनं पतितं दृष्ट्वा	६६
स्वल्पद्वलित्रयात्यन्त-	४२	स्मृत्वा स्वजनघातोत्थं	१८३	स्वामिना सह निष्क्रान्तौ	१३६
स्तनोपपीडमाश्लिष्य	३७०	स्यन्दनान्तरसोत्तीर्णां	२६६	स्वामिनी लक्ष्मणस्यापि	१५७
स्तन्यार्थमानने न्यस्ता	२३४	स्वं गृहं संस्कृतं दृष्ट्वा	७५	स्वामिन्यस्ति प्रकारोऽसौ	२०९
स्तम्बेरमैर्मुगाधोशैः	२७८	स्वकर्मवायुना शश्वद्	२२२	स्वामिभक्तिपरस्यास्य	३२५
स्तुतो लोकान्तिकैर्देवैः	१३८	स्वकलत्रसुखं हितं	४२४	स्वामिभक्त्यासमं तेन	१३८
स्तुवतोऽस्य परं भक्त्या	३०५	स्वकृतमुकर्मादयतः	२३३	स्वामीति पूजितः पूर्वं	३८०
स्तुपैश्च धवलम्भोज-	३०४	स्वच्छुस्फटिकपट्टस्थो	३५२	स्वाम्यादेशस्य कृत्यत्वा-	२०६
स्त्रीणां शतस्य सार्द्धस्य	१२५	स्वच्छायत विचित्रेण	४१	स्वायंवरीं समालोक्य	३४४
स्त्रीमात्रस्य कृते कस्मात्	३४५	स्वजनौघाः परिप्राप्ताः	३८०	स्वैरं तमुपभुञ्जानौ	२५६
स्थानं तस्य परं दुर्गं	२५०	स्वदूतवचनं श्रुत्वा	६	स्वैरं योजनमात्रं तौ	२५४
स्थाने स्थाने च घोषाद्य-	४१७	स्वनिमित्तं ततः श्रुत्वा	२४२	स्वैरं स मन्त्रिभिर्नीतः	४
स्थापिता द्वारदेशेषु	२४७	स्वपक्षपालनोद्युक्ता	२०	स्वैरं स्वैरं ततः सीता	२३३
स्थाप्यन्तां जिनविम्बानि	१८१	स्वप्न इव भवति चारु-	१७०	स्वैरं स्वैरं परित्यज्य	१५३
स्थितमग्रे वरस्त्रीणां	१३१	स्वप्नदर्शननिःसारां	२८८	[ह]	
स्थितस्यामिमुखस्यास्य	६६	स्वप्ने पयोजिनीपुत्र-	२३४	हंससारसचक्राह-	१९२
स्थिताद्ब्रह्मदयश्चासौ	४१६	स्वभावादेव लोकोऽयं	१६८	हरिक्रान्तायिकायाश्च	३१०
स्थितानां स्नानपीठेषु	६८	स्वभावाद् भीरुकाभीरु-	२२८	हरिताक्षसमुल्लङ्घी	३५
स्थितायामस्य वैदेह्यां	२५४	स्वभावाद् वनिता जिह्वा	३४४	हरीणामन्वयो येन	१५६
स्थितायास्तत्र ते पद्मः	२२३	स्वभावान्मृदुचेतस्कः	१४२	हलचक्रधरी ताम्बां	२५८
स्थिते निर्वचने तस्मिन्	२३१	स्वभावेनैव तन्वङ्गी	६०	हलचक्रभृतोर्द्विषोऽनसयो-	४२३
स्थितो वरासने श्रीमान्	१४३	स्वयं सुसुकुमारभि-	३६२	हस्तपादाङ्गबद्धस्य	३६७
स्थितौ च पार्श्वयोः	२८३	स्वयमप्यागतं मार्गं	२६	हस्तसम्पर्कयोग्येषु	१६३
स्थित्या चारविनिर्मुक्तान्	२०	स्वयमुत्थाय तं पद्मो	२०२	हस्तालम्बितविस्त्रस्त-	१६
स्थूरीपृष्ठसमारूढाः	५६	स्वयमेव नृपो यत्र	३३६	हा किन्विदं समुद्रभूतं	३६६
स्थैर्यं जिनवगागारे	२६४	स्वयम्प्रभासुरं दिव्यं	१४	हा तात किमिदं क्रूर	७४
स्नानक्रीडातिसंभोग्या-	११७	स्वरूपमृदुसद्गन्धं	३७४	हा ता कृतं किमिदं	८६
स्निग्धो सुगन्धिभिः कान्तै-	१३०	स्वर्गं तेन तदा याता	४२०	हा निर्वर्णसरोजान्नि	२२९
स्नेहानुरागसंस्तो	२२७	स्वर्गतः प्रच्युता नूनं	८८	हा दुष्टजनवाक्याग्नि-	२३१
स्नेहापवादभयसङ्गत-	२०१	स्वर्गो भोगं प्रमुञ्जन्ति	४१७	हा धिक् कुशाखनिवहै-	३१७
स्नेहावासनचित्तास्ते	२४७	स्वल्पमण्डलशन्तोष-	२३८	हा नाथ भुवनानन्द-	३७२
स्नेहोमिषु चन्द्रखण्डेषु	२६७	स्वल्पैरेव दिनैः प्रायः	३७	हा पद्म सदगुणाम्भोषे	२१४
स्पर्शानुकूललघुभि-	८९	स्वल्पोऽपि यदि कश्चित्ते	४६	हा पद्मेक्ष्ण हा पद्म	२१३
स्पर्शतैर्हलह्लाशब्दै-	६६	स्वशोणितनिषेकासौ	१६४	हा पुत्रेन्द्रजितेदं	८६
स्फुरगण्येन पुनर्ज्ञात्वा	५६	स्वस्त्याशीभिः समानन्ध	११३	हा प्रिये हा महाशीले	२३०
स्फुरत्वाशः प्रतापाम्या-	२३७	स्वस्थो जनपदोऽमुष्यां	१७	हा भ्रातः करुणोदार	७१
स्फुलिङ्गोद्गारोद्गद्गद्	२८८	स्वस्य सम्भवमाचख्यौ	२५३	हा भ्रातर्दयिते पुत्रे	३८०

हा मया तनयौ कर्षं	२६६	हा हा नाथ गतः कासि	७२	हेमरत्नमयैः शुष्पैः	१९२
हा मातः कीदृशी योषित्	२६८	हा हा पुत्र गतः कासि	१११	हेमरत्नमहाकूर्टं	१३०
हा मे वत्स मनोह्लाद-	१५१	हिसादोषविनिर्मुक्तां	२६५	हेमसूत्रपरिक्लिप्त-	२४
हारकुण्डलकेयूर-	३६४	हिसावितथ चौर्यस्त्री-	२९५	हेमस्तसहस्रेण	६७
हारैश्चन्दननीरैश्च	३७२	हिसावितथ चौर्यान्व-	२८७	हेमस्त सहस्रेण रचितं	६३
हा लक्ष्मीधरसञ्जात-	११४	हिते सुखे परिव्राणो	२९७	हेमाङ्कस्तत्र नामैको	१०४
हा वत्सक क यातोऽसि	१०६	हिमवन्मन्दराद्येषु	४७	हेमाङ्कस्य गृहे तस्य	१०४
हा वत्सौ त्रिपुलैः पुण्यैः	२६६	हिरण्यकशिपुः क्षिप्तं	६६	हेमैभारकतैर्वाग्नि-	६८
हा वत्सौ विशिखैर्त्रिद्वौ	२६६	हृताऽस्मि राक्षसेन्द्रेण	२१६	हेषन्ति कम्पितग्रीवा-	३६
हावभावमनोज्ञाभिः	३०४	हृदयानन्दनं राम-	१६८	हे सीतेन्द्र महाभाग-	४१४
हा शावकाविमैरस्त्रै	२६६	हृदयेन वहन् कम्पं	६१	ह्रियते कवचं कस्मात्	४२
हा सुतौ वज्रजङ्घोऽयं	२६६	हृदयेषु पदं चक्रुः	८०	ह्रियन्ते वायुना यत्र	३१४
हा सुदुर्लभकौ पुत्रौ	१११	हेमकक्षापरीतं स	१६१	ह्रियमाणस्य भूपस्य	४०१
हा हा किं कृतमस्माभिः	४१२	हेमपात्रगतं कृत्वा	४०२	हीपाशकण्ठवद्भास्ते	१६८

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित पुराण, चरित एवं अन्य काव्य-ग्रन्थ

- आदिपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य जिनसेन, भाग 1, 2
सम्पा.-अनु. : डॉ. पत्रालाल जैन, साहित्याचार्य
- उत्तरपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य गुणभद्र
सम्पा.-अनु. : डॉ. पत्रालाल जैन, साहित्याचार्य
- पद्मपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य रविषेण, 3 भागों में
सम्पा.-अनु. : डॉ. पत्रालाल जैन, साहित्याचार्य
- हरिवंशपुराण (संस्कृत, हिन्दी) : आचार्य जिनसेन
सम्पा.-अनु. : डॉ. पत्रालाल जैन, साहित्याचार्य
- समराइच्चकहा (प्राकृत गद्य, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद)
मूल : हरिभद्र सूरि, अनुवाद : डॉ. रमेशचन्द्र जैन
- कथाकोष (संस्कृत) : पण्डिताचार्य
सम्पा.-अनु. : डॉ. आ. ने. उपाध्ये
- वीरवर्धमानचरित (संस्कृत, हिन्दी) : महाकवि सकलकीर्ति
सम्पा.-अनु. : पं. हीरालाल शास्त्री
- धर्मशर्माभ्युदय (संस्कृत, हिन्दी) : महाकवि हरिचन्द्र
सम्पा.-अनु. : डॉ. पत्रालाल जैन, साहित्याचार्य
- पुरुदेव चम्पू (संस्कृत, हिन्दी) : महाकवि अर्हद्दास
सम्पा.-अनु. : डॉ. पत्रालाल जैन, साहित्याचार्य
- वीरजिणिंदचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : कवि पुष्पदन्त
सम्पा.-अनु. : डॉ. हीरालाल जैन
- वड्डमाणचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : विबुध श्रीधर
सम्पा.-अनु. : डॉ. राजाराम जैन
- महापुराण (अपभ्रंश, हिन्दी) : कवि पुष्पदन्त, 5 भागों में
सम्पा.-पी.एल वैद्य, अनु.-डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
- गायकुमारचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : कवि पुष्पदन्त
सम्पा.-अनु. : डॉ. हीरालाल जैन
- जसहरचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : कवि पुष्पदन्त
सम्पा.-अनु. : डॉ. हीरालाल जैन
- सिरिवालचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : नरसेन देव
सम्पा.-अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
- पउमचरिउ (अपभ्रंश, हिन्दी) : स्वयम्भू, पाँच भागों में
सम्पा.-अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन
- रिड्डणेमिचरिउ (यादवकाण्ड) : स्वयम्भू (अपभ्रंश, हिन्दी)
सम्पा.-अनु. : देवेन्द्रकुमार जैन
- वर्धमानपुराणम् (कन्नड़) : आचण्ण
आधुनिक कन्नड़ अनुवाद : टी. एस. शामराव, पं. नागराजैया
- रामचन्द्रचरितपुराणम् (कन्नड़) : कवि नागचन्द्र
आधुनिक कन्नड़ अनुवाद : डॉ. आर. सी. हीरेमठ



भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

संस्थापक :

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन

ज्ञानं प्रबलमहितं
पद्यचरिते २२५
प्रतिष्ठाचप्रतीहार
सुवेदनीमिरामम
यमेवविस्पष्टः। प्रति
प्रकर्मयथोचितं।
दीवाकुंनमिंदोषि
सर्वलेकारचूषित
लोस्त्रपानताने॥
ग्रथातातप्रतीद्वय
त्रीये॥ ब्रजेन्मुक्ता
यवतीतथायथा
करिष्वाग्नि पृथिव
शक्रेवा॥ दातव्यात्
रावयोर्मते॥ २२॥
ममेवशुणेःसर्वं॥
दं। जनेर्दसार्थक
रुते॥ २३॥ एवमेतद